एशिया का प्रादेशिक भूगोल

[REGIONAL GEOGRAPHY OF ASIA]

(भारत के विशेष सन्दर्भ सहित)

[गोरखपुर विश्वविद्यालय के बी. ए. प्रथम वर्ष के द्वितीय प्रश्न-पत्र के नवीनतम पाठ्यक्रमानुसार]

डॉ. चतुर्भुज मामोरिया
एम. ए. (भूगोल), पी-एच.डी.
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर
एवं
डॉ. के. एम. एल. अग्रवाल
किशोरी रमन महाविद्यालय, मथुरा

पूर्णतः संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

साहित्य भवन : आगरा—३

द्वितीय संस्करण : १९७६

मूल्य : पच्चीस रुपया

प्रकाशक
साहित्य भवन
हॉस्पिटल रोड, आगरा

मुद्रक
श्री देवी प्रिन्टर्स, आगरा

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक 'एशिया का प्रादेशिक भूगोल' गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष के द्वितीय प्रश्न-पत्र के विद्यार्थियों के सम्मुख रखते हुए लेखकगण अत्यन्त हर्ष का अनुभव करते हैं।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह नवीनतम निर्धारित पाठ्य-क्रम के अनुसार तैयार की गयी है। एशिया की अपेक्षा भारत के प्रादेशिक भूगोल पर पूछे जाने वाले प्रश्नों को विद्यार्थी अधिक रुचि से हल करना पसन्द करते हैं, *अतः भारत के प्रादेशिक भूगोल का वर्णन अधिक विस्तार में किया गया है।*

भाषा की सरलता विद्यार्थी समाज की सबसे बड़ी लोकप्रियता है इसीलिए सरल भाषा का प्रयोग एवं क्रमबद्ध लेखन-प्रणाली हमारा प्रमुख लक्ष्य रहा है। पुस्तक को अनावश्यक विस्तार एवं वाक्य-विन्यास से बचाकर एशिया एवं भारत की भौगोलिक परिधि तक सीमित रखा गया है। पुस्तक को परीक्षोपयोगी बनाने के लिए *अधिकतम मानचित्रों, नवीनतम आँकड़ों की तालिकाएँ एवं आधुनिक अंक प्रणाली* को अधिक मान्यता दी गयी है।

पुस्तक में नवीनतम सूचनाएँ देने के निमित्त विभिन्न एटलस, सूचना पत्रिकाएँ, टाइम्स ऑफ इण्डिया ईयर बुक, १९७४, भारत सरकार द्वारा समय-समय पर प्रकाशित विषय-सामग्री तथा प्रसिद्ध विद्वानों की पुस्तकों से सहायता ली गयी है।

लग्न और तत्परता से पुस्तक के प्रकाशन के लिए लेखकगण बन्सल बन्धुओं के अत्यन्त आभारी हैं।

पुस्तक की कमियों को दूर करने एवं नवीन संस्करण के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले पाठक बन्धुओं के सुन्दर सुझावों के लिए हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं।

—लेखकगण

GEOGRAPHY

PART I

Paper II : Regional Geography of Asia with special reference to India

(a) *General Geography of Asia* : Structure and Relief ; Drainage ; Climate and climatic regions ; Vegetation zones ; Major Crops—Rice, Sugarcane, Tea and Rubber ; Mineral and Power Resources—Iron, Ore, Tin, *Coal*, *Petroleum* ; *Important* Industries—Iron and steel, Cotton textiles ; Population distribution.

(b) *Regional Geography of India* · Physical background ; Physical regions ; Climatic regions ; Vegetational zones ; Soil types ; Crop-Combination regions, Important minerals—Iron ore, manganese, mica, bauxite, copper, Power resources ; Location and distribution of major industries—Iron and Steel, Cotton textiles, Jute, Paper, Cement, Sugar, Fertilizer. Industrial Regions, Distribution of populations Transport and Foreign trade, A detailed study of the Ganga plain

विषय-सूची

अध्याय — पृष्ठ

प्रथम भाग : एशिया का सामान्य भूगोल

द्वितीय भाग : भारत का प्रादेशिक भूगोल

अध्याय | पृष्ठ

एशिया का सामान्य भूगोल
[GENERAL GEOGRAPHY OF ASIA]

1

एशिया—एक भौगोलिक इकाई
(ASIA—A GEOGRAPHICAL UNIT)

विश्व के आदि मानव का जन्मस्थल एशिया महाद्वीप विश्व के सभी महाद्वीपों में सबसे विशाल महाद्वीप है। इसकी पुष्टि एशिया महाद्वीप के विशाल क्षेत्र तथा इसमें मिलने वाली अत्यधिक जनसंख्या से हो जाती है। वर्तमान समय में विश्व का कुल क्षेत्रफल १४,५०,८०,००० वर्ग किलोमीटर है जिसमें से एशिया महाद्वीप का क्षेत्रफल ४,४०,३०,२०० वर्ग किलोमीटर है अर्थात् सम्पूर्ण विश्व के क्षेत्रफल का लगभग ३० प्रतिशत एशिया भूखण्ड में है। एशिया तथा यूरोप दोनों मिलकर विश्व के *सबसे बड़े स्थल खण्ड 'यूरेशिया' (Eurasia) का निर्माण करते हैं*। वास्तव में एशिया तथा यूरोप महाद्वीप के बीच कोई प्राकृतिक सीमा नहीं है इसलिए प्राकृतिक वातावरण के अन्तर्गत एक-दूसरे से प्रभावित होते रहते हैं। सामान्य रूप से *भौगोलिक अध्ययन के अन्तर्गत यूरोप को एशिया का ही एक महाद्वीपीय अंग कह सकते हैं* लेकिन राजनीतिक जागृति एवं आर्थिक विकास के कारण यूरोप एशिया से पृथक्ता स्पष्ट करता है। इसलिए दोनों महाद्वीप अपना अलग-अलग प्रभुत्व रखते हैं।

एशिया की सांस्कृतिक रूपरेखा के अन्तर्गत यदि एशिया महाद्वीप के इतिहास को देखा जाय तो यह महाद्वीप केवल मानव-जाति का जन्म-स्थल (cradle of mankind) ही नहीं रहा है बल्कि यह विश्व की प्राचीनतम सभ्यता का क्रीड़ा-स्थल (cradle of human civilization) भी रहा है। ईसा से लगभग ५,००० वर्ष पूर्व ईराक के दजला एवं फरात नदियों के मध्यस्थल अथवा मैसोपोटामिया खण्ड में *ही मानव सभ्यता का सर्वप्रथम विकास हुआ था।*

प्रो० कोर्निश के अनुसार जब यूरोप-महाद्वीप के निवासी असभ्य थे तब एशिया के निवासी विकास की अवस्था में थे।[1] लेकिन आज एशिया महाद्वीप अनेक *राजनीतिक समस्याओं से घिरा हुआ है*। एशिया महाद्वीप के दक्षिणी-पश्चिमी एवं दक्षिणी-पूर्वी भागों में स्थित देश राजनीतिक विस्फोटों के शिखर पर बैठे हुए हैं।

[1] All were flourishing when the peoples of North-West Europe were still savages. —W. B. Cornish, *Modern Geography of Asia*, p. 2.

सांस्कृतिक रूपरेखा के परिचय के साथ-साथ एशिया महाद्वीप की मानवीय रूपरेखा का भी परिचय दिया जाना आवश्यक है। विश्व में एक-तिहाई भाग में फैले हुए इस महाद्वीप में विश्व की दो-तिहाई जनसंख्या निवास करती है क्योंकि विश्व की वर्तमान जनसंख्या ३७८ करोड़ है जिसमें से २१५ करोड़ मानव एशिया में निवास करते हैं। इस अत्यधिक जनसंख्या का प्रभाव यह पड़ा है कि एशिया में जनसंख्या की वृद्धि एक समस्या बन गयी है और इससे यहाँ का सामाजिक जीवन बड़ा प्रभावित हुआ है। जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि, इस महाद्वीप के आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में पिछड़ जाने में भी एक कारण रही है। अनेक धर्म, सम्प्रदाय एवं विचारधाराओं का यह एशिया महाद्वीप आपसी संघर्षों में डूबा हुआ है।

भौगोलिक स्थिति
(GEOGRAPHICAL SITUATION)

विश्व के गोलार्द्ध में स्थित एशिया एक विशाल महाद्वीप है। इस महाद्वीप का अक्षांशीय विस्तार १०° दक्षिणी अक्षांश से लेकर ८०° उत्तरी अक्षांश तक तथा देशान्तरीय विस्तार २५° पूर्वी देशान्तर से लेकर १७०° पश्चिमी देशान्तर तक है। इस प्रकार इस महाद्वीप की स्थिति ९०° अक्षांश तथा १६५° देशान्तर में है। इस महाद्वीप की उत्तर से दक्षिण तक अधिकतम चौड़ाई ७,७२० किलोमीटर है। इस महाद्वीप का कुल क्षेत्रफल ४४,०३०,२०० वर्ग किलोमीटर है। यह विशाल महाद्वीप
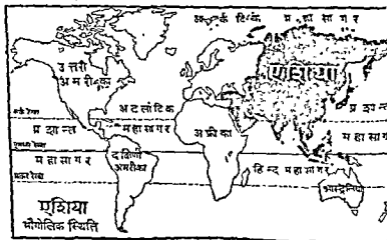
चित्र—१

तीन ओर से समुद्र से तथा एक ओर से स्थल से घिरा हुआ है। महाद्वीप के उत्तर में आर्कटिक महासागर, दक्षिण में हिन्द महासागर, पूर्व में प्रशान्त महासागर तथा पश्चिम में यूरोप तथा [illegible] है।

समुद्र तट
(SEA COAST)

एशिया महाद्वीप तीन ओर से समुद्र से घिरा हुआ है। इसके उत्तर में स्थित आर्कटिक महासागर अथवा उत्तरी हिम महासागर वर्ष के अधिकांश भाग में जमा रहता है। पूर्व की ओर स्थित प्रशान्त महासागर का तट अन्य तटों की अपेक्षा अधिक कटा-फटा है लेकिन यह समुद्री झंझावातों से भरा रहने के कारण अधिक सुरक्षित नहीं है, यद्यपि इस तट पर अधिक सुन्दर एवं प्राकृतिक बन्दरगाह बने हुए हैं। दक्षिण की ओर स्थित हिन्द महासागर का तट भूमध्य रेखा के अधिक नजदीक होने के कारण अन्य तटों की अपेक्षा अधिक गर्म रहता है। सामान्यतया एशिया महाद्वीप का समुद्र तट कम कटा-फटा है तथा यहाँ विशाल बन्दरगाहों की कमी है। इसके अतिरिक्त तट के कम कटे-फटे होने के कारण खाड़ियाँ भी कम हैं। एशिया में मिलने वाली मुख्य खाड़ियाँ फारस की खाड़ी, ओमान की खाड़ी, कच्छ की खाड़ी, बंगाल की खाड़ी, मनार की खाड़ी, स्याम की खाड़ी, अनादिर की खाड़ी, ओबे की खाड़ी, इत्यादि हैं।

ज्वालामुखी की स्थिति
(EXISTENCE OF VOLCANOES)

एशिया महाद्वीप के भारतीय प्रायद्वीपीय पठार, जापान द्वीपसमूह तथा पूर्वी द्वीपसमूह (हिन्देशिया) में आज भी अनेक ज्वालामुखी चट्टानें मिलती हैं। भारत का प्रायद्वीपीय पठार का अधिकांश भाग ज्वालामुखी की लावा मिट्टी का बना है इसलिए यह भाग लावा प्रदेश भी कहलाता है। जापान तथा जावा में अनेक ज्वालामुखी पर्वत मिलते हैं। एशिया का सबसे बड़ा ज्वालामुखी पर्वत फ्यूजीयामा जापान में स्थित है। यह जागृत अवस्था में है। अपने विनाशकारी विस्फोटों के कारण जापान के निवासी इस पर्वत की पूजा करते हैं और इस पर्वत के शान्त रहने की उपासना करते हैं। जापान में प्रायः ज्वालामुखी विस्फोट होते रहते हैं और अनेक ज्वालामुखी पर्वत आज भी जागृत अवस्था में हैं। हिन्देशिया के सबसे अधिक विकसित द्वीप जावा में स्थित माउण्ट ब्रोमो एक प्रसिद्ध ज्वालामुखी पर्वत है।

मानव जाति का जन्मस्थल
(CRADLE OF MANKIND)

मानवशास्त्रियों के मतानुसार एशिया महाद्वीप आदि-मानव का जन्म-स्थल रहा है। सन् १८९२ में जावा द्वीप में जो मानव खोपड़ी प्राप्त हुई थी वह ५ लाख वर्ष पूर्व की थी। डॉ० टेलर के अनुसार विश्व में जो मानव मिलते हैं उनका विकास आज से ५ लाख वर्ष पूर्व हुआ था।[1] इस बात से यह स्पष्ट होता है कि एशिया

[1] "The evolution and migration of primitive man occurred during the last half million years." —Griffith Taylor, *Geography of 20th Century*, p 455.

मानव का जन्म-स्थान रहा है। यहाँ से बाद में एक बहुत बड़ी संख्या में मनुष्य यूरोप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा अमरीका महाद्वीप को गये थे। इस प्रकार एशिया महाद्वीप केवल मानव का जन्म-स्थल ही नहीं रहा है बल्कि यह मानव जाति का पालना-स्थल तथा मानव प्रवास-स्थल भी रहा है। मानव भूगोल की विभिन्न विचारधाराओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि आदि-मानव का जन्म एशिया महाद्वीप में मध्य एशिया के स्थल पर हुआ था। वेल्स तथा हक्सले[1] ने भी मध्य एशिया को मानव का जन्म-स्थल माना है।

मानव सभ्यता का जन्म-स्थल
(CRADLE OF HUMAN CIVILIZATION)

एशिया महाद्वीप को केवल मानव का जन्म-स्थल होने का ही श्रेय नहीं है बल्कि इस महाद्वीप को इस बात का भी गौरव प्राप्त है कि इस महाद्वीप ने विश्व को सभ्यता का पाठ पढ़ाया है। सर्वप्रथम ईसा से लगभग ५,००० वर्ष पूर्व दजला एवं फरात नदियों की घाटियों में मानव सभ्यता विकसित हुई थी। इस प्रकार ईराक की बेबीलोन सभ्यता और वहाँ के झूलते हुए बाग (Hanging Gardens of Babylon), टर्की के इफेसस नगर का प्रसिद्ध सभ्यता का केन्द्र, डायना का मन्दिर (Temple of Diana) तथा चीन की महान दीवार (Great Wall of China) सभ्यता के विकास-स्थल रहे हैं। विश्व को वर्णमाला, अंक प्रणाली तथा दशमलव प्रणाली का ज्ञान कराने का श्रेय एशिया महाद्वीप को रहा है। दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में स्थित अरब के निवासियों द्वारा विश्व को दिया गया ज्योतिषशास्त्र यहाँ की प्राचीन सभ्यता का प्रदर्शक है। जेरुसलम की पवित्र भूमि, सिन्धु घाटी की सभ्यता एवं मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई में मिली प्राचीन मूर्तियाँ प्राचीनतम सभ्यताओं के साक्षी के रूप में आज भी विद्यमान हैं।

महान धर्मों की भूमि
(CRADLE OF GREAT RELIGIONS)

यह सत्य है कि एशिया महाद्वीप विश्व के सभी प्राचीन एवं महान धर्मों का जन्म-स्थल रहा है।[2] संसार में मिलने वाले चार मुख्य धर्म—हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म तथा ईसाई धर्म—का जन्म एशिया महाद्वीप में ही हुआ है। विश्व का प्राचीनतम धर्म (हिन्दू धर्म) भारत में विकसित हुआ। बौद्ध धर्म (जो संसार का सबसे बड़ा धर्म है) का प्रवर्तन आज से २,५०० वर्ष पूर्व भारत में भगवान बुद्ध द्वारा हुआ था। इस धर्म के अनुयायियों की संख्या संसार में सबसे अधिक है जो लगभग ७० करोड़ है। इस्लाम धर्म का प्रवर्तन आज से १,४०० वर्ष पूर्व मध्यपूर्व के देशों में

[1] Walls and Huxley, *Science of Man*

[2] "We must remember that all the great religions originated in Asia."
—W. B. Cornish, *Modern Geography of Asia*, p. 3

हजरत मुहम्मद द्वारा हुआ था। ईसाई धर्म का प्रवर्तन इजरायल देश की पवित्र भूमि जेरूसलम में ईसा मसीह द्वारा हुआ था। इस प्रकार एशिया महाद्वीप को संसार के विभिन्न महाद्वीपों के निवासियों को धर्म का ज्ञान कराने का श्रेय रहा है।

एशिया संसार का सबसे बड़ा महाद्वीप है इसलिए इस अत्यन्त विशाल महा-द्वीप में विषमताओं का मिलना स्वाभाविक है। डॉ० स्टाम्प के अनुसार एशिया के विभिन्न भागों में विषमताओं का मिलना जरूरी है। इसी प्रकार कोनिश महोदय के अनुसार एशिया जैसे विशाल क्षेत्रफल वाले महाद्वीप में धरातल, जलवायु सम्बन्धी, प्राकृतिक आकृतियों एवं आर्थिक समाधनों सम्बन्धी अनेक विषमताएँ मिलना स्वाभाविक है। *एशिया महाद्वीप में निम्न विषमताएँ मिलती हैं :*

(१) विश्व का सबसे ऊँचा स्थान एवरेस्ट शिखर (जो समुद्रतल से लगभग ८,८४८ मीटर ऊँचा है) एशिया में हिमालय पर्वत पर स्थित है तथा विश्व का सबसे नीचा सागर गर्त 'मिडिनाओ गर्त' (जो कि समुद्रतल से लगभग १०,७०० मीटर नीचा है) एशिया में फिलीपाइन द्वीपसमूह के निकट स्थित है।

(२) विश्व का सबसे गर्म प्रदेश जेकोबाबाद (जिसका अधिकतम तापमान ५४° सेण्टीग्रेड है) तथा विश्व का सबसे ठण्डा प्रदेश वर्खोयान्सक (जिसका न्यूनतम तापमान —६५° सेण्टीग्रेड है) एशिया महाद्वीप में स्थित है।

(३) विश्व का सबसे अधिक वर्षा प्राप्त करने वाला भाग चेरापूँजी [जिसकी अधिकतम वर्षा का वार्षिक औसत १,२६८ सेण्टीमीटर (सन् १८६१) है] तथा विश्व का सबसे कम वर्षा प्राप्त करने वाला भाग अदन (जिसकी वार्षिक वर्षा का औसत ५ सेण्टीमीटर है) इसी महाद्वीप में स्थित हैं।

(४) एशिया महाद्वीप के उत्तरी एवं दक्षिणी प्राचीनतम भूखण्डों में विश्व की सबसे प्राचीन चट्टानें तथा नवीन वलय पर्वत श्रेणियों में विश्व की सबसे नवीन चट्टानें मिलती हैं।

(५) एशिया महाद्वीप में विश्व की वर्ष भर हरी-भरी रहने वाली वनस्पति सदाबहार वन पूर्वी द्वीपसमूह में तथा विश्व की सबसे शुष्क वनस्पति झाड़ी-वन दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में मिलती है।

(६) एशिया में विश्व के सबसे अधिक पालतू पशु मिलते हैं। विश्व में मिलने वाले कुल पालतू पशुओं का लगभग २०% भाग अकेले भारत देश में हैं लेकिन इन पशुओं की नस्ल निकृष्ट होने के कारण इनमें दूध का उत्पादन बहुत कम है। यूरोप में एक गाय से औसत दैनिक दूध १८ किलोग्राम मिलता है जबकि एशिया में केवल २ किलोग्राम है।

(७) एशिया महाद्वीप में संसार के सबसे अधिक मानव कृषि कार्य में लगे हुए हैं[1] तथा एशिया महाद्वीप गेहूँ, जौ, चावल, चाय, जूट, रबड़, सोयाबीन, ज्वार-बाजरा तथा सिनकोना के उत्पादन में विश्व में सबसे आगे है तथा जई, राई, चुकन्दर, जैतून, आदि के उत्पादन में विश्व में बहुत पिछड़ा हुआ है।

(८) एशिया महाद्वीप में विश्व की प्राचीनतम आदिम कृषि (primitive agriculture) हल, बैल तथा मानव श्रम के द्वारा की जाने वाली तथा विश्व की नवीनतम बागान कृषि (plantation agriculture) मानव एवं मशीनों द्वारा की जाने वाली दोनों प्रकार की कृषि मिलती है।

(९) एशिया महाद्वीप में विश्व की सबसे अधिक अभ्रक, मैंगनीज, टंगस्टन तथा टिन खनिज उत्पन्न करता है जबकि यह महाद्वीप सोना, निकल (रांगा), चाँदी तथा जस्ता खनिज के उत्पादन में सबसे पीछे है।

(१०) एशिया महाद्वीप में विश्व का सबसे अधिक घनत्व वाला क्षेत्र जावा द्वीप है जहाँ जनसंख्या का प्रति वर्ग किलोमीटर घनत्व लगभग ४०० व्यक्ति है तथा विश्व का सबसे कम घनत्व वाला क्षेत्र मध्य एशिया है जहाँ जनसंख्या का प्रति वर्ग किलोमीटर घनत्व लगभग १ व्यक्ति है।

(११) एशिया महाद्वीप में विश्व के सबसे अधिक धर्म मिलते हैं तथा इस महाद्वीप में सबसे प्राचीन एवं सबसे नवीन दोनों ही सभ्यताएँ मिलती हैं। फिर भी यह महाद्वीप सामाजिक स्तर पर गिरा हुआ है क्योंकि यहाँ की अधिकांश जनसंख्या गरीब है।

इस प्रकार हम उपर्युक्त तत्त्वों के आधार पर कह सकते हैं कि एशिया महाद्वीप विषमताओं का महाद्वीप है।[2]

भूत और भविष्य का महाद्वीप
(CONTINENT OF PAST AND FUTURE)

एशिया महाद्वीप की प्राचीनतम सभ्यता, संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान की विकसित अवस्थाओं को देखकर तथा इस महाद्वीप में बढ़ती हुई मानव शक्ति एवं सुरक्षित प्राकृतिक तथा आर्थिक संसाधनों के आधार पर हम एशिया महाद्वीप की भविष्य की विकास की सम्भावनाओं का भली-भाँति अध्ययन कर सकते हैं। साइबेरिया के अपने विस्तृत विशाल मैदान में छिपी हुई खनिज सम्पत्ति तथा कृषि उत्पादन की बाहुल्यता के कारण एशिया महाद्वीप भविष्य का भण्डारगृह (store-house of future) कहलाता है। भूतकाल में एशिया महाद्वीप विश्व के अन्य महाद्वीपों से विकसित था और वर्तमान समय में यूरोप तथा उत्तरी अमरीका महाद्वीप इस महाद्वीप की अपेक्षा

[1] "There are more farmers in the Orient than in the rest of the world combined." —J. E. Spencer, *Asia East, by South* p. 1.

[2] "Asia has indeed been called the 'Continent of Contrasts'." —W. B. Cornish, *Modern Geography of Asia*, p. 1.

अधिक विकास कर गये हैं लेकिन एशिया में होने वाली आधुनिक जागृति इस बात का द्योतक है कि एशिया पुनः भविष्य में विश्व का सबसे विकसित महाद्वीप होगा। एशिया का जापान देश आज विश्व में औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से बहुत तेजी से आगे बढ़ रहा है। भारत तथा चीन में भी बड़ी तीव्रता से औद्योगिक विकास हो रहा है। यह निश्चित है कि एशिया अपनी जन शक्ति एवं प्राकृतिक ससाधनों की सुरक्षित निधि के आधार पर भविष्य में अन्य सभी महाद्वीपों से आगे होगा।

इस प्रकार उपर्युक्त तत्त्वों के आधार पर हम कह सकते हैं कि एशिया भूत तथा भविष्य का महाद्वीप है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. "एशिया विषमताओं का महाद्वीप है।" इस कथन की सत्यता पर प्रकाश डालिए।

२. एशिया महाद्वीप भूत तथा भविष्य का महाद्वीप क्यों कहलाता है ?

३. एशिया महाद्वीप का औद्योगिक परिचय विस्तार में दीजिए।

२

एशिया—उच्चावचन
(ASIA—RELIEF)

एशिया महाद्वीप की विशालता धरातल के अध्ययन को भी प्रभावित करती है।[1] इतने विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए इस महाद्वीप में अनेक धरातलीय स्वरूप मिलते हैं। इन धरातलीय स्वरूपों में अनेक विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। उदाहरण के लिए, यहाँ प्राचीनतम एवं नवीनतम दोनों प्रकार की चट्टानों से निर्मित अनेक पर्वत एवं पठार शृंखलाएँ मिलती हैं। ससार के विकसित उपजाऊ नदियों के मैदान से लेकर उष्ण शीतोष्ण एवं शीत मरुस्थल तक इस महाद्वीप में दिखायी देते हैं।

एशिया के मध्य भाग में फैली हुई तृतीय कल्प (tertiary age) की पर्वत श्रेणियाँ सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। इन पर्वत श्रेणियों का केन्द्र पामीर की गाँठ है जो अपनी अधिकतम ऊँचाई के कारण ससार की छत (Roof of the World) के नाम से प्रसिद्ध है। इसके पश्चिमी भाग में फैली दक्षिणी-पश्चिमी एशिया की पर्वत श्रेणियाँ हैं जिनमें आरमीनिया की गाँठ एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थिति रखे हुए है। इस पामीर की गाँठ के उत्तर-पूर्व में अल्टाई पर्वत श्रेणियाँ फैली हुई हैं।

धरातल की अन्य प्रमुख विशेषता एशिया के दक्षिणी भाग में फैले हुए विस्तृत एवं उपजाऊ नदियों के मैदान हैं, जहाँ एशिया महाद्वीप की प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति का विकास हुआ है। यद्यपि एशिया महाद्वीप में अनेक छोटी-बड़ी नदियों के मैदान मिलते हैं, लेकिन दक्षिण में स्थित उत्तरी भारत का विशाल मैदान ससार का सबसे प्रमुख उपजाऊ मैदान है जो सिन्धु तथा गंगा नदियों द्वारा निर्मित है। पूर्व की ओर स्थित चीन का उत्तरी बड़ा मैदान ह्वांगहो नदी द्वारा प्रतिवर्ष लायी गयी नयी मिट्टी की पर्तों से बना है। पश्चिम की ओर स्थित ईराक (मैसोपोटामिया) का मैदान दजला एवं फरात नदियों द्वारा निर्मित है जो एशिया की प्राचीन संस्कृति का केन्द्र है।

[1] "The primary and most signified geographical fact about the continent of Asia is simply the obvious one of its size. Its area of about 17 million square miles is no less than one-third of the land surface of the globe."
—W. G. East and O. H. K. Spate, *The Changing Map of Asia*, p. 1

एशिया महाद्वीप के दक्षिणी-पश्चिमी एवं दक्षिणी भाग में स्थित अरब तथा भारत के प्रायद्वीपीय पठार उन प्राचीन चट्टानों के बने हुए हैं जिनका निर्माण पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ हुआ था। ये विश्व के उन प्राचीन पठारों में से हैं जहाँ पर कोई भी धरातलीय परिवर्तन नहीं हुआ है।

एशिया महाद्वीप के उत्तर में स्थित विशाल उत्तरी मैदान एक निचली भूमि के रूप में है जहाँ आर्कटिक सागर के निकट अत्यन्त मन्द ढाल होने के कारण अनेक दलदल बन गये हैं। यह विशाल निचली भूमि साइबेरिया के मैदानी भाग में फैली हुई है जिसका निर्माण ओबी, यनीसी तथा लीना नदियों के बेसिनों में हुआ है।

चित्र—२

एक अन्य धरातलीय विशेषता एशिया महाद्वीप में पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व में फैली हुई द्वीपसमूह मालाएँ हैं। पूर्व में जापान से लेकर दक्षिण-पूर्व में अनेक द्वीपसमूह मालाएँ फैली हुई हैं जिनमें अनेक छोटे-बड़े द्वीपों की स्थिति है। अकेले फिलीपाइन द्वीपसमूह में ही ७,००० से अधिक द्वीप विद्यमान हैं।

उपर्युक्त धरातलीय विशेषताओं के आधार पर हम एशिया महाद्वीप को उच्चावचन के अध्ययन के अन्तर्गत पाँच भागों में बाँट सकते हैं :

१. मध्यवर्ती पर्वत-पठार क्रम (Central Mountain and Plateaux Ranges),
२. नदियों के मैदान (River Basins),
३. दक्षिणी प्रायद्वीपीय पठार (Southern Peninsular Plateaux),
४. उत्तरी निचली भूमि (Northern Lowlands),
५. द्वीपसमूह मालाएँ (Archipelagoes)।

१. मध्यवर्ती पर्वत-पठार क्रम

विश्व का सबसे विशाल एशिया महाद्वीप अपनी धरातलीय विशेषताओं के कारण संसार के अन्य सभी महाद्वीपों से विचित्र है। एशिया के मध्य भाग में फैली हुई ये उच्च श्रेणियाँ एशिया महाद्वीप के २०% से भाग को घेरे हुए हैं।[1] इनका विस्तार एशिया के लगभग ७८ लाख वर्ग किलोमीटर भाग पर है। यह पर्वत क्रम पश्चिम में टर्की से प्रारम्भ होकर पूर्व में चीन तथा उत्तर-पूर्व में बेरिंग सागर तक विस्तृत है। इसमें अनेक उच्च पर्वत एवं पठार सम्मिलित हैं। इस क्रम के पर्वत शिखरों की सामान्य ऊँचाई १,००० मीटर से लेकर ८,८४८ मीटर तक है। एशिया के इस मध्यवर्ती पर्वत-पठार क्रम का केन्द्र पामीर की गाँठ है जो विश्व की छत कहलाती है।

पामीर की गाँठ से मिलने वाली पर्वत श्रेणियों का प्रथम क्रम पश्चिम की ओर फैला हुआ है। इस क्रम के अन्तर्गत निम्न पर्वत एवं पठार सम्मिलित हैं :

(१) उत्तर-पश्चिम की ओर हिन्दुकुश तथा एलबुर्ज पर्वत श्रेणियाँ हैं। एलबुर्ज पर्वत श्रेणी आरमीनिया की गाँठ पर समाप्त हो जाती है।

(२) उत्तर-दक्षिण की ओर गिलगिट, सुलेमान, किरथर तथा जैग्रोस पर्वत श्रेणियाँ हैं। जैग्रोस पर्वत श्रेणी आरमीनिया की गाँठ पर समाप्त हो जाती है।

(३) पामीर की गाँठ के पश्चिम में फैली हुई इन उत्तरी एवं दक्षिणी पर्वत श्रेणियों अथवा एलबुर्ज तथा जैग्रोस के मध्य ईरान का पठार स्थित है।

(४) आरमीनिया की गाँठ के पश्चिम की ओर दो पर्वत श्रेणियाँ उत्तरी तथा दक्षिणी दिशाओं में फैली हुई हैं। उत्तरी पर्वत श्रेणी को पॉण्टिक श्रेणी तथा दक्षिणी श्रेणी को टॉरस श्रेणी कहते हैं।

(५) आरमीनिया की गाँठ के पश्चिम में फैली हुई इन उत्तरी एवं दक्षिणी पर्वत श्रेणियाँ अथवा पॉण्टिक तथा टारस पर्वत के मध्य एशिया माइनर का पठार है जिसे अनातोलिया का पठार भी कहते हैं।

[1] "The high plateaux of Central Asia occupy more than a fifth of the whole surface of the continent."
—L. Dudley Stamp, *Asia, A Regional and Economic Geography*, p. 3.

पामीर की गाँठ से निकलने वाली पर्वत श्रेणियों का दूसरा क्रम दक्षिण-पूर्व की ओर फैला हुआ है। इस क्रम के अन्तर्गत निम्न पर्वत एवं पठार सम्मिलित हैं :

(१) पामीर की गाँठ के दक्षिण-पूर्व की ओर हिमालय पर्वत श्रेणी फैली हुई है। यह संसार की सर्वोच्च पर्वत श्रेणी है। इसका सर्वोच्च पर्वत शिखर एवरेस्ट संसार का सबसे ऊँचा शिखर है जिसकी ऊँचाई ८,८४८ मीटर है। यह हिमालय पर्वत श्रेणी उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर एक चाप की भाँति फैली हुई है।

चित्र—३

(२) हिमालय पर्वत श्रेणियों की एक शाखा असम तथा बर्मा होती हुई पूर्वी द्वीपसमूह को चली गयी है। असम में इसकी मुख्य पर्वत श्रेणियाँ नागा, गारो, खासी, जयन्तिया तथा पटकोई हैं। बर्मा में इसकी मुख्य पर्वत श्रेणियाँ अराकानयोमा, पीगूयोमा और टनासरिमयोमा हैं।

पामीर की गाँठ से निकलने वाली पर्वत श्रेणियों का तीसरा क्रम पूर्व की ओर फैला हुआ है। इस क्रम के अन्तर्गत अग्रांकित पर्वत एवं पठार सम्मिलित हैं :

(१) पामीर की गाँठ के पूर्व की ओर एक पर्वत श्रेणी दक्षिण-पूर्व दिशा में चली गयी है जिसमें क्विनलुन, बायानकारा तथा सिनलिंग पर्वत प्रमुख हैं।

(२) पामीर की गाँठ के पूर्व की ओर दूसरी पर्वत श्रेणी उत्तर-पूर्व दिशा में चली गयी है जिसमें अलताइनताग, नानशान तथा खिगान पर्वत प्रमुख हैं।

(३) हिमालय तथा क्विनलुन पर्वत श्रेणियों के मध्य तिब्बत का पठार स्थित है जो संसार का सर्वोच्च पठार है जिसकी ऊँचाई ४,५०० मीटर है।

(४) हिमालय तथा क्विनलुन पर्वत श्रेणियों के मध्य एक पर्वत श्रेणी करा-कोरम की भी है।

पामीर की गाँठ से निकलने वाली पर्वत श्रेणियों का चौथा क्रम उत्तर-पूर्व की दिशा में फैला हुआ है। इस क्रम के अन्तर्गत निम्न पर्वत एवं पठार सम्मिलित हैं :

(१) पामीर की गाँठ के उत्तर-पूर्व की ओर एक पर्वत श्रेणी क्रम निकल गया है जिसमें मुख्य पर्वत थ्यानशान, अल्टाई, याब्लोनोई तथा स्टेनोवाई पर्वत हैं।

(२) पामीर की गाँठ के उत्तर-पूर्व की ओर एक पर्वत श्रेणी क्रम और निकल गया है जिसमें मुख्य पर्वत सर्कोयानस्क, कोलिमा, अनादिर, कमचटका पर्वत हैं।

(३) थ्यानशान तथा अलताइनताग पर्वत श्रेणियों के बीच तारिम बेसिन अथवा सिक्यांग का पठार स्थित है।

एशिया महाद्वीप के मध्यवर्ती पर्वत-पठार क्रम का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि एशिया महाद्वीप एक अद्वितीय महाद्वीप है जिसके मध्य भाग में उच्च पर्वत श्रेणियाँ तथा उनमें विकीर्ण होने वाले पहाड़ हैं।[1]

२. नदियों के मैदान

एशिया महाद्वीप के धरातल पर नदियों के अनेक छोटे-बड़े मैदान मिलते हैं। ये अत्यन्त उपजाऊ मैदान हैं। इन मैदानों में एशिया महाद्वीप की सभ्यता का विकास हुआ है। सिन्धु घाटी एवं दजला-फरात बेसिन की सभ्यता एशिया की प्राचीन सभ्यताओं में से है जहाँ से इसका प्रसार संसार के अनेक देशों को हुआ है। ये एशिया के सांस्कृतिक विकास के केन्द्र हैं। आज भी एशिया महाद्वीप की जनसंख्या का सबसे अधिक घनत्व इन्हीं मैदानों में मिलता है। पश्चिम से पूर्व की ओर ये मैदान क्रमशः निम्न प्रकार हैं :

(१) दजला-फरात का मैदान—इसे मेसोपोटामिया का मैदान भी कहते हैं। यहीं एशिया की प्राचीन बेबीलोन सभ्यता का विकास हुआ है। अगर ये नदियाँ न होतीं तो ईराक का यह मैदानी भाग भी मरुस्थल होता।

(२) सिन्धु-गंगा का मैदान—इसका विस्तार भारत तथा पाकिस्तान में है। सिन्धु तथा गंगा और इन नदियों की उपजाऊ काँप मिट्टी से यह मैदान निर्मित

[1] "Asia is unique among the continents in its mountain core and radiating ranges."
—George B. Cressey, *Asia, Lands and Peoples*, p. 14.

हुआ है। सिन्धु घाटी की सभ्यता एशिया के इसी क्षेत्र से प्रसारित हुई थी। आर्य संस्कृति इसी मैदान में विकसित हुई थी। ये संसार के माने हुए प्रसिद्ध उपजाऊ मैदान हैं।

(३) इरावदी का मैदान—बर्मा का इरावदी का उपजाऊ मैदान तथा डेल्टा कॉप मिट्टी की सैकड़ों मीटर गहरी परतों से बना है जो चावल की कृषि के लिए विश्वविख्यात है।

चित्र—४

(४) मीनाम तथा मीकांग का मैदान—मीनाम तथा मीकांग नदियों ने हिन्दचीन प्रायद्वीप पर उपजाऊ मैदान का निर्माण किया है। इस मैदान में कॉप मिट्टी की अनेक परतें बिछी हुई हैं।

(५) सीक्यांग का मैदान—यह दक्षिणी चीन में है लेकिन इस मैदान का विस्तार अधिक नहीं है। यह चावल की कृषि का प्रमुख उपजाऊ मैदान है।

(६) यांगटिसीक्यांग का मैदान—यह मध्य चीन में है जिसका निर्माण यांगटिसीक्यांग तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा हुआ है। यह उपजाऊ कांप मिट्टी का बना है। इसका रेड बेसिन प्रसिद्ध मैदानी भाग है।

(७) ह्वांगहो का मैदान—इसका निर्माण ह्वांगहो अथवा पीली नदी द्वारा लोयस के पठार से बहाकर लायी गयी पीली मिट्टी से हुआ है। इसलिए इसे उत्तरी चीन का विशाल पीला मैदान भी कहते हैं। यह चीन के उत्तरी भाग में है। इस मैदान की नदी का तल अन्य भाग से ऊँचा होने के कारण नदी प्रतिवर्ष मार्ग बदल लेती है जिससे इस नदी में भयंकर बाढ़ें आती रहती हैं। इसीलिए ह्वांगहो नदी को 'चीन का शोक' (Sorrow of China) कहते हैं। यह गेहूं की कृषि के लिए विश्व प्रसिद्ध उपजाऊ मैदान है।

३. दक्षिणी प्रायद्वीपीय पठार

एशिया महाद्वीप के दक्षिणी-पश्चिमी, दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भाग में प्राचीन चट्टानों से निर्मित तीन प्रमुख पठार मिलते हैं जो निम्न हैं :

(१) अरब का प्रायद्वीपीय पठार—अत्यन्त प्राचीन एवं कठोर चट्टानों से निर्मित यह पठार प्राचीन स्थल गोंडवाना का अंश है। इसमें प्राचीन काल की रवेदार चट्टानें मिलती हैं जिनमें ग्रेनाइट चट्टान की प्रधानता है। इस पठार की सामान्य ऊँचाई २,००० मीटर है। यह एक शुष्क मरुस्थलीय भाग है। शुष्कता के कारण यह रेतीला हो गया है।

(२) भारत का प्रायद्वीपीय पठार—अरब के प्रायद्वीपीय पठार की भाँति यह भी प्राचीन चट्टानों से निर्मित गोंडवाना भूमि का अंश है जो कठोर रवेदार चट्टानों से बना है। इसके उत्तरी-पूर्वी भाग में ज्वालामुखी चट्टानों का जमाव भी है। इसका ढाल पूर्व की ओर है। पश्चिम की ओर इसका किनारा सीधा खड़ा हुआ है। इस पठार पर नदियों ने भूमि का क्षरण अधिक किया है। इसका ऊपरी धरातलीय भाग अधिक ऊबड़-खाबड़ है। पठार के उत्तरी भाग में विन्ध्याचल पर्वत, सतपुड़ा पर्वत तथा मालवा का पठार प्रमुख श्रेणियाँ हैं जबकि पठार के दक्षिणी भाग में नीलगिरि तथा इलायची की पहाड़ियाँ प्रमुख श्रेणियाँ हैं।

(३) हिन्दचीन का पठार—यह दक्षिणी-पूर्वी एशिया में फैला हुआ प्रायद्वीपीय पठार है। यह कठोर चट्टानों से निर्मित है। इसमें शान, क्वीचाऊ तथा यूनान के पठारी भाग भी सम्मिलित हैं। इस पठार की सामान्य ऊँचाई १,२०० मीटर है। इस पठार पर नदियों द्वारा क्षरण कार्य बहुत हुआ है इसलिए यह एक कटा-फटा पठार है।

४. उत्तर की निचली भूमि

साइबेरिया प्रदेश के विस्तृत भाग पर यह उत्तर की निचली भूमि त्रिभुजाकार मैदान के रूप में फैली हुई है। इस मैदान के उत्तर में आर्कटिक महासागर, पश्चिम में यूराल पर्वत तथा दक्षिण एवं पूर्व में मध्यवर्ती पर्वत-पठार क्रम फैला हुआ है। संरचना के आधार पर यह एक निचला मैदान है जो ओबी, यनीसी तथा लीना नदियों

के बेसिनों से बना है। इस निचले मैदान को प्राचीन काल मे पड़ने वाले एशिया के धरातल पर अनेक मोड़ों का सामना करना पड़ा है। इस मैदान का ढाल उत्तर की ओर आर्कटिक सागर की तरफ है। इसका ढाल अत्यन्त मन्द होने के कारण इसके उत्तरी भाग मे जल भर जाता है और अनेक दलदल बन जाते हैं। इस मैदान की नदियो के मुहाने तथा निचले भाग वर्फ से जम जाने के कारण इन नदियों का जल प्रवाह रुक जाता है। इसमे अनेक दलदलीय क्षेत्र बन जाते हैं। यही कारण है कि इस क्षेत्र की नदियों का कोई व्यापारिक महत्व नही है।-

५ द्वीपसमूह मालाएँ

एशिया महाद्वीप के पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व की ओर अनेक द्वीपसमूह एक विस्तृत पंक्ति में चाप की भाँति फैले हुए हैं।- ये द्वीप प्रशान्त महासागर तथा हिन्द महासागर में स्थित हैं जिसमे से प्रशान्त महासागर में द्वीपो की बहुलता है। ये सभी द्वीप पहाड़ी भाग के रूप में है जिनका निर्माण तृतीय कल्प की नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियो के साथ हुआ था। इन द्वीपो की चट्टानो मे नवीन मोड़दार चट्टानें मिलती हैं। भूगर्भ-वेत्ताओं के अनुसार ये उन नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियों के उठे हुए भाग हैं जो समुद्र मे डूबी हुई है। इन द्वीपों मे पूर्वी एव पश्चिमी समुद्र तटो पर संकरी मैदानी पट्टी मिलती है। इन द्वीपों की सबसे बड़ी विशेषता यहाँ पर मिलने वाले ज्वालामुखी पर्वतो की अधिकता है। अनेक ज्वालामुखी पर्वत आज भी जाग्रत अवस्था में हैं। इस द्वीपसमूह माला मे प्रमुख द्वीप क्यूराइल, होकैडो, हान्शू, क्यूशू, शिकोकू, फारमोसा, फिलीपाइन, सैलीबीज, बोर्नियो, जावा, मदुरा, ईरियन, सिंगापुर, इत्यादि हैं।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. एशिया महाद्वीप के धरातलीय स्वरूपों का विस्तार मे वर्णन करिए।
२. उच्चावचन के आधार पर एशिया को कितने भागों में बाँटा गया है? प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन करिए।
३. एशिया के मध्य भाग में मिलने वाले मध्यवर्ती पर्वत एव पठार क्रम का विस्तार में वर्णन करिए।

3

एशिया—धरातल की रचना
(ASIA—STRUCTURE)

किसी महाद्वीप की धरातलीय रचना पर उस महाद्वीप की भूगर्भीय चट्टानों की रचना का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। धरातलीय रचना के अन्तर्गत चट्टानों की बनावट का अध्ययन होता है। एशिया महाद्वीप में धरातलीय रचना के अन्तर्गत भी अनेक विभिन्नताएँ मिलती हैं। इस महाद्वीप में उष कल्प (Eozoic Era) की पुरातन चट्टानों से लेकर टरशियरी युग (Tertiary Age) की नवीनतम चट्टानें मिलती हैं। चट्टानों की विभिन्नता के साथ-साथ चट्टानों के धरातलीय रूप में भी अनेक विभिन्नताएँ मिलती हैं। इस महाद्वीप के अनेक स्थल खण्ड ऐसे हैं जहाँ भूगर्भिक हलचलों के कारण अनेक धरातलीय परिवर्तन होते रहते हैं जबकि महाद्वीप पर कुछ स्थल खण्ड ऐसे भी हैं जो इन भूगर्भिक हलचलों से अप्रभावित रहे हैं। कुछ स्थानों पर अनावृत्तीकरण के कारण चट्टानों का बाहरी रूप अवश्य परिवर्तित हो गया है लेकिन चट्टानों की आन्तरिक बनावट पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

एशिया महाद्वीप की धरातलीय रचना के बारे में अनेक मतभेद हैं लेकिन इस बात से सभी भूतत्ववेत्ता सहमत हैं कि एशिया महाद्वीप को भूगर्भीय रचना के आधार पर निम्न चार भागों में बाँटा गया है :

१. उत्तर के प्राचीनतम भूखण्ड (Ancient Blocks of North),
२. दक्षिण के प्राचीनतम भूखण्ड (Ancient Blocks of South),
३. नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियाँ (New Folded Mountain Ranges),
४. अवशेष भाग (Residual Parts)।

१ उत्तर के प्राचीनतम भूखण्ड
(ANCIENT BLOCKS OF NORTH)

एशिया महाद्वीप के उत्तरी भाग में प्राचीनतम चट्टानों के भूखण्ड मिलते हैं। इन भूखण्डों में कैम्ब्रियन युग (Cambrian Age) से पूर्व की अत्यन्त प्राचीन एवं कठोर चट्टानें मिलती हैं। ये भूखण्ड वेगनर महोदय (Wegener) के प्राचीन पेंजिया (Pangea) स्थल-खण्ड के ही टूटे हुए भाग हैं। इन भूखण्डों की चट्टानें बहुत कठोर हैं। इनमें से कुछ चट्टानों का रूप परिवर्तित भी हो गया है। साधारणतया इन भागों

में आग्नेय चट्टानों (Igneous Rocks) की बहुलता है। मुख्य चट्टानें नाइस, शिस्ट, स्लेट तथा ग्रेनाइट हैं। उत्तर के प्राचीनतम भूखण्डों के अन्तर्गत चार प्रमुख खण्ड आते हैं जिसमें से एक भूखण्ड, जिसका नाम रूसी चबूतरा (Russian Platform) है, एशिया महाद्वीप में सम्मिलित नहीं है लेकिन फिर भी इसका अध्ययन इसलिए आवश्यक हो जाता है क्योंकि इसमें एशिया महाद्वीप की संरचना को समझने में सहायता मिलती है। यह एशिया की सीमा से लगता हुआ यूरोप के बाल्टिक सागर तक फैला हुआ है इसलिए इसे बाल्टिक शीट (Baltic Sheet) भी कहते हैं। उत्तर के प्राचीनतम भूखण्डों के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख भूखण्ड निम्नलिखित हैं :

१ रूसी चबूतरा (Russian Platform),
२. अंगाराभूमि (Angaraland),
३. चीनी मैसिफ (Chinese Massif),
४. सारडिनियन मैसिफ (Sardinian Massif)।
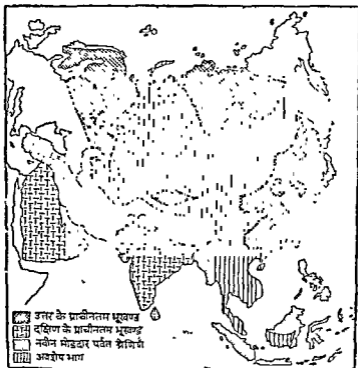
२. दक्षिण के प्राचीनतम भूखण्ड
(ANCIENT BLOCKS OF SOUTH)

एशिया महाद्वीप के दक्षिण में फैले हुए दक्षिण के प्राचीनतम भूखण्ड उत्तर के प्राचीनतम भूखण्डों की भाँति कठोर एवं प्राचीन चट्टानों से बने हुए हैं। ये प्राचीनतम भूखण्ड पैंजिया प्राचीन स्थल-खण्ड के दक्षिणी भाग के अंग हैं जिन्हें गोंडवाना भूमि (Gondwana Land) के नाम से पुकारते हैं। विद्वानों का मत है कि यह गोंडवाना भूमि प्राचीन समय में दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, दक्षिणी एशिया तथा आस्ट्रेलिया के कुछ भाग में फैली हुई थी। बाद में महाद्वीपों की रचना के समय इसके टुकड़े हो गये। एशिया महाद्वीप में भी इस गोंडवाना भूमि के दो प्रमुख भूखण्ड मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं :

१. अरब प्रायद्वीप (Arabian Peninsula),
२. भारत प्रायद्वीप (Indian Peninsula)।

चित्र—६

इन दोनों ही भूखण्डों पर परिवर्तित शैलों की रचना कैम्ब्रियन युग से पूर्व की

प्राचीन चट्टानों से हुई है। इन भूखण्डों के अन्तर्गत मिलने वाली चट्टानें आग्नेय तथा रूपान्तरित चट्टानें हैं जिनमे नाइस, शिस्ट तथा बैसाल्ट चट्टानो की प्रधानता है। इन भूखण्डों मे मिलने वाली चट्टानें इतनी स्थायी, ठोस एवं कठोर चट्टानें हैं कि इनमें कभी न तो मोड़ पड़े और न इन भूखण्डों का कभी कोई भाग समुद्र मे धँसा। इन भूखण्डों की चट्टानें इतनी स्थिर हैं कि हिमालय तथा आल्प्स जैसी विशाल पर्वत श्रेणियो के निर्माण काल के समय भी इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इन दोनों भूखण्डों की चट्टानें पृथ्वी के जन्म से लेकर आज तक स्थायी और अपने मूल रूप मे हैं।

३. नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियाँ
(NEW FOLDED MOUNTAIN RANGES)

एशिया के मध्य भाग मे नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियो का एक क्रम मिलता है। इन पर्वत श्रेणियों का निर्माण टरशियरी युग (Tertiary Age) की हुई पृथ्वी की हलचलो के कारण हुआ है, यद्यपि इन पर्वत श्रेणियों का निर्माण कार्य मध्य जीवकल्प (Mesozoic Era) के अन्तिम समय से ही प्रारम्भ हो गया था लेकिन इनका पूर्ण विकास तृतीय युग में ही हुआ था। ये पर्वत श्रेणियाँ अनेक मोड़ों मे निर्मित हुई हैं जिनकी चट्टानों मे समुद्री मलवा तथा जीव-जन्तुओं के अवशेष मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति के बारे में विद्वानो का मत है कि अत्यन्त प्राचीन काल में उत्तर एवं दक्षिण के प्राचीन स्थिर भूखण्डों के बीच एक विशाल भू-अभिनति (Geosyncline) थी जो जिब्राल्टर से लेकर एशिया तक फैली हुई थी, जिसको विद्वानों ने टैथीज (Tethys) सागर के नाम से पुकारा। इस सागर के बचे हुए भाग आज भी एशिया महाद्वीप के पश्चिमी एवं मध्य भागों मे भूमध्य सागर, कैस्पियन सागर, काला सागर, अरब सागर, आदि के रूप में विद्यमान हैं। यह सागर कुछ स्थानों पर अत्यधिक गहरा था। डी टेरा (De Terra) ने इसकी अधिकतम गहराई १०,००० मीटर से अधिक बतलायी थी।

इस विस्तृत टैथीज सागर मे करोड़ों वर्षों तक दक्षिण एवं उत्तरी भूखण्डो मे अपरदन द्वारा अनेक धरातलीय पदार्थ तथा समुद्री जीवों के अवशेष जमा होते रहे। इस जमाव क्रिया से समुद्र के धरातल मे अनेक परतें एक के ऊपर एक जमा होती रही। मुख्यतया परमियन काल (Permian Age) से आदि नूतन काल (Eocene Age) के पदार्थों की एक मोटी तह इस सागर की तली पर जमा हो गयी। कालान्तर में पृथ्वी की भूगतियों के कारण भूखण्डो मे हलचल उत्पन्न हो गयी और उत्तर के प्राचीन भूखण्ड दक्षिण की ओर खिसके। दक्षिण का प्राचीन गोंडवाना भूखण्ड अपने ही स्थान पर स्थिर रहा। इससे दोनों भूखण्डो के मध्य टैथीज सागर मे जमा मलबे में अनेक मोड़ पड़ गये। जिन भागो मे मलबे की परतें अधिक जमा थीं और जहाँ भूखण्डों का दबाव अधिक पड़ा वहाँ पर ऊँची पर्वत श्रेणियो की उत्पत्ति हुई।

इसी प्रकार इन नवीन मोड़दार टरशियरी पर्वत श्रेणियों की उत्पत्ति हुई। ये पर्वत श्रेणियाँ दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के पश्चिमी किनारे से लेकर दक्षिणी-पूर्वी एशिया के पूर्वी किनारे तक फैली हुई हैं। इसमें मुख्य पर्वत श्रेणियाँ हिमालय, एशिया माइनर, आरमीनिया, कराकोरम, अराकानयोमा, इत्यादि हैं। अन्य पर्वतों में ईरान,

चित्र—७

अफगानिस्तान, भारत, बर्मा तथा पूर्वी एशिया की पहाड़ियाँ हैं। यूरोप की अल्पाइन पर्वत श्रेणियाँ भी इसी समय बनी थीं इसीलिए इन नवीन मोड़दार पर्वत शृंखलाओं को अल्पाइन पर्वत श्रेणियों (Alpine Mountain Ranges) के नाम से पुकारा जाता है। इन नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियों के निर्माण के बारे में तीन मान्य सिद्धान्त हैं :

१. एडवर्ड सुएस का सिद्धान्त (Concept of Edward Suess),
२. इमाइल आरगण्ड का सिद्धान्त (Concept of Emile Argand),
३. वैगनर का सिद्धान्त (Concept of Wegener)।

एडवर्ड सुएस का सिद्धान्त

एशिया की सरचना के बारे में एडवर्ड सुएस ने अपना मत देते हुए बतलाया है कि प्राचीनकाल में पृथ्वी की उत्पत्ति के समय कुछ प्राकृतिक गड्ढे रह गये थे जिन्होंने बाद मे सागरों और महासागरों का रूप ले लिया। इसी प्रकार का एक विशाल सागर (Geosyncline Sea) एशिया महाद्वीप के मध्य भाग में पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ था जिसे एडवर्ड सुएस ने मुलायम भाग बताया। इस सागर के दोनो

चित्र—८

ओर उत्तर तथा दक्षिण के प्राचीन स्थिर भूखण्ड थे जिसे सुएस महोदय ने कठोर भाग अथवा शील्ड के नाम से पुकारा। उत्तरी शील्ड को अगारा भूमि तथा दक्षिणी शील्ड को गोंडवाना भूमि का भाग बतलाया। बाद मे सुएस महोदय के अनुसार उत्तरी शील्ड अथवा अगारा भूमि पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों के कारण दक्षिण की ओर खिसकी और दक्षिण की शील्ड अथवा गोंडवाना भूमि अपने स्थान पर स्थिर रही, इससे भू-अभिनति अथवा सागर में जमा मलबे मे दबाव के कारण मोड़ पड़ गये और इन

मोड़ों के सागर से ऊपर उठ जाने के फलस्वरूप एशिया की इन मध्यवर्ती नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियों की रचना हुई।

सुएस महोदय ने यह भी स्पष्ट किया है कि इस मुलायम भाग अथवा भू-अभिनति में जमा मलवे में *सिकुड़नें अथवा मोड़ कई युगों तक पड़ती रहीं।* इस सिद्धान्त में सुएस ने खिसकने वाली अंगारा भूमि शील्ड को पश्च भूमि (Hinterland) तथा स्थिर गोंडवाना भूमि शील्ड को अग्र भूमि (Foreland) के नाम से पुकारा है।

इमाइल आरगण्ड का सिद्धान्त

स्विट्जरलैण्ड के प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री इमाइल आरगण्ड ने एशिया की रचना के बारे में अपना मत ब्रूसेल्स में सन् १९२२ के अन्तरराष्ट्रीय भूगर्भ कांग्रेस (International Geological Congress) के अधिवेशन में दिया।[1] आरगण्ड महोदय ने अपना एक प्रमुख लेख पढ़ा जिसका नाम था '*La Tectonique I Asie*'। इस लेख में आरगण्ड महोदय ने एशिया की रचना को चार भागों में विभाजित किया :

१. दक्षिण के दो प्राचीनतम भूखण्ड जिनकी चट्टानें कैम्ब्रियन युग से पूर्व की हैं। ये भू-खण्ड हैं भारत तथा अरब प्रायद्वीप।

२. उत्तर के चार प्राचीनतम भूखण्ड जिनकी चट्टानें भी कैम्ब्रियन युग से पूर्व की हैं। ये भूखण्ड हैं रूसी प्लेटफार्म, अंगारा भूमि, सारडिनियन मैसिफ तथा चीनी मैसिफ।

३. अल्पाइन अथवा टरशियरी युग की पर्वत श्रेणियाँ जो एक चौड़ी पट्टी में फैली हुई हैं।

४. पुराजीवक चट्टानों का बना हुआ शेष भाग जो अल्पाइन युग की शनियों से पूर्व का निर्मित है।
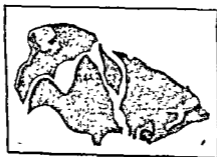
चित्र—६

आरगण्ड का मत है कि उत्तर का प्राचीन भूखण्ड जब दक्षिण की ओर

[1] Comptes rendus de la XIII Session, Congress Geological International. Vol. I.

अवसर हुआ तो दोनों भूखण्डों के मध्य जमा तलछट पदार्थों में अनेक मोड़ उत्पन्न हुए। इसी से एशिया की विशाल पर्वत श्रेणियों की उत्पत्ति हुई। आरगण्ड के अनुसार एशिया महाद्वीप का आधुनिक दिखायी देने वाला धरातल का स्वरूप भिन्न-भिन्न अगों के मोड़-मोड़, उठाव एवं धँसाव के कारण बना है। आरगण्ड महोदय ने इसी पर्वत शृंखला में अल्पाइन तथा अल्टाई पर्वत श्रेणियों के निर्माण को माना है जबकि एडवर्ड सुएस अल्पाइन पर्वत श्रेणी को तो इसी के साथ का मानते हैं लेकिन अल्टाई पर्वत श्रेणी को इससे पूर्व की मानते हैं। आरगण्ड तथा सुएस दोनों ही विद्वानों के मत अल्टाई पर्वत क्रम के बारे में भिन्नता रखते हैं।

वैगनर का सिद्धान्त

वैगनर महोदय के सिद्धान्त से एशिया महाद्वीप के धरातल की रचना स्पष्ट नहीं होती है लेकिन इससे हमें महाद्वीपों के निर्माण के बारे में सामान्य ज्ञान होता है।

वैगनर ने अपना यह महाद्वीपीय विस्थापना सिद्धान्त (Theory of Continental Drift) सन् १९१२ में दिया था। वैगनर के सिद्धान्त के अनुसार अत्यन्त प्राचीन काल अथवा पृथ्वी के इतिहास के प्रारम्भिक काल पुराजीव कल्प (Paleozoic Era) *अथवा पृथ्वी की आयु के लगभग आधे वर्ष*[1] *(एक अरब वर्ष)* पूर्व विश्व के समस्त महाद्वीप परस्पर एक-दूसरे से जुड़े हुए थे जिसे वैगनर महोदय ने पेंजिया (Pangea)
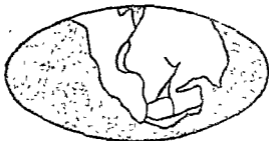
चित्र—१०

के नाम से पुकारा। इस पैंजिया के उत्तरी भाग को लॉरेशिया शील्ड (Laurasia Shield) तथा दक्षिणी भाग को गोंडवाना भूमि (Gondwana Land) का नाम दिया। इन दोनों शील्डों के मध्य एक संकीर्ण महासागर था जो टैथीस कहलाता था। कार्बन युग (Carboniferous Age) में इस पैंजिया के दो टुकड़े हो गये जिनमें से एक उत्तर तथा दूसरा दक्षिण में चला गया। बाद में इनके आपसी टूट-फूट से महाद्वीपों के आधुनिक रूप की रचना हुई।

[1] "The earth has passed 1,97,29,49 048 years"
—Samuel Rappart and Helen Wright, *The Coste of Forth*, p. 159.

४. अवशेष भाग
(RESIDUAL PARTS)

इस भाग के अन्तर्गत एशिया महाद्वीप का वह सभी भाग सम्मिलित है जो उत्तर एवं दक्षिण के खण्डों तथा नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियों के बीच स्थित है। इस भाग में मिलने वाली चट्टानों का निर्माण पुराजीव कल्प (Palaeozoic Era) तथा मध्य जीव कल्प (Mesozoic Era) में हुआ था। विद्वानों का मत है कि इन युगों में समस्त पृथ्वी पर विश्वव्यापी हलचलें हुई थीं। इन हलचलों के फलस्वरूप पृथ्वी के धरातल का कुछ भाग ऊपर उठ गया था तथा कुछ भाग नीचे धँस गया था। डिवोनियन युग (Devonian Age) के अन्तर्गत होने वाली कैलीडोनियन हलचलों (Caledonian Earth Movement) के दौरान एशिया के मध्य धरातलीय भाग में अनेक मोड़दार पर्वत बने। इसके बाद परमियन युग (Permian Age) के अन्तर्गत होने वाली हरसीनियन हलचलों (Hercynian Earth Movement) के समय भी अनेक मोड़दार पर्वतों का जन्म हुआ। इन पर्वतों पर बाद में अपरदन कार्य इतना अधिक हुआ कि इनका बाहरी रूप काफी घिस गया। इससे अनेक पर्वत अवशिष्ट पर्वत एवं पठारों का रूप ग्रहण कर गये। चीन का पठार भी इसी प्रकार का रूपान्तरित पठार है। एक लम्बे समय से अपरदन होने के परिणामस्वरूप चट्टानें पर्वत घिस कर समतलप्राय मैदान के रूप में भी परिवर्तित हो गये।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. एशिया को धरातल की रचना के अनुसार विभागों में बाँटिए तथा किसी एक का विस्तार में वर्णन करिए।

२. नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियों की उत्पत्ति के सिद्धान्तों को स्पष्ट करिए।

३. एशिया के प्राचीनतम भूखण्डों की रचना का विस्तार में वर्णन करिए।

4

एशिया—अपवाह तन्त्र
(ASIA—DRAINAGE PATTERN)

एशिया जैसे संसार के सबसे बड़े महाद्वीप के लिए अपवाह का महत्त्व बहुत अधिक है। जल-प्रवाह के अन्तर्गत नदियों अथवा बहते हुए जल का अध्ययन होता है और नदियाँ किसी देश अथवा महाद्वीप के विकास में सर्वाधिक सहायक होती हैं। प्रोफेसर क्रेसी के अनुसार, "एशिया में किसी बड़ी विशाल नदी का अभाव है जबकि अनेक छोटी नदियाँ एशिया के आन्तरिक भाग से निकलती हैं।"[1]

इस महाद्वीप की अपवाह प्रणाली की एक विशेषता यह भी है कि उच्च एवं *विशाल पर्वत श्रेणियों से निकलने वाली नदियों के मार्ग में एशिया की ये पर्वत श्रेणियाँ* बाधा के रूप में नहीं हैं।

एशिया के अपवाह में प्राचीन एवं नवीन दोनों प्रकार के नदी अपवाह मिलते हैं। कठोर एवं पुरातन चट्टानों से युक्त उत्तर के प्राचीनतम भूखण्डों वाले क्षेत्रों में बहने वाली नदियाँ ओबी, यनीसी, लीना, इन्द्रगिरिका और इनकी सहायक नदियाँ एशिया की प्राचीन नदियों में से हैं जबकि हिमालय पर्वत श्रेणियों से निकलने वाली ह्वांगहो, यांगटिसी, गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, इरावदी, आदि नवीन नदियों में से हैं। इस सम्बन्ध में एक रोचक बात यह भी है कि दक्षिण के प्राचीनतम भूखण्डों में मिलने वाली गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा एवं ताप्ती नदियाँ अपनी घाटियों को निरन्तर गहरी करती जा रही हैं तथा इसके दूसरी ओर भारत के विशाल उत्तरी मैदानी भाग में बहने वाली गंगा, यमुना, सिन्धु नदियाँ तथा इन नदियों की सहायक नदियाँ अपनी घाटियों के पेटों में निरन्तर मिट्टी की परतें जमा कर रही हैं।

तीन ओर महासागर से घिरे हुए एशिया महाद्वीप की अधिकांश नदियाँ मध्य एशिया के उच्च पर्वतीय एवं पठारी भागों से निकलकर उत्तर, पूर्व एवं दक्षिण दिशाओं की ओर प्रवाहित होती हुई क्रमशः आर्कटिक, प्रशान्त और हिन्द महासागरों

[1] "No single valley predominates, as in the North or South Asia; instead a series of rivers radiate from the interior."
—George B. Cressey, *Asia's Land and Peoples*, p 18.

में गिरती हैं लेकिन फिर भी "एशिया महाद्वीप का लगभग ८० लाख वर्ग किलोमीटर (५० लाख वर्ग मील) का आन्तरिक भाग ऐसा है जिसका जल किसी भी सागर में नहीं गिरता है।"[1] और यह जल शुष्क भागों में सूखकर प्राय. विलीन हो जाता है। इस आन्तरिक अपवाह का सम्बन्ध कुछ अश तक मध्य एशिया में मिलने वाले आन्तरिक सागर तथा झीलों से अवश्य है जिसका एशिया के आर्थिक भूगोल में अधिक महत्त्व नहीं है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर एशिया महाद्वीप को अपवाह के दृष्टिकोण से निम्न चार क्षेत्रों में विभाजित किया गया है :

१. प्रशान्त महासागरीय अपवाह क्षेत्र,
२. हिन्द महासागरीय अपवाह क्षेत्र,
३. आर्कटिक महासागरीय अपवाह क्षेत्र,
४. आन्तरिक अपवाह क्षेत्र।

१. प्रशान्त महासागरीय अपवाह क्षेत्र

इस अपवाह क्षेत्र में गिरने वाली नदियाँ मुख्य रूप से मध्य एशिया की उच्च एवं विशाल पर्वत श्रेणियों से निकलकर पूर्व की ओर बहती हुई प्रशान्त महासागर में गिरती हैं। इस अपवाह क्षेत्र का विस्तार अपेक्षाकृत कम है। प्रशान्त महासागर में अपवाह क्षेत्र की मुख्य नदियाँ आमूर (Amur), ह्वांगहो (Hwang Ho), यांगटिसीक्याग (Yangtse Kiang), सीक्याग (Sikiang), मीकाग (Mekong), मीनाम (Menam), लाल (Red), इत्यादि नदियाँ हैं। अन्य नदियों में आमूर की सहायक नदियाँ उसुरी (Ussuri) तथा सुगारी (Sungari); ह्वांगहो की सहायक नदियाँ वी-हो (Wei-Ho) तथा फेन-हो (Fen-Ho); यांगटिसीक्याग की सहायक नदियाँ हान (Han), मिन, (Min) कान (Kan), चालिंग (Chaling), सियाग (Siang), इत्यादि नदियाँ हैं। इस अपवाह क्षेत्र में अनेक प्रकार के अपवाह स्वरूप देखने को मिलते हैं जैसे ह्वांगहो का अपवाह ओरडोस पठार एवं सिनलिंग पर्वत श्रेणी के निकट भागों में आयताकार अपवाह (Rectangular Drainage) प्रणाली के रूप में है जबकि यांगटिसीक्याग अपनी सहायक नदियों के साथ वृक्षाकार अपवाह (Dendritic Drainage) प्रणाली का विकास करती है। इस क्षेत्र में मिलने वाली नदियों का महत्त्व सिंचाई, कृषि एवं परिवहन के दृष्टिकोण से अधिक है। इन नदियों ने उपजाऊ डेल्टाओं तथा मैदानों का निर्माण किया है। चीन का विशाल उत्तरी मैदान ह्वांगहो की ही देन है। ह्वांगहो अपनी प्रलयंकारी बाढ़ों के कारण 'चीन का शोक' कहलाती है। यांगटिसी नदी का भी विशेष महत्त्व है। चीन का सबसे घना भाग यांगटिसी के डेल्टा में ही मिलता है। यांगटिसी इस क्षेत्र की सबसे बड़ी नदी है जिसकी लम्बाई ५,१२०

[1] "Five million square miles are without drainage to the ocean."
—George B. Cressey, *Asia's Lands and Peoples*, p. 18.

किलोमीटर है। यह नदी अपने मुहाने के आस-पास निरन्तर मिट्टी जमा करती जा रही है जिससे इसके डेल्टे का उत्तरोत्तर विकास बढ़ता जा रहा है।
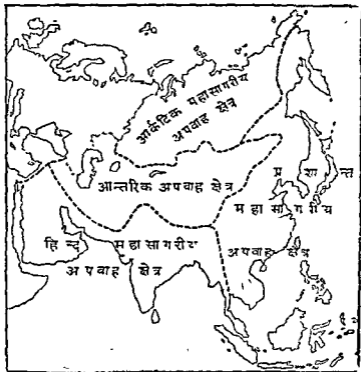
चित्र—११

२. हिन्द महासागर अपवाह क्षेत्र

हिन्द महासागर अपवाह क्षेत्र पश्चिम में दजला एवं फरात नदियों के उद्गम स्थान से लेकर पूर्व में मलयेशिया तक फैला हुआ है। इस अपवाह क्षेत्र की मुख्य नदियाँ दजला, फरात, सिन्धु, गंगा एवं ब्रह्मपुत्र हैं। अन्य नदियों में इरावदी, सालविन, चिन्दविन, गोदावरी, नर्मदा, ताप्ती, कावेरी, महानदी, आदि हैं। इस अपवाह की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ नदी अपहरण (River capture) के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इरावदी और सिन्धु इसके सबसे बड़े उदाहरण है। प्राचीन काल में उत्तर-दक्षिण घाटी में बहने वाली नदी का सिन्धु नदी ने अपहरण किया था। इस प्रकार के नदी अपहरण के अनेक चिह्न आज भी हिमालय पर्वत पर दिखायी देते हैं। भारत के दक्षिणी प्रायद्वीपीय पठार पर बहने वाली नदियाँ मार्ग परिवर्तन की

अपेक्षा अपनी घाटियों को गहरी करने में लगी हुई हैं। इस प्रकार इन नदियों का अपवाह पूर्वोत्पन्न अपवाह प्रणाली (Antecedent Drainage Pattern) के रूप में है। इस क्षेत्र में बहने वाली नदियों का कृषि-सिंचाई के दृष्टिकोण से अधिक महत्त्व है। गंगा एवं सिन्धु का मैदान एशिया का प्रसिद्ध एवं सबसे अधिक उपजाऊ मैदान है। बर्मा की इरावदी ने इस देश को एक सुचारु आर्थिक जीवन प्रदान किया है। ईराक अपनी दोनों नदियों—दजला एवं फरात—की देन है। इस क्षेत्र में मिलने वाली नदियाँ इस क्षेत्र की जल की कमी को बहुत कुछ अंश तक दूर करने में सहायक रही हैं। इस क्षेत्र में बहने वाली नदियों में वर्ष भर जल रहता है।

३ आर्कटिक महासागर अपवाह क्षेत्र

एशिया महाद्वीप के उत्तरी भाग में स्थित यह सबसे बड़ा अपवाह क्षेत्र है। इस क्षेत्र में नदियाँ मध्यवर्ती उच्च एवं गर्म प्रदेशों से निकलकर एशिया के विशाल उत्तरी मैदानी भागों पर बहती हुई उत्तर में आर्कटिक महासागर में गिरती हैं। आर्कटिक महासागर का वर्ष के अधिकांश भाग में बर्फ से जमा रहने के कारण इस क्षेत्र की नदियाँ अपने मुहानों पर मिलने से पूर्व दोनों किनारों पर फैल जाती हैं जिससे नदियों के बेसिनों एवं समुद्रतटीय भागों के निकट अनेक विस्तृत दलदल बन जाते हैं। दलदलीय भाग एवं शीत ऋतु में बर्फ से जम जाने के कारण इस क्षेत्र की नदियों का कोई आर्थिक महत्त्व नहीं है। आर्कटिक महासागर वर्ष के अधिकांश भाग में बर्फ से जमा रहता है, अतः यहाँ पर कोई भी बड़ा बन्दरगाह नहीं है इसीलिए व्यापारिक दृष्टिकोण से इस क्षेत्र की नदियों का कोई महत्त्व नहीं है। इस क्षेत्र की तीन विशाल नदियाँ—ओबी (Obe), यनीसी (Yenisei) तथा लीना (Lena)—संसार की बड़ी नदियों में से हैं। इन नदियों की लम्बाई ओबी ३,६८० किलोमीटर, यनीसी ३,३५४ किलोमीटर तथा लीना ४,३२० किलोमीटर है। इस क्षेत्र की अन्य नदियों में इन्दिगिरिका (Indigirika), कोलिमा (Kolyma), यना (Yana), इत्यादि हैं। इन नदियों का अपवाह वृक्षाय अपवाह (Dendritic Drainage) प्रणाली के प्रकार का है। इन नदियों पर हिम प्रवाह का प्रभाव पड़ा है।

४. आन्तरिक अपवाह क्षेत्र

एशिया महाद्वीप के अन्तर्वर्तीय मध्य भाग में यह अपवाह क्षेत्र पश्चिम में अनातोलिया से लेकर पूर्व में मंचूरिया तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में मिलने वाली नदियों का अस्तित्व वर्षा एवं बर्फ पिघलने की मात्रा पर निर्भर करता है। वर्षा होने अथवा बर्फ पिघलने पर जब इन नदियों को पर्याप्त जल मिल जाता है तो ये नदियाँ बहकर झीलों अथवा आन्तरिक सागरों में गिर जाती हैं अन्यथा जल की मात्रा कम होने के कारण ये नदियाँ मध्य एशिया के शुष्क रेतीले भागों में सूखकर विलीन हो जाती हैं। इस प्रकार के अपवाह क्षेत्रों की नदियों का महत्त्व बहुत कम होता है। इस क्षेत्र की मुख्य नदियाँ आमू दरिया (Amu Darya) और सीर दरिया (Sir Darya) हैं जो अरल सागर (Aral Sea) में गिरती हैं। अन्य नदियों में इली (Ili), चु

(*Chu*), तारिम (*Tarim*), खोतान (*Khotan*), आदि हैं जो बालकश झील तथा लोपनोर झीलों में गिरती हैं। इस अपवाह क्षेत्र में नदियों की अपेक्षा झीलों का महत्त्व अधिक है। कैस्पियन, अरल तथा बालकश झीलें उल्लेखनीय हैं। इस अपवाह क्षेत्र का विस्तार एशिया की लगभग ८० लाख वर्ग किलोमीटर भूमि पर है लेकिन इनका कोई महत्त्व नहीं है।

उपर्युक्त अपवाह क्षेत्र के अलावा कुछ पुस्तकों में एक अन्य अपवाह क्षेत्र 'भूमध्य सागरीय अपवाह क्षेत्र' के नाम से भी दिया हुआ है। लेकिन इस अपवाह क्षेत्र का कोई विशेष महत्त्व नहीं है क्योंकि आरमीनिया की गाँठ ने भूमध्य सागर के केवल थोड़े-से ही क्षेत्र को सम्पर्क में रहने दिया है और न इस क्षेत्र में कोई विशाल नदी है। इस अपवाह क्षेत्र का सम्बन्ध केवल एशिया महाद्वीप के पश्चिमी भाग अथवा भू-मध्यसागर के तटीय देशों से है। टर्की, लेबनान, सीरिया, इजराइल तथा साईप्रस की नदियाँ इस भूमध्य सागर में गिरती हैं। इस क्षेत्र में केवल कुछ छोटी नदियाँ मिलती हैं जिनका आर्थिक महत्त्व अधिक नहीं है। इस क्षेत्र की मुख्य नदियाँ मेंडेरिस (Menderes), मनीसा (Manisa), ओरोनटेस (Orontes), इत्यादि हैं। इस क्षेत्र की कुछ नदियाँ काला सागर में भी गिरती हैं।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. एशिया की अपवाह प्रणाली का विस्तार में वर्णन करिए।

२. प्रशान्त महासागरीय अपवाह क्षेत्र की मुख्य नदियों तथा उनके प्रभाव का वर्णन करिए।

३. हिन्द महासागर अपवाह क्षेत्र की नदियों का आर्थिक महत्त्व बताइए।

४. एशिया की मध्यवर्ती पर्वत श्रेणियों का इस महाद्वीप के अपवाह तन्त्र पर क्या प्रभाव पड़ता है?

५. आन्तरिक अपवाह क्षेत्र की नदियों की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

5

एशिया—जलवायु
(ASIA—CLIMATE)

एशिया महाद्वीप संसार का सबसे विशाल महाद्वीप है। इस विशाल महाद्वीप के जलवायु के अध्ययन के अन्तर्गत हम यह देखते हैं कि इसमें जलवायु सम्बन्धी अनेक विषमताएँ मिलती हैं। उदाहरण के लिए, संसार का सबसे गर्म भाग जैकोबाबाद तथा संसार का सबसे ठण्डा भाग वर्खोयानस्क इसी महाद्वीप में स्थित हैं। एशिया का दक्षिणी-पश्चिमी एवं मध्य भाग सबसे अधिक तापमान (लगभग ५०° सेण्टीग्रेड) प्राप्त करता है जबकि उत्तरी ध्रुवीय क्षेत्र में लगभग नौ माह तक कठोर सर्दियाँ पड़ती हैं और तापमान हिमांक से बहुत नीचे गिर जाता है जो लगभग —५०° सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है।

जलवायु की यह विषमता वर्षा के वितरण में भी पायी जाती है क्योंकि एशिया का दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भाग सबसे अधिक वर्षा प्राप्त करता है। विद्वानों का मत है कि संसार की लगभग ५०% वर्षा केवल भारतवर्ष, बर्मा, हिन्द-चीन, हिन्देशिया, मलयेशिया तथा फिलीपाइन द्वीपसमूह में हो जाती है। इन भागों में वर्षा का सामान्य औसत २५० सेण्टीमीटर से भी अधिक है जबकि एशिया का मध्य एवं दक्षिणी-पश्चिमी भाग वर्षा की कमी के कारण शुष्क एवं मरुस्थलीय है। इन भागों में वर्षा का सामान्य औसत २५ सेण्टीमीटर से भी कम है।

एशिया महाद्वीप में जलवायु की इस विषमता के मिलने के दो कारण हैं अथवा एशिया महाद्वीप की जलवायु पर दो बातों का विशेष प्रभाव पड़ता है:

१. एशिया महाद्वीप की विशालता,

२. एशिया महाद्वीप के मध्य भाग में उठी हुई पर्वत श्रेणियाँ।

१. एशिया महाद्वीप की विशालता

एशिया महाद्वीप के अत्यन्त विशाल होने के कारण इसका प्रभाव एशिया के कुछ भागों की जलवायु पर पड़ता है। विशेष कर एशिया महाद्वीप का मध्य भाग अपने निकटतम समुद्र से लगभग ३,२०० किलोमीटर (२,००० मील) दूर हो जाता है[1] जिसके फलस्वरूप यह सामुद्रिक दशाओं के समकारी प्रभावों से वंचित रह जाता

[1] "Interior Asia is nearly 2,000 miles from any ocean."
—George B. Cressey, *Asia's Lands and Peoples*, p. 18.

है, अतः इस भाग की जलवायु पूर्णतया महाद्वीपीय (Continental) हो जाती है। इस भाग में तापपरिसर अधिक मिलता है। गर्मी के दिनों में तापमान बढ़ जाता है और सर्दियों में तापमान इतना गिर जाता है कि बर्फ जम जाती है। गर्मियों एवं सर्दियों की दशाओं में अत्यधिक अन्तर देखने को मिलता है।

२. एशिया महाद्वीप के मध्य भाग में उठी हुई पर्वत श्रेणियाँ

एशिया महाद्वीप की जलवायु पर इसके मध्य भाग में फैली हुई उच्च एवं विशाल पर्वत श्रेणियों का भी प्रभाव पड़ता है। ये पर्वत श्रेणियाँ एशिया महाद्वीप को दो भागों में बाँटती हैं—उत्तरी एशिया एवं दक्षिणी एशिया। उत्तरी एशिया के अन्तर्गत उत्तरी एवं उत्तरी-पश्चिमी एशिया का भाग है जो शुष्क है और दक्षिणी एशिया के अन्तर्गत दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया का भाग है जो नम है। ये विशाल पर्वत श्रेणियाँ हिन्द एवं प्रशान्त महासागर की ओर से आने वाली जल से भरी हवाओं को उत्तर की ओर जाने से रोक देती है जिसके फलस्वरूप एशिया का मध्य एवं उत्तरी भाग वर्षा से वंचित रह जाता है। इसलिए ये भाग अत्यन्त शुष्क रह जाते हैं। यही कारण है कि इन उच्च पर्वत श्रेणियों को 'विशाल पर्वतीय बाधा' के नाम से पुकारा जाता है। एशिया की यह मानसूनी पवनें इन विशाल पर्वतीय श्रेणियों से टकराकर एशिया के दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भागों में वर्षा कर देती हैं और इस प्रकार एशिया का यह भाग संसार की सबसे अधिक वर्षा प्राप्त करता है। -

एशिया की यह मध्यवर्ती उच्च पर्वत श्रेणियाँ एशिया की वर्षा के अलावा तापमान के वितरण को भी प्रभावित करती हैं। ये उच्च पर्वत श्रेणियाँ एशिया के उत्तरी-पश्चिमी भाग से आने वाली ध्रुवीय एवं बर्फीली हवाओं को दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया में प्रवेश करने से रोक देती हैं जिसके फलस्वरूप दक्षिणी भागों में तापमान इतना अधिक नहीं गिरने पाता है जितना उत्तरी भागों में गिर जाता है। यही कारण है कि भारत तथा पाकिस्तान में बर्फ नहीं जमने पाती है जबकि एशिया के उत्तरी भागों में बर्फ जम जाती है। इस प्रकार ये पर्वत श्रेणियाँ दक्षिणी भागों में उच्च तापमान बनाये रखने में सहायता करती हैं तथा दूसरी ओर ये दक्षिण की ओर से चलने वाली गर्म हवाओं को रोक देती हैं जिसके फलस्वरूप उत्तरी भाग सर्दियों में अधिक तापमान प्राप्त नहीं कर पाता है और अधिक ठण्डा हो जाता है। अत्यधिक ठण्ड के कारण एशिया के उत्तर में स्थित आर्कटिक महासागर जम जाता है जिसके परिणामस्वरूप उत्तरी स्थल खण्ड और भी अधिक ठण्डे हो जाते हैं। यही कारण है कि उत्तरी एशिया का उत्तरी ध्रुवीय भाग अत्यधिक ठण्डा होने के कारण विश्व का 'शीत ध्रुव' कहलाता है।

एशिया की जलवायु के सामान्य अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि एशिया में वर्ष भर जलवायु सम्बन्धी दशाएँ एक-सी नहीं मिलती हैं बल्कि जलवायु की दशाएँ गर्मियों तथा सर्दियों में भिन्न-भिन्न रूपों में पायी जाती हैं। अतएव एशिया की जलवायु का अध्ययन अब दो ऋतुओं की दशाओं के अन्तर्गत किया जाना चाहिए :

१. ग्रीष्म ऋतु की दशाएँ (Summer Conditions),
२. शीत ऋतु की दशाएँ (Winter Conditions)।

१. ग्रीष्म ऋतु की दशाएँ (SUMMER CONDITIONS)

तापमान—एशिया महाद्वीप में सामान्यतया ग्रीष्म ऋतु अप्रैल माह से प्रारम्भ होती है क्योंकि मार्च के बाद सूर्य की किरणें कर्क रेखा की ओर बढ़ना आरम्भ करती हैं। जून माह में सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर लम्ब रूप से पड़ती हैं। इससे एशिया महाद्वीप के समस्त स्थल खण्ड पर तापमान में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। एशिया
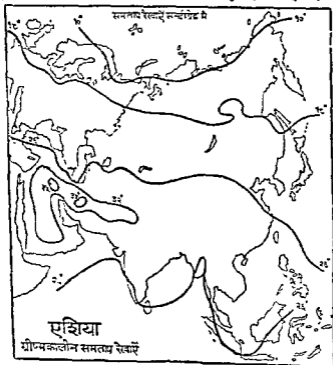
चित्र—१२

का उत्तरी ध्रुवीय प्रदेश, जो वर्ष के अधिकतम भाग में बर्फ से ढंका रहता है, इस समय लगभग १०° सेण्टीग्रेड तापमान प्राप्त करता है। २६° सेण्टीग्रेड की समताप रेखा एशिया के मध्य भाग से गुजरती है। एशिया का दक्षिणी-पश्चिमी भाग अत्यन्त गर्म हो जाता है और इस भाग में सामान्य तापमान ३५° सेण्टीग्रेड के लगभग मिलता है विशेष कर अरब का मध्य भाग, ईराक का मध्य एवं पश्चिमी भाग, भारत का

पश्चिमी मरुस्थलीय भाग तथा पाकिस्तान का पूर्वी भाग इस समय अत्यधिक गर्म हो जाता है और तापमान ४५° सेण्टीग्रेड के लगभग पहुँच जाता है। इस समय पाकिस्तान का जैकोबाबाद तथा इसके निकट का भाग सबसे गर्म भाग होता है जिसका तापमान ५०° सेण्टीग्रेड से भी ऊपर हो जाता है। सामान्यतया इस ऋतु में एशिया के अधिकांश भागों में औसत तापमान २५° सेण्टीग्रेड से भी अधिक रहता है।

वायु दाब— ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ होते ही एशिया महाद्वीप में तापमान बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है जिसके फलस्वरूप मध्य एशिया के उच्च दाब क्षेत्र धीरे-धीरे निम्न दाब क्षेत्रों के रूप में परिवर्तित होना प्रारम्भ हो जाते हैं। जून के माह में जब एशिया महाद्वीप का दक्षिणी-पश्चिमी भाग अत्यधिक तापमान के कारण भीषण गर्मी प्राप्त करता है तो इस भाग में बहुत शक्तिशाली निम्न दाब क्षेत्र स्थापित हो जाता है।
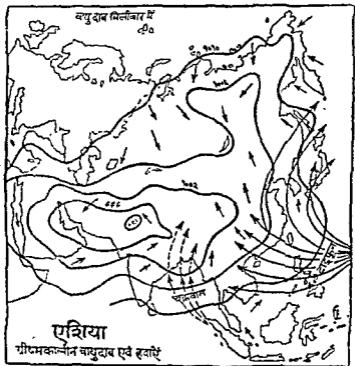
चित्र—१३

इस निम्न दाब का सबसे अधिक प्रभाव पंजाब में होता है जहाँ सबसे कम दाब लगभग ९९५ मिलीबार पाया जाता है। ठीक इसी समय एशिया के दक्षिण में स्थित

हिन्द महासागर पर उच्च दाब क्षेत्र स्थापित हो जाता है जहाँ दाब लगभग १०१५ मिलीबार होता है। एशिया के उत्तरी भाग में स्थित आर्कटिक महासागर पर भी उच्च दाब क्षेत्र स्थापित हो जाता है।

वायु की दशाएँ—ग्रीष्म ऋतु में ऊँचे तापमान एवं भीषण गर्मी के कारण उत्पन्न मध्य एशिया एवं दक्षिणी-पश्चिमी ऐशिया के निम्न भार वाले क्षेत्रों से पवनें गर्म एवं हल्की होकर ऊपर की ओर उठने लगती हैं। इनकी पूर्ति के लिए उच्च दाब वाले क्षेत्रों से पवनें चलना प्रारम्भ हो जाती हैं। इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में महाद्वीपीय स्थल के निम्न दाब केन्द्रों की ओर सामुद्रिक उच्च दाब केन्द्रों से पवनें चलना प्रारम्भ होती हैं। इस समय दो पवनें बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं। प्रथम दक्षिणी एशिया से चलने वाली पवन जिसे दक्षिणी-पश्चिमी मानसून कहते हैं। यह सामान्यतया हिन्द महासागर की ओर से चलती है। दूसरी पूर्वी एशिया से चलने वाली पवन जिसे दक्षिणी-पूर्वी मानसून कहते हैं। यह सामान्यतया प्रशान्त महासागर की ओर से चलती है, चूँकि ये पवनें मौसम के अनुसार चलती हैं इसलिए इन्हे मानसूनी पवनें कहते हैं।

वर्षा एवं ग्रीष्मकालीन मानसून—जैसा कि हम ग्रीष्म ऋतु की वायु की दिशा के अन्तर्गत अध्ययन कर चुके हैं कि इस ऋतु में चलने वाली पवनों की दिशाएँ जल से थल अथवा समुद्र से महाद्वीप की ओर होती हैं, अतएव ये पवनें जल से भरी होती हैं। ये ग्रीष्मकालीन मानसून जब समुद्र को पार करके एशिया महाद्वीप में प्रवेश करते हैं तो वर्षा आरम्भ कर देते हैं। इस समय एशिया महाद्वीप का अधिकांश भाग वर्षा प्राप्त करता है। एशिया महाद्वीप में कुल होने वाली वर्षा का लगभग ८५% भाग इन्हीं मानसूनी पवनों के द्वारा होता है। एशिया में प्रवेश करने के बाद ये मानसून उच्च पर्वत श्रेणियों से टकराकर अधिक वर्षा करते हैं। इसमे एशिया का कुछ पर्वतीय भाग ऐसा है, जो अत्यधिक वर्षा प्राप्त करता है। भारत के असम के पर्वतीय भागों में स्थित चेरापूँजी ससार की सबसे अधिक वर्षा प्राप्त करता है जहाँ ग्रीष्मकालीन मानसून द्वारा होने वाली वर्षा का औसत १,००० सेण्टीमीटर से भी अधिक है। दक्षिणी-पूर्वी चीन, हिन्दचीन, मलयेशिया, इन्डोनेशिया, थाईलैण्ड, बर्मा तथा भारत का पश्चिमी घाट, बंगाल एवं असम प्रान्त सामान्यतया २०० सेण्टीमीटर से अधिक वर्षा प्राप्त करते हैं। एशिया का यह भाग ग्रीष्मकालीन उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों द्वारा भी वर्षा प्राप्त करता है। ये चक्रवात तूफान के रूप में आते हैं और घनघोर वर्षा करते हैं। दक्षिणी-पूर्वी एशिया का समुद्र तटीय भाग इन चक्रवातों से ग्रीष्म एवं पतझड़ ऋतुओं में वर्षा प्राप्त करता है। चीन के दक्षिणी-पूर्वी तट पर टाइफून नामक चक्रवात की प्रधानता रहती है जो संसार के शक्तिशाली चक्रवातों में से एक है।

एशिया के मध्य भाग में स्थित उच्च श्रेणियाँ इन आर्द्र पवनों को रोक

देती है। इसलिए एशिया का मध्य एवं दक्षिणी-पश्चिमी भाग वर्षा से वंचित रह जाता है और यहाँ वर्षा की मात्रा २५ सेण्टीमीटर से भी कम रह जाती है।

चित्र—१४

२. शीत ऋतु की दशाएँ
(WINTER CONDITIONS)

तापमान—एशिया महाद्वीप में सामान्यतया शीत ऋतु अक्टूबर माह से प्रारम्भ होती है क्योंकि सितम्बर माह के पश्चात् सूर्य की किरणें मकर रेखा की ओर बढ़ना प्रारम्भ हो जाती हैं। दिसम्बर माह में सूर्य की किरणें मकर रेखा पर लम्ब रूप पड़ती हैं। इससे एशिया महाद्वीप का उत्तरी एवं मध्य भाग सूर्य की किरणों से लगभग वंचित हो जाता है जिसके फलस्वरूप एशिया के यह भाग अत्यधिक ठण्डे हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त एशिया की मध्यवर्ती उच्च पर्वत श्रेणियों के कारण समुद्री पवनें इस भाग तक नहीं पहुँचने पातीं। उत्तरी ध्रुव से चलने वाली ठण्डी एवं बर्फीली पवनें एशिया के इस उत्तरी एवं मध्य भाग को और ठण्डा कर देती हैं जिससे इन भागों का तापमान और भी गिर जाता है। जनवरी माह में ०° सेण्टीग्रेड की समताप रेखा अनातोलिया पठार के उत्तरी भाग से लेकर ईराक होती हुई हिमालय पर्वत श्रेणियों के सहारे-

सहारे गुजरती हुई चीन के मध्य भाग मे होती हुई जापान के उत्तरी भाग तक चली जाती है। इस समय इस रेखा के उत्तर में स्थित एशिया का समस्त भूखण्ड बहुत ठण्डा हो जाता है और तापमान हिमांक बिन्दु से नीचे गिर जाता है। साइबेरिया के उत्तरी भाग मे —५०° सेण्टीग्रेड की समताप रेखा गुजरती है। दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया मे इस समय तापमान सबसे अधिक होता है क्योंकि यह भाग भूमध्य

चित्र—१५

रेखा के निकट है। २७° सेण्टीग्रेड की समताप रेखा श्रीलंका तथा पूर्वी द्वीपसमूह मे होकर गुजरती है। पर्वतीय भागों पर ऊँचाई के साथ-साथ तापमान कम होता जाता है। मध्य साइबेरिया तथा तिब्बत के पठार का तापमान बहुत गिर जाता है और इन पठारों के ऊँचे भागो पर बर्फ जम जाती है।

वायु दाब—शीत ऋतु के प्रारम्भ होने ही एशिया महाद्वीप मे तापमान गिरना प्रारम्भ हो जाता है जिसके फलस्वरूप मध्य एशिया के निम्न दाब क्षेत्र धीरे-धीरे उच्च भार क्षेत्रों के रूप में परिवर्तित होना प्रारम्भ हो जाते हैं। जनवरी माह मे जब

एशिया में अत्यधिक कठोर सर्दी पड़ती है तो एशिया का मध्य भाग उच्च दाब क्षेत्र का केन्द्र बन जाता है जहाँ सबसे अधिक उच्च दाब लगभग १०३६ मिलीबार पाया जाता है। इसकी सममार रेखाओं की बनावट अण्डाकार होती है जिसके बाहर के भाग में क्रमशः वायु दाब कम होता जाता है। इससे एशिया महाद्वीप के इस मध्य भाग में प्रतिचक्रवातों की उत्पत्ति होती है। ठीक इसी समय हिन्द महासागर पर निम्न दाब क्षेत्र स्थापित हो जाता है। जहाँ वायु दाब लगभग १०१२ मिलीबार होता है।

वायु की दिशाएँ—शीत ऋतु में कठोर सर्दी एवं निम्न तापमान होने के कारण एशिया के मध्य भाग में मंगोलिया के पास गोबी के मरुस्थल के ऊपर ठण्डी

चित्र—१६

उच्च वायु भार की पवनों का समूह केन्द्रीभूत हो जाता है[1] जिसके फलस्वरूप इस उच्च दाब केन्द्र से समुद्री निम्न दाब केन्द्र की ओर पवनें चलना प्रारम्भ हो जाती

[1] "Low temperature of Asia in winter intensifies the sub-tropical high pressures and causes them to extend for north over the continent, and form a great *cushion of heavy air centred over the Gobi Desert*"
—W. G. Kendrew, *The Climates of the Continents*, Oxford, 1922, p. 89.

हैं। इन पवनों की दिशाएँ थल से जल की ओर अथवा महाद्वीपीय स्थल खण्ड से समुद्रों की ओर होती हैं। चूंकि ये पवनें स्थल से चलती हैं इसलिए अत्यन्त ठण्डी होती हैं। इन पवनों में नमी की कमी के कारण शुष्कता होती है। अत्यन्त ठण्डी एवं शुष्क होने के कारण जहाँ भी ये हवाएँ प्रवेश करती हैं तापमान को गिरा देती हैं और उन भागों में बर्फ जाती है। मध्यवर्ती उच्च पर्वत श्रेणियों को ये पवनें पार नहीं करने पाती हैं इसलिए भारत तथा पाकिस्तान में तापमान इतने नहीं गिरने पाते हैं जितने चीन में गिर जाते हैं। सामान्यतया यह शरदकालीन मानसून पवनें दो दिशाओं में चलती हैं जिन्हें उत्तरी-पश्चिमी मानसून तथा उत्तरी-पूर्वी मानसून के नाम से पुकारते हैं।

वर्षा एवं शरदकालीन मानसून—जैसा कि हम शीत ऋतु की वायु की दिशाओं के अन्तर्गत अध्ययन कर चुके हैं कि इस ऋतु में पवनें ठण्डी एवं सामान्य

चित्र—१७

रूप से स्थल से जल की ओर चलती हैं इसलिए ये शरदकालीन मानसूनी पवनें ठण्डी एवं शुष्क हो जाती हैं अतः इन पवनों द्वारा वर्षा प्राप्त होने की कोई सम्भावनाएँ

नहीं होती हैं और यही कारण है कि एशिया का अधिकांश भाग इस ऋतु में शुष्क रह जाता है। इस ऋतु में एशिया महाद्वीप में बहुत कम वर्षा होती है। ये शुष्क पवनें समुद्र को पार करके कुछ नमी ग्रहण कर लेती हैं और जब पुनः स्थल खण्ड में प्रवेश करती हैं तो समुद्र तटीय भागों पर वर्षा कर देती हैं। इस प्रकार दक्षिणी चीन तट, जापान तट, हिन्दचीन तट, फिलीपाइन द्वीपसमूह, श्रीलंका तथा भारत का दक्षिणी-पूर्वी तट (मद्रास तट) में कुछ वर्षा हो जाती है जिसका औसत लगभग ७५ सेण्टीमीटर होता है। कुछ वर्षा शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के द्वारा इजराइल, लेबनान, टर्की, सीरिया तथा जोर्डन में भी हो जाती है जिसका औसत लगभग ५० सेण्टीमीटर है। इन चक्रवातों की उत्पत्ति भूमध्य सागर में होती है। इसी ऋतु में उत्तरी-पश्चिमी साइबेरिया का कुछ भाग पछुआ पवनों की पेटी में उत्पन्न चक्रवातों द्वारा बर्फ के रूप में वर्षा प्राप्त करता है। इन सभी उपर्युक्त भागों के अलावा एशिया का समस्त स्थल भाग शुष्क एवं वर्षा से वंचित रहता है।

एशिया के जलवायु विभाग
(CLIMATIC REGIONS OF ASIA)

एशिया महाद्वीप की जलवायु में चार तत्त्वों का प्रधान रूप से प्रभाव देखने को मिलता है :

(१) एशिया महाद्वीप की विशालताओं का प्रभाव,

(२) एशिया महाद्वीप के मध्य में उठी पर्वत श्रेणियों का प्रभाव,

(३) ग्रीष्मकालीन मानसून का प्रभाव,

(४) शीतकालीन मानसून का प्रभाव।

उपर्युक्त प्रभावों के कारण ही एशिया महाद्वीप के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु दशाएँ मिलती हैं जिसके फलस्वरूप संसार की लगभग प्रत्येक प्रकार की जलवायु इस महाद्वीप में पायी जाती है।

एशिया महाद्वीप के जलवायु विभागों का वर्गीकरण अनेक भूगर्भशास्त्रियों द्वारा दिया गया है, इनमें से कुछ मान्य वर्गीकरण निम्न हैं :

(१) ब्लाडिमिर कोपेन का वर्गीकरण,

(२) सी० वारेन थार्नथ्वेट का वर्गीकरण,

(३) एल० डब्ल्यू० लायड का वर्गीकरण,

(४) एल० डडले स्टाम्प का वर्गीकरण,

(५) सामान्य वर्गीकरण।

कोपेन का वर्गीकरण

कोपेन ने एशिया महाद्वीप को मूल रूप से पाँच वृहद् क्षेत्रों में बाँटा है। ये क्षेत्र निम्न हैं :

(१) उष्ण आर्द्र जलवायु क्षेत्र (Tropical Rainy Climates with no Winter) ;

(२) शुष्क जलवायु क्षेत्र (Climates),
(३) उष्ण-शीतोष्ण आर्द्र जलवायु क्षेत्र (Warm Temperate Rainy Climates with Mild Winters),
(४) उपध्रुवीय जलवायु क्षेत्र (Sub-arctic Climates),
(५) ध्रुवीय जलवायु क्षेत्र (Polar Climates)।

चित्र—१८

कोपेन ने अपने उपर्युक्त वर्गीकरण में तापमान के वितरण तथा वर्षा प्राप्त करने के समय को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए इन वृहत पाँचो क्षेत्रों को अनेक उप-भागों में बाँटा है।

थार्नथ्वेट का वर्गीकरण

थार्नथ्वेट ने अपने जलवायु विभागों के वर्गीकरण में मुख्य रूप से दो तत्वों को आधार माना है: वर्षा तथा तापमान। विश्व के जलवायु विभागों का वर्णन करते हुए थार्नथ्वेट ने विश्व को ३२ जलवायु विभागों में बाँटा है। इस प्रकार की जलवायु में

से एशिया महाद्वीप में २१ प्रकार की जलवायु मिलती है। इसी आधार पर एशिया महाद्वीप को थार्नथ्वेट ने २१ जलवायु विभागों में बाँटा है जो निम्न हैं :

(१) AA'r भूमध्य रेखिक वन प्रदेश।

(२) AB'r क्यूशू का अंश।

(३) AC'r मुख्य जापान का पूर्वी भाग तथा व्लाडीवोस्टक से उत्तर का एशियाई तट।

(४) BA'w दक्षिणी पूर्वी एशिया के मानसून वन तथा ब्रह्मा, श्रीलंका व जावा।

चित्र—१६

(५) BB'r पूर्वी द्वीपसमूह, जावा व कोरिया के भीतरी भाग।

(६) BB'w दक्षिणी चीन असम तथा फारमोसा।

(७) BC'r होकैडो तथा सखालीन।

(८) CA'w दक्कन प्रायद्वीपीय तथा इण्डोचीन का भीतरी भाग।

(९) CB'w वर्मा का शुष्क भाग तथा हिमालय के ढाल।

(१०) CB'd एशिया माइनर तट, दक्षिणी-पश्चिमी अरब ।
(११) CC'd स्टेपी तथा मंचूरिया ।
(१२) DA'w थार की मरुभूमि का अंश ।
(१३) DA'd अरब का पश्चिमी तट ।
(१४) DB'w पंजाब का प्रदेश ।
(१५) DB'd अनातोलिया, ईरान, सीरिया तथा फिलिस्तीन ।
(१६) DC'd मध्य मचूरिया तथा एशिया ।
(१७) EA'd अरब और थार मरुभूमि के अंश ।
(१८) EB'd तूरान का अंश, तारिम बेसिन, ईरान का रेगिस्तानी भाग, सिन्धु घाटी ।
(१९) FC'd गोबी की मरुभूमि तथा उत्तरी तूरान ।
(२०) C' टैगा के कोणधारी वन ।
(२१) E' टुण्ड्रा प्रदेश तथा तिब्बत ।

लायड का वर्गीकरण

लायड महोदय ने जलवायु के तत्त्वों को ध्यान में रखते हुए एशिया महाद्वीप

चित्र—२०

के जलवायु विभागों का वर्गीकरण बहुत साधारण एवं सरल रूप से प्रस्तुत किया है। लायड ने एशिया को निम्नलिखित १२ जलवायु प्रदेशों में बाँटा है :

(१) टुण्ड्रा प्रदेश, (२) ओबे प्रदेश,
(३) लीना प्रदेश, (४) कमचटका प्रदेश,
(५) शीतोष्ण मानसूनी प्रदेश (६) ऊष्ण मानसूनी प्रदेश,
(७) भूमध्य रेखीय प्रदेश, (८) तिब्बत-गोबी प्रदेश,
(९) ईरान-सिन्धु प्रदेश, (१०) अरल-कैस्पियन प्रदेश,
(११) रूम सागरीय प्रदेश, (१२) व्यापारिक वायु क्षेत्रीय मरु प्रदेश।

स्टाम्प का वर्गीकरण

स्टाम्प महोदय के अनुसार एशिया महाद्वीप की विशालता के कारण यहाँ

चित्र—२१

अनेक प्रकार की जलवायु पायी जाती है। उन्होंने एशिया महाद्वीप को १० प्रमुख जलवायु विभागों में बाँटा है :

(१) भूमध्य रेखीय जलवायु ।
(२) उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु ।
(३) चीन तुल्य जलवायु अथवा गर्म शीतोष्ण पूर्वी तटीय जलवायु ।
(४) मन्चूरिया तुल्य जलवायु अथवा शीत-शीतोष्ण पूर्वी तटीय जलवायु :
(५) उष्ण मरुस्थलीय जलवायु ।
(६) मध्य अक्षांश मरुस्थलीय जलवायु ।
(७) भूमध्य सागरीय जलवायु ।
(८) मध्य अक्षांशीय महाद्वीपीय अथवा मध्य अक्षांशीय घास के मैदान तुल्य जलवायु ।
(९) शीत-शीतोष्ण जलवायु अथवा उत्तरी कोणधारी वनों की जलवायु ।
(१०) आर्कटिक मरुस्थलीय जलवायु अथवा टुण्ड्रा तुल्य जलवायु ।

सामान्य वर्गीकरण

उपर्युक्त जलवायु के वर्गीकरणों को ध्यान में रखते हुए एवं एशिया महाद्वीप की जलवायु की दशाओं का विस्तार में अध्ययन करते हुए हम एशिया महाद्वीप को

चित्र—२२

सामान्य रूप से निम्न वर्णित जलवायु विभागों में बांट सकते हैं जो कि एशिया महाद्वीप के प्राकृतिक विभाग भी होते हैं।

(अ) उष्ण कटिबन्धीय जलवायु

(१) भूमध्य रेखीय जलवायु,
(२) मानसूनी जलवायु,
(३) उष्ण मरुस्थलीय जलवायु ।

(ब) गर्म शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु

(४) भूमध्य सागरीय जलवायु,
(५) ईरान तुल्य जलवायु,
(६) तूरान तुल्य प्रदेश,
(७) चीन तुल्य जलवायु ।

(स) शीत शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु

(८) मचूरिया तुल्य जलवायु,
(९) तिब्बत तुल्य जलवायु,
(१०) अल्टाई तुल्य प्रदेश,
(११) प्रेयरी तुल्य प्रदेश ।

(द) शीत कटिबन्धीय जलवायु

(१२) टैगा तुल्य प्रदेश,
(१३) टुण्ड्रा तुल्य जलवायु ।

(१) भूमध्य रेखीय जलवायु—यह जलवायु भूमध्य रेखा के ५° उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों के मध्य स्थित पूर्वी द्वीपसमूह, श्रीलंका तथा मलाया प्रायद्वीप में पायी जाती है । इस जलवायु की सबसे बड़ी विशेषता वर्ष भर प्रचुर वर्षा एवं उच्च तापमान है । यह प्रदेश उत्तरी-पूर्वी तथा दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक आर्द्र हवाओं के मार्ग में पड़ता है इसलिए यहाँ वर्ष भर वर्षा होती है । वर्षा प्राय. रोजाना सायंकाल को होती है । वर्षा में बड़ा घनघोर तथा मूसलाधार पानी पड़ता है । इसे संवाहनीय वर्षा (convectional rain) कहते हैं । वर्षा का वार्षिक औसत २०० सेमी० से अधिक है । तापमान वर्ष भर लगभग एकसा रहता है । औसत तापमान लगभग २६° सेग्रे० रहता है । दैनिक अधिक से अधिक तापमान ३१° सेग्रे० तथा कम से कम २५° सेग्रे० रहता है । दैनिक तापपरिसर केवल ३° से ६° सेग्रे० होता है ।

(२) मानसूनी जलवायु—इस प्रकार की जलवायु के अन्तर्गत भारतवर्ष, पाकिस्तान, बंगला देश, बर्मा, हिन्दचीन, दक्षिणी चीन, जापान तथा फिलीपाइन द्वीपसमूह सम्मिलित हैं । चूंकि इन भागों में पवनें मौसम के अनुसार चलती हैं, इसलिए इस प्रकार की जलवायु को मानसूनी जलवायु कहते हैं । इस जलवायु में गर्मी तथा सर्दी की दशाएँ प्रमुख होती हैं । गर्मी की ऋतु में भीषण गर्मी पड़ती है और मैदानी भागों में तापमान ४०° सेग्रे० के लगभग मिलता है । समुद्र तटीय भागों में तापमान २६° सेग्रे० के लगभग होता है । सर्दी की ऋतु में कठोर सर्दी पड़ती है और उत्तरी

भागों में तापमान १०° सेग्रे० रहता है तथा दक्षिणी एवं तटवर्तीय भागों का तापमान लगभग २३° सेग्रे० होता है। वर्षा गर्मियों में अधिक होती है क्योंकि इस ऋतु में पवनें जल से थल की ओर चलती हैं। इन प्रदेशों में वर्षा की मात्रा भिन्न-भिन्न है और यह धरातल की बनावट पर निर्भर करती है। दक्षिणी-पूर्वी चीन तट, भारत के पश्चिमी घाट तथा असम पहाड़ियों पर वर्षा का औसत ५०० सेमी० से अधिक है जबकि उत्तरी पश्चिमी भारत में केवल २५ सेमी० वर्षा होती है।

(३) उष्ण मरुस्थलीय जलवायु—इस प्रकार की जलवायु एशिया महाद्वीप के दक्षिणी-पश्चिमी भाग, अरब, सीरिया, पश्चिमी ईराक तथा भारत के थार मरुस्थल में पायी जाती है। इस जलवायु की विशेषता उच्च तापमान तथा अत्यन्त विषमता एवं शुष्कता है। गर्मियों में सामान्य रूप से तापमान ५०° सेग्रे० के लगभग रहता है जबकि सर्दियों का तापमान १५° सेग्रे० के लगभग रहता है। इस प्रकार की जलवायु में दैनिक तापपरिसर भी बहुत अधिक मिलता है जो लगभग २०° सेग्रे० तक पहुँच जाता है। इस जलवायु में गर्मियों में दिन गर्म, धूल भरी आँधियाँ एवं चमकदार धूप पड़ती है जबकि रात्रि में आकाश स्वच्छ हो जाता है और रातें ठण्डी हो जाती हैं क्योंकि रात्रि में तापमान गिर जाता है। सर्दियों में रात्रि में तापमान हिम बिन्दु तक पहुँच जाता है और कहीं-कहीं बर्फ भी जम जाती है।

(४) भूमध्य सागरीय जलवायु—इस प्रकार की जलवायु भूमध्य सागर के निकट साइप्रस, जोर्डन, इजराइल, लेबनान टर्की तथा सीरिया के कुछ भागों में पायी जाती है। इस प्रकार की जलवायु की सबसे बड़ी विशेषता गर्मियों में बहुत गर्मी, स्वच्छ आकाश तथा सर्दियों में वर्षा है। गर्मियों में औसतन तापमान लगभग २४° सेग्रे० तथा सर्दियों में लगभग ८° सेग्रे० रहता है। वर्षा गर्मी में बहुत कम होती है और प्रायः सारी वर्षा सर्दियों में होती है। वर्षा का वार्षिक औसत ५० सेमी० से ७५ सेमी० है। वर्षा जाड़े की ऋतु में पछुआ पवनों के साथ आने वाले चक्रवातों द्वारा होती है।

(५) ईरान तुल्य जलवायु—यह जलवायु मुख्य रूप से ईरान, पूर्वी ईराक तथा अफगानिस्तान में पायी जाती है। इस जलवायु की विशेषता यह है कि गर्मी खूब तेज पड़ती है और सर्दी में तापमान हिम बिन्दु से भी नीचे गिर जाता है। रात्रि में ओस पड़ती है तथा कोहरा भी पड़ता है। गर्मियों में तापमान ४५° सेग्रे० तक पहुँच जाता है, धूप तेज पड़ती है, आकाश स्वच्छ रहता है। सर्दियों में कड़ी ठण्ड पड़ती है और तापमान ०° सेग्रे० से भी कम हो जाता है। वर्षा यहाँ सर्दियों में ही होती है। वर्षा का वार्षिक औसत २५ सेमी० के लगभग है। वर्षा का अधिकांश भाग बर्फ के रूप में पड़ता है। वर्षा की कमी के कारण इस जलवायु के प्रदेश शुष्क रह जाते हैं।

(६) तूरान तुल्य जलवायु—इस प्रकार की जलवायु एशिया के आन्तरिक भागों में मिलती है। मध्य एशिया का पश्चिमी भाग समुद्र से दूर होने के कारण समुद्र

के समकारी प्रभावों से वंचित रह जाता है अतः अत्यधिक महाद्वीपीयता के कारण इस भाग की जलवायु स्थलीय जलवायु है जिसकी प्रमुख विशेषता गर्म एवं भीषण गर्मियाँ, कड़ी सर्दियाँ तथा वर्षा की न्यूनता है। ग्रीष्म ऋतु बड़ी गर्म होती है और तापमान लगभग ४०° सेग्रे० मिलता है। सर्दियों में प्रायः सभी भागों मे तापमान हिम बिन्दु से नीचे गिर जाता है और बर्फ जम जाती है। वर्षा प्रायः यहाँ नहीं के बराबर होती है। सर्दियाँ पूर्ण शुष्क भी हो जाती हैं। जो कुछ वर्षा होती है वह केवल गर्मियों में होती है जिसका औसत २० सेमी० से कम है।

(७) चीन तुल्य जलवायु—इस प्रकार की जलवायु मध्य एवं उत्तरी चीन, दक्षिणी कोरिया तथा जापान द्वीपसमूह में पायी जाती है। इस जलवायु की मुख्य विशेषता गर्मियों में जल-वृष्टि, कठोर सर्दियाँ तथा चक्रवातों की प्रधानता है। गर्मियों में यहाँ पर्याप्त गर्मी पड़ती और तापमान २६° सेग्रे० के आसपास मिलता है। सर्दियों मे यहाँ कठोर सर्दियाँ पड़ती हैं और मध्य एशिया से आने वाली ठण्डी, बर्फीली और शुष्क पवनो के कारण तापमान बहुत गिर जाता है और बर्फ जम जाती है। तापमान ०° सेग्रे० से भी नीचे मिलता है। वर्षा यहाँ प्रधान रूप से गर्मियों मे होती है। गर्मियों में समुद्र से चलने वाली पवनें घनघोर वर्षा करती हैं। तटवर्ती एवं पहाड़ी भाग सबसे अधिक वर्षा प्राप्त करते हैं। वर्षा का वार्षिक औसत लगभग १०० सेमी० है। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों, जिनमें टायफून (Typhoon) प्रमुख है, का प्रभाव अधिक रहता है। इन चक्रवातो से पर्याप्त मात्रा मे वर्षा हो जाती है।

(८) मंचूरिया तुल्य जलवायु—इस प्रकार की जलवायु मंचूरिया, उत्तरी कोरिया, सखालिन तथा उत्तरी जापान मे पायी जाती है। इस प्रकार की जलवायु की विशेषता साधारण गर्मी कठोर, शीत तथा वार्षिक तापपरिसर की अधिकता है। इन प्रदेशों में उत्तर की ओर से आने वाली ठण्डी बर्फीली तथा ध्रुवीय पवनों से तापपरिसर एक दम गिर जाता है और सर्दियों में बर्फ जम जाती है। गर्मियो मे साधारण गर्मियाँ पड़ती हैं और तापमान २२° सेग्रे० मिलता है। वार्षिक तापपरिसर अधिक मिलता है जो लगभग ४०° सेग्रे० तक होता है। वर्षा जाड़ों की अपेक्षा गर्मियों में अधिक होती है। कुछ वर्षा सर्दी की ऋतु मे चक्रवातो द्वारा भी हो जाती है। वर्षा का वार्षिक औसत लगभग ३५ सेमी० है।

(९) तिब्बत तुल्य जलवायु—इस प्रकार की जलवायु एशिया महाद्वीप मे तिब्बत तथा पामीर के पठार पर मिलती है। इस जलवायु की विशेषता गर्म एवं छोटी गर्मी की ऋतु, कठोर सर्दियाँ तथा दैनिक तापपरिसर की अधिकता है। तिब्बत तथा पामीर दोनो ही पठार समुद्र तल से ३,५०० मीटर से अधिक ऊँचे हैं और चारो ओर से ऊँची पर्वत श्रेणियो से घिरे हुए हैं। इसलिए यहाँ जलवायु में विषमता मिलती है। ग्रीष्म ऋतु छोटी होती है और इस ऋतु मे तापमान लगभग २०° सेग्रे० मिलता है। सर्दियाँ कठोर पड़ती हैं और इस ऋतु मे तापमान २०° सेग्रे० तक हो जाता है। पर्वत शिखरों तथा आस-पास की घाटियों आदि सभी भागों में बर्फ जम जाती

है। सर्दियों में पाला पड़ता है। दैनिक तापपरिसर बहुत अधिक मिलता है। वर्षा गर्मियों में अधिक होती है। सर्दियों में वर्षा बर्फ के रूप में होती है। वर्षा का औसत ५० से ७५ सेमी० है।

(१०) अल्टाई तुल्य जलवायु—एशिया महाद्वीप के मध्य भाग में अल्टाई पर्वत श्रेणी के आस-पास के भागों में इस प्रकार की जलवायु मिलती है। इस जलवायु की मुख्य विशेषता सामान्य गर्मियाँ, कड़ी एवं लम्बी सर्दियाँ तथा तापमान की कमी है। गर्मियाँ बहुत साधारण और छोटी होती हैं। गर्मियों का तापमान केवल १०° सेंग्रे० है। सर्दियाँ बड़ी कठोर एवं लम्बी होती हैं, अत्यन्त शीतल एवं बर्फीली पवनें चलती हैं जो तापमान को बहुत गिरा देती हैं। सर्दियों में —२५° सेंग्रे० तापमान मिलता है। तापपरिसर भी अधिक मिलता है। ऊँचाई के साथ-साथ तापपरिसर भी बढ़ता जाता है। वर्षा जल तथा बर्फ दोनों ही रूपों में होती है। वर्षा गर्मियों में अधिक होती है। वर्षा का वार्षिक औसत लगभग १०० सेमी० है।

(११) स्टैपी तुल्य जलवायु—इस प्रकार की जलवायु महाद्वीप के पश्चिमी साइबेरिया तथा मंगोलिया के घास के मैदान में मिलती है। इस जलवायु की विशेषता गर्मियों में साधारण गर्मी तथा सर्दियों में कड़ाके की सर्दी है। गर्मी की ऋतु में गर्मी पड़ती है और तापमान लगभग २४° सेंग्रे० तक मिलता है। सर्दी की ऋतु में कठोर ठण्ड पड़ती है और तापमान हिमांक से भी नीचे पहुँच जाता है। बर्फीली तीव्र एवं ठण्डी पवनें चलती रहती हैं। वर्षा गर्मी एवं बसन्त ऋतु में होती है जिसका औसत २५ से ५० सेमी० है। वर्षा एवं गर्मियों में पिघलने वाली बर्फ से कुछ घास उग आती है जिसे स्टैपी घास के नाम से पुकारते हैं।

(१२) टैगा तुल्य जलवायु—एशिया के अत्यन्त ठण्डे प्रदेश साइबेरिया के उत्तरी भाग अथवा कोणधारी वन प्रदेशों में पाये जाते हैं। इस जलवायु की प्रमुख विशेषता वर्ष में नौ माह सर्दियाँ तथा केवल तीन माह गर्मियों के होते हैं। गर्मियाँ केवल नाममात्र की छोटे समय की होती हैं जिसमें लगभग ५° सेंग्रे० तापमान मिलता है। सर्दियाँ बड़ी कठोर और बहुत लम्बी होती हैं। चारों ओर बर्फ ही बर्फ दिखायी देती है। तापमान -५० सेंग्रे० तक पहुँच जाता है। विश्व का सबसे ठण्डा प्रदेश वर्खोयान्स्क इसी जलवायु प्रदेश में सम्मिलित है। वर्षा सर्दियों में बर्फ के रूप में होती है। कुछ वर्षा गर्मियों में भी हो जाती है। वर्षा का वार्षिक औसत ५० सेमी० है।

(१३) टुण्ड्रा तुल्य जलवायु—संसार का ठण्डा उत्तरी 'शीत मरुस्थल' एशिया महाद्वीप के उत्तर में आर्कटिक महासागर के किनारे-किनारे एक पतली पेटी में पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ है। इस उत्तरी ध्रुवीय टुण्ड्रा जलवायु की प्रमुख विशेषता वर्ष में नौ से दस माह की सर्दियाँ और दो माह की गर्मियाँ हैं। सर्दियों में कठोर ठण्ड पड़ती है। उत्तरी ध्रुवीय सागर अथवा आर्कटिक महासागर के बर्फ से जमा होने के कारण अत्यन्त ठण्डी एवं बर्फीली पवनें इन भागों के तापमान को बहुत गिरा देती हैं।

सर्दियों में चारों ओर बर्फ के टीले दिखायी देते हैं। तापमान —५०° सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। गर्मियों में कुछ दिन के लिए मौसम खुलता है और तापमान ५° से १०° सेण्टीग्रेड तक मिलता है। वर्षा गर्मी की ऋतु में अधिक होती है। सर्दियों में वर्षा बर्फ के रूप में पड़ती है। वर्षा का वार्षिक औसत २५ सेण्टीमीटर है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. एशिया की जलवायु पर मानसूनों के पड़ने वाले प्रभाव का विस्तार से वर्णन करिए।
२. एशिया की शरद् ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु की दशाओं का वर्णन करिए।
३. एशिया की जलवायु का एशिया निवासियों के आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? स्पष्ट करिए।
४. एशिया को जलवायु विभागों में बाँटते हुए किसी एक का विस्तार में वर्णन करिए।

6

एशिया—प्राकृतिक वनस्पति
(ASIA—NATURAL VEGETATION)

प्राकृतिक वनस्पति किसी महाद्वीप अथवा देश को प्रकृति की ओर से दिया गया एक बहुमूल्य उपहार है। इसीलिए प्राकृतिक वनस्पति का अध्ययन भौगोलिक दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। सामान्य रूप से किसी प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पति उस प्रदेश की जलवायु की दशाओं पर निर्भर होती है। एशिया महाद्वीप में मिलने वाली विभिन्न प्रकार की जलवायु की दशाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति को जन्म देती हैं। डॉ० स्टाम्प के शब्दों में, "एशिया में मिलने वाले प्रमुख जलवायु विभाग एक अपने ही प्रकार की वनस्पति को जन्म देते हैं।"[1]

जलवायु के प्रभाव के अतिरिक्त किसी प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पति में विभिन्नताओं का मिलना उस प्रदेश की मिट्टी एवं धरातल की बनावट पर भी कुछ अंश तक निर्भर करता है। यही कारण है कि एशिया में अनेक प्रकार की जलवायु एवं धरातल की बनावट में मिलने वाली विभिन्नताओं के कारण यहाँ अनेक प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। सामान्य रूप से एशिया की प्राकृतिक वनस्पति को तीन भागों में बाँटा गया है :

१. वन; २. घास के मैदान, ३. मरुस्थलीय वनस्पति।

१. वन
(FORESTS)

वनों के अन्तर्गत एशिया के धरातल पर स्वतन्त्र रूप से प्रकृति की ओर से उगने वाले वृक्ष आते हैं। इन वन वृक्षों में मिलने वाला आकार-प्रकार, रंग-रूप, सघनता-विरलता, आदि एशिया के भिन्न-भिन्न भागों में मिलने वाली जलवायु एवं धरातल की विभिन्न दशाओं पर आधारित है। विविधता के आधार पर एशिया में अग्रांकित प्रकार के वन पाये जाते हैं :

[1] "Broadly speaking the major climatic divisions have each their dominant type of vegetation."
—L. Dudley Stamp, *Asia—Regional and Economic Geography*, p. 14.

(१) भूमध्य रेखीय सदाबहार वन—भूमध्य रेखा के समीप स्थित प्रदेशो में (जिसमे हिन्देशिया, मलयेशिया, फिलीपाइन, दक्षिणी-पूर्वी भारत, श्रीलंका, आदि सम्मिलित हैं) इस प्रकार के घने सदाबहार वन पाये जाते हैं। इन वनों में कठोर लकड़ी के ६० मीटर से लेकर १०० मीटर ऊँचाई तक के अनेक प्रकार के वृक्ष मिलते हैं जिनके बीच की दूरी में तरह-तरह के रंग-बिरंगे पौधे, बेलें एवं दलदल दौरा पड़ते हैं। ये वृक्ष वर्ष भर हरे-भरे रहते हैं और विभिन्न प्रकार की लताएँ इन वृक्षों के तनो से चिपटी रहती हैं। इन वनों के मुख्य वृक्ष महगोनी, गटापार्चा, नारियल, रबड़, ताड़, बाँस, बेंत, सिनकोना, रोजवुड, आदि है। यातायात के साधनों की कमी, जीवन की निश्चितता का अभाव एवं जलवायु की विषमताओं के कारण इन वनो का कोई प्रयोग नहीं होने पाया है इसलिए इनका आर्थिक दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है।

(२) उष्ण मानसूनी वन—इस प्रकार के वन उष्ण मानसूनी जलवायु प्रदेशों में (जिसमें भारत, पाकिस्तान, बर्मा, थाईलैण्ड, दक्षिणी चीन, आदि सम्मिलित है) पाये जाते हैं। इस प्रकार के वनों में मिलने वाली प्राकृतिक वनस्पति वर्षा की मात्रा के वितरण पर निर्भर करती है। सामान्य रूप से जिन भागो में वर्षा का औसत २०० सेण्टीमीटर से अधिक है वहाँ सदाबहार मानसूनी वन मिलते हैं जिनमे प्रमुख वृक्ष सागवान, सिनकोना, महोगनी, रबड़, बाँस, नारियल, आदि हैं। जिन भागो मे वर्षा का औसत १०० से २०० सेण्टीमीटर है वहाँ चौडी पत्ती वाले मानसूनी पतझड़ वन मिलते हैं जो वर्ष में एक बार गर्मी की ऋतु के आरम्भ होने से पूर्व अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं। इस वन के प्रमुख वृक्ष साल, सागौन, शीशम, आम, जामुन, नीम, पलाश, इमली, इत्यादि हैं। जिन भागो में वर्षा का औसत ५० से १०० सेण्टीमीटर है वहाँ उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदान, कृषि क्षेत्र अथवा झाड़ी वन पाये जाते हैं। इन झाड़ी वनों में मुख्य वृक्ष करील, कीकर, खेजड़ा, बबूल, आदि हैं। जिन भागो मे वर्षा का औसत ५० सेण्टीमीटर से कम है वहाँ कँटीली झाड़ियाँ जिनमें टँटी, बेर, खजूर प्रमुख हैं अथवा मरुस्थलीय भाग पाये जाते हैं, जहाँ वनस्पति का पूर्ण अभाव है। मानसूनी वनों का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है। इसका कारण इन वनों का एशिया की घनी आबादी एवं एशिया के विकसित भागों मे फैला होना है। मानसूनी वनो का आर्थिक महत्त्व बहुत अधिक है क्योंकि इन वनो से बहुमूल्य लकड़ियाँ, फल, कत्था, गोंद, लाख, चमड़ा, आदि सामान प्राप्त होता है।

(३) शीतोष्ण मानसूनी पतझड़ वन—एशिया महाद्वीप के समशीतोष्ण भागो में स्थित शीतोष्ण मानसूनी जलवायु वाले प्रदेशों में उत्तरी चीन, मचूको (मचूरिया), कोरिया, जापान, आदि सम्मिलित हैं, शीतोष्ण पतझड़ वन पाये जाते हैं। इन वनो मे चौड़ी पत्ती एवं नुकीली पत्ती वाले दोनों प्रकार के वृक्ष मिलते हैं जो वर्ष में एक बार शुष्क ऋतु के आरम्भ से पूर्व अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं। इन वनों मे मुख्य वृक्ष बलूत, मेपल, कपूर, लारेल, लूंग तथा शाहतूत हैं। तारपीन का तेल प्रदान करने वाले वृक्ष यहाँ पर काफी सख्या में पाये जाते हैं। इन वनों का महत्त्व अधिक है। आजकल इन वनो

को काटकर कृषि भूमि प्राप्त की जा रही है। उत्तरी चीन के निचले प्रदेशों तथा मैदानी भागों में इन वनों को काटकर गेहूँ की कृषि के लिए भूमि प्राप्त कर ली गयी है। जापान की पर्वतीय घाटी के ढालों पर इन वनों को काटकर चाय एवं चावल की कृषि की जाती है। शहतूत के वृक्ष जापान तथा चीन में रेशम प्राप्त करने के उद्देश्य से छोड़ दिये गये हैं। जापान में इस प्रकार के वन केवल पर्वतीय भागों में ही मिलते हैं।

(४) कोणधारी वन—एशिया महाद्वीप के शीत-शीतोष्ण प्रदेशों में यूराल पर्वत से लेकर प्रशान्त महासागर तट तक नुकीली पत्ती वाले सदाबहार वन पाये जाते हैं जिन्हें टैगा वन भी कहते हैं। एशियाई रूस अथवा साइबेरिया का यह प्रदेश, जिसमें

चित्र—२१

ये वन फैले हुए हैं, एशिया की कठोर शीत एवं साधारण वर्षा वाला क्षेत्र है। कठोर शीत एवं बर्फ से रक्षा करने के लिए इनकी पत्तियाँ नुकीली तथा अधिक वाष्पीकरण से बचने के लिए इनके तने एवं डालियाँ चिकनी एवं मोटी होती हैं। ये वन एशिया

की बहुमूल्य मुलायम लकड़ियों के वृक्ष के भण्डार हैं जिनके मुख्य वृक्ष फर, स्प्रुस, लार्च, चीड़, हेमलाक, सीडर, इत्यादि हैं। इन वनों का आर्थिक महत्व सबसे अधिक है क्योंकि इन वनों पर एशिया का कागज, लुगदी, दियासलाई तथा फर्नीचर व्यवसाय पूर्ण रूप से आधारित है। दलदली भाग एवं जनसंख्या की कमी के कारण पहले इन वनों का उपयोग अधिक नहीं हुआ था लेकिन यातायात के साधनों में तीव्र विकास के साथ-साथ इनकी उपयोगिता बढ़ती जा रही है।

(५) भूमध्य सागरीय झाड़ी वन—दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के भूमध्य सागरीय जलवायु वाले प्रदेशों में इस प्रकार के झाड़ी वन टर्की, सीरिया, जोर्डन, इजराइल, लेबनान एवं साइप्रस द्वीप में पाये जाते हैं। ईराक तथा ईरान के कुछ भागों में भी इस प्रकार की वनस्पति मिलती है। शुष्क गर्मी एवं वाष्पीकरण से बचने के लिए इन वनों के वृक्षों की पत्तियाँ चिकनी, छालें मोटी, तने गठीले, डालियाँ कँटीली एवं जड़ें लम्बी होती हैं। इन वनों में रस प्रदान करने वाले वृक्षों की प्रधानता होती है। इन वनों में अनेक बेलें तथा झाड़ी कुंज भी मिलते हैं। इन वनों के मुख्य वृक्ष नींबू, नारंगी, अंजीर, जैतून, अखरोट, कार्क, लारेल, आदि हैं। तेल प्राप्त करने के लिए जैतून, शराब बनाने के लिए नारंगी तथा अंगूर एवं किशमिश तथा मुनक्का प्राप्त करने के लिए अंगूरों का अधिक महत्त्व है। अखरोट वृक्ष का महत्त्व सूखी मेवा प्राप्त करने के दृष्टिकोण से अधिक है। अंगूर द्वारा बनायी गयी शराब यहाँ से निर्यात किया जाता है।

२. घास के मैदान
(GRASS LANDS)

शीतोष्ण घास के मैदान एशिया महाद्वीप के मध्य अक्षांशीय भागों में कैस्पियन सागर के उत्तरी भाग से लेकर बैकाल झील के पश्चिमी तट तक पाये जाते हैं। मुख्य रूप से इन घास के मैदानों का विस्तार दक्षिणी-पश्चिमी साइबेरिया के कजाकिस्तान तथा किर्गीजिया प्रदेशों में है। इसके अलावा इस प्रकार के घास के मैदान कुछ अंश में एशिया के पश्चिमी मचूरिया के निचले प्रदेश तथा मंगोलिया पठार के अर्द्धमरुस्थलीय प्रदेशों में भी फैले हुए हैं। एशिया के ये घास के मैदान स्टेपी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र में मिलने वाली ग्रीष्म ऋतु की भीषण गर्मी, साधारण वर्षा, शरद ऋतु का न्यूनतम तापमान तथा हल्की मिट्टी किसी भी प्रकार के वृक्षों के उत्पादन में सहायक नहीं है, अतः कोमल एवं छोटी गुच्छेदार घासों के मैदान पाये जाते हैं।

इन घास के मैदानों में इस क्षेत्र में निवास करने वाले पशुपालक बंजारे लोग अपने पशुओं के साथ भ्रमण करते हुए पानी की तलाश में घूमते रहते हैं। किरगीज एवं कज्जाक यहाँ की प्रमुख पशुपालक जातियाँ हैं। इन घास के मैदानों पर निर्भर रहने वाले पशुओं में मुख्य पशु भेड़, बकरी, घोड़े, गाय, बैल, आदि हैं। घास की मात्रा जल की प्राप्ति की मात्रा पर निर्भर होती है। शुष्क मौसम में घास की पत्तियाँ जल

जाती हैं और सम्पूर्ण भाग मरुस्थलीय दिखायी पड़ता है। दक्षिणी भागों में ये घास के मैदान अर्द्ध-मरुस्थलीय भागों में बदल जाते हैं।

३. मरुस्थलीय वनस्पति
(DESERT VEGETATION)

एशिया महाद्वीप में तीन प्रकार के मरुस्थल पाये जाते हैं जिन पर निर्भर एशिया की मरुस्थलीय वनस्पति इस प्रकार की है :

(१) उष्ण मरुस्थलीय वनस्पति—एशिया के उष्ण मरुस्थल अधिकांशतः दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में मिलते हैं। उष्ण मरुस्थलीय भागों का विस्तार अरब से लेकर ईराक, ईरान, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, सिन्ध तथा थार प्रदेश तक है। नमी एवं वर्षा का अभाव, उच्च तापमान तथा शुष्क मौसम के कारण इस वनस्पति क्षेत्र में कँटीली झाड़ियाँ, बबूल, सूखी घास तथा खजूर के अलावा और कुछ भी नहीं उगता। ग्रीष्म ऋतु में चारों ओर रेत के टीले ही दिखायी देते हैं।

(२) शीतोष्ण मरुस्थलीय वनस्पति—एशिया के शीतोष्ण मरुस्थल सामान्यतः एशिया के मध्य भागों में मिलते हैं। इनका विस्तार मंगोलिया, तिब्बत तथा तुर्किस्तान के पठारी भागों में है। मंगोलिया का गोबी का मरुस्थल संसार का प्रमुख शीतोष्ण मरुस्थल है। वर्षा की कमी के कारण इन भागों में शुष्क घास तथा कँटीली झाड़ियों के अलावा और कोई भी वनस्पति नहीं मिलती। ये एशिया के अविकसित प्रदेशों में हैं।

(३) शीत मरुस्थलीय वनस्पति—एशिया के शीत मरुस्थल उत्तरी ध्रुवीय क्षेत्रों के टुण्ड्रा प्रदेशों में फैले हुए हैं। कठोर शीत, निम्न तापमान, ठण्डी हवाएँ, बर्फीले तूफान तथा वर्षा के अभाव के कारण यहाँ किसी भी प्रकार की वनस्पति उगने नहीं पाती। केवल ग्रीष्म ऋतु में उगने वाले रंग-बिरंगे फूलों वाले पौधों को छोड़कर काई तथा लिचिन के अलावा कोई भी वनस्पति नहीं मिलती है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. मानसूनी वनों का निर्माण करते हुए इन वनों पर जलवायु की दशाओं के पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करिए।

२. एशिया में मिलने वाली प्राकृतिक वनस्पति की विभिन्नताओं का कारण सहित वर्णन करिए।

३. कोणधारी वनों का वर्णन करते हुए उनके आर्थिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

7

एशिया—कृषि
(ASIA—AGRICULTURE)

कृषि एशिया महाद्वीप का प्राचीन व्यवसाय है और आज भी एशिया महाद्वीप की अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्य में लगी हुई है। कृषि विकास के इतिहास को देखने से यह स्पष्ट होता है कि संसार में सबसे पहले कृषि का विकास इसी महाद्वीप में प्रारम्भ हुआ था। ह्वांगहो, गंगा, सिन्धु, दजला एवं फरात नदियों की घाटियों में की जाने वाली प्राचीनतम कृषि पद्धतियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं कि एशिया ही कृषि का जन्म-स्थान रहा है।

सभ्यता के विकास एवं वैज्ञानिक आविष्कारों के साथ-साथ कृषि क्षेत्र में भी बड़े विकास हुए हैं। प्रारम्भिक कृषि का रूप आदिम कृषि के रूप में था और आदि मानव कृषि क्षेत्र में उपज प्राप्त करने के लिए केवल अपने शारीरिक परिश्रम से कार्य करता था। आधुनिक कृषि का रूप बहुत विस्तृत हो गया है और इस महाद्वीप के निवासियों के सामने एक विशाल जनसंख्या की उदर पूर्ति का प्रश्न है वहाँ एशिया का कृषक कम-से-कम भूमि पर अधिक-से-अधिक उपज प्राप्त करने के लिए कृषि क्षेत्र में शारीरिक परिश्रम, पशु-शक्ति, नवीन खोज एवं मशीनों की सहायता लेता है। कृषि क्षेत्र में विकास एवं उत्पादन को बढ़ाने के लिए एशिया का कृषक उत्तम बीज, देशी एवं रासायनिक खाद, मशीनों, नवीन कृषि प्रणालियों एवं प्रत्येक सम्भावित साधनों की सहायता लेता है।

एशिया की कृषि में एक उल्लेखनीय बात यह है कि एशिया में अन्य महाद्वीपों की अपेक्षा कृषि योग्य भूमि की अधिकता है। इसका कारण इस महाद्वीप में अनेक बड़े-बड़े नदियों के मैदानों की स्थिति है। आधुनिक गणना के अनुसार एशिया की कुल कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल लगभग ५० करोड़ हैक्टेयर है। एशिया में सामान्यतः एक कृषक के पास लगभग ०·५ हैक्टेअर भूमि आती है। यह प्रति कृषक भूमि का भाग केवल यूरोप महाद्वीप को छोड़कर अन्य सभी महाद्वीपों की तुलना में कम है। इसका कारण यहाँ कृषि में लगी जनसंख्या की अधिकता है। कदाचित् संसार के किसी भी महाद्वीप में इतनी जनसंख्या कृषि कार्य में नहीं लगी हुई है जितनी

एशिया महाद्वीप में। एशिया की कुल जनसंख्या का लगभग ६५ प्रतिशत भाग कृषि कार्य में लगा हुआ है। एशिया महाद्वीप के विभिन्न प्रमुख कृषिहर देशों में कृषि कार्य में लगी जनसंख्या तथा भूमि का औसत निम्न प्रकार है :

देश	कृषि में लगी जनसंख्या का (प्रतिशत)	कृषि में लगी भूमि (लाख हैक्टेअर)
थाईलैण्ड	७८	१०२
पाकिस्तान	७०	२३५
बंगला देश	७४	४५
भारत	७०	१,७३०
टर्की	७०	२५३
बर्मा	६६	१५६
इन्डोनेशिया	६८	१७७
चीन	६५	२,१४०
कोरिया	६४	२०
ईरान	६०	१७०
मलयेशिया	६०	२५
जापान	२८	५४
श्रीलंका	७१	१८
फिलीपाइन	६०	११२
अफगानिस्तान	५६	७८

एशिया की कृषि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ अनेक देशों के कृषि पदार्थों के उत्पादन संसार के कृषि उत्पादन क्षेत्र में अग्रगण्य हैं। उदाहरण के लिए, भारत संसार का सबसे अधिक गन्ना, जूट तथा चाय उत्पन्न करता है जबकि चीन संसार का सबसे अधिक चावल तथा सोयाबीन उत्पन्न करता है तथा मलयेशिया रबड़ उत्पादन में संसार में सबसे आगे है। इसके अलावा एशिया में संसार के सबसे अधिक कृषि पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं। सामान्य रूप से एशिया निम्न फसलों के उत्पादन में संसार में अग्रगण्य है जैसा कि विश्व उत्पादन में उसकी स्थिति से स्पष्ट होता है :

उपज	उत्पादन (लाख मीट्रिक टन)	विश्व उत्पादन का प्रतिशत
जूट	३०	६७
चावल	२,८०६	६५
चाय	४५०	६२
रबड़	२५	६०
सोयाबीन	२३८	४६
तम्बाकू	२०	४२
जौ	३१२	४१
ज्वार-बाजरा	२०५	४०
गेहूँ	८४८	३३
गन्ना	३,०१०	३२

एशिया की कृषि के सामान्य अध्ययन में इस आवश्यक तत्त्व की जानकारी करा देना भी *अत्यन्त आवश्यक है कि एशिया महाद्वीप का दक्षिणी एवं पूर्वी भाग* एशिया के कुल कृषि उत्पादन का लगभग ८०% भाग उत्पन्न करता है। इसका कारण यहाँ की गर्म एवं आर्द्र जलवायु है जो पौधों के विकास के लिए श्रेष्ठ है।[1] इसीलिए यह प्राकृतिक वनस्पति से भी हरा-भरा भाग है।

एशिया की मुख्य फसलें
(MAJOR CROPS)

चावल
(Rice)

चावल एशिया की मुख्य फसल है। यहाँ के ४०% मानव का यह मुख्य भोज्य पदार्थ है। चावल की खेती एशिया में प्राचीन काल से होती चली आ रही है और आज भी संसार का ९५% चावल एशिया महाद्वीप उत्पन्न करता है। एशिया में चावल का अधिक उत्पादन होने के निम्न कारण हैं :

चित्र—२४

(१) एशिया की जलवायु चावल उत्पादन के लिए उत्तम प्रकार की है : औसत तापमान २०° से २५° सेण्टीग्रेड तथा वर्षा १०० से २०० सेमी० है, जो चावल की कृषि के लिए श्रेष्ठ है, एशिया के अधिकांश भागों में मिलती है।

(२) अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा चावल की प्रति हैक्टेयर पैदावार अधिक होती है।

(३) जनसंख्या अधिक होने के कारण चावल की कृषि के लिए श्रमिक आसानी से मिल जाते हैं।

(४) चावल में अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा अधिक व्यक्तियों को भोजन प्रदान करने की क्षमता होती है।

[1] "A hot humid atmosphere is, as all gardeners know, the most favourable for plant growth." —W. B. Cornish, *Modern Geography of Asia*, p. 28.

(५) यह एशिया महाद्वीप का मूल पौधा है, तथा चीन में इसकी कृषि ईसा से ३,००० वर्ष पूर्व भी की जाती थी इसलिए आज यह एशिया का सबसे विकसित कृषि पदार्थ है।

(६) चावल की खेती डेल्टाई भाग, पर्वतीय ढाल, नदियों की घाटियों तथा समतल मैदानी भाग सभी जगह आसानी से कर ली जाती है।

उत्पादन—दक्षिणी एवं पूर्वी एशिया चावल का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है। यह क्षेत्र विश्व का ८७% तथा एशिया का ९०% चावल उत्पन्न करता है। एशिया के मुख्य चावल उत्पादक देश चीन, भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान, जापान, हिन्देशिया, बर्मा थाईलैण्ड, कोरिया, उत्तरी एवं दक्षिणी वियतनाम, फारमूसा, फिलीपाइन, आदि हैं।

चीन—चीन विश्व का सबसे अधिक चावल उत्पन्न करता है। यह एशिया का ३०% तथा विश्व का २५% चावल उत्पन्न करने वाला देश है। चीन का दक्षिणी भाग चावल का प्रमुख क्षेत्र है। चावल उत्पन्न करने वाले क्षेत्र दक्षिणी-पूर्वी तटीय प्रदेश, सीक्यांग का डेल्टा, जेचवान बेसिन, यांगटिसिक्यांग का डेल्टा, आदि हैं।

भारत—भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा चावल उत्पादक देश है। विश्व का सबसे अधिक चावल का क्षेत्र भारत में है लेकिन प्रति हैक्टेअर पैदावार कम होने के कारण यहाँ चावल का उत्पादन कम है। चावल उत्पन्न करने वाले मुख्य क्षेत्र पश्चिमी बंगाल, तटीय डेल्टाई प्रदेश, उत्तर प्रदेश के पूर्वी एवं पहाड़ी प्रदेश, हिमालय प्रदेश, केरल, बिहार तथा उत्तरी मैदान हैं।

जापान—विश्व के चावल उत्पादक देशों में जापान का स्थान तृतीय है। यहाँ पर चावल की प्रति हैक्टेअर पैदावार विश्व में सबसे अधिक है, चावल उत्पन्न करने वाले मुख्य क्षेत्र हांशू द्वीप का सिवोशो क्षेत्र, मध्य पर्वतीय प्रदेश, पूर्वी डेल्टाई प्रदेश, होकेडो द्वीप का दक्षिणी भाग तथा शिकोकू एवं क्यूश्यू द्वीप हैं।

पाकिस्तान—पाकिस्तान के मुख्य चावल उत्पादक क्षेत्र सिन्धु डेल्टा तथा जेच दोआब हैं।

हिन्देशिया—हिन्देशिया की कृषि भूमि के लगभग ५०% भाग पर चावल की कृषि की जाती है। यहाँ चावल का उत्पादन जावा, मदुरा, सुमात्रा, सेलीबीज, आदि द्वीपों पर अधिक किया जाता है।

बंगला देश—चावल का उत्पादन ब्रह्मपुत्र के डेल्टा में होता है।

थाईलैण्ड—थाईलैण्ड की मुख्य उपज चावल है तथा यहाँ की कुल कृषि भूमि के लगभग ८५% भाग पर बोया जाता है। मुख्य चावल उत्पादक क्षेत्र मीनाम नदी का डेल्टा तथा घाटी है।

एशिया में चावल का उत्पादन (१६७२)[1]

देश	उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)
चीन	१,०१,०००
भारत	५७,६५०
जापान	१५,२८१
पाकिस्तान	३,४०७
हिन्देशिया	१८,०३१
थाईलैण्ड	११,६६६
बर्मा	७,५५६
कम्बोडिया	१,६२७
दक्षिणी कोरिया	५,४७२
उत्तरी कोरिया	१,३५०
फिलीपाइन्स	४,६७१
उत्तरी वियतनाम	४,६००
दक्षिणी वियतनाम	६३८
ईरान	१,२००
मलयेशिया	१,८२८
नेपाल	२,४००
श्रीलंका	१,३१२
बगला देश	१४,३८७

अन्तरराष्ट्रीय व्यापार

एशिया में चावल की अधिक माँग और खपत होने के कारण इसका अन्तरराष्ट्रीय व्यापार बहुत कम है। एशिया की घनी आबादी वाले देश भारत, जापान, श्रीलंका तथा फिलीपाइन चावल का आयात करने वाले देश हैं। निर्यात करने वाले देशों में थाईलैण्ड, बर्मा, ताईवान तथा पाकिस्तान प्रमुख हैं।

चाय
(*Tea*)

चाय एशिया का मूल पौधा है। यह बागाती कृषि (Plantation Agriculture) के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाला प्रमुख पेय पदार्थ है। चीन देश चाय की जन्मभूमि है। चीन में चाय पीने का प्रचार आज से हजारों वर्ष पूर्व भी था। दक्षिणी-पूर्वी

1 *Statistical Year Book*, 1973, p. 127.

एशिया के मानसूनी प्रदेशों के पर्वतीय ढालों में चाय के लिए सबसे उपयुक्त वातावरण प्राप्त है। चाय उष्ण मानसूनी प्रदेशों का ही पौधा है। इसके लिए सामान्य तापमान २५° से ३०° सेण्टीग्रेड तथा औसत वर्षा १५० सेण्टीमीटर से ३०० सेमी० चाहिए। पाला एवं तीव्र हवा के झोंके इसकी कृषि के लिए हानिकारक हैं। मिट्टी में लोहांश की मात्रा का अधिक होना लाभदायक है।

चित्र—२५

उत्पादन—एशिया विश्व की ६३% चाय का उत्पादन करता है। भारत एशिया का ही नहीं बल्कि विश्व का सबसे बड़ा चाय उत्पादक देश है। भारत के अतिरिक्त, श्रीलंका, चीन, जापान, हिन्देशिया, बर्मा, फारमोसा, फिलीपाइन, ताईवान, बंगला देश तथा पाकिस्तान भी चाय के प्रमुख उत्पादक देश हैं।

भारत—भारत विश्व का ३५% भाग तथा एशिया की कुल चाय उत्पादन के ३८% भाग का उत्पादन करता है। भारत में चाय उत्पादन के मुख्य क्षेत्र असम पहाड़ियों के ढाल, ब्रह्मपुत्र की घाटी, अल्मोड़ा एवं गढ़वाल श्रेणियाँ, कुल्लू की घाटी, पश्चिमी बंगाल के पर्वतीय ढाल, छोटा नागपुर का पठार तथा नीलगिरि पर्वत आदि हैं।

श्रीलंका—श्रीलंका विश्व की कुल चाय का २१% भाग उत्पन्न करता है। यहाँ चाय की प्रति हेक्टेयर उपज भी अधिक है जो लगभग ४५० किलोग्राम है। लंका द्वीप का मध्य भाग चाय का मुख्य क्षेत्र है। मध्य पहाड़ी ढालों पर कैंडी से दक्षिण की ओर चाय के अनेक बागान मिलते हैं।

चीन—चीन ही चाय की जन्मभूमि है लेकिन प्रति हैक्टेयर उत्पादन कम होने के कारण यहाँ विश्व की केवल १५% चाय उत्पन्न की जाती है। सीक्याग नदी की घाटी तथा दक्षिणी चीन के पर्वतीय ढालों पर चाय के अनेक छोटे-छोटे बागान पाये जाते हैं। पूर्वी तटीय प्रदेश, यांगटिसीक्याग घाटी तथा जेचवान बेसिन भी चाय उत्पादन के प्रधान क्षेत्र हैं।

हिन्देशिया—यहाँ प्राचीन काल से चाय का उत्पादन किया जाता है। जावा द्वीप *हिन्देशिया* की सबसे अधिक चाय उत्पन्न करता है। इसके पश्चिमी भाग पर ज्वालामुखी पर्वतों के प्रदेश में लावा मिट्टी वाले क्षेत्र पर चाय के अनेक बड़े-बड़े बागान मिलते हैं। सुमात्रा द्वीप के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र में भी चाय के अनेक बागान मिलते हैं।

ताईवान—ताईवान की अलूंग चाय विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ चाय बागान उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र में मिलते हैं। पर्वतीय ढालों पर हरी चाय की कृषि की जाती है।

जापान—जापान के पर्वतीय ढालों पर हरी चाय की कृषि की जाती है। *हौंशू द्वीप का सिजोका प्रान्त, नागोया क्षेत्र तथा दक्षिणी तटीय प्रदेश चाय के प्रमुख क्षेत्र हैं।*

एशिया में चाय का उत्पादन (१९७२)

देश	उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)
भारत	४५४
श्रीलंका	२१३
हिन्देशिया	४६
जापान	९४
बंगला देश	२३
टर्की	४६

अन्तरराष्ट्रीय व्यापार

एशिया में उत्पन्न होने वाली चाय का अधिकांश भाग निर्यात कर दिया जाता है। ब्रिटेन संसार की सबसे अधिक चाय का आयात करता है। भारत तथा श्रीलंका संसार के सबसे बड़े चाय निर्यातक देश हैं। चाय निर्यात करने वाले एशिया के अन्य देशों में पाकिस्तान, हिन्देशिया, ताईवान, जापान, इत्यादि हैं।

गन्ना
(Sugarcane)

गन्ना उष्ण कटिबन्ध के भागों में उत्पन्न होने वाली एक रसीली घास है जिससे चीनी बनायी जाती है। एशिया महाद्वीप संसार का सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न करता है। यह विश्व उत्पादन का लगभग ५२% गन्ना उत्पन्न करने वाला महाद्वीप है। गन्ना के उत्पादन के लिए सामान्य जलवायु दशाएँ, औसतन तापमान २१° सेन्टीग्रेड

तथा वर्षा १०० सेण्टीमीटर चाहिए। पाला एवं शुष्क मौसम इसके लिए हानिकारक हैं। सामुद्रिक वायु एवं सूर्य ताप इसकी कृषि के लिए लाभदायक हैं।

एशिया
गन्ना

चित्र—२६

उत्पादन—एशिया में सबसे अधिक गन्ने का उत्पादन भारत में होता है। एशिया के अन्य गन्ना उत्पादक देशों में पाकिस्तान, चीन, फिलीपाइन, हिन्देशिया, ताईवान, टर्की, थाईलैण्ड, बर्मा, आदि हैं।

भारत—विश्व का सबसे अधिक गन्ना भारत में उत्पन्न किया जाता है। भारत में विश्व गन्ना क्षेत्र का लगभग ३३% क्षेत्र है। उत्तरी भारत गन्ने का मुख्य क्षेत्र है। उत्तर प्रदेश भारत का लगभग ५०% गन्ना उत्पन्न करता है। पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी-पूर्वी उत्तर प्रदेश गन्ने का मुख्य क्षेत्र है। बिहार का पश्चिमी भाग तथा पंजाब के गुरुदासपुर तथा अमृतसर में गन्ने का उत्पादन होता है।

पाकिस्तान—एशिया में भारत के बाद पाकिस्तान सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न करता है। गन्ना उत्पादन करने वाले मुख्य जिले स्यालकोट, लायलपुर, लाहौर, मोंटगुमरी, आदि हैं।

बंगला देश—यहाँ भी गन्ना पैदा किया जाता है विशेषतः दिनाजपुर, माइमेन-सिंह, ढाका और रंगपुर जिलों में।

फिलीपाइन—यहाँ गन्ने के अनेक छोटे-छोटे फार्म पाये जाते हैं। यहाँ पर गन्ना प्रमुख फसलों में से है। गन्ना उत्पादन के मुख्य क्षेत्र निग्रोस, पनाय तथा लूजो द्वीप हैं। तटीय प्रदेशों में गन्ना अधिक उत्पन्न किया जाता है।

हिन्देशिया—हिन्देशिया गन्ना की कृषि का मुख्य क्षेत्र है। पूर्वी क्षेत्र में गन्ने के अनेक खेत पाये जाते हैं। जावा द्वीप सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न करता है। तटीय मैदानी लावा वाली भूमि पर गन्ना की कृषि की जाती है। सुमात्रा के दक्षिणी तटीय क्षेत्र में गन्ना उत्पन्न किया जाता है।

ताईवान—ताईवान में गन्ने की कृषि का क्षेत्र लगभग एक लाख हैक्टेयर है। यहाँ पर गन्ना मध्य पर्वतीय मैदानी क्षेत्रों में उत्पन्न किया जाता है।

एशिया में गन्ना का उत्पादन (१९७२)

देश	उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)
भारत	१,२५,०००
पाकिस्तान	२६,०००
चीन	२८,४००
फिलीपाइन	१४,६००
हिन्देसिया	६,९००
ताईवान	७,८००
थाईलैण्ड	४,७००

अन्तरराष्ट्रीय व्यापार

गन्ना से तैयार चीनी का विदेशों को निर्यात किया जाता है। एशिया के प्रमुख चीनी निर्यातक देश फिलीपाइन, हिन्देशिया का जावा द्वीप, टर्की, ताईवान, इत्यादि है।

रबड़
(Rubber)

रबड़ संसार का एक बहुत महत्वशील लचीला पदार्थ है। यह अनेक वृक्षों के दूध से तैयार की जाती है। भूमध्य रेखीय वनों में मिलने वाला हीवीया जाति का रबड़ का वृक्ष सबसे अधिक दूध प्रदान करने वाला वृक्ष है। रबड़ पूर्णतः उष्ण-कटिबन्धीय भूमध्यरेखीय जलवायु प्रदेशों का वृक्ष है। इस वृक्ष के विकास के लिए सामान्यतः १७° सेण्टीग्रेड तापमान तथा औसतन २५० सेण्टीमीटर वर्षा चाहिए। रबड़ के बगीचे के लिए सस्ते एवं कुशल श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है।

चित्र—२७

उत्पादन—रबड़ का वृक्ष एशिया महाद्वीप में ब्राजील से लाकर सन् १८७६ में लगाया गया था, उसके बाद एशिया में इसकी निरन्तर वृद्धि होती गयी। आज एशिया संसार का ९०% रबड़ उत्पन्न करता है। दक्षिण-पूर्वी एशिया रबड़ का मुख्य उत्पादक क्षेत्र है। मलयेशिया का मलाया प्रायद्वीप तथा हिन्दे-

शिया का जावा द्वीप रबड़ के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। श्रीलंका, भारत तथा थाईलैण्ड भी रबड़ के उत्पादक देश हैं।

मलयेशिया—मलयेशिया विश्व में सबसे अधिक रबड़ उत्पन्न करता है। यह विश्व रबड़ के उत्पादन का ४०% भाग तथा एशिया का ३५% भाग उत्पन्न करता है। मलयेशिया की अधिकांश रबड़ उत्पन्न करने वाली भूमि मलयेशिया प्रायद्वीप में है। मलयेशिया में ३३ लाख हैक्टेयर भूमि पर रबड़ के वृक्ष हैं। मलयेशिया के दक्षिणी-पश्चिमी तथा तटीय प्रदेशों पर रबड़ के बागान विस्तृत हैं। जोहोर प्रान्त मलयेशिया की सबसे अधिक रबड़ उत्पन्न करता है।

हिन्देशिया—हिन्देशिया एशिया तथा विश्व का दूसरा सबसे बड़ा रबड़ उत्पादक देश है। जावा द्वीप हिन्देशिया का सबसे अधिक रबड़ उत्पन्न करता है। जावा के मध्य तथा दक्षिणी भागों में रबड़ के बागान मिलते हैं। जावा के अलावा बोर्नियो तथा सुमात्रा द्वीप भी रबड़ उत्पन्न करते हैं।

श्रीलंका—श्रीलंका दक्षिणी-पश्चिमी तटीय प्रदेश, मध्यवर्ती पर्वतों के निचले ढाल रबड़ उत्पादन के मुख्य क्षेत्र हैं। इस देश का स्थान विश्व रबड़ के उत्पादक देशों में चौथा है।

भारत—हमारे देश में अंग्रेजों ने मलाया से लाकर रबड़ के वृक्षों का विकास किया था। दक्षिणी भारत में रबड़ के अनेक बागान मिलते हैं। मालाबार तट रबड़ का प्रमुख क्षेत्र है। केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा असम प्रान्त में रबड़ के क्षेत्र मिलते हैं।

थाईलैण्ड—थाईलैण्ड रबड़ उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि कर गया है। रबड़ का उत्पादन दक्षिणी तटीय प्रदेशों में अधिक किया जाता है।

एशिया में रबड़ का उत्पादन (१९७२)

देश	उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)
मलयेशिया	१,३२४
हिन्देशिया	८१९
थाईलैण्ड	३३७
श्रीलंका	१४०
भारत	१०६
दक्षिणी वियतनाम	२०

अन्तरराष्ट्रीय व्यापार

रबड़ का अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में बहुत महत्त्व है। मलयेशिया, हिन्देशिया तथा थाईलैण्ड रबड़ का निर्यात करते हैं। आयात करने वाले देशों में संयुक्त राज्य अमरीका, जापान, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, रूस, बेल्जियम इत्यादि हैं। संसार का समस्त रबड़ का ५०% भाग अकेला संयुक्त राज्य अमरीका आयात करता है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. एशिया की कृषि पर एक भौगोलिक लेख लिखिए।
२. एशिया की मुख्य फसलों का वर्णन करिए।
३. चावल की कृषि के लिए आवश्यक भौगोलिक दशाएँ एवं उत्पादन क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।
४. गन्ना अथवा चाय की कृषि की भौगोलिक दशाओं का वर्णन कीजिए।

8

एशिया—खनिज पदार्थ
(ASIA—MINERALS)

किसी महाद्वीप अथवा देश का आर्थिक स्तर तब तक ऊँचा नहीं उठ सकता है जब तक उस महाद्वीप अथवा देश में औद्योगिक विकास न हो और औद्योगिक विकास की एकमात्र कुञ्जी है—खनिज पदार्थ और उसकी स्थिति। यह सत्य है कि महाद्वीप का शक्तिशाली होना और उसके भविष्य के विकास की सम्भावना इस बात पर निर्भर करती है कि उस महाद्वीप के आन्तरिक गर्भ में कितने खनिज पदार्थ छुपे हैं। एशिया जैसे महाद्वीप के लिए जहाँ जनसंख्या का दबाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, खनिज पदार्थों की प्राप्ति का महत्त्व और भी अधिक है।

खनिज निकालने का कार्य एशिया महाद्वीप में प्राचीन काल से होता रहा है। पाषाण युग में जब मनुष्य मानव सभ्यता के विकास के प्रथम युग में अवतरित हो रहा था उस समय भी उसने पत्थरों का सहारा मकान बनाने, शिकार करने एवं अग्नि उत्पन्न करने के लिए लिया था। आज मनुष्य जबकि मानव सभ्यता के आधुनिक युग में कदम रख चुका है तब उसके लिए खनिज पदार्थों का महत्त्व इतना अधिक बढ़ गया है कि उसके आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक भूगोल की रूपरेखा खनिज पदार्थों की मात्रा की प्राप्ति पर निर्भर करती है। एशिया में सामाजिक शान्ति बनाये रखने के लिए एवं एशिया की बढ़ती हुई जनसंख्या को रोजगार प्रदान करने के दृष्टिकोण से यह अत्यन्त आवश्यक है कि एशिया अपने यहाँ छिपे हुए खनिज पदार्थों का पता लगाये और उन्हें निकलवाकर उद्योग-धन्धों का विकास करे। आज जबकि मनुष्य चन्द्रमा पर कदम रख चुका है और उसे अनेक ग्रहों पर विजय प्राप्त करनी है, उसके लिए खनिज पदार्थों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

विश्व के अन्य महाद्वीपों (उत्तरी अमरीका एवं यूरोप) की तुलना में एशिया महाद्वीप के पिछड़े होने का सबसे बड़ा कारण एशिया में खनिज पदार्थों की दयनीय स्थिति रही है। अपनी उत्तम भौगोलिक बनावट के कारण एशिया महाद्वीप खनिज भण्डारों की दृष्टि से गरीब नहीं है। उत्तर एवं दक्षिण के प्राचीनतम भंगारों एवं लौंकवाना भूमि, पूर्वी एशिया का आमूर नदी का बेसिन, मध्य भील के बठार, आदि

एशिया के प्राचीन खण्ड हैं जो विश्व की पुरातन, कठोर एवं रवेदार चट्टानों के क्षेत्र हैं जहाँ खनिज पदार्थों के अनेक प्रचुर भण्डार विद्यमान हैं। यही नहीं, एशिया महाद्वीप के मध्य भाग में विस्तृत नवीन टरशियरी कल्प की पर्तदार चट्टानें पायी जाती हैं जो एशिया के बहुमूल्य खनिज तेल के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ-साथ एशिया महाद्वीप के अनेक देश स्वतन्त्र होने प्रारम्भ हुए, उनमें राष्ट्रीय सरकारों का निर्माण हुआ और धीरे-धीरे उनमें *आर्थिक क्रान्ति* हुई। *परिणामस्वरूप एशिया महाद्वीप के ये देश औद्योगिक* विकास की ओर अग्रसित हुए। औद्योगिक विकास की तीव्रता के साथ-साथ खनिज खोदने के व्यवसाय में विकास हुआ और पृथ्वी के गर्भ में छिपे हुए सुरक्षित खनिज भण्डारों का पता लगाने के लिए अनेक वैज्ञानिक सर्वेक्षण किये गये। इन सर्वेक्षणों के आधार पर एशिया की खनिज सम्पत्ति का अनुमान लगाया गया। नये-नये खनिज भण्डारों का पता लगाया गया और खनिज पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि की गयी। खनिज के सुरक्षित भण्डारों एवं खनिज उत्पादन के आधार पर एशिया महाद्वीप के खनिज पदार्थों को तीन भागों में बाँटा गया है :

१. वे खनिज पदार्थ जिनके भण्डार एवं उत्पादन में एशिया विश्व में एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है जैसे मोनोजाइट, टिन, ऐण्टीमनी, टंगस्टन, अभ्रक, क्रोमाइट, मैंगनीज, कोयला, नमक, खनिज तेल, आदि।
२. वे खनिज पदार्थ जिनके भण्डार एवं उत्पादन में एशिया विश्व में सामान्य स्थान रखता है; जैसे लोहा, जस्ता, सीसा, जिप्सम, आदि।
३. वे खनिज पदार्थ जिनके भण्डार एवं उत्पादन में एशिया विश्व में बहुत पिछड़ा हुआ है; जैसे बॉक्साइट, ताँबा, एल्यूमीनियम, राँगा, सोना, चाँदी, प्राकृतिक गैस, आदि।

सामान्य रूप से एशिया अनेक खनिज पदार्थों के उत्पादन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। खनिज पदार्थों के विश्व उत्पादन में एशिया की स्थिति निम्न है :

खनिज	एशिया का उत्पादन	विश्व उत्पादन का प्रतिशत
टिन	१,१६,६०० मी० टन	६०
टंगस्टन	१६,४०० मी० टन	४६
पैट्रोलियम	६,०१० लाख मी० टन	३७
कोयला	५,४१४ ,, ,, ,,	२६
एण्टीमनी	१६ हजार मी० टन	२५
मैंगनीज	१,१०० ,, ,, ,,	१८
नमक	४०५ लाख मी० टन	१८
लोहा	२३८ ,, ,, ,,	१२
जस्ता	६ ,, ,,	१०

सीसा	३ लाख मी० टन	६
ताँबा	५ " " "	७
बॉक्साइट	४४ " " "	६
चाँदी	६२० मीट्रिक टन	६
सोना	५६८ हजार किग्रा०	५
प्राकृतिक गैस	६,००० करोड़ घन मीटर	५
अभ्रक	१६ हजार मी० टन	६२

लोहा
(Iron)

लोहा विश्व की एक महत्त्वपूर्ण आधारभूत खनिज धातु है। दैनिक प्रयोग में आने वाली छोटी एवं बड़ी मशीनें, औजार से लेकर बड़े-बड़े यन्त्र, यातायात के साधन, रेल, मोटर, साइकिल, वायुयान तथा जलयान, सैनिक हथियार तथा कृषि यन्त्र सभी सामानों को तैयार करने के लिए लोहे की आवश्यकता होती है। विश्व के वे देश जहाँ लोहे का भण्डार है, संसार के धनी देशों में गिने जाते हैं।

लोहा अयस्क पृथ्वी के अन्दर चट्टानों में कच्ची धातु (Iron ore) के रूप में पाया जाता है जिसे भट्टियों में गलाकर साफ करते हैं। इस कच्चे लोहे में अनेक धातुओं को मिलाकर इसे कठोरता, मजबूतीपन तथा टिकाऊपन देकर इससे इस्पात (steel) बनाते हैं।

एशिया
लोहा

चित्र—२८

लोहे की कच्ची धातु चार प्रकार की होती है

(१) हैमेटाइट (Hametite)—इसमें लोहे का अंश ७२% से अधिक होता है। इसे गलाने में सुविधा रहती है। भारत, चीन तथा कोरिया में इस प्रकार की धातु मिलती है।

(२) मैगनेटाइट (Magnetite)—इसमें लोहे का अंश ७२% के लगभग होता है। भारत के कर्नाटक राज्य की खानों में इसी प्रकार का लोहा मिलता है।

(३) लिमोनाइट (Limonite)—इसमें लोहे का अंश केवल ६०% तक रहता है। इसकी खुदायी आसानी से हो जाती है। मलयेशिया तथा जापान की खानों में इस प्रकार की धातु मिलती है।

(४) साइडेराइट (Siderite)—इसमें लोहे का अंश ४८% तक होता है। यह अशुद्ध मिश्रित लौह धातु है। थाईलैण्ड में इस प्रकार की कुछ धातु मिलती है।

उत्पादन—एशिया विश्व का केवल १२% लोहा उत्पन्न करता है। एशिया के प्रमुख लोहा उत्पादक देश एशियाई रूस, चीन, भारत, उत्तरी कोरिया, फिलीपाइन्स तथा मलयेशिया हैं। जापान, बर्मा, थाईलैण्ड, टर्की, पाकिस्तान तथा दक्षिणी कोरिया भी कुछ लोहे का उत्पादन करते हैं।

चीन—चीन की हांगकाऊ के निकट तायह की लौह खान सबसे प्रसिद्ध खान है। हुपेइ तथा चिगलिंग की खानों से भी लोहा निकाला जाता है। अन्य लोहे की खानें भीतरी मंगोलिया, शान्हवेई, लियाओनिंग, चिपाई, आदि राज्यों में मिलती हैं।

भारत—भारत एशिया का प्रमुख लोहा उत्पादक देश है। भारत का लगभग ५०% लोहा बिहार की सिंहभूम तथा उड़ीसा की मयूरभंज तथा क्योंझर की खानों से प्राप्त होता है। मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश तथा कर्नाटक की खानों से भी लोहा निकाला जाता है।

जापान—जापान के मोरारी जिला तथा कैमेशी क्षेत्र की खानों से भी उत्तम प्रकार की लौह धातु प्राप्त की जाती है। कैमेशी में मिलने वाली धातु मेगनेटाइट श्रेणी की है। अन्य खानों में मोत्राइशी तथा ओमोरी हैं।

मलयेशिया—मलयेशिया संघ के मलाया प्रायद्वीप की जोहोर तथा ट्रेंगानू राज्यों की लौह खानों से लोहा निकाला जाता है। ट्रेंगानू राज्य की डुंगन तथा बुकितबैसी लौह खानें प्रसिद्ध हैं।

एशिया में लौह धातु का उत्पादन (१९७२)

देश	उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)
भारत	२२,१२६
चीन	२५,३००
जापान	७८३
टर्की	१,१४३
फिलीपाइन्स	१,३५६
मलयेशिया	२६६
उत्तरी कोरिया	४,३५०
दक्षिणी कोरिया	२०७
थाईलैण्ड	१६
ईरान	२६४

अन्तरराष्ट्रीय व्यापार

आज के इस्पात युग में लोहे का अन्तरराष्ट्रीय व्यापार बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। मलाया प्रायद्वीप, उत्तरी कोरिया, भारत तथा चीन देश लोहे का निर्यात करते हैं। जापान तथा फिलीपाइन प्रमुख आयात करने वाले देश हैं।

टिन
(Tin)

टिन एक कोमल खनिज धातु है जिससे बर्तनों पर पालिश, डिब्बे तथा तश्तरियाँ आदि बनाने का काम लिया जाता है। जिस कच्ची धातु से टिन प्राप्त किया जाता है उसका नाम कैसीटेराइट (Cassiterite) है। चट्टानों के अलावा टिन नदियों की बालू में से भी निकाला जाता है।

उत्पादन—एशिया संसार में सबसे अधिक टिन का उत्पादन करता है। विश्व उत्पादन का ६०% भाग एशिया महाद्वीप में निकाला जाता है। दक्षिणी-पूर्वी एशिया टिन का प्रमुख क्षेत्र है। मलयेशिया एशिया का ६१% टिन तथा संसार का ३७% टिन का उत्पादन करता है। विश्व के टिन उत्पादक देशों में मलयेशिया का प्रथम स्थान है। मलयेशिया का मलाया प्रायद्वीप सबसे अधिक टिन उत्पन्न करता है। पिराक, जोहोर तथा सेलनगोर राज्य प्रमुख टिन उत्पादक क्षेत्र हैं। समस्त मलयेशिया में लगभग ७२८ टिन की खानें हैं जहाँ लगभग एक लाख व्यक्ति इस कार्य में लगे हुए हैं। यहाँ नदियों की घाटियों की रेत से भी टिन निकाला जाता है। टिन साफ करने के कारखाने पेनाग तथा सिंगापुर में हैं। अन्य टिन उत्पादक देशों में थाईलैण्ड, हिन्देशिया, चीन, जापान, लाओस, बर्मा, दक्षिणी कोरिया, आदि हैं।

चित्र—२६

एशिया में टिन का उत्पादन (१९७२)

देश	उत्पादन (मीट्रिक टन)
मलयेशिया	७६,८३०
थाईलैण्ड	२२,०७२
हिन्देशिया	२१,७६६
जापान	८७३
लाओस	१,८८७
बर्मा	६००
दक्षिणी कोरिया	७६

अन्तरराष्ट्रीय व्यापार

एशिया में उत्पन्न टिन की अन्तरराष्ट्रीय माँग अधिक है। मलयेशिया, इन्डोनेशिया, थाईलैण्ड तथा बर्मा टिन का निर्यात करते हैं। आयात करने वाले देशों मे मुख्यतया संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस तथा इटली हैं।

शक्ति के साधन
(SOURCES OF POWER)

एशिया में शक्ति के निम्न साधन हैं जो महत्त्वपूर्ण खनिज के रूप में हैं :

कोयला
(Coal)

शक्ति के साधनों में कोयला संसार का सबसे महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थ है। आज के आधुनिक औद्योगिक युग में कोयला का महत्त्व और भी अधिक है क्योंकि बड़े पैमाने पर आधारित अनेक विशाल उद्योग-धन्धों के लिए चालक शक्ति की माँग बढ़ती जा रही है। कोयला, जिस पर संसार के भविष्य का विकास निर्भर करता है, पृथ्वी के अन्दर चट्टानों के रूप में अनेक परतों में पाया जाता है। इसमें मुख्यतः कार्बन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, राख, आदि पदार्थ मिले होते हैं। यह प्राचीनतम वनस्पति का परिवर्तित रूप है। कार्बन की मात्रा के अनुसार कोयले के निम्न भेद हैं -

(१) एन्थ्रेसाइट (Anthracite)—यह सर्वश्रेष्ठ किस्म का कोयला है और इसमे कार्बन की मात्रा ९०% से ९५% तक होती है। इसका सामान्य प्रयोग घरो में ईंधन के रूप में किया जाता है।

(२) बिटूमिनस (Bituminus)—यह भी उच्च किस्म का कोयला है जिसमे कार्बन की मात्रा ७५% से ९०% तक होती है। इसका सामान्य प्रयोग उद्योग-धन्धों को शक्ति प्रदान करने के लिए किया जाता है।

(३) लिगनाइट (Lignite)—इसे भूरा कोयला (Brown Coal) भी कहते हैं। यह घटिया किस्म का अशुद्ध कोयला होता है। इसमे कार्बन की मात्रा ४५% से ७०% तक होती है। इससे कृत्रिम पैट्रोलियम तथा मोम बनाया जाता है।

(४) पीट (Peat)—यह कोयले की प्रथम अवस्था का रूप है। इसमें कार्बन की मात्रा ४०% होती है। इसका प्रयोग लकड़ी की तरह जलाने तथा कोलतार बनाने में किया जाता है।

(५) कैनेल (Cannel)—इसे गैस का कोयला (Gas Coal) के नाम से भी पुकारते हैं। इसमें कार्बन का अंश ४०% से कम होता है। यह सबसे अशुद्ध और घटिया किस्म का कोयला है। इसका प्रयोग गैस बनाने के काम में किया जाता है।

उत्पादन—एशिया समस्त संसार के कुल कोयला उत्पादन का लगभग २६% भाग उत्पन्न करता है। एशिया के प्रमुख कोयला उत्पादक देश चीन, भारत, जापान, एशियाई रूस, दक्षिणी एवं उत्तरी कोरिया, टर्की, ताईवान, इत्यादि हैं।

चित्र—३०

चीन—चीन संसार का लगभग १२% तथा एशिया का लगभग ६०% कोयला उत्पन्न करता है। संयुक्त राज्य अमरीका के बाद यह संसार का सबसे बड़ा कोयला उत्पादक देश है। यहाँ संसार की २०% कोयले की सुरक्षित राशि छिपी हुई है। शान्सी तथा शेन्सी कोयले की खानों का क्षेत्र चीन का संसार प्रसिद्ध कोयला उत्पादक क्षेत्र है।

भारत—भारत संसार का लगभग ३% तथा एशिया का १५% कोयला उत्पन्न करता है। बंगाल तथा बिहार भारत के प्रमुख कोयला उत्पादक राज्य हैं। रानीगंज तथा झरिया भारत की प्रसिद्ध कोयला की खानें हैं।

जापान—जापान संसार का लगभग २०% तथा एशिया का १०% कोयला उत्पन्न करता है। जापान का क्यूशू द्वीप कोयला उत्पादन का प्रसिद्ध क्षेत्र है। यहाँ से कुल जापान का आधे से अधिक कोयला उत्पन्न किया जाता है।

कोरिया—उत्तरी कोरिया का एन्तोग खाड़ी के तट का क्षेत्र तथा दक्षिणी कोरिया में दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र भी प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र हैं। उत्तरी कोरिया में दक्षिणी कोरिया की अपेक्षा अधिक कोयला मिलता है।

एशिया में कोयला का उत्पादन (१९७२)

देश	उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)
चीन	४,००,०००
भारत	७४,७७१
जापान	२८,०९८
उत्तरी कोरिया	२४,३१३
दक्षिणी कोरिया	१२,४०३
ईरान	१,०००
टर्की	४,९४१
पाकिस्तान	१,२५१
हिन्देशिया	१७९

अन्तरराष्ट्रीय व्यापार

कोयला का अन्तरराष्ट्रीय व्यापार बहुत महत्त्वपूर्ण है तथा इसकी माँग भी बहुत अधिक है। भारत तथा चीन एशिया के प्रमुख कोयला निर्यात करने वाले देश हैं। जापान, पाकिस्तान, श्रीलंका तथा बर्मा प्रमुख कोयला आयात करने वाले देश हैं। कोयला की माँग निरन्तर बढ़ रही है।

पैट्रोलियम
(Petroleum)

शक्ति के साधनों में कोयला के बाद पैट्रोलियम का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान है। कोयले की अपेक्षा इसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में सुविधा होती है। आधुनिक युग में संसार के बढ़ते हुए यातायात के साधनों की माँग तथा तेज रफ्तार से चलने वाले यन्त्रों की चालक शक्ति की पूर्ति पैट्रोलियम से की जाती है। औद्योगिक युग का विकास एवं विस्तार बहुत कुछ अंश तक खनिज तेल की प्राप्ति पर निर्भर करता है। इसलिए भविष्य में निरन्तर खनिज तेल का महत्व बढ़ता ही रहेगा।

चित्र—३१

पैट्रोलियम अथवा खनिज तेल एक तरल पदार्थ है जो छिद्रों में होता है। यह नवीन युग की परतदार चट्टानों में जल तथा गैस के मिश्रित रूप में मिलता है। बाद में इसे शोधन करके तेल प्राप्त किया जाता है। इसका निर्माण जीव-जन्तुओं तथा वनस्पति चट्टानों के बीच दब जाने पर रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा होता है। इसे साफ करके इससे मोम, वैसलीन, चिकनाई, पैराफीन, आदि भी बनाये जाते हैं।

उत्पादन—एशिया संसार का ३७% पैट्रोलियम उत्पन्न करता है। अकेला दक्षिणी-पश्चिमी एशिया संसार का लगभग ३४% पैट्रोलियम का उत्पादन करता है। सन् १९६७ में दक्षिणी-पश्चिमी एशिया ने ५,०५४ लाख मीट्रिक टन[1] पैट्रोलियम का उत्पादन किया जो कुल विश्व उत्पादन का २८·७% भाग था। सन् १९७२ में एशिया महाद्वीप में १०,०५० लाख मीट्रिक टन[2] पैट्रोलियम का उत्पादन हुआ जो विश्व उत्पादन

[1] *Source* : U. N Monthly Bulletin of Statistics, New York, Feb., 1969,
[2] *Source* : U. N. Statistical Year Book, New York, 1973.

हुआ जो विश्व उत्पादन (२१,२७४ लाख मीट्रिक टन) का लगभग ३७% था जिसमें दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में ८,१०० लाख मीट्रिक टन पैट्रोलियम का उत्पादन हुआ जो कुल विश्व उत्पादन का ३४% तथा एशिया के कुल उत्पादन का ९०% था। दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के प्रमुख पैट्रोलियम उत्पादक देश सऊदी अरब, ईरान, कुवैत, ईराक,
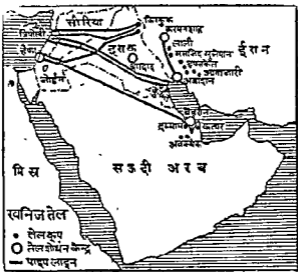
चित्र—३२

कतार, बहरीन, टर्की, इजराइल आदि, हैं। दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के इन देशों में तेल के अनेक कुएँ हैं और इन तेल भण्डारों का तेल पाइप द्वारा आपस में जोड़ दिया गया है। यह तेल पाइप भूमध्य सागर के पूर्वी किनारे के तट तक फैले हुए हैं। हैफा तथा त्रिपोली एशिया के प्रसिद्ध तेल निर्यात करने वाले केन्द्र हैं। आबादान तेल शोधन करने का संसार का सबसे बड़ा केन्द्र है तथा यह संसार का सबसे बड़ा तेल निर्यात करने वाला बन्दरगाह है।

एशिया में पैट्रोलियम का उत्पादन (१९७२)

देश	उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)
सऊदी अरब	२,८५,५८३
ईरान	२,४८,४६८
कुवैत	१,५१,०९७
ईराक	७१,९२५

सीरिया	५,८६२
कतार	२३,४६३
जापान	७११
इजराइल	६,०४८
बहरीन	३,५०८
टर्की	३,४१०
हिन्देशिया	५४,०८०
भारत	७,४८६
ब्रूनी	८,८२३
बर्मा	६६८

अन्तरराष्ट्रीय व्यापार

खनिज तेल की अन्तरराष्ट्रीय मांग अधिक है। ईरान, ईराक, सऊदी अरब, कतार तथा कुवैत प्रमुख निर्यात करने वाले देश हैं। भारत, पाकिस्तान तथा जापान प्रमुख आयात करने वाले देश हैं।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. एशिया के प्रमुख खनिज पदार्थों के भण्डार एवं उनके उत्पादन पर एक भौगोलिक लेख लिखिए।

२. शक्ति के प्रमुख साधनों के विस्तार का वर्णन करिए।

३. दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में खनिज तेल के भण्डार एवं उत्पादन की स्थिति का वर्णन करिए।

४. एशिया में कोयला तथा लोहा खनिज किन-किन देशों में अधिक मिलता है तथा इनकी सुरक्षित मात्रा की वर्तमान स्थिति क्या है?

9

एशिया—निर्माण उद्योग
(ASIA—MANUFACTURING INDUSTRY)

आधुनिक युग मशीनों का युग है। आज संसार में औद्योगीकरण की दौड़ लगी हुई है और इस दौड़ में यूरोप तथा उत्तरी अमरीका महाद्वीप एशिया से आगे निकल गये हैं। एशिया महाद्वीप प्राचीनकाल से लेकर आज तक एक कृषिप्रधान महाद्वीप ही रहा है और आज भी एशिया की लगभग ६५% जनसंख्या कृषि कार्य में लगी हुई है। एशिया महाद्वीप के भविष्य का विकास एवं एशिया महाद्वीप के निवासियों का स्तर तब तक नहीं बढ़ सकता है जब तक एशिया अपने यहाँ अधिक-से-अधिक उद्योग-धन्धों को प्रारम्भ करके औद्योगिक विकास की ओर अग्रसित न हो।

आज संसार में केवल वही देश आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली हैं जहाँ पर आधुनिक उद्योग-धन्धों का अधिकतम विकास हुआ है। संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत रूस, जर्मनी तथा ब्रिटेन इस बात के उदाहरण हैं कि उद्योग-धन्धों के बल पर कोई देश कितना ऊँचा उठ सकता है? एशिया एवं अफ्रीका महाद्वीप के अनेक देशों पर शताब्दियों तक रहने वाला ब्रिटेन का शासन इस बात की पुष्टि करता है कि उद्योग-धन्धों पर आधारित कोई देश किस स्तर तक पहुँच सकता है?

एशिया महाद्वीप के अनेक देशों पर होने वाले सैकड़ों वर्षों तक विदेशी शासन, महाद्वीप के अधिकांश निवासियों की गरीब स्थिति, एशिया का शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ा होना तथा इस महाद्वीप की अनेक राजनीतिक समस्याएँ, इस विशाल महाद्वीप के औद्योगिक विकास में बाधा के रूप में ही हैं। एशिया महाद्वीप में मानव शक्ति की कमी नहीं और कारखानों के लिए सस्ते मजदूर आसानी से मिल सकते हैं। एशिया का मानव कार्य करने में भी कुशल है, इसलिए एशिया महाद्वीप को औद्योगिक विकास की सबसे बड़ी सुविधा प्राप्त है। शक्ति के साधन एवं कच्चे पदार्थों की भी इस महाद्वीप में स्थिति ठीक है, अतः तकनीकी शिक्षा के विस्तार एवं यातायात के साधनों में वृद्धि करके एशिया महाद्वीप में अनेक वृहत् उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं।

एशिया महाद्वीप मे केवल जापान देश को ही औद्योगिक विकास करने का श्रेय मिला है। यद्यपि इस देश में उद्योग-धन्धो का प्रारम्भ बीसवी शताब्दी से ही हुआ है मगर इस छोटे से समय मे जापान ने जो औद्योगिक उन्नति की वह यूरोप के सबसे विकसित देश ब्रिटेन से कहीं अधिक थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जापान ने अपने उद्योग-धन्धों को इतना विकसित किया कि आज यह पूर्व का ब्रिटेन (Great Britain of East) कहलाता है। कुछ वर्षों से औद्योगिक क्षेत्र की ओर भारत ने भी कदम रखना प्रारम्भ किया और आशा है कि भविष्य मे भारत भी एशिया का एक प्रमुख औद्योगिक देश होगा। जापान तथा भारत के अलावा चीन देश में भी

चित्र—२३
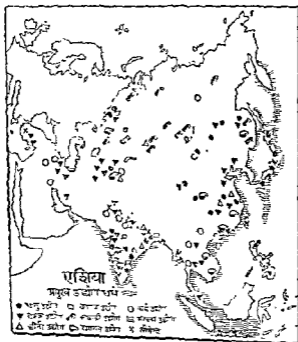
औद्योगिक विकास बड़ी तीव्रता से हो रहा है। एशिया में बीसवीं शताब्दी के मध्य से जो भी औद्योगिक प्रगति प्रारम्भ हुई है उसे देखते हुए यह धारणाएं होती है कि भविष्य में एशिया विश्व का एक महत्वपूर्ण औद्योगिक महाद्वीप बनेगा।

प्रमुख उद्योग धन्धे

लोहा और इस्पात उद्योग
(IRON AND STEEL INDUSTRY)

धातु उद्योग में सबसे महत्त्वपूर्ण उद्योग लोहा और इस्पात का उद्योग है। यह सभी उद्योगों की आधारशिला है क्योंकि प्रत्येक उद्योग के लिए मशीनों की आवश्यकता पड़ती है और मशीनों का निर्माण लोहा और इस्पात के अन्तर्गत होता है। एशिया महाद्वीप में यह उद्योग कुटीर उद्योग के रूप में प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है लेकिन आधुनिक उद्योग के रूप में इसका विकास बीसवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ है। यही कारण है कि एशिया महाद्वीप में लोहा तथा इस्पात व्यवसाय में सबसे अधिक विकास जापान, भारत, चीन तथा सोवियत एशिया में हुआ है।

जापान—यदि विश्व में किसी देश ने सबसे कम समय में लोहा एवं इस्पात उद्योग के क्षेत्र मे सबसे अधिक विकास किया है तो वह जापान ने ही किया है। जापान आज संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत रूस के बाद सबसे बड़ा लोहा एवं इस्पात उत्पादक देश है। लोहा तथा इस्पात उद्योग विश्व का औद्योगिक आधार माना जाता है। इस उद्योग के विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जापान मे इस उद्योग के लिए आवश्यक कच्चा माल अथवा कोयला तथा लोहा की कमी है फिर भी यह उद्योग बड़ी तेजी से विकास करता जा रहा है।

यद्यपि जापान में लोहा बनाने का कार्य प्राचीन काल से चला आ रहा है लेकिन आधुनिक स्तर पर जापान में लोहा एवं इस्पात उद्योग का विकास बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शुरू हुआ है। जापान में लोहा तथा इस्पात का सबसे प्रथम कारखाना १९०१ में क्यूशू द्वीप के यावता नगर में इम्पीरियल स्टील वर्क्स, यावता (Imperial Steel Works, Yawata) के नाम से खुला। इसके बाद प्रथम विश्वयुद्ध मे इस उद्योग ने अधिक उन्नति की। सैनिकों के हथियारो की आवश्यकता की पूर्ति के लिए फौजी सामान बनाया गया। १९३० मे यहाँ १,१५१ हजार मीट्रिक टन लोहा तथा २,३०० हजार मीट्रिक टन इस्पात का उत्पादन हुआ।

लोहा तथा इस्पात उद्योग में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय बडी तीव्रता से वृद्धि हुई। १९४३ मे जापान में ४,०३३ हजार मीट्रिक टन लोहा तथा ७,६६४ हजार मीट्रिक टन इस्पात का उत्पादन हुआ। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध की पराजय के बाद जापान के इस उद्योग को बड़ा धक्का लगा तथा १९४५ से लेकर १९५२ तक लोहा तथा इस्पात का उत्पादन अत्यधिक गिर गया। १९४५ से देश मे केवल ९७८ हजार मीट्रिक टन लोहा तथा १,९६३ हजार मीट्रिक टन इस्पात का उत्पादन हुआ है।

१९५२ में जापान की मित्र राष्ट्रों से मुक्ति तथा कोरिया युद्ध के कारण जापान के लोहा एवं इस्पात उद्योग ने पुनः उन्नति प्रारम्भ कर दी तथा शीघ्र ही १९५८

में जापान पुनः विश्व का प्रमुख लोहा एवं इस्पात उत्पादक देश बन गया। इस वर्ष जापान में ७,६६१ हजार मीट्रिक टन लोहा एवं १२,११८ हजार मीट्रिक टन इस्पात का उत्पादन हुआ। इसके बाद जापान के इस उद्योग में निरन्तर तीव्रता से वृद्धि होती रही तथा १९७१ में देश में विश्व का १३% कच्चा लोहा तथा १४% इस्पात का उत्पादन हुआ। इस वर्ष जापान में ७४,६३५ हजार मीट्रिक टन कच्चा लोहा तथा ८८,५५७ मीट्रिक टन इस्पात का उत्पादन हुआ।

जापान के लोहा तथा इस्पात उद्योग के अत्यधिक उन्नति कर जाने के निम्न कारण हैं :

(१) इस उद्योग के लिए कच्चा माल आसानी से आयात कर लिया जाता है। लोहा तथा कोयला क्यूशू तथा होकैडो में कुछ मात्रा में मिल जाता है, शेष लोहा मंचूरिया, भारत, मलयेशिया, आस्ट्रेलिया तथा चिली से एवं कोयला, चीन, मंचूरिया, इत्यादि देशों से आयात कर लिया जाता है।

(२) जनसंख्या अधिक होने के कारण कुशल श्रमिक आसानी से मिल जाते हैं।

(३) जल विद्युत का पर्याप्त विकास होने के कारण इस उद्योग को सस्ती विद्युत शक्ति मिल जाती है।

(४) परिवहन के विकसित साधनों से इस उद्योग को बड़ी सहायता मिली है।

(५) लोहा एवं इस्पात के कारखानों का समुद्र तटीय प्रदेश में स्थित होने के कारण कच्चे माल के आयात तथा तैयार माल के निर्यात में सुविधाएँ रहती हैं :

(६) जापान के तैयार माल के लिए एशिया के दक्षिणी-पूर्वी देशों का बाजार खुला हुआ है।

(७) वैज्ञानिक खोज तथा तकनीकी ज्ञान के कारण इस उद्योग में बड़ी तरक्की हुई है।

सामान्य रूप से जापान में लोहा तथा इस्पात का उद्योग क्यूशू, होंशू तथा होकैडो द्वीप में विकसित हो गया है, लेकिन जापान के प्रमुख लोहा तथा इस्पात उत्पादक क्षेत्र निम्न हैं :

(अ) मोजी क्षेत्र—क्यूशू द्वीप के उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित मोजी क्षेत्र सबसे बड़ा लोहा तथा इस्पात उत्पादक क्षेत्र है। जापान के कुल लोहा उत्पादन का ६०% तथा इस्पात उत्पादन का ७५% माल यहीं से तैयार होता है। इस क्षेत्र का सबसे बड़ा केन्द्र यावता है। यावता नगर में जापान का सबसे पहला आधुनिक लोहा तथा इस्पात का कारखाना 'इम्पीरियल स्टील वर्क्स, यावता' केन्द्रित हुआ था। इस क्षेत्र को कोयला नागासाकी खानों से तथा संयुक्त राज्य अमरीका से आयात करके प्राप्त हो जाता है। कोयला होकैडो की खानों से तथा भारत, मंचूरिया, मलयेशिया, आदि से आयात करके प्राप्त हो जाता है। यावता इस क्षेत्र का सबसे अधिक लोहा एवं इस्पात उत्पन्न करता है। अन्य केन्द्रों में मोजी, वाकामात्सु, तोबाता,

कोशूका, इत्यादि हैं। नागासाकी बन्दरगाह पर तैयार माल को निर्यात करने की सुविधाएँ प्राप्त हैं। इस क्षेत्र में भारी मशीनें, छोटी मशीनें, कृषि यन्त्र, जलयान, औजार, यातायात उपकरण बनाये जाते हैं।

(ब) केनेशी क्षेत्र—यह जापान का दूसरा सबसे बड़ा लोहा एवं इस्पात उत्पादन क्षेत्र है। इस क्षेत्र के प्रमुख केन्द्र टोकियो, याकोहामा, ओसाका, इत्यादि हैं। यहाँ मशीनें जलयान, साईकिल, इस्पात पिंड तथा कृषि यन्त्र बनाये जाते हैं।

(स) मुरारा क्षेत्र—यह जापान का नवीन विकासित लोहा एवं इस्पात का क्षेत्र है। यह होकैडो द्वीप के दक्षिणी सिरे पर स्थित है। इस क्षेत्र के प्रमुख केन्द्र वेनिशी, मुरारा, सपारो, इत्यादि हैं। यहाँ मशीनों का निर्माण अधिक किया जाता है।

चीन—चीन में लोहा तथा इस्पात व्यवसाय के लिए सभी भौगोलिक सुविधाएँ प्राप्त हैं। यहाँ शक्ति के साधन के रूप में पर्याप्त कोयला मिल जाता है। टंगस्टन, मोलीबडेनम, मैंगनीज, चूने का पत्थर, डोलोमाइट तथा लोहा धातु लोहा के इस्पात कारखानों के पास ही मिल जाती है। आधुनिक रूप में लोहा और इस्पात उद्योग चीन में १९०७ से प्रारम्भ हुआ जब वुहान नगर में चीन का सर्वप्रथम लोहा और इस्पात का कारखाना 'हांनयांग आयरन एण्ड स्टील वर्क्स' के नाम से स्थापित किया गया। यह यांगटिसीक्यांग की घाटी में विकसित विश्व के सबसे विशाल लोहा और इस्पात केन्द्रों में से है। इसके बाद १९१९ में जापानियों ने आनशान नगर में शोवा स्टील वर्क्स नामक एक विशाल लोहा व इस्पात के कारखाने की स्थापना की। जापानियों ने पराजय के समय इस कारखाने को नष्ट कर दिया जिसे साम्यवादी सरकार ने पुनः सोवियत रूस की सहायता से विकसित किया और इसका नाम अनाशान स्टील वर्क्स न० १ रख दिया।

इसके बाद साम्यवादी सरकार ने १९५४ में आनशान नगर में दूसरा लोहा व इस्पात का स्वचालित मशीनों वाला विशाल कारखाना स्थापित किया जिसका नाम अनाशान स्टील वर्क्स नं० २ रखा गया। चीन का चौथा विशाल लोहा एवं इस्पात का कारखना १९९६ में भीतरी मंगोलिया के पाओटो नगर में स्थापित किया गया। इसका नाम पाओटो स्टील वर्क्स रखा गया। भीतरी मंगोलिया में स्थित यह कारखाना विश्व की आधुनिक मशीनों से युक्त है। उपर्युक्त चार विशाल लोहा तथा इस्पात के कारखानों के अलावा चीन के अन्य लोहा तथा इस्पात बनाने के कारखाने टिंटसिन, पीकिंग, शंघाई, पेनकी, तानशान, क्वीचाऊ, पुर्तकिंग, पैनचिहु, तायेह, हेगचाऊ, ताइयुआन, तेलीयान, इत्यादि नगरों में हैं। इन कारखानों को सभी भौगोलिक सुविधाएँ प्राप्त हैं। चीन के इन लोहा और इस्पात कारखानों में कच्चा लोहा, इस्पात, इस्पात पिण्ड, इस्पात चद्दरें, मोटर, रेल के डिब्बे और इंजन, जलयान, वायुयान, कृषि यन्त्र, मशीनें, इस्पात एवं टंगस्टन के तार, इत्यादि सामान तैयार किया जाता है।

टर्की—टर्की के आर्थिक विकास में यहाँ पर विकसित नवीन लोहा-इस्पात के व्यवसाय ने विशेष सहायता की है। आधुनिक रूप में प्रथम लोहा और इस्पात बनाने का कारखाना १९३६ में काराबुक स्थान पर चालू हुआ। इसके बाद दूसरा कारखाना इरीगली में सन् १९६५ में प्रारम्भ हुआ। तीसरा विशाल कारखाना रूस की सहायता से इसकदरान स्थान पर बनाया गया है।

भारत—भारत में लोहा तथा कोयला दोनों ही पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। अतएव यहाँ लोहा तथा इस्पात व्यवसाय उन्नति कर गया है। लोहा तथा इस्पात के अधिकांश कारखाने पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश, मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक राज्य में हैं। लोहा तथा इस्पात के प्रमुख केन्द्र भिलाई, रूरकेला, दुर्गापुर, भद्रावती, कुल्टी, हीरापुर तथा जमशेदपुर हैं। इन केन्द्रों पर बड़ी-बड़ी लोहे की चादरें, गटर, इस्पात सिल्ल, आदि बनाये जाते हैं।

सोवियत रूस—सोवियत रूस में सरकारी संरक्षण के अन्तर्गत यह उद्योग पर्याप्त विकास कर गया है। कुजनेट औद्योगिक क्षेत्र में लोहा इस्पात व्यवसाय का सबसे अधिक विकास हुआ है। यहाँ कोयला तथा लोहा दोनों खनिज की सुविधा है। जल-विद्युत भी सस्ती है तथा मजदूर भी आसानी से मिल जाते हैं। प्रसिद्ध लोहा तथा इस्पात केन्द्र नोवोसिबिरस्क, ताशकन्द, टोमस्क, स्टेलिनस्क, इत्यादि हैं।

कोरिया—कोरिया में उत्तरी कोरिया लोहा-इस्पात के व्यवसाय में अधिक विकास कर गया है। दक्षिणी कोरिया में अभी इस क्षेत्र में विकास प्रारम्भ किया जा रहा है। उत्तरी कोरिया में चोंगजिन तथा सोंगनिम एवं दक्षिणी कोरिया में कोंगसी प्रमुख लोहा तथा इस्पात के केन्द्र हैं।

एशिया में लोहा तथा इस्पात का उत्पादन (१९७२)

देश	लोहा (हजार मीट्रिक टन)	इस्पात (हजार मीट्रिक टन)
जापान	७४,७९८	९६,९०१
चीन	२८,०००	२३,०००
भारत	७,३७७	६,७५६
उत्तरी कोरिया	२,६००	२,५००
दक्षिणी कोरिया	६	५८५
टर्की	१,१३५	१,४४२

सूती वस्त्र उद्योग
(COTTON TEXTILE INDUSTRY)

वस्त्र उद्योग में सबसे महत्त्वपूर्ण सूती वस्त्र उद्योग है। यह आज विश्व का सबसे प्राचीन एवं सबसे विकसित व्यवसाय है। एशिया महाद्वीप में सूती वस्त्र बनाने

का कार्य घरेलू रूप में प्राचीन काल से चला आ रहा है। लेकिन आधुनिक स्तर पर इस उद्योग का विकास बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से हुआ है। आज एशिया महाद्वीप इस व्यवसाय में इतनी उन्नति कर गया है कि यह विश्व में सूती वस्त्र उत्पादन क्षेत्र मे एक महत्त्वपूर्ण स्थिति रखता है। चीन, भारत तथा जापान एशिया के प्रमुख सूती वस्त्र उत्पादन करने वाले देश हैं। अन्य देशों मे पाकिस्तान, ताईवान, दक्षिणी कोरिया, टर्की, ईरान, थाईलैण्ड, आदि हैं।

भारत—भारत एशिया का महत्त्वपूर्ण सूती वस्त्र बनाने वाला देश है। यहाँ पर सूती वस्त्र के अनेक कारखाने हैं जिनमे उत्तम किस्म का सूती वस्त्र बनाया जाता है। भारत में सूती वस्त्र बनाने का व्यवसाय महाराष्ट्र तथा गुजरात राज्यों में अधिक उन्नति कर गया है। इसका मुख्य कारण यहाँ पर कपास की कृषि का क्षेत्र होना तथा सस्ती जलविद्युत का मिलना है। अहमदाबाद तथा बम्बई भारत के सबसे बड़े सूती वस्त्र बनाने वाले केन्द्र हैं। अन्य केन्द्रो में सूरत, बड़ौदा, भड़ौंच, इन्दौर, कानपुर, इत्यादि हैं।

कोरिया—उत्तरी कोरिया की अपेक्षा दक्षिणी कोरिया मे सूती वस्त्र बनाने के अधिक कारखाने हैं। दक्षिणी कोरिया मे सूती वस्त्र बनाने के लगभग १० कारखाने हैं। कागयू तथा सिओल सूती वस्त्र बनाने के प्रमुख केन्द्र है।

पाकिस्तान—पाकिस्तान मे सूती वस्त्र बनाने के लगभग ८५ कारखाने हैं। बड़े कारखानों के अलावा यहाँ पर लगभग १५ लाख हथकरघे तथा तकुए हैं जहाँ घरेलू धन्धे के रूप में सूत तथा सूती कपडा बनाया जाता है। पाकिस्तान के सूती वस्त्र तैयार करने के केन्द्र मुल्तान, कराची, लायलपुर, लाहौर, शाहदरा, गुजरात, उकाड़ा, इत्यादि हैं।

चीन—सूती वस्त्र उद्योग चीन का प्राचीन उद्योग है। प्राचीन काल से चीनी निवासी चीन में उत्पन्न होने वाली कपास से सूत तथा करघों द्वारा सूती वस्त्र का निर्माण करते चले आ रहे हैं। चीन मे इस बात के प्रमाण मिले हैं कि चीन मे आज से ३,००० वर्ष पूर्व भी सूती कपडा बनाया जाता था। यह उद्योग चीन मे १९वीं शताब्दी तक कुटीर स्तर पर रहा। नवीन एव मिल उद्योग के रूप मे सूती वस्त्र उद्योग का विकास १८९० से आरम्भ हुआ है जब चीन का सर्वप्रथम आधुनिक कारखाना शंघाई में स्थापित हुआ। इसके बाद यह उद्योग विकसित होता गया तथा टिंटसिन, शंघाई एव सिंगटाओ नगर में अनेक सूती वस्त्र निर्माण के कारखाने स्थापित हो गये। १९३३ मे देश मे १२८ सूती कारखाने थे जिनमे ४५ लाख तकुए तथा ४३ हजार करघे थे। इन कारखानों मे से ८४ चीनियों, ४१ जापानियो, २ अंग्रेजों तथा १ अमरीकनों के हाथों में थे। इनमे से अकेले शघाई नगर मे ६० कारखाने थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध मे इस व्यवसाय को बड़ी क्षति पहुँची। जापानियों ने अनेक कारखाने नष्ट कर दिये। १९४९ तक देश मे केवल ३० लाख तकुए तथा २० हजार करघे कार्य योग्य रह गये। इस महान् क्षति से सूती वस्त्र उत्पादन पर बड़ा प्रभाव

पड़ा। १९४९ के बाद साम्यवादी सरकार ने सूती वस्त्र उद्योग को पुनः विकसित किया। आज चीन में सूती वस्त्र व्यवसाय के लगभग १६० कारखाने हैं जिनमें सूती वस्त्र का वार्षिक उत्पादन लगभग ८०० करोड़ मीटर है। आज चीन केवल अपने देश की माँग की ही पूर्ति नहीं करता है बल्कि कुछ सूती वस्त्र का निर्यात भी करता है।

चीन में सूती वस्त्र के सबसे अधिक कारखाने शंघाई नगर में हैं। यहाँ चीन के लगभग ४५% कारखाने हैं। यहाँ कारखानों की कुल संख्या ७० है। अन्य सूती वस्त्र उत्पादन केन्द्रों में टिंटसिन, सिंगटाओ, सियान, चेंगचाऊ, नानकिंग, सिचेनयाग, उरुमची, पीकिंग, इत्यादि हैं।

टर्की—सूती वस्त्र उद्योग टर्की का सबसे प्राचीन एवं विकसित उद्योग है। टर्की में सूती वस्त्र बनाने के लगभग १७ कारखाने हैं। टर्की में लगभग १० लाख तकुए तथा २० हजार करघे हैं। सूती वस्त्र बनाने के प्रमुख कारखाने इस्तम्बुल, इरगली, एड्रियन, अदाना, केसरी तथा मुकरोवा में हैं। केसरी सूती वस्त्र बनाने का सबसे बड़ा केन्द्र है। यहाँ पर कपास की कृषि निकट के ही क्षेत्रों में की जाती है।

जापान—जापान के औद्योगिक क्षेत्र में सूती वस्त्र उद्योग का महत्त्व सबसे अधिक है। जापान का औद्योगिक विकास सूती वस्त्र व्यवसाय के विकास के साथ ही आरम्भ हुआ है। यहाँ सबसे पहले १८६२ में दक्षिणी क्यूशू में कोगोशिमा पर सूती वस्त्र व्यवसाय का कारखाना खुला। इसके बाद १८८० तक ओसाका तथा इसके आस-पास के नगरों में अनेक कारखाने खुल गये। १८९४-९५ में चीन के साथ प्रारम्भ होने वाले युद्ध से जापान के सूती वस्त्र व्यवसाय को विकसित होने के लिए स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही जापान में सूती वस्त्र व्यवसाय तीव्र गति से प्रगति करने लगा। प्रथम विश्वयुद्ध में इस क्षेत्र में और भी विकास हुआ और १९१० तक जापान में १४० सूती कपड़े के कारखाने खुल गये तथा इनमें १६० करोड़ वर्ग मीटर सूती वस्त्र का उत्पादन हुआ।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सूती वस्त्र व्यवसाय में निरन्तर वृद्धि हुई तथा २५ वर्ष में अथवा १९३५ तक देश में सूती वस्त्र कारखानों की संख्या दुगनी हो गयी तथा उत्पादन भी दुगना हो गया। १९३५ तक जापान में सूती वस्त्र व्यवसाय के २८५ कारखाने हो गये तथा इनमें ३६० करोड़ वर्ग मीटर सूती वस्त्र तैयार हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व तक जापान सूती वस्त्र उत्पादन में इतनी अधिक उन्नति कर गया था कि इसका विश्व के सूती वस्त्र उत्पादक देशों में तीसरा स्थान था। एशिया के समस्त बाजार में जापान के बने सूती वस्त्र बिकने लगे। इस समय जापान में १२४ लाख तकुए तथा ३३२ लाख करघे चालू थे और इनसे उत्पन्न समस्त सूती वस्त्र आसानी से खपत हो जाया करता था। इससे इस उद्योग के क्षेत्र में और भी विकास हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान की पराजय के कारण इस व्यवसाय को बड़ा धक्का लगा तथा अनेक कारखाने बन्द हो गये। युद्ध से पूर्व देश में १२४ लाख तकुए

तथा ३३२ लाख करघे थे जो युद्ध के बाद केवल २६ लाख तकुए और १५० लाख करघे रह गये। १६३५ में जहाँ ३६० करोड़ वर्ग मीटर सूती वस्त्र बना वहाँ १६४८ में केवल ७७ करोड़ वर्गमीटर सूती वस्त्र तैयार हुआ।

जापान में सूती वस्त्र उत्पादन का सबसे बड़ा क्षेत्र होन्शू द्वीप का पूर्वी तट है। ओसका जापान का सबसे बड़ा सूती वस्त्र उत्पादन केन्द्र है। यहाँ समस्त जापान के सूती वस्त्र उत्पादन का ३०% सूती वस्त्र तैयार होता है। ओसाका को जापान का मैनचेस्टर कहते हैं। अन्य सूती वस्त्र उत्पादक केन्द्र कोबे, नगोया, टोकियो, याकोहामा, किशोवादा, निशिवाकी, इत्यादि हैं।

एशिया में सूती वस्त्र उत्पादन (१६७२)

देश	उत्पादन	
भारत	८०,२४०	लाख मीटर
चीन	८६,५००	,, ,,
पाकिस्तान	६,८७०	,, ,,
टर्की	२,२८०	,, ,,
जापान	२२,६४०	लाख वर्ग मीटर
दक्षिणी कोरिया	२,०१०	,, ,,

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. "एशिया में यूरोप की अपेक्षा आधुनिक उद्योग-धन्धों का विकास कम हुआ है।" इस कथन की विवेचना करिए।
२. एशिया के लोहा-इस्पात उद्योग का विस्तार से वर्णन करिए।
३. सूती वस्त्र उद्योग का विकास और उसके उत्पादन का विस्तार में वर्णन करिए।

10

एशिया—जनसंख्या
(ASIA—POPULATION)

एशिया संसार का सबसे बड़ा महाद्वीप है। विश्व के कुल क्षेत्रफल का लगभग $\frac{1}{3}$ भाग अकेले एशिया महाद्वीप में आ जाता है।[1] लेकिन जब हम एशिया महाद्वीप की जनसंख्या का अध्ययन करते हैं तो हमें इस बात से और भी आश्चर्य होता है कि एशिया महाद्वीप में संसार के सबसे अधिक मानव निवास करते हैं। इस प्रकार विश्व के लगभग $\frac{1}{3}$ भाग पर विश्व की लगभग $\frac{2}{3}$ जनसंख्या निवास करती है। संसार में निवास करने वाले लगभग ३७८ करोड़ मानव में से एशिया में लगभग २१५ करोड़ मानव निवास करते हैं।

एशिया महाद्वीप में विश्व की केवल अधिकांश आबादी ही निवास नहीं करती है बल्कि एशिया महाद्वीप मानव का जन्मस्थान भी रहा है। यहाँ से बहुत बड़ी संख्या में मानव संसार के अन्य महाद्वीपों को भी गये हैं। इस प्रकार विश्व के अन्य महाद्वीपों के मानव बसाव पर भी एशिया महाद्वीप की जनसंख्या की अधिकता का प्रभाव पड़ा है।

आधुनिक युग में एशिया विश्व के पिछड़े हुए महाद्वीपों में गिना जाता है लेकिन इस महाद्वीप में बढ़ती हुई मानव शक्ति से हम इस बात का भली-भाँति अनुमान लगा सकते हैं कि एशिया महाद्वीप इस मानव शक्ति के बल पर भविष्य में सबसे उन्नतिशील महाद्वीप होगा। यद्यपि बढ़ती हुई जनसंख्या किसी महाद्वीप अथवा देश के विकास में बाधा उत्पन्न करती है लेकिन एशिया महाद्वीप में अभी सभी प्राकृतिक एवं आर्थिक संसाधनों (natural and economic resources) का प्रयोग नहीं किया गया है। बहुत-से भाग अभी अविकसित पड़े हैं, इससे एशिया महाद्वीप में अभी तक विकास की सम्भावनाएँ अधिक हैं। एशिया महाद्वीप में इतनी अधिक जनसंख्या मिलने के कारण इस महाद्वीप को संसार का 'मानव का घर' (Home of man) कहा जाता है।

एशिया महाद्वीप में जनसंख्या की अधिकता के साथ-साथ एक महत्त्वपूर्ण बात

[1] "Asia covers one-third of the earth."
—George B Cressey, *Asia's Lands and Peoples*, p. 10.

यह भी है कि इस महाद्वीप में कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ एशिया के बहुत अधिक मानव निवास करते हैं और अभी इन क्षेत्रों में मानव वृद्धि बड़ी तीव्रता से हो रही है। इसके विपरीत, बहुत-से क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ एशिया के बहुत कम मानव निवास करते हैं तथा इन क्षेत्रों में मानव की कमी के कारण इन भागों में छिपे प्राकृतिक साधनों का भी प्रयोग नहीं होने पाया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि एशिया महाद्वीप में जनसंख्या का वितरण बड़ा असमान है।

एशिया महाद्वीप में बढ़ती हुई जनसंख्या का एशिया की जनसंख्या के घनत्व पर भी प्रभाव पड़ता है। विश्व में केवल यूरोप महाद्वीप को छोड़कर एशिया महाद्वीप में जनसंख्या का प्रति वर्ग किलोमीटर घनत्व सबसे अधिक है। विश्व का जनसंख्या का प्रति वर्ग किलोमीटर घनत्व लगभग २८ व्यक्ति है जबकि एशिया महाद्वीप में एक वर्ग किलोमीटर में लगभग ७८ व्यक्ति निवास करते हैं। इस प्रकार एशिया महाद्वीप में जनसंख्या घनत्व भी अधिक है।

एशिया महाद्वीप में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि होने से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं। सबसे बड़ी समस्या एशिया महाद्वीप के आगे इतनी विशाल जनसंख्या की उदर पूर्ति की है। भोजन सामग्री के अभाव में एशिया महाद्वीप के कुछ देशों में जनसंख्या की वृद्धि ने सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का रूप ले लिया है जिससे अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो गयी हैं और इन बुराइयों को दूर करने के उपाय तलाश किये जा रहे हैं।

इस प्रकार एशिया महाद्वीप की जनसंख्या का विस्तार में अध्ययन करने के लिए निम्न तथ्यों का वर्णन किया जाना जरूरी है :

(१) एशिया में अधिक मानव निवास करते हैं।
(२) एशिया में जनसंख्या का असमान वितरण है।
(३) एशिया में संख्या का घनत्व भी अधिक है।
(४) एशिया में जनसंख्या की वृद्धि से उत्पन्न समस्याएँ।

१. अधिक मानव निवास केन्द्र

जैसा कि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं कि एशिया महाद्वीप में संसार की $\frac{3}{5}$ जनसंख्या निवास करती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एशिया महाद्वीप अधिक मानव निवास केन्द्र है। यही नहीं, यहाँ से बहुत बड़ी संख्या में आबादी यूरोप, अफ्रीका तथा अमरीका महाद्वीप को भी चली गयी है। अगर आबादी का यह स्थानान्तरण नहीं होता तो यहाँ जनसंख्या और भी अधिक होती। एशिया महाद्वीप में इतनी अधिक जनसंख्या मिलने के निम्न कारण हैं :

(१) एशिया संसार का सबसे बड़ा महाद्वीप है इसलिए इसके विस्तृत क्षेत्रीय विस्तार में अधिक मानव का मिलना स्वाभाविक है।
(२) एशिया महाद्वीप मानव का जन्म-स्थान रहा है। इसलिए यहाँ जनसंख्या अधिक मिलती है।

(३) एशिया महाद्वीप की जलवायु मानव निवास के अनुकूल है।

(४) एशिया में बड़े-बड़े अनेक नदियों के उपजाऊ मैदान हैं। ये मैदान मानव सभ्यता के केन्द्र भी हैं।

(५) एशिया में जनसंख्या की दर अभी अन्य सभी महाद्वीपों से अधिक है।

(६) गर्म मानसूनी जलवायु एवं चावल की खेती जनसंख्या की वृद्धि में और भी सहायक है।

(७) मनोरंजन के साधनों का अभाव, गरीबी, अशिक्षा एवं कम उम्र में शादी जनसंख्या में वृद्धि करने में और भी सहायक हुए हैं।

(८) एशिया निवासियों की देश-प्रेम या मातृ-प्रेम की भावना से भी जनसंख्या में वृद्धि हुई है।

(९) एशिया का वातावरण शान्तिमय है इसलिए यहाँ मानव स्वतन्त्र प्रकार से जीवन व्यतीत करते हैं।

२. जनसंख्या का असमान वितरण

एशिया महाद्वीप में जनसंख्या की अधिकता के साथ-साथ जनसंख्या का वितरण बड़ा असमान है। प्रसिद्ध विद्वान क्रेसी के अनुसार, "एशिया में अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ बहुत कम मानव निवास करते हैं और अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ बहुत अधिक संख्या में मानव निवास करते हैं।"[1] वास्तव में अगर एशिया की जनसंख्या के वितरण के मानचित्र को देखा जाय तो एशिया महाद्वीप का लगभग $\frac{1}{2}$ भाग, जो एशियाई रूस के अन्तर्गत है, ऐसा है जहाँ जनसंख्या बहुत कम मिलती है। दूसरी ओर चीन, जापान, भारत, आदि देशों का भाग है जहाँ जनसंख्या इतनी अधिक है कि मानव बसाव के लिए भूमि नहीं है। एशिया महाद्वीप के जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले निम्न तत्त्व हैं :

(१) धरातल—एशिया के जनसंख्या के असमान वितरण में धरातल की बनावट का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। दक्षिण एवं दक्षिणी-पूर्वी भागों में मिलने वाली नदियों के मैदानों में जनसंख्या अधिक मिलती है। उदाहरण के लिए, *यांगटिसीक्यांग* बेसिन में ३,००० मानव तक प्रति वर्ग किलोमीटर मिलते हैं।

(२) जलवायु—जलवायु का जनसंख्या के वितरण पर बहुत प्रभाव पड़ता है। एशिया के दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भागों में मिलने वाली मानसूनी जलवायु वाले देशों में जनसंख्या अधिक मिलती है। दूसरी ओर साइबेरिया की ठण्डी एवं उष्ण मरुस्थलीय प्रदेशों की गर्म जलवायु वाले भागों में जनसंख्या बहुत कम मिलती है।

[1] "Asia has many places, where people are few, and a few places where people are very many." —George B. Cressey, *Asia's Lands and Peoples*, p. 27.

डडले स्टाम्प के अनुसार, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि एशिया की आधुनिक जनसंख्या के वितरण में सबसे अधिक प्रभाव जलवायु की दशाओं का पड़ा है।"[1]

(३) मिट्टी—एशिया में जिन भागों में नदियों द्वारा लाकर बिछायी काँप मिट्टी मिलती है वहाँ जनसंख्या अधिक मिलती है क्योंकि जनसंख्या के लिए उन भागों में कृषि करने की सुविधाएँ हैं।

(४) जल की प्राप्ति—एशिया का दक्षिणी-पश्चिमी भाग शुष्क है तथा यहाँ जल के अभाव के कारण जनसंख्या भी बहुत कम मिलती है। रेगिस्तानी भागों में जनसंख्या कम मिलने का कारण जल का अभाव है।

(५) यातायात के साधन—विकसित यातायात के साधन भी जनसंख्या के वितरण पर प्रभाव डालते हैं। जापान, भारत तथा चीन में जनसंख्या की अधिकता में यहाँ के यातायात के साधनों ने भी सहयोग दिया है। सुमात्रा, मलाया तथा साइबेरिया में यातायात के साधनों के अभाव के कारण मानव को अधिक सुविधाएँ नहीं मिलने पाती हैं, अतः ऐसे स्थानों पर मानव कम निवास करना पसन्द करता है।

(६) औद्योगिक विकास—जापान ऐशिया का सबसे अधिक उद्योग-धन्धों में विकसित देश है तथा जापान में जनसंख्या भी बहुत अधिक है। इस प्रकार जिन भागों में मनुष्यों को जीवन निर्वाह के लिए रोजगार सुविधापूर्वक मिल जाता है वहाँ अधिक संख्या में मानव निवास करना पसन्द करते हैं।

(७) राजनीतिक कारण—जापान में जनसंख्या का अधिक होने का एक कारण यह भी है कि जापान सरकार ने युद्धकाल में जनसंख्या को बढ़ाने के लिए जनता को प्रोत्साहित किया था। उत्तरी कोरिया में दक्षिणी कोरिया की अपेक्षा जनसंख्या कम मिलने का कारण यहाँ की युद्ध की परिस्थितियाँ रही हैं।

(८) शान्तिपूर्ण वातावरण—एशिया अनेक धर्म, संस्कृति, सभ्यता एवं सम्प्रदायों का जन्मस्थल होने के कारण मानव जाति के लिए सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए शान्तिपूर्ण वातावरण प्रस्तुत करता है। नदी घाटियों की सभ्यता यहाँ के सामाजिक जीवन को मधुर बनाती है।

३ जनसंख्या के घनत्व की अधिकता

एशिया महाद्वीप में जनसंख्या की अधिकता के साथ-साथ जनसंख्या का प्रति वर्ग किलोमीटर घनत्व भी अधिक है। जैसा कि संसार की जनसंख्या का घनत्व २७ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जबकि एशिया का ७६ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या के प्रति वर्ग किलोमीटर घनत्व के आधार पर एशिया महाद्वीप को तीन भागों में बाँट सकते हैं :

[1] "There is no doubt that climate is the primary determining factor in the present distribution of population."
—Dudley Stamp, *Asia, A Regional and Economic Geography*, p. 50.

(१) अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र,
(२) मध्यम जनसंख्या वाले क्षेत्र,
(३) कम जनसंख्या वाले क्षेत्र।

१. अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र

एशिया महाद्वीप के दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भागों में मानव के निवास के लिए सुविधाएँ प्राप्त हैं इसलिए इस भाग में एशिया की लगभग ७०% जनसंख्या

चित्र—३४

निवास करती है। इस प्रकार एशिया महाद्वीप के लगभग $\frac{1}{4}$ भाग पर लगभग $\frac{3}{4}$ मानव निवास करते हैं। इस क्षेत्र में जापान, चीन, भारत, हिन्देशिया, पाकिस्तान, श्रीलंका, इत्यादि देश सम्मिलित हैं। यहाँ के निवासियों का प्रधान व्यवसाय कृषि करना है। इन देशों में जनसंख्या की वृद्धि की दर सबसे अधिक है। अत्यधिक जनसंख्या के केन्द्र होने के कारण यहाँ जनसंख्या का प्रति वर्ग किलोमीटर घनत्व भी अधिक है। इस क्षेत्र में आने वाले प्रमुख देशों की जनसंख्या एवं घनत्व की स्थिति अग्र प्रकार है :

देश	क्षेत्रफल (वर्ग किलोमीटर)	जनसंख्या (लाख)	घनत्व (प्रति वर्ग किलोमीटर)
चीन	९५,९६,९६१	७,८७१	८३
भारत	३२,८०,४८३	५,५०३	१६८
जापान	३,७०,०७३	१,०४६	२८३
हिन्देशिया	१४,९१,५६४	१,२४८	८४
पाकिस्तान	८,०३,८००	४७५	५८
बंगला देश	१,४२,७७६	७५०	५५६
श्रीलंका	६५,६१०	१२७	१९५
उत्तरी कोरिया	१,२०,५३८	१४२	११८
दक्षिणी कोरिया	९८,४७७	३१९	३२४

२. मध्य जनसंख्या वाले क्षेत्र

एशिया महाद्वीप में कुछ भाग ऐसे हैं जहाँ कि मानव के निवास के लिए सभी सुविधाएँ प्राप्त हैं इसलिए इन भागों में एशिया महाद्वीप की लगभग २२% जनसंख्या निवास करती है। इस क्षेत्र में बर्मा, थाईलैण्ड, मलयेशिया, टर्की, साइप्रस, हिन्दचीन आदि देश सम्मिलित हैं। यहाँ के निवासियों का प्रधान व्यवसाय कृषि करना है। जलवायु की उपयुक्त दशाओं के अनुसार ये पशुपालन का भी कार्य करते हैं। यहाँ जनसंख्या की वृद्धि की दर इतनी अधिक नहीं है जितनी भारत, चीन तथा जापान में है। इस क्षेत्र में आने वाले प्रमुख देशों की जनसंख्या एवं घनत्व की स्थिति निम्न प्रकार है।

देश	क्षेत्रफल (वर्ग किलोमीटर)	जनसंख्या (लाख)	घनत्व (प्रतिवर्ग किलोमीटर)
बर्मा	६,७८,०३३	२३७	४१
थाईलैण्ड	५,१४,०००	३५३	६६
मलयेशिया	३,२९,७४९	१०९	२९
टर्की	७,८०,५७६	३६१	४६
साइप्रस	१,२५१	६	६६

३. कम जनसंख्या वाले क्षेत्र

इस क्षेत्र में एशिया महाद्वीप का वह भाग सम्मिलित है जहाँ मानव निवास के लिए सुविधाएँ प्राप्त नहीं है। इस क्षेत्र का अधिकांश भाग या तो पहाड़ी एवं पठारी है अथवा मरुस्थलीय है। एशिया के गर्म एवं शीत मरुस्थल इसी क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। इस क्षेत्र में एशियाई रूस, मंगोलिया, अरब, ईरान, अफगानिस्तान, तिब्बत, आदि सम्मिलित हैं। इस भाग की जलवायु एवं अन्य प्राकृतिक परिस्थितियाँ मानव आवास के अनुकूल नहीं हैं। इस भाग में एशिया महाद्वीप की लगभग ८% जनसंख्या निवास करती है जबकि यह भाग एशिया महाद्वीप के लगभग

है भाग को घेरे हुए है। जनसंख्या की कमी के कारण यहाँ जनसंख्या का प्रति वर्ग किलोमीटर घनत्व भी बहुत कम है। इस भाग में कुछ स्थान तो ऐसे हैं जो मानव से शून्य हैं। इस क्षेत्र में आने वाले प्रमुख देशों की जनसंख्या एवं घनत्व की स्थिति निम्न प्रकार है :

देश	क्षेत्रफल (वर्ग किलोमीटर)	जनसंख्या (लाख)	घनत्व (प्रति वर्ग किलोमीटर)
मंगोलिया	१५,६५,०००	१२	१
सऊदी अरब	२१,४९,६९०	७९	४
ईरान	१६,४८,०००	२९७	१८
अफगानिस्तान	६,४७,४९०	१७४	२८
जोर्डन	९७,७४०	३३	३४
ईराक	८,३४,९२४	१७	२२

५. जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याएँ

एशिया महाद्वीप की जनसंख्या के वितरण का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि एशिया महाद्वीप में अधिक मानव निवास करते हैं। अतएव एशिया अत्यधिक जनसंख्या (over-populated) वाला महाद्वीप है। एशिया की लगभग ७५% जनसंख्या का प्रधान व्यवसाय कृषि करना है लेकिन फिर भी एशिया महाद्वीप की २०% जनसंख्या अपनी उदर पूर्ति के लिए अन्य महाद्वीपों से खाद्यान्न आयात करती है। एशिया में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या एशिया के लिए एक समस्या बनती जा रही है। एशिया में प्रतिवर्ष औसतन ३०% जनसंख्या बढ़ रही है। एक बात एशिया की जनसंख्या में बड़ी आश्चर्यजनक है, वह यह है कि एशिया के जिन भागों में जनसंख्या की अधिकता है उन्हीं भागों में जनसंख्या तीव्रता से बढ़ रही है। जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि का प्रभाव एशिया के सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक जीवन पर पड़ रहा है। जनसंख्या का दबाव भूमि पर बढ़ता जा रहा है और जनसंख्या की वृद्धि की दर के साथ जीवन-निर्वाह के साधनों में वृद्धि हो रही है। एशिया महाद्वीप में इस जनसंख्या की वृद्धि से निम्न बुराइयाँ उत्पन्न हो गयी हैं :

(१) अकालों का पड़ना,
(२) रहन-सहन के स्तर का गिरना,
(३) राजनीतिक अशान्ति का फैलना,
(४) युद्ध शक्ति एवं युद्ध की सम्भावना में वृद्धि,
(५) बेकारी की समस्या में वृद्धि,
(६) आर्थिक संकट की सम्भावनाएँ,
(७) विकास कार्यों का रुक जाना।

जनसंख्या की समस्या को हल करने के उपाय

एशिया की जनसंख्या का विस्तार में अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि एशिया मे बढ़ती हुई जनसंख्या से इस महाद्वीप में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं। कुछ समस्याएँ तो इतनी गम्भीर रूप धारण कर गयी हैं कि इनका प्रभाव देश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन पर भी पड़ा है। जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि ने अनेक बुराइयाँ उत्पन्न कर दी हैं अतः हमे इन बुराइयों को दूर करने के लिए जनसंख्या की तीव्र वृद्धि को रोकना पड़ेगा। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि को रोकने के लिए निम्न उपाय प्रयोग मे लाये जा सकते हैं :

(१) सन्तान उत्पत्ति पर प्रतिबन्ध,
(२) विवाह की आयु में वृद्धि,
(३) सन्तति सुधार एवं स्वास्थ्य सेवाएँ,
(४) सामाजिक शिक्षा प्रसार,
(५) भूमि का सर्वाधिक उपयोग,
(६) औद्योगिक विकास,
(७) खाद्य सामग्री का आयात,
(८) मानव प्रवास।

एशिया महाद्वीप के कुछ देशों मे उपर्युक्त उपायों मे से कुछ उपायों को अमल में लाया जा रहा है। जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि वाले देशों—भारत, चीन तथा जापान—में सन्तान उत्पत्ति पर प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है। जापान में भूमि का अधिक-से-अधिक उपयोग करने के दृष्टिकोण से गहरी खेती की जा रही है। भारत मे शिक्षा का प्रसार तथा औद्योगिक विकास किया जा रहा है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. "एशिया में अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ मानव कम संख्या में निवास करते हैं तथा कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ अधिक मानव निवास करते हैं।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
२. "विश्व की लगभग दो तिहाई जनसंख्या विश्व के लगभग एक-तिहाई भाग पर निवास करती है।" इस कथन की सत्यता पर प्रकाश डालिए।
३. एशिया में अधिक घनत्व वाले क्षेत्रों का विस्तार से वर्णन करिए।
४. एशिया महाद्वीप में जनसंख्या की वृद्धि से कौन-कौन सी बुराइयाँ उत्पन्न हो गयी हैं तथा इनको दूर करने के क्या उपाय हैं?

११

एशिया—एक राजनीतिक इकाई
(ASIA—A POLITICAL UNIT)

एशिया महाद्वीप के विशाल क्षेत्र तथा उत्तर-दक्षिण एवं पूर्व-पश्चिम विस्तार को देखने से ऐसा अनुभव होता है कि एशिया अनेक महाद्वीपों का महाद्वीप (Asia is a continent of continents) है। यह विशाल महाद्वीप, जो कि भूमध्य रेखा से लेकर उत्तरी ध्रुव तक तथा प्रशान्त महासागर से लेकर भूमध्य सागर तक फैला हुआ है, अनेक राजनीतिक विभिन्नताएँ लिये हुए है।

एक ओर इस महाद्वीप के पूर्व तथा पश्चिम में आकर्षक राजनीतिक मंच है जिस पर यूरोप के देश प्राचीन काल से नजरें उठाये हुए हैं और आज इन देशों में बढ़ता हुआ आर्थिक विकास यूरोप के लिए एक चुनौती बन गया है। ये देश हैं जापान तथा टर्की। जापान पर तो यूरोप ही नहीं बल्कि संयुक्त राज्य अमरीका की भी आँखें लगी रही थीं। ये दोनों देश एशिया के अन्य देशों से भिन्नता रखते हैं। दोनों की स्थिति एशिया महाद्वीप में पूर्व तथा पश्चिम में प्रवेश द्वार के रूप में है।

एशिया महाद्वीप के अधिकांश देशों की लगभग ६५% जनसंख्या कृषि कार्य में लगी हुई है जबकि जापान की लगभग ६५% जनसंख्या विभिन्न उद्योग-धन्धों तथा इन उद्योग-धन्धों के लिए कच्चा माल उत्पन्न करने में लगी हुई है। एशिया के पूर्वी भाग में स्थित जापान देश एशिया में प्रवेश तथा साम्राज्य विस्तार के दृष्टिकोण से उत्तम है और इसीलिए इस देश के विशाल नगर हिरोशिमा तथा नागासाकी को विश्व के प्रथम अणु प्रहार का शिकार बनना पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध की भीषण तबाही के बाद जापान ने जिस ढंग से आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के क्षेत्र में प्रवेश किया, वह अद्वितीय है।

जापान के अलावा टर्की भी एशिया के सभी देशों से भिन्न है। यूरोप तथा एशिया महाद्वीप के मध्य एशिया के पश्चिमी भाग में स्थित टर्की देश दोनों ही महाद्वीपों में टाँगें फैलाये हुए है। यूरोपीय टर्की से यूरोप की संस्कृति का रूप दिखायी देता है जबकि एशियाई टर्की से एशिया की संस्कृति की झलक दिखायी देती है। एक ही देश के अन्दर पूर्वी एवं पश्चिमी संस्कृति का मिलन एक अद्वितीय बात है। यूरोप के देश टर्की पर इसलिए भी अपनी दृष्टि लगाये हैं कि एशिया की राजनीतिक गतिविधियों

पर नजर रखने के लिए यह एक उत्तम राजनीतिक मंच है और कभी आवश्यकता पड़ने पर एशिया महाद्वीप में प्रवेश के लिए श्रेष्ठ द्वार है।

एशिया की गरीबी तथा दासता की प्रवृत्ति इस महाद्वीप के लिए एक राजनीतिक चुनौती का आधार रही है। विश्व के उन आधुनिक प्रगतिशील देशों ने, जिनको एशिया ने कभी मानव बनने का पाठ सिखाया था, एशिया की इस मजबूरी का लाभ उठाया। सहायता देने के बहाने मित्र देशों ने एशिया की राजनीति में प्रवेश किया और शोषण की भावना तथा साम्राज्य विस्तार की नीति का खुले आम एशिया के स्थल पर प्रदर्शन किया।

लेकिन राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति एवं साम्राज्य विस्तार नीति एशिया के स्थल पर अधिक दिनों तक न टिक सकी और बड़े-से-बड़े साम्राज्य का विनाश हो गया। एशिया में राजनीतिक जागृति हुई और धीरे-धीरे स्वाधीनता प्राप्त करके अनेक देश विकास की ओर अग्रसित होने लगे। आज जब एशिया के इन देशों में विकास की लहर प्रारम्भ हुई है तब भी यूरोप तथा अमरीका के विकसित देशों को चैन नहीं पड़ता और अपनी राजनीतिक चाल को, एशिया के देशों को आपस में लड़ाकर, पुनः सफल करना चाहते हैं लेकिन अब एशिया महाद्वीप में प्रवेश करके साम्राज्य स्थापित करना तो सम्भव नहीं है इसलिए एशिया के कुछ देशों को सैनिक तथा आर्थिक सहायता देकर अन्य देशों से लड़ाकर दोनों को ही पुनः पिछड़ा तथा गरीब बनाना चाहते हैं जिससे भविष्य में अधिकार करने का अवसर प्राप्त हो सके। उत्तरी एवं दक्षिणी कोरिया, उत्तरी एवं दक्षिणी वियतनाम, इजराइल एवं अरब संघ तथा भारत एवं पाकिस्तान के वर्तमान युद्ध इस बात के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

एशिया जाग रहा है, एशिया की राजनीतिक भावना जाग रही है। अब एशियावासी एशिया को ही महत्व देते हैं। एशिया के देशों में आर्थिक एवं राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित हो रहे हैं। एशिया के देशों में आर्थिक विकास हो रहा है, उत्पादन में वृद्धि हो रही है। एक-दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति आयात तथा निर्यात के सहयोग से हो रही है। भारत तथा जापान के बने सूती वस्त्र दक्षिणी-पूर्वी एशिया में बड़े लोकप्रिय हैं। थाईलैण्ड तथा हिन्देशिया भारत, पाकिस्तान तथा जापान की चावल की पूर्ति करते हैं। अनेक छोटे-छोटे देश तथा द्वीप आपस में मिलकर एक राजनीतिक संघ स्थापित कर रहे हैं जिससे उनकी सुरक्षा की कड़ी और भी मजबूत हो सके। मलयेशिया, हिन्देशिया तथा अरब संघ इस बात के प्रमाण हैं। जिस प्रकार एशिया एक भौगोलिक इकाई के रूप में उदाहरण प्रस्तुत करता है उसी प्रकार एशिया एक राजनीतिक इकाई का भी स्वरूप है।

एशिया के बृहत् खण्ड
(REALMS OF ASIA)

एशिया के विस्तार, विभिन्नता तथा राजनीतिक स्वरूप को देखते हुए ईस्ट

तथा स्पेट (East and Spate) ने एशिया को अनेक एशियाओं की उपाधि दी है और उन्होंने कहा है कि 'वस्तुत' एशिया अनेक हैं।"[1]

एशिया की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि एशिया दो हैं—एक उत्तरी एशिया तथा दूसरी दक्षिणी एशिया क्योंकि एशिया महाद्वीप के मध्यवर्ती पर्वत एवं पठार क्रम ने इन दोनों भागों के बीच अनेक विषमताएँ उत्पन्न कर दी हैं। उत्तरी एशिया दक्षिणी एशिया के प्रभावों से अछूता है तथा दक्षिणी एशिया उत्तरी दशाओं से कोई सम्पर्क नहीं रखता है। जलवायु का अध्ययन इस बात को और भी स्पष्ट करता है।

चित्र—३५

एशिया की राजनीतिक स्थिति को देखते हुए स्पष्ट होता है कि एशिया दो हैं—एक एशियाई एशिया तथा दूसरी यूरोपीय एशिया। एशियाई एशिया वह एशिया

[1] "There are indeed many Asias ...".
—East and Spate, *The Changing Map of Asia*, p. 4.

है जो राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से एशियाई गुणों से युक्त है। यूरोपीय एशिया वह है जो यूरोप की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक झलक से प्रभावित है।

नार्टन गिन्सबर्ग (Norton Ginsburg)

नार्टन गिन्सबर्ग ने भी एशिया दो बतलाये हैं :[1]

(१) एशियाई एशिया (Asian Asia),

(२) गैर-एशियाई एशिया (Non-Asian Asia)।

एशियाई एशिया में सोवियत एशिया को छोड़कर एशिया का शेष समस्त भाग है और यह वह भाग है जो सांस्कृतिक दृष्टिकोण से एशियाई लक्षणों का प्रतीक है।

गैर एशियाई एशिया में केवल सोवियत एशिया का भाग है क्योंकि यह शेष एशिया की अपेक्षा रूसी संस्कृति से अधिक प्रभावित है। इस भाग में मिलने वाला सांस्कृतिक वातावरण यूरोपीय रूस के रंग में रंगा हुआ है इसीलिए गिन्सबर्ग ने इस भाग को रूसी हृदय (Russian heartland) के नाम से पुकारा है।

एशिया का विस्तार से वर्णन करने के दृष्टिकोण से गिन्सबर्ग ने एशिया को पाँच वृहत् खण्डों में बाँटा है जो निम्न हैं :

(१) दक्षिण-पश्चिमी एशिया (South-West Asia),

(२) दक्षिणी एशिया (South Asia),

(३) दक्षिणी-पूर्वी एशिया (South-East Asia),

(४) पूर्वी एशिया (East Asia),

(५) सोवियत एशिया (Soviet Asia)।

गिन्सबर्ग द्वारा दिये गये एशिया के वृहत् खण्डों में सबसे बड़ी कमी इस बात की है कि इन्होंने अफगानिस्तान को दक्षिणी एशिया में माना है जबकि सांस्कृतिक रूप से अफगानिस्तान दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के देशों से मिलता है जैसा कि क्रेसी महोदय ने अपने वर्गीकरण में दिया है। इसके अलावा इन्होंने उच्च एशिया को पूर्वी एशिया में सम्मिलित कर दिया है जबकि जापान तथा मंगोलिया में किसी भी प्रकार की समानता न होते हुए एक ही खण्ड में रखना मान्य नहीं है। इसके साथ-साथ एक कमी इस बात की भी है कि इन्होंने दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के देशों के वर्णन में भूमध्य सागर स्थित एक महत्वपूर्ण देश साइप्रस का वर्णन नहीं किया है।

[1] "Just as there are several Asias definable in physical terms, so there are several Asias that can be distinguished on the basis of cultural differences. Most significant among these is the paradoxical division between the Asia that is Asian and the Asia that is not."
—Norton Ginsburg, *The Pattern of Asia*, p. 21.

ईस्ट और स्पेट (East and Spate)

ईस्ट और स्पेट ने एशिया को निम्नांकित छः वृहत् खण्डों में बाँटा है :

(१) दक्षिणी-पश्चिमी एशिया (South-West Asia),
(२) भारत और पाकिस्तान (India and Pakistan),
(३) दक्षिणी-पूर्वी एशिया (South-East Asia),
(४) सुदूरपूर्व (The Far East),
(५) सोवियत एशिया (Soviet Asia),
(६) उच्च एशिया (High Asia)।

ईस्ट और स्पेट के वृहत् खण्डों में गिन्सबर्ग की भाँति सबसे बड़ी कमी इस बात की है कि अफगानिस्तान को भारत तथा पाकिस्तान के साथ एक ही खण्ड में सम्मिलित कर दिया गया है। ईस्ट और स्पेट ने अफगानिस्तान को भारत और पाकिस्तान के साथ रखने के कारणों को स्पष्ट नहीं किया है।

डडले स्टाम्प (Dudley Stamp)

एल० डडले स्टाम्प ने ईस्ट तथा स्पेट की भाँति एशिया के वृहत् खण्डों का अपना वर्गीकरण दिया है। इन्होंने अफगानिस्तान को भारत तथा पाकिस्तान खण्ड में न मानकर दक्षिणी-पश्चिमी एशिया खण्ड में सम्मिलित किया है। अफगानिस्तान के बारे में स्टाम्प महोदय के विचार ईस्ट और स्पेट की अपेक्षा क्रेसी से अधिक मिलते हैं। स्टाम्प महोदय ने एशिया के इन वृहत् खण्डों का कोई विस्तार में वर्गीकरण नहीं दिया है और अपनी पुस्तक में जो एशिया खण्डों (Realms of Asia) का मानचित्र दिया है उसी पर यह लिखा है कि The Asian Realms after the East and Spate, लेकिन यह मानचित्र ईस्ट तथा स्पेट के मानचित्र से भिन्न है। स्टाम्प के मानचित्र के अनुसार एशिया के छः वृहत् खण्ड हैं :

(१) दक्षिणी-पश्चिमी एशिया (South-West Asia),
(२) भारत और पाकिस्तान (India and Pakistan),
(३) दक्षिणी-पूर्वी एशिया (South-East Asia),
(४) चीन और जापान (China and Japan),
(५) सोवियत एशिया (Soviet Asia),
(६) उच्च एशिया (High Asia)।

स्टाम्प के वर्गीकरण की सबसे बड़ी कमी यह है कि इन्होंने एशिया के इन वृहत् खण्डों का विस्तार में वर्णन नहीं किया है।

जी० बी० क्रेसी (G. B. Cressey)

क्रेसी ने अपने एशिया के वृहत् खण्डों को पाँच भागों में बाँटा है, ये वृहत् खण्ड निम्न हैं :

(१) चीन-जापान (China-Japan),
(२) सोवियत संघ (Soviet Union),

(३) दक्षिणी-पश्चिमी एशिया (South-Western Asia),

(४) भारत-पाकिस्तान (India-Pakistan),

(५) दक्षिणी-पूर्वी एशिया (South-Eastern Asia),

क्रैसी महोदय के वर्गीकरण में दो कमियाँ हैं। पहली कमी यह है कि क्रैसी महोदय ने चीन-जापान खण्ड में उच्च एशिया को सम्मिलित करके इस खण्ड को बहुत वृहद् बना दिया है। दूसरी कमी यह है कि सोवियत संघ के एशियाई रूस तथा यूरोपीय रूस को एक साथ सम्मिलित कर दिया गया है जबकि एशिया के खण्डों का वर्णन करते समय यूरोपीय रूस का सोवियत एशिया संघ में मिलाकर अध्ययन करना उचित नहीं है क्योंकि दोनों भाग अलग-अलग यूरोप तथा एशिया महाद्वीप के भाग हैं।
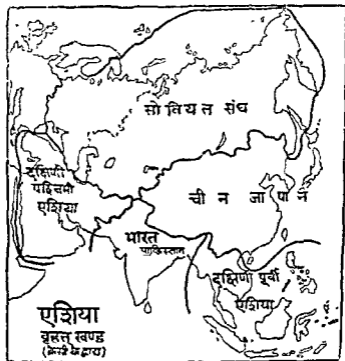
चित्र—३६

उपर्युक्त विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत एशिया के वृहत् खण्डों के वर्गीकरण का अध्ययन करने के पश्चात् हम एशिया के बारे में अपना एक पृथक् वर्गीकरण दे सकते

इस नवीन वर्गीकरण में इन कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है, वे तथ्य निम्न हैं :

(१) अफगानिस्तान को ईरान की भाँति दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में सम्मिलित किया जाना जरूरी है क्योंकि अफगानिस्तान की प्राकृतिक तथा राजनीतिक दशाएँ दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के देशों से मिलती हैं।
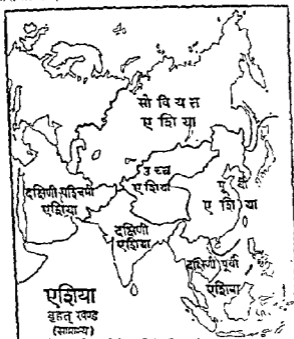
चित्र—३७

(२) उच्च एशिया एक पृथक् खण्ड इसलिए बनाया जाना आवश्यक है कि यह एक तो एशिया का हृदय है, दूसरे इसे पूर्वी एशिया के साथ इसलिए सम्मिलित नहीं किया जा सकता है क्योंकि जापान तथा कोरिया की सभी रूप-रेखाएँ तिब्बत तथा मंगोलिया से भिन्न हैं। इसके अलावा उच्च एशिया को पूर्वी एशिया के साथ मिला देने से पूर्वी एशिया एक बड़ा खण्ड बन जाता है जिसका अध्ययन करने में कठिनाइयाँ होती हैं।

(३) चीन-जापान तथा सुदूरपूर्व खण्ड के ये नाम अधिक उपयुक्त नहीं लगते हैं इसलिए अध्ययन की सुगमता के आधार पर इसका नाम पूर्वी एशिया उपयुक्त रहेगा।

(४) इसी प्रकार भारत-पाकिस्तान का नाम दक्षिणी एशिया दिया जाना चाहिए।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हम एशिया के बृहत् खण्डों का एक सामान्य वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं जिसमें एशिया महाद्वीप को निम्न छः भागों में बाँट सकते हैं :

(१) दक्षिणी-पश्चिमी एशिया (South-West Asia),
(२) दक्षिणी एशिया (South Asia),
(३) दक्षिणी-पूर्वी एशिया (South-East Asia),
(४) पूर्वी एशिया (East Asia),
(५) उच्च एशिया (High Asia),
(६) सोवियत एशिया (*Soviet Asia*)।

एशिया का राजनीतिक स्वरूप

एशिया महाद्वीप को बृहत् खण्डों में बाँटकर उनका अध्ययन करने से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है क्योंकि भूगोल के विद्यार्थी को एशिया के खण्डों के

चित्र—३८

अध्ययन की अपेक्षा इस महाद्वीप के प्रादेशिक भूगोल के अन्तर्गत एशिया राजनीतिक के रूप अथवा देशों का अध्ययन करना है अतएव एशिया महाद्वीप के सभी देशों का पृथक्-पृथक् अध्ययन करने के लिए एशिया के सभी देशों का भौगोलिक वर्णन विस्तार में किया जाना जरूरी है।

क्रम संख्या देश	क्षेत्रफल (वर्ग किलो०)	जनसंख्या (लाख)	घनत्व (प्रति वर्ग किलो)	राजधानी
१. टर्की	७,८०,५७६	३६१	४६	अंकारा
२. साइप्रस	९,२५१	६	६९	निकोसिया
३. जोर्डन	९७,७४०	२३	२४	अम्मान
४. इजराइल	२०,७००	३०	१४६	तेल अवीव
५. लेबनान	१०,४००	२८	२७६	बेरुत
६. सऊदी अरब	२१,४९,६९०	७९	४	रियाद
७. कुवैत	१७,८१८	८	४७	कुवैत
८. सीरिया	१,८५,१८०	६४	३५	दमिश्क
९. ईराक	४,३४,९२४	९७	२२	बगदाद
१०. ईरान	१६,४८,०००	२९७	१८	तेहरान
११. अफगानिस्तान	६,४७,४९७	१७४	२७	काबुल
१२. पाकिस्तान	८,०३,८००	४७२	५८	इस्लामाबाद
१३. बंगला देश	१,४२,७७६	७५०	५५६	ढाका
१४. श्रीलंका	६५,६१०	१२७	१९५	कोलम्बो
१५. भारत	३२,८०,४८२	५,५०३	१६८	दिल्ली
१६. नेपाल	१,४०,७९७	११२	८०	काठमाण्डू
१७. बर्मा	६,७८,०३३	२३७	४१	रंगून
१८. थाईलैण्ड	५,१४,०००	३५३	६९	बैंकाक
१९. लाओस	२,३६,८००	३०	१३	वियेनटियेन
२०. कम्बोडिया	१,८१,०३५	६०	३६	नामपेन्ह
२१. उत्तरी वियतनाम	१,५८,७५०	२१५	१३६	हनोई
२२. दक्षिणी वियतनाम	१,७३,८०९	१८८	१०८	सैगोन
२३. हिन्देशिया	१४,९१,५६४	१,२४८	८४	जकार्ता
२४. मलयेशिया	३,२९,७४९	१०६	२९	कुआलालम्पुर
२५. फिलिपाइन	३,००,०००	३७९	१२६	मनीला
२६. जापान	३,७०,०७३	१,०४६	२८३	टोकियो
२७. चीन	९५,९६,९६१	७,८७१	८२	पेकिंग
२८ ताईवान	३५,९६१	१३८	३५९	टैपे
२९. दक्षिणी कोरिया	९८,४७७	३१९	३२४	सिओल
३०. उत्तरी कोरिया	१,२०,५३८	१४२	११८	प्योंगयांग
३१. मंगोलिया	१५,६५,०००	१२	१	उर्गा
३२ सोवियत एशिया	१,६८,३१,०००	६०७	४	मास्को

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. एशिया महाद्वीप की विशालता पर भौगोलिक लेख लिखिए।

२. एशिया के राजनीतिक स्वरूप को बतलाइए।

३. एशिया को भिन्न-भिन्न वृहत् खण्डों में बाँटा गया है। किसी भी एक विद्वान द्वारा दिये गये वृहत खण्डों का विस्तार से वर्णन करिए।

भारत का प्रादेशिक भूगोल
[REGIONAL GEOGRAPHY OF INDIA]

सामान्य परिचय

प्राचीन धर्म ग्रन्थों के अनुसार (विशेषत विष्णु पुराण) पृथ्वी के उस भू भाग को, जो हिमाद्रि, हिमावत या हिमालय पर्वत से लगाकर सेतुबन्ध (वर्तमान हिन्द महासागर) तक फैला है और जिसमे भारतीय सन्तति बसती है, भारत या भारतवर्ष कहा गया है।

उत्तरयत् समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तत् भारत नाम, भारती यत्र सन्तति ॥

—विष्णु पुराण

प्राचीन काल मे आर्यों की भरत नाम की शाखा ने अनार्यों और दूसरे आर्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इसी शाखा के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ गया। वैदिक आर्यों ने उत्तर-पश्चिम की ओर बहने वाली नदी को सिंधु (Sindhu) कहकर पुकारा। बाद मे ईरानियो ने इसे ही हिन्दू (Hindu) नदी की सज्ञा दी और इस देश को हिन्दुस्तान कहा। यूनानियो ने इसी नदी को इण्डोस (Indos) और रूमानियो ने इण्डस (Indus) तथा इस देश को इण्डिया कहा। यही देश आज विश्व मे भारत (Bharat) के नाम से विख्यात है।[1]

आकृति और विस्तार
(SHAPE AND EXTENT)

भारत की आकृति पूर्णत त्रिभुजाकार न होकर चतुष्कोणीय है जो केवल दक्षिणी भागो को छोड़कर, अन्य सभी ओर प्रकृति द्वारा इतनी अच्छी तरह परिसीमित है जितना सम्भवत कोई अन्य देश नही।[2] यह पूर्णत उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। यह महान देश विषुवत् रेखा के उत्तर मे ८°४' से ३७°६' उत्तरी अक्षाश और ६८°७' से ९७°२५' पूर्वी देशान्तर के बीच फैला है।[3] कर्क रेखा इसके मध्य से होकर निकलती है जो देश को महाद्वीपीय और उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों मे विभाजित करती है। ८२½° पूर्वी देशान्तर देश के लगभग मध्य से होकर निकलता है। उससे पूरब और पश्चिम के भागो के समय मे प्रति देशान्तर ४ मिनट का

1 Majumdar, R C *The Vedic Age* 1957, p 105, and Sen, G E. *Cultural Unity of India* 1954 p 9
2 Stamp L. D and Gilmour S. C., *Chisholm's Handbook of Commercial Geography*, 1954 p 554
3 *National Atlas of India* 1957, p 1, *India* 1973, p 1.

अन्तर रहता है। दक्षिण का भाग शनैः-शनैः सँकरा होता गया है जो कुमारी अन्तरीप के निकट पहुँचने पर एक बिन्दु के आकार का हो जाता है। इसका धुर दक्षिणी भाग विषुवत् रेखा से केवल ८७६ किलोमीटर दूर पड़ता है। अतएव, इसका दक्षिणी भाग उष्णकटिबन्ध और उत्तरी भाग समशीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित है।

भारत की विशालता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि पूरब से पश्चिम तक यह २,९३३ किलोमीटर और उत्तर से दक्षिण तक ३,२१४ किलोमीटर है। इसकी स्थलीय सीमा १५,२०० किलोमीटर और समुद्री सीमा ६,०८३ किलोमीटर है। इसका क्षेत्रफल ३२,८०,४८३ वर्ग किलोमीटर है।[1] क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व का सातवाँ बड़ा देश है। अन्य ६ बड़े देश क्रमशः रूस, कनाडा, ब्राजील, संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और चीन हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यह इंगलैण्ड का १२ गुना, जापान का ८ गुना, कनाडा का एक-तिहाई और रूस का एक-सातवाँ भाग है।

स्थिति और उसका महत्त्व
(LOCATION AND ITS IMPORTANCE)

भारत की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह हिन्द महासागर के उत्तरी सिरे पर इस प्रकार स्थित है कि यह पूर्वी गोलार्द्ध के मध्य में पड़ता है। यूरोप और अमरीका के पश्चिमी भागों से भारत लगभग समान दूरी पर पड़ता है।[2] अन्तरराष्ट्रीय सामुद्रिक मार्ग इसके तट से होकर निकलते हैं। इस प्रकार पूर्वी देशों से पश्चिमी और पश्चिमी देशों से सुदूर पूर्व की ओर जाने वाले प्रमुख व्यापारिक मार्ग भारत से होकर निकलते हैं। भारत से पूर्व और दक्षिण-पूर्व को ये मार्ग चीन, जापान, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड को, पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में संयुक्त राज्य अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिमी यूरोप और पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका को, और दक्षिण में श्रीलंका, सिंगापुर, मलयेशिया, इण्डोनेशिया, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड को जाते हैं।

स्वेज नहर के बन जाने के बाद भारत की स्थिति का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है क्योंकि इसके द्वारा पश्चिमी यूरोपीय देशों और भारत के पश्चिमी तटीय बन्दरगाहों के बीच लगभग ४,८०० किलोमीटर दूरी कम हो गयी है। स्वेज नहर और पूर्व में मलक्का जल-संयोजक से आरम्भ होने या उनमें से निकलने वाले सभी जलयान भारत से होकर निकलते हैं।

[1] *India*, 1974, p. 1.

[2] कलकत्ता से सिंगापुर होकर हांगकांग और याकोहामा पहुँचने में लगभग १५ दिन लग जाते हैं। इसी प्रकार बम्बई से अदन और स्वेज नहर होते हुए यूरोपीय देशों को पहुँचने में भी लगभग उतना ही समय लगता है। कलकत्ता से उत्तरी अमरीका का पश्चिमी तट उतना ही दूर पड़ता है जितना बम्बई से उसका पूर्वी तट।

इस प्रकार भारत पश्चिमी कला-कौशल प्रधान देशों को पूर्वी खेतिहर देशों से मिलाने के लिए एक शृङ्खला का कार्य करता है।

अपनी ऐसी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण ही सुदूर अतीत में भी भारत का सम्पर्क तत्कालीन सभ्य विश्व से था। उस समय प्रमुख व्यापारिक स्थल मार्गों का केन्द्र भारत ही था। पूरब की ओर चीन, अनाम, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, सुमात्रा, जावा, बाली, आदि देशो तक तथा पश्चिम की ओर अरब, फारस, मिस्र, यूनान और रोम तक भारतीय व्यापारियो के जहाज विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ (गर्म मसाले, मोती, हीरा, जवाहरात, सोना, रेशमी और सूती वस्त्र, आदि) ले जाया करते थे। दक्षिणी भारत के चोल, पाड्य, पल्लव, आदि राज्यों ने तो पूर्वी देशो मे अपने उपनिवेश तक स्थापित किये थे, जहाँ भारतीय सस्कृति के चिह्न अब भी उपलब्ध होते हैं।

वायुमार्गों की दृष्टि से भी भारत की स्थिति उत्तम कही जा सकती है। पश्चिमी देशों से सुदूर पूर्व को जाने वाले (चीन, जापान, इण्डोनेशिया, आस्ट्रेलिया, आदि देशो से पश्चिमी यूरोप को) वायुयान भारत में होकर ही निकलते हैं। दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व के हवाई अड्डे हैं जिन पर ठहरकर वायुयान ईंधन लेते हैं।

भारत की स्थिति का महत्त्व इस बात से और भी स्पष्ट हो जाता है कि इसके निकटवर्ती महासागर का नाम इसी के नाम पर हिन्द महासागर पड़ा है।

स्थलीय स्थिति की दृष्टि से भी भारत का महत्त्व है। दक्षिणी एशिया के तीन बड़े प्रायद्वीपों मे भारत सबसे बड़ा और अन्य दो प्रायद्वीपों (अरब तथा हिन्दचीन) के बीच में है।

इस प्रकार अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के दृष्टिकोण से भारत की स्थिति बहुत ही उपयुक्त है।

सीमाएँ
(BOUNDARIES)

भारत की सीमाएँ दो प्रकार की हैं : (i) प्राकृतिक, एवं (ii) कृत्रिम।

प्राकृतिक सीमाएँ

उत्तर मे हिमालय पर्वत श्रेणी, दक्षिण-पश्चिम में अरब सागर और दक्षिण-पूर्व में बगाल की खाड़ी तथा धुर दक्षिण में हिन्द महासागर इसकी प्राकृतिक सीमाएँ बनाते हैं। हिमालय की विशाल शृङ्खला भारत को रूस और मध्य एशिया के अनेक देशो से पृथक रखती है। इस ओर कुछ दर्रे भी है (जोजिला, आराला, चारडिंग-ला, इमिस-ला, कराकोरम, आदि) किन्तु वे अधिक ऊँचाई के कारण सदैव हिम से ढके रहते हैं। अतः भारत और इन देशों के बीच व्यापार सम्बन्ध स्थल की ओर से प्रायः नगण्य-सा है। केवल उत्तरी-पश्चिमी भाग मे (जो अब पाकिस्तान के अन्तर्गत है) अनेक नीचे दर्रे

स्थित हैं (खैबर, गोमल, बोलन, टोची, कुर्रम, आदि) जिनमें होकर प्राचीन काल मे आर्य, मगोल, तुर्क, हूण, आदि अनेक आक्रामक जातियाँ मध्य और पश्चिमी एशिया से देश मे घुसी और उनमे से अनेक स्थायी रूप से यहीं बस गयीं। पूर्व की ओर हिमालय की श्रेणियाँ यद्यपि नीची हैं किन्तु सघन वनों और गहरी तंग घाटियो और तीव्रगामी नदियो के कारण भारत और बर्मा के बीच स्थल मार्गों द्वारा अधिक आवागमन नहीं होता। सामरिक दृष्टि से अरुणाचल की ओर दसेला, तुगा तथा योग्यप दर्रे तिब्बती क्षेत्र की ओर और नाम्नी, डिफू, कुमजांग, ह्यूंगन तथा चौकान दर्रे बर्मा की ओर महत्त्वपूर्ण हैं।

भारत मे आक्रामक न केवल पश्चिम की ओर से ही आये वरन् उनके आगमन में हिन्द महासागर द्वारा भी बड़ी सहायता मिली। यह महासागर तीन ओर से विशाल भूखण्डो द्वारा घिरा हुआ है। इसके उत्तर में दक्षिणी एशिया की छत, पश्चिम मे अफ्रीका महाद्वीप और पूरब में बर्मा, दक्षिण-पूर्व में मलयेशिया तथा इण्डोनेशिया, आदि द्वीप हैं। अंग्रेज, डच, फ्रांसीसी, पुर्तगाली व्यापारी इसी महासागर से होकर भारत के तटीय क्षेत्रों तक पहुँच पाये और कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, सूरत, कोचीन, पलिम, कारीकल, दामन, द्यू, पाण्डिचेरी, आदि स्थानो पर अपनी कोठियाँ स्थापित कर सके।

कृत्रिम सीमाएँ

पश्चिम में भारत और पाकिस्तान के बीच की सीमा कृत्रिम एवं खुली है। भारत और पाकिस्तान के बीच सतलज और रावी नदियाँ कृत्रिम सीमा बनाती हैं। अमृतसर जिले मे रावी नदी और दक्षिण की ओर मुड़कर फिरोजपुर जिले में सतलज नदी इसकी सीमा बनाती हैं। फिरोजपुर के आगे भारत की सीमा राजस्थान की अन्तिम सीमा है जो लगभग १,१२० किलोमीटर लम्बी चली गयी है। असम भारत की पूर्वी सीमा बनाता है।

भारत की स्थलीय सीमा पर उत्तर में नेपाल, सिक्किम, भूटान और तिब्बत (चीन), पूर्व में बगला देश एवं बर्मा और पश्चिम मे पाकिस्तान देश हैं। कश्मीर की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर अफगानिस्तान और रूस की सीमा भी देश को छूती है।

भारत और चीन के बीच की सीमा

भारत और चीन के बीच की सीमा रेखा को मैकमोहन रेखा कहते हैं। यह रेखा १९१४ में शिमला मे एक त्रिदलीय सम्मेलन मे (जिसमे भारत, चीन और तिब्बत के दूत उपस्थित थे) निर्धारित की गयी थी। यह भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमा रेखा है जो २,६४० मील से अधिक लम्बी है। कुछ स्थानो पर नदियों ने और कुछ स्थानों पर हिमालय पर्वत की चोटियो ने इसे प्राकृतिक रूप से निर्धारित किया है। सीमा के पास के क्षेत्र पहाड़ी और बर्फीले होने के कारण बहुत ही कम बसे हैं।

यह सीमा रेखा तीन स्पष्ट भागों मे विभक्त है -

(क) पश्चिमी क्षेत्र—इसका दो-तिहाई भाग तिब्बत और कश्मीर के लद्दाख

क्षेत्र में है। यह सीमा १८४२ में कश्मीर राज्य के प्रतिनिधि और तिब्बत के दलाईलामा तथा चीन सम्राट के प्रतिनिधियों की एक सन्धि के अनुसार तय की गयी थी। यह सीमा रेखा लगभग १,७७० किलोमीटर (१,१०० मील) लम्बी है जो भारत, चीन और अफगानिस्तान के मिलन-बिन्दु से आरम्भ होती है और जम्मू-कश्मीर राज्य को तिब्बत और सिक्यांग से अलग करती है।

(ख) मध्य क्षेत्र—इसकी सीमा हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश को तिब्बत से अलग करती है। यह सीमा रेखा हिमालय के जल-विभाजक द्वारा अंकित है। इसको सामान्य सन्धियों और परम्परागत स्वीकृति से मान्यता प्राप्त है। इस रेखा का उल्लेख अप्रैल १९५४ में भारत-चीन समझौते में किया गया है।

(ग) पूर्वी क्षेत्र—सिक्किम और तिब्बत में एक प्राकृतिक सीमा है जो जल-विभाजन के सहारे फैली है। यह सीमा भूटान से पूरब की ओर भारत-चीन-बर्मा की सीमा के संगम तक लगभग २२५ किलोमीटर (१४० मील) फैली है। इसका निर्धारण १९१३-१४ के त्रिदलीय सम्मेलन में किया गया था।

भारत और पाकिस्तान के बीच की सीमा

भारत और पाकिस्तान के बीच हुए १९७२ के युद्ध के उपरान्त पाकिस्तान और भारत के बीच नियन्त्रण रेखा का निर्धारण इस प्रकार किया गया :

(क) मुनव्वर तवी उत्तर-पश्चिम ६०५५५० से नियन्त्रण रेखा उत्तर-पश्चिम की ओर से झागड के ३ मील पश्चिम तक जाती है (छम्ब पाकिस्तान में है)। यहाँ से यह उत्तर-पूर्व की ओर मोठोधारा एन० आर० २६१९ तक जाती है तथा उसके बाद उत्तर और उत्तर-पश्चिम की ओर एन० आर० ०५२९९९ पर पुंछ नदी तक जाती है (पुंछ के दक्षिण-पश्चिम में लगभग छह मील)।

(ख) इसके बाद नियन्त्रण रेखा फिर उत्तर-पूर्व की ओर मुड़ती है और फिर गुलमर्ग सेक्टर में उत्तर की ओर जरनो गली (भारत में) तक जाती है। इसके बाद पश्चिम की ओर मिट्टी गली (भारत में) से होती हुई परकिंठो तक (पाकिस्तान में), इसके बाद उड़ी के उत्तर-पश्चिम में लगभग ७ मील दूर छोटा काजी नाग (भारत में) से गुजरती हुई लीपा घाटी में (भारत में) कैयान तक, इसके बाद नियन्त्रण रेखा पश्चिम की ओर रिछमार गली तक जाती है, कटरा की गली पाकिस्तान में तथा बाजल रिज पहाड़ी और चाक मुकाम चोटियाँ भारत में है।

(ग) रिछमार गली से नियन्त्रण रेखा टिथवाल के पश्चिम से गुजरती हुई उत्तर की ओर केरन के तीन मील उत्तर तक जाती है, फिर उत्तर-पूर्व में लुण्डा गली (भारत में) तक, फिर पूर्व की ओर केल सेक्टर (पाकिस्तान में) हुरमार्गी गाँव तक कंदालवाला सेक्टर (भारत में) दुरमत तक और १४२२६, १५४६० चोटियाँ तथा मिनीमार्ग सेक्टर में कारीबल गली तक (सभी भारत में) जाती हैं। इसके बाद

नियन्त्रण रेखा नेरिल (भारत में), ब्रेलमान (पाकिस्तान में) और कारगिल सेक्टर में चेत के उत्तर में होती हुई तरटक सेक्टर में चोरबाटला तक जाती है ।

(घ) इसके बाद नियन्त्रण रेखा उत्तर-पूर्व की ओर थाग (भारत में) तक जाती है और फिर पूर्व की ओर मुड़कर हिमनदों तक जाती है ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारत की विशिष्ट भौगोलिक सीमाओं ने इस देश को एशिया के अन्य भागों से अलग एक निश्चित रूप प्रदान कर एक भौगोलिक इकाई बनाया है । तीन ओर पर्वतीय सीमाओं और चौथी ओर महासागर ने इसे घेरकर एक सुरक्षित गढ़-सा बना दिया है । पर्वतीय शृङ्खलाओं के फलस्वरूप एशिया महाद्वीप के स्थलीय प्रभाव और एशिया के अन्य देशों में होने वाली राजनीतिक उथल-पुथल भारत पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकी है । अपनी विशिष्ट सीमाओं के कारण ही प्रो० चिशोल्म का यह कथन सर्वथा सत्य प्रतीत होता है कि "विश्व में केवल बर्मा को छोड़कर अन्य ऐसा कोई देश नहीं है जिसको प्रकृति ने इतनी अच्छी प्रकार परिसीमित किया हो जितना भारत को ।" वास्तव में यह देश विषमताओं से भरा है किन्तु जिन बातों में यह निकटवर्ती देशों से भिन्न है उन्हें सरलता से भुलाया नहीं जा सकता ।

भारत विभिन्नताओं का देश है

भारत अनेक विशेषताओं का देश (Land of Peculiarities) कहा जा सकता है। यह कथन निम्न तथ्यों द्वारा सत्य प्रतीत होगा :

भारत का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का लगभग २·४% है किन्तु यहाँ विश्व की १५% जनसंख्या पायी जाती है।[1] चीन को छोड़कर यह विश्व का सबसे घना बसा देश है। १ अप्रैल, १९७१ की जनगणना के अनुसार यहाँ अनुमानत. ५४·७४ करोड़ मानव निवास करते हैं।

भारत के क्षेत्रफल के सम्बन्ध मे विशेष रूप से स्मरणीय तथ्य यह है कि इस देश का लगभग समस्त भू-भाग ऐसा है जो भारतवासियों द्वारा उपयोग मे ले लिया गया है, जबकि अन्य देशों के साथ यह बात लागू नहीं होती। रूस और कनाडा के विशाल भाग में वर्ष भर लगातार हिम जमा रहता है। आस्ट्रेलिया और अफ्रीका का अधिकांश भाग गर्म मरुस्थल है तथा ब्राजील के काफी बड़े भाग मे घने वन पाये जाते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका मे ११ लाख वर्गमील से अधिक विस्तार वाले राज्य पहाड़ी या मरुस्थलीय हैं। इन सब देशों के विपरीत भारत का लगभग ४/५वाँ भाग मनुष्य के उपयोग में लाया जा रहा है। उत्तरी हिमालय प्रदेश को छोड़कर (जिसका क्षेत्रफल कुल भारत का १/८ है) कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ मनुष्य ने भूमि का थोड़ा-बहुत उपयोग न किया हो।

भूगर्भिक दृष्टि से भी भारत में बड़ी विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। दक्षिण का प्रायद्वीप विश्व की प्राचीनतम कठोर चट्टानों द्वारा निर्मित है जिनमें खनिजों का बाहुल्य पाया जाता है जबकि हिमालय विश्व का नवीनतम पर्वत होते हुए भी सबसे ऊँचा पर्वत है, जिसकी अधिकतर चट्टानों में जीवांश पाये जाते हैं जो यह स्पष्ट करते हैं कि यह पर्वत कभी महासागर के गर्भ में था। सतलज और गंगा का मैदान हिमालय की नदियों द्वारा लायी गयी उपजाऊ मिट्टी से बना है जिसमें खनिज पदार्थों का नितान्त अभाव है।

सम्पूर्ण भारत विषुवत् रेखा के उत्तर मे स्थित है। यद्यपि इसका उत्तरी आधा भाग समशीतोष्ण कटिबन्ध मे और दक्षिणी आधा भाग उष्ण कटिबन्ध में है फिर भी सामान्यतः यह देश एक उष्ण मानसूनी देश (Tropical Monsoon Country) कहा जाता है। सम्पूर्ण देश मे ऋतुओं का क्रम एक-सा ही पाया जाता है क्योंकि इसकी जलवायु पर उत्तर में हिमालय और दक्षिण मे हिन्द महासागर का प्रभाव

[1] Census of India 1971, Provisional Population Totals, Paper I of 1971, p. 37.

पड़ता है। हिन्द महासागर की ओर से उठने वाले मानसून भारत को उष्ण मानसूनी जलवायु प्रदान करते हैं।

उत्तर से दक्षिण तक अधिक विस्तार होने के कारण देश की भौतिक अवस्थाओं में बड़ी भिन्नता पायी जाती है। कहीं गगनचुम्बी पर्वत मिलते हैं (जो अधिकांश समय तक हिम से ढके रहते हैं) तो कहीं नदियों की गहरी और उपजाऊ घाटियाँ। कहीं पठार हैं तो कहीं लहलहाते खेत। नदियों की भी यहाँ अधिकता है अत देश धन-धान्य से परिपूर्ण है।

कपास, तम्बाकू और चावल के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में दूसरा है। चमड़े और लाख के उत्पादन में भारत सर्वप्रथम स्थिति में है। यहाँ विश्व में सबसे अधिक चाय, तिलहन, गन्ना पैदा किया जाता है। यहाँ के वनों में ४,००० से भी अधिक किस्म की लकड़ियाँ मिलती हैं। अभ्रक, मैंगनीज और कच्चे लोहे के उत्पादन में भी भारत की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। यद्यपि कृषि भारत का प्रमुख उद्योग है किन्तु यहाँ खनिज खोदना, मछलियाँ पकड़ना और वृहद् उद्योगों में कार्य करना भी उल्लेखनीय है। अणु सम्बन्धी खनिज और जल-विद्युत शक्ति की सम्भावित मात्रा देश के समृद्धशाली होने का संकेत करती है।

जलवायु सम्बन्धी विषमताएँ भी भारत में उपलब्ध हैं। चेरापूँजी जैसे अत्यधिक वर्षा वाले (१,२०० सेण्टीमीटर से भी अधिक) भाग और पश्चिमी राजस्थान जैसे शुष्क मरुस्थलीय प्रदेश (१५ सेण्टीमीटर से कम वर्षा), बंगाल की जल-पूर्ण भूमि और पंजाब के अर्द्ध-शुष्क बलुही मैदान तथा पश्चिमी घाट के अधिक वर्षा वाले भाग और दक्कन के वृष्टिछाया के प्रदेश सभी इस विषमता के सूचक हैं। इन विषमताओं का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देश के आर्थिक और मानवीय जीवन पर पड़ा है।

यहाँ कई धर्मों और जाति के लोग पाये जाते हैं। पारसी, सिक्ख, ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम, जैन, बौद्ध तथा जनजातियाँ सभी मिलती हैं। कहा जाता है कि प्रति २४० किलोमीटर के अन्तर पर भाषा, रहन-सहन और रीति-रिवाजों में भी अन्तर हो जाता है। देश में २२५ भाषाएं बोली जाती हैं जिनमें १४ भाषाएं मुख्य हैं। देश में असंख्य मन्दिर, मस्जिदें, गिरजाघर और गुरुद्वारे पाये जाते हैं। जैन और बौद्ध धर्म का जन्म गंगा की घाटी में हुआ है। भारत की वैदिक संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से है। यहाँ सभ्यता का प्रकाश सबसे पहले फैला था क्योंकि जिस समय विश्व के आधुनिक महान देश बर्बर एवं असभ्य थे उस समय भी भारत विश्व का गुरु था। यहाँ सभ्यता के विकास के फलस्वरूप उद्योग-धन्धे पूर्णता को पहुँच चुके थे। यहाँ के व्यापारी अपने जलयानों में भरकर विभिन्न वस्तुएँ दूरस्थ देशों को ले जाकर धन प्राप्त करते थे।

विश्व के सुन्दरतम भवन निर्माण के नमूने भारत में ही पाये जाते हैं। आगरा का ताजमहल, फतेहपुर सीकरी के महल, मैसूर में सबसे ऊँची एक ही पत्थर की बनी गोमटेश्वर की मूर्ति; खजुराहो, कोणार्क, मदुराई और कांजीवरम के भव्य

मन्दिर, दिल्ली का कुतुबमीनार; रामेश्वरम् का सबसे लम्बा मन्दिर का दालान (१,२०० मीटर); विश्व का सबसे लम्बा प्लेटफार्म (६३० मीटर) सोनपुर में तथा सबसे बड़ा गुम्बज बीजापुर में है।

उपरोक्त विभिन्नताओं और विशेषताओं के कारण ही पाश्चात्य विद्वानों ने इसे एक उप-महाद्वीप (Sub-continent) की संज्ञा दी है। डॉ० क्रेसी का तो यहाँ तक कथन है कि भारत को महाद्वीप कहलाने का उतना ही अधिकार है जितना यूरोप को।[1] उनके इस कथन के निम्न आधार रहे हैं :

(१) भारत का क्षेत्रफल बहुत बड़ा है (विश्व का २·४%);

(२) भारत में जनसंख्या अधिक (विश्व का लगभग १५%); होने के साथ-साथ अनेक भाषा-भाषी एवं धर्मावलम्बी पाये जाते हैं।

(३) भारत और पाकिस्तान मिलकर उत्तर की ओर एक ऐसी प्राकृतिक सीमा से घिरे हुए हैं जिसके कारण प्राचीन काल में इनका सम्पर्क उत्तरी देशों से स्थलीय मार्गों के कारण कम हो सका।

(४) भारत के भीतर भी भौतिक परिस्थितियों सम्बन्धी अनेक अवरोध पाये जाते हैं (यथा पर्वत, पठार, नदियाँ, मरुस्थल, बीहड़ वनक्षेत्र, आदि) जिनके फलस्वरूप उत्तर और दक्षिण तथा पश्चिम और पूर्व के बीच निवासियों की भाषाओं, बोलियों, वेशभूषा, खान-पान एवं रहन-सहन में भारी अन्तर पाया जाता है।

कुछ भूगोलवेत्ताओं के अनुसार भारत में पहले कभी राजनीतिक एकता नहीं रही। समूचे देश का नाम भी एक नहीं रहा। उत्तरी भारत आर्यावर्त और दक्षिणी भारत दक्षिण-पथ कहलाता था और यहाँ पर विभिन्न संस्कृतियों एवं विरोधी धर्मों का विकास हुआ है।

किन्तु यह कथन सत्य नहीं है। भारत जैसे विशाल देश का क्षेत्रफल लाखों वर्ग किलोमीटरों में फैला है। अतः प्राकृतिक दशा, जलवायु, वनस्पति, निवासियों के रंग-रूप, बोलचाल, खान-पान, रहन-सहन और रीति-रिवाज में अन्तर पाया जाना स्वाभाविक ही है। उत्तर में विस्तृत मैदान हैं तो दक्षिण में ऊबड़-खाबड़ भूमि। कहीं लहलहाते खेत दृष्टिगोचर होते हैं तो कहीं जलविहीन मरुस्थल। कहीं जनसंख्या भूमि के अनुपात में अधिक है तो कहीं बहुत ही विरली। किन्तु इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत एक विशेष प्रकार की संस्कृति द्वारा बँधा है। सर्वत्र देश में मूलभूत एकता दिखायी पड़ती है। सम्पूर्ण देश जलवायु की दृष्टि से सामान्यतः एक गर्म देश है जहाँ ऋतुओं का एक ही क्रम पाया जाता है। समूचे देश पर मानसूनों का प्रभाव एक-सा ही पड़ता है। कृषि पूरे देश का एक राष्ट्रीय उद्योग है। कृषि के तरीके भी एक-से ही हैं। चाहे कृषक हिन्दू हो या मुस्लिम, सूखा पड़ने पर दोनों को

[1] Cressy, G. B., *Asias' Lands and Peoples*, 1948, p. 411.

ही समान रूप से इसका फल भुगतना पड़ता है। यहाँ के निवासियों का दृष्टिकोण सदैव आध्यात्मिक रहा है। यहाँ के निवासियों के विचार-स्वातन्त्र्य के कारण ही कभी-कभी विभिन्न विचारधाराएँ दिखायी पड़ती हैं किन्तु वह भी प्रायः पूरे देश में। फलतः भारत को एक महान देश कहना उतना ही अधिक उपयुक्त है जिस प्रकार कि रूस, कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका, ब्राजील, चीन, आदि देशों को उनकी विभिन्नताओं के होने पर भी हम केवल देश ही कहते हैं, उप-महाद्वीप नहीं। अतः भारत भी एक देश है। केवल अंग्रेज भूगोलवेत्ताओं ने ही इस बात पर जोर दिया कि भारत एक उपमहाद्वीप है। उनके ऐसा मानने का मुख्य कारण अंग्रेज सरकार की फूट डालने की नीति थी जिसके आधार पर ही अन्ततः भारत का विभाजन हुआ।

उपर्युक्त विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में एक सर्वव्यापी एकता के दर्शन होते हैं। यह एक स्पष्ट इकाई है। अनेकता में एकता (*Unity among Diversity*) भारतीय संस्कृति का एक विशिष्ट तत्व है। इसका मुख्य कारण यही है कि यह सदैव से ही एक समन्वयवादी देश रहा है। इसकी इस समन्वयवादिता का मुख्य आधार देश की भौगोलिक एकता के कुछ विशिष्ट लक्षण हैं। शताब्दियों से यह एक देश रहा है। प्रकृति ने भी इसे स्वाभाविक रूप से एक पृथक इकाई बनाया है, जैसा कि इस उक्ति से स्पष्ट होगा :

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिंकुरु॥

देश के चारों कोनों में स्थापित देवालय हमारी एकता प्रदर्शित करते हैं। हमारे धार्मिक स्थान उत्तर में अमरनाथ से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम् और कन्याकुमारी तक फैले हैं। जगद्गुरु शंकराचार्य ने अपने चारों मठों की स्थापना उत्तर (बद्रीनाथ), दक्षिण (रामेश्वरम्), पूर्व (जगन्नाथ) और पश्चिम (द्वारका) के चारों छोरों पर करके देश की एकता को सुदृढ़ बनाया है। भारत के विभिन्न प्रदेश इस देश के शरीर के विभिन्न अंग हैं और किसी भी अंग का अलग होना अस्वाभाविक ही लगता है।

प्राचीन काल से ही भारतीय सम्राटों की आकांक्षा चक्रवर्ती बनकर सम्पूर्ण भारत पर राज्य करने की रही है। चाणक्य ने इसी प्रकार सार्वभौमिक राज्य का स्वप्न चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में साकार करने का प्रयत्न किया था। राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ भी इसी राजनीतिक एकता के चिह्न थे। अशोक, समुद्रगुप्त, अकबर प्रभृति सम्राटों ने पूरे भारत पर अपनी सत्ता स्थापित कर देश की एकता को सुदृढ़ बनाया है। अंग्रेजी शासनकाल में भी केन्द्रीय सरकार ने देश को राजनीतिक एकता दी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की जो राजनीतिक एकता बनी है, वह स्तुत्य है।

भारत का सांस्कृतिक जीवन भी इसकी मूलभूत एकता का प्रतीक है। यह अत्यन्त प्राचीनकाल से ही अनेक जातियों और धर्मावलम्बियों की संगमस्थली रही है। विभिन्न जातियों के आगमन, अनेक सभ्यताओं के सम्पर्क और विभिन्न विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान से भारतीय संस्कृति बनती गयी और उसकी मूल आत्मा में अन्तर नहीं आ पाया। प्राचीनकाल से ही ऋषियों और मनीषियों ने भारतीय सांस्कृतिक जीवन की विभिन्न धाराओं को एकता प्रदान की है जिसके मूल में भारतीयों की उच्च धार्मिक वृत्ति रही है।

इस प्रकार यद्यपि भारत अपने बाहरी जीवन में अनेक प्रकार की विभिन्नता लिये हुए है किन्तु उसकी तह में हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक आन्तरिक एकता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में :

हेथाय आर्य, हेथाय अनार्य, हेथाय द्राविड़ चीन।
शक, हूण, दल, पाठान, मोगल, एक देह हलो लीन॥

अर्थात् यहाँ आर्य हैं, अनार्य हैं, यहाँ द्रविड़ और चीनी लोग हैं। शक, हूण, मुगल, पठान और न जाने कितनी अन्य जातियों के लोग यहाँ आये और इस देश की देह में मिलकर मानोलीन हो गये।

प्रो० डोडवेल के शब्दों में, "भारतीय संस्कृति एक विशाल महासागर के समान है जिसमें अनेक दिशाओं से विभिन्न जातियाँ और धर्म रूपी नदियाँ आकर विलीन होती हैं।" यही कारण है कि भारत में विभिन्न विचारों का सुन्दर समन्वय हुआ है और हमारी संस्कृति एक मिली-जुली संस्कृति कही जाती है।

डॉ० सिद्धालंकार के शब्दों में, "यहाँ अनेक संस्कृतियाँ इस प्रकार मिश्रित हो गयी हैं कि आज यह कहना अत्यन्त कठिन है कि संस्कृति का कौन-सा रूप इसका अपना है और कौन सा पराया। मानवशास्त्र की दृष्टि से भारत में विभिन्न नृ-वंश एवं प्रजातियाँ आपस में आदान-प्रदान द्वारा आत्म-विलय करती रही हैं जिसमें उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व समाप्त होकर एक नया ही व्यक्तित्व प्रकट हो गया है।"

अन्त में कहा जा सकता है कि भारत जैसे विशाल देश की भौतिक संरचना और वनस्पति एवं जलवायु में अन्तर होने के कारण एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में होने वाली उपज, पशु-पक्षी, मानव के रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान एवं रीति-रिवाज में अत्यधिक विषमता पायी जाती है- किन्तु सभी एक विशेष संस्कृति से बँधे हैं। वास्तव में यह एक बड़ा देश है, जादू की पिटारी है, रंग-बिरंगे पशु-पक्षियों का पिंजड़ा है तथा प्रकृति और पुरुष का अजायबघर है जिसकी समता विश्व के किसी अन्य क्षेत्र से करना सम्भव नहीं है।

भारत सदैव से ही एक अखण्ड भौगोलिक इकाई रहा है जिसमें पश्चिम की ओर से आने वाले आक्रमणकारी अपनी विदेशी संस्कृति को लेकर यहाँ आये और भारतीय संस्कृति में आत्मसात हो गये किन्तु देश के सभी भागों में एकसूत्रता मिलती है चाहे कोई हिन्दू हो या मुस्लिम, सिक्ख हों या ईसाई, बंगाली हो या मद्रासी, भारत सभी के लिए पवित्र मातृभूमि है जिस पर सभी को गर्व है।

धनी देश किन्तु निर्धन निवासी

भारत के प्राकृतिक एवं आर्थिक सर्वेक्षण का अध्ययन करने से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि प्रकृति भारत के प्रति अत्यन्त उदार रही है। इन्हीं प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता के कारण भारत सोने की चिड़िया' कहलाता था। प्रकृति द्वारा भारत को हिमालय पर्वत और विशाल उत्तरी मैदान एवं दक्षिण के प्रायद्वीप एक बहुत बड़े उपहार के रूप में मिले हैं। यहाँ की पर्वत-श्रेणियाँ, जलवायु, भौगोलिक स्थिति, मिट्टी एवं खनिज पदार्थ और वन सम्पत्ति सभी देश को समृद्ध बनाने में समर्थ हैं। फिर भी दुर्भाग्यवश यहाँ के निवासी प्रकृति की इस अनुपम देन का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाये हैं। फलस्वरूप वे निर्धन बने रहे हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ० वीरा एन्सटे ने ठीक ही कहा है, "भारत निर्धन लोगों से बसा एक धनी देश है।"[1] (India is a rich country inhabited by the poor)। यही बात एक अन्य विद्वान डॉ० डार्लिंग द्वारा कही गयी है, "भारत की सबसे बड़ी विशेष बात यह है कि इसकी भूमि उपजाऊ है और उसके निवासी निर्धन हैं।"

वास्तव में भारत एक धनी देश है। इस कथन की पुष्टि इन तथ्यों से होती है: (१) भारत की भूमि शस्यश्यामला है जिसमें अनेक प्रकार की फसलें पैदा की जाती हैं। (२) यहाँ कई खनिज विपुल मात्रा में पाये जाते हैं। अनुमानतः २,१६० करोड़ टन कच्चा लोहा, ११ करोड़ टन मैंगनीज, १४ करोड़ टन क्रोमाइट, १ करोड़ टन फ्लोराइड, ४७,१७३ लाख टन सोना, २४·६ करोड़ टन ताँबे के भण्डार निहित हैं। *जिप्सम (११८ करोड़ टन), अभ्रक चट्टानी नमक (८० लाख टन), बॉक्साइट* (२२·७ करोड़ टन), इल्मेनाइट (१० करोड़ टन) और अणु खनिज पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।[2] कोयला भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। (३) प्रकृति द्वारा भारत को विभिन्न प्रकार के वनों के रूप में प्रचुर सम्पत्ति मिली है। इनसे मुख्य और गौण उपजों के रूप में व्यावसायिक महत्त्व की अनेक वस्तुएं प्राप्त होती हैं। उष्ण कटिबन्ध की कठोर और शीत कटिबन्ध की मुलायम और नर्म लकड़ियाँ अनेक उद्योगों के विकास में सहायक हैं। (४) भारत की नदियों में अथाह जलराशि बहती है जिनमें अधिकांश सदावाहिनी हैं। इनके जल से सिंचाई, जलविद्युत उत्पादन कर कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। परिवहन के लिए आन्तरिक मार्गों में

[1] Anstey, V., *Economic Development of India*, 1951.
[2] *India*, 1973, pp. 286-87.

१४,००० किलोमीटर की लम्बाई में नदियों में नावें चलायी जा सकती हैं। (५) शक्ति के समाधनों के रूप में कोयला और जलशक्ति के स्रोत पर्याप्त (४११ लाख किलोवाट) हैं। अणु-शक्ति के निर्माण के लिए आवश्यक खनिज (यूरेनियम और थोरियम) भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। पैट्रोलियम के भी देश में बड़े भण्डार अनुमानित किये गये हैं। (६) *मानव संसाधनों में भारत बड़ा धनी देश है, विश्व की १४% जनसंख्या* अर्थात् चीन के बाद सबसे अधिक मानव शक्ति यहीं पायी जाती है। (७) देश में अनेक बड़े बैंकों, बीमा कम्पनियों, आर्थिक संस्थाओं की कमी नहीं है। बिड़ला, टाटा, डालमिया, कमलापत, रुईया, जयपुरिया, सिंहानियां प्रभृति बड़े पूँजीपतियों और व्यवसायियों के पास उद्योगों के लिए पूँजी पर्याप्त मात्रा में मिल सकती है। (८) *कच्चा माल तथा कारखाने के उत्पादित माल को देश के आन्तरिक क्षेत्रों तक पहुँचाने के* लिए सड़कों (१२,८७,००० किलोमीटर) और रेलमार्गों (६०,०६७ किलोमीटर) का जाल-सा बिछा है। (९) विश्व में सबसे अधिक पशु भारत में ही मिलते हैं जिनसे चमड़ा, खालें, दूध, आदि की प्राप्ति के अतिरिक्त कृषि के लिए श्रम मिल जाता है। (१०) भारत के निवासी कठोर परिश्रम करने वाले और साहसी हैं।

इन्हीं सब तथ्यों के आधार पर यह मानना असत्य नहीं होगा कि वास्तव में *भारत एक धनी देश है। डॉ० एन्सटे के शब्दों में :* "*India has been favoured*

... desert of the ... est Rajasthan ... sses a great *diversity of animals, vegetation and forest products and minerals* ranging from the heavily coated Kashmir sheep to the camel of the *western Rajasthan and elephant and tiger of Bengal ; from wheat,* fruits and fir trees of the north to the rice and jute fields of west Bengal ; sugarcane plantations of Bihar and U. P., tea plantations

भारत की इस विपुल प्राकृतिक सम्पदा के कारण ही भारत को भविष्य का देश (Land of Future) कहा जाता है। यहाँ आर्थिक और औद्योगिक विकास की तीव्र सम्भावनाएँ हैं जिनका स्पष्ट प्रमाण पंचवर्षीय योजनाओं के क्रियान्वयन में मिलता है किन्तु इतना सब होने पर भी भारत के निवासी निर्धन हैं। भारत संयुक्त राज्य, कनाडा, आस्ट्रेलिया अथवा पश्चिमी यूरोप की तुलना में अर्द्ध-विकसित देश है क्योंकि भारत में प्रति व्यक्ति आय बहुत ही कम होने के साथ-साथ उत्पादन भी कम है। एक अर्द्ध-विकसित देश का प्रमुख लक्षण है देश में दो बातों का कम या अधिक अनुपात में एक साथ मिलना। एक ओर देश की विशाल मानव-शक्ति का

अपूर्ण और अर्द्ध उपयोग होना अथवा कम होना और दूसरी ओर उपयोग में लाये बिना पड़े प्राकृतिक साधनों का बाहुल्य। स्वभावतः प्राकृतिक सम्पदा और मानव-शक्ति का पूर्ण रूप से उपयोग न होने अथवा कम होने से निर्धनता व्याप्त रहती है। यही बात भारत में पायी जाती है। फलस्वरूप आय की कमी से निवासियों के रहन-सहन का स्तर नीचा है, अधिकांश को पेट भरने को भोजन और तन ढकने को वस्त्र तक नहीं मिल पाते।

भारत में प्राकृतिक सम्पदा का पूर्ण शोषण नहीं किये जाने के कई राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक कारण उत्तरदायी रहे हैं; जैसे :

(१) काफी लम्बे समय तक भारतीय अर्थ-व्यवस्था सामन्तवादी ढाँचे से प्रभावित रही है जिसके अन्तर्गत निर्धन कृषकों का जमींदारों द्वारा शोषण होता रहा है।

(२) शताब्दियों तक भारत पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ा रहा था। अंग्रेजों की तत्कालीन नीति अपने देश के हित में किन्तु भारत के हित के प्रतिकूल थी, जिसके फलस्वरूप भारत के उद्योगों को हानि पहुँचाई गयी और देश से कच्चे माल का निर्यात किया जाने लगा। अंग्रेजों की जानबूझकर स्वतन्त्र व्यापार नीति ने भी भारतीय उद्योगों पर कुठाराघात किया।

(३) भारत के निवासी भाग्यवादी एवं सन्तोषी स्वभाव और 'सादा जीवन उच्च विचार' मानने वाले रहे हैं। अतः भौतिक प्रगति के लिए वे सदा हतोत्साहित रहे हैं।

(४) पिछली ७ दशाब्दियों में जनसंख्या बड़ी तीव्र गति से बढ़ती रही है जिससे औद्योगिक विकास में बाधा पड़ी है। सम्पत्ति के उत्पादन का केवल १०% ही आर्थिक विकास के लिए मिल पाता है, शेष उपभोग में आ जाता है। फलतः प्राकृतिक साधनों का समुचित विदोहन नहीं हो सका है।

(५) भारतीय अर्थ-व्यवस्था की आधारशिला वर्षा है। मानसूनी वर्षा सदैव अनिश्चित एवं अपर्याप्त होती है। फलतः प्राकृतिक प्रकोप भी आये दिन पड़ते रहते हैं जो कृषि के उत्पादन को बढ़ने नहीं देते।

(६) भारत में अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण यहाँ के निवासी उत्पादन की नवीन पद्धतियों और प्रविधियों का पूरा लाभ नहीं उठा पाते।

(७) देश की ७०% जनसंख्या कृषि में लगी है किन्तु कृषि बहुत ही पिछड़ा हुआ उद्योग है, यद्यपि राष्ट्रीय आय का लगभग ४४% कृषि से ही प्राप्त होता है। इसके विपरीत, उद्योगों का असन्तुलित ढंग से विकास हुआ है। अधिकतर कुटीर उद्योग अथवा उपभोक्ता उद्योगों का विकास पूंजीगत उद्योगों की अपेक्षा अधिक हुआ है। भारी उद्योगों का आज भी देश में अभाव है।

(८) कृषि के पिछड़ेपन तथा उद्योगों के असन्तुलित विकास के फलस्वरूप बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी आर्थिक विकास में सबसे बड़ी बाधा है। प्रथम योजना के आरम्भ में केवल ५० लाख व्यक्ति बेरोजगार थे किन्तु चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्त में यह संख्या १२५ लाख हो गयी। इसके अतिरिक्त देश में श्रमिकों की एक बड़ी संख्या ऐसी भी है जिसे पूरे समय के लिए काम नहीं मिलता है। अतः मानव संसाधनों का पूरा उपयोग नहीं हो रहा है।

(९) अभी भी परिवहन के साधन देश की आवश्यकता की तुलना में पर्याप्त नहीं हैं, विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में। इसी प्रकार सन्देशवाहन के साधनों का विकास भी पूरी तरह नहीं हो पाया है।

(१०) भारत में न केवल प्रति व्यक्ति पीछे राष्ट्रीय आय कम है वरन् उसका वितरण भी दोषपूर्ण है। यद्यपि देश की राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय १९४८ में ८,६५० करोड़ रुपये और २४९ रुपये से बढ़कर १९७०-७१ में ३६,३११ करोड़ और ६४५ रुपये हो गयी किन्तु अन्य देशों की तुलना में अब भी बहुत कम है। यह संयुक्त राज्य अमरीका में ८,७८४ रुपये, ब्रिटेन में ४,००० से ऊपर और कनाडा में ६,०५० रुपये है। दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि भारत की ७०% जनसंख्या के पास राष्ट्रीय आय का केवल ३५% है, जबकि ३०% जनसंख्या के पास कुल आय का ६५% है।

वस्तुतः स्पष्ट होता है कि भारत की अर्थ-व्यवस्था पिछड़ी हुई एवं अर्द्ध-विकसित स्थिति में है जिसके फलस्वरूप भारतीय निर्धन हैं। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति की सुरक्षा और विकास का उचित रूप से विदोहन किया जाये। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत देश के आर्थिक विकास को दृढ़ बनाया जा रहा है और वह दिन दूर नहीं होगा जब भारत की गणना विश्व के समृद्ध देशों में की जाने लगेगी।

तट रेखा और द्वीप

भारत के क्षेत्रफल अथवा लम्बाई-चौड़ाई के विचार से इसकी तट रेखा बहुत छोटी है। विश्व के किसी भी महत्त्वपूर्ण देश (जो समुद्र से लगा हुआ है) के साथ इसकी तुलना करने पर उपरोक्त तथ्य सत्य प्रतीत होता है। यहाँ की तट रेखा बहुत ही कम कटी-फटी है। लगभग ६,०८३ किलोमीटर लम्बी समुद्र तट रेखा बहुत ही कम स्थानों में खाड़ी द्वारा टूटी है।[1] यह तट रेखा प्रायः सीधी और सपाट है अर्थात् लम्बी तथा गहरी खाड़ियों का तट रेखा पर पूर्ण अभाव है। यही कारण है कि तट रेखा पर सामान्यतः अच्छे बन्दरगाहों और पोताश्रयों की कमी है। भारत के पूर्वी अथवा कारोमण्डल तट के लिए तो यह बात विशेष रूप से सही है। पूर्वी तट की ओर बंगाल की खाड़ी में अनेक बड़ी-बड़ी नदियाँ प्रवेश करती हैं और इस दृष्टि से हम और अच्छे बन्दरगाहों की कमी कुछ भ्रम पैदा कर देती है परन्तु इसका कारण समझ पाना कठिन नहीं है। जो नदियाँ बंगाल की खाड़ी में प्रवेश करती हैं वे अपने मुहानों पर बालू की दीवारें खड़ी कर देती हैं जिससे धाराएँ छिछली हो जाती हैं। अन्ततोगत्वा नौका-सचालन के लिए अयोग्य सिद्ध होती हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय तट पर बन्दरगाहों की कमी का एक और कारण है। अच्छे बन्दरगाहों की कमी अफ्रीका, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और ऐसे ही अन्य प्राचीन अवशिष्ट भागों (जो कभी गोंडवाना भूमि से सम्बद्ध थे) के तटों पर भी पायी जाती है।[2] दूर-दूर की भूमि में उनके आकारों के बीच ऐसी समानता निश्चय ही उनके प्राचीन इतिहास और क्रमिक विकास की ओर इंगित करती है। एडवर्ड स्वैस के अनुसार पुरा-कल्प युग (paleozoic era) में दक्षिण में एक विशाल भूखण्ड था जो गोंडवाना भूमि के नाम से प्रसिद्ध था। इस गोंडवाना भूमि में समस्त अफ्रीका, मैडागास्कर (वर्तमान मैलेगासी), प्रायद्वीपीय भारत, आस्ट्रेलिया, टस्मानिया, एण्टार्टिका, फॉकलैण्ड और सारा दक्षिणी अमरीका (केवल पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी भाग को छोड़कर) सम्मिलित था।[3] यह मृचन्य खटी-युग (cretaceous times) के अन्त में छिन्न-भिन्न हो गया। यह महाद्वीप दक्षिणी गोलार्द्ध की समस्त कठोर भूमियों

[1] Morrison, C., *Scottish Geographical Magazine*, Vol XXI, 1905, p 457

[2] Frew, David, *A Regional Geography of the Indian Empire*, p 176

[3] Quoted from the article in the *Encyclopaedia Britannica*, 14th ed., p 514

(rigid masses) को एक विस्तृत भूखण्ड मिलाये हुए था ।[1] यह प्राचीन भूखण्ड एक लम्बे भूगर्भिक काल तक समुद्र के ऊपर शुष्क, कठोर और स्थिर भूमि बना रहा । अतएव इन सभी भागों में अच्छे बन्दरगाहों की कमी का यही मूल कारण है । भारतीय तट की दूसरी विशेषता उसके चारों ओर द्वीपों की कमी होना है । पश्चिमी तट पर लक्षद्वीप, अमीनदीवी, मालदीव और मिनीकॉय द्वीप; उत्तर की ओर ड्यु, संजीवीव, सेंट मेरी और पूर्वी तट पर पाम्बन द्वीप, हेयर द्वीप, श्री हरीकोटा द्वीप और बंगाल की खाडी मे अंडमान-नीकोबार द्वीप समूह मिलते हैं ।

सामान्यतः तट के समीप समुद्र कम गहरे हैं तथा उनकी तली एकदम चपटी और बलुही है । इन दोनो कारणों से यहां नौका-संचालन बड़ा कठिन हो जाता है । तटों के समीप समुद्र की औसत गहराई १८३ मीटर पायी जाती है । पश्चिमी तट पर पूर्वी तट की भांति समुद्र गर्तो (deeps) का अभाव है किन्तु पश्चिमी तट की ओर समुद्र थोड़ी दूर पर ही *आकस्मिक रूप से गहरा हो जाता है । भारतीय तट मूलतः* एटलान्टिक तट के प्रकार का है । यह खाडियों और प्रवाल-भीतियों से रहित है और अपनी प्रकृति मे महाद्वीपीय है ।[2] मालाबार तट की ओर अपवाद स्वरूप कुछ खाडियां और प्रवाल-भीतियां अवश्य देखी जाती हैं ।

तट रेखा पर निमग्न-तट (*continental shelf*) सामान्यतः पूर्णरूप से विकसित है । पूर्वी तट की ओर गंगा के मुहाने के पास इसका बहुत ही अच्छा विकास पाया जाता है । इसके अतिरिक्त भारतीय तटों पर तटीय मैदान भी देखे जाते हैं । परन्तु दोनो ओर तटीय मैदान समान रूप से फैले हुए नही हैं । पश्चिम की ओर का तटीय मैदान पूर्वी तटीय मैदान से कम चौड़ा है ।

तट भूमियाँ (The Coastal Strips)

पूर्व और पश्चिम दोनों ओर तट के समान्तर पूर्वी और पश्चिमी घाट खड़े हैं । समुद्र तट और इन घाटों के बीच तटीय मैदान पाये जाते हैं । पूर्वी तटीय मैदान कर्नाटक की अपेक्षा अपनी चौड़ाई मे सब जगह एक समान नहीं है । दक्षिण की ओर *यह अधिक चौड़ा है पर उत्तर की ओर सँकरा हो गया है । मद्रास के उत्तर में* इसकी अधिकतम चौड़ाई ४८ किलोमीटर है जबकि दक्षिण की ओर इसकी अधिकतम चौड़ाई १२६ किलोमीटर तक है । यह मैदान कछारी मिट्टियों द्वारा बना हुआ है । पूर्वी घाट के ऊपरी भागों से निकलकर समस्त नदियाँ इस मैदान में बहती हैं अत. उनके डेल्टाओं में अच्छे मैदानों की रचना हो गयी है । पश्चिमी समुद्र तट पूर्णतया बालू, मिट्टी और कंकड़ द्वारा बना हुआ है । यहाँ मिट्टी प्राय. कंकड़ों के साथ मिली हुई पायी जाती है ।[3] यह तट एकदम सकरा और ऊबड़-खाबड़ है । पूर्वी और पश्चिमी

[1] Steers, J A., *Unstable Earth*, p. 12.
[2] Krishnaswamy, S. "The Coasts of India", *The Indian Geographical Journal*, *Vol. XXIX, 1954, p. 12.*
[3] Frew, David, *op. cit*, p. 176.

दोनों तटीय मैदान दक्षिण के पठार के किनारों के क्षरण द्वारा बने हैं। क्षरण के अवसादों द्वारा दोनों ओर तंग मैदानी पट्टियाँ बन गयी हैं। इसके अतिरिक्त इन तटों के किनारे धीरे-धीरे समुद्र में समाते रहे और डुबकियाँ लगाते रहे। इसीलिए पूर्वी तट पर कुएँ खोदते समय इन्जीनियरों को कई स्थानों पर प्राचीन समुद्री मैदान (old sea beaches) मिले हैं और धरातल के लगभग २७३ मीटर नीचे ओयस्टर के खोल (oyster shells) देखे गये हैं।[1]

सिडनी बुर्राड का कहना है कि सीधी-रेखा (plumb line) के झुकाव धरातल की इस बात को प्रकट करते हैं कि तटीय भूमियाँ तटों के सहारे कमजोर पेटियाँ हैं। उनकी मान्यता है कि ये पेटियाँ गंगा के मैदान की भाँति मजन, निमज्जन और अधोभौमिक न्यूनता (subterranean defficiency) की पेटियाँ हैं। धरातल की वर्तमान रूपरेखा इस बात को प्रकट करती है कि प्राचीन समय में पश्चिम की ओर महाद्वीप के बहुत बड़े भाग का निमज्जन हुआ है। उपरोक्त तथ्य स्वेतर के इस विश्वास का प्रतिपादन करता है कि भारत पुरा-कल्प युग में मैलेगासी (मैडेगास्कर) द्वीप द्वारा दक्षिणी अफ्रीका से जुड़ा हुआ था। दक्षिण के पठार के खड़े ढाल (escarpment) के सम्बन्ध में करमर का अध्ययन भी इसी तथ्य को प्रमाणित करता है।

पश्चिमी तट रेखा (Western Coastline)

यह तट रेखा खम्भात की खाड़ी से कुमारी अन्तरीप तक फैली हुई है। यह उत्तरी भाग में कोंकण तट और दक्षिणी भाग में मालाबार तट के नाम से प्रसिद्ध है। ओमान की खाड़ी से खम्भात की खाड़ी तक की तट भूमि यद्यपि रचना की दृष्टि से समान है किन्तु शैलों की दृष्टि से भिन्न है।

साधारणतः ओमान की खाड़ी से करांची तक और भारत में बम्बई तक समुद्र का निमग्न तट प्रवल्याओं (coral reefs) से रहित है। यह ८० से १२६ किलोमीटर लम्बा तथा १६१ किलोमीटर चौड़ा है और अपनी बाहरी सीमा पर ६० मीटर गहरा है। तट के सहारे कुछ प्रवाल्याएँ अवश्य पायी जाती हैं। बम्बई के दक्षिण में निमग्न तट ८० से ४८ किलोमीटर तक सँकरा हो जाता है। यहाँ पर भी प्रवल्याओं का अभाव पाया जाता है परन्तु कहीं-कहीं बीच में खाड़ियाँ आ गयी हैं।[2]

शैलों की दृष्टि से मकरान तट बम्बई से उतना ही भिन्न है जितना कि बम्बई तट दक्षिण के मालाबार तट से। मकरान तट पर सर्वत्र ही प्रस्तरीभूत शैलें फैली हुई पायी जाती हैं। यहाँ मुख्यतः भद्दी हरी शेल शैलें और हल्का रंगीन बलुही पत्थर ही अधिक पाया जाता है। चीका प्रधान शैलें टूटने वाली चिकनी मिट्टी (friable clay) के रूप में मिलती हैं जो कि समुद्री पंक (marine

[1] Morrison, C., *New Geography of the Indian Empire and Ceylon*, p. 27.
[2] *The Imperial Gazetteer of India*, Vol. I, 1908, p. 37.

ooze) से मिलती-जुलती हैं।[1] ग्रेन तथा चीका मिट्टी की शैलें समुद्र तट के समान्तर कई स्थानों पर प्रतिनति (anticline) के रूप में उभरी हुई दिखायी पड़ती हैं।

पश्चिमी तट पर हिन्द महासागर के किनारे नर्मदा के उत्तर में चपटी निम्न भूमियों और बम्बई की तंग पट्टी में स्वाभाविक रूप से प्राकृतिक विभेद पाया जाता है। नर्मदा के उत्तर में समुद्र में भूमि का विस्तार एक साधारण बात है किन्तु ताप्ती के दक्षिण में बम्बई तक तट के समीप भूमि का समुद्र में कोई विस्तार दृष्टिगोचर नहीं होता।[2] नर्मदा के उत्तर में समुद्र तट तलछट द्वारा बना है जो न तो अधिक पुराने हैं और न अच्छी तरह जम ही पाये हैं।

पश्चिमी तट को सामान्यतः चार भागों में बाँटा जाता है : (i) काठियावाड़ तट, (ii) कोंकण तट, (iii) मालाबार तट, (iv) दक्षिणी तट।

(i) **काठियावाड़ तट** (Kathiawar Coast) सौराष्ट्र (कच्छ) से सूरत तक विस्तृत है। इसी तट पर कोरीक्रीक, कच्छ की खाड़ी और खम्भात की खाड़ियाँ हैं जिनके कारण यह तट काफी कटा-फटा है। इस तट पर अनेक द्वीप हैं (जैसे, *कच्छ की खाड़ी में नोरा, कारूम्भर, बेदी, पिरोटिन; खम्भात की खाड़ी में शियाल,* पारमे)। ये द्वीप मछुओं के निवास स्थान हैं। इस तट पर अनेक बन्दरगाह पाये जाते हैं : मांडवी, कांडला, नवलखी, जाडीय बन्दर, बेदी, सिक्का, ओखा, द्वारका, पोरबन्दर, मगरोल, वैरावल, सोमनाथ, कोडीनार, भावनगर, भड़ौंच और सूरत।

(ii) **कोंकण तट** (Konkan Coast) सूरत से गोआ तक फैला है। यह एक सँकरी पट्टी के रूप में है। बम्बई के निकट सालसेट और एलीफेंटा द्वीप हैं। बम्बई के निकट प्राकृतिक पोताश्रय पाया जाता है। इस तट पर मछुओं की अनेक *बस्तियाँ मिलती हैं। इस तट के मुख्य बन्दरगाह माहिम, बम्बई, मुरूड, जयगढ़, रत्नागिरि,* मालवन और गोआ हैं। महाराष्ट्र का तट पैठिक लावा द्वारा बना है।

(iii) **मालाबार तट** (The Malabar Coast) प्राचीन रूपान्तरित शैलों द्वारा बना हुआ है। यह तट बहुत ही क्षत-विक्षत (dissected) है। पश्चिमी घाटों से निकलने वाली अनेक छोटी-छोटी और वेगपूर्ण नदियों द्वारा लाये गये अवसादों के जमने से यहाँ पर कांप मिट्टी के कई मैदान बन गये हैं। तट के ऊपर लहरों का भी आक्रमण होता रहता है विशेषकर दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के समय जिससे समस्त तट भूमि के ऊपर अनेक *बालुका-स्तूप* (sand dunes) बन गये हैं।

इस तट का भूगर्भिक इतिहास ठीक महाराष्ट्र तट के अनुसार ही है। दोनों में केवल यही भेद है कि *यहाँ खाड़ियों, झीलों और लैगूनों का प्राबल्य है जबकि* महाराष्ट्र तट पर इनका अभाव पाया जाता है। इनके अतिरिक्त यहाँ ज्वारीय

[1] Fermer, L. L., Quoted by Davis, W. M., in *The Coral Reef Problem*, 1928, p. 53.

[2] Davis, W. M., *Ibid*, p. 227.

नदियों के मुहाने पर दलदल भी बहुतायत से पाये जाते हैं। इस तट पर अनूप झीलें अधिक पायी जाती हैं। कोचीन के समीप समुद्र तट के समान्तर पृष्ठ-जल (back-waters) की सुविधा होने से अरब सागर से केरल के भीतरी भागों तक नावों द्वारा पहुँचा जा सकता है। मंगलौर, कोचीन, कोजीकोड, एलप्पी, कोल्लम, करवाड़, होनावर, भटकल, कासरगोड़, कुण्डापुर, दर्णाकुलम, मालपे, तिरुवनन्तपुरम, आदि इस तट के मुख्य बन्दरगाह हैं।

(iv) दक्षिणी तट निमग्न तट है। यहाँ समुद्र की औसत गहराई ६२ मीटर है किन्तु इस तट पर द्वीपों का पूर्ण अभाव है। श्रीलंका तट के अतिरिक्त तट के समीप कहीं भी प्रवल्याएँ नहीं मिलतीं। श्रीलंका के दक्षिण-पूर्व की ओर तट से २४ से ३२ किलोमीटर दूर डूबी हुई प्रवल्याएँ दिखायी पड़ती हैं। सेतु-बन्ध लहरों और धाराओं के प्रभाव से बनी भीति है जो श्रीलंका को मुख्य भूमि से जोड़ती है।

पूर्वी तट रेखा (Eastern Coastline)

पूर्वी तट को दो भागों में विभक्त किया जाता है: (i) दक्षिण की ओर का भाग कारोमण्डल तट, और (ii) उत्तर की ओर का भाग कोकोनाडा तट।

(i) कारोमण्डल तट (Coromondal Coast)—कुमारी अन्तरीप से लगा कर कृष्णा नदी के डेल्टा तक फैला है। यह विस्तृत कोप मिट्टी का मैदान है। यह तट अधिकतर छिछला और बलुही है। वान टीवू, पाम्बन और हरीकोटा प्रमुख द्वीप हैं। इस तट पर मनार की खाड़ी, पाक खाड़ी, पाक जलसन्धि एवं आदम सेतु खाड़ियाँ हैं। कन्याकुमारी, रामेश्वरम्, धनुषकोटि, नागापट्टिनम, कारीकल, पोर्टोनोवो, कड्डालोर, पांडीचेरी, मद्रास और पुलूकॉट बन्दरगाह हैं।

मद्रास तट (The Madras Coast) प्रवल्याओं रहित उन्मग्न महाद्वीपीय तट का सुन्दर उदाहरण है। यहाँ तट पर पूर्व समुद्र के तल का असंगठित (unconsolidated) अवसाद (sediment) बिछा हुआ है, परन्तु अधिकतर अवसाद पूर्व विकसित समुद्री कगारों की घिसावट और छीजन से ही प्राप्त हुआ है। इन कगारों का क्षय लम्बे समय से होता रहा है अतः ये कगारें तट से कई किलोमीटर भीतर पायी जाती हैं। यहाँ कगारों की रचना उस समय हुई प्रतीत होती है जबकि तट प्रवल्याओं से स्वतन्त्र था। तट पर प्रवल्याओं के अभाव के कारण रेतीली दीवारों (sand reefs) की लम्बी शृंखला स्थापित हो गयी है जिनके बीच-बीच में डेल्टे बने हुए हैं। मद्रास तट का सम्भवतः दूसरी बार उन्मज्जन हुआ है। फलतः वहाँ दूसरा तटीय मैदान बन गया और इसी कारण यह प्रवल्याओं से वंचित है।

(ii) कोकोनाडा तट (Coconada Coast)—कृष्णा के डेल्टा से लेकर गंगा के डेल्टा तक फैला है। उत्तर की ओर बंगाल की खाड़ी के उत्तरी सिरे पर यह तट बहुत अधिक डेल्टाओं द्वारा घिरा हुआ है। यहाँ भयंकर लहरों के आक्रमण और सम्भावित निमज्जन के विपरीत भी नदियाँ डेल्टाओं का निर्माण करने में सफल हुई

है। डेल्टाओं का विस्तार समुद्र में चौड़े निमग्न तट के ऊपर तक पाया जाता है। इन तटों पर भी प्रवल्याओं का अभाव है। इस रूप में यह न्यूगायना के मध्य दक्षिणी तट के अनुरूप है जहाँ प्लाटा नदी के डेल्टे ने विस्तृत चबूतरे का निर्माण किया है। इस तट पर अनेक नदियाँ पठारी क्षेत्र से मिट्टी लाकर तट के निकट जमा कर देती हैं, अतः समुद्र तट छिछला है। इस तट पर कोकोनाडा, विशाखापट्टनम, वाल्टेयर, बिमलीपट्टम, कलिंगपट्टम, गोपालपुर, गंजाम, पुरी, पाराद्वीप, हल्दिया और कलकत्ता प्रमुख बन्दरगाह हैं।

भारतीय तट की खाड़ियाँ, झीलें और जल-संयोजक

भारतीय तट की महत्त्वपूर्ण खाड़ियाँ और झीलें पश्चिमी तट पर पायी जाती हैं, विशेषतः मालाबार तट पर। पूर्वी तट की ओर खाड़ियों के नाम पर केवल पुलीकट, कोलार और चिल्का झीलें ही पायी जाती हैं जो वस्तुतः आतरित झीलें हैं और सँकरे जल मार्गों द्वारा समुद्र से जुड़ी हुई हैं।

भारत के पश्चिमी तट पर कच्छ की खाड़ी, कच्छ का रण, खंभात की खाड़ी तथा कोचीन एवं मालाबार के पृष्ठ-जल (back-waters) देखने को मिलते हैं।[1] इनमें कच्छ का रन सबसे बड़ा है। इसका क्षेत्रफल लगभग १४,४८१ किलोमीटर है। इसका कुछ भाग सदा ही समुद्र जल में डूबा रहता है किन्तु यह बहुत छिछला है। कोचीन और मालाबार तट के पृष्ठ-जल वस्तुतः एक दूसरे से जुड़े हुए अनूप हैं जो एक ओर छोटी-छोटी नदियों को मिलाते हैं और दूसरी ओर समुद्र से स्वयं जुड़े हुए हैं। भारत के दक्षिण में मनार की खाड़ी और पाक जलडमरूमध्य स्थित हैं जो श्रीलंका द्वीप को भारत की मुख्य भूमि से जोड़ते हैं।

समुद्र जल में परिवर्तन
(CHANGES IN SEA-LEVEL)

यद्यपि साधारणतः भारत के पूर्वी तट पर हाल ही के उन्मज्जन (upheaval) के चिह्न पाये जाते हैं जहाँ स्थित कगारों में समुद्री गुफाओं, समुद्री अपक्षरण के चिह्नों से उन्मज्जन स्पष्ट प्रतीत होता है। किन्तु कुछ स्थानों पर (जैसे पांडिचेरी में) ऐसे चिह्न भी देखे जाते हैं जो हाल ही में हुई भूमि के *निमज्जन* (submergence) को इंगित करते हैं।

समुद्र तल में परिवर्तन पश्चिमी तट पर अधिक जटिल रहा है। सौराष्ट्र का तट जहाँ एक ओर भूमि के उन्मज्जन को प्रकट करता है (विशेषकर कच्छ के रन में) वहाँ महाराष्ट्र और मालाबार तट निश्चय ही निमज्जन के द्योतक हैं।

भारतीय समुद्रतटीय भागों में पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियों द्वारा कई स्थानों पर भूमि ऊँची-नीची हो गयी है। भूमि के ऊँचे होने को उन्मज्जन और नीचे धँसने को *निमज्जन* कहते हैं। पश्चिमी तट पर कच्छ का रन ऐतिहासिक युग में सागर का एक छिछला भाग था किन्तु अब इस पर मिट्टी जम जाने से शुष्क भूमि

[1] Morrison, *op cit*, p. 29

समुद्र के ऊपर उठ आयी है जो प्रायः नमकीन और दलदली है। सौराष्ट्र के तट पर चोटिला पर्वत से २६० मीटर ऊँचे शिखर पर मिलियोलिटिक (miliolite) नामक चूने का पत्थर पाया जाता है जो मिलुक (miliola) नामक समुद्री जीव के अवशेषों से बना है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में यह समुद्र के गर्भ में था किन्तु अब उसमें ऊँचा उठ गया है। इसी प्रकार मकरान तट पर समुद्र तल से ३० मीटर ऊँचाई पर तथा भारत के पूर्वी तट पर (विशेषतः उड़ीसा, नैलोर, मद्रास, मदुराई और तिरुनलवैली भागों में) १५ से ३० मीटर ऊँचाई पर समुद्री जीवों के खोल (shells) प्राप्त हुए हैं। यह तथ्य इस बात को सिद्ध करता है कि ये भाग समुद्र से ३० से ६० मीटर ऊँचे अवश्य उठे हैं।

भारतीय तटों का कई स्थानों पर निमज्जन भी हुआ है। उदाहरणार्थ, १८७८ में बम्बई के समीप (प्रिन्स डाकस की खुदाई करते समय) ऐसे कई वृक्ष पाये गये जो उच्च-जल-चिह्न से १६ मीटर नीचे धँसे हुए थे। इसी प्रकार १९१२ में एलेक्जेंड्रिया डॉकस की खुदाई करते समय ऐसे वृक्ष प्राप्त हुए हैं जो उच्च जल-चिह्न से १२ मीटर नीचे थे। दोनों ही स्थानों पर पाये गये सैकड़ों वृक्ष अपनी मूल स्थिति में ही खड़े थे और कुछ झुकी हुई दशा में भी पाये गये थे। इन दोनों ही उदाहरणों से बम्बई के निकटवर्ती तट का नीचे धँसना सिद्ध होता है। इसी प्रकार के कुछ प्रमाण तिरुनलवैली के तट के निकट पांडिचेरी में भूमि-तल के ७२ मीटर नीचे से निकाली गयी लिग्नाइट की मोटी तह के मिलने से प्राप्त हुए हैं। ये वृक्ष यहाँ भूमि के नीचे दबे पाये गये हैं।

तटीय भागों में भूमि का केवल उन्मज्जन और निमज्जन ही नहीं हुआ है वरन् यहाँ कई क्षेत्रों में तट रेखा बहुत दूर तक समुद्र में भी बढ़ गयी है। यह बात दक्षिणी प्रायद्वीप की कुछ नदियों के डेल्टाओं से सिद्ध होती है। गोदावरी के डेल्टा पर कलिंगपट्टनम, कावेरी के डेल्टा पर कावेरीपट्टनम, तिरुनलवैली तट पर कोरकाई, आदि कुछ ही वर्ष पूर्व बहुत ही अच्छे बन्दरगाह थे किन्तु अब डेल्टा की भूमि समुद्र की ओर बढ़ जाने से इनका महत्व कुछ घट गया है। इस प्रकार कच्छ का रण भी अब कम महत्वपूर्ण हो गया है।

कई क्षेत्रों में समुद्र भी भूमि की ओर बढ़ गया है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण तंजौर तट पर स्थित ट्रंकबार में देखा जा सकता है। जहाँ एक पैगोडा के अवशेष एक शताब्दी पूर्व निम्न जल-चिह्न के ऊपर पाये गये थे। इसी प्रकार सेंट थॉम टाउन (जो अब मद्रास का ही एक भाग है) पहले समुद्र तट से कुछ मीटर की ओर स्थित था किन्तु अब यह समुद्र तट पर ही स्थित है। इस समय भी मद्रास के पूर्वी भागों पर समुद्र का प्रहार हो रहा है। इससे बचाव हेतु दीवारें बनायी जा रही हैं।

तट रेखा का प्रभाव

तट रेखा का प्रभाव देश के व्यापार और वहाँ के मनुष्यों के चरित्र पर पड़ता है। वस्तुत: भारत जैसे देश में (जहाँ तट रेखा बहुत ही कम कटी-फटी और

छिछली तथा बालुका-मण्डित है और बड़ी उत्ताल तरंगें नृत्य किया करती हैं) न तो उत्तम बन्दरगाह ही पाये जाते हैं और न ही पोताश्रयों की अधिकता है। अतएव भारत के विदेशी व्यापार को भी इससे बड़ी हानि पहुँचती है क्योंकि जहाँ समुद्र तट के कटे-फटे होने से जापान और ब्रिटेन जैसे देशों का कोई भाग समुद्र तट से ३२० किलोमीटर से अधिक दूर नहीं है वहाँ भारत के बन्दरगाह भीतरी भागों से बहुत दूर पड़ जाते हैं अतः निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ बन्दरगाह तक लाने में अधिक व्यय पड़ जाता है। यही बात आयातित माल के लिए भी लागू होती है।

भारत में गुजरात और मालाबार तट के कुछ सीमा तक कटे-फटे होने के कारण विदेशों से व्यापार करने की सुविधा प्राप्त है। इन तटीय भागों के निवासी भी प्रगतिशील, सभ्य, विलासप्रिय और शान्तिप्रिय हैं और वे साम्प्रदायिक भावनाओं वाले न होकर विश्वबन्धुत्व में विश्वास करने वाले हैं क्योंकि उनका सम्पर्क समुद्र द्वारा विदेशों से होता है। समुद्र के निकट होने से ये निर्भीक, उत्साही और अच्छे व्यापारी हैं किन्तु इसके विपरीत कोंकण तट के सपाट होने से यहाँ के निवासी भी यद्यपि शान्तिप्रिय, उत्साही और तेजबुद्धि वाले हैं किन्तु ये अच्छे मल्लाह और नाविक भी हैं।[1] मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय अच्छे मल्लाह नहीं हैं।

द्वीप समूह
(ISLANDS)

भारत के पश्चिमी और पूर्वी तट से कुछ दूर कई एक द्वीप हैं जिनमें से मुख्य (i) लक्ष द्वीप, (ii) मालद्वीप, (iii) पाम्बन द्वीप, (iv) हेअर द्वीप, (v) श्री हरीकोटा द्वीप, (vi) अंडमान-निकोबार द्वीप, और (vii) पारिकुद द्वीप हैं।

(i) लक्ष द्वीप (Laccadive)—इसका शाब्दिक 'अर्थ एक लाख द्वीप' है। भारत के पश्चिमी तट से लगभग २०० से ३२० किलोमीटर की दूरी पर १०° से १२° उत्तरी अक्षांशों और ७१°४१' तथा ७४° पूर्वी देशान्तरों के बीच ये द्वीप समूह स्थित हैं। अनुमान किया जाता है कि ये अरावली पर्वतमाला के ही अवशेष हैं जो प्राचीन काल में हिमालय के पश्चिमी भाग से लगाकर यहाँ तक फैली थी। ये एक डूबे हुए पर्वत के अंश हैं जिनका जन्म प्रवालियों के पूर्वो भाग से हुआ है। ये मूँगे के द्वीप हैं जिन पर नारियल के वृक्ष अधिकता से पाये जाते हैं। इन द्वीपों पर अनाज, दालें, केले और सब्जियाँ पैदा की जाती हैं।

(ii) माल द्वीप (Maldive)—अधिकतर ज्वालामुखी द्वीप माने जाते हैं। इन पर भी थोड़ी-बहुत खेती की जाती है।

अमीनदीवी और मिनीकाय द्वीप मालाबार तट से लगभग ६० किलोमीटर अरब सागर में हैं जो या तो समुद्र की देन हैं अथवा मूँगे के द्वीपों के बने हैं। इन पर दूर नारियल अधिक पैदा किया जाता है।

[1] H. L. Kaji, *Principles of General Geography*, p 145.

(iii) पाम्बन द्वीप (Pamban Islands)—इन द्वीपों की आकृति सर्पाकार है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि किसी समय यह द्वीप श्रीलंका से जुड़े हुए थे। अब इनके बीच में आदम का पुल (Adam's Bridge) और मनार की खाड़ी है। इन द्वीपों का विस्तार प्रायः १८ किलोमीटर लम्बाई और १० किलोमीटर चौड़ाई में है। पूर्वी भागों की ओर बालू मिट्टी की अधिकता पायी जाती है किन्तु उत्तरी तट के निकट मूँगे की दीवार है।

(iv) हेअर द्वीप (Hare Islands)—ये द्वीप तूतीकोरन से प्रायः ४ किलोमीटर दूर हैं तथा पूर्णतः मूँगे के बने हैं। इन पर खरहे अधिक मिलते हैं।

(v) श्री हरीकोटा द्वीप (Shri Harikota Islands)—ये द्वीप पुलीकट झील के पश्चिमी तट पर हैं और प्रायः ६० किलोमीटर की लम्बाई और १३ किलोमीटर की चौड़ाई में फैले हैं। ये द्वीप समुद्री लहरों द्वारा जमाव होने से बने हैं। इन पर वन क्षेत्र अधिक मिलते हैं।

(vi) अण्डमान-निकोबार द्वीप (Andaman-Nicober Islands)—ये दोनों ही द्वीप बंगाल की खाड़ी में कलकत्ता से १,२४८ किलोमीटर दूर हैं। ये द्वीप समूह उस निमग्न पर्वत श्रेणी की बनी हुई चोटियाँ हैं जो किसी समय अराकानयोमा को सुमात्रा द्वीप की मध्यवर्ती पर्वत श्रेणी से मिलाती थीं। अण्डमान द्वीप में सब मिला कर लगभग २०१ द्वीप हैं जिनमें उत्तरी अण्डमान, मध्य अण्डमान, दक्षिणी अण्डमान, बाराटंग और रुथलैण्ड बड़े द्वीप हैं और शेष सभी छोटे हैं। यह द्वीप समूह ३५२ किलोमीटर लम्बे और ५६ किलोमीटर चौड़े हैं। ये एक दूसरे से जल-सयोजकों द्वारा अलग हैं। इनका किनारा काफी कटा-फटा है। इनके आसपास मूँगे के कीड़ों की अधिकता है। समुद्र के निकट सुन्दरी वृक्ष बहुत पाये जाते हैं।

निकोबार द्वीप अण्डमान द्वीप से १२८ किलोमीटर दक्षिण की तरफ हैं। यह द्वीप २१ द्वीपों के समूह हैं। उत्तर के द्वीप को कार निकोबार, मध्य को कामोरटा और नानकाउरी तथा दक्षिणी को विशाल निकोबार कहते हैं। ये प्राय- जनविहीन हैं और बहुत ही छोटे हैं।

(vii) चिल्का झील और बंगाल की खाड़ी के बीच पारिकुद द्वीप मिलते हैं जो प्रायः ३० किलोमीटर लम्बे हैं।

गंगा के मुहाने के निकट भी अनेक छोटे-छोटे दलदली वनों से ढके द्वीप मिलते हैं।

1

भौतिक स्वरूप
(PHYSICAL FEATURES)

भारत एक विशाल भूखण्ड है जिसका धरातल सभी भागों में भौतिक दृष्टि से समान नहीं है। इसमें कहीं ऊँचे गगनचुम्बी पर्वत पाये जाते हैं तो कहीं विस्तृत मैदान और कहीं कठोर भूमि वाले पठार। किन्हीं भागों में उष्ण बालू के मरुस्थल पाये जाते है तो कहीं सघन वन। भारत के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का १०·७% पर्वतीय भाग (जो समुद्र के धरातल से २,१३५ मीटर से अधिक ऊँचे हैं), १८·६% पहाड़ियाँ (जो ३०५ से २,१३५ मीटर तक ऊँची हैं), २७·७% पठारी क्षेत्र (जो ३०५ से ९१५ मीटर ऊँचे हैं) और ४३% भूभाग मैदानी है।[1]

भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत को चार विभागों में बाँटा जा सकता है जो अपनी भौतिक एवं भूगर्भिक विशेषताओं में एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न हैं। भारत के इन चार भू-विभागों में से जहाँ प्रथम दो विभागों के अपने भौतिक आधार हैं, वहाँ प्रत्येक की अपनी-अपनी विशेषताएँ भी हैं जो भूगर्भ विज्ञान के प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग की देन हैं और तब से प्रत्येक भाग स्वतन्त्र रूप से अपने मार्ग का अनुसरण करता आया है।

भारत के भौतिक विभाग

(१) उत्तरी पर्वतीय या पहाड़ी प्रदेश, जो भारत की उत्तरी एवं पूर्वी सीमा निर्धारित करता है।

(२) सतलज और गंगा का मैदान जो सतलज नदी की घाटी से लगाकर असम में ब्रह्मपुत्र की घाटी तक फैला है।

(३) दक्षिणी पठार।

(४) समुद्रतटीय मैदान।

१. उत्तरी पर्वतीय प्रदेश
(NORTHERN MOUNTAIN WALL)

उत्तरी पहाड़ी प्रदेश में हिमालय पर्वत भारत की उत्तरी सीमा में पश्चिम से पूर्व की ओर २,४०० किलोमीटर लम्बाई में एक तलवार के आकार में फैले हैं

[1] Census of India Report, 1951, Pt. I A.

उनकी चौड़ाई १५० से ४०० किलोमीटर तथा ऊँचाई ६००० मीटर है। ये लगभग ५ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हैं।[1] ये पर्वत उस विशाल पर्वत प्रणाली के [जिसे पामीर की गाँठ (Pamir Knot) कहते हैं] भाग हैं जो मध्य एशिया से मध्य यूरोप
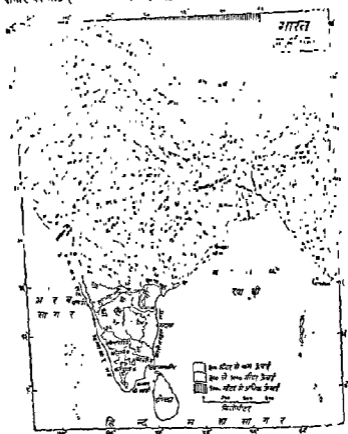
चित्र १ १

तक फैली है। पश्चिमी भाग में उसकी तीन श्रेणियाँ प्रत्यक्ष हैं लद्दाख-ज़ास्कर श्रेणी, पर्वत श्रेणी और पीरपंजाल श्रेणी। पूर्वी भाग में हिमालय श्रेणी और सबसे उत्तर में काराकोरम श्रेणी है जो चीन तक चली गयी है। इन पर्वतों ने भारत को शेष एशिया से पृथक कर दिया है।

[1] Pichamuthu, C. S., *Physical Geography of India*, 1967, p 45.

हिमालय का भौगोलिक वर्गीकरण

ये पर्वत कई पर्वत श्रेणियों से मिलकर बने हैं जो एक-दूसरे के समान्तर फैली हुई हैं। मुख्य हिमालय चार श्रेणियों से बने हैं :

(१) महान या आन्तरिक हिमालय (Great or Inner Himalayan Zone) सबसे उत्तर की श्रेणी है। इन्हें *हिमाद्रि, मध्य हिमाचल, मुख्य हिमाचल अथवा* बर्फीले हिमालय भी कहा जाता है। ये सिन्धु नदी के मोड़ के पास से ब्रह्मपुत्र नदी के मोड़ तक २,४०० किलोमीटर तक टेढी रेखा की भाँति फैले हुए हैं। इनकी चौड़ाई २५ किलोमीटर और औसत ऊँचाई ६,००० मीटर है। केवल इसी पर्वत श्रेणी में ४० *ऐसी ज्ञात चोटियाँ हैं जिनकी ऊँचाई ७,००० मीटर से अधिक है और लगभग* २७३ ऐसी अज्ञात चोटियाँ हैं जिनकी ऊँचाई ६ हजार मीटर से अधिक है। हमारे देश की सबसे ऊँची चोटियाँ इसी भाग में हैं। मुख्य चोटियाँ ये हैं : माउण्ट एवरेस्ट या गौरीशंकर (८,८४८ मीटर), नन्दादेवी (७,८१८ मीटर), नंगा पर्वत (८,१२६ *मीटर*), *गोसाईंथान* (८,०१३ *मीटर*), कंचनजंघा (८,५९८ मीटर), मकालू (८,४८१ मीटर), अन्नपूर्णा (८,०७८ मीटर), मनसालु (८,१५६ मीटर), हरामोश (७,३९७ मीटर) और धौलागिरि (८,१७२ मीटर)। ये सभी चोटियाँ वर्ष के अधिकांश भाग में हिम से ढकी रहती हैं। इस श्रेणी का ढाल सिन्धु और साँपू की सँकरी घाटियों की *ओर साधारण है किन्तु दक्षिण में यह तीव्र है अतः चौड़ी घाटियाँ कम मिलती हैं।* सिन्धु, सतलज और दिहांग नदियों की घाटियाँ बड़ी सँकरी हैं। इस श्रेणी के मध्यवर्ती भाग से गंगा, यमुना और उनकी सहायक नदियाँ निकलती हैं। हिमालय पर्वत के गर्भ भाग (core) में ग्रेनाइट, नीस और शिस्ट शिलाओं का आधिक्य है जो प्राचीन *शैलें हैं। पार्श्व भागों में परिवर्तित अवसादी शैलें मिलती हैं।*

(२) लघु या हिमाचल श्रेणी (Lesser Himalayan Zone or Himachal) उत्तरी श्रेणी के दक्षिण में उसी के समान्तर फैली हुई है। यह ८० से १०० किलोमीटर चौड़ी है। इस श्रेणी की औसत ऊँचाई १,८२८ से ३,००० मीटर और अधिकतम ऊँचाई ४,५०० मीटर है। यहाँ नदियाँ १,००० मीटर की गहराई पर बहती हैं। शीत ऋतु में ३–४ महीने हिम गिरता है किन्तु ग्रीष्म ऋतु में ये भाग स्वास्थ्यवर्द्धक रहते हैं। इसमें कई छोटी-छोटी श्रेणियाँ हैं जिनकी अनेक भुजाएँ (spurs) हैं। ऐसी श्रेणियों में मुख्य धौलाधर, नाग टीबा, पीर-पंजाल, महाभारत और मंसूरी मुख्य हैं। भारत के प्रसिद्ध स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान शिमला, मसूरी, नैनीताल, दार्जिलिंग, आदि इसी श्रेणी के निचले भागों पर स्थित हैं। इस श्रेणी में स्लेट, चूने के पत्थर, क्वार्ट्ज और अन्य शिलाओं की अधिकता पायी जाती है। इनमें शिलाभूत अवशेष (fossils) बिलकुल नहीं मिलते। इस भाग में कोणधारी वन मिलते हैं तथा ढालों पर छोटे-छोटे *घास के मैदान पाये जाते हैं जिन्हें कश्मीर में मर्ग (जैसे गुलमर्ग, सोनमर्ग) और* उत्तराखण्ड में बुग्याल और पयार कहते हैं।

(३) उप-हिमालय या शिवालिक श्रेणी (Sub-Himalayan Foothill Zone or *Siwaliks*) उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के दक्षिण में है। इन्हें बाह्य हिमालय (Outer Himalaya) भी कहते हैं। यह पंजाब में पोटवार बेसिन के दक्षिण में प्रारम्भ होकर पूर्व की ओर कोसी नदी तक फैली है। यह हिमालय का सबसे नवीन भाग है। अलग-अलग भागों में इसके अलग-अलग नाम हैं, जैसे गोरखपुर के पास डूंडवा, पूर्व की ओर चुरिया और मुरिया। इसको लघु हिमालय से अलग करने वाली घाटियों को पश्चिम में दून (Doon) और पूर्व में द्वार (Duars) कहते हैं। देहरादून, हरिद्वार ऐसे ही मैदान में स्थित हैं। इन घाटियों में गहन खेती की जाती है तथा ये घनी बसी हैं। इनकी चौड़ाई १० से ५० किलोमीटर और औसत ऊँचाई १,२२० मीटर के लगभग है। बड़े मैदान की भाँति यह श्रेणी भी चिकनी मिट्टी, बालू और कंकड़ से बनी है। इसका सम्पूर्ण भाग (जिसमें तराई प्रदेश सम्मिलित है) दलदल और वनाच्छादित है।

(४) ट्रान्स हिमालय श्रेणी (Trans or Tibet-Himalayan Zone) अपने मध्य में २२५ किलोमीटर चौड़ी है तथा पूर्व और पश्चिम की ओर अपने किनारों पर ४० किलोमीटर चौड़ी है। इसकी कुल लम्बाई ६६५ किलोमीटर है। यह ३,१०० से ३,७०० मीटर ऊँची है। यह श्रेणी बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों तथा उत्तर की ओर भूमि से घिरी हुई झीलों से गिरने वाली नदियों के लिए जल-विभाजक का कार्य करती है। इस श्रेणी में कई दर्रे हैं जिनकी औसत ऊँचाई ५,२०० मीटर है।

हिमालय का प्रादेशिक वर्गीकरण (*Regional Classification of the Himalaya*)

सिडनी बुर्राड नामक भूगर्भशास्त्री ने महान हिमालय का वर्गीकरण चार खण्डों में किया है:

(१) पंजाब हिमालय (Punjab Himalaya)—सिन्धु नदी से लगाकर सतलज नदी तक ५६२ किलोमीटर लम्बाई में फैले हैं। सतलज के पश्चिम की ओर इसकी ऊँचाई कम होती जाती है। पंजाब हिमालय की मुख्य चोटियाँ टाटाकुटी और ब्रह्मासकल हैं तथा मुख्य दर्रे पीर-पंजाल, झोजीला, बुरज़ूर, बोरगली, बानीर, बनीहाल, गुलाबघर और बुर्जिल हैं। इन श्रेणी के उत्तरी ढाल निर्जन, ऊबड़-खाबड़ और शुष्क हैं जिनके बीच में पठार और कुछ झीलें स्थित हैं किन्तु दक्षिणी ढाल सर्वत्र ही सघन वनों से आच्छादित हैं। ये हिमालय अधिक शुष्क हैं अतः यहाँ हिम-रेखा भी अधिक ऊँचाई पर पायी जाती है।

(२) कुमायूं हिमालय (Kumaun Himalaya)—इसका विस्तार सतलज नदी से काली नदी तक ३२० किलोमीटर की लम्बाई में है। इस श्रेणी में उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा, गढ़वाल तथा नैनीताल जिले स्थित हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्राचीनकाल में इस प्रदेश में ३६० झीलें थीं, उन्हीं के सूख जाने से यहाँ कुछ उपजाऊ भाग बन गये हैं। इस भाग की मुख्य ऊँची चोटियाँ *बद्रीनाथ (७,०४० मीटर),*

केदारनाथ (६,८३१ मीटर), त्रिशूल (६,७०७ मीटर), माना (७,१५८ मीटर), गंगोत्री (६,५०८ मीटर), नन्दादेवी, कामेत, जाओनली (६,५२७ मीटर) और शिवलिंग हैं। भागीरथी और यमुना नदियों के उद्गम स्थान यहीं हैं। कुमायूँ हिमालय अधिकतर रवेदार चट्टानों के बने हैं। किन्तु कहीं-कहीं उत्तरी भाग में ट्रियासिक युग की और दक्षिण में रूपान्तरित शैलें तथा शिस्ट, स्लेट आदि, और नीस शैलें मिलती हैं।

(३) नेपाल हिमालय (*Nepal Himalaya*) ८०० किलोमीटर के विस्तार में काली नदी और तिस्ता नदी के बीच में फैले हैं। इनकी औसत ऊँचाई ६,२५० मीटर है। इसी भाग में भारत की सबसे ऊँची चोटियाँ अन्नपूर्णा (८,०४७), धौलागिरि, गोसाईथान (८,०१८ मीटर), कंचनजंघा, मकालू और ऐवरेस्ट स्थित हैं।

नेपाल हिमालय में चूने के पत्थर तथा शैल चट्टानें पूर्वी भाग में तथा ऐवरेस्ट के निकटवर्ती क्षेत्रों में काले, भूरे, शेल, चिकनी मिट्टी युक्त बलुआ पत्थर, क्वार्ट्ज और चूने का पत्थर मिलता है।

ऊँचे भागों में मिट्टी का क्षरण होने से धरातल वनस्पति से शून्य है किन्तु निचले भागों में घाटियों में देवदार, स्प्रूस, चीड़, आदि कोणधारी वन मिलते हैं,

(४) असम हिमालय (Assam *Himalaya*) तिस्ता नदी से ब्रह्मपुत्र नदी तक ७५० किलोमीटर की लम्बाई में फैले हैं। इस श्रेणी का ढाल मैदान की ओर बड़ा तेज है किन्तु पश्चिम की ओर क्रमशः धीमा होता गया है। इसकी मुख्य चोटियाँ कुला कांगड़ी, चुमलहारी, कावरू, जोंग सांगला और पौहुनी हैं।

हिमालय के हिमनद (Himalayans Glacier)

हिमालय पर्वत के अधिक ऊँचे होने के कारण इसकी कई चोटियाँ वर्ष भर हिम से ढकी रहती हैं। इस पर्वत पर नेपाल हिमालय में हिम रेखा (Snow line) ४,५०० मीटर, पंजाब हिमालय में ५,१८५ मीटर, कुमायूँ हिमालय में ५,२०० मीटर, असम हिमालय में ४,४२० मीटर और कश्मीर हिमालय में ६,००० मीटर की ऊँचाई तक पायी जाती है। स्पष्ट है कि पूर्वी हिमालय में हिम रेखा कम ऊँचाई पर पायी जाती है, इसका कारण वायु में नमी का पाया जाना है। इसके विपरीत, उत्तरी-पश्चिमी हिमालय में आर्द्रता के अभाव से हिम रेखा अधिक ऊँचाई पर पायी जाती है। ऊँचे पर्वतीय ढालों से हिम के टुकड़े नीचे की ओर खिसकने लगते हैं। इसके अधिक ढालू होने के कारण ये हिमनद काफी नीचे तक फिसल आते हैं। दक्षिण की ओर हिमालय की ढलान अधिक होने से ये हिमनद २,३६० मीटर की ऊँचाई तक फिसल आते हैं, किन्तु तिब्बत की ओर ढाल कम होने से ये ४,५०० मीटर की ऊँचाई तक ही फिसलते हैं।

हिमालय पर अनेक छोटे-बड़े हिमनद पाये जाते हैं। कराकोरम के हिमनद तो विश्व के सबसे बड़े हिमनद माने जाते हैं। अधिकांश हिमनद ४ से ५ किलोमीटर लम्बे तथा १½ से ४ किलोमीटर चौड़े हैं। इनकी मोटाई भी अधिक है। ये प्रतिदिन ८-१० सेण्टीमीटर से लेकर ३० सेण्टीमीटर तक ही फिसल पाते हैं।

नीचे की तालिका में प्रमुख हिमनदों की लम्बाई और स्थिति की ऊँचाई दी गयी है :[1]

हिमनद	लम्बाई (किमी०)	ऊँचाई (मीटर)	किस्म
कराकोरम-हिमालय			
हिस्पार	६१	३,२००	सम्बवत
बतूर	५७	२,४४८	,,
सासाइनी	१५७	२,४४०	आड़ा
मोहिलयज	२७	२,८६८	,,
यर्जगिल	२७	३,३४०	,
कुरडोपिन	३६	२,७४५	,,
बाल्टिस्तान-लद्दाख			
बियाफ़ो	५६	३,१५५	सम्बवत
बाल्तोरो	५७	३,२२५	,,
सियाचिन	७२	३,७०५	,,
पुन्मेह	२७	३,६३०	आड़ा
रिमो	४०	५,०३५	,,
उत्तरी-पश्चिमी कश्मीर			
ह्निार्ची	—	२,४००	आड़ा
दाची	—	३,०५०	सम्बवत
मिनापिन	—	२,४४०	आड़ा

हिमालय की नदियाँ (Himalayan Rivers)

डॉ० विम्बर के अनुसार हिमालय की नदियाँ चार भागों में बाँटी जा सकती हैं :

(१) हिमालय के उत्थान के पूर्व की नदियाँ; जैसे ब्रह्मपुत्र, अरुण, सतलज और सिन्धु।

(२) महान हिमालय की नदियाँ; जैसे गंगा, काली, घाघरा, गण्डक, तिस्ता, आदि। ये नदियाँ हिमालय के दूसरे उत्थान के बाद उत्पन्न हुई मानी गयी हैं।

(३) लघु हिमालय की नदियाँ, जैसे व्यास, रावी, चिनाब और झेलम।

(४) शिवालिक की नदियाँ, जैसे हिण्डन और देहरादून के समीप सेलानी।

हिमालय से निकलने वाली २३ प्रमुख नदियाँ हैं जिनका सम्बन्ध तीन बड़ी नदी प्रणालियों से है। ब्रह्मपुत्र नदी प्रणाली में ब्रह्मपुत्र, लुहित, दिबाङ्ग, सुबन्सिरी,

[1] Wadia, G. N., *Geology of India*, p. 16.

मनास, मतकोसी, रैडाक और तिस्ता नदियाँ सम्मिलित हैं। ये नदियाँ उत्तर-पूर्व की ओर बहकर दक्षिण-पश्चिम में गंगा के साथ मिलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। गंगा नदी प्रणाली सरयू, कोसी, भागवती, राप्ती, गण्डक, करनाली, रामगंगा, गोमती, सोह, काली (या शारदा), महानन्दा, बूढ़ी गण्डक, यमुना और गंगा नदियों से मिलकर बनी है। ये सभी नदियाँ गंगा में मिलकर पूर्व की ओर बहती हुई विशाल डेल्टा बना कर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। सिन्धु प्रणाली में सतलज, व्यास, चिनाव, झेलम, रावी और सिन्धु नदियाँ सम्मिलित हैं। ये उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पश्चिम की ओर बहकर अरब सागर में गिरती हैं।

हिमालय की कुछ नदियों ने हिमालय के आर-पार गहरी घाटियों का निर्माण किया है। ऐसी नदियों में सिन्धु, सतलज और ब्रह्मपुत्र उल्लेखनीय हैं। ये बहुत दूर तक हिमालय की प्रधान श्रेणी के साथ-साथ बहती हैं और अनुकूल अवस्था पाकर श्रेणी को पार कर मैदान की ओर जाती हैं। इन सबमें सिन्धु नदी की घाटी मुख्य है। यह गिलगित के पास ५,४३० मीटर गहरी है।

हिमालय पर्वत की नदियों की विशेषताएँ

(१) हिमालय पर्वत से निकलने वाली प्रायः सभी नदियों में तीन खण्ड पाये जाते हैं : पहाड़ी खण्ड, मैदानी खण्ड और डेल्टाई खण्ड। ये नदियाँ भारत की भूमि को न केवल सींचती ही हैं वरन् नावें चलाने योग्य भी हैं।

(२) हिमालय की कई नदियाँ तो हिमालय पर्वत से भी पुरानी हैं अर्थात जब हिमालय पर्वत का अस्तित्व भी नहीं था तब भी सिन्धु, सतलज, ब्रह्मपुत्र, गण्डक, कोसी, आदि नदियाँ बहती थीं। हिमालय पर्वत के बनने के फलस्वरूप ये नदियाँ भी इन पर्वतों में अधिक गहरी घाटियों में बहने लगीं। सिन्धु ६,१०० मीटर गहरी कन्दराओं में, सतलज, गण्डक और कोसी ६१० से १,२२० मीटर गहरी घाटियों में बहती हैं जिनकी चौड़ाई ६ से २७ किलोमीटर है। इस प्रकार हिमालय की कई नदियाँ पूर्वगामी (antecedent drainage) हैं। ऐसी नदियों के पहाड़ी पार्श्वों पर विभिन्न ऊँचाई पर नदी-चबूतरे (river terraces) मिलते हैं। हिमालय की नदियों में जल प्रवाह के कई रूप मिलते हैं जैसे, समानान्तर रूप, जालीनुमा रूप (trellic), आयताकार रूप (rectangular) और केन्द्रोन्मुखी रूप (centripetal)। ये नदियाँ अपक्षरण द्वारा अपनी घाटियों का अब तक विकास कर रही हैं।

(३) हिमालय से निकलने वाली नदियों द्वारा लायी गयी उपजाऊ मिट्टी से ही भारत का बड़ा मैदान बना है।

(४) हिमालय की अधिकतर घाटियाँ V आकार की हैं (अर्थात बहुत गहरी हैं) यद्यपि उत्तर की ओर हिमनदों से बनी U आकार की चौड़ी घाटियाँ मिलती हैं।

(५) ये नदियाँ हिमालय पर्वत के दोनों ढालों का जल लेकर क्रमशः अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। अधिक वर्षा और हिम के कारण इन

नदियों में सदैव जल भरा रहता है अतएव इनका सर्वाधिक उपयोग सिंचाई के लिए नहरें निकालने में किया गया है।

(६) हिमालय की कई बड़ी-बड़ी नदियों ने छोटी-छोटी नदियों के जल को अपने में मिला लिया है। उदाहरण के लिए, गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, आदि नदियों ने कई छोटी नदियों के पानी को, जो तिब्बत में बहती है, अपने मे आत्मसात (river capture) कर लिया है।

हिमालय के दर्रे (Himalayan Passes)

हिमालय पर्वत की श्रेणियों को पार करने के लिए इसमें कई दर्रे हैं। उत्तरी पहाड़ों में मालकन्द का दर्रा (१,६०२ मीटर) है, जिसमे होकर चित्राल को मार्ग जाता है। बुर्जिल के दर्रे (३,७५० मीटर) द्वारा काशगर और मध्य एशिया जाने का मार्ग है। जोजीला दर्रा (३,४४५ मीटर) श्रीनगर से लेह का मार्ग है। वहाँ से काराकोरम दर्रे (५,४२५ मीटर) में होकर यारकन्द को मार्ग जाता है। शिपकी दर्रे में होकर शिमला से तिब्बत जाने का मार्ग है। माना और नीति दर्रों में होकर भारतीय यात्री मानसरोवर झील और कैलाश को घाटी के दर्शन करने जाते हैं। जेलेप्ला (४,३८६ मीटर) और नाथूला दर्रों द्वारा दार्जिलिंग और चुम्बी घाटी होकर तिब्बत को जाते हैं।[1] पश्चिमी हिमालय श्रेणियाँ अधिक छिन्न-भिन्न हैं और कम ऊँची हैं। इनमें कई प्रसिद्ध दर्रे पाये जाते हैं जिनके द्वारा ही प्राचीन काल मे भारत पर ऐतिहासिक आक्रमण हुए। ये दर्रे क्रमश: गोमल, मकरान, खैबर, टोची, कुर्रम तथा बोलन हैं। ये सभी दर्रे अब पाकिस्तान में हैं।

असम और बर्मा के बीच में आवागमन के लिए कई मार्ग हैं किन्तु हिमालय और असम के इन मार्गों को पार करना बड़ा ही कठिन है क्योंकि पहाड़ी भागो में अधिक वन और तेज बहने वाली नदियों के कारण आने-जाने में बड़ी कठिनाई होती है। इस ओर के मुख्य दर्रे यांग्याव, कांगेरी, दीफू, चौकान, तेजू, तंगुप एन (मनीपुर), आदि हैं।

हिमालय के दर्रों की औसत ऊँचाई ४,८८० से लेकर ५,४६० मीटर तक है। ऊँचे दर्रों के कारण भारत और मध्य एशिया के बीच हिमालय पर्वत व्यावसायिक और सामाजिक अवरोध बने हुए हैं। इसी कारण भारत पर जितने भी आक्रमण बाहर से हुए वे सब इन दर्रों मे होकर नहीं वरन् उत्तरी-पश्चिमी दर्रों द्वारा हुए जो कम ऊँचे हैं (खैबर १,०२७ मीटर और बोलन १,७६० मीटर ऊँचा है) और जो अब पाकिस्तान मे हैं।

[1] राज्यों के अनुसार दर्रे ये हैं:
जम्मू-कश्मीर—बुर्जिल, जोजिला।
हिमाचल प्रदेश—बड़ा लाप्चा, शिपकीला।
उत्तर प्रदेश—लिपू, थायला, नीती।
सिक्किम—यूला, जेलेप्ला।

हिमालय का उद्भव (Origin of the Himalayas)

भूगर्भशास्त्रियों का मत है कि हिमालय के वर्तमान स्थान पर दो अति विशाल भूअभिनतियाँ (geosynclines) थीं और इनको अलग करने की एक विशाल भूउन्नति थी। डॉ० वाडिया के अनुसार ये दोनों भूअभिनतियाँ एक-दूसरे से पश्चिम एवं पूर्व में मिली थीं और बीच में यह भूउन्नति से पृथक थीं। यही अलग करने वाली विशाल भूउन्नति आज की मध्य हिमालय की चोटियाँ हुईं।

लगभग १२ करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी के धरातल का जल-थल का विस्तार आज से पूर्णतः भिन्न था। न तो आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, अमरीका एवं भारत का अपना कोई स्वरूप था और न इनके बीच आज की दूरी थी। अपितु सभी एक बड़े भू-भाग के अंग थे जिसे पेंगिया (Pangia) कहते थे। यह भू-भाग एक ठोस भू-भाग था जो कि चारों ओर समुद्र से घिरा था और इसके मध्य में टैथीस (Tethys) सागर था जो उत्तर में यूरोप, एशिया और उत्तरी ध्रुव के भागों को तथा दक्षिण में अफ्रीका, अमरीका, आस्ट्रेलिया, भारत, आदि भू-भागों को अलग करता था। इस दक्षिणी भाग को दक्षिणी महाद्वीप या गोंडवाना भूमि (Gondwana land) और उत्तरी भू-भाग को उत्तरी महाद्वीप या अंगारा भूमि (Angara land) कहा जाता था।

कालान्तर में धरातल के अन्तराल में प्रारम्भ होने वाली उथल-पुथल से यह दक्षिणी महाद्वीप क्रिटेशियस युग के प्रारम्भ में अपने स्थान से हिलने लगा। हिमालय का बीजारोपण आज से ३२ करोड़ वर्ष पूर्व कैंबोनिया युग से ही माना जाता है जबकि सभी स्थल टैथीस सागर के अन्तराल में थे। टैथीस महासागर का अन्त उसके धरातल में एकत्र रजकणों के ऊपर उठने के कारण हुआ। यह उत्थान पृथ्वी के धरातल के नीचे विभिन्न क्रियाओं के फलस्वरूप हुआ। भूशास्त्री डॉ० कृष्णन के अनुसार हिमालय का उत्थान चार विभिन्न भू-क्रान्तियों द्वारा हुआ जबकि अन्य भूशास्त्रियों के अनुसार तीन ही मुख्य भू-क्रान्तियाँ हुईं। डॉ० कृष्णन के अनुसार, ये भू-क्रान्तियाँ क्रमशः प्रथम ११ करोड़ वर्ष पूर्व क्रिटेशियस युग में, द्वितीय ६ करोड़ वर्ष पूर्व आयोसीन युग में, तृतीय २·५ करोड़ वर्ष पूर्व मायोसीन युग में और अन्तिम १० लाख वर्ष पूर्व प्लायोसीन युग में हुई थीं।

कैंबोवियन युग से ही टैथीस की दोनों प्रमुख भूअभिनतियों का धरातल उथल-पुथल करने लगा। इससे धरातल उथला हो गया। आज से २७·५ करोड़ वर्ष पूर्व कार्बोनिफरस काल में टैथीस पर अंगारा भूमि का जोरदार धक्का लगने लगा। फलस्वरूप टैथीस का धरातल मोड़दार होने लगा, उसके मध्य की भूउन्नति ऊपर उठी एवं धक्के का प्रभाव दक्षिण के पठारी भाग तक पहुँचा। यह क्रिया धीरे-धीरे बढ़ने लगी।

आज से लगभग ११ करोड़ वर्ष पूर्व यह जोर अंगारा भूमि की ओर से कुछ तीव्र होने लगा और टैथीस की उत्तरी भूउन्नति उत्थान को प्राप्त हुई। इसके

पश्चात् ५ करोड़ वर्षों तक शान्ति रही और जलज शिलाओं का बनना टैथीस महासागर के भीतर जारी रहा। ये जलज शिलाएँ मुख्यतः काला पहाड़ (पाकिस्तान), सिन्ध एवं पोतवार के पठार के पास बनीं।

आज से लगभग २·५ करोड़ वर्ष पूर्व एक अत्यन्त तीव्र भूक्रान्ति और हुई। धरातल के नीचे की उथल-पुथल के कारण अगारा भूमि का जोरदार धक्का टैथीस को लगा और टैथीस की उत्तरी भू-अभिनति से जलज शिलाओं की पर्वत श्रेणियाँ ऊपर उठ गयीं। बीच की विशाल भूउन्नति भी उभर आयी अर्थात् मध्य हिमालय और ट्रांस हिमालय पर्वत श्रेणियों का उद्भव हो गया। इस जोरदार धक्के से टैथीस की दक्षिणी भूअभिनति और गहरी एव विशाल हो गयी।

दक्षिण के ओर की भूअभिनति मे अनेक नदियाँ (मुख्यत. इस काल की एक विशाल नदी जिसे पैस्को ने इन्डोब्रह्म के रूप मे और पिलग्रिम ने शिवालिक के रूप मे माना है। ये नदियाँ अपनी मिट्टी से इस विशाल भू-भाग को भरने लगीं। यह क्रिया आज से १० लाख वर्ष पूर्व तक चलती रही। इस मिट्टी का जमाव जलज अवसादी शिलाओ के रूप मे हुआ। वर्तमान शिवालिक और मन्दार पर्वत चोटियाँ उसी का रूप हैं। इन पर्वतो के निर्माण के बाद (अर्थात् १·२ करोड वर्ष पूर्व) हिम युग का आरम्भ हुआ। एक विशाल हिम क्षेत्र हिमालय से उत्पन्न होकर देश के उत्तरी एवं मध्य भागों मे फैल गया। धरातल पर अनेक स्थानो का तापमान हिमांक बिन्दु से भी नीचे रहने के कारण यह हिम क्षेत्र पृथ्वी के एक विशाल भू-भाग पर छाया रहा। यह स्थिति बहुत दीर्घ समय तक रही जबकि तापमान के बढ़ने से धीरे-धीरे हिम पिघलने लगा। इस भयानक ठण्ड से अनेक जीव नष्ट हो गये और पृथ्वी का बहुत-सा जीवन भी विनष्ट हो गया।

हिमालय का अन्तिम एव शक्तिशाली उत्थान १० लाख वर्ष पूर्व हुआ और इसकी वर्तमान अवस्था बनी। इस उत्थान मे कश्मीर की पीर-पंजाल श्रेणी का उत्थान हुआ।

हिमालय की शिवालिक श्रेणियो के निर्माण के पश्चात् इन श्रेणियो और भारतीय प्रायद्वीप के बीच मे एक विशाल भूअभिनति शेष थी जिसका धरातल मोड़दार एव अत्यन्त उथला था। इसी मे हिमालय से निकलने वाली नदियो द्वारा लायी गयी मिट्टी एकत्रित होती रही और वर्तमान काल के सिन्धु, सतलज और गगा के विशाल मैदान की सृष्टि हुई।

उपरोक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि हिमालय की सृष्टि का कार्य समाप्त हो चुका है। इस पर्वत के अन्तराल मे अभी भी भीषण प्रलय मचा है और निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि कब हिमालय मे कोई नया उत्थान आरम्भ हो जाये। वास्तव में हिमालय पर्वत अभी भी ऊँचे उठ रहे हैं जो निम्न तथ्यों से स्पष्ट होता है: (१) इसके निकटवर्ती क्षेत्रो मे अभी भी भूकम्पों का आना यह

स्पष्ट करता है कि ये भूभाग अस्थिर हैं क्योंकि इनमें अभी तक पूर्ण सन्तुलन नहीं हो पाया है। (२) ऐतिहासिक एवं आधुनिक युग से ही तिब्बत की झीलें मरती जा रही हैं। झीलों के निकटवर्ती क्षेत्रों में पाये जाने वाले बालू और कंकड़ झीलों के वर्तमान जल-तल से ७०० से ६०० मीटर ऊँचाई पर मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि धीरे-धीरे हिमालय ऊँचे उठ रहे हैं। (३) हिमालय की नदियाँ अभी भी अपनी युवावस्था में ही हैं क्योंकि ये अपनी घाटियों को गहरा कर रही हैं।

हिमालय की विशेषताएँ

हिमालय एवं अन्य समकालीन पर्वतमालाओं (यूरोप की काकेशस, आल्पस, पिरेनीज; उत्तरी अफ्रीका की एटलस, एशिया, मलयेशिया और अन्य पूर्वी द्वीपसमूह की पर्वत-श्रेणियाँ; दक्षिणी अमरीका की एण्डीज और उत्तरी अमरीका की रॉकी पर्वत मालाएँ) का उद्भव लगभग एक ही समय हुआ है। इसके विपरीत अरावली, विन्ध्याचल और सतपुड़ा पर्वतों का उद्भव इसके उद्भव से बहुत पहले हुआ माना जाता है। हिमालय पर्वत नवीनतम मोड़दार पर्वत माने जाते हैं। इनकी ऊँचाई उसके नवीन होने का प्रमाण है।

हिमालय की चोटियों पर पाये जाने वाले अनेकानेक समुद्री जीवों के अवशेष इस बात के प्रमाण हैं कि इसकी शिलाएँ (जलज/अवसादी) अवश्य ही कभी समुद्र के तल में बनी थीं क्योंकि समुद्र से वर्तमान दूरी तो हजारों किलोमीटर है एवं ऊँचाई भी समुद्र से हजारों मीटर है।

हिमालय का धरातल, गंगा के मैदान का धरातल एवं दक्षिण पठार का धरातल, अन्तराल में एक ही है। गंगा का मैदान उसी धरातल के विशाल गड्ढे के भरने से एवं हिमालय पर्वत उसी धरातल पर एकत्र रजकणों से बना है। प्रस्तुत मैदान एक विशाल भूअभिनति के नदियों द्वारा लायी मिट्टी के भर जाने से बना है। यह जमाव लगभग १० लाख वर्षों से होता रहा है। इसके अन्दर का धरातल अत्यन्त उथला होने के कारण यह मैदान भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न गहराई में पाया जाता है। इस मैदान से हिमालय एक सीधी खड़ी दीवार के रूप में जुड़ा है न कि सामान्य ढलान द्वारा। यह एक विशाल गड्ढे का द्योतक है। सम्भवतः इसीलिए काठगोदाम की २४३ मीटर ऊँचाई से एकाएक ३५ किलोमीटर बाद ही नैनीताल की ६१४ मीटर की ऊँचाई मिलती है।

हिमालय का विस्तार भारत के उत्तरी-पूर्वी सीमावर्ती भागों से लगाकर पश्चिम में पाकिस्तान, पूर्व में बर्मा और चीन की ओर पाया जाता है। इसका यह वृहद विस्तार एक बड़े वृत्त के अर्द्धभाग के समान धनुषाकार है। इस वृत्त का ज्यामितिक केन्द्र चीन के सिक्यांग प्रान्त की लोपनोर झील में पाया जाता है। इस वृत्त का अर्द्धव्यास १,५४० किलोमीटर के लगभग है। इस वृत्ताकार श्रेणी की ऊँची चोटियाँ पश्चिम में नमचा बरवा, पूर्व में नंगा पर्वत और मध्य में एवरेस्ट हैं। इस विशाल

वृत्त का अर्द्ध भाग पूर्व मे असम से होता हुआ वर्मा एवं थाईलैण्ड की ओर तथा पश्चिम में कश्मीर से होता हुआ बलूचिस्तान की ओर एक तीक्ष्ण मोड़ द्वारा घूमा हुआ है। इस मोड को भूगर्भशास्त्री बालों की पिन वाले मोड़ (Harpin fold) के नाम से पुकारते हैं। यह मोड उद्‌भव के समय किसी कठोर भू-भाग के बीच में आ जाने से बना है जिससे पर्वत श्रेणियाँ इस कठोर भू-भाग के चारों तरफ घूम गयीं।

हिमालय और दक्षिणी भारत की सरचना की तुलना

हिमालय प्रदेश की सरचना दक्षिणी भारत की सरचना से भिन्न है : (१) यह दक्षिणी भारत से अधिक युवा है क्योंकि यह उसके बाद में बना है। (२) इसकी उत्पत्ति टैथीस महासागर की भू-अभिनति मे हुई है अतः इसकी संरचना मे अवसादी चट्टानों का आधिक्य पाया जाता है। (३) इस प्रदेश की उत्पत्ति पर भूगर्भिक आन्दोलन का प्रभाव अधिक पड़ा है। पर्वत निर्माणकारी क्रियाओ के प्रभाव के कारण ही इसकी चट्टानों में मोड़ें (folds) पड़ गयी हैं। अतः इस विशाल पर्वत में अनेक मोड़ों, भ्रंशों (faults) और ग्रीवाखण्डों (nappes) के उदाहरण मिलते हैं। (४) हिमालय पर्वत का सम्पूर्ण निर्माण आकस्मिक रूप से न होकर तीन पृथक् कालों में हुआ है। यह प्रथम कल्प के कैम्ब्रियन काल से आरम्भ होकर द्वितीय या मध्य जीव कल्प होते हुए तृतीय या टर्शरी कल्प तक बना है और यह अभी भी बन रहा है। जैसा कि असम, नेपाल, बिहार क्षेत्रों मे समय-समय पर आने वाले भूकम्पों से स्पष्ट होता है। (५) यद्यपि भूतल की बाहरी शक्तियों ने (वर्षा, ताप, नदियाँ, आदि) लगभग ३ करोड वर्षों से इसका क्षरण आरम्भ कर दिया है किन्तु दक्षिणी प्रायद्वीप जैसा विशाल परिवर्तन इसमें दृष्टिगोचर नहीं होता। हिमालय प्रदेश की नदियाँ अभी अपनी युवावस्था (youth) में हैं अत. उनके द्वारा लम्बवत् कटाव अधिक होता है और इसी कारण यहाँ गहरी घाटियाँ या गॉर्ज (gorge) मिलते हैं, जिससे अनेक जलोढ पंख (Alluvial fans) बन गये हैं, जिन्हें सामान्यतः भाबर (Bhabbar) कहते हैं।

हिमालय पर्वत का प्रभाव

हिमालय पर्वत का भारत के भौतिक, आर्थिक एव जलवायु सम्बन्धी अवस्थाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा है जैसा कि निम्न तथ्यों से स्पष्ट होगा :

(१) ये पर्वत साइबेरिया और रूस की ओर से आने वाली ठण्डी और शुष्क पवनों से भारत की रक्षा करते हैं। इससे यहाँ न तो पूर्ण मरुस्थलीय और न ही अधिक ठण्डी जलवायु सम्बन्धी विषम अवस्थाएँ पायी जाती हैं। यही नहीं, ये पर्वत उत्तर की ओर से आने वाले आक्रमणकारियों से देश की रक्षा करते रहे हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इन पर्वतों का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि शताब्दियों से इन पर्वतों ने भारत को मध्य एशिया तथा यूरोपीय देशों के प्रभाव से मुक्त रखा है। किन्तु इन पर्वतों के अवरोध-स्वरूप उत्तर की ओर से होने वाले व्यापार पर बड़ा

अहितकर प्रभाव पड़ा है । उत्तरी भाग हिमाच्छादित रहने से आवागमन के अनुकूल नहीं है, अतः आज भी मध्य एशिया और भारत के बीच बहुत ही कम स्थलीय व्यापार होता है।

(२) *हिमालय पर्वत भारत के अन्तरिक्ष-विज्ञान पर भी अपना प्रभाव डालते हैं।* हिमालय की उत्तुंग हिम-चोटियाँ उत्तरी भारत के तापमान एवं आर्द्रता को प्रभावित करती हैं। मानसूनों के मार्ग में कुछ सीधा पड़ने से यह अपनी ऊँचाई और स्थिति के कारण उनकी अधिकांश आर्द्रता को हिम या जल के रूप में ग्रहण कर लेते हैं। इसके कारण हिमालय पर हिमनदियाँ पनपती हैं और ढालों पर होने वाली वर्षा के जल के साथ असंख्य झरनों के रूप में नदियों को जन्म देती हैं। गंगा और ब्रह्मपुत्र दो भुजाओं की भाँति सम्पूर्ण हिमालय की श्रेणियों का आलिंगन कर लेती हैं। अस्तु, हिमालय पर गिरने वाले हिम अथवा वर्षा की सारी मात्रा अन्ततः भारत को ही लौट आती है। *यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से हिमालय पर्वत जितने तिब्बत के लिए लाभदायक हैं उतने ही भारत के लिए भी, किन्तु फिर भी इनका सारा लाभ* भारत को ही मिलता है। भारत के मैदानों के लिए ये पर्वत एक विशाल प्राकृतिक बाँध का कार्य करते हैं। इनसे निकली नदियाँ अपने साथ बहाकर लायी गयी बारीक काँप मिट्टी मैदानों में जमा कर देती हैं। इस मैदान को हिमालय पर्वत का दान (Gift of the Himalayas) कहते हैं।

(३) हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों और नैसर्गिक दृश्यों के कारण इन पर्वतों का महत्त्व यात्रियों, पर्यटकों और अन्वेषकों के लिए बहुत बढ़ गया है। भ्रमणार्थ आने वाले व्यक्तियों के लिए कई उपयुक्त स्थानों पर पहाड़ी नगरों और होटल *व्यवसाय की स्थापना हुई है विशेषकर हिमालय के निचले भागों में।* ग्रीष्मावकाश व्यतीत करने हेतु असंख्य व्यक्ति नैनीताल, मसूरी, शिमला, दार्जिलिंग, अलमोड़ा, लैंड्सडाउन, रानीखेत, गुलमर्ग, अमरनाथ, कसौली, कलिंगपोंग, चकराता, चम्बा, कुल्लू, भुवाली, मुक्तेश्वर, आदि स्थानों को जाते हैं।

(४) हिमालय पर्वत सदैव से ही अपनी सुन्दर घाटियों, हिमाच्छादित चोटियों तथा कलकल करते हुए झरनों और सघन वन-सम्पत्ति के कारण विदेशियों को आह्वान करते रहे हैं, फलस्वरूप समय-समय पर हिमालय की अनेक चोटियों को विजय करने के प्रयास किये गये हैं।

(५) हिमालय की घाटियों में जहाँ वृक्षों की सीमा समाप्त होती है और हिम *रेखा आरम्भ होती है, वहाँ छोटे-छोटे चरागाह पाये जाते हैं जिन्हें कश्मीर में मर्ग* (जैसे गुलमर्ग, सोनमर्ग, आदि) और कुमायूँ में बुग्याल या पयार कहते हैं। इनमें भोटिया और लामा लोग अपनी भेड़-बकरियाँ चराते हुए घूमते हैं।

(६) पुराणों में हिमालय को देवता स्वरूप माना गया है। इसी पर्वत श्रेणी में कैलाश, अमरनाथ, मानसरोवर, केदारनाथ, बद्रीनाथ, ज्वालामुखी, देवप्रयाग,

विष्णु प्रयाग, कर्णप्रयाग और तारादेवी, आदि प्रमुख तीर्थ हैं जिनके दर्शन करने प्रतिवर्ष सहस्रों यात्री जाते हैं।

(७) जलवायु की विभिन्नता और ऊँचाई के कारण हिमालय पर्वत पर विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। हिमालय के ऊँचे ढालों पर सिलवर स्प्रूस, देवदार, शाह-बलूत, लार्च, चीड़, आदि वृक्ष मिलते हैं। इनसे ओषधियाँ, दियासलाई, कागज, वार्निश, लकड़ी के सामान, आदि उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त होता है। हिमालय के वन शेर, चीते, हाथी, हिरन, भालू, तेंदुए, आदि पशुओं के शिकार के लिए श्रेष्ठ हैं।

(८) बाहरी हिमालय श्रेणी पर असम से लेकर हिमाचल प्रदेश तक चाय और फलों (सेव, आडू, अखरोट, नासपाती) की खेती की जाती है। जहाँ कहीं समतल भूमि मिल जाती है वहाँ चावल, मिर्च, अदरक, फल, गेहूँ और आलू की खेती की जाती है।

(९) हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में उपजाऊ भूमि के अभाव, पथरीली ढालू भूमि और प्रतिकूल जलवायु के कारण न तो अधिक खेती-बाड़ी ही हो सकती है और न उद्योग धन्धों की ही उन्नति हो सकती है। यहाँ मार्गों की सुविधा भी नहीं है। अतः जनसंख्या का जमाव बड़ा बिखरा हुआ पाया जाता है। हिमालय के कांगड़ा, कुल्लू, कुमायूँ और गढ़वाल जिलों में गाँवों का रूप छितरा हुआ है। ये गाँव अधिकतर घाटियों में पाये जाते हैं क्योंकि वहाँ थोड़ी-सी समतल भूमि मिल जाने पर उसमें सिंचाई कर खेती की जाती है।

(१०) हिमालय पर्वत मनुष्यों को शरण भी देते हैं। मार्गों की कठिनाई और पहाड़ों में बने मार्गों और पगडंडियों से बाहरी व्यक्तियों के अपरिचित होने के कारण घाटियों तक पहुँचना बड़ा असम्भव है। अतः पहाड़ी निवासियों के जीवन पर न तो बाहरी आक्रमण का कोई प्रभाव ही पड़ता है और न उनके रीति-रिवाज या भाषा पर ही। अस्तु, इन क्षेत्रों में अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, विदेशियों के प्रति अविश्वास की भावना और तीव्र धर्मान्धता तथा अपने स्थान और परिवार के प्रति अटूट प्रेम पाया जाता है। निरन्तर परिस्थितियों से लड़ते रहने के कारण वे बड़े निडर, परिश्रमी, उद्योगी, ईमानदार और मितव्ययी होते हैं। इनके पुट्ठे और पैर बड़े मजबूत, छाती चौड़ी और स्वास्थ्य सुन्दर होता है। नेपाल के गोरखा लोग अपने स्वास्थ्य के कारण ही भारतीय फौजों में रखे गये हैं। पूर्व की ओर असम के पहाड़ी भागों में अनेक आदि जातियाँ रहती हैं, जैसे नागा, डफला, अभोर, मिशमी, आदि।

(११) कोयला, पैट्रोलियम, आदि खनिज प्राप्त होने की सम्भावना से इन पर्वतों का आर्थिक महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है।

(१२) हिमालय से निकलने वाली अनेक नदियों के मार्गों में पड़ने वाले जल-प्रपातों से सस्ती जल विद्युत उत्पन्न की गयी है।

२. सतलज-गंगा का मैदान
(SUTLEJ-GANGA PLAIN)

यह मैदान हिमालय की उत्पत्ति के बाद बने हैं। यह हिमालय पर्वत के दक्षिण में और दक्षिणी पठार के उत्तर में भारत का ही नहीं वरन् विश्व का सबसे अधिक उपजाऊ और घनी जनसंख्या वाला मैदान है। इसका क्षेत्रफल ७ लाख वर्ग किलोमीटर है। यह मैदान पूर्व में १४५ किलोमीटर से लगाकर पश्चिम में ४८० किलोमीटर चौड़ा है तथा २,४१४ किलोमीटर की लम्बाई में धनुष के आकार में फैला है। इस मैदान का ढाल बड़ा समतल है। अतः ऊँचे भाग बहुत ही कम हैं। अरावली पर्वत श्रेणी को छोड़कर कोई भी भाग समुद्र तल से १५० मीटर से अधिक ऊँचा नहीं है। यह मैदान अधिक गहरा है। यद्यपि धरातल की काँप मिट्टी की मोटाई अभी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुई है परन्तु भूमि में की गयी खुदाई के फलस्वरूप यह प्रकट हुआ है कि इसकी मोटाई पृथ्वी के ऊपरी धरातल से ४०० मीटर तक तथा समुद्री धरातल से ३,०५० मीटर नीचे तक है।[1] पातालतोड़

चित्र १२

कुओं की खुदाई के लिए जितने भी छिद्र किये गये वे सब पथरीली चट्टानों तक पहुँचने में असफल रहे हैं। यहाँ तक कि उनके काँप मिट्टी की अन्तिम तह तक पहुँचने का कोई चिह्न नहीं पाया गया है। ओल्डहम (Oldham) के अनुसार इस मिट्टी की मोटाई उसकी उत्तरी सीमा के निकट ४५७ मीटर है। बुर्राड के मतानुसार मंसूरी के दक्षिण की भ्रंश घाटी ३२ किलोमीटर गहरी है। दिल्ली और राजमहल की पहाड़ियों के मध्य इसकी मोटाई सर्वाधिक है। राजस्थान, राजमहल तथा असम के मध्य यह उथली है। इसकी नीचे की सतह न तो समतल प्रतीत होती है और न एक सार ही वरन् वह असमान और ऊँची-नीची है। इसके नीचे दक्षिणी पठार के उत्तरी किनारे
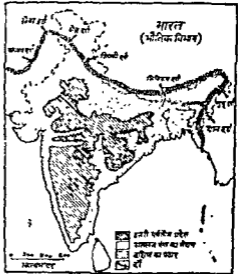
1 *Records of the Geological Survey of India* Vol. 68, Pt. 4, p. 372.

तथा हिमालय पर्वत के दक्षिणी किनारे स्थित हैं। इस मैदान में सिन्ध का बड़ा भाग (पश्चिमी पाकिस्तान), उत्तरी राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, बंगला देश और असम का आधा भाग सम्मिलित है।

यह मैदान सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्र और उनकी अनेक सहायक नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी से बना है। अतः यह बहुत ही उपजाऊ है। इस मैदान के बीच में अरावली पर्वत आ जाने के कारण सिन्धु और उसकी सहायक नदियां (झेलम, चिनाब, रावी, व्यास तथा सतलज) पश्चिम में तथा गंगा और उसकी सहायक नदियाँ (यमुना, गण्डक, घाघरा, गोमती, सरयू, सोन) तथा ब्रह्मपुत्र पूर्व में बहती हैं। अरावली पर्वत इन दोनों नदियों के समूहों के बीच में जल-विभाजक (water-parting) का काम करता है। अतः इस मैदान के पश्चिमी और पूर्वी भाग क्रमशः पश्चिमी और पूर्वी मैदान कहलाते हैं। पश्चिमी मैदान का ढाल उत्तर से दक्षिण की ओर है और पूर्वी मैदान का ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है।

(अ) पश्चिमी मैदान (Western Plains) का अधिकांश भाग (जिसमें पश्चिमी पंजाब और सिन्ध सम्मिलित हैं) अब पाकिस्तान में चला गया है। इस भाग में मिट्टी के टीले अधिक पाये जाते हैं। कहीं-कहीं इन टीलों के बीच में नीची भूमि भी मिलती है जिसे तल्ली कहते हैं। वर्षा के दिनों में यह तल्लियाँ जल से भरकर एक तरह की झीलें बन जाती हैं जिन्हें ढांढ कहते हैं। पश्चिमी मैदान अधिकतर शुष्क और विषम जलवायु वाला है अतः सिंचाई के साधनों की प्रचुरता है।

(ब) पूर्वी मैदान (Eastern Plains) का पूर्वी भाग ही वास्तव में मुख्य मैदान है। इस मैदान की गहराई बहुत अधिक है। प्रति वर्ष गंगा और उसकी सहायक नदियों द्वारा लायी गयी बारीक कांप मिट्टी की तहें जमती जाती हैं, अतः हजारों मीटर की गहराई तक खुदाई करने पर भी पुरानी चट्टानों का पता नहीं चलता है। यह मैदान अपेक्षाकृत अधिक नम तथा नीची भूमि वाला है। यह अनेक प्रकार की कृषि वनस्पतियों से भरा है। इस मैदान का क्षेत्रफल ३,४५,००० वर्ग किलोमीटर है।

गंगा के मैदान को धरातल की ऊँचाई-निचाई के विचार से दो भागों में बाँटा गया है : बाँगड़ और खादर। इस मैदान के उन भागों को जहाँ नदियों द्वारा कछार के प्राचीनतम सर्वाधिक पुरानी मिट्टी के ऊँचे मैदान बन गये हैं और जहाँ सामान्य रूप से नदियों की बाढ़ का जल नहीं पहुँच पाता, बाँगड़ (Bangar) कहते हैं। नये कछारी भाग, जो निचले मैदान हैं और जहाँ बाढ़ का जल प्रतिवर्ष पहुँचकर नयी मिट्टी की पर्तें जमा देता है, खादर (Khadar) के नाम से पुकारे जाते हैं। कहीं-कहीं नदियों के पास ऊँचे किनारे विस्तृत उप-घाटियों के रूप में परिवर्तित हो गये हैं। इन छोटे-छोटे मैदानी भागों को दोआब (Doab) कहा जाता है।

गंगा का सारा मैदान बाँगड़ और खादर नामक ऊँची-नीची भूमि से बना हुआ है। बाँगड़ की ऊँचाई कहीं-कहीं ३० मीटर है लेकिन ऊँचाई में इस तरह उतार

और चढ़ाव हैं कि सरसरी दृष्टि से देखने पर बांगड़ और खादर में बहुत ही कम अन्तर दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि इस मैदान में धरातल का उतार-चढ़ाव समुद्री लहरों की तरह लहराता हुआ मालूम होता है।

बांगड़ के मैदान उत्तर प्रदेश में बहुत पाये जाते हैं लेकिन खादर की बहुतायत बिहार और बंगाल में विशेष रूप से है। पंजाब की भाँति उत्तर प्रदेश में भी कहीं-कहीं बालू के ढेर पाये जाते हैं जिन्हें भूड़ कहते हैं। यह भूड़ प्राचीन काल में जल के बहाव से बन गये थे लेकिन सिन्धु के मैदान की तरह वायु द्वारा बने हुए बालू के टीले गंगा के मैदान में नहीं मिलते क्योंकि इस मैदान में बालू और सूखी मिट्टी कम पायी जाती है। बांगड़ की पुरानी भूमि में कहीं-कहीं कंकड़ अधिक पाये जाते हैं। यह कंकड़ चूने वाली मिट्टी के जम जाने से बने हैं। इनका विस्तार बिहार में (तिरहुत जिले में) अधिक है।

गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी का डेल्टा लगभग १·८६ लाख वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। इसमें १६० मीटर की गहराई तक खुदाई करने पर भी चट्टान नहीं मिली है। इसका धरातल समुद्र की सतह से बहुत कम ऊँचा है अतः समुद्र में उठने वाले ज्वार इसके अधिकांश भाग को जल से ढँक लेते हैं और इसलिए यह भाग अधिक दलदल बना रहता है। इस डेल्टा के ऊपरी भाग में कहीं-कहीं कुछ टीले या नदियों के पुराने किनारे चर (Chars) भी पाये जाते हैं अतः लोग गाँव बना कर इन्हीं पर बस गये हैं। नीची भूमि को बिल (Bill) कहते हैं। इसमें जूट धोने के लिए पर्याप्त जल मिल जाता है।

ब्रह्मपुत्र का मैदान गंगा के डेल्टा के उत्तर-पूर्व में फैला है। यह गारो और हिमालय पहाड़ के बीच में एक लम्बा और पतला मैदान है जिसमें ब्रह्मपुत्र नदी की बाढ़ का जल पर्वतों से लायी हुई मिट्टी को जमा देता है। जल में मिली हुई मिट्टी की मात्रा इतनी होती है कि जल के बहाव में थोड़ी सी रुकावट पड़ने पर ही ढेरों मिट्टी इकट्ठी हो जाती है और जल चारों ओर फैल जाता है। यही कारण है कि ब्रह्मपुत्र नदी में द्वीप बहुत पाये जाते हैं। ब्रह्मपुत्र की घाटी में चावल, नारंगी, फल, जूट तथा चाय पैदा की जाती है।

भाबर प्रदेश (Bhabbar)—जहाँ हिमालय पर्वत और सतलज-गंगा का मैदान मिलते हैं वहाँ हिमालय पर्वत से निकलने वाली असंख्य धाराओं ने अपने साथ पहाड़ से टूट कर गिरे हुए पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े काफी गहराई तक जमा कर दिये हैं। इन कंकड़-पत्थरों से ढका हुआ भाग ही भाबर कहलाता है। इस तरह के पथरीले ढाल हिमालय के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले हुए हैं। यह प्रदेश ८ किलोमीटर तक चौड़ा है। इस ढाल को पार करते समय केवल बड़ी-बड़ी नदियों का जल ही ऊपर रहता है किन्तु छोटी धाराओं का जल कंकड़ों के ढेर के नीचे दब जाता है। इससे इस प्रदेश में लम्बी जड़ों वाले बड़े-बड़े वृक्ष तो अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु छोटे पौधों, खेतों तथा जनसंख्या का प्रायः अभाव पाया जाता है।

तराई प्रदेश (Tarai)—भावर प्रदेश के अधिक आगे जाकर भावर के नीचे बहने वाला जल ऊपरी धरातल पर प्रकट हो जाता है। इससे बड़े-बड़े दलदल हो गये हैं। इन दलदलों में ऊंची घास (जैसे काँस, हाथीघास, आदि), वृक्ष और असंख्य जंगली पशु पाये जाते है। इन घने जंगलों में मलेरिया के कारण जनसंख्या अधिक नहीं है। इस रोगग्रस्त प्रदेश को तराई कहते हैं। अधिक पश्चिम में वर्षा कम होने के कारण सिन्धु के मैदान और हिमालय के ढालों के बीच में भावर तो बहुत हैं पर तराई का अभाव है। भावर की अपेक्षा तराई का प्रदेश अधिक चौड़ा है। उत्तर प्रदेश की सरकार इस भाग को साफ कराकर मशीनों द्वारा सामूहिक खेती करवा रही है। तराई की रचना बारीक कंकड़ पत्थर, रेत और चिकनी मिट्टी से हुई है।

बड़े मैदान की उत्पत्ति (Origin of the Plains)

हिमालय पर्वत की रचना के कारण उसके और प्रायद्वीपीय भारत के मध्य में एक गहरी खाई बन गयी जिसमें टैथिस सागर का अवशिष्ट जल खाड़ियों के रूप में भरा हुआ रह गया। इन खाड़ियों में वर्तमान अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी के वे उत्तरी भाग कहे जा सकते हैं जो अब नष्ट हो चुके हैं। हिमालय से निकलने वाली आरम्भिक नदियों ने हिमालय पर से पत्थर, कंकड़, रेत और मिट्टी ला-लाकर इन खाड़ियों के तल प्रदेश में जमा कर दिया। इस प्रकार नवसर्जित हिमालय की आरम्भिक नदियों द्वारा जो मिट्टी का एक बड़ा समतल प्रदेश हिमालय और प्रायद्वीपीय भारत के मध्य में बना वही आज सिन्धु-सतलज-गंगा का मैदानी प्रदेश कहलाता है।

प्रसिद्ध भूगर्भवेत्ता एडवर्ड स्विस के मतानुसार यह मैदान प्रायद्वीप की कठोर भूमि के सामने उस विशाल गर्त या खड्ड के रूप में है जहाँ से टैथिस सागर के तल की मिट्टी दक्षिण की ओर फेंक दी गयी थी और जो प्रायद्वीप के सामने जम गयी है। सिडनी बुर्राड के मत के अनुसार यह मैदान एक भ्रंश घाटी के रूप में है जहाँ पर कि विस्थापन भ्रंश के समय भूमि की सतह धरातल से नीचो चली गयी। किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं है। आधुनिक भूगर्भशास्त्रियों के मतानुसार यह मैदान भूमि की ऊपरी सतह में साधारण गहराई का एक समुद्र था जो वहाँ की नदियों द्वारा लायी गयी कांप मिट्टी के जमा होने से वर्तमान मैदान के रूप में परिवर्तित हो गया है। इस मैदान का निर्माण काल प्लीस्टोसीन युग या चतुर्थ कल्प (लगभग १० लाख वर्ष) और आधुनिक कल्प माना जाता है।

बड़े मैदान का महत्त्व

इस मैदान का विस्तार बहुत है। यह भारत के लगभग एक-तिहाई क्षेत्रफल को घेरे हुए है और सम्पूर्ण देश की लगभग ४५ प्रतिशत जनसंख्या यहाँ रहती है। यद्यपि भौगोलिक तथा आर्थिक दृष्टि से यह मैदान भारत का सर्वोत्तम भाग है किन्तु भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से इसका महत्त्व अधिक नहीं है क्योंकि यह भारत का नवीन-

तम भाग है और इसकी संरचना सरल है। अतः इस भाग में खनिज पदार्थों का नितान्त अभाव है किन्तु भूमि समतल होने तथा रेलमार्गों और नदियों का जाल बिछा होने के कारण इसी भाग में देश के बड़े-बड़े व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र तथा जनसंख्या भी घनी है। सिन्धु, सतलज, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी से बना होने और उन्हीं से सिंचित होने के कारण यह मैदान हिमालय पर्वत की देन कहलाता है। इस मैदान की कुछ मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

(१) इस मैदान की भूमि नदियों द्वारा निक्षिप्त काँप मिट्टी से बनी है। यह मुलायम मिट्टी है जिसकी उर्वरा-शक्ति बहुत ही विलक्षण है। भारत में उत्पन्न होने वाले खाद्यान्नों का अधिकांश भाग यहीं पैदा किया जाता है। यहाँ की जलवायु भी फसलों की उन्नति में अपेक्षित योग देती है।

(२) यह मैदान चौरस है और यहाँ असंख्य नदियों का जाल-सा फैला है। अधिकांश नदियाँ हिमालय पर्वत से निकलने के कारण सतत्‌वाहिनी हैं। इन नदियों का जल भूमि को जीवन प्रदान करता है। जिन क्षेत्रों में वर्षा कम होती है वहाँ नहरें निकालकर सिंचाई की जाती है। पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भारत की सबसे अधिक नहरें हैं।

(३) मैदानी भाग में नदियाँ धीमे बहती हैं और इनकी चौड़ाई अधिक होती है जिससे यहाँ नदियों द्वारा प्राचीन काल से यातायात होता रहा है। आज भी इनके द्वारा कुछ सीमा तक अन्तर्देशीय यातायात होता है। जहाँ नदियाँ तेज बहती हैं और जलप्रपात बनाती हैं वहाँ इनसे जलविद्युत उत्पन्न करने की योजनाएँ बनायी गयी हैं।

(४) यह मैदान चौरस होने के कारण रेल मार्गें और सड़कें आदि बनाने के लिए बहुत उपयुक्त है। यहाँ रेल मार्गों और सड़कों का जाल-सा बिछा है। इस यातायात की उन्नति ने आन्तरिक व्यापार की उन्नति में योगदान दिया है और इस क्षेत्र में मेरठ, दिल्ली, कानपुर, इलाहाबाद, बरेली, गाजियाबाद, मुरादाबाद, अमृतसर, लखनऊ, लुधियाना, चण्डीगढ़, पटना, भागलपुर, आगरा, कलकत्ता जैसे व्यापारिक और औद्योगिक नगर बस गये हैं।

(५) इस मैदान के पश्चिमी और पूर्वी भागों में जो अवसाद जमे उनमें वृक्षों के दब जाने से कोयले का निर्माण हो गया तथा जहाँ महासागरीय जीवांश जमे वहाँ उनसे निःसृत होकर खनिज तेल संग्रहित हो गया। असम, पश्चिमी बंगाल, पश्चिमी राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश और पंजाब में इसीलिए तेल मिलने की सम्भावनाएँ व्यक्त की गयी हैं।

(६) यह मैदान सभ्यता की जन्म-भूमि रहा है। इस विशाल मैदान का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास भारतीय इतिहास का पर्यायवाची रहा है। अनेकानेक प्राचीन तीर्थस्थान (कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन, प्रयाग, काशी, गया, गढ़मुक्तेश्वर, आदि) यहीं बसे हैं। देश के आधुनिक राजनीतिक स्वरूप को सजाने-

सँवारने मे भी इस मैदान का विशेष योग रहा है। इस क्षेत्र के प्राचीन नगरो के भग्नावशेष एव नवीन उन्नत नगर इसके साक्षी हैं।

३. दक्षिणी पठार
(DECCAN PLATEAU)

प्रायद्वीपीय भारत सतलज और गगा के दक्षिण मे फैले हुए उस भू-भाग का नाम है जो तीन ओर समुद्र से घिरा है तथा राजस्थान से कुमारी अन्तरीप और गुजरात से पश्चिमी बगाल तक विस्तृत है। इसका आकार त्रिभुजाकार है जिसका चौड़ा भाग उत्तर की ओर और सँकरा भाग दक्षिण की ओर है। पठार के उत्तर मे अरावली, विन्ध्याचल और सतपुड़ा की पहाड़ियाँ, पश्चिम मे ऊँचे पश्चिमी घाट और पूर्व मे निम्न पूर्वी घाट और दक्षिण मे नीलगिरि पर्वत हैं। इस प्रायद्वीप की औसत ऊँचाई ४८७ से ७६२ मीटर तक है। यह भारत का सबसे बड़ा पठार है जिसका क्षेत्रफल ७ लाख वर्ग किलोमीटर है। प्रायद्वीप के अन्तर्गत दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, आन्ध्र के पश्चिमी भाग, द० बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा, कर्नाटक, आदि राज्य हैं।
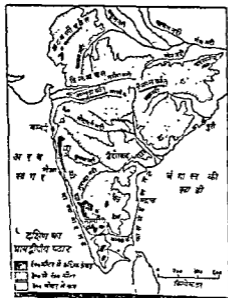
चित्र १·३

यह प्रायद्वीप भारत की प्राचीनतम कठोर चट्टानो का बना वह भू-भाग है जो मौसमी क्षति की क्रियाओं द्वारा क्षरण होता रहा है। यह अनेक छोटे-मोटे पठारों मे विभाजित है—उत्तर में बिहार मे राँची जिले मे छोटा नागपुर का पठार और दक्षिण मे दक्षिण का मुख्य पठार, आदि। इस प्रायद्वीप का धरातल बहुत कम चपटा है। यह साधारणतः टीलेदार या लहरदार है।

प्रायद्वीप के भौतिक विभाग

नर्मदा नदी की घाटी सम्पूर्ण प्रायद्वीप को दो असमान भागो मे बाँट देती है। उत्तर के भाग को मालवा का पठार और दक्षिण के भाग को दक्कन ट्रैप या दक्षिण का मुख्य पठार कहते हैं।

(१) मालवा का पठार (Malwa Plateau)—यह पठार स्थान-स्थान पर नदियों के प्रवाह के कारण टूटा है। इस भाग में पूर्व की ओर बघेलखण्ड और पश्चिम की ओर बुन्देलखण्ड में नदियों द्वारा निर्मित बड़े-बड़े बीहड़ खड्ड पाये जाते हैं जिनके कारण अधिकांश भूमि खेती के अयोग्य हो गयी है। शेष भाग में भूमि काफी समतल और उपजाऊ है। इस पठार का ढाल गंगा की घाटी की ओर है। मालवा पठार के इस लहरदार प्रदेश में कहीं-कहीं साधारण ऊँचाई की पहाड़ियाँ भी मिलती हैं (जैसे ग्वालियर की पहाड़ियाँ) किन्तु इन सबमें मुख्य विन्ध्याचल है। यह पर्वत गुजरात से प्रारम्भ होकर मध्य प्रदेश, बघेलखण्ड, उत्तर प्रदेश होता हुआ बिहार, उड़ीसा और सोन घाटी के ऊपर दीवार के समान दक्षिण के पठार और गंगा की घाटी के मध्य में (सासाराम तक) स्थित है। इसकी ऊँचाई ४५७ मीटर से ६१० मीटर तक है। किन्तु कहीं-कहीं ये ६१४ मीटर से भी अधिक ऊँचे हैं। गोमनपुर चोटी धार जिले में ५५३ मीटर ऊँची है। यह पर्वत गंगा के प्रवाह प्रदेश को नर्मदा, ताप्ती और महानदी के मिलने वाले जल से पृथक करता है। यह पर्वत मुख्यतः बालू के लाल पत्थरों और क्वार्ट्ज के बने हैं। इन चट्टानों का अधिकतर उपयोग भवन निर्माण के लिए किया जाता है। मालवा के पठार का पूर्वी भाग महादेव, मैकाल, धाराकर और राजमहल की पहाड़ियों के रूप में गंगा नदी की घाटी में वाराणसी तक फैला हुआ है। विन्ध्याचल पर्वत हिमालय से भी पुराने हैं किन्तु अनावृत्तीकरण की क्रियाओं द्वारा घिसे जाने से ये अब काफी नीचे हो गये हैं।

विन्ध्याचल के दक्षिण से उन्हीं के समान्तर १,१२० किलोमीटर के विस्तार में सतपुड़ा (सात पर्तों वाला पर्वत) पर्वत फैला हुआ है। यह पर्वत श्रेणी मध्य प्रदेश में नर्मदा के दक्षिण और तापी के उत्तर में रीवां से लगाकर पश्चिम की ओर राजपीपला पहाड़ियों से होती हुई पश्चिमी घाट तक फैली है। यह अधिकतर बेसाल्ट और ग्रेनाइट चट्टानों की बनी है। इसकी औसत ऊँचाई ७६२ मीटर है किन्तु अमरकंटक की पहाड़ियाँ १,०६६ मीटर तक ऊँची हैं जो आगे जाकर पूर्व की ओर छोटा नागपुर के पठार पर समाप्त हो जाती हैं। सतपुड़ा की १,३५० मीटर ऊँची चोटी महादेव पहाड़ी पर धूपगढ़ है। यहाँ झरनों, गिरि-शिखरों और वन-समूह के रूप में अटूट प्राकृतिक सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। मध्य प्रदेश का यह प्रमुख स्वास्थ्य-वर्धक स्थान है।

छोटा नागपुर के पठार के अन्तर्गत बिहार में रांची, हजारीबाग और गया के जिले हैं। इस पठार में कई अधिक ढाल वाली श्रेणियाँ हैं जिनके बीच में होकर गहरी नदियाँ (महानदी, दामोदर, सोन और सुवर्ण रेखा) बहती हैं। पठार की औसत ऊँचाई ७६० मीटर है किन्तु पारसनाथ चोटी १,३६५ मीटर ऊँची है। इस पठार पर अधिकतर चावल पैदा किया जाता है। यह पठार खनिज पदार्थों में भी बड़ा धनी है। यहाँ भारत के प्रमुख बॉक्साइड के सुरक्षित भण्डार पाये

जाते हैं। भारत का लगभग ६०% अभ्रक भी यहां से प्राप्त होता है। सिंहभूमि में क्रोमाइट और छोटा नागपुर में कैओलिन नामक चिकनी मिट्टी, टंगस्टन, चूना पत्थर, फेलस्पार, क्वार्ट्ज, कोयला और तांबा पाया जाता है। इमारती पत्थरों का तो यहाँ अक्षय भण्डार है। अतएव इस पठार को खनिज पदार्थों का भण्डार (Storehouse of Mineral Resources) कहा जाता है।

सतपुड़ा पर्वत के दक्षिण में तापी नदी की घाटी है। नर्मदा और तापी दोनों नदियों ने काफी चौड़े कछारी मैदान निर्मित किये हैं। नर्मदा का मैदान ३२२ किलोमीटर लम्बा और ३५ से ५६ किलोमीटर तक चौड़ा है। इसकी औसत गहराई १५२ मीटर है। तापी का मैदान प्रायः २४० किलोमीटर लम्बा और ५० किलोमीटर चौड़ा है। दोनों ही नदियाँ उन भ्रंश घाटियों (Rift Valleys) में होकर बहती हैं जो प्राचीनकाल में हुई भूगर्भिक घटनाओं के फलस्वरूप बन गयी थीं। दोनों नदियों की घाटियाँ समुद्र तल से प्रायः ३०४ मीटर ऊँची हैं अतः एक घाटी से दूसरी घाटी में जाने में कठिनाई पड़ती है। किन्तु खण्डवा और बुरहानपुर के निकट पहाड़ियाँ नीची हो जाने से मार्ग कुछ सुगम हो गया है। इस मार्ग द्वारा मध्य रेलमार्ग बम्बई से जबलपुर जाता है।

यह विशेष स्मरणीय है कि जब सतपुड़ा पर्वत में अनेक भ्रंश पड़े तो सभी नदियाँ गहरी भ्रंश घाटियों से होकर बहने लगीं। ये गहरी घाटियाँ नदियों के आकार के अनुसार छोटी या बड़ी हैं। ये नदियाँ जब पठारों से नीचे उतरती हैं तो जलप्रपात बनाती हैं। जबलपुर के निकट नर्मदा नदी का धुआँधार प्रपात इसका सुन्दर उदाहरण है। नर्मदा की घाटी में जबलपुर के निकट भारत में सर्वोत्तम श्वेत संगमरमर की चट्टानें मिलती हैं। नर्मदा और तापी दोनों ही नदियाँ पठार के सामान्य ढाल के विरुद्ध बहती हैं क्योंकि जिन भ्रंशों में होकर ये बहती हैं उनका ढाल पूर्व से पश्चिम की ओर है।

अरावली की पहाड़ियाँ (Aravallis) मालवा पठार के उत्तर-पश्चिम में हैं जो दिल्ली से उत्तर-दक्षिण दिशा में अहमदाबाद तक लगभग ८०० किलोमीटर की लम्बाई में फैली हुई हैं। ये उत्तर-पूर्व की ओर सँकरी होकर टीले मात्र रह जाती हैं और दिल्ली के निकट दिल्ली की पहाड़ियों के नाम से समाप्त हो जाती हैं। अरावली पर्वत ३०४ से ९१४ मीटर तक ऊँचे हैं किन्तु दक्षिण-पश्चिम में आबू के निकट इनकी सबसे ऊँची चोटी गुरुशिखर १,१५८ मीटर है। हैरों का अनुमान है कि ये पर्वत पृथ्वी के धरातल पर सम्भवतः सबसे प्राचीन हैं जो आज भी वर्तमान हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये प्राचीन पर्वत एक समय उत्तर में हिमालय से उत्तरी-पश्चिमी कोने तक और दक्षिण से लक्षद्वीप तक फैले थे। इन्होंने न केवल हिमालय के मुड़ावों को ही प्रभावित किया है वरन् पामीर और फरगना की श्रेणियों पर भी इनका प्रभाव पड़ा है। इनमें पूर्व-विन्ध्यन युग में मोड़ पड़े हैं। दक्षिण के पठार के उत्थान-पतन होने के कारण कालान्तर में यह पहाड़ियाँ मौसमी क्षति द्वारा

छिन्न-भिन्न होकर काफी नीची हो गयीं। वर्तमान काल में यह पहाड़ियाँ टीलों के रूप में एक-दूसरे के समान्तर फैली हैं जिनके ढाल बहुत तीव्र हैं और सिरे प्रायः चपटे। इससे ज्ञात होता है कि ये क्षयीकरण के पर्वत हैं। उदयपुर के उत्तर-पश्चिम में ये लगभग १,२२० मीटर ऊँची (इन्हें जरगा की पहाड़ियाँ कहते हैं) हैं। अलवर के निकट ये केवल ५५० से ६७० मीटर (हर्षनाथ की पहाड़ियाँ) और दिल्ली के दक्षिण में ३०४ मीटर ही हैं जहाँ इन्हें दिल्ली की पहाड़ियाँ (Delhi Ridge) कहते हैं। मध्य में इनकी औसत ऊँचाई, १,०६६ मीटर है। आधुनिक काल में अरब सागर में लक्षद्वीप इसी श्रेणी के अवशेष हैं जो पश्चिमी तट के समुद्र में डूब जाने से बने हैं। फरमर (Farmor) के अनुसार अरावली पर्वत होर्स्ट (Horst) प्रकार के पर्वत हैं जिसके पूर्व में राजस्थान की बड़ी सीमान्त भ्रंश (Great Boundary fault) और पश्चिम में काल्पनिक भ्रंश है।

अरावली पहाड़ियों को अनेक ऐसी नदियाँ पार करती हैं जो वर्षा काल के अतिरिक्त सर्वत्र शुष्क रहती हैं। इनमें पश्चिम की ओर बहने वाली मुख्य नदियाँ माही और लूनी हैं जो मरुस्थल में बहकर अरब सागर में गिर जाती हैं। पूर्व की ओर बनास मुख्य नदी है जो चम्बल में मिलकर गंगा के मैदान में पहुँचती है। इन पहाड़ियों के कारण सम्पूर्ण राजस्थान दो असमान भागों में बँट गया है—उत्तरी-पश्चिमी और दक्षिणी-पूर्वी।

थार का मरुस्थल—राजस्थान का उत्तरी-पश्चिमी भाग मुख्यतः रेतीला है। यही थार का मरुस्थल कहलाता है। यह प्रायः ६४४ किलोमीटर लम्बा और १६१ किलोमीटर चौड़ा है। यहाँ रेत के टीलों की स्थिति पवनों की दिशा में लम्बवत है। यद्यपि दक्षिणी भाग में जहाँ बहुत तेज आँधियाँ चलती हैं कुछ ऐसे टीले भी हैं जो वायु प्रवाह के समानान्तर हैं। बालू के इन टीलों का ढाल पवनों के रुख की ओर लम्बा, सरल तथा लहरदार है किन्तु दूसरी ओर इनका ढाल अधिक खड़ा है। कभी-कभी इन ढालों की ऊँचाई १२० से १५२ मीटर तक हो जाती है। अधिकांश टीले ३ से ५ किलोमीटर लम्बे और १५ से १८ मीटर तक ऊँचे हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रति वर्ष बालू के ये टीले ८० किलोमीटर की गति से धीरे-धीरे पूर्वी उत्तर प्रदेश के मथुरा और आगरा जिलों की ओर बढ़ रहे हैं। अतः बालू के इस ध्वंसकारी प्रवाह को रोकने के लिए भारत सरकार ने मरुस्थल की सीमा पर वृक्षारोपण आरम्भ किया है।

इस मरुभूमि की उत्पत्ति के बारे में कई अनुमान लगाये गये हैं। साधारणतया इस भाग की अत्यधिक शुष्कता ही इसका मुख्य कारण है। कच्छ की खाड़ी की ओर से आने वाली दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पवनें अपने साथ समुद्र तट तथा निम्न सिन्धु के बेसिन से रेत के बादलों को उठाकर लाती हैं और उन्हें देश के इस भाग में यत्र-तत्र बिखेर देती हैं। पहाड़ों के अभाव के कारण *वाष्प-युक्त पवनें वर्षा बिलकुल नहीं* करतीं वरन् अत्यधिक ताप के कारण वाष्पीभवन क्रिया ही अधिक हो जाती है।

अतः जल द्वारा रेत को समुद्र तक बहाकर ले जाने की क्रिया यहाँ नहीं होती। फलस्वरूप प्रतिवर्ष रेत की मात्रा बढ़ती जाती है। दूसरा कारण यह भी है कि दिन और रात के बीच यहाँ ताप-परिसर अधिक रहता है। अतः दिन में यहाँ की चट्टानें गर्मी पाकर बढ़ जाती हैं और रात में सर्दी के कारण कुछ सिकुड़ जाती हैं। इस क्रिया के निरन्तर होने रहने के कारण चट्टानों में भ्रंश पड़ जाती हैं और उनमें टूट-फूट होती रहती है। इसमें पर्याप्त मात्रा में रेत के कण निकलते हैं और चलने वाली पवनों द्वारा ये कण और भी छोटे-छोटे बनकर भूमि पर फैलते रहते हैं। इस रेत को उपजाऊ मिट्टी में परिवर्तित करने वाली किसी भी रासायनिक क्रिया का यहाँ पूर्ण अभाव है अतः रेतीली अनुपजाऊ मिट्टी बनी ही रहती है। इस भाग की प्रधान नदी लूनी और उसकी सहायक जोजरी, बाड़ी और सूकड़ी हैं। यह मरुस्थलीय प्रदेश नितान्त ही वृक्ष-रहित नहीं है अपितु थोड़ी बहुत वनस्पति भी पायी जाती है।

मरुस्थलीय प्रदेश में भारत की प्रमुख खारे जल की झीलें जैसे साम्भर, लूनकरनसर, डीडवाना, पचभद्रा, आदि पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त बीकानेर जिले में जिप्सम, लिग्नाइट, कोयला और जोधपुर जिले में संगमरमर और मुलतानी मिट्टी पायी जाती है। जैसलमेर जिले में मिट्टी के तेल पाये जाने की भी सम्भावना की जाती है।

पूर्वी और दक्षिणी पूर्वी भाग—राजस्थान के पूर्वी भाग में अरावली का एक छोटा भाग बूँदी की पहाड़ियाँ (Bundi Hills) के नाम से फैला है। इस भाग का अन्त आगरा के निकट फतहपुर-सीकरी में होता है। राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग में चम्बल और उसकी सहायक नदियाँ बनास, कोठारी, खार, आदि बहती हैं। इस प्रदेश में सर्वत्र ही लहलहाते खेत, मीठे जल और फलों के वृक्ष मिलते हैं। यह प्रदेश भी प्राचीन चट्टानों का बना होने से खनिज पदार्थों में धनी है। चाँदी-जस्ता-सीसा (उदयपुर में जावर खानों में), अभ्रक, घीया पत्थर (जयपुर, उदयपुर, अजमेर और भीलवाड़ा जिलों में) और मैंगनीज, एसबस्टस, पन्ना, आदि उदयपुर जिले में पाये जाते हैं।

सौराष्ट्र और कच्छ का रन (Saurastra & Rann of Cutch) थार के मरुस्थल के दक्षिण-पश्चिम में है। इसकी लहरदार धरती मध्य में प्रायः ६१४ से १,२२० मीटर ऊँची है। अनुमान किया जाता है कि यह भाग प्राचीनकाल में एक द्वीप था और कच्छ तथा खम्भात की खाड़ियाँ एक-दूसरे से मिलती थीं। सौराष्ट्र के उत्तर में कच्छ का उजाड़ रेतीला और पहाड़ी भाग है। कच्छ का यह भाग पहले अरब सागर का ही एक अंश था जो अब उत्तर और पूर्व की ओर से इसमें गिरने वाली छोटी-छोटी नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी से भर गया है। उत्तर-पश्चिम से लौटने वाले समय में यह खारी कीचड़ से भरा रहता है। काँप से भरा हुआ इसका चौरस धरातल सूर्य की गर्मी पाकर सफेद नमक के धरातल का रूप धारण कर लेता है। वर्ष के दूसरे भाग में यह नदियों के जल से भर जाता है। यह ३२२ किलोमीटर लम्बा

और १६१ किलोमीटर चौड़ा रेतीला मैदान ही कच्छ का रन है। यहाँ गर्मियों में गदहे लोटा करते हैं।

(२) दक्षिण का मुख्य पठार (*Deccan Tableland*)—ताप्ती नदी के दक्षिण में त्रिभुजाकार रूप में फैला है। इसका क्षेत्रफल लगभग दो लाख वर्ग मील है। इसके अन्तर्गत मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र का अधिकांश भाग, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि राज्य स्थित हैं। यह पठार प्राचीन काल में धरातल में लम्बे भ्रंश पड़ जाने से और ज्वालामुखी उद्गारों से निकले लावा के जम जाने से बना है। लावा के ये जमाव पूर्व में अमरकंटक और सरगुजा तक, उत्तर-पश्चिम में कच्छ तक तथा दक्षिण में बेलगाँव और दक्षिण-पूर्व में राजमुन्द्री तक फैले हैं। लावा की अधिकतम गहराई २,१३४ मीटर तक आँकी गयी है किन्तु पूर्व और उत्तर की ओर यह अपेक्षाकृत कम है। कच्छ में लावा की गहराई ७६० मीटर, अमरकटक में १५२ मीटर, नागपुर के निकट १५ मीटर तथा जबलपुर के निकट चूई और बड़ा शिमला की पहाड़ियों के निकट केवल ६ से १० मीटर ही है। ज्वालामुखी के उद्गार से निकला यह लावा धीरे-धीरे अपने मुख से ९७ से ११३ किलोमीटर तक फैल गया है।

इस पठार की चट्टानें बहुत ही कठोर और पुरानी हैं। इनमें कहीं भी प्राचीन अवशेष नहीं पाये जाते। ये चट्टानें या तो आग्नेय हैं या रवेदार। इनमें मुख्य उदाहरण ग्रेनाइट, नीस, बेसाल्ट, बलुआ-पत्थर, क्वार्ट्ज, चूने के पत्थर हैं। पठार की चट्टानें खनिज पदार्थों में बड़ी धनी हैं। यहाँ मध्य प्रदेश में मैंगनीज, बिहार में लोहा, कर्नाटक में सोना तथा अन्य स्थानों में अभ्रक, मैग्नेसाइट, बॉक्साइट, लैटराइट, आदि खनिज मिलते हैं। इन्हीं चट्टानों से भारत के प्रसिद्ध हीरे भी प्राप्त हुए हैं। नदियों की घाटियों में निम्न गोंडवाना युग की कोयले की श्रेणियाँ पायी जाती हैं। यही कारण है कि भारत का ९८% कोयला इन्हीं क्षेत्रों से उपलब्ध होता है। खनिज पदार्थों के अतिरिक्त बेसाल्ट चट्टानों से भवन निर्माण के लिए उत्तम पत्थर तथा सड़कों के लिए भी पत्थर मिलते हैं। इन्हीं चट्टानों से काली लावा मिट्टी प्राप्त होती है जिसमें लोहे के अंश मिले होने से अधिक उपजाऊ तत्त्व पाये जाते हैं। इसी में भारत के मुख्य रुई उत्पादक क्षेत्र फैले हैं।

पश्चिमी घाट (Western Ghats), जिन्हें सह्याद्रि की पहाड़ियाँ (*Sahayadris*) भी कहते हैं, महाराष्ट्र से लगाकर धुर दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक लगभग १,६०० किलोमीटर की लम्बाई में विस्तृत हैं। ये घाट सागर की ओर सीधे ढाल तथा पूर्व की ओर कम ढाल वाले हैं। पश्चिमी घाट का अरब सागर की ओर खड़ी दीवार जैसा तेज ढाल इस बात को प्रमाणित करता है कि कभी ऐसा निमज्जन हुआ या जब भारतीय प्रायद्वीप उस प्रदेश से विलग हो गया जो अब अरब सागर में डूबा हुआ है। सामान्यतः ये घाट ५० मीटर से भी कम चौड़े हैं। किन्तु दक्षिण की ओर ये ६५ से ८० किलोमीटर चौड़े हो गये हैं। ये घाट उत्तर-दक्षिण दिशा में समुद्री मार्गों

के समानान्तर और लगातार फैले हैं जिनकी औसत ऊँचाई १,०६६ से १,२२० मीटर है। इन घाटों पर लावा की तहें पायी जाती हैं जिनके मौसमी क्षति की क्रियाओं द्वारा कट जाने से घाटों की आकृति सीढ़ीदार बन गयी है। इन घाटों को कुछ ही स्थानों पर पार किया जा सकता है। उत्तर में स्थित दो दर्रों थालघाट (जो ५८३ मीटर ऊँचा है) तथा भोरघाट (जो ६३० मीटर ऊँचा है) में होकर ही रेलमार्ग निकले हैं। पश्चिमी घाट के दक्षिणी भाग में कुमारी अन्तरीप से मारवाड़ तक पुरानी मणिभ और परिवर्तित शिलाएँ (नीस, शिष्ट और चार्नोकाइट) पायी जाती हैं किन्तु इनके उत्तरी भाग में लावा फैला है अतः इनके सिरे चपटे हैं। इस भाग से भीमा, गोदावरी और कृष्णा नदियाँ निकलकर पूर्व की ओर बहती हैं और पूर्व की ओर तापी और गोदावरी नदियाँ इन दोनों नदियों के बीच पश्चिमी घाट की एक श्रेणी सतमाला के नाम से और दूसरी श्रेणी भीमा और कृष्णा के बीच में महादेव के नाम से चली गयी है। कृष्णा के उद्गम के निकट महाराष्ट्र राज्य का प्रसिद्ध स्वास्थ्यवर्धक स्थान महाबलेश्वर १,४३८ मीटर ऊँचा है। कलसूबाई (१,६४६ मीटर) और सल्हर (१,५६७ मीटर) अन्य ऊँची चोटियाँ हैं।

दक्षिण की ओर मालाबार के उपरान्त नीलगिरि की पहाड़ियों द्वारा ये घाट पूर्वी घाट से मिले हैं। घाट की सबसे ऊँची चोटी दोदाबेटा है (जो २,६३७ मीटर से अधिक ऊँची है)। नीलगिरि के दक्षिण में अनामलाय की पहाड़ियाँ हैं जो पालघाट के दर्रे (३०५ मीटर) द्वारा नीलगिरि से अलग हैं। यह दर्रा २५ किलोमीटर चौड़ा है और इसके द्वारा पूर्वी और पश्चिमी तट के बीच सरलता से आया जा सकता है। अनामलाय की एक शाखा पालनी पहाड़ियों के नाम से उत्तर-पूर्व दिशा में फैली हुई है। दूसरी शाखा, इलायची की पहाड़ियाँ, दक्षिण में फैली हुई है। नीलगिरि की मकुर्ती चोटी २,५५४ मीटर; अनामलाय की अनायमुडी चोटी २,६९५ मीटर और पालनी की वम्बाड़ी शोला चोटी २,४७३ मीटर ऊँची है।

पश्चिमी घाट समुद्र के बहुत निकट है। वहाँ चट्टानें समुद्र के भीतर तक पहुँच गयी हैं इसलिए वहाँ नावें चलाना सुरक्षित नहीं है। पश्चिमी घाट में अनेक नदियाँ पश्चिमी ढाल पर तथा अनेक पूर्वी ढाल से निकलती हैं। पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों का मार्ग छोटा होने से वे बड़ी तेजी से बहती हैं अतः उनके मुहाने पर बहुत कम मिट्टी जमा हो पाती है किन्तु पूर्व की ओर बहने वाली नदियों का मार्ग अपेक्षाकृत लम्बा है अतः उनके निचले भाग में अधिक चौड़ी घाटियाँ बन गयी हैं तथा उनके मुहाने के पास बड़े-बड़े डेल्टा बन गये हैं। जहाँ-जहाँ ये नदियाँ पूर्व की ओर पठारों पर या पश्चिम की ओर मैदानों पर उतरती हैं वहाँ बड़े-बड़े जलप्रपात बन जाते हैं। मैसूर में कावेरी नदी का शिवासमुद्रम प्रपात (१०० मीटर ऊँचा), बेलगाम जिले में गोकक नदी पर गोकक प्रपात (५५ मीटर), उत्तरी कनारा में शरावती नदी के जिरसप्पा या महात्मा गाँधी प्रपात (२५० मीटर), महाबलेश्वर के

येना प्रपात (१८३ मीटर), आदि इनके मुख्य उदाहरण हैं। पश्चिमी घाट के अधिकांश प्रपातों का उपयोग जल विद्युत शक्ति उत्पादन के लिए किया गया है।

पूर्वी घाट (Eastern Ghats) पूर्वी समुद्रतटीय मैदान के समानान्तर महानदी की घाटी से दक्षिण में नीलगिरि तक दक्षिण-पूर्व दिशा में ८०० किलोमीटर की लम्बाई में फैले हैं। ये घाट उड़ीसा में २०० किलोमीटर और दक्षिण में १०० किलोमीटर चौड़े हैं। ये पश्चिमी घाट से बिलकुल भिन्न हैं क्योंकि ये पश्चिमी घाट की तुलना में न तो अधिक ऊँचे ही हैं और न शृङ्खलाबद्ध ही। इन पहाड़ियों में उड़ीसा और उत्तरी सरकार के पूर्वी घाट, नल्लमलाय, पालकोंडा, जावड़ी, शिवराय तथा अन्य पहाड़ियाँ हैं। इनकी सबसे ऊँची चोटी महेन्द्रगिरि (१,५०१ मीटर ऊँची) है। इन घाटों को काटकर महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, आदि नदियाँ पश्चिमी भागों से पूर्व की ओर बहकर अपने डेल्टाओं में उपजाऊ मैदानों का सृजन करती हैं। यह घाट उत्तर-पूर्व की ओर छोटा नागपुर की पहाड़ियों और सुदूर दक्षिण में नीलगिरि से मिल जाते हैं। अपने सारे प्रसार में पूर्वी घाट समुद्र से दूर रहते हैं और इस प्रकार एक चौड़ी तट की पट्टी छोड़ते चलते हैं। अस्तु, तटीय मैदान ८० से १२८ किलोमीटर तक चौड़ा है। अरावली की भाँति ये घाट भी पुराने मोड़दार पर्वतों के अवशेष हैं जिनका ढाल धीमा है। इन घाटों की औसत ऊँचाई दक्षिण में ७६२ मीटर तक है किन्तु कहीं-कहीं ये १,५१५ मीटर ऊँचे हो गये हैं। पूर्वी घाट की पहाड़ियाँ कई तरह की शिलाओं से बनी हैं जैसे नीस, खोंडलाइट, चार्नोकाइट और आग्नेय तथा अवसादीय उत्पत्ति की शिष्टों से।

दक्षिण के पठार की उत्पत्ति (Origin of the Deccan Plateau)

दक्षिण का प्रायद्वीप उस गोंडवाना महाद्वीप का भाग है जो किसी समय टैथिस महासागर के दक्षिण में फैला था। इन सब भागों में पायी जाने वाली मिट्टी के जमाव, पशु-पक्षी विशेष तथा वनस्पति विशेष में ऐसी समानता मिलती है जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, मैलागासी, भारत और अण्टार्कटिका में एक ही भूमि-सम्बन्ध स्थापित था। कई दृष्टिकोणों से यह प्रणाली अद्वितीय बनावट की है। धरातल से लेकर नीचे की सतह तक मिट्टी की एकरूपता, अतीतकाल से पृथ्वी के इतने बड़े भाग के धरातल के इतिहास को अब तक सुरक्षित रख सकने की इसकी क्षमता और क्रमशः नीचे धँसने वाले भ्रंश गड्ढों में मिट्टी की सतहों का विशेष ढंग से बनाना तथा बहुमूल्य कोयले भण्डारों का विभिन्न भागों में अविभाज्य रूप से सुरक्षित रहना ऐसे तथ्य हैं जो यहाँ की चट्टानों को अद्वितीयता प्रदान करते हैं। अधिक प्राचीन होने के कारण इस भाग में अनेक पर्वत निर्माणकारी क्रियाओं के फलस्वरूप गोंडवाना महाद्वीप के भाग छिन्न-भिन्न होकर अलग-अलग हो गये तथा कुछ भाग सदा के लिए समुद्र के गर्भ में विलीन हो गये।

दक्षिण के प्रायद्वीप की उत्पत्ति लगभग ५० करोड़ वर्ष पूर्व हुई मानी जाती

है। भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार यह भाग सदा से ही स्थल खण्ड रहा है और कभी भी पूरी तरह सागर तल के नीचे नहीं डूबा। अर्थात् यह पर्वत निर्माणकारी भूसंचालन क्रियाओं के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त रहा है। इसी कारण यह एक स्थिर या दृढ़ भूखण्ड (stable block) बन गया है जहाँ की अधिकतर चट्टानें मोड़दार नहीं हैं वरन् क्षैतिज (horizontal) अवस्था में पायी जाती हैं और जो शताब्दियों से अनावृत्तीकरण प्रक्रिया द्वारा घिसती रही हैं। अतः यहाँ पर्वतों की चोटियाँ नुकीली न होकर प्रायः चौरस पायी जाती हैं और पर्वत अवशिष्ट पर्वत (Residual) कहलाते हैं। इनके मुख्य उदाहरण अरावली पर्वत, पूर्वी घाट तथा राजमहल की पहाड़ियाँ हैं।

प्रायद्वीपीय भारत में भूगर्भिक हलचलों के प्रमाण सम्बलपुर में मिलते हैं जिनके फलस्वरूप कई क्षेत्रों में भ्रंश (faults) पाये जाते हैं। इन भ्रंशों की उत्पत्ति से भ्रंशित घाटियों का निर्माण हुआ जिनके बीच का भाग धँस गया और उसमें जो चट्टानें बनीं उन्हें कालान्तर में गोंडवाना चट्टानें कहा गया। ये चट्टानें नर्मदा नदी के दक्षिण में गोंड राज्य में द्रविड़ युग में बनी। इनका विस्तार दामोदर, सोन, महानदी और गोदावरी की घाटियों में भी हुआ। इन चट्टानों में ही तत्कालीन वन प्रदेशों के दब जाने से कोयले की उत्पत्ति हुई।

दूसरी भूगर्भिक क्रिया ज्वालामुखी के उद्गार के रूप में हुई जिससे भूगर्भ का पिघला हुआ पदार्थ धरातल पर बहकर फैल गया। इसकी मोटाई ६,००० मीटर तक आँकी गयी है। कहीं-कहीं तो यह इससे भी अधिक गहरा हो गया है। इस लावा के जमावों ने प्रायद्वीप के अधिकांश भाग को पठार का रूप दे दिया। पश्चिमी घाट और अजन्ता की पहाड़ियाँ इसी लावे के पठार के रूप में अवस्थित पायी जाती हैं। इस क्षेत्र की अधिकांश चट्टानें बैसाल्ट हैं।

उपरोक्त दोनों हलचलें मध्य जीव युग की मानी जाती हैं जो आज से लगभग २८ करोड़ वर्ष पूर्व और ११ करोड़ वर्ष पूर्व हुई बतायी जाती हैं।

वर्तमान में दक्षिणी प्रायद्वीप का अधिकांश भाग काफी घिस गया है जिससे इसकी *आधारशिलाएँ (basic rocks—आग्नेय और रूपान्तरित)* धरातल पर दृष्टिगोचर होने लगी हैं। इस पर बहने वाली नदियाँ भी अपने *आधार तल (base-level)* तक पहुँच गयी हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होगा कि इस प्राचीनतम भूखण्ड की रचना अत्यन्त कठोर चट्टानों से हुई है जो आर्कियन और पूर्व कैम्ब्रियन युगों में बनी मानी जाती हैं। कालान्तर में ये चट्टानें गरमी और दबाव पाकर रूपान्तरित हो गयीं। जहाँ-तहाँ इनमें ग्रैनाइट और नीस चट्टानें भी पायी जाती हैं। उत्तरी भाग में स्लेट और संगमरमर की चट्टानें, पश्चिम की ओर लावा मिट्टी तथा पूर्वी भाग में लाल लैटेराइट, ग्रैनाइट मिट्टी तथा चूने का पत्थर और कोयला प्रधान चट्टानें मिलती हैं।

गोंडवाना काल की चट्टानों में आधुनिक भारत की बड़ी भारी कोयला राशि जमी पायी जाती है। कोयले के क्षेत्र रानीगंज और बाराकर उपसमुदायों में पाये जाते हैं। इनमें कोयले की तहें ६ मीटर से लगाकर १७ मीटर तक मोटी पायी जाती हैं। इन चट्टानों में भारत के ८ प्रमुख कोयला क्षेत्र पाये जाते हैं : दामोदर घाटी, बाराकर घाटी, राजमहल की पहाड़ियाँ, महानदी घाटी, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, गोदावरी घाटी और सतपुड़ा श्रेणी। बाराकर-रानीगंज और पचमढ़ी उप-समुदायों में मिलने वाली बालू शिलाएँ इमारतें बनाने के लिए बहुत उपयोगी हैं। बाराकर बालू शिलाएँ चक्की बनाने के काम में भी आती हैं। कोयला क्षेत्रों में अग्नि मिट्टियाँ भी पायी जाती हैं, जो बर्तन और ईंटें बनाने के उपयुक्त हैं। कई भागों में गेरू मिट्टी और लिमोनाइट श्रेणी का लोहा भी मिलता है।

दक्षिणी प्रायद्वीप का आर्थिक महत्त्व

(१) यह क्षेत्र अत्यन्त प्राचीन चट्टानों से बना होने के कारण पदार्थों में धनी है। कर्नाटक में सोना, मध्यप्रदेश में हीरा, मैंगनीज; आन्ध्र प्रदेश में कोयला, हीरा; और मध्यप्रदेश, बिहार और उड़ीसा में लोहा पाया जाता है। संगमरमर, चूने का पत्थर तथा बलुआ पत्थर, चीनी मिट्टी, अग्नि मिट्टी, आदि भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं।

(२) लावा मिट्टी, रासायनिक तत्त्वों में धनी होने के कारण, कपास के उत्पादन के लिए महत्त्वपूर्ण है। लैटेराइट मिट्टी वाले पहाड़ी भागों में चाय, कहवा तथा रबड़ का उत्पादन होता है। पहाड़ी ढालों पर गरम मसाले, काजू, केला और आम भी पैदा किया जाता है।

(३) प्रायद्वीप पर साल, सागवान, शीशम, चन्दन के बहुमूल्य वन मिलते हैं। साल, बीड़ी बनाने के लिए चौड़ी पत्ती वाले टीमरू, तेंदू वृक्ष, अग्नि घास, रोशा घास, हर्र-बहेड़ा, आवला, चिरोंजी, आदि उपजें भी प्राप्त की जाती हैं।

(४) पठार पर उटकमण्ड, पचमढ़ी, महाबलेश्वर, आदि स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान हैं।

(५) पठारी भागों से नीचे उतरते समय अनेक नदियाँ अपने मार्ग में झरने बनाती हैं जिनसे जलविद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है। पश्चिमी घाटों पर होने वाली अधिक वर्षा को बाँध बनाकर रोका गया है किन्तु इतना सब होने पर भी पठार के प्राकृतिक साधनों का समुचित विकास नहीं हो पाया है, क्योंकि उपजाऊ भूमि की कमी के साथ-साथ धरातल ऊँचा-नीचा होने के कारण यातायात के साधनों का विकास सम्भव नहीं है। सतपुड़ा पर्वत प्राचीन काल से ही उत्तरी भारत और दक्षिणी पठार के बीच सांस्कृतिक अवरोध बने रहे हैं। इसके अतिरिक्त मालवा के पठार (चम्बल की उपत्यका में) बीहड़ खड्डों के कारण कुछ ही समय पूर्व कुख्यात डाकुओं के अड्डे बने रहे हैं। *आज भी सामान्य जन-जीवन के लिए ये भू-भाग सुरक्षित नहीं हैं।*

प्रायद्वीप की नदियाँ

दक्षिणी प्रायद्वीप पर अनेक नदियाँ बहती हैं जिन्हें बहाव की दिशा के अनुसार सामान्यतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है :

(i) पश्चिम की ओर बहने वाली—नर्मदा, माही, साबरमती, ताप्ती, आदि ।

(ii) पूर्व की ओर बहने वाली—महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, वैगई, दामोदर, स्वर्ण रेखा, आदि ।

(iii) उत्तर की ओर बहने वाली—चम्बल, बेतवा, सोन, केन, धसान, पारवती, काली, सिन्ध, आदि ।

दक्षिण की नदियों की विशेषताएँ ये हैं :

(i) दक्षिणी भारत की नदियाँ अनुगामी जल-प्रणाली (Consequent Drainage) की नदियाँ हैं जो अधिकतर पश्चिमी घाट से निकलकर पूर्व की ओर बहती हैं। कुछ नदियाँ भ्रंश घाटियों में होकर बहती हैं।

(ii) पठार की प्रायः सभी नदियाँ अत्यन्त प्राचीन हैं जो सहस्रों वर्षों से अपने मार्ग को चौड़ा करती रही हैं अतः अब वे अपने आधार-तल तक पहुँच चुकी हैं और उनके क्षरण करने की शक्ति नष्टप्राय हो गयी है। इनकी घाटियाँ चौड़ी किन्तु छिछली हैं।

(iii) यहाँ की नदियों का रूप मुख्यतः वृक्ष-नुमा (dendritic) और केन्द्रीय (radial) है।

(iv) यहाँ की नदियाँ छोटी हैं जो प्रायः ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती हैं किन्तु वर्षा काल में बाढ़ें लाती हैं। अतः इनमें यातायात के लिए नावें चलाना सम्भव नहीं है।

(v) धरातल चट्टानी होने के कारण नदियों के मार्ग में प्रपात बनते हैं और उनके जल को उपयुक्त स्थानों पर रोक कर सिंचाई अथवा जल विद्युत उत्पादन की व्यवस्था की जा सकती है।

४. समुद्रतटीय मैदान
(COASTAL PLAINS)

दक्षिण के पठार के पूर्व और पश्चिम की ओर पूर्वी तथा पश्चिमी घाटों और समुद्र के बीच में समुद्रतटीय मैदान स्थित हैं। ये मैदान या तो समुद्र की क्रिया द्वारा बने हैं या नदियों द्वारा लायी गयी कीचड़ मिट्टी द्वारा। ये क्रमशः पश्चिमी समुद्रतटीय मैदान और पूर्वी समुद्रतटीय मैदान कहलाते हैं।

(१) पश्चिमी तटीय मैदान (Western Coastal Plain)—प्रायद्वीप के पश्चिम में सम्भात की खाड़ी से लगाकर कुमारी अन्तरीप तक फैले हैं। इनकी औसत चौड़ाई ६४ किलोमीटर है। नर्मदा और ताप्ती के मुहानों के निकट यह ८० किलोमीटर चौड़ा है। इस तटीय मैदान में बहने वाली नदियाँ छोटी और तीव्रगामी हैं, अतः इनके द्वारा पश्चिमी घाटों पर होने वाली वर्षा का जल व्यर्थ ही समुद्र में

बहकर चला जाता है। तीव्रगामी होने के कारण इनके द्वारा मिट्टी भी अधिक नहीं जमायी जाती। दक्षिणी भाग में लम्बे और सँकरे अनूप (lagoons) पाये जाते हैं जो नदियों के बहने पर बालू के जम जाने से बने हैं। इन्हें कायाल (Kayals) भी कहते हैं। इन अनूपों में सैकड़ों किलोमीटर तक नौकागमन सम्भव है। कोचीन का बन्दरगाह ऐसे ही अनूप पर स्थित है। इन अनूपों में मछलियाँ भी पकड़ी जाती हैं। पश्चिमी मैदान उत्तर की ओर चौड़ा होकर नर्मदा-ताप्ती का मैदान बनाता हुआ गुजरात तक चला गया है। सौराष्ट्र के तटीय मैदान तथा कच्छ अवशिष्ट मैदानों के मुख्य उदाहरण हैं। मैदान के उत्तरी भाग को कोंकन और दक्षिणी भाग को मालाबार कहते हैं। इनमें उत्तम जलवायु, उपजाऊ मिट्टी और चावल उत्पादन के कारण अधिक जनसंख्या पायी जाती है।

चित्र १·३

(२) पूर्वी तटीय मैदान (Eastern Coastal Plain) पश्चिमी तटीय मैदान की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। इसकी औसत चौड़ाई १६१ से ४८३ किलोमीटर है। यह गंगा के मुहाने से कुमारी अन्तरीप तक फैला है। यह मैदान दो भागों में बाँटा जा सकता है : निचला भाग जिसमें नदियों के डेल्टा हैं और ऊपरी भाग जो अधिकांशतः नदियों के ऊपरी भागों में है। निचला भाग पूर्णतः उस काँप मिट्टी का बना है जिसे महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों ने पठार के ऊपरी भागों से लाकर बिछा दी है। इसके समुद्र निकटवर्ती भागों पर बालू के ढेरों की लम्बी शृङ्खला मिलती है जो लहरों द्वारा मैदान पर बन गयी हैं। इन ढेरों द्वारा घिरी हुई चिलका और पालीकट छिछली झीलें बन गयी हैं। ऊपरी भाग अंशतः काँप मिट्टी का अवशिष्ट मैदान है जो उभरे हुए भू-भाग के समीकरण द्वारा बना है। यह मैदान कहीं-कहीं नदियों की हल्की उपजाऊ मिट्टी से ढँका है तथा शेष भागों में पुरानी चट्टानें स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं। इस सम्पूर्ण तट को कोरोमण्डल तट कहते हैं। उत्तरी भाग को उत्तरी सरकार या गोलकुण्डा और दक्षिणी भाग को कर्नाटिक या कोरोमण्डल तट कहते हैं।

तटीय मैदानों का महत्त्व

भारत के तटीय मैदानों का आर्थिक महत्त्व निम्न तथ्यों से स्पष्ट होता है :

(१) पूर्वी तथा पश्चिमी तट पर उपजाऊ मैदानों में चावल की खेती व्यापक रूप से की जाती है तथा तटों पर नारियल के कुंज पाये जाते हैं। इनके सहारे जटाओं से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाना (रस्से, पांवदान, पंखे, चटाइयाँ, आदि) इन तटों पर प्रमुख उद्योग हैं।

चित्र १·४

(२) मालाबार तट पर तथा पूर्वी नदियों के डेल्टाई क्षेत्रों में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। मछलियों के सिर से तेल प्राप्त करना, मछलियों को नमक में सुखाकर डिब्बों में बन्द करना, मोती निकालना और नमक तैयार करना तटों के अन्य मुख्य उद्यम हैं।

(३) इन्हीं तटों पर भारत के प्रमुख बन्दरगाह स्थित हैं जिनके द्वारा हमारा विदेशी व्यापार सम्पन्न होता है।

(४) पश्चिमी तट पर केरल में मोनोजाइट नामक बहुमूल्य खनिज मिलता है तथा तट के सहारे-सहारे पैट्रोलियम प्राप्त होने की सम्भावनाएँ हैं। पूर्वी और पश्चिमी तटों पर नमक बनाया जाता है।
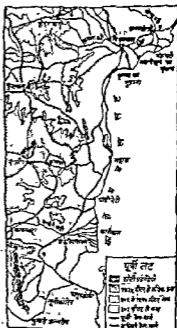
2

भूकम्प और ज्वालामुखी-क्षेत्र
(EARTHQUAKES AND VOLCANIC ZONES)

भूकम्प
(EARTHQUAKES)

भारत के प्राकृतिक विभागों और भूकम्प-क्षेत्रों में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। तीन प्राकृतिक भागों के अनुरूप ही भारत में निम्न तीन भूकम्प-क्षेत्र पाये जाते हैं :

(१) हिमालय प्रदेश—यह उत्तरी भूकम्प-क्षेत्र है जो पूर्व-पश्चिम दिशा में फैला है। इसमें हिमालय पर्वत तथा उसके समीपवर्ती भाग सम्मिलित हैं। ये भाग रवेदार और प्रस्तरीभूत चट्टानों से निर्मित हैं। यह क्षेत्र सबसे अधिक अस्थिर (unstable) है क्योंकि अभी तक हिमालय पर्वत पूर्णतः सन्तुलन प्राप्त नहीं कर पाये हैं और वे अभी भी ऊँचे उठ रहे हैं। अतः इस भाग में ही भारत के सबसे विध्वंसकारी भूकम्प उत्पन्न हुए हैं। इसी क्षेत्र की एक शाखा बर्मा की पहाड़ियों में चली गयी है। यह क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र (Zone of Maximum Intensity) कहा जाता है। इस क्षेत्र में ये भूकम्प आये हैं : १८२८ का कश्मीर का भूकम्प; १८८४ का काबुल और पेशावर का भूकम्प; १८८५ का श्रीनगर का

चित्र २·१

भूकम्प; १९०५ का काँगड़ा का भूकम्प, १८६९ और १८९७ के आसाम के भूकम्प, १९३५ का क्वेटा का भूकम्प और १९५० का आसाम का भूकम्प। इन भूकम्पों से अपार जन-धन की हानि हुई।

(२) गंगा-सिन्धु का प्रदेश—यह प्रदेश प्रायद्वीप की कठोर भूमि के सामने उस अग्रिम समुद्र का रूप है जिससे हिमालय की उत्पत्ति हुई है। यह क्षेत्र उपरोक्त अस्थिर भू-भाग के सन्निकट है किन्तु इस क्षेत्र में भूकम्पों का प्रभाव इतना विनाशकारी नहीं है फिर भी यदा-कदा इस क्षेत्र में स्वतन्त्र रूप से भूकम्प उत्पन्न होकर प्रलय का दृश्य उपस्थित कर अकथनीय जन-धन की हानि कर देते हैं। १८०३ का दिल्ली का भूकम्प; १९३४ का बिहार का भूकम्प, १९३६ का क्वेटा का भूकम्प; १९५० और १९६० का असम का भूकम्प तथा १९६६ का पश्चिमी उत्तर प्रदेश का भूकम्प इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इस क्षेत्र को भूकम्पों से सामान्यत: प्रभावित क्षेत्र (Zone of Comparative Intensity) कहा जाता है।

(३) प्रायद्वीपीय क्षेत्र—भूकम्प का तीसरा क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप है जो बड़ा स्थिर भू-भाग माना जाता था जो अतीत काल से होने वाली भू-क्रान्तियों में भी अविचल रहा था। किन्तु अब यह भाग भी भूकम्पों द्वारा पीड़ित होता है (१६१८ का बम्बई का भूकम्प; १८११ का पूना और अहमदाबाद का भूकम्प, १८४३ का दक्षिण भारत का भूकम्प; १९५६ का कच्छ का भूकम्प और १९६८ का कोयना का भूकम्प इसके अपवाद हैं)। इस क्षेत्र को अभी तक न्यूनतम प्रभावित क्षेत्र (Zone of Minimum Intensity) माना जाता था।

ज्यों-ज्यों उत्तर से दक्षिणी भारत की ओर बढ़ते हैं भूकम्प-क्षेत्रों की तुलनात्मक प्रभावशीलता कम होती जाती है। भारत में कुछ प्रमुख भूकम्पों का प्रादेशिक वितरण निम्न प्रकार है :[1]

(१) उत्तरी-पूर्वी भारत (नेपाल-सिक्किम तथा तिब्बत सहित) : ३१

(२) उत्तरी-पश्चिमी भारत वर्तमान पाकिस्तान के बलूचिस्तान (चित्राल तथा भारत के कश्मीर सहित) : २१

(३) प्रायद्वीपीय भारत : २

अस्तु, यह कहा जा सकता है कि भारत के अधिकांश गहरे भूकम्पों का उत्पत्ति क्षेत्र गंगा-सिन्धु के मैदान का निकटवर्ती अस्थिर भू-भाग ही है।[2] भारतीय वैज्ञानिकों के अनुसार देश के उत्तर में ३,५०० किलोमीटर लम्बी और ५०० किलोमीटर चौड़ी पट्टी में अधिकांश एवं सबसे हानिकारक भूकम्प अनुभव किये जाते हैं। बड़े भूकम्प का औसत प्रति ६ वर्ष में १ है। इनके अतिरिक्त छोटे भूकम्प तो कई आते हैं जिनमें से कुछ का तो आलेखन ही नहीं किया जाता। इस समय भूकम्पमापक केन्द्रों की संख्या केवल १२ है।[3]

[1] H. L. Chibber, *Physical Basis of Geography of India*, Vol. 1, 1945, p 88

[2] C. S. Fox, *Physical Geography for Indian Students*, pp 237-39

[3] *Hindustan Times*, 22nd March, 1961.

भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से कश्मीर से लेकर असम तक की हिमालय पर्वत शृंखला, सिन्धु-गंगा के मैदान और कच्छ तथा काठियावाड क्षेत्र, भारत के सर्वाधिक कमजोर भाग हैं, इन भू-प्रदेशों में बहुधा विनाशकारी भूकम्प आते रहे हैं, किन्तु अपेक्षाकृत कम संख्या में। कोयना के भूकम्प के अतिरिक्त शेष भूकम्पों की विनाशकारी शक्ति अपेक्षाकृत रूप से बहुत कम रही है।
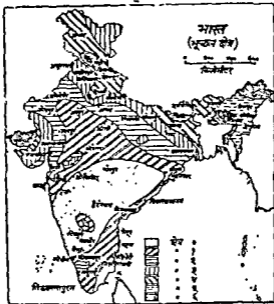
चित्र २·२

१९६२ में भूकम्प वैज्ञानिकों, भूगर्भशास्त्रियों एवं इंजीनियरों की एक समिति ने भारत को भूकम्पों की दृष्टि से छः क्षेत्रों में बाँटा था। ये क्षेत्र इस प्रकार हैं :

भूकम्पों के क्षेत्रबद्ध मानचित्र में, क्षेत्र एक में हल्के भूकम्प आ सकते हैं, ये भूकम्प कुछ अथवा सभी लोगों द्वारा महसूस किये जा सकते हैं अथवा हो सकता है कि न भी महसूस किये जायें। इनसे यदि कोई हानि हुई तो कम ही होगी, ये भूकम्प अपेक्षाकृत निरापद होते हैं। गड़गड़ाहट की आवाज सुनायी पड़ जा सकती है; प्लेटें, खिड़कियाँ, आदि टूट सकती हैं; पेड़, खम्भे, आदि हिल सकते हैं और दीवार घड़ियाँ बन्द हो सकती हैं।

क्षेत्र दो में भूकम्प आने का पता सभी को चल जाता है। बहुत से लोग डर जाते हैं और बाहर की ओर भागते हैं, कुर्सियाँ तथा मेजें हिलने लगती हैं, पलस्तर के गिरने और चिमनियों के टूटने से कुछ हानि हो सकती है।

क्षेत्र तीन में सभी लोग बाहर की ओर भागते हैं। सुनिर्मित इमारतों को थोड़ी हानि पहुँचती है, अच्छी बनी सामान्य इमारतों को पर्याप्त हानि होती है और खराब बनी इमारतों को बहुत हानि पहुँचती है।

क्षेत्र चार में अच्छी इमारतों को पर्याप्त हानि होती है और अच्छे ढंग से न बनी इमारतों का तो बहुत भारी नुकसान होता है। चिमनियाँ, खम्भे तथा दीवारें गिर सकती हैं, रेत और कीचड़ पृथ्वी के बीच से निकल सकती है तथा कुएँ के पानी में परिवर्तन हो सकता है।

क्षेत्र पाँच में बहुत हानि से लेकर सर्वहानि तक हो सकती है; भवनों के भवन नींवों से उखड़ कर गिर सकते हैं; ईंट, पत्थर, गारे की सभी इमारतें धराशायी हो सकती हैं, भूमि में दरारें और गड्ढे पड़ सकते हैं, भूस्खलन हो सकता है और वस्तुएँ उछल कर गिर सकती हैं।

क्षेत्र छः भयंकर भूकम्पों से प्रभावित क्षेत्र है। इस क्षेत्र में इतने भीषण भूकम्प आते हैं कि उनसे गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ धूल-धूसरित हो जाती हैं तथा पुल नष्ट हो जाते हैं। पर्वत डगमगाने लगते हैं तथा नदियाँ तक अपना मार्ग बदल देती हैं। टर्की, ईरान तथा असम में हाल में आये भूकम्पों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

भारत में बीसवीं शताब्दी में जो भयंकर भूकम्प आये वे इस प्रकार हैं

१५ अगस्त, १९५० को असम में भारी भूकम्प आया। इससे असम के विस्तृत क्षेत्र को अपार हानि पहुँची। दिहांग नदी के प्रवाह मार्ग में एक चट्टान उभर आने से उसका प्रवाह रुक गया और भयंकर बाढ़ आ गयी। इससे अपार धन-जन की हानि हुई।

अगस्त १९५६ में कच्छ (प्रदेश में अंजार) नामक नगर के निकट जो भूकम्प आया उससे सारा नगर धूलधूसरित हो गया। कई भवन नष्ट हो गये और हजारों व्यक्तियों की जानें गयीं।

९ सितम्बर, १९६६ को बुलन्दशहर में जो भूकम्प आया उसका प्रभाव उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी भागों में बुलन्दशहर, मेरठ तथा मुजफ्फरनगर जिलों में तथा दिल्ली राज्य में पड़ा। बुलन्दशहर की ७५ प्रतिशत इमारतें गिर गयीं।

भारतीय भूकम्पों का मुख्य कारण पृथ्वी के दुर्बल शिपिण्ड में आन्तरिक हलचलों का होना है जिससे निकटवर्ती क्षेत्रों में न केवल भ्रंशें ही पड़ जाती हैं वरन् नयी भूमि का भी सृजन हो जाता है। शुष्क भूमि पर जल के फव्वारे फूट पड़ते हैं तथा गहरे गड्ढे बन जाते हैं तथा असंख्य धन-जन की हानि होती है।

ज्वालामुखी
(VOLCANOES)

यद्यपि आधुनिक काल में जाग्रत ज्वालामुखी भारत मे नहीं पाये जाते किन्तु भारतीय भूगर्भ विज्ञान के कई कालों मे यहाँ ज्वालामुखियों के उद्गार होते रहे हैं।

सबसे पहले भारत मे दक्षिणी पठार पर आर्कियन युग के धारवाड़-काल मे ज्वालामुखी का उद्गार १ अरब वर्ष पूर्व हुआ। इसका मुख्य केन्द्र बिहार मे डालमा श्रेणी था।

दूसरा उद्गार कड्डप्पा-काल में तामिलनाडु के कड्डप्पा जिले में तथा मध्य प्रदेश में ग्वालियर में हुआ। उपरोक्त दोनों ही उद्गारों के फलस्वरूप भूगर्भ से विस्तृत लावा की मात्रा निकलकर समीपीय क्षेत्रों में फैल गयी। ग्वालियर मे बेला और चौरा के निकट गहरे भूरे रंग का बैसाल्ट लावा जमा पाया जाता है। चौरा के निकट इसकी मोटाई ८ मीटर और मयागाँव के निकट लावा की मोटाई २१ मीटर तक पायी गयी है। यह यहाँ ४ किलोमीटर क्षेत्र मे जमा पाया गया है। मध्य प्रदेश के लावा क्षेत्र लगभग ९ करोड़ वर्ष पुराने हैं।

तीसरा उद्गार विन्ध्यन-काल में लावा का बड़ी मात्रा मे हुआ। इस उद्गार का मुख्य केन्द्र जोधपुर के निकट मालानी था। यहाँ लावा का जमाव लगभग ४२,००० वर्ग किलोमीटर मे हुआ है। यह क्षेत्र पूर्व से पश्चिम को २२५ किलोमीटर और उत्तर से दक्षिण को १६३ किलोमीटर विस्तृत है। यहाँ लावा का रंग भूरा है। इसमें बड़े-बड़े दाने हैं। यह जमाव भी काफी गहरा माना जाता है।

प्रारम्भिक जीव-युग मे ज्वालामुखी के उद्गार अधिकतर कुमायूँ हिमालय में हुए जिनके मुख्य केन्द्र नैनीताल जिले के भुवाली-भीमताल क्षेत्र थे। इसके अतिरिक्त गढ़वाल जिले मे सीमा क्षेत्र तथा उत्तरी शिमला की सतलज की घाटी मे भी ज्वालामुखी के उद्गार इसी युग मे हुए।

ऊपरी कार्बन-युग में कश्मीर मे ज्वालामुखी के उद्गार विशेषतः पीर-पंजाल श्रेणी, लद्दाख, आदि स्थानो में हुए। आरम्भ में उद्गार बड़ी तीव्र गति से हुए किन्तु शनैः-शनैः इनकी तीव्रता कम हो गयी। यह उद्गार ट्रियासिक-युग तक समाप्त हो गये।

इसके बाद मध्यजीव-युग में लगभग १½ करोड़ वर्ष पूर्व ज्वालामुखी के उद्गार राजमहल की पहाड़ियों में हुए। वहाँ लावा के जमाव ३,२२० मीटर की गहराई तक पाये जाते हैं। इसी समय असम में भी अमीर पहाड़ियों मे लावा के उद्गार हुए। इनके चिह्न अब भी दिहांग नदी की घाटी में मिलते हैं। यहाँ के लावा का रंग गहरा हरा होता है।

मध्यजीव-युग के अन्त मे अथवा तृतीयक युग के आरम्भ में एक बार फिर लावा के भीषण उद्गार हुए विशेषतः दक्षिण के पठार पर (पश्चिमी और मध्यवर्ती भारत में)। इस उद्गार से निकले लावा के जमाव की गहराई २,१३० मीटर से

लगाकर ३,०४० मीटर तक मानी जाती है। इसका विस्तार दकन के पठार के रूप में लगभग ५ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में पाया जाता है।[1] यह लावा बहुत अधिक उपजाऊ होने के कारण शताब्दियों से काली मिट्टी में कपास उत्पादन करने के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसके अतिरिक्त लावा द्वारा निर्मित चट्टानें साधारणतः कठोर होती हैं, अतः ये भवन निर्माण के लिए बड़ी उपयुक्त हैं।

वर्तमान युग में जाग्रत ज्वालामुखियों का भारत में अभाव है। सबसे नवीन उदाहरण बैरेन द्वीप का दिया जा सकता है जो बंगाल की खाड़ी में स्थित है। यहाँ अन्तिम बार उद्गार १८०३ में हुआ। इसमें से १०-१० मिनट के अन्तर पर काफी घनी काली गैसें और अन्य पदार्थ उमड़े। तब से यह ज्वालामुखी शान्त है। इसके पूर्व यहाँ १७८७ और १७९५ में भी उद्गार हो चुके हैं। इस ज्वालामुखी का शंकु गोलाकार रूप में ७ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत है। इसका मुख समुद्र के धरातल से ३१० मीटर ऊँचा है। यहाँ एक कड़ी चट्टानों का द्वीप था जो शनैः-शनैः समुद्र में डूब रहा था। यह ज्वालामुखी गंधकीय प्रकार का था। इस द्वीप का ज्वालामुखी पूर्वी द्वीपसमूह तथा मलाया की पेटी का उत्तरी अग्र भाग है जिसके चिह्न उत्तर में नरकुडम तथा ब्रह्मा के सुषुप्त ज्वालामुखियों के रूप में मिलते हैं।

वर्तमान काल में भारत में ज्वालामुखी उद्गारों का महत्त्व कम ही है यद्यपि भूगर्भशास्त्रियों का कथन है कि हिमालय, बर्मा और बलूचिस्तान में तृतीयक युग के ज्वालामुखियों का प्रधान्य है।[2] **डाक्टर चिब्बर** के अनुसार भारत में निम्न मुख्य ज्वालामुखी क्षेत्र हैं :[3]

(१) बिहार में पूर्व-पश्चिम का क्षेत्र—इसमें बिहार की डालमा श्रेणी के ज्वालामुखी आते हैं। यह ज्वालामुखी क्रिया धारवाड़ युग में क्रियाशील थी।

(२) **कड्डपा, बीजापुर और ग्वालियर क्षेत्र**—यह श्रेणी उत्तर-दक्षिण में फैली है। यहाँ कड्डप्पा-युग में ज्वालामुखी विस्फोट हुए थे।

(३) जोधपुर में मालानी से लगाकर पंजाब में किराना पहाड़ियों तक का क्षेत्र—यह क्षेत्र भी उत्तर-दक्षिण में फैला है। यहाँ विन्ध्युग में विशेष हलचल रही है।

(४) नैनीताल, भुवाली, भीमताल, सतलज की घाटी, गढ़वाल जिले का सोमा तथा डलहौजी और पीर-पंजाल श्रेणी के निचले भाग वाले क्षेत्र—यह श्रेणी उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर फैली है। इसमें पुराकल्प में विस्फोट हुए थे।

(५) एक श्रेणी असम, बंगाल और बिहार होती हुई उत्तर-पूर्व से दक्षिण व दक्षिण-पश्चिम की ओर फैली है। इसमें राजमहल पहाड़ी तथा असम की अभोर श्रेणी सम्मिलित हैं। यहाँ मध्य-कल्प में ज्वालामुखी के विस्फोट हुए थे।

[1] D. N. Wadia, *Geology of India*, p. 291
[2] M. S. Krishnan, *Geology of India and Burma*, p. 47.
[3] H. L. Chibber, *op. cit*,

(६) दक्षिण भारत का विस्तृत लावा प्रदेश—यहाँ मध्य-कल्प और नव-कल्प के प्रारम्भिक युग मे विस्फोट हुए थे।

गर्म जल के सोते
(HOT SPRINGS)

गर्म जल के सोतों का सम्बन्ध ज्वालामुखी क्रिया से है। अतएव गर्म जल के सोते अधिकांशत: उन क्षेत्रों मे पाये जाते हैं जहाँ प्राचीन काल में कभी ज्वालामुखी क्रिया प्रगतिशील रही हो और जहाँ ज्वालामुखी के विस्फोट के फलस्वरूप आग्नेय चट्टानें पायी जाती हों। भारत में गर्म जल के सोते ग्रेनाइट तथा नीस चट्टानों अथवा रूपान्तरित चट्टानों के प्रदेश में मिलते हैं। ऐसे प्रदेश काश्मीर, पंजाब, हरियाणा, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, असम, केरल और उत्तर प्रदेश है।

जम्मू-कश्मीर राज्य मे कश्मीर की घाटी, वर्द्धवान की घाटी, लद्दाख और पुगा घाटी क्षेत्र में गर्म जल के सोते मिलते हैं। कश्मीर घाटी मे विही जिले मे कूकनाग नामक झरना है। फरीआबादी नदी के १६ किलोमीटर ऊपर वर्द्धवान घाटी मे कई गर्म जल के सोते हैं जिनमे गन्धक मिलता है। लद्दाख में पनामिक नामक स्थान के निकट गर्म जल का सोता है जिसके जल का तापक्रम ७०° से ७२° सेण्टीग्रेड है। पुगा घाटी में भी कई गर्म सोते है, जिनके जल में गन्धक या सुहागा मिला है। इन झरनो से लगभग २,००० क्विटल सुहागा और २५० क्विटल गन्धक प्रति वर्ष प्राप्त होता है।

हिमाचल प्रदेश में कुल्लू घाटी, कांगड़ा घाटी तथा सतलज घाटी में गर्म जल के सोते मिलते हैं। कुल्लू नगर के समीप मणीकर्ण नामक गर्म जल का सोता है जिसके जल मे यात्री चावल उबाला करते हैं। इसके जल मे स्नान करने से गठिया रोग भी ठीक हो जाता है। इस झरने के जल के भाप बन जाने पर मोती जैसे श्वेत कण जम जाते हैं जो मणियों की तरह चमकदार होते हैं। इसी कारण यह सोता मणीकर्ण सोता कहलाता है। इस सोते से गन्धक मिश्रित हाइड्रोजन भी निकलता है।

कांगड़ा जिले मे ज्वालामुखी स्थान पर भी गर्म जल-स्रोत पाये जाते हैं। इस जल मे क्षार-युक्त आयोडाइड होता है जो गले की बीमारियो के लिए लाभप्रद है।

सतलज घाटी में शिमला से ४८ किलोमीटर दूर सतलज के तट पर एक गर्म जल का सोता है जिसका जल नदी के जल से बहुत अधिक गर्म है जबकि नदी की धारा और इस सोते के उद्गम मे कुछ ही इचों का अन्तर है।

हरियाणा के गुड़गाँव जिले में सोना नामक स्थान पर गर्म जल का सोता है जिसके जल का तापक्रम ४६° सेण्टीग्रेड है। इसमें गन्धक मिला रहता है।

सिक्किम मे कई गरम जल के सोते हैं किन्तु इनमे मुख्य ये हैं: रंगीत नदी के पूर्वी भाग में रिनचिंगोंग मठ के लगभग १ किलोमीटर दूर फूट साधु नामक गरम

सोता है जिसके जल का तापक्रम ३७° सेण्टीग्रेड तक है। रंगीत नदी के पश्चिमी तट पर रलोंग साछु नामक सोता है जिसके जल का तापक्रम ३८° सेण्टीग्रेड तक पाया जाता है। किन्तु नहाने के लिए बनाये गये हौज में जल का तापक्रम ३७° सेण्टीग्रेड तक पाया जाता है। लचूंग नदी के पूर्वी किनारे पर भी युमतांग सोता है जिसमें से गरम जल के साथ गन्धक मिली हाइड्रोजन गैस निकलती है। इसके जल का तापक्रम साधारणतः ३७° सेण्टीग्रेड तक रहता है। अन्य मुख्य गर्म सोते कनचनजंघा हिमनद के लगभग १'६ किलोमीटर नीचे हैं। इनके जल का तापक्रम ३६° सेण्टीग्रेड तक पाया गया है।

बिहार राज्य में गर्म जल के अनेक सोते विद्यमान हैं। राजगिरी, हजारीबाग और संथाल परगना जिले गर्म जल सोतों के लिए प्रसिद्ध हैं। राजगिरी पहाड़ी के क्षेत्र में राजगिरि और तपोवन नामक गर्म सोते हैं।

मुंगेर जिले में धारवाड़ चट्टानों से सम्बद्ध, पंचवर, श्रंगी ऋषि, तातापानी, ऋषि कुण्ड, रामेश्वर कुण्ड, सोता कुण्ड, लक्ष्मी कुण्ड, ब्रह्म कुण्ड, भीमबन्द और मुरका नामक १० सोते हैं। इनके जल का तापक्रम २४° से ४४° सेण्टीग्रेड तक रहता है। इनका जल बड़ा स्वच्छ है।

हजारीबाग जिले में ६ प्रमुख सोते हैं। सुरगरथा, पिंडारकुण्ड, द्वारी, सूरज-कुण्ड, वेलकापी और केवालडीह इन सभी का जल गन्धकीय है। इनके जल का तापक्रम ३८° से ६६° सेण्टीग्रेड तक पाया जाता है। इनमें सबसे गर्म सोता वेलकापी और सबसे कम गर्म सूरज कुण्ड है।

संथाल परगना में सभी सोते गन्धकीय हैं। इनके जल का तापक्रम ३८° से ४६° सेण्टीग्रेड तक रहता है। नूनबिल, तातापानी, ततलोई और सिद्धपुर प्रसिद्ध सोते हैं।

मध्य प्रदेश राज्य में होशंगाबाद के अनहोनी तथा समोनी नामक गर्म सोते मुख्य हैं। यहाँ के जल में गन्धक मिला है। इनके जल का तापक्रम ३८° सेण्टीग्रेड तक रहता है।

छिंदवाड़ा जिले में अनहोनी घोना प्रमुख सोता है। इसके जल का तापक्रम ३८° सेण्टीग्रेड तक रहता है।

पूर्णा घाटी में सलवन्दी नामक गर्म सोता है। इसके जल का तापक्रम ३७° सेण्टीग्रेड तक रहता है। इसका जल स्वादरहित है।

ग्वालियर के निकट सिपरी नामक गर्म सोता है। इसमें गन्धक का मिश्रण है।

गुजरात में गर्म जल के कई सोते हैं। पंचमहल जिले में तवा नामक गर्म जल का सोता है। इसका जल बड़ा पवित्र माना जाता है। जल का तापक्रम ४७° सेण्टीग्रेड तक रहता है।

इसके समीप ही लसुन्दरा नामक सोता है। इसके जल का तापक्रम ३७° सेण्टी-ग्रेड तक रहता है।

गुजरात में वडौदा के समीप ऊनी नामक गर्म जल का सोता उल्लेखनीय है।

महाराष्ट्र में थाना जिले में वज्रबाई से गिरगाँव तक ८० किलोमीटर के भीतर अनेक गर्म जल के सोते हैं। ये क्रमशः अकलोली, गणेशपुरी, नीम्बोली, आदि हैं। इनके जल का तापक्रम ५०° सेण्टीग्रेड तक रहता है।

सूर्या नदी के दायें तट पर पालघर स्टेशन के समीप कोकनेरा नामक गर्म जल का सोता है।

उत्तर प्रदेश में देहरादून के समीप सहस्रधारा नामक प्रसिद्ध जल सोत है जो गंधकीय है।

उच्च पर्वतीय शिखरों पर गंगोत्री और जमनोत्री नामक गर्म जल के सोते उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान में दिल्ली से ४१ किलोमीटर दक्षिण में सोहना गर्म जल का सोता है। इसमें गंधक मिली रहती है। इसके जल का तापक्रम ३६° सेण्टीग्रेड तक रहता है।

अलवर के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में २२ किलोमीटर दूर तालबीच सोता है जिसका जल ३८° सेण्टीग्रेड तक गरम रहता है।

जयपुर जिले में नारायणी नामक गर्म सोता है। इसे नाई लोग बड़ा पवित्र मानते हैं।

इन राज्यों के अतिरिक्त असम, उड़ीसा, बंगाल और केरल में भी गर्म जल के सोते पाये जाते हैं।

3

भारत की जल अपवाह प्रणाली
(HYDROGRAPHY OF INDIA)

भारत के आर्थिक विकास में नदियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। नदियाँ यहाँ आदिकाल से ही मानव के जीवन और गतिविधि का साधन रही हैं। पश्चिम की ओर से आने वाले आर्य लोगों ने सिन्धु और गंगा नदियों के किनारे ही अपना निवास-स्थान बनाया। फलतः इन्हीं नदियों की घाटियों में भारत की मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और आर्य सभ्यता का जन्म हुआ। भारतीय नदियाँ न केवल सिंचाई ही करती हैं वरन इनके मार्गों में पड़ने वाले जलप्रपातों द्वारा जल विद्युत शक्ति भी प्राप्त की जाती है। उत्तर प्रदेश की गंगा नदी तथा कर्नाटक की कावेरी नदी इसके सुन्दर उदाहरण हैं। नदियाँ आवागमन के प्रमुख साधन हैं। प्राचीनकाल में इन्हीं नदियों द्वारा आन्तरिक व्यापार नावों द्वारा होता था किन्तु रेलमार्गों के निर्माण और जलमार्गों के प्रति उपेक्षा भाव होने से इस महत्वपूर्ण साधन का विकास कम हो गया। चूँकि भारत की प्राचीन सभ्यता के स्थल इन्हीं नदियों की घाटियाँ रही हैं अतएव आज भी भारत के अधिक प्राचीन मन्दिर, धार्मिक और व्यावसायिक केन्द्र इन्हीं नदियों के तट पर अवस्थित पाये जाते हैं। ये नदियाँ मानव को सदैव से ही मछली के रूप में खाद्य प्रदान करती आयी हैं। उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु तथा असम की कुछ नदियों की मिट्टी में स्वर्ण-कण भी पाये जाते हैं। उत्तरी भारत की नदियों का जल अधिकांशतः भूमि को सींचने के लिए बड़ा ही उपयुक्त साधन है अतएव उत्तरी भारत में (विशेषकर पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश में) नहरों का जाल-सा बिछा है। गंगा और सतलज तथा दक्षिणी भारत की नदियों के डेल्टा की उर्वरा शक्ति नदियों के कारण ही स्थिर रह पाती है।

अपवाह क्षेत्र में परिवर्तन
(CHANGE IN DRAINAGE SYSTEM)

भारत की नदियों के अपवाह क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही बहुत परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्तरी और दक्षिणी भारत की सभी नदियों की अपवाह प्रणाली पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। तृतीयक युग से उत्तरी भारत की प्रमुख

बहाव-रेखा में महान परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्तरी भारत की सभी मुख्य नदियों का अपवाह उल्टा हो गया है। कई पर्वत निर्माणकारी हलचलों के कारण *प्राचीन टैथिस* महासागर हिमालय पर्वत में परिवर्तित हो गया। इस लम्बी प्रणाली के समय में महासागर पहले एक उथले जल क्षेत्र में बदला। तत्पश्चात् यह शिवालिक नदी के रूप में हो गया। यह नदी असम के उत्तर-पूर्वी भाग में अपने निकास क्षेत्र से निकलकर हिमालय के समान्तर चलती हुई भारत की पूरी चौड़ाई में बहती हुई सुलेमान तथा किर्थर श्रेणियों के सहारे उत्तरी-पश्चिमी कोने तक जाती थी और फिर वहाँ से दक्षिण को मुड़कर पंजाब और सिन्ध में पीछे हटते हुए अरब सागर में गिर जाती थी। पैस्को तथा पिल्ग्रिम प्रभृति भूतत्त्ववेत्ताओं ने इस नदी का नाम इण्डोब्रह्म (Indo-Brahm) और शिवालिक (Sivalik) नदी दिया है। इसकी तीन सहायक प्रणालियाँ थीं: (i) वर्तमान सिन्धु, (ii) सिन्धु की सहायक नदियाँ; और (iii) गंगा की सहायक नदियाँ। किन्तु पोटवार (Potwar) के पठार के रूप में ऊँचे उठ जाने से *यह प्रणाली छिन्न-भिन्न हो गयी।* इसके परिणामस्वरूप मुख्य नदी का उत्तरी-पश्चिमी भाग सिन्धु नदी का स्वतन्त्र बेसिन बन गया जिसकी अन्तिम पूर्वी सीमा सतलज नदी ने बनायी। प्रमुख धारा का शेष ऊपरी भाग विपरीत दिशा में बहने लगा क्योंकि पंजाब की भूमि ऊँची होने से इसकी धारा विवशतः पूर्व की खाड़ी में गिरने को बाध्य हुई। इस प्रकार *शिवालिक नदी के ऊपरी भाग* (जो लौटकर पूर्वी खाड़ी में गिरे) वर्तमान काल की गंगा नदी है।

भूगर्भशास्त्रियों का अनुमान है कि ऐतिहासिक युग में सतलज और यमुना राजस्थान से होकर बहती थीं। इसी प्रकार सरस्वती नदी (जो हिन्दुओं की परम्परा में अब विलुप्त हो गयी मानी जाती है) कदाचित् वह नदी थी जो सोतर (Sotar) *या घाघर (Ghaggar) की तलहटी को घेरे हुए थी और नाहन के निकट बहती थी।* यमुना दिल्ली के निकट उत्तर में स्थित करनाल के पश्चिम की ओर बहती थी। उत्तरी बीकानेर के सूरतगढ़ के पास ये दोनों नदियाँ मिलकर और हकारा के नाम से दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती हुई कच्छ की खाड़ी में गिर जाती थीं। *ईसा युग के प्रारम्भिक काल में सतलज नदी एक स्वतन्त्र नदी थी जो सिन्धु से* अलग ही बहती थी। यह घाघरा में मिलती थी या नहीं इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है किन्तु अब यह व्यास नदी में मिल जाती है। अमरकोट और सिरसा के बीच में इसकी पुरानी धारा के अवशेष अब भी प्राप्त होते हैं।

लगभग २०० वर्ष पूर्व ही गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ २४१ किलोमीटर की दूरी पर अलग-अलग नदियाँ थीं। बाद में ब्रह्मपुत्र मधुपुर के जंगलों के पूर्व में मेघना से मिल गयी। किन्तु वर्तमान काल में ही एक भूगर्भिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप मधुपुर के जंगल ३० मीटर ऊँचे उठ गये। इससे ब्रह्मपुत्र नदी ने अपना मार्ग जंगलों के पूर्व की अपेक्षा जंगलों के पश्चिम में बना लिया। *यह घटना अभी केवल १०० वर्ष पूर्व ही मानी जाती है।*

गंगा तथा उसकी सहायक नदियों के मार्ग में भी परिवर्तन हुए हैं। चौथी से छठी शताब्दी तक मौर्य और गुप्त राजाओं की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) एक बड़ा उत्तम नगर था जो गंगा, सोन, घाघरा, गंडक और पुनपुन नदियों के संगम पर स्थित था। नदियों के तट पर होने से यह एक प्रमुख बन्दरगाह और व्यापारिक केन्द्र भी था किन्तु इसकी समृद्धि कालान्तर में नष्ट हो गयी। अब सोन और घाघरा नदियाँ गंगा से यहाँ नहीं मिलतीं किन्तु कई किलोमीटर आगे जाकर गंगा से मिलती हैं। इसी प्रकार गंगा के डेल्टा पर गौड़ नामक स्थान ५वीं से १६वीं शताब्दी तक एक मुख्य व्यापारिक केन्द्र था किन्तु कालान्तर में इसके चारों ओर दलदल फैल जाने से इसका महत्त्व कम हो गया। १६वीं शताब्दी तक बंगाल के मुस्लिम बादशाहों की राजधानी और प्रसिद्ध बन्दरगाह सतगाँव त्रिवेणी नदी के निकट सरस्वती नदी पर स्थित था किन्तु सरस्वती नदी के सूख जाने से इसका महत्त्व भी घट गया। १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुगली, चन्द्रनगर, श्रीरामपुर, आदि बड़े मुख्य बन्दरगाह थे किन्तु दामोदर नदी के मार्ग परिवर्तन (यह पहले हुगली नदी से नया सराय स्थान पर मिलती थी किन्तु १७७० में यह कलकत्ता से ५६ किलोमीटर नीचे की ओर हटकर मिलने लगी) से नदी में बालू उत्पन्न हो गयी अतः इनका महत्त्व सामुद्रिक जहाजों के लिए कम हो गया।

कोसी नदी १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पूर्णिया नगर के नीचे की ओर बहती थी किन्तु अब यह इसके ८० किलोमीटर पश्चिम की ओर बहती है। जैसा कि नदी के पुराने मार्ग के अवशेषों द्वारा ज्ञात होता है पिछले २०० वर्षों में मार्ग परिवर्तन से इस नदी ने लगभग १०,००० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को हानि पहुँचाई है।

हिमालय क्षेत्र की अपवाह प्रणाली (Himalayan Drainage)

हिमालय क्षेत्र का प्रवाह अनुगामी अपवाह (Consequent Drainage) नहीं है। अनुगामी अपवाह के अन्तर्गत जब नदियाँ पर्वतों से निकलती हैं तो उनका प्रारम्भिक अपवाह-पथ उसके अपवाह-प्रदेश के ढाल के अनुसार ही होता है अर्थात् जल-अपवाह नये प्रकट हुए भूखण्ड के ढाल के अनुरूप होने लगता है। ऐसी नदियों का बहाव मोड़ के बीच की घाटियों में उनकी रचना के अनुरूप होता है अतः इनका अपवाह जल-विभाजकों के समान्तर होता है और नदी को निचले भागों तक पहुँचने में उसे ऊँचे पर्वतीय क्षेत्रों का लम्बा चक्कर लगाकर बाहर निकलना पड़ता है। किन्तु हिमालय की नदियों का अपवाह पूर्वगामी अपवाह (Antecedent) है क्योंकि नेपाल की अरुण और भारत की सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, कोसी, सतलज तथा तिस्ता नदियाँ हिमालय पर्वत के निर्माण के पूर्व भी उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती थीं। बाद में हिमालय के निर्माण के उपरान्त भी वे पूर्ववत् बहती रहीं। इसका कारण यह है कि हिमालय के ऊँचे उठने और नदियों के अपक्षरण की गति लगभग समान रही है। इसका प्रमाण यह है कि जहाँ ये नदियाँ हिमालय को पार करती हैं वहाँ इनकी

घाटियाँ काफी गहरी, तंग और तीव्र ढाल वाली होती हैं। इन नदियों द्वारा बनने वाले खड्ड सामान्यतः १,८०० से ३,६०० मीटर गहरे हैं।

किन्तु सतलज, गण्डक, कोसी, स्वर्णगिरी, आदि नदियों के अपवाह क्षेत्र के सम्बन्ध में पूर्वगामी अपवाह का सिद्धान्त लागू नहीं होता क्योंकि ये नदियाँ उत्तरी वर्षाविहीन क्षेत्र के एक बड़े भाग का जल लाती हैं। ये नदियाँ हिमाच्छादित चोटियों को काटकर दक्षिणी पहाड़ियों में होती हुई मैदानों में उतरती हैं। ये नदियाँ अपनी घाटी को पीछे की ओर से काटती हैं। इसका कारण यह है कि दक्षिणी ढालों पर उत्तरी ढालों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

प्रायद्वीप की अपवाह प्रणाली (Drainage of the Deccan)

प्रायद्वीप की सभी नदियाँ अरब सागर के निकट पश्चिमी घाट से निकलती हैं। केवल दो बड़ी नदियाँ नर्मदा और ताप्ती ही पश्चिम की ओर बहती हैं। इसका कारण भूगर्भशास्त्री यह बताते हैं कि नर्मदा और ताप्ती अपनी बनायी हुई घाटियों में नहीं बहतीं किन्तु उन्होंने अपनी धाराओं के लिए दो ऐसी घाटियाँ बनाली हैं जो भूमि भ्रंश विस्फोट क्रिया के परिणामस्वरूप बन गयी हैं। ये गहरी और भूमि से भरी हुई घाटियाँ उन चट्टानों में बन गयी हैं जो विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी के समान्तर चली गयी हैं। इन भ्रंश घाटियों का उत्पत्ति काल उस समय से सम्बन्धित है अर्थात् हिमालय के ऊपर उठने के साथ-साथ प्रायद्वीप का उत्तरी भाग टेढ़ा हो गया था। इसी उथल-पुथल के साथ इस प्रदेश के दक्षिण ओर स्थित प्रायद्वीप भाग थोड़े से पूर्व की ओर झुक गये अतः उस भाग का ढाल पूर्व की हो गया।

प्रायद्वीप के अपवाह प्रदेश के बारे में दूसरा मत यह है कि प्रायद्वीप उस बड़े भू-भाग का शेष अर्द्धभाग है जिसका कि पश्चिमी घाट जल-विभाजक था। यह जल-विभाजक स्थिर रह गया किन्तु इसके पश्चिम का बहुत-सा भाग अरब सागर में डूब गया। इसी कारण पश्चिमी तट पर समुद्र की गहराई केवल १८२ मीटर है।

दक्षिणी प्रायद्वीप की अधिकांश नदियाँ अनुगामी हैं अर्थात् इनका बहाव धरातल के स्वाभाविक ढाल के अनुकूल ही हुआ है। यहाँ की अधिकतर नदियाँ वृक्षाकार अपवाह-क्रम (dendritic) का निर्माण करती हैं। केवल तटीय भागों में, विशेषतः पश्चिमी घाट के पश्चिम में, समानान्तर अपवाह-क्रम मिलता है।

भारत की नदियाँ

भारत की अपवाह प्रणाली हिमालय की नदियों, प्रायद्वीप की नदियों और आन्तरिक अपवाह क्षेत्र की नदियों द्वारा बना है। हिमालय से निकलने वाली नदियों में गंगा और उसकी सहायक नदियाँ और ब्रह्मपुत्र आदि बंगाल की खाड़ी में तथा सिन्धु और उसकी सहायक नदियाँ अरब सागर में गिरती हैं।

गंगा के अपवाह-क्षेत्र में गंगा, यमुना, घाघरा, कोसी गंडक से नदियाँ सम्मिलित की जाती हैं जो दक्षिणी प्रायद्वीप से निकलकर उत्तर की ओर बहती हुई गंगा या उसकी

सहायक नदियों से मिल जाती हैं; यथा चम्बल, दामोदर, सोन, बेतवा, केन, आदि। गंगा नदी का अपवाह क्षेत्र भारत के कुल अपवाह क्षेत्र के २५% भाग का जल पाता है।

दक्षिणी भारत के अपवाह प्रदेश में नर्मदा, ताप्ती, आदि वही नदियाँ है जो पूर्व से निकलकर अरब सागर में गिरती हैं तथा पेरियर, महानदी, पेन्नार, शिरवती, कावेरी, पालेरू, वेगाई, कृष्णा, गोदावरी, आदि नदियाँ पश्चिमी घाटों से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं।

इस अपवाह प्रदेश में (i) महानदी अपवाह क्षेत्र; (ii) गोदावरी अपवाह क्षेत्र; (iii) कृष्णा अपवाह क्षेत्र; (iv) कावेरी अपवाह क्षेत्र, (v) नर्मदा अपवाह क्षेत्र; (vi) ताप्ती अपवाह क्षेत्र; (vii) पेन्नार अपवाह क्षेत्र; तथा (viii) समुद्र-तटीय अपवाह क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं।

आन्तरिक अपवाह प्रदेश उत्तरी कश्मीर, दक्षिणी-पूर्वी असम और पश्चिमी राजस्थान तक ही सीमित है। राजस्थान की लूनी और माही नदियाँ ही अरब सागर तक पहुँच पाती हैं, शेष रूपनारायण, जोजरी, सूकड़ी, बाड़ी, मेंढा, आदि नदियाँ मरुभूमि में ही विलीन हो जाती हैं। सम्पूर्ण आन्तरिक प्रवाह प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग १·६ लाख वर्ग किलोमीटर है।

जल-विभाजक

बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों का अपवाह क्षेत्र अरब सागर में गिरने वाली नदियों से अधिक विस्तृत है। मोटे तौर पर भारत के अपवाह का ¾ भाग बंगाल की खाड़ी के अन्तर्गत आता है। अरावली पर्वत इन दोनों अपवाह प्रदेशों के बीच उत्तम जल-विभाजक का काम करते हैं जो दिल्ली से लगाकर शिमला तक फैले हैं। इन दोनों अपवाह प्रदेशों की जल-विभाजक रेखा हिमालय के उत्तर में स्थित कैलाश पर्वत के निकट मानसरोवर झील से आरम्भ होकर कामेत पर्वत होती हुई शिमला के पूर्वी भाग को छूती हुई अरावली पर्वतों के बीचों-बीच उदयपुर तक आती है। इसके दक्षिण में इन्दौर के निकट से यह जल-विभाजक रेखा नर्मदा की घाटी के उत्तर-पूर्व मुड़कर मैकाल और महादेव की पहाड़ियों के दक्षिणी भाग से मुड़कर पुनः पश्चिम में अजन्ता की पहाड़ियों से होती हुई पश्चिमी घाट के सहारे-सहारे पश्चिमी तट के समान्तर कन्याकुमारी तक विस्तृत है।

उत्तरी भारत की नदियाँ (Rivers of Northern India)

हिमालय पर्वत से निकलने वाली उत्तरी भारत की प्रसिद्ध नदियाँ ये हैं

गंगा नदी (Ganga)—यह उत्तरी भारत की सबसे प्रमुख नदी है। टॉलेमी के मतानुसार यह तीन महाद्वीपों में सबसे बड़ी नदी है जिसकी कम से कम लम्बाई ३० स्टैडिया (1 Stadium = 606⅚ ft) है। मैगस्थनीज के अनुसार इसकी साधारण चौड़ाई १०० स्टैडिया है और गहराई ३६ मीटर।[1] यह हिन्दुओं की सबसे प्रमुख

[1] P. Sen Gupta, "The Ganga," *In March of India*, Vol VII, No. 1, 1954, p 19

धार्मिक नदी है । इसके अपवाह प्रदेश में भारत के सबसे घने बसे और उपजाऊ राज्य हैं—उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, आदि—जहाँ आर्यों की आदि-सभ्यता का जन्म हुआ था । गंगा नदी कई सहायक नदियों से मिलकर बनी है । इसकी मुख्य सहायक नदियाँ, जो इसमें उत्तर की ओर से आकर मिलती हैं, यमुना, रामगंगा, करनाली, राप्ती, गंडक, कोसी, काली, आदि हैं तथा दक्षिण के पठार से मिलने वाली नदियों में चम्बल, सिन्धु, बेताल, केन, दक्षिणी टोंस, सोन, आदि हैं ।

चित्र ३·१

गंगा नदी वास्तव में भागीरथी और अलकनन्दा नदियों का ही सम्मिलित रूप है । अलकनन्दा नदी गढ़वाल (तिब्बत की सीमा के निकट ७,५०० मीटर की ऊँचाई) से निकलती है । अलकनन्दा में भागीरथी की अपेक्षा अधिक जल की मात्रा रहती है । यह *धौली (Dhauli)—जो नीती दर्रे के निकट जास्कर श्रेणी से निकलती है*—और विष्णु गंगा (Vishnu Ganga)—जो माना दर्रे के निकट कामेत से निकलती है—आदि नदियों से मिलकर बनी है । यह दोनों विष्णु प्रयाग के निकट मिलकर एक हो जाती हैं । इसके बाद अलकनन्दा मध्य हिमालय के प्रमुख और गहरे खड्ड में होकर बहती है जिसके एक ओर नन्दादेवी और दूसरी ओर बद्रीनाथ की ऊँची चोटियाँ हैं । इसकी एक अन्य सहायक नदी पिंडार है जो नन्दादेवी से

निकलकर कर्ण प्रयाग में अलकनन्दा में मिल जाती है। मन्दाकिनी नदी इसमें बद्रीनाथ के दक्षिण की ओर रुद्र प्रयाग में मिलती है। त्रिशूल पर्वत के पश्चिम में पिंडार और नन्दा नदियाँ नन्द प्रयाग में मिलती हैं। अलकनन्दा और भागीरथी देव प्रयाग के निकट मिलकर एक हो जाती हैं। यहीं से अलकनन्दा पहाड़ियों को काटकर शिवालिक होती हुई ऋषिकेश और हरिद्वार पहुँचती है।

गंगा नदी का मुख्य स्रोत गंगोत्री हिमानी से है जो केदारनाथ चोटी के उत्तर में गऊमुख नामक स्थान पर ६,६०० मीटर की ऊँचाई पर है। इसी से नीचे उतरकर गंगोत्री का पवित्र स्थान है। इस हिमानी के निकट सातोपंथ, शिवलिंग, आदि कई ऊँची चोटियाँ हैं। मुख्य हिमालय के कुछ उत्तर में जाह्नवी नदी निकलकर भागीरथी से गंगोत्री के निकट मिलती है। दोनों नदियाँ एक होकर मुख्य हिमालय श्रेणियों में बन्दरपुच्छ और श्रीकान्त चोटियों के बीच ४,८७० मीटर गहरी घाटी बनाकर बहती है। भूगर्भशास्त्रियों का विश्वास है कि गंगा का अपवाह पूर्वगामी है। यह हिमालय की श्रेणियों से भी पुराना है।

गंगा नदी हरिद्वार के निकट मैदान में प्रवेश करती है जिससे थोड़ी दूर पर ऊपरी गंगा नहर निकाली गयी है। यह नदी हरिद्वार से पहले दक्षिण की ओर फिर दक्षिण-पूर्व बहती हुई उत्तर प्रदेश के मेरठ, रुहेलखण्ड, फर्रुखाबाद, अवध, इलाहाबाद, मिर्जापुर, बनारस, बलिया, आदि जिलों में होती हुई बहती है। प्रयाग के निकट दाहिनी ओर यमुना नदी आकर मिल जाती है। यहाँ से यह पूर्व की ओर घूमती है। यहाँ इसमें गाजीपुर के निकट गोमती और छपरा के निकट घाघरा मिलती हैं। मध्य के पठार से निकली हुई सोन नदी गंगा से पटना के निकट मिलती है। कुछ और पूर्व की ओर हटकर गण्डक और कोसी भी गंगा में मिल जाती हैं। यहाँ से मुख्य नदी पद्मा के नाम से राजमहल की पहाड़ियों को पार करके दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हुई ग्वालंदो के निकट ब्रह्मपुत्र से मिल जाती है। यहाँ नदी कई किलोमीटर चौड़ी हो जाती है और कई धाराओं में बँट जाती है। इसके पश्चात् मेघना नदी से मिलकर ६७ किलोमीटर चौड़ा मुहाना बनाकर बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है। बंगाल तक पहुँचने में यह नदी २,०७१ किलोमीटर तक बह चुकती है जिसमें ८७० किलोमीटर तो बंगाल में ही बहती है। इसके अपवाह क्षेत्र का क्षेत्रफल ६,५१,६०० वर्ग किलोमीटर है। गंगा की अन्य धाराएँ क्रमश: हुगली, माटला, रायमंगल, मलचा, हरिणघाटा, नादिया और भागीरथी हैं।

गंगा का डेल्टा हुगली और मेघना नदियों के बीच में है। यह विश्व का सबसे बड़ा डेल्टा माना जाता है जिसमें अनेक धाराओं और छोटे-छोटे द्वीपों का जाल-सा बिछा है। इसका क्षेत्रफल ५१,३०६ वर्ग किलोमीटर है। इस डेल्टा के अन्तर्गत मुर्शिदाबाद, नादिया, जैसोर और २४ परगने के जिले हैं। डेल्टा का समुद्री भाग घने जंगलों से ढका है जिनमें चीते आदि हिंसक पशु रहते हैं। सुन्दरी पेड़ों की अधिकता से यह भाग सुन्दर वन कहलाता है। बंगाल का सबसे बड़ा जलमार्ग हुगली

नदी है। इसे विश्व की सबसे अधिक विश्वासघाती नदी (treacherous river) कहते हैं। यह विश्व की सबसे अधिक व्यस्त नदी भी है। इसी के तट पर कलकत्ता बन्दरगाह है जिसे पूर्व का लन्दन कहा जाता है।

यमुना (Jamuna)—गंगा नदी की प्रणाली की सबसे मुख्य नदी यमुना है जो जमनोत्री (Jamnotri) के गर्म सोते से ८ किलोमीटर उत्तर प्रदेश की ओर टेहरी गढ़वाल जिले से निकलती है। हिमालय पर्वत की यात्रा के ऊपरी भाग में उत्तर की ओर से इसमें टोंस नदी आकर मिलती है। इसके बाद यह लघु-हिमालय की पहाड़ियों को काटकर आगे बढ़ती है जहाँ पश्चिम की ओर से इसमें से गिरी और पूर्व की ओर से आसान नदियाँ आकर मिल जाती हैं। यह नदी बड़ी तेजी से मैदान में उतरती है और प्रयाग में गंगा से मिल जाती है। मैदान में उतरकर बल खाती हुई दिल्ली, मथुरा, आगरा और इटावा का चक्कर लगाती है। इटावा के नीचे इसमें चम्बल और काली सिन्ध आकर मिलती हैं तथा हमीरपुर के निकट बेतवा और प्रयाग के निकट केन नदियाँ इसमें मिलती हैं। यमुना सम्पूर्ण लम्बाई में १,३०० किलोमीटर बहती है। इसके अपवाह क्षेत्र का क्षेत्रफल ३,५६,००० वर्ग किलोमीटर है। यमुना का उपयोग पश्चिमी यमुना नहर को जल देने के लिए किया गया है। इसके ऊपरी भाग में लकड़ियाँ तथा मैदानी भाग में पत्थर, कपास, अनाज, आदि ढोया जाता है।

रामगंगा (Ram Ganga)—*यह तुलनात्मक दृष्टि से एक छोटी नदी है जो मुख्य हिमालय श्रेणी के दक्षिणी भाग से नैनीताल के निकट से निकलती है। यह नदी अपने प्रथम १४४ किलोमीटर की यात्रा में बड़ी तेजी से बहकर कालागढ़ किले* के निकट (बिजनौर जिले में) मैदान में प्रवेश करती है जहाँ २४ किलोमीटर नीचे की ओर इसमें कोह नदी आकर दाहिने किनारे में इसमें मिल जाती है। शिवालिक पहाड़ियों के कारण इसका अपवाह दक्षिण-पश्चिम की ओर हो जाता है और मैदान में उतरने पर दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हुई मुरादाबाद, बरेली, बदायूँ और शाहजहाँपुर जिले में ५६० किलोमीटर बहती हुई कन्नौज के निकट गंगा में जाकर मिल जाती है। यह नदी ६०० किलोमीटर लम्बी है तथा इसका अपवाह क्षेत्र ३२,८०० वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला है। यद्यपि इस नदी का जल सिंचाई के लिए अधिक उपयोग में नहीं आता किन्तु रामनगर के निकट कोसी के दोनों किनारों से छोटी-छोटी नहरें निकाली गयी हैं। इस नदी का मार्ग मैदान में बड़ा अनिश्चित और परिवर्तनशील है।

काली, कालीगंगा, सारदा अथवा चोका नदी (*Kali, Kaliganga or Sarda*)—*काली नदी कुमायूँ के उत्तरी-पूर्वी भाग में मिलाम हिमनद से निकलती है। इसकी दो सहायक नदियाँ (धर्मा और लिसार) हैं जो अपने ऊपरी* भागों में दक्षिणी-पूर्वी दिशा में बहती हैं किन्तु मुख्य नदी में सरजू और पूर्वी रामगंगा नदियाँ उत्तर-पश्चिम से आकर पंचेश्वर के निकट मिलती हैं। यहीं से यह नदी सरजू

या सारदा के नाम से पहाड़ियों में चक्कर लगाती हुई ब्रह्मदेव के निकट मैदान में प्रवेश करती है। यहाँ इसके दो भाग हो जाते हैं किन्तु मुण्डियाघाट के निकट पुनः मिलकर एक हो जाते हैं। इससे आगे यह नदी नेपाल और पीलीभीत जिले के बीच की सीमा बनाती है। खेरी में इस नदी की चार शाखाएँ हो जाती हैं—ऊल, शारदा (चौका), दहावर और सुहेली। सारदा नदी चक्करदार मार्ग बनाती हुई बहरमघाट के निकट घाघरा से मिल जाती है। इससे ब्रह्मदेव के निकट सारदा नहर निकाली गयी है।

करनाली, कौरियाला या घाघरा नदी (Karnali, Kauriala or Ghagra)—यह नदी पहाड़ी क्षेत्र में करनाली या कौरियाला तथा मैदान में घाघरा कहलाती है। यह तकलाकोट से ३७ किलोमीटर उत्तर-पश्चिम की ओर मापचा चूंगों हिमनद से निकलती है और गुरला माधाता के दक्षिणी और पश्चिमी सिरों का चक्कर लगाकर आगे बढ़ती है। यह दक्षिण-पूर्व दिशा में बहकर दक्षिण-पश्चिम की ओर में हिमालय श्रेणी को पार करती है। शिवालिक को पार करते समय यह नदी शीशपानी नामक १८० मीटर चौड़ा खड्ड बनाती हुई ६१० मीटर गहरी बहती है। इसी के बाद इसमें तेज रपटें बनती जाती हैं। मैदानी भाग में पहुँचकर इसकी दो शाखाएँ बन जाती हैं, पश्चिम की ओर करनाली तथा पूर्व की ओर गिरवा किन्तु आगे आकर पुनः दोनों मिलकर एक हो जाती हैं। आगे यह नदी अवध होती हुई छपरा के निकट गंगा में मिल जाती है। यह नदी १,०८० किलोमीटर लम्बी है तथा १,२७,५०० वर्ग किलोमीटर का जल बहाकर ले जाती है।

राप्ती (Rapti)—यह नदी नेपाल के पिछले भाग की ओर से निकलकर पहले दक्षिण और फिर पश्चिम की ओर बहती है। एक बार फिर दक्षिण की ओर मुड़कर बहराइच, गोंडा, बस्ती और गोरखपुर जिलों में ६४० किलोमीटर तक बहती हुई बरहज के निकट घाघरा से मिल जाती है। इसमें छोटी नावें भीगा तक तथा बड़ी नावें गोरखपुर तक खेई जा सकती हैं। नेपाल से अनाज तथा लकड़ियाँ इसी नदी द्वारा ढोयी जाती हैं।

गंडक (Gandak)—इसी नदी को नेपाल में सालिग्रामी और मैदान में नारायणी कहते हैं क्योंकि इसमें गोल-मटोल सालिग्राम बहुत मिलते हैं। इसकी दो मुख्य शाखाएँ हैं: पश्चिम की ओर काली गंडक तथा पूर्व की ओर त्रिशूली गंगा जिनकी स्वयं की सहायक नदियाँ हैं जो महान हिमालय से निकलती हैं। महाभारत श्रेणी को काटकर दक्षिणी-पश्चिमी भाग में बहती हुई शिवालिक श्रेणी को पार कर मैदान में प्रवेश करती है। यह पटना के निकट गंगा में मिल जाती है। मैदान में कहीं-कहीं तो इसकी चौड़ाई ३ किलोमीटर से भी अधिक हो जाती है। यह नदी ४२५ किलोमीटर लम्बी है तथा इसका अपवाह क्षेत्र ४५,८०० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है जिसमें से भारत में केवल ९,५४० वर्ग किलोमीटर ही है।

कोसी (Kosi or Kausika)—यह गंगा की सबसे बड़ी सहायक नदी है। मुख्य धारा अरुण के नाम से गोसाईंथान के उत्तर से निकलकर काफी दूर तक पूर्व दिशा में बहती है। अरुण नदी पश्चिम में माऊण्ट एवरेस्ट और पूर्व में कंचनजंघा के बीच दक्षिण दिशा को बहती हुई आगे बढ़ती जाती है। यहाँ इसकी घाटी बहुत गहरी है। लगभग ६० किलोमीटर बहने के बाद इसमें पश्चिम की ओर से सून कोसी और पूर्व की ओर से तामुर कोसी नदियाँ आकर मिलती हैं। कोसी नदी शिवालिक को पार कर उत्तर सहरसा के निकट मैदान में प्रवेश करती है तथा गंगा में मिलने के पूर्व स्वयं का भी अपना डेल्टा बनाती है। यह नदी ७३० किलोमीटर लम्बी है तथा इसका अपवाह क्षेत्र ८६,९०० वर्ग किलोमीटर है, इसमें से भारत में २१,५०० वर्ग किलोमीटर भूमि है। इस नदी में बाढ़ें बहुत अधिक आती हैं जिसमें अपार जन-धन की हानि होती है। अधिक बाढ़ के समय इस नदी में लगभग ७½ लाख क्यूसेक (cusec) जल आता है।

पठार से निकलने वाली गंगा की सहायक नदियाँ

यद्यपि गंगा में जल मुख्यतः उन सहायक नदियों से आता है जिनका उद्गम स्थान हिमालय में है किन्तु कुछ जल पठार की नदियों द्वारा भी उसे प्राप्त होता है। ये नदियाँ क्रमशः चम्बल, बेतवा, काली सिन्धु, दक्षिणी टोंस और केन हैं।

चम्बल (Chambal)—यह नदी मध्य प्रदेश में मऊ के निकट जनापाव पहाड़ों से निकलती है जो समुद्रतल से ६१६ मीटर ऊँची है। यह पहले उत्तर-पूर्व की ओर बहकर बूँदी, कोटा और धौलपुर में आती है फिर पूर्वी भाग में बहती हुई इटावा से ३८ किलोमीटर दूर यमुना में जा मिलती है। कोटा संभाग में मैंसरोडगढ़ के निकट १८ मीटर ऊँचाई से इसका जल चूलिया झरने में गिरता है। इसकी सहायक नदियाँ काली सिन्धु, सिप्रा, पार्वती और बनास हैं। इस नदी में बड़ी बाढ़ें आती हैं और तब यह अपने धरातल से १३० मीटर ऊँची तक बहने लगती है। इसकी धारा ने निकटवर्ती क्षेत्रों में बड़ी गहरी खाइयाँ बना दी हैं अतः ग्वालियर के निकटवर्ती भागों में बड़े खड्ड पाये जाते हैं। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई ९६५ किलोमीटर है। अब इस पर चम्बल जल विद्युत योजना बनायी गयी है। काली सिन्धु, पार्वती और बनास नदियों का जल इसमें मिल जाने पर यह नदी विशाल बन जाती है। धौलपुर होती हुई इटावा से ६०७ किलोमीटर नीचे यह यमुना में मिल जाती है।

बेतवा या वेत्रावती (Betwa or Vetravati)—यह मध्य प्रदेश में भोपाल से निकलकर उत्तरी-पूर्वी दिशा में बहती हुई भोपाल, ग्वालियर, झाँसी, ओरछा, जालौन आदि जिलों में होकर जाती है। इसके ऊपरी भाग में कई झरने मिलते हैं किन्तु झाँसी के निकट यह काँप के मैदान में धीमे-धीमे बहती है। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई ४८० किलोमीटर है। यह हमीरपुर के निकट यमुना में मिल जाती है। झाँसी से २३ किलोमीटर दूर पश्चिम में इसमें बेतवा नहर निकाली गयी है। इसके किनारे साँची और भेलसा के प्रसिद्ध नगर हैं।

काली सिन्ध (Kali Sindh) या सिन्ध—यह राजस्थान में टोंक जिले में नैनवास से निकलकर ४१६ किलोमीटर बहती हुई जगमनपुर से कुछ उत्तर की ओर यमुना से मिल जाती है।

दक्षिणी टोंस या तमसा नदी (Southern Tons or Tamasa)—यह नदी कैमूर की पहाड़ियों में स्थित तमासाकुण्ड नामक जलाशय से निकलकर उत्तरी-पूर्वी दिशा में बहती हुई सतना नदी में मिलती है। इसके ६४ किलोमीटर आगे पुरवा के निकट यह मैदानी क्षेत्र में उतरती है। इसमें मार्ग में कई सुन्दर प्रपात बन जाते हैं जिनमें सबसे मुख्य बिहार का प्रपात है जिसमें जल १८० किलोमीटर की चौड़ाई और ११० मीटर की ऊँचाई से गिरता है। यह नदी २६५ किलोमीटर बहकर इलाहाबाद से लगभग ३२ किलोमीटर दूर सिरसा के निकट गंगा से मिल जाती है।

सोन या स्वर्णनदी (Sone or Swarnanadi)—यह नदी अमरकटक की पहाड़ियों में नर्मदा के उद्गम स्थान के निकट से निकलती है। शीघ्र ही इसे पठार को पार कर नीचे उतरना पड़ता है अतः इसमें झरने बन जाते हैं। इसकी बाढ़ें बड़ी ही आकस्मिक और विनाशकारी होती हैं। १,००० वर्ष पूर्व यह नदी गंगा से पटना के नीचे मिलती थी किन्तु अब यह गंगा नदी में दीनापुर से १६ किलोमीटर ऊपर की ओर गिरती है। यह ७८० किलोमीटर लम्बी नदी है। इसके अपवाह क्षेत्र का क्षेत्रफल १७,६०० वर्ग किलोमीटर है।

ब्रह्मपुत्र प्रणाली (Brahmputra River System)

ब्रह्मपुत्र नदी को ब्रह्मा की बेटी कहा जाता है। यह भारत की सबसे बड़ी नदी है। यह तिब्बत में कैलाश पर्वत से मानसरोवर झील से ८० किलोमीटर की दूरी पर ५,१५० मीटर की ऊँचाई से निकलती है। इसका उद्गम दक्षिण-पश्चिम में सतलज और सिंधु के स्रोतों के निकट ही है। यह नदी सांपू नदी के नाम से लद्दाख और कैलाश की घाटियों के बीच महान हिमालय की श्रेणी के समान्तर पूर्व की ओर १,१०० किलोमीटर तक बहती है। पुनः हिमालय की प्रमुख श्रेणी का चक्कर काटकर यह दक्षिण की ओर मुड़ती है और हजारों मीटर नीचे गिरकर यह असम के उत्तरी-पूर्वी कोने से दिहांग के नाम से निकलती है। यहां इसमें उत्तर की ओर दिबांग, लुहित और सेसरी तथा दक्षिण की ओर से नोवा डिहींग नदियाँ आकर मिलती हैं। यहाँ से दक्षिणी-पश्चिमी दिशा की ओर बढ़ती है और इसमें स्वर्णसीरी, भरौली, धनसीरी, बर्नाडी, मानस, सकोश, धारला तथा तिस्ता नदियाँ उत्तरी किनारे से और बुरहीदिहिंग, दिसाग, दिखो, जाझी, धनसीरी, कुलसी तथा जिंजीराम दक्षिणी किनारे से मिलती हैं। गारो पहाड़ी से मुड़कर यह दक्षिण दिशा में बहने लगती है। इसी समय इसमें इसकी सहायक शाखा यमुना निकलती है जो दक्षिण में बहती हुई ग्वालन्दो के निकट पद्मा नदी से मिलती है तथा प्रमुख धारा जो यमुना से पतली है दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़कर मेघना नदी में मिल जाती है। अन्त में, पद्मा और यमुना दोनों

नदियाँ इसमें चाँदपुर के निकट आकर मिलती हैं। ये संयुक्त-धाराएँ बहुत चौड़ी होकर एक बड़ी एस्चुरी बनाती हैं जिसमें बहुत से द्वीप बनते हैं। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई २,५८० किलोमीटर है तथा इसका अपवाह-प्रदेश ५,८०,०८० वर्ग किलोमीटर में फैला है जिसमें से भारत में यह ८८५ मील बहती है तथा इसके अपवाह क्षेत्र का क्षेत्रफल ३,४०,००० वर्ग किलोमीटर है। इसके समुद्र में गिरने के स्थान से लगभग १,२८० किलोमीटर ऊपर डिब्रूगढ़ तक बड़े जहाज चल सकते हैं। छोटी नावें तिब्बत तक जा सकती हैं। इस नदी में बड़ी भयकर बाढ़ें आती हैं जिससे असम राज्य को जन-धन की अपार हानि उठानी पड़ती है।

सिन्धु नदी क्रम (Indus System)

इस क्रम की नदियों द्वारा पश्चिमी हिमालय प्रदेश का जल अरब सागर में प्रवाहित किया जाता है।

सिंधु नदी—यह नदी लद्दाख श्रेणी के उत्तरी भाग में ५,००० मीटर की ऊँचाई में कैलाश चोटी के दूसरी ओर से एक सहायक नदी सिंगो खंबाब और दक्षिण की ओर से गरतंग चू आकर मिलती है। यह ब्रह्मपुत्र नदी से ठीक उल्टी ओर बहती है। ३२० किलोमीटर उत्तर-पश्चिम की ओर बहने के बाद यह नंगा पर्वत पर समकोण बनाती हुई मुड़ती है। तब यहाँ अनेक चट्टानों और प्रपातों पर होती हुई अटक के पास मैदान में प्रवेश करती है। यहीं से इसकी पाकिस्तानी यात्रा आरम्भ होती है। सिंधु की कई सहायक नदियाँ हैं। जास्कर श्रेणी से निकलने वाली जास्कर नदी लेह के निकट इससे मिलती है। जोजिला दर्रे के उत्तर की ओर से आने वाली नदी तथा कराकोरम के उत्तर की ओर से आने वाली श्योग नदी किरीस के निकट इससे मिलती है। शिगार और गिलगिट अन्य सहायक नदियाँ हैं जो इससे मिलती हैं। स्कार्डो के निकट यह नदी १५० मीटर चौड़ी और ३ मीटर गहरी रहती है। अटक के निकट यह समुद्र के धरातल से ६१० मीटर की ऊँचाई पर बहती है तथा ६० से २५० मीटर चौड़ी हो जाती है। मैदान का आधा भाग तय करने के बाद यह पंचनद, सतलज और चिनाब की संयुक्त धाराओं में मिलती है। चिनाब में झेलम और रावी नदियाँ आकर मिलती हैं तथा सतलज में व्यास नदी। आगे यह सिंधु के शुष्क राज्य में बहती हुई अरब सागर में गिर जाती है। ग्रीष्म ऋतु में हिम पिघलने से इसमें प्रायः बड़ी बाढ़ें आया करती हैं। इस नदी की सम्पूर्ण लम्बाई ३,८८० किलोमीटर तथा अपवाह क्षेत्र ९'९ लाख वर्ग किलोमीटर है। भारत में यह १,१३४ किलोमीटर की लम्बाई में बहती है तथा १,१७,८४४ वर्ग किलोमीटर भूमि का जल बहाकर ले जाती है। बाढ़ के समय इसका जल ६ से ८ मीटर ऊँचा बढ़ जाता है तथा जल की मात्रा १० लाख क्यूसेक से भी अधिक हो जाती है। इसका डेल्टा ७,८०० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है जिसमें अनेक पुरानी नदियों के मार्ग बने हैं।

सतलज या शतद्रु (Sutlej or Satadru)—यह नदी कैलाश पर्वत के दक्षिणी ढालों पर मानसरोवर झील के निकट ५,००० मीटर की ऊँचाई से राक्षसताल

से निकलती है। तिब्बत में यह नदी बहुत ही सँकरे भाग में बहती है जहाँ इसके किनारे साधारणतः १८० से २१० मीटर ऊँचे हैं। राक्षसताल से शिपकी तक नदी की दिशा उत्तर-पश्चिम की ओर रहती है। यहाँ नदी की घाटी में काफी गहराई तक काप मिट्टी पायी जाती है। यहाँ से यह दक्षिण की ओर मुड़ती है और हिमालय को काटकर गहरा खड्ड बनाती है, जो कहीं-कहीं ६१५ मीटर तक गहरा है। इस भाग में अनेक छोटी नदियाँ आकर इसमें मिलती हैं। इसके दोनों ओर ६,०८० मीटर ऊँची पर्वतीय दीवारें खड़ी हैं। शिपकी के पास नदी की ऊँचाई समुद्र तल से ३,०४० मीटर है। इसकी मुख्य शाखा स्पिती नदी है जो मध्य हिमालय श्रेणियों का जल लेकर इसमें मिलती है। हिमाचल प्रदेश और कुल्लू घाटी में इस नदी ने भी गहरी नद-कन्दराएँ बनायी हैं। स्पिती के मिलने पर सतलज में जल की मात्रा अधिक हो जाती है अतः यह बड़ी तेजी से बहती है। बसहर में रामपुर के पास यह ६१५ मीटर और बिलासपुर के निकट केवल ३०५ मीटर की ऊँचाई पर ही बहती है। रूपड़ के निकट यह शिवालिक श्रेणी का चक्कर काटकर मैदान में प्रवेश करती है। यहीं भाखड़ा-नांगल बाँध बनाया गया है। आगे बढ़ने पर यह जालंधर दोआब को सरहिन्द पठार से अलग करती है और पश्चिम की ओर बहने लगती है। कपूरथला के दक्षिणी-पश्चिमी सिरे पर यह व्यास से मिल जाती है और मिथनकोट के निकट सिन्धु से। ११वीं शताब्दी में यह नदी सिन्धु में न मिलकर बीकानेर जिले में बहने वाली हकरा अथवा सरस्वती नदी से मिलती थी। यह नदी भारत में १,०५० किलोमीटर लम्बी है तथा इसका अपवाह क्षेत्र २४,०८७ वर्ग किलोमीटर में फैला है।

झेलम या वितस्ता (Jhelum or Vitasta)—यह नदी कश्मीर में शेषनाग झील से निकलकर ११२ किलोमीटर उत्तर-पश्चिम दिशा में बहती हुई वूलर झील से मिलती है। इस मार्ग में यह मुख्य हिमालय और पीर-पंजाल श्रेणियों के बीच बहती है। श्रीनगर से नीचे इसमें सिन्धु नदी मिलती है। बारामूला के आगे यह २,१३० मीटर गहरी बहती है और आगे जाकर इसमें किशनगंगा नदी मिल जाती है। जम्मू से आगे बढ़ने पर यह पिण्ड दादनखान और बेहरा होती हुई त्रिमू के निकट चिनाब से मिलती है। सम्पूर्ण नदी की लम्बाई ४०० किलोमीटर है तथा अपवाह क्षेत्र २८,४९० वर्ग किलोमीटर भूमि में फैला है। इससे कश्मीर राज्य में आवागमन एवं व्यापार में बड़ी सहायता मिलती है। श्रीनगर में इस पर 'शिकारा' या 'बजरे' अधिक चलाये जाते हैं तथा नावों में फल, सब्जियों और फूलों की खेती की जाती है।

चिनाब (Chinab)—यह नदी लाहुल में बरालाचा दर्रे के विपरीत दिशा में ४,९०० मीटर की ऊँचाई से चन्द्रा और भागा नामक दो नदियों के रूप में निकलती है। यह नदियाँ हिमाच्छादित पर्वतों से निकलती हैं अतः हिम का जल पिघलकर इनमें निरन्तर आता रहता है। ये दोनों टांडी के निकट मिलकर चम्बा जिले में उत्तरी-पश्चिमी दिशा में लगभग १६१ किलोमीटर बहती हैं। किश्तवार के निकट एक बड़ा तेज मोड़ लेकर यह पीर-पंजाल श्रेणी में गहरी कन्दरा बनाकर मैदान

की ओर बहती है जहाँ इसकी घाटी चौड़ी हो जाती है। यहीं से इसकी पाकिस्तानी यात्रा आरम्भ होती है। यह भारत में १,१८० किलोमीटर बहती है तथा २६,७२५ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का जल बहाकर ले जाती है।

रावी (Ravi)—यह नदी पंजाब की सबसे छोटी नदी है जो धौलापुर पर्वतमाला के उत्तरी और पीर-पंजाल श्रेणी के दक्षिणी ढालों का जल बहाकर लाती है। यह अपने मार्ग में बड़ी ऊँची श्रेणियों में होकर कन्दराएँ बनाती हुई बहती है। फिर यह चम्बा के निकट मैदानी भाग में बहने लगती है। इसकी लम्बाई ७२५ किलोमीटर है और इसके अपवाह क्षेत्र का क्षेत्रफल ५,६२७ वर्ग किलोमीटर है।

व्यास (Beas)—रावी के स्रोत के निकट से ही यह नदी भी निकलती है। अपने उद्गम से ६ किलोमीटर दूर यह कोठी दर्रे से (४,००० मीटर की ऊँचाई से) होकर बहती है (जो लगभग ५ मीटर चौड़ा और १८० मीटर लम्बा है) धौलाधार पर्वतमाला को काटकर यह कुल्लू, मण्डी और कांगड़ा जिलों में बहती हुई कपूरथला तथा अमृतसर होती हुई कपूरथला के निकट सतलज में मिल जाती है। यह ४७० किलोमीटर लम्बी है और इसका अपवाह क्षेत्र २५,६०० वर्ग किलोमीटर में फैला है।

दक्षिणी भारत की नदियाँ (Rivers of Peninsular India)

दक्षिण के पठार पर बहने वाली नदियों में अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं, जैसे :

(१) बड़े मैदानों की अपेक्षा यहाँ की नदियाँ छोटी और कम संख्या में हैं। क्योंकि यहाँ वर्षा कम होती है इसलिए इन नदियों में ग्रीष्म ऋतु में जल की मात्रा कम रहती है। चूँकि ये पहाड़ी प्रदेश पर होकर बहती हैं। अतः कृष्णा, कावेरी, गोदावरी जैसी प्रमुख नदियाँ भी नावें चलाने के उपयुक्त नहीं हैं।

(२) मार्च से जून तक जब मैदान की नदियों में हिमालय का हिम पिघल कर आता है तो उन दिनों पठार की नदियाँ सूख जाती हैं क्योंकि इनके उद्गम स्थान हिमाच्छादित पर्वतों में नहीं हैं।

(३) धरातल पथरीला होने के कारण पठार पर गिरने वाला वर्षा का जल भूमि में नहीं सोखता परन्तु शीघ्र ही नदियों में बह जाता है। यही कारण है कि पठार की नदियों में आकस्मिक रूप से बाढ़ें आ जाती हैं जो शीघ्र ही कम भी हो जाती हैं। चम्बल, सोन और महानदी गहरी और आकस्मिक बाढ़ों के लिए प्रसिद्ध हैं।

(४) पठार का धरातल ढालू और चट्टानी होने के कारण नदियों से सिंचाई के लिए नहरें नहीं निकाली जा सकती हैं।

(५) पठार की प्रायः सभी नदियाँ बड़ी पुरानी हैं। सैकड़ों वर्षों से यह नदियाँ अपने मार्ग को काटती आ रही हैं। अतः अब इनकी काटने की शक्ति नष्टप्राय हो चुकी है। इनकी घाटियाँ चौड़ी किन्तु छिछली हैं।

दक्षिण भारत में अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ पायी जाती हैं। इनमें अधिकांश बंगाल की खाड़ी में, कुछ अरब सागर में और कुछ उत्तर प्रदेश की ओर बहती हुई गंगा नदी-प्रणाली में गिरती हैं। कुछ नदियाँ अरावली तथा मध्य प्रदेश के पहाड़ी भागों से निकलकर कच्छ के रन अथवा खम्भात की खाड़ी में गिरती हैं। नीचे की तालिका में इन नदियों का अपवाह क्षेत्र बताया गया है।

	नदियाँ	लम्बाई (किलोमीटर)	अपवाह क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
(१) बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियाँ :	दामोदर	६००	११,०००
	स्वर्णरेखा	४३३	१९,५००
	ब्राह्मणी	७०५	३६,०००
	महानदी	८५८	१,३२,०९०
	गोदावरी	१,४६५	३,१३,३८९
	मंजरा	३२३	३०,८२१
	वैनगंगा	४९४	६१,०९३
	पैनगंगा	६७६	२३,८९८
	वर्धा	५२५	२४,०८७
	सबरी (कोलाब)	४१८	२०,४२७
	इन्द्रावती	५१३	४१,६६५
	प्राणहिता	११३	१९०,०७७
	कृष्णा	१,४००	२५९,०००
	कावेरी	८०५	८०,२९०
	पेन्नार	९७०	—
(२) अरब सागर में गिरने वाली नदियाँ :	नर्मदा	१,३८२	९३,१८०
	तापी	७२४	६४,७५०
(३) खंभात की खाड़ी या कच्छ के रन में गिरने वाली नदियाँ :	माही	५६०	—
	बनास	२७०	—
	लूनी	३२९	—
	साबरमती	४१६	५४,६१०
(४) गंगा नदी प्रणाली में गिरने वाली नदियाँ :	चम्बल, काली	९६०	—
	सिंध, बेतवा, केन,		—
	दक्षिण टोंस, सोन		—

बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियाँ

गोदावरी (Godavari)—यह नदी दक्षिण पठार की सबसे बड़ी नदी है। यह पश्चिमी घाट मे महाराष्ट्र राज्य मे नासिक से दक्षिण-पश्चिम की ओर ६० किलोमीटर दूर त्र्यंबक गाँव से १,०६७ मीटर की ऊँचाई से निकलती है। वैनगंगा, मंजरा और पैनगंगा के कारण गोदावरी मे जल की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है। जब यह पूर्वी घाट की ओर पहुँचती है तो आन्ध्र प्रदेश के ९६ किलोमीटर क्षेत्र मे इसकी घाटी तंग हो जाती है। यहाँ पोलावरम के निकट यह कंदरा में होकर बहती है। पूर्वी घाट को पार करने के बाद अन्तिम ६० किलोमीटर में यह फैलकर इतनी चौड़ी हो जाती है कि इसमे प्रायः द्वीप बन जाते है। राजमुन्द्री के निकट गोदावरी की धारा २,७४५ मीटर चौड़ी है। यहाँ इसके आधार पर लगभग ४ किलोमीटर लम्बा एनीकट बाँध बनाया गया है। यह १,४६५ किलोमीटर लम्बी है। इसके अपवाह क्षेत्र का क्षेत्रफल ३,१३,३८९ वर्ग किलोमीटर है।

महानदी (Mahanadi)—यह नदी मध्य प्रदेश के रायपुर जिले मे सिहावा के निकट से ४४२ मीटर की ऊँचाई से निकलती है और दक्षिण-पूर्व की ओर बहती है। यह नदी मध्य प्रदेश के आधे भाग और आंध्र प्रदेश के कुछ भाग का जल लेकर लगभग ८५८ किलोमीटर बहकर उड़ीसा मे बड़ा डेल्टा बनाती है। डेल्टा के पास ही बायीं ओर से ब्राह्मणी नदी आ मिलती है। यह नदी कोयल और सांख नदियों से मिलकर बनी है जो बोनाई, तलचर और बालासोर जिले में होकर बहती है तथा आगे चलकर वैतरणी नदी से मिल जाती है। वैतरणी उड़ीसा की क्योंझार पहाड़ियों से निकलती है और दक्षिण-पूर्व की ओर बहती है। वैतरणी और ब्राह्मणी दोनों नदियाँ संयुक्त होकर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। इनका डेल्टा बड़ा उपजाऊ है। महानदी का जल सिंचाई के भी काम मे आता है। इसका अनुमानित अपवाह ६,७८,००० लाख घन मीटर है।

कृष्णा (Krishna)—यह महाबलेश्वर के पास पश्चिमी घाट से १,३३७ मीटर की ऊँचाई से निकलती है। ऊँचे पठार को पीछे छोड़कर कृष्णा शोलापुर और रायचूर के दोआबों में पहुँचती है। यह दोआब तुंगभद्रा ने कृष्णा से मिलकर बनाया है। तुंगभद्रा उत्तरी मैसूर, बलारी और कर्नूल जिले का जल लाती है। कृष्णा की मुख्य सहायक नदियाँ कोयना, येरला, वरणा, पंचगंगा, दूधगंगा, घाटप्रभा, मालप्रभा, भीमा, तुंगभद्रा और मूसी हैं। पूर्वी घाट की पहाड़ियों के पास पहुँचने पर कृष्णा दो प्रधान धाराओं में बहकर समुद्र में गिरती है। कर्नूल में इसकी तली पथरीली है और इसका जल निर्मल है। डेल्टा के प्रदेश में यह अपने साथ मिट्टी बहा लाती है इससे इसका जल मटियाला हो जाता है। विजयवाड़ा के पास कृष्णा एनीकट बनाकर दो नहरें निकाली गयी हैं। यह नदी १,४०० किलोमीटर लम्बी है और इसके अपवाह क्षेत्र का क्षेत्रफल २,५९,००० वर्ग किलोमीटर है।

पेन्नार (पिनाकिन) (*Pennar*)—यह नदी कर्नाटक राज्य में नन्दीदुर्ग पहाड़ी से निकलती है। यह पूर्व की ओर कर्नाटक में बहकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। नदी का समस्त मार्ग ५७० किलोमीटर लम्बा है। पापाघ्नी और चित्रावती इसकी सहायक नदियाँ हैं। वर्षा में पिनाकिन में अचानक बाढ़ें आ जाती हैं। नाव चलाने के लिए यह नदी अनुकूल नहीं है पर इसका जल सिंचाई के काम में आता है। सिंचाई के लिए तालाबों और छोटी नालियों को रोक लिया जाता है। नेलोर नगर के सामने डेल्टा प्रदेश को सींचने के लिए नदी में आर-पार जल-तल पर १२५ मीटर लम्बी दीवार बनी है।

दक्षिण पिनाकिन—यह नदी चेन्नाकेशव पहाड़ी से निकलकर बंगलौर जिले में होती हुई तमिलनाडु में कुड्डालूर के उत्तर में फोर्ट सेन्ट डेविड के पास समुद्र में गिरती है। यह नदी ४०० किलोमीटर लम्बी है। बंगलौर जिले में इसका ८० प्रतिशत जल तालाबों में सिंचाई के लिए उपयोग में लिया जाता है।

कावेरी (Kauvery)—कावेरी नदी कुर्ग जिले में १,३४१ मीटर की ऊँचाई से निकलती है और दक्षिण-पूर्व की ओर कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों में होकर बहती है। यह नदी ८०५ किलोमीटर लम्बी है। इसका अपवाह क्षेत्र ८०,२९० वर्ग किलोमीटर में फैला है। कर्नाटक में इसके किनारों पर उपजाऊ भूमि है। इसलिए इसके अपवाह को रोकने के लिए कई स्थानों पर बाँध बनाये गये हैं। कर्नाटक में इसने श्रीरंगपट्टम और शिवासमुद्रम द्वीपों को घेर रखा है। यह दोनों द्वीप पवित्र माने जाते हैं। स्वयं कावेरी भी दक्षिणी गंगा कहलाती है। शिवासमुद्रम के नीचे कावेरी की दोनों शाखाओं में कई सुन्दर प्रपात पाये जाते हैं। झरनों की सहायता से ४,४७२ मीटर नीचे उतरकर कावेरी नदी तमिलनाडु में प्रवेश करती है। इसके डेल्टा में ही तंजौर का उपजाऊ जिला बना है जो दक्षिण का उद्यान कहलाता है।

तुंगभद्रा (Tungbhadra)—यह तुंगा और भद्रा नदियों के मिलने से बनी है। तुंगा कर्नाटक में पश्चिमी घाट की गंगामूल चोटी (१,२०० मीटर) के नीचे से निकलती है और पास ही कादूर जिले में भद्रा निकलती है। शिमोगा जिले में कुदाली में दोनों का संगम है। मानसून ऋतु में जून-अक्टूबर तक तुंगभद्रा की संयुक्त धारा आधा मील से अधिक चौड़ी हो जाती है। इसमें पश्चिमी घाट से लट्ठों के बेड़े बहकर पूर्वी मैदानी भाग में आते हैं। इसका जल सिंचाई के काम आता है। तुंगभद्रा योजना के बन जाने से सिंचाई का क्षेत्र और अधिक बढ़ गया है। इसके अपवाह क्षेत्र का क्षेत्रफल ६६,२६२ वर्ग किलोमीटर है।

अरब सागर वाली नदियाँ

माही (*Mahi*)—नर्मदा तथा ताप्ती के बाद यह गुजरात में तीसरी बड़ी नदी है। यह विन्ध्याचल के पश्चिमी भाग में समुद्रतल से ५४५ मीटर की ऊँचाई पर अमझरा में मेहद झील से निकलती है। २२५ किलोमीटर के बाद बागर की पहाड़ियाँ

इसे पश्चिम की ओर मोड़ देती है । ४० किलोमीटर के बाद फिर इसे मेवाड़ की पहाड़ियाँ दक्षिण-पश्चिम की ओर मोड़ देती हैं । इसी दिशा में बहकर यह खम्भात की खाड़ी में गिरती है । यह नदी २६० किलोमीटर लम्बी है ।

नर्मदा (Narmada)—अमरकटक से 1,057 मीटर की ऊँचाई से निकल कर नर्मदा एक तंग, गहरी और सीधी घाटी में पश्चिम की ओर बहती है । यह भड़ौंच के निकट अरब सागर में गिरती है । जबलपुर के नीचे भेड़ाघाट की संगमरमर की चट्टानों और कपिलधारा (धुंआधार) प्रपात का दृश्य बड़ा मनोहर है यहाँ २३ मीटर ऊँचाई से जल गिरता है । नर्मदा का उत्तरी भाग नाव चलाने और सिंचाई करने के लिए अनुकूल नहीं है । गंगा की भाँति नर्मदा नदी भी पवित्र मानी जाती है । होशंगाबाद आदि बहुत से स्थानों पर नर्मदा नदी के किनारे सुन्दर घाट और मनोहर मन्दिर बने हैं । यह नदी 1,312 किलोमीटर लम्बी है और इसका अपवाह क्षेत्र ९३,१८० वर्ग किलोमीटर है ।

ताप्ती या तापी (Tapti or Tapi)—तापी या ताप्ती नदी मध्य प्रदेश के बेतूल जिले में मुल्ताई (मूल-ताप्ती) नगर के पास से 762 मीटर की ऊँचाई से निकलती है । ताप्ती नदी की घाटी सतपुड़ा के दक्षिण में है । यह मध्य प्रदेश का जल लेकर 724 किलोमीटर बहने के बाद खम्भात की खाड़ी में गिरती है । छोटी-छोटी नावें इस नदी में सूरत तक चलती हैं । इसका वार्षिक अपवाह 26,340 लाख घन मीटर है । तापी की मुख्य सहायक नदी पूरणा है ।

उत्तरी और दक्षिणी नदियों की तुलना

उत्तरी और दक्षिणी भारत की नदियों में निम्न अन्तर पाया जाता है :

(१) हिमालय से निकलने वाली नदियाँ नवीन वलन (folded) पर्वतों से निकलती हैं इसलिए अपने पहाड़ी मार्ग में उनकी धारा बहुत तेज होती है । वे नदी के विकास में अभी नये और अपरिपक्व अवस्था में हैं । ये अभी भी अपने मार्ग की ढालों को काटने का कार्य कर रही हैं और अपनी धारा को कम तेज कर रही हैं जबकि दक्षिण की नदियाँ अधिक पुरानी हैं । उनकी घाटियाँ चौड़ी और छिछली हैं तथा प्रपातों को छोड़कर इनका ढाल बहुत ही साधारण है । नदियाँ वृद्ध अवस्था में भूमि अपक्षरण के अन्तिम काल या आधार-तल को पहुँच चुकी हैं ।

(२) हिमालय की नदियाँ अपने मार्ग की श्रेणी में विशेषता रखती हैं । इनके मार्ग में पर्वतीय, मैदानी, डेल्टा आदि की अलग-अलग अवस्थाएँ पायी जाती हैं, किन्तु दक्षिणी नदियों का मैदानी भाग बहुत ही थोड़ा है । अतः हिमालय से निकलने वाली नदियों में सिंचाई और नाव चलाने की सुविधा पायी जाती है, किन्तु दक्षिण की नदियाँ इस दृष्टि से प्रायः उपयोगी नहीं हैं । केवल डेल्टाई भागों में ही इनमें नावें चलायी जा सकती हैं तथा सिंचाई के लिए इनका उपयोग किया जा सकता है ।

(३) हिमालय की नदियों को बड़ी-बड़ी हिमानियों से अनन्त राशि में जल

मिलता है। हिमालय में यह ४०,००० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हैं। दक्षिणी नदियाँ वर्षा के जल से ही पूरित रहती हैं। अतः उत्तरी नदियाँ प्रायः वर्ष भर भरी ही रहती हैं किन्तु दक्षिणी नदियाँ ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती हैं और वर्षा ऋतु में उनमें भभककर बाढ़ आ जाती है। अस्तु, हिमालय से निकलने वाली नदियों के तट पर अनेक स्थानों पर प्रमुख नगर और व्यापारिक केन्द्र स्थित हैं किन्तु दक्षिणी नदियों के तट पर नगरों का प्रायः अभाव-सा है।

(४) हिमालय से निकलने वाली नदियाँ मुलायम शैलों और मिट्टी पर बह कर आती हैं अतः वे अपने साथ उत्तम चिकनी मिट्टी और कीचड़ बहा के लाती हैं जिसे बाढ़ के समय अपने तट के दोनों ओर बिछा देती हैं। अस्तु, ये क्षेत्र अत्यधिक उपजाऊ हो जाते हैं। इसके विपरीत, दक्षिण की नदियाँ पुरानी कठोर शैलों पर होकर बहती हैं अतः इनके जल में बहुत कम मिट्टी बहकर आती है जिससे ये नदियाँ उपजाऊ मैदान बनाने वाली नहीं हैं।

(५) हिमालय की नदियाँ बहुत कम प्रपात बनाती हैं किन्तु प्रायद्वीप की प्रायः सभी नदियाँ पठार से उतरते समय मार्ग में झरने बनाती हैं जिनका उपयोग शक्ति उत्पादन के लिए किया जाता है।

झीलें
(LAKES)

भारत की अधिकांश झीलें उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में ही पायी जाती हैं। यहाँ निम्न प्रकार की झीलों के उदाहरण मिलते हैं :

(१) भूमि के धरातल पर परिवर्तन होने से बनी झीलें (Tectonic Lakes)—इस प्रकार की रचना मुख्यतः भूपृष्ठ के ऊँचे-नीचे होते रहने से जो विशाल आघात बन जाते हैं उनमें जल भरने से होती है। अधिकतर झीलें भूपृष्ठ के धसने से उत्पन्न होती हैं। कश्मीर की वूलर झील (१०० वर्ग किलोमीटर) तथा कुमायूँ हिमालय की अनेक झीलें इसके मुख्य उदाहरण हैं।

(२) ज्वालामुखी उद्गार से बनी झीलें (Volcanic Lakes)—ज्वालामुखी के उद्गार शान्त हो जाने पर उनके मुख में वर्षा जल के एकत्रित होने से झीलें बन जाती हैं। महाराष्ट्र के बुलढाना जिले में लुनार झील इसी प्रकार बनी है।

(३) अनूप झीलें (Lakes formed by Streams)—समुद्र में गिरने वाली नदियों के मुहाने पर समुद्र की धाराएँ या पवनें बालू मिट्टी के टीले बनाकर जल के क्षेत्र को समुद्र से अलग कर देती हैं। ऐसे अनूप भारत में निचले बलुही समुद्र तटों पर बहुतायत से मिलते हैं। पूर्वी घट पर उड़ीसा की चिल्का और नैलौर की पुलीकट झीलें इसी प्रकार बनी हैं। गोदावरी और कृष्णा के डेल्टों में नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी से घिरी कोलेरु झील (आन्ध्र प्रदेश) भी इसी प्रकार बनी है। पश्चिमी तट पर केरल राज्य में भी असंख्य अनूप या कयाल पाये जाते हैं। ये अनूप प्रायः छिछले होते हैं। इन्हें समुद्र से जोड़ कर इनमें नावें चलायी जाती हैं।

(४) हिमानी द्वारा बनी झीलें (Glacial Lakes)—हिमानी द्वारा बनाये गये गड्ढों से जब हिमानियाँ पहाड़ी भागों को छोड़कर नीचे की ओर उतरने लगती हैं तो वे अपने मार्ग में शैलों की काट-छाँट करती रहती हैं। इससे भूतल पर इस अवसाद के जमा हो जाने से बड़े-बड़े गड्ढे बन जाते हैं। यही गड्ढे कालान्तर मे हिम के पिघले हुए जल के भर जाने पर झीलें बन जाते हैं। इस प्रकार की झीलें अधिकतर कुमायूँ हिमालय में पायी जाती हैं। इनके मुख्य उदाहरण राक्सताल, नैनीताल, नौकुछिया ताल, भीमताल, आदि हैं।

कभी-कभी हिमानियों मे मिले हुए कंकड़-पत्थर का ढेर भी हिमानियों के मार्ग को अवरुद्ध कर देता है जिसके फलस्वरूप हिमानियों का जल रुककर झीलें बन जाती हैं। ऐसी झीलें मोरेन झीलें (Moraine Lakes) कहलाती हैं। पीर-पंजाल श्रेणी के उत्तरी-पूर्वी ढालों पर इस प्रकार की कई झीलें बनी हैं।

(५) वायु द्वारा निर्मित झीलें (*Aeolion or Playa Lakes*)—इस प्रकार की झीलें मुख्यत. पश्चिमी राजस्थान के थार के मरुस्थल में पायी जाती है, इन्हें ढाँढ कहते हैं। यह झीलें अस्थायी होती हैं। इस भाग मे बालू मिट्टी के टीले अधिक पाये जाते हैं। इन टीलो के बीच में नीची भूमि भी मिलती है। वर्षा के दिनों में इस भूमि में जल भर जाता है और झीलें बन जाती हैं। साभर, डीडवाना तथा पचभद्रा ऐसी ही झीलें हैं।

(६) घुलन क्रिया द्वारा निर्मित झीलें (Dissolution Lakes)—इस प्रकार की झीलें उन भागों मे पायी जाती हैं जहाँ की शैलें चूने, जिप्सम या नमक की बनी होती हैं। चूने की शैलों की कंदराएँ जब पृथ्वी की हलचल द्वारा नीचे धँस जाती हैं तो उनमें जल भर जाने से झीलें बन जाती हैं। भारत में इस प्रकार की कुछ झीलें कुमायूँ हिमालय में पायी जाती हैं।

(७) भूमि के खिसकाव की झीलें (Rock-fall Basins)—वायुमण्डल की प्रतिक्रिया से शैलों के नष्ट-भ्रष्ट और जीर्णशीर्ण अवशेष घाटियों मे पर्वतों के ढालों पर जमा हो जाते हैं किन्तु कभी-कभी यह जमाव सम्पूर्ण रूप से नीचे खिसक जाता है। इससे नदी घाटी में जलधारा का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और धारा का जल जलाशय के रूप में बदल जाता है। १८६३ में हिमालय मे अलकनन्दा नदी के मार्ग में एक बड़े पहाड़ी ढाल से शैलों के खिसक पड़ने से गोहना नामक झील बन गयी थी। इस प्रकार की झीलें बहुधा अस्थायी होती हैं और इनके टूट जाने से नीचे के प्रदेशों में बाढ़ें आ जाती हैं।

(८) नदियों के मार्ग मे झीलों की रचना (Meandering Lakes)—कई स्थानों पर रुकावट पड़ने से जल के जमा हो जाने से ऐसी झीलें बनती हैं अथवा मैदानी प्रदेशों मे जब नदी धीमे-धीमे बहती है तो उसमें मुड़ाव या घुमाव पड़ जाते हैं। जब कभी इन घुमावों के बीच का स्थल कट जाता है तो नदी घुमाव को छोड़

कर पुनः सीधी बहने लगती है। इन मुड़ावों में बाढ़ के समय जल भर जाता है और झीलें बन जाती हैं। गंगा की ऊपरी घाटी में इस प्रकार की झीलें पायी जाती हैं।

(क) कुमायूँ हिमालय की झीलें

भारत में सबसे अधिक झीलें कुमायूँ हिमालय में हैं। इस भाग में सात बड़ी-बड़ी झीलें—नैनीताल, भीमताल, नौकुचिया ताल, समताल, पूना ताल, मालवा ताल और खुरपा ताल—हैं।

(१) भीमताल इन सबमें बड़ा है। यह उत्तर प्रदेश में काठगोदाम से १० किलोमीटर उत्तर की ओर है। इसकी आकृति त्रिभुजाकार है। उत्तर से नौली गदना नामक छोटे से नाले का जल इस झील में आता है। इसकी लम्बाई १,६७४ मीटर, चौड़ाई ४४७ मीटर और गहराई २६ मीटर है। यह झील समुद्र से १,३३२ मीटर ऊँची है। इसमें से छोटी-छोटी नहरें निकाल कर सिंचाई भी की जाती है। इसके बीच में एक छोटा-सा द्वीप है जो ज्वालामुखी चट्टानों का बना है।

(२) नैनीताल झील समुद्रतल से १,६३७ मीटर ऊँची है। इसके चारों ओर केवल दक्षिणी-पूर्वी भाग को छोड़कर (जिस तरफ से इसमें से बालिया नदी निकलती है) ऊँचे पहाड़ हैं। इस झील के बीच में एक छोटी-सी चट्टान है जो इसे दो भागों में बाँट देती है। सम्पूर्ण झील १,४१० मीटर लम्बी, ४४५ मीटर चौड़ी, २६ मीटर गहरी है। इसके चारों ओर का दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। इसमें कई प्रकार की मछलियाँ भी मिलती हैं। इसमें नौका बिहार बहुत किया जाता है।

(३) नौकुचिया ताल भीमताल से ४ किलोमीटर दक्षिण पूर्व की ओर है। यह समुद्रतल से १,२६२ मीटर ऊँचा तथा ६३६ मीटर लम्बा, ६८० मीटर चौड़ा और ४० मीटर गहरा है। यह इस प्रदेश की सबसे गहरी झील है।

(ख) कश्मीर की झीलें

कश्मीर राज्य में भी (जहाँ पंजाब हिमालय फैले हैं) दो सुन्दर झीलें हैं

(१) वुलर झील कश्मीर की सबसे बड़ी झील है। यह १५ किलोमीटर लम्बी तथा १० किलोमीटर चौड़ी और उत्तर-पूर्व की ओर ४ मीटर गहरी है, किन्तु अब नदी की मिट्टी इनमें भरती जा रही है। इसके चारों ओर चन्द्रमा के आकार में पहाड़ फैले हैं। झील के उत्तरी किनारे पर कई छोटे-छोटे गाँव भी बसे हैं।

(२) डल झील श्रीनगर के पूर्व की ओर है। इसमें सोतों और नालों से जल आता है। यह झील ८ किलोमीटर लम्बी और ३ किलोमीटर चौड़ी है। कई स्थानों में दलदल होने के कारण यह कम गहरी है। इसके तीन ओर ६०० से १,२०० मीटर ऊँचे पर्वत हैं। वुलर झील की भाँति इसके किनारे पर भी कई गाँव हैं जिनमें सैकड़ों फलों के बाग हैं। शालीमार और निशात बाग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कश्मीर की अन्य झीलें मानसबल, शेषनाग, अनन्तनाग, गन्धरबल, अच्छाबल, वेरीनाग और नागिन हैं।

(ग) राजस्थान की झीलें

राजस्थान की अधिकतर झीलें खारी हैं। झीलें आन्तरिक अपवाह के क्षेत्रों में हैं जहाँ छोटी-छोटी नदियाँ आकर समाप्तप्राय हो जाती हैं। यहाँ की सबसे बड़ी झील साम्भर है जिसमें मेंढा, रूपनगर, खारी और खंडेल नदियाँ आकर गिरती हैं। इसका अपवाह क्षेत्र लगभग ५,००० वर्ग किलोमीटर है। साम्भर झील साधारणतः १२६ किलोमीटर लम्बी, १३ किलोमीटर चौड़ी, ४ मीटर गहरी है। मानसून काल में इसका जल १४५ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैल जाता है और ग्रीष्म ऋतु में जब वाष्पीभवन क्रिया अधिक होती है तो यह क्षेत्रफल सकुचित होकर बहुत कम रह जाता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि ४ मीटर की गहराई तक इस झील में नमक की मात्रा ५५० लाख टन है अर्थात् प्रति वर्ग मील क्षेत्र पीछे १० लाख टन नमक होने का अनुमान है।[1]

इस तथा राजस्थान की अन्य झीलों के खारीपन के बारे में ह्यूम्स (Humes), नोटिलिंग (Noteling) तथा हालैण्ड और क्राइस्ट (Holland and Christe) प्रभृति विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। ह्यूम्स के अनुसार इन झीलों के स्थान पर पहले एक विशाल जलाशय या समुद्र था जिसके सूख जाने से ही यहाँ नमक की इतनी अधिक मात्रा का जमाव पाया जाता है किन्तु नोटलिंग का अनुमान है कि साम्भर झील में नमक भूमि के नीचे खारे जल के सोतों के बहने से प्राप्त होता है। अन्य विद्वानों के अनुसार इन झीलों के निक्षेपों के नीचे प्राचीन नमक की चट्टानें बिछी हुई हैं अतएव केशाकर्षण शक्ति (Capillary action) द्वारा नमक ऊपर आता रहता है जिससे ये झीलें खारी होती रहती हैं।

हालैण्ड और क्राइस्ट के मतानुसार राजस्थान में इतनी अधिक नमक की मात्रा पाये जाने का एकमात्र कारण ग्रीष्म ऋतु में प्रवाहित होने वाली दक्षिणी-पश्चिमी मानसून है जो अपने साथ कच्छ की खाड़ी से सोडियम क्लोराइड नामक नमक धूल के कणों के रूप में लेकर राजस्थान की ओर आती है। ज्यों-ज्यों यह पवनें राजस्थान की ओर बढ़ती जाती हैं उनकी चाल कम होती जाती है, इस कारण वे नमक के कणों को आगे नहीं ले जा सकतीं और वे इस राज्य की मरुभूमि में गिर पड़ते हैं। यह असख्य कण इस भाग की छोटी-छोटी नदियों द्वारा वर्षा ऋतु में साम्भर जैसी झीलों में एकत्रित कर दिये गये हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु में इन पवनों द्वारा औसतन १ लाख टन नमक राजस्थान की इन झीलों में पहुँच जाता है। फलतः झीलों में नमक की कमी भी न्यूनता नहीं आने पाती। जब मार्च-अप्रैल में झीलों का जल सूखने लगता है तो झील की मिट्टी के ऊपर नमक के कण जम जाते हैं।

इन सभी झीलों से बड़ी मात्रा में खाने का नमक प्राप्त होता है किन्तु सीनो

[1] M. S. Krishnan, *Geology of India and Burma*, 1956, p. 43.

ही स्थानों पर बनने वाले नमक की मात्रा, रंग और उनके रासायनिक सम्मिश्रण में थोड़ा अन्तर होता है। सांभर झील में तैयार किये जाने वाले नमक में सोडियम क्लोराइड की औसत मात्रा ८६ से ८८ प्रतिशत; नमी १ से ३ प्रतिशत और घुली हुई अशुद्धियाँ—सोडियम कार्बोनेट, बाई कार्बोनेट और कार्बनीय पदार्थ—०·५ से १·०८ प्रतिशत तक पायी जाती है। इसके नमक का रंग कुछ भूरा होता है। डीडवाना से प्राप्त नमक अधिक अशुद्ध होता है। यहाँ नमक में सोडियम सल्फेट की मात्रा अधिक पायी जाती है और नमक प्रायः खाने के अयोग्य होता है। पचभद्रा का नमक रंग में अपेक्षतया सफेद होता है।

राजस्थान में उदयपुर जिले में अनेक मीठे जल की झीलें बनायी गयी हैं जिनका उपयोग मुख्यतः सिंचाई के लिए होता है। ऐसी झीलों में उदयपुर में उदयसागर, पिछोला, फतहसागर, जयसमुद्र और कांकरोली की राजसमन्द झीलें मुख्य हैं।

(घ) अन्य झीलें

(१) लूनार झील—महाराष्ट्र के बुलढाना जिले में है। पेंदे में इस झील का घेरा १⅙ किलोमीटर है किन्तु ऊपरी धरातल १⅔ किलोमीटर है। पूर्व की ओर से एक सोते द्वारा इसमें जल आता है। इसकी औसत गहराई बहुत कम है, केवल ६१ मीटर। झील के चारों ओर कीचड़ है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि दक्षिण के लावा पठार में यह झील प्राचीन काल में ज्वालामुखी के मुँह में जल भर जाने से बनी है।

(२) चिल्का झील—उड़ीसा के तटीय भाग में नाशपाती की आकृति में पुरी जिले में स्थित है। यह ७० किलोमीटर लम्बी तथा ३० किलोमीटर चौड़ी है किन्तु इसका क्षेत्रफल २,१०० वर्ग किलोमीटर तक हो जाता है। यह समुद्र का ही एक भाग है जो महानदी द्वारा लायी गयी मिट्टी के जमा हो जाने से समुद्र से अलग होकर एक छिछली झील के रूप में हो गया है। दिसम्बर से जून तक इस झील का जल खारा हो जाता है किन्तु वर्षा ऋतु में इसका जल मीठा हो जाता है। इसकी औसत गहराई ३ मीटर है।

(३) पुलीकट झील—तमिलनाडु के तट पर ६० किलोमीटर लम्बी और ५ से १५ किलोमीटर चौड़ी है। यह एक छिछली अनूप है। इस झील की औसत गहराई १·८ मीटर है। यह समुद्र से बालू की भीति द्वारा अलग होने से बनी है। इसके निकट जो द्वीप है (श्री हरीकोटा) उसकी मिट्टी में सेलखड़ी के स्तर मिलते हैं जिन्हें आधुनिक काल में समुद्री लहरों ने बिछा दिया है।

(४) कोलेरू झील (Kolleru or Colair)—कृष्णा जिले में एक मीठे जल की झील है किन्तु छिछली है। इसकी आकृति अण्डाकार है। वर्षा ऋतु में इसका क्षेत्रफल लगभग १६० वर्ग किलोमीटर हो जाता है। अब यह झील अनेक छोटे सोतों द्वारा भरती आ रही है।

जलप्रपात
(WATER FALLS)

भारत के अधिकांश प्रपात दक्षिणी भारत में पाये जाते हैं जहाँ नदियाँ पश्चिमी घाट को पार कर प्रायद्वीप की ओर नीचे उतरती हैं। इनमें से अधिकांश तो बहुत ही छोटे होते हैं और ६ से ६ मीटर ऊँचे हैं। महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा पर शरवती नदी पर जोग प्रपात (जिरस्प्पा) हैं जो चार छोटे-छोटे प्रपातों—राजा, राकेट, रोरर और दाम ब्लाचे—से मिलकर बने हैं। इसका जल २५० मीटर की ऊँचाई से गिरकर बड़ा सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है।

कावेरी नदी पर शिवासमुद्रम प्रपात है जो १०० मीटर की ऊँचाई से गिरता है। इसका उपयोग जल विद्युत शक्ति उत्पादन के लिए किया गया है।

नीलगिरि की पहाड़ियों में पायकारा प्रपात का उपयोग भी जल शक्ति के लिए किया गया है।

बेलगाम जिले में गोकक नदी पर गोकक प्रपात ५४ मीटर ऊँचे और महाबलेश्वर के निकट येन्ना प्रपात १८० मीटर ऊँचे हैं।

दक्षिणी टोंस नदी विन्ध्याचल के पठार को पार करके निकलती है तो कई प्रपात बनाती है जिसमें मुख्य बिहार प्रपात है जो बाढ़ के समय १८० मीटर चौड़ा और १११ मीटर ऊँचा हो जाता है।

चम्बल नदी में अनेक छोटे-बड़े प्रपात मिलते है। कोटा के निकट चूलिया प्रपात १८ मीटर ऊँचा है। इसी के सहारे चम्बल योजना में शक्ति उत्पादन की जायेगी। सोन और बेतवा नदी के मार्गों में कई प्रपात मिलते हैं।

नर्मदा नदी में जबलपुर के निकट धुंआधार प्रपात—जो केवल ६ मीटर ऊँचे है—बड़ा सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं। इसी नदी पर अन्य दो प्रपात—१२ मीटर ऊँचे—मंधार और पुनासा के निकट हैं।

कृष्णा नदी में बाढ़ के समय उसके मार्ग में कई रपटें और प्रपात बन जाते हैं।

4

जलवायु
(CLIMATE)

देश के अधिक विस्तार और अनेक भू-आकृतियों के कारण सम्भवतः विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारत में जलवायु सम्बन्धी दशाओं में बड़ी विभिन्नता पायी जाती है। देश का एक भाग कर्क रेखा के उत्तर में और दूसरा उसके दक्षिण में है। उत्तरी-पश्चिमी भागों में थार का विशाल मरुस्थल है जहाँ वर्ष भर में २५ सेण्टीमीटर से भी कम वर्षा होती है जबकि उत्तरी और पूर्वी भाग में खासी की पहाड़ियों में चेरापूंजी नामक स्थान पर १,०८७ सेण्टीमीटर वर्षा का औसत रहता है। कश्मीर में द्रास नामक स्थान पर न्यूनतम तापमान —६° सेण्टीग्रेड तक और लेह में —४५° सेण्टीग्रेड पहुँच जाता है जबकि राजस्थान में श्रीगंगानगर का उच्चतम तापमान अनेक बार ५१° सेण्टीग्रेड से अधिक अंकित किया जा चुका है। हिमालय के अधिकांश पहाड़ी केन्द्रों में अगस्त के महीने में आर्द्रता १००% पायी जाती है और आकाश मेघाच्छन्न रहता है, किन्तु दिसम्बर में इन्हीं स्थानों में आर्द्रता ०% हो जाती है। कोचीन का मध्यम औसत तापमान २७° सेण्टीग्रेड से नीचे नहीं जाता और न ही न्यूनतम तापमान २३° सेण्टीग्रेड से नीचे उतरता है, जो बम्बई के तापान्तर के दुगुने से भी अधिक है तथा पंजाब के आन्तरिक भागों से ६ से ८ गुना है। अस्तु, स्पष्ट होता है कि भारत में जलवायु की दशा में देश के विभिन्न भागों में अन्तर पाया जाता है।

भारत की जलवायु पर दो बाहरी कारणों का प्रभाव पड़ता है। उत्तर की ओर हिमालय की हिमाच्छादित श्रेणियाँ इसको मध्य एशिया की ओर से आने वाली शीतल वायु से दबाकर इसको महाद्वीपीय जलवायु (Continental Climate) का रूप देती हैं जिसकी प्रमुख विशेषताएँ स्थलीय पवनों का आधिक्य, वायु की शुष्कता, अधिक दैनिक ताप-परिसर और वर्षा की न्यूनता है। दक्षिण की ओर हिन्द महासागर की निकटता इसको उष्ण मानसूनी जलवायु (Tropical Monsoon) देती है जिसमें उष्ण कटिबन्धीय जलवायु की आदर्श दशाएँ प्राप्त होती हैं। डॉ० स्टाम्प का कथन है कि "हम भारत को सदैव ही मुख्यतः उष्ण कटिबन्धीय देश मानते हैं और यह

सत्य भी है क्योंकि उत्तर की विशाल पर्वतीय श्रेणियों से अवरोधित सम्पूर्ण क्षेत्र को एक ही इकाई मानना चाहिए जिसमें एक ही प्रकार की उष्ण मानसूनी जलवायु पायी जाती है।" इस प्रकार की जलवायु की मुख्य विशेषताएँ न्यून दैनिक ताप-परिसर और उसकी एकसमानता, वायु में अधिक आर्द्रता एवं वर्षा का न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र ही होना है।

ब्लैंफोर्ड ने भारत की जलवायु की विभिन्नताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "हम भारत की जलवायुओं के विषय में कह सकते हैं, जलवायु के विषय में नहीं, क्योंकि स्वयं विश्व में जलवायु की इतनी विषमताएँ नहीं मिलती जितनी अकेले भारत में।" मार्सडेन के अनुसार, "विश्व की समस्त जलवायुएँ भारत में पायी जाती हैं।"

भारत की जलवायु पर विषुवत् रेखा की निकटता, कर्क रेखा के मध्य से निकलने, कुछ भागों में समुद्रतल से काफी ऊँचे होने तथा समुद्र के तीन ओर देश को घेरे रहने का भी प्रभाव पड़ता है। इन सब कारणों के स्वरूप देश के विभिन्न भौतिक विभागों में तापमान में बड़ा अन्तर पाया जाता है, जैसा कि नीचे दिये गये आँकड़ो से प्रतीत होगा.

कुछ नगरों के मासिक उच्चतम और निम्नतम तापमान

	मासिक उच्चतम तापमान				मासिक निम्नतम तापमान			
	जनवरी		मई		जनवरी		मई	
	फा०	सें०	फा०	सें०	फा०	सें०	फा०	सें०
१	२	३	४	५	६	७	८	९
पहाड़ी प्रदेश :								
दार्जिलिंग	४७·०	८·३	·२	१७·२	३५·४	१·९	५२·४	११·३
शिमला	४७·५	८·६	७३·२	२२·९	३५·४	१·९	५७·७	१४·३
चेरापूंजी	६०·३	१५ ७	७२ १	२२·३	४६ १	७·८	६१·१	१६·०
मैदानी प्रदेश :								
आगरा	७३·०	२२ ८	१०६·८	४१·६	४२·६	५ ९	७६·८	२४·९
अलीगढ़	७०·९	२१·६	१०५·३	४०·७	४५ २	७·३	७९ ४	२६·३
नई दिल्ली	७०·५	२१·४	१०४ ८	४० ४	४३·३	६·३	७८·८	२६·०
इलाहाबाद	७४·८	२३·८	१०७·१	४१·७	४७ १	८·४	७९·९	२६·६
कानपुर	७१·९	२२·२	१०६·२	४१·२	४५·७	७·७	८० ४	२६·९
पटना	७३·०	२२·८	१००·३	३७·९	५१·१	१०·६	७८ १	२५·६
वाराणसी	७४·२	२३·४	१०५·४	४०·९	४८·१	८·९	७९·२	२६·२
कलकत्ता	७९ ६	२६·४	९५·५	३५ ३	५४·६	१२·६	७७·५	२५·३

१	२	३	४	५	६	७	८	९
जयपुर	७३·२	२२·९	१०५·६	४० ९	४६·८	८·२	७६·९	२४·९
बीकानेर	७१·७	२२ १	१०७·०	४१·७	४६·९	८ ३	८१·९	२७·७
अजमेर	७२·७	२५·०	१०२·९	३९·४	४५ ७	७·३	८०·२	२६ ८
जोधपुर	७६·३	२४·६	१०५·४	४०·८	४८·६	९·२	७९·४	२६ ३
कोटा	७७·१	२५·१	१०७·६	४२·०	५१·१	१०·६	८४·५	२९ २
अहमदाबाद	८४·८	२९·३	१०६·८	४१·६	५७·६	१४·२	७९·२	२६·२
पठारी प्रदेश -								
नागपुर	८३·७	२८·७	१०८·७	४२·६	५७·७	१४·३	८२ ७	२८ २
हैदराबाद	८४ ७	२९·३	१०३·१	३९·५	५८·७	१४·८	७९·७	२६·५
मैसूर	८४·२	२९·०	९१·९	३३·३	६०·८	१६·०	६९·९	२१·१
भोपाल	७९·३	२६ २	१०४ ४	४०·२	४९·८	९·९	७६ ३	२६·१
इन्दौर	७९·५	२६·४	१०२·९	३९·४	४९·८	९·९	७६·३	२४·६
पूना	८६·५	३०·३	९८·८	३७·१	५३·०	११·७	७२·४	२२·४
बगलौर	८०·३	२६·८	९१·२	३२·९	५७·३	१४ १	६८ ९	२०·५
तटीय प्रदेश :								
मद्रास	८५·३	२०·६	१०१·३	३८·५	६७·१	१९·५	८१·७	२७ ६
त्रिवेन्द्रम	८६·६	३०·३	७७·२	३०·७	७४·०	२३·३	७८ ९	२६ १
कटक	८३·१	२८·४	१०१·४	३८·६	५९·८	१५·४	७९ ९	२६·६
मगलौर	८९·१	३१·७	९०·८	३२·७	७०·६	२१·४	७८·८	२६·०
बम्बई	८३ २	२८·४	९१·१	३२ ८	६६·७	१९ ३	७९·६	२६·५
पुरी	८०·०	२६·७	८९·६	३२·०	६३·७	१७ ६	८१ १	२७ ३

वास्तविक तापमान के विचार से यह कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों सूर्य उत्तर की ओर बढ़ता है, गर्मी में वृद्धि होती जाती है। मार्च-अप्रैल में दक्षिणी भारत गरम रहता है जबकि मई-जून में उत्तरी भारत। जनवरी से जून तक तापमान में क्रमिक वृद्धि होती है, जबकि जुलाई से दिसम्बर तक यह घटने लगता है। जुलाई जून की भांति उतना गरम नहीं होता।

मानसून की उत्पत्ति

ग्रीष्म में जब सूर्य कर्क रेखा पर *या उसके आसपास लम्बवत* चमकता है तो उत्तरी गोलार्द्ध में एशिया महाद्वीप एवं भारत में प्रचण्ड रूप से गर्मी पड़ती है। परिणामस्वरूप मध्य एशिया में बैकाल झील के आसपास न्यून वायु दाब का एक केन्द्र बन जाता है पर हिमालय के कारण एक दूसरा न्यून वायुदाब का केन्द्र लाहौर के आसपास भी बनता है। इस समय उच्च वायुदाब के क्षेत्र जापान के दक्षिण में प्रशान्त

महासागर तथा आस्ट्रेलिया में होते हैं । जब किसी क्षेत्र विशेष में वायुदाब न्यून हो जाता है तो उस स्थान पर चारों ओर से पवनें आने लगती हैं। चूँकि ये पवनें वाष्प से भरी होती हैं अतः खूब वर्षा करती हैं। इन्हीं पवनों में से दक्षिणी हिन्द महासागर से उठने वाली दक्षिणी-पश्चिमी पवनें भारत में आने के बाद हिमालय को पार नहीं कर पाती अतः यह भारत में ही खूब गर्जन-तर्जन के साथ वर्षा कर देती हैं ।

इसके ठीक विपरीत शीत ऋतु में होता है जब सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में सर्दी के कारण एशिया महाद्वीप के मध्य में बैकाल झील के निकट उच्च वायुदाब का केन्द्र बन जाता है। यहाँ का औसत वायुदाब ७७० मिलीमीटर होता है। इसी प्रकार भारत के सीमान्त पश्चिमी भाग में भी मुल्तान के आसपास उच्च वायुदाब का केन्द्र बनता है। इसका औसत वायुदाब ७६५ मिलीमीटर होता है। अतः समुद्री धरातल पर विशेषत: उत्तरी महासागर और विषुवत् रेखीय प्रदेशों से लेकर दक्षिण तक तुलनात्मक वायुदाब कम रहता है। आस्ट्रेलिया में भी निम्न वायुदाब रहता है क्योंकि इस समय वहाँ गर्मी पड़ती है। अतएव, पवनें स्थल से समुद्र की ओर चलने लगती हैं। यह स्थलीय पवनें उत्तरी-पूर्व स्थायी (N. E. Trades) पवनें होती हैं। शुष्क होने के कारण इन पवनों से वर्षा नहीं होती है। इस समय सारा पूर्वी और दक्षिणी एशिया इन पवनों द्वारा प्रभावित होता है।

मानसूनी भागों में होने के कारण भारतवर्ष वर्ष के कुछ महीनों तक स्थलीय पवनों और कुछ महीनों तक समुद्री पवनों के प्रभाव में रहता है। यह स्थलीय पवनें साधारणतः उत्तरी-पूर्वी स्थायी पवनें होती हैं। समुद्री पवनें दक्षिणी-पश्चिमी मानसून कहलाती हैं जो अधिकतर दक्षिणी गोलार्द्ध में चलने वाली दक्षिणी-पूर्वी स्थायी पवनें ही होती हैं लेकिन विषुवत् रेखा पार करने पर फैरल नियम के अनुसार उनकी दिशा दक्षिण-पश्चिम हो जाती है। भारत के उत्तर में हिमालय और उससे मिली हुई पर्वत श्रेणियों के कारण यहाँ पर चलने वाली पवनों का मध्य एशिया की पवनों से कोई लगाव नहीं रहता। इसलिए भारत की जलवायु एशिया के दूसरे मानसूनी प्रदेशों (चीन, इण्डोचीन, आदि) की जलवायु से भिन्न होती है।

<u>भारतीय मानसूनों की उत्पत्ति के बारे में दो मुख्य तत्त्व ये हैं :</u> (अ) इन मानसूनों की उत्पत्ति का कारण एशिया के विस्तृत स्थल भाग पर बारी-बारी से वायुदाब का निम्न और उच्च होना और उसके निकटवर्ती प्रशान्त और हिन्द महासागर पर विपरीत वायुदाब का पाया जाना है।

इन मानसूनों का मध्यवर्ती एशिया के वायुदाब क्षेत्र के परिवर्तन से कोई सम्बन्ध नहीं है। हिमालय पर्वत मध्य एशिया के निम्न वायुदाब क्षेत्र को अपने दक्षिण स्थित निम्न वायुदाब क्षेत्र से मिलने नहीं देता। भारतीय मानसून के जन्मदाता पश्चिमी भारत और पाकिस्तान में बनने वाले निम्न वायुदाब के क्षेत्र हैं।

मानसून को प्रभावित करने वाली दशाएँ

(१) मई के महीने में यदि हिन्द महासागर में अधिक उच्च वायुदाब हुआ तो उत्तरी भारत में प्रायः प्रतिचक्रवातीय पवनें उत्पन्न हो जाती हैं। फलस्वरूप भूमध्य रेखीय न्यून वायुदाब के कारण मानसून पवनें अधिक संगठित नहीं हो पाती हैं तथा क्षीण हो जाती हैं।

(२) यदि मार्च तथा अप्रैल के महीने में चिली तथा अर्जेण्टाइना में वायुदाब अधिक होता है तो भारतीय मानसून अधिक शक्तिशाली होता है क्योंकि इस वायुदाब से दक्षिणी-पूर्वी स्थायी पवनें अधिक प्रबल हो जाती हैं तथा भूमध्यरेखा को पार करके दक्षिणी-पश्चिमी मानसून की वृद्धि करती हैं।

(३) यदि अप्रैल-मई के महीने में भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में जंजीबार के निकट अधिक वर्षा होती है, तो भारतीय मानसून निर्बल पड जाता है। इन क्षेत्रों में अधिक वर्षा का अर्थ है शान्तखण्ड की पेटी में अधिक तेज संवाहनिक धाराओं का उत्पन्न होना तथा इन धाराओं का दक्षिणी-पश्चिमी स्थायी पवनों के उत्तर की ओर आने में बाधक होना। इसके फलस्वरूप भारतीय मानसून क्षीण हो जाता है।

(४) जिस वर्ष उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में मई के महीने तक हिमपात होता है उस वर्ष वहाँ उच्च वायुदाब की दशाएँ उत्पन्न होने से प्रतिचक्रवातीय पवनें चलने लगती हैं और मानसून क्षीण पड जाता है। इसके विपरीत, जिस वर्ष दक्षिणी गोलार्द्ध में अधिक हिमपात होता है उस वर्ष मानसून अधिक शक्तिशाली होता है।

यदि उपरोक्त दशाएँ विपरीत हुईं तो उनका प्रभाव भी बिलकुल विपरीत होता है।

ऋतुएँ (Seasons)

भारत का उत्तरी भाग शीतोष्ण कटिबन्ध में तथा दक्षिणी भाग उष्ण कटि-बन्ध में है। अतः उत्तरी भारत में तीन ऋतुएँ होती हैं (i) ग्रीष्म ऋतु मार्च के आरम्भ से १५ जून तक, (ii) वर्षा ऋतु १६ जून से सितम्बर के अन्त तक, और (iii) शीत ऋतु अक्टूबर के आरम्भ से फरवरी के अन्त तक। इसके विपरीत दक्षिण भारत में प्रायः वर्षभर एक-सा ही मौसम रहता है और शीत ऋतु नहीं होती। किन्तु वर्ष में सभी ऋतुओं पर मानसूनी प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ता है। अतः वर्ष को शीतकालीन और ग्रीष्मकालीन मानसूनों के अनुसार बाँटा जाता है। भारत सरकार के मौसम कार्यालय ने वर्ष को चार ऋतुओं में बाँटा है

(१) उत्तरी-पूर्वी मानसूनी पवनों का मौसम (N. E. Monsoon Season)

(अ) शीत ऋतु, जो १५ दिसम्बर से १५ मार्च तक रहती है।

(ब) शुष्क ग्रीष्म ऋतु, जो १५ मार्च से जून के आरम्भ होने तक रहती है।

(२) दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पवनों का मौसम (S. W. Monsoon Season)

(अ) वर्षा ऋतु, जो लगभग १५ जून से १५ सितम्बर तक रहती है।

(ब) शरद ऋतु या मानसून प्रत्यावर्तन काल की ऋतु, जो मध्य सितम्बर से दिसम्बर तक रहती है।

शुष्क शीत ऋतु (*Dry Winter Season*)

वायुदाब की दशाएँ—उत्तरी भारत में अक्टूबर से ही आकाश मेघरहित होने लगता है और दिसम्बर तक सम्पूर्ण देश मेघविहीन हो जाता है केवल दक्षिणी-पूर्वी भारत में लौटती मानसून से जो वर्षा होती है उसके कारण कहीं-कहीं मेघ छा जाते हैं। भारत में यह मौसम दिसम्बर से ही प्रारम्भ हो जाता है। चूँकि इस समय सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में होता है वह दिसम्बर के अन्त तक (२२ दिसम्बर) मकर रेखा पर पहुँच जाता है। अतः इस समय एशिया में उच्च वायुदाब की पेटी मध्य एशिया (७७० से ७७२ मिलीमीटर) से उत्तरी-पूर्वी चीन, तिब्बत, मंचूरिया और अरब तथा फारस तक फैल जाती है। भारत के बाहर इस समय उच्च-वायुदाब पेशावर के आस-पास (७६६ मिलीमीटर) बन जाता है। दक्षिण के पठार पर अपेक्षतः वायुदाब उतना अधिक नहीं होता, किन्तु सिन्धु-गंगा के मैदान में एक निम्न वायुदाब क्षेत्र बन जाता है। सारे देश के इस काल में तापमान न्यूनतम रहते हैं। कैण्ड्रयू के अनुसार, "स्वच्छ आकाश, सुहावना मौसम, निम्न तापमान एवं आर्द्रता सर्वोत्तम दैनिक तापान्तर तथा धीमी चलने वाली उत्तरी पवनें" इस ऋतु की प्रमुख विशेषताएँ हैं। भिन्न-भिन्न स्थलों का तापान्तर भिन्न-भिन्न रहता है। कहीं-कहीं पर दैनिक तापान्तर बहुत ही कम होता है किन्तु कहीं-कहीं यह ४४° सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है जैसे मालाबार प्रदेश में तापमान ३° सेण्टीग्रेड होता है जबकि मद्रास में यह अन्तर ६° सेण्टीग्रेड और बंगाल के कुछ भागों में ६° सेण्टीग्रेड तथा पश्चिमी राजस्थान में ६° सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है।

दिसम्बर के मध्य से मध्य एशिया में उच्च वायुदाब होने के कारण पछुआ पवनों की शाखाएँ दक्षिण की ओर मुड़ जाती हैं तथा वे फारस, उत्तरी भारत एवं दक्षिण चीन की ओर बढ़ने लगती हैं। इसी क्षेत्र में इन चक्रवातों से भारत के उत्तरी भागों में बीच-बीच में आकाश की स्वच्छता मेघाच्छन्न स्थिति में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार के चक्रवात एक महीने में ४ से ६ तक आ सकते हैं। यद्यपि इनसे बहुत ही कम वर्षा होती है परन्तु यह वर्षा रबी की फसल के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है। वर्षा कहीं भी १२·५ सेण्टीमीटर से अधिक नहीं होती। पर्वतों के उच्च ढालों पर हिम वर्षा भी होती है। कभी-कभी तो चक्रवातों से सारे उत्तरी भारत में वर्षा होती जाती है और कभी-कभी ये चक्रवात स्थानीय रूप से ही पंजाब एवं कश्मीर में वर्षा करते हैं। आरम्भ में जब चक्रवात आने की सम्भावना होती है तो तापमान धीरे-धीरे बढ़ने लगते हैं परन्तु वर्षा के बाद तापमान कम हो जाते हैं; कुछ स्थानों पर तो तापमान बहुत ही कम बढ़ते हैं किन्तु ऐसा स्थानीय एवं अस्थायी रूप से ही होता है। इस ऋतु में सारे देश के तापमान न्यून रहते हैं। सबसे कम तापमान उत्तरी-पश्चिमी भारत में पाये जाते हैं। यहाँ यह १०° सेण्टीग्रेड तक

पहुँच जाते हैं। पर ज्यों-ज्यों हम पश्चिम और उत्तर से पूर्वी या दक्षिणी भारत में जाते हैं, तापमान बढ़ते जाते हैं। गंगा-सिन्धु के मैदान में तापमान १०° सेण्टीग्रेड से २०° सेण्टीग्रेड तक एवं दक्षिणी भारत में इसी ऋतु में तापमान २१° से ३२° सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाते हैं।

चित्र ४·१
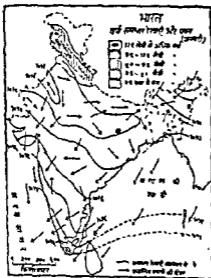
तापमान—सर्दियों में भारत के अधिकांश भागों में महाद्वीपीय पवनें चलती हैं क्योंकि इस समय पेशावर के आसपास के क्षेत्रों में उच्च वायुदाब परिस्थितियों की स्थिति में पहुँच जाता है। ज्यों-ज्यों हम उत्तर से दक्षिण में जाते हैं तापमान बढ़ते जाते हैं। समताप रेखाएँ अक्षांश रेखाओं के समान्तर चलती हैं। शीत ऋतु में साधारणतः सबसे अधिक शीत दिसम्बर एवं जनवरी में पड़ती है। इस समय भारत का औसत उच्चतम तापमान कुछ स्थानों पर २६° सेण्टीग्रेड तक रहता है जबकि उत्तर-पश्चिम में यह केवल १८° सेण्टीग्रेड तक ही रहता है। इसके विपरीत न्यूनतम औसत तापमान दक्षिणी भारत के धुर दक्षिण में २४° सेण्टीग्रेड एवं इससे भी कम हो जाते हैं। पश्चिमी राजस्थान में तो रात्रि का तापमान कई बार हिमांक बिन्दु ०° सेण्टीग्रेड से भी नीचे पहुँच जाता है।

फरवरी के आसपास कैस्पियन सागर एवं तुर्किस्तान प्रदेश की ठण्डी हवाएं भारतीय प्रदेश में प्रवेश कर जाती हैं। कभी-कभी इन ठण्डी पवनों के कारण तापमान नीचे गिर जाते हैं। इसके फलस्वरूप बहुत ही गहरा कुहरा छा जाता है। रात्रि के पिछले पहर ऐसे अवसरों पर बहुत ही शीतल होते हैं। देश के उत्तरी-पश्चिमी भाग पंजाब, कश्मीर, आदि में प्रायः पाला भी पड़ता है लेकिन ज्यों-ज्यों दक्षिण और समुद्र की ओर बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों पाले की मात्रा धीरे-धीरे कम होती जाती है, यहाँ तक कि पश्चिमी बंगाल में (समुद्र के निकट होने से) तथा तमिलनाडु में (विषुवत् रेखा के निकट होने से) पाले का नाम भी सुनायी नहीं पड़ता।

वर्षा—इस मौसम में उत्तरी भागों में उत्तर-पश्चिम से आने वाले चक्रवात

एवं दक्षिण में लौटती हुई मानसूनों द्वारा वर्षा होती है। उत्तरी पश्चिमी भारत में जो चक्रवात चलते हैं उसमें रुक-रुक कर वर्षा होती रहती है। इसी समय दक्षिणी भारत के कोरोमण्डल तट पर भी वर्षा होती है क्योंकि इस दक्षिणी भाग में शान्त खण्ड (Doldrums) आ जाते हैं जिसमें पवनें चक्कर लगाती हैं और यहाँ वर्षा कर देती हैं। यहाँ पर तूफान भी आते रहते हैं। प्रति तीन वर्ष में एक बार तूफान आने की आशा की जाती है जो तमिलनाडु के दक्षिणी तटीय प्रदेशों तक वर्षा कर देते हैं। इस क्षेत्र में दिसम्बर के महीने में २५ सेण्टीमीटर तक वर्षा हो जाती है। यह औसतन १० दिन में होती है जबकि
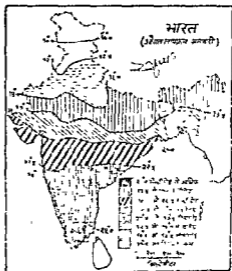
चित्र ४२

कर्नाटक में २·५ सेण्टीमीटर वर्षा एक या दो दिन में ही हो जाती है। उत्तर पश्चिम में या आन्तरिक भागों में तो केवल बूँदा-बूँदी ही होती है।

उत्तरी-पश्चिमी भारत में पश्चिम से आने वाले चक्रवातों से वर्षा होती है। इन चक्रवातों में प्रायः १० में से ६ भूमध्यसागर से ईरान होते हुए आते हैं और शेष मध्य भारत या अरब-सागर में उत्पन्न होते हैं। इनका मार्ग साधारणतः हिमालय पर्वत श्रेणियों के साथ होता है। अस्तु, २१° अक्षांश के दक्षिण के भाग में इनका प्रभाव नहीं पड़ता। ये चक्रवात यूरोपीय चक्रवातों से मिलते-जुलते हैं किन्तु उनकी तरह प्रबल नहीं होते। इनके आने से उत्तरी भारत के तापमान एकदम बढ़ जाते हैं और इनकी समाप्ति पर तापमान गिर जाते हैं। इन चक्रवातों का मार्ग विषुवत्‌रेखीय शान्त खण्डों द्वारा निर्धारित होता है। जब इन खण्डों की स्थिति उत्तर की ओर होती है तो इनका मार्ग उत्तर की ओर अधिक होता है तथा उनमें अरब सागर की पवनें कम होती हैं। इसके विपरीत, जब शान्त खण्ड दक्षिण की ओर स्थित होते हैं तो चक्रवातों का मार्ग भी दक्षिण की ओर अधिक होता है। इस समय चक्रवातों में नम वायु अधिक आ जाती है, अतः इनके द्वारा पर्वतों पर भीषण हिम-वर्षा हो जाती

है। इन चक्रवातों का औसत नवम्बर में २, दिसम्बर से अप्रैल तक प्रति महीने ४-५ और मई में २ का होता है। ये चक्रवात पर्वतों की तलहटी एवं उनके आसपास के मैदानों में वर्षा कर देते हैं। इस प्रकार के चक्रवात महीने में ५ से ६ तक आते हैं परन्तु वर्षा की दृष्टि से सभी की महत्ता एकसमान नहीं है। ये सब एक अनिश्चित अन्तर पर आते रहते हैं। महान हिमालय में इस समय बहुत हिमपात होता है। कुछ हिमपात उप-हिमालय में भी हो जाता है पर शिवालिक की पहाड़ियों पर हिमपात नहीं होता क्योंकि इस समय यहाँ पर बसन्त ऋतु के प्रारम्भिक दिन होते हैं। यदि वर्षा होती भी है तो वह हिमपात के रूप में नहीं होती। जब चक्रवातों का ओर अधिक होता है तो हिमाच्छादित पर्वतों की ठण्डी पवनें भारत के मैदानों में ठण्डी लहर (Cold wave) के रूप में आ जाती है जिससे सर्दी अधिक बढ़ जाती है। कई बार इन तूफानों से ओले भी पड़ते हैं जिनसे फसल को बहुत हानि पहुँचती है।

इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तरी एवं पश्चिमी भारत में वर्षा शिवालिक को मिलाते हुए होती है। यह वर्षा अधिकतर पंजाब एवं पश्चिमी भागों तक तथा कभी-कभी पश्चिमी बगाल एव असम तक भी पहुँच जाती है। कुल मिलाकर इस क्षेत्र में २५ सेमी से कम वर्षा होती है। दिल्ली के निकट इस ऋतु में ५ से ६ सेमी वर्षा हो जाती है किन्तु पूर्व की ओर यह मात्रा कम होती जाती है। बिहार और पश्चिमी बंगाल में यह प्राय नहीं होती। कभी-कभी देश के मध्य भागों एव दक्षिणी पठार के उत्तरी भागों में भी कुछ शीतकालीन वर्षा हो जाती है परन्तु इसी समय दक्षिणी कोरोमण्डल तट पर भी २५ सेमी के आसपास तक वर्षा हो जाती है। इस ऋतु की वर्षा मात्रा में बहुत कम होती है (सम्पूर्ण वर्षा का केवल २%) किन्तु पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश की गेहूँ, जौ, चना, आदि फसलों के लिए बहुत अधिक महत्त्व रखती है।

उष्ण शुष्क ग्रीष्म ऋतु (Hot Dry Summer Season)

वायुदाब की दशाएँ—फरवरी तक सूर्य विषुवत् रेखा के आसपास होता है तथा मार्च के अन्त तक वह कर्क रेखा की ओर आता आरम्भ कर देता है। इस कारण सारे देश में तापमान बढ़ने लगते हैं और वायुदाब में कमी होने लगती है। ठीक इसी समय दक्षिणी हिन्द महासागर, दक्षिणी अफ्रीका एवं आस्ट्रेलिया में भी तापमान गिरते हैं तथा उन क्षेत्रों में प्रतिचक्रवातों का चलना आरम्भ हो जाता है। ज्यों-ज्यों सूर्य कर्क रेखा की ओर बढ़ता जाता है त्यों-त्यों निम्न वायुदाब उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ने लगता है। मार्च में देश के सर्वाधिक तापमान ४०° सेण्टीग्रेड दक्षिणी भारत में पाये जाते हैं जबकि अप्रैल में मध्य प्रदेश, गुजरात एवं सिन्धु के डेल्टा में उच्चतम तापमान ४१° सेण्टीग्रेड और बीकानेर में ४६° सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। जून में अधिकतम तापमान दक्षिणी पंजाब में पाये जाते हैं। इससे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि ज्यों-ज्यों गर्मी का मौसम बढ़ता है त्यों-त्यों निम्न वायुदाब का केन्द्र सूर्य के साथ-साथ पश्चिमोत्तर भाग में मरुस्थल होने से खिसकता

जाता है। मरुस्थल के अतिरिक्त इस समय नागपुर के निकट पठारी क्षेत्रों में भी एक निम्न वायुदाब का केन्द्र बन जाता है।

मार्च से मई तक (जबकि तापमान बढ़ते हैं तथा निम्न वायुदाब की दशाएं बनती रहती हैं), पवनों की दिशा एवं मार्ग में बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। इस समय तक शीतकालीन मानसूनी पवनों की दिशाएं परिवर्तित हो जाती हैं तथा उनके निकटवर्ती स्थलों और समुद्रों में स्थानीय पवनें चलने लगती हैं। उत्तरी भारत में दिन में पश्चिमी पवनें तेज रहती हैं जबकि रात्रि को यही पवनें शिथिल पड़कर अनिश्चित दिशा में बहने लगती हैं। इन गर्म पवनों को लू (Loo) कहते हैं। ये पवनें मैदानों पर दिन में असाधारण गर्मी पड़ने के कारण चलती हैं। जब इन शुष्क पवनों से आर्द्र पवनें मिलती हैं तो भीषण तूफान आते हैं। इनका वेग कभी-कभी ११३ से १२९ किलोमीटर प्रति घण्टा होता है। इनसे वर्षा भी हो जाती है। बंगाल में इन तूफानों को काल-बैसाखी (Norwester) कहते हैं। इसी समय धूल के तूफान उत्तर के शुष्क और उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश में भी आते रहते हैं। इससे बहुत हानि होती है। ये गर्म पवनें दक्षिणी भारत में नहीं चलती क्योंकि वहाँ समुद्री प्रभाव रहता है।
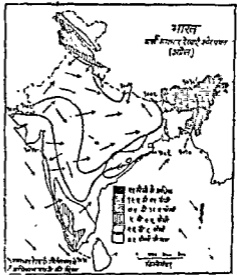
चित्र ४ १

तापमान—इस समय तटीय प्रदेशों में स्थलीय एवं जलीय पवनें चलती हैं। इसके फलस्वरूप वहाँ पर निम्न तापमान पाये जाते हैं जबकि दूसरी ओर आन्तरिक प्रदेशों में पवनें स्थल के एक भाग से दूसरे भाग की ओर चलती हैं। इसके परिणामस्वरूप तटीय प्रदेशों के तापमानों में एवं आन्तरिक प्रदेशों के तापमानों में बहुत ही अन्तर हो जाता है। यही नहीं, दैनिक तापान्तर भी आन्तरिक भागों में अधिक बना रहता है। यह ४° सेण्टीग्रेड अथवा कभी-कभी इससे भी अधिक पहुँच जाता है। किन्तु तटीय प्रदेशों में दैनिक तापान्तर २° सेण्टीग्रेड पहुँचते हैं। ज्यों-ज्यों गर्मी बढ़ती

जाती है क्योंकि निम्न भार के क्षेत्र उत्तरी भारत की ओर बढ़ते हैं इसके फलस्वरूप उत्तर में बड़ी तेजी से तापमान बढ़ने लगते हैं। वैसे तो सारे देश में ही तापमान बढ़ते हैं पर उत्तर में विशेष तौर पर तेजी से बढ़ते हैं। जनवरी में भारत में सर्वोच्च तापमान १८° सेण्टीग्रेड तक रहते हैं। ये मार्च में ३२° सेण्टीग्रेड से भी अधिक हो जाते हैं। सबसे अधिक तापमान श्रीगंगानगर का रहता है (४०° सेण्टीग्रेड)। रात्रि के न्यूनतम तापमान २१° सेण्टीग्रेड के आसपास उत्तरी भारत में और २७° सेण्टीग्रेड से कुछ अधिक दक्षिणी पठार के पूर्वी भागों में रहते हैं। मई में गंगा के निचले मैदानों में तापमान समय-समय पर आने वाले मध्य तूफानों (thunder storms) के कारण अधिक नहीं बढ़ते हैं। इस काल
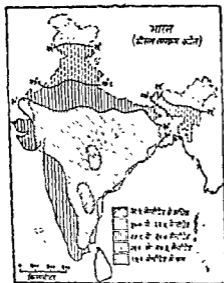
चित्र ४४

में दक्षिणी पंजाब, पश्चिमी राजस्थान और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग सबसे अधिक गरम रहते है। असम, पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश भी इस समय बहुत गरम रहते हैं। किन्तु समुद्र के निकटवर्ती भाग तथा पहाड़ी स्थान इस समय काफी ठण्डे रहते है। पश्चिमी समुद्रतट पर इस समय तापमान २७° से २८° सेण्टीग्रेड रहते हैं। यहाँ दिन में तापमान ३७° सेण्टीग्रेड से ऊंचा नहीं बढ़ता। यहाँ दिन यद्यपि ठण्डा रहता है किन्तु रातें उत्तर की अपेक्षा गर्म रहती है। तापमान का उतार-चढ़ाव भी कम रहता है।

वर्षा—मार्च से मई तक ग्रीष्म ऋतु में सारे भारत में वर्षा या तो होती ही नहीं या यदि होती भी है तो कुछ ही भागों में और वह भी बहुत ही कम मात्रा में (सम्पूर्ण वर्षा का केवल १६%)। मार्च में उत्तरी भारत में पश्चिम से चक्रवात आते हैं। इससे इन प्रदेशों में थोड़ी बहुत वर्षा हो जाती है। इन पवनों के प्रभाव के कारण गंगा के पूर्वी मैदान और उत्तरी-पूर्वी भारत में तूफान आते रहते हैं जो कभी-कभी बड़ी हानि करते हैं। पश्चिमी बंगाल और असम में इस समय समुद्र

की ठण्डी पवनों के स्थल की गर्म पवनों के मिलने से तूफान आते हैं जिन्हें नॉरवेस्टर नामक तूफान कहते हैं। इनसे साधारण वर्षा होती है। इस वर्षा को बसन्त ऋतु की तूफानी वर्षा (Spring storm showers) कहते हैं। असम में मई में इतनी वर्षा हो जाती है कि यह जून की वर्षा की ½ होती है। इन तूफानों से कभी-कभी ओले भी पड़ जाते हैं। दक्षिणी पठार के दक्षिण-पश्चिम में और पूर्व में हल्की-हल्की वर्षा होती है और तूफान भी आते रहते हैं। अप्रैल और मई में इस प्रदेश में वर्षा ७·५ से १२·५ सेण्टीमीटर तक हो जाती है। मालाबार तट के आसपास भी मई में थोड़ी बहुत वर्षा हो जाती है। दक्षिणी भारत की इस वर्षा को आम्र-वर्षा (Mango showers) तथा कहवा उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में कलों वाली बौछार (Blossom showers) कहते हैं। इस वर्षा का आर्थिक महत्त्व दक्षिण की अपेक्षा पश्चिमी बंगाल और असम में अधिक है क्योंकि असम के चाय के बागों में नवीन पत्तियों का पनपना इसी वर्षा के बाद होता है जबकि उत्तरी-पश्चिमी प्रायद्वीप में सारी गर्मी में वर्षा का अभाव रहता है। पवनें शुष्क जलरहित होती हैं तथा मौसम कष्टदायक होता है किन्तु जून के आरम्भ में अचानक बड़ी तेजी से तूफान चलते हैं और मानसून प्रारम्भ हो जाता है। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और असम तथा उनके आसपास के प्रदेशों में इस समय ओला गिराने वाले तूफान (Hailstorms) आते हैं। इनमें मेघ गर्जन और ओले गिरते हैं। इस प्रकार के तूफान दक्षिण भारत के मध्यवर्ती प्रदेशों में भी आते रहते हैं। इन सब प्रदेशों में ज्यों-ज्यों ग्रीष्म ऋतु समाप्त होती जाती है त्यों-त्यों तूफानों की संख्या घटती जाती है। उत्तरी भारत में ये तूफान बहुत ही हानिप्रद होते हैं क्योंकि इनमें छोटे-छोटे पत्थर मिले होते हैं। कभी-कभी तो इन पत्थरों एवं टुकड़ों का व्यास ५ से ६½ सेण्टीमीटर तक होता है। इनके द्वारा न केवल कई बार पशु व मनुष्य ही मर जाते हैं वरन् गेहूँ की खड़ी फसल भी नष्ट हो जाती है।

राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और दक्षिणी पठार के कुछ आन्तरिक भागों में मार्च या मई में (दक्षिणी पठार में) वर्षा होती है शेष समय शुष्क एवं गर्म रहता है। मई के अन्त तक तापमान बढ़ते रहते हैं और वर्षा जून में ही तटीय प्रदेशों में व्यापक रूप से प्रारम्भ हो जाती है।

वर्षा ऋतु (*Rainy Season of the South-West Monsoon*)

वायुदाब की दशाएँ—मई के अन्त तक उत्तरी भारत में पवनों में शुष्कता आ जाती है और धूल के तूफान आने लगते हैं। ठीक इसी समय से सूर्य भी कर्क रेखा पर सम्भवतः चमकने लगता है तथा निम्न वायुदाब का केन्द्रीय क्षेत्र पश्चिम में पंजाब के आसपास बन जाता है। यह क्षेत्र बड़े मैदान तक फैल जाता है। जून के आरम्भ में इस स्थिति के उत्पन्न हो जाने से अचानक ही बड़े मेघ-गर्जन एवं विद्युत-तर्जन के साथ दक्षिणी-पश्चिमी मानसून फट पड़ता है। इस प्रकार मानसून के अचानक फटने (*burst of monsoons*) का मुख्य कारण यह है कि विषुवत्‌रेखीय निम्न वायुदाब की

तुलना में थार के मरुस्थल का निम्न वायुदाब और भी घना हो जाता है। इसके फलस्वरूप दक्षिणी-पूर्वी सन्मार्गी पवनें इन निम्न वायुदाब के केन्द्र तक आने का प्रयास करती हैं। ज्योंही ये पवनें विषुवत् रेखा को पार करती हैं, फैरल के नियमानुसार अपनी दिशा बदल देती हैं और दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के नाम से भारत की ओर बढ़ने लगती हैं।

जिस प्रकार एक निम्न वायुदाब का क्षेत्र थार के मरुस्थल में बन जाता है, उसी प्रकार का एक दूसरा निम्न वायुदाब क्षेत्र नागपुर पठार के आसपास भी बन जाता है। चूँकि यह क्षेत्र एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते, अत. वर्षा भी सभी क्षेत्रों में समान नहीं होती। भारत में मानसूनी वर्षा थोड़े-थोड़े अन्तर से आती है। यह अन्तर कभी-कभी बहुत लम्बा भी हो जाता है। सारी मानसून दो शाखाओं में परिवर्तित होकर वर्षा करती है। पहले यह मानसून बंगाल की खाड़ी की शाखा और बाद में अरब सागरीय शाखा के रूप में देश के आन्तरिक भागों में वर्षा करती है। मानसून जून एवं जुलाई तक बढ़ता ही रहता है और अगस्त तक स्थिर रहता है परन्तु उत्तरी-पश्चिमी भारत में यह सितम्बर के तीसरे सप्ताह में लौटना आरम्भ कर देता है। मानसून के मौसम में (जून से सितम्बर तक) पश्चिमी घाट पर वर्षा २५० सेण्टीमीटर तक हो जाती है, जबकि यही वर्षा पूर्वी घाट पर पहुँचते-पहुँचते ५० से ७५ सेण्टीमीटर तक ही रह जाती है। असम में वर्षा २५० सेण्टीमीटर से भी ऊपर होती है पर पश्चिमी राजस्थान में यह कम होते-होते ५ से १५ सेण्टीमीटर तक या इससे भी कम रह जाती है।

तापमान—ज्यों-ज्यों मानसून वर्षा बढ़ने लगती है त्यों-त्यों तापमान भी कम होने लगता है। जून एवं जुलाई में पश्चिमी मरुस्थल और देश के कुछ दूसरे भागों को छोड़कर सारे देश के तापमान में समानता रहती है किन्तु यदि लम्बे समय तक वर्षा नहीं होती तो बीच-बीच में तापमान बढ़ जाते हैं। उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान ही एकमात्र ऐसा भाग है जहाँ तापमान लम्बे समय तक काफी ऊँचे रहते हैं किन्तु अगस्त या सितम्बर तक वह भी कम हो जाते हैं। जून में देश के कई भागों में तापमान काफी ऊँचे रहते हैं। इसी समय उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान और उत्तर-प्रदेश के कई स्थानों का तापमान ३९° सेण्टीग्रेड या इससे भी अधिक पहुँच जाता है। परन्तु जुलाई में अधिकतम तापमान (४० सेण्टीग्रेड) थार के मरुस्थल में ही मिलता है। अगस्त में तापमान और भी गिर जाता है। ऐसे समय में थार में वायु में आर्द्रता बढ़ जाने के कारण रात्रि को कोहरा एवं ओस गिरती है जिसके फलस्वरूप प्रातःकालीन तापमान काफी नीचे हो जाते हैं परन्तु सितम्बर में इन प्रदेशों के तापमान फिर से बढ़ जाते हैं। सितम्बर में तापमान ३८° सेण्टीग्रेड तक अरावली के पश्चिम में अंकित किये गये हैं। देश के अधिकतर भागों में आर्द्रता ० से

६०% तक होती है किन्तु उत्तरी-पश्चिमी भारत में इस समय आर्द्रता ८०% से भी कम रहती है।

वर्षा—मई-जून में अत्यधिक गर्मी के कारण भारत एवं मध्य एशिया में जो निम्न वायुदाब के केन्द्र बन जाते हैं उनके फलस्वरूप दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पवनें दक्षिणी प्रायद्वीप की स्थिति के कारण दो शाखों में विभक्त हो जाती हैं। इनमें से एक बंगाल की खाड़ी से और दूसरी अरब सागर से देश में घुसती है। बंगाल की खाड़ी का मानसून देश में पहले प्रवेश कर जाता है और अरब सागरीय मानसून लगभग १० दिन बाद। देश में इन्हीं पवनों से बड़ी तेजी से गर्जन-तर्जन के साथ वर्षा होती है। चूँकि यह पवनें हिन्द महासागर के गरम जल के ऊपर होती हुई हजारों किलोमीटर की दूरी से आती हैं अतः इनमें

चित्र ४·५

वाष्प की मात्रा बहुत भर जाती है।[1] इसी कारण जहाँ-जहाँ यह पवनें पहुँचती हैं वहाँ-वहाँ अधिक वर्षा करती हैं।
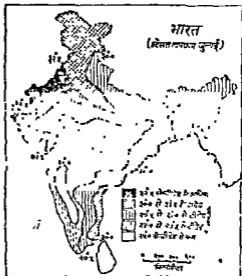
प्रायः देखा गया है कि दक्षिणी-पश्चिमी मानसून का आरम्भ एवं समाप्ति नियत समय पर ही होती है जैसा कि अग्रांकित तालिका से स्पष्ट होगा :

[1] अरब सागर का मानसून (जून से सितम्बर तक) अपने साथ लगभग ७७,००० करोड़ घन मीटर और बंगाल की खाड़ी का मानसून ३४,००० करोड़ घन मीटर नमी अपने साथ लाता है। इस प्रकार १,११,००० करोड़ घन मीटर मात्रा में से २४,००० करोड़ घन मीटर वर्षा के रूप में भारत को मिलता है।
—*Bhagirath*, Vol, XX, No. 2, April 1973, p. 37.

राज्य	वर्षा आरम्भ होने की तिथि	समाप्ति
असम	१ जून	३० अक्टूबर
पश्चिमी बंगाल	१ जून-७ जून	१५ से ३० अक्टूबर
महाराष्ट्र	५ जून-१५ जून	१५ अक्टूबर
दकन का पठार	७ जून	२० अक्टूबर
मध्य प्रदेश	१० जून	२५ अक्टूबर
राजस्थान	१५ जून-३० जून	२० सितम्बर
उत्तर प्रदेश	२५ जून-३० जून	३० सितम्बर
पंजाब	१ जुलाई	१४ से २१ सितम्बर

दक्षिण केरल प्रदेश में मानसून ५ जून के लगभग आरम्भ हो जाता है और धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ता है। बम्बई में यह जून के तीसरे सप्ताह तक तथा उत्तर प्रदेश और पंजाब तथा राजस्थान में जून के अन्तिम सप्ताह या जुलाई के प्रथम सप्ताह तक पहुँच जाता है। बंगाल की खाड़ी का मानसून मध्य बंगाल की खाड़ी से आरम्भ होकर असम में जून के प्रथम सप्ताह तक पहुँचता है। कलकत्ता में यह ७ जून तक पहुँच जाता है।

चित्र ४६
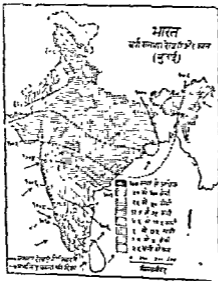
मानसून का चलना दो से चार महीने तक रहता है। लौटते समय यह और भी धीरे-धीरे लौटता है। सामान्यतः उत्तरी-पश्चिमी भारत में यह अक्टूबर के आरम्भ में और देश के शेष भागों से नवम्बर के अन्त तक लौटता है।

मानसून की पहली शाखा अधिक शक्तिशाली होती है क्योंकि बंगाल की खाड़ी की अपेक्षा अरब सागर का विस्तार अधिक है तथा अरब सागर की प्रायः

सारी पवनें भारत की ओर ही आकर्षित होती हैं जबकि बंगाल की खाड़ी की शाखा का थोड़ा ही भाग भारत की ओर आता है, शेष बर्मा, मलयेशिया और थाईलैण्ड की ओर चला जाता है। मार्ग में पश्चिमी घाट के सम्पर्क में आने से इसके द्वारा तटीय भागों में घनी वर्षा होती है। कभी-कभी यह मानसून बड़ी तेजी से आता है। बम्बई में इसकी गति लगभग २१ किलोमीटर प्रति घण्टे होती है किन्तु अन्दर पहुँचने पर इसकी चाल में बहुत कुछ कमी हो जाती है। दूसरी शाखा यद्यपि इतनी शक्तिशाली नहीं होती किन्तु फिर भी देश की मौलिक संरचना के कारण देश के भीतरी भागों में बहुत दूर तक फैल जाती है। इससे हमारे यहाँ ८५ प्रतिशत वर्षा हो जाती है। ये दोनों शाखाएँ मध्य प्रदेश में मिलकर घनघोर वर्षा करती हैं जहाँ एक विस्तृत निम्न वायुदाब क्षेत्र होता है जो सिन्ध के निम्न वायुदाब केन्द्र से दक्षिण-पूर्व की ओर फैला रहता है।

दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के आरम्भ होते ही उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात आने लगते हैं। विशेषकर बंगाल की खाड़ी से उठते हैं और देश के भीतर तक पहुँच जाते हैं। लेकिन जब दक्षिणी-पश्चिमी मानसून अच्छी तरह चलने लगता है तो ये चक्रवात नहीं उठते और अक्टूबर तक इनके उठने की सम्भावना नहीं रहती। प्रायः सभी चक्रवात देश में गंगा, महानदी, गोदावरी तथा कावेरी नदियों के डेल्टाओं से घुसते हैं। इनके द्वारा एक बरसाती दिन में ६५ सेण्टीमीटर तक वर्षा हो जाती है जो बाढ़ों का कारण बन जाती है। अरब सागर की अपेक्षा बंगाल की खाड़ी से उठने वाले चक्रवात अधिक बड़े होते हैं। ये सबसे अधिक बंगाल की खाड़ी में जुलाई से नवम्बर तक आते हैं जबकि अरब सागर में ये मई, जून और नवम्बर में आते हैं। मानसून का प्रारम्भिक काल इन तूफानों के लिए उपयुक्त समय होता है। १८९१ से लगाकर १९६० तक बंगाल की खाड़ी में ३१४ और अरब सागर में ८२ तूफान आये जिनमें से क्रमशः १०० और ४८ तूफान बड़े भयंकर थे।[1]

अरबसागरीय शाखा (Arabian Sea Current)

सबसे पहले पश्चिमी घाट से सीधी टकराती है। (जो इसके मार्ग में पड़ते हैं)। यहाँ इसे अनिवार्यतः ९०० से २,१०० मीटर की ऊँचाई तक चढ़ना होता है। इस चढ़ाव के कारण यह असाधारण मात्रा में ठण्डी हो जाती है, अतः पश्चिमी घाट और पश्चिमी तट के मैदानों में वर्षा अधिक होती है (लगभग २५० सेण्टीमीटर के)। पश्चिमी घाट को पार करते समय इसकी नमी कम हो जाती है क्योंकि दक्षिण के पठार की ओर उतरने पर यह गरम हो जाती है। इसीलिए शुष्क हो जाने के कारण पठार के भीतरी भागों में वर्षा कम होती है क्योंकि यहाँ स्पष्ट वृष्टिछाया का क्षेत्र बन जाता है। अस्तु, पश्चिमी समुद्र तट पर कोजीकोड में २५० सेण्टीमीटर वर्षा

[1] *Das, P. K., The Monsoons, 1968, p 114.*

होती है और मंगलौर में ३३० सेण्टीमीटर। बम्बई में जून से सितम्बर मास १८८ सेण्टीमीटर वर्षा होती है और महाबलेश्वर में जुलाई के महीने में २५० सेण्टीमीटर तथा मानसून के कुल ५ महीनों में ६५० सेण्टीमीटर से भी अधिक वर्षा होती है। इसके विपरीत महाबलेश्वर से १०५ किलोमीटर दूर पूर्व में सोतारा में केवल ५५ सेण्टीमीटर और पूना में केवल ५० सेण्टीमीटर ही वर्षा होती है। अधिक दक्षिण और पूर्व की ओर बढ़ने पर यह मात्रा और भी घट जाती है। पूलिया में ५५ सेण्टीमीटर, बलारी में ४५ सेण्टीमीटर और मद्रास में ४० सेण्टीमीटर। इसी प्रकार दक्षिण में इलाइची की पहाड़ियों के वृष्टिछाया प्रदेश में स्थित निम्नवर्ती में वर्षा बहुत कम हो जाती है। जून से सितम्बर तक केवल ७ सेण्टीमीटर ही वर्षा होती है।

बम्बई के उत्तर में इस मानसून का भाग नर्मदा और ताप्ती नदियों की घाटी में होता हुआ मध्य प्रदेश में कुछ वर्षा कर छोटा नागपुर में पहुँचता है। यहाँ लगभग १२५ सेण्टीमीटर वर्षा हो जाती है। यहाँ से यह बंगाल की शाखा से मिल जाती है। अरब सागर की मानसून का एक भाग सिन्धु के डेल्टा और राजस्थान को लाँघता हुआ यहाँ बिना वर्षा किये सीधा हिमालय पर्वत से जा टकराता है और वहाँ धर्मशाला के निकट अधिक वर्षा करता है। इसके द्वारा सिन्धु और पश्चिमी राजस्थान में २५ सेण्टीमीटर से भी कम वर्षा होती है। इसका कारण यह है कि: (१) यह भाग प्रमुख मानसूनी पवनों के मार्ग से दूर पड़ते हैं। (२) यह भाग अधिक गर्म और अधिक समतल हैं किन्तु इन पवनों को रोकने वाला कोई पर्वत नहीं है। (३) फारस और बलूचिस्तान से आने वाली शुष्क पवनें मानसूनी पवनों से मिलकर उनकी नमी को कम कर देती हैं। केवल अरावली पर्वत पर, जो इस मैदान के एक कोने पर स्थित है, लगभग १२७ सेण्टीमीटर वर्षा हो जाती है, और (४) उत्तर तथा थार के मरुस्थल में उत्तर-पूर्व में वह पवन पहुँचती है जो गंगा के मैदानों की अपनी यात्रा में सारी नमी छोड़ आती है और जब यह पवन पंजाब में उतरती है तो उतार के कारण और भी ठण्डी हो जाती है। अतः थार मरुभूमि इस दूसरी मानसून शाखा से भी वर्षा प्राप्त नहीं कर पाती।

राजस्थान के पश्चिमी भागों में कभी-कभी इस ऋतु में वर्षा ही नहीं होती और जब कभी होती है तो वह भी हल्की बौछारों के रूप में। कभी-कभी सहसा बिजली की कड़क के साथ दोपहर के बाद थोड़े समय में ४ से ७ सेण्टीमीटर जल बरस जाता है और छोटी नदियों में बाढ़ें उत्पन्न कर देता है। खम्भात की खाड़ी से उत्तर-पश्चिम की ओर चलने पर वर्षा की मात्रा निरन्तर कम होती है। अहमदाबाद में ७६ सेण्टीमीटर और भुज में ३८ सेण्टीमीटर ही वर्षा होती है।

बंगाल की खाड़ी का मानसून (Bay of Bengal Monsoon)

यह बंगाल की खाड़ी से चलकर बर्मा की पहाड़ियों से जा टकराता है और इन पर्वत तटीय मैदानों में अत्यन्त वेग से वर्षा करता है। अक्याब में ७६० सेण्टीमीटर

से भी अधिक वर्षा होती है जिसमें ४०० सेण्टीमीटर केवल जून से सितम्बर तक बरसता है। इस मानसून की एक शाखा गंगा के डेल्टा से होकर खासी की पहाड़ियों से टकराती है और उसे एकदम १,५०० मीटर की ऊँचाई तक उठना पड़ता है। अधिक ऊँची उठने के कारण इससे चेरापूँजी नामक स्थान पर वर्ष में १,०८७ सेण्टीमीटर के लगभग वर्षा हो जाती है।[1] इसमें से ९५% वर्षा जून से सितम्बर के महीनों में होती है और शेष दिसम्बर से जनवरी तक। इस पहाड़ी श्रेणी को पार करने के बाद मानसून ब्रह्मपुत्र की घाटी और हिमालय की तराई की तरफ चलता है। लेकिन इन भागों में इसकी उठान अधिक न होने के कारण वर्षा कम होती है। यही कारण है कि चेरापूँजी से केवल ४० किलोमीटर दूर शिलांग में २१५ सेण्टीमीटर के लगभग ही वर्षा होती है। सिलहट में २७० सेण्टीमीटर और गौहाटी में ११० सेण्टीमीटर।

इस मानसून का मुख्य भाग पश्चिमी बंगाल में बरसता है और पूर्वी हिमालय के प्रभाव में आने के कारण पर्वतों की तराई में अधिक वर्षा कर देता है। इस मानसून की प्रवाह दिशा बहुधा हिमालय पर्वत की तरफ ही रहती है अतः हिमालय पर्वत से टकराकर पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। चूँकि हिमालय पर्वत बहुत ऊँचे हैं इसलिए यह पवनें उसे पार नहीं कर सकतीं। अतः दक्षिणी ढालों पर बड़े वेग से वर्षा होती है और उत्तरी ढाल शुष्क रहता है। यही कारण है कि शिमला में १५२ सेण्टीमीटर, नैनीताल में २०३ सेण्टीमीटर और दार्जिलिंग में ३१० सेण्टीमीटर से भी अधिक वर्षा होती है परन्तु श्रीनगर में ६५ सेण्टीमीटर, लेह और ल्हासा में (जो इन पर्वतों के उत्तर में हैं) लगभग ५ सेण्टीमीटर वर्षा होती है।

इस मानसून की दूसरी विशेषता यह है कि ज्यों-ज्यों यह पश्चिम की ओर बढ़ती जाती है त्यों-त्यों शुष्क होने के कारण वर्षा भी कम करती जाती है क्योंकि यह नमी वाले स्रोतों से दूर होती जाती है। अतः गंगा और सिन्धु के मैदान के पूर्वी भाग में पश्चिमी भाग की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है। यही कारण है कि बंगाल में १४७ सेण्टीमीटर, उड़ीसा में १२२ सेण्टीमीटर, बिहार में ८६ सेण्टीमीटर, उत्तर प्रदेश में १०७ सेण्टीमीटर वर्षा होती है। पश्चिमी पंजाब में तो ३८ सेण्टीमीटर के लगभग ही वर्षा होती है। इस मानसून द्वारा कलकत्ता में १५७, पटना में ११७, इलाहाबाद में १०७, लखनऊ में १०१, दिल्ली में ६५, हिसार में ४३ और जैकोबाबाद में केवल ७० सेण्टीमीटर वर्षा होती है।

[1] "यहाँ एक वर्ष में तो २,२५० सेण्टीमीटर से भी ऊपर वर्षा हो चुकी है। यह वर्षा इतनी अधिक थी कि इसके द्वारा एक तीन मंजिल का मकान डुबोया जा सकता था। १४ जून, १८७६ को एक ही दिन में यहाँ १०४ सेण्टीमीटर वर्षा हुई थी। १९५८ में चेरापूँजी में ९३७ सेण्टीमीटर और ममीनराम गाँव में (जो शिलांग से ४८ किलोमीटर दूर है) १,१४१ सेण्टीमीटर वर्षा अंकित की गयी।
—Das, P. K., *The Monsoons*, p. 17.

चूंकि मानसून पवनें मुड़कर हिमालय पर्वत के साथ-साथ चलती हैं इसलिए जो स्थान हिमालय पर्वत के समीप स्थित है वहाँ उन स्थानों की अपेक्षा जो दक्षिण की ओर पर्वत से दूर स्थित हैं अधिक वर्षा होती है। यही कारण है कि अम्बाला और मेरठ में ८१, गोरखपुर में १२७, बरेली में ११०, नैनीताल में २०४, शिमला में १५३ और मसूरी में २२३ सेन्टीमीटर से लगभग वर्षा होती है किन्तु वाराणसी में १४३, आगरा में ६८ और ग्वालियर में ५८ सेन्टीमीटर से भी कम वर्षा होती है।

भारतीय वर्षा के स्वरूप

भारत में मानसून के द्वारा होने वाली वर्षा का कुछ पर्वतीय वर्षा (Orographical rains) के रूप में होता है तथा कुछ चक्रवातीय अथवा संवाहनीय वर्षा के रूप में। हिमालय और पश्चिमी घाट के सभी क्षेत्रों में (जहाँ मानसून पवनें पर्वतों को पार करने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं) पवनों के ऊँचे उठने के कारण उनके ठण्डी हो जाने से वर्षा हो जाती है। इस प्रकार की पर्वतीय वर्षा में पवनमुखी ढालों पर पवनविमुखी ढालों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी तट पर स्थित मंगलौर में ३३० सेन्टीमीटर वर्षा होती है जबकि बंगलौर में केवल ८६ सेन्टीमीटर और मद्रास में पूर्वी तट पर केवल १८ सेन्टीमीटर वर्षा होती है। इसी प्रकार जहाँ चेरापूँजी में १,०८३ सेन्टीमीटर से भी अधिक वर्षा होती है वहाँ ४० किलोमीटर दूर शिलांग में वर्षा का औसत केवल २१५ सेन्टीमीटर होता है।

चक्रवातीय वर्षा (Cyclonic Rains) अधिकतर चक्रवातों या तूफानों के कारण होती है। इनमें से कुछ चक्रवात तापमान में स्थानीय अन्तर के कारण उत्पन्न होते हैं और कुछ अन्य पड़ोसी देशों से उठकर भारत की ओर बढ़ते हैं। चक्रवात अपने-अपने क्षेत्र में वर्षा को केन्द्रीभूत तथा घनीभूत करते हैं, अतः भारत के किसी स्थान विशेष में जब अधिक या कम वर्षा होती है तो उसका कारण चक्रवातों की प्रचण्डता होती है।

संवाहनीय वर्षा (Convectional Rains) स्थानीय गर्मी के कारण होती है। इस गर्मी के कारण आठों पहर जलद मेघ बनते जाते हैं। इस प्रकार की वर्षा प्रायः स्थानीय हो जाती है। यह अधिकतर पतझड़ या बसन्त ऋतु में होती है। गर्मी द्वारा वायु में संवाहनीय धाराएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिससे वह ऊपर उठकर ठण्डी हो जाती है और वर्षा कर देती है।

मानसून परिवर्तन का काल (Retreating South-West Monsoon Season)

वायुदाब की दिशाएँ—सितम्बर के समाप्त होते-होते सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में पहुँच जाता है। इसके परिणामस्वरूप जो निम्न वायु-दाब क्षेत्र उत्तर-पश्चिम गोलार्द्ध में बना हुआ था वह समाप्त होने लगता है। अक्टूबर में यह निम्न वायुदाब क्षेत्र बंगाल की खाड़ी की तरफ बढ़ता जाता है अतः मानसून लौटने प्रारम्भ हो जाते हैं पर मानसून

उतनी तेजी से नहीं लौटते जितने तेजी से वे आते हैं। वर्षा की गति पहले धीमी पड़ती है और सितम्बर के अन्त तक उत्तरी मैदानों में बन्द हो जाती है। अब आर्द्र पवनों का स्थान शुष्क पवनें ले लेती हैं और चक्रवातीय परिस्थितियों का स्थान प्रति-चक्रवातीय परिस्थितियाँ ले लेती हैं। दिन और रात का तापक्रमान्तर बढ़ने लगता है। मानसून की प्रगति प्रारम्भ होते समय उत्तर की ओर होती है किन्तु मध्य सितम्बर के बाद लौटते समय यह दक्षिण की ओर हो जाती है। सबसे पहले अरब सागर की शाखा के मानसून पंजाब तथा राजस्थान के भागों से और बंगाल की खाड़ी के मानसून गंगा के ऊपरी डेल्टा से धीरे-धीरे पीछे हटने प्रारम्भ होते हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है निम्न वायुदाब का क्षेत्र भी दक्षिण की ओर खिसकता रहता है। पंजाब से लगभग १५ सितम्बर को उत्तर प्रदेश से १ अक्टूबर को और पश्चिमी बंगाल से १५ अक्टूबर को मानसून लौटने लगता है। ये आन्ध्र प्रदेश से १ नवम्बर, तमिलनाडु से १५ नवम्बर और केरल से १ दिसम्बर को लौटते हैं। इस समय पवन की दिशा दक्षिण-पश्चिम से बदल कर उत्तरी-पूर्वी हो जाती है। इन्हीं पवनों द्वारा तमिलनाडु एवं पठार के कुछ आन्तरिक भागों और पूर्वी तट में सर्वाधिक वर्षा हो जाती है।

इस समय हेमन्त ऋतु का मौसम होता है। मानसून दिसम्बर के प्रारम्भ तक भारत में अनेक प्रभाव बनाता है क्योंकि तमिलनाडु में सर्दियों के प्रारम्भ में जो वर्षा होती है वह इन्हीं कारणों से होती है। इसके बाद दिसम्बर में निम्न वायु क्षेत्र दक्षिणी गोलार्द्ध में सूर्य के साथ-साथ चला जाता है और उत्तरी भारत में भी पश्चिम से पंजाब, हरियाणा एवं गंगा के मैदानों में चक्रवात आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

चित्र ४·७

तापमान—ज्यों-ज्यों उत्तरी भारत से मानसून लौटने लगते हैं त्यों-त्यों उत्तरी-पश्चिमी भागों में तापमान एकदम गिरने जाते हैं। अधिकतम औसत तापमान उतने नहीं गिरते जितने कि न्यूनतम क्योंकि अक्टूबर और नवम्बर में अधिकतम
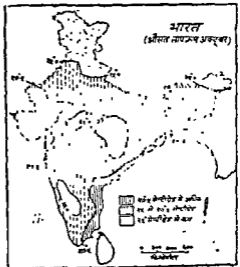
औसत तापमान ३७° सेण्टीग्रेड के आसपास रहते हैं जबकि न्यूनतम तापमान इसी समय १० सेण्टीग्रेड या इससे भी कम हो जाते हैं। एकदम उत्तर में किसी-किसी रात्रि को तापमान ०° सेण्टीग्रेड से भी कम हो जाता है।

वर्षा—अक्टूबर तक वर्षा पश्चिमी उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, एवं कश्मीर के भागों में प्रायः समाप्त हो जाती है। इस समय उत्तरी-पूर्वी भारत में वर्षा हो रही होती है। यहाँ पर भी १० अक्टूबर के बाद वर्षा ऋतु समाप्त हो जाती है। इसी समय अरब सागरीय शाखा दक्षिणी पठार के उत्तरी-पूर्वी भागों से भी नीचे की ओर खिसक जाती है और इन सब भागों में मौसम साफ, आकाश स्वच्छ एवं वर्षारहित रहने लगता है। *इस समय कोरोमण्डल तट पर वर्षा होती है।* जब ये उत्तरी-पूर्वी मानसून पवनें घूमती हुई तट पर टकराती हैं तो तमिलनाडु और बंगाल के डेल्टा के तटीय भागों में वर्षा कर देती हैं। ज्यों-ज्यों हम आन्तरिक भागों में जाते हैं वर्षा एकदम कम होती जाती है। कभी-कभी मालाबार तट पर भी स्थानीय कारणों से वर्षा हो जाती है। नवम्बर में भी कोरोमण्डल तट पर यही स्थिति रहती है। इस मौसम में दक्षिणी भारत में तमिलनाडु के आसपास वर्षा ६८ से ७६ सेण्टीमीटर तक हो जाती है परन्तु ज्यों-ज्यों हम आन्तरिक भागों की ओर जाते हैं वर्षा एकदम कम होती जाती है। यदि हम बंगलौर से डिब्रूगढ़ तक एक रेखा खींचें तो उसके पश्चिम में वर्षा २२ सेण्टीमीटर से भी कम होती है।

इस काल की वर्षा का अधिकांश १२° उत्तरी अक्षांश के दक्षिण में उत्पन्न हुए चक्रवातों से आता है जबकि सूर्य की गति दक्षिण की ओर हो गयी है। ये चक्रवात जब किसी बड़े भू-भाग को पार करते हैं तो बिल्कुल ही समाप्त हो जाते हैं या बहुत ही क्षीण हो जाते हैं किन्तु जब तक इनका केन्द्र बिन्दु सागर के ऊपर रहता है तो सागर तट पर इनके द्वारा भयंकर हानि हो सकती है। ये चक्रवात बंगाल की खाड़ी से उठकर प्रायद्वीप को पार कर अरब सागर तक जाते हैं। इनके द्वारा कभी-कभी समुद्र में बड़ी-बड़ी ज्वार तरंगें (Tidal waves) उठती हैं जिनके द्वारा तट के निकट के निम्नस्थ क्षेत्रों को बड़ी क्षति पहुँचती है।
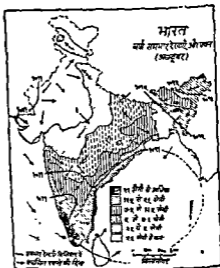
चित्र ४·८

केण्ड्रयू के कथनानुसार, "यह एक बड़ी मनोरंजक बात है कि भारत के किसी न किसी भाग में वर्ष के प्रत्येक महीने में वर्षा हो जाती है। जनवरी-फरवरी में शीतकालीन चक्रवातों से उत्तरी भारत में वर्षा हो जाती है। मार्च में मेघ-गर्जन के साथ भीषण वायु पश्चिमी बंगाल और असम में अधिकतर चलने लगती है और उससे जून तक (जबकि मानसून आरम्भ होता है) भारी वर्षा होती रहती है। फिर सामान्य मानसूनी वर्षा अक्टूबर तक होती रहती है और नवम्बर-दिसम्बर में मानसून के लौटते समय तमिलनाडु एवं पूर्वी तट पर भारी वर्षा हो जाती है।"[1]

निम्नांकित तालिका में कुछ स्थानों की औसत वर्षा बतायी गयी है :

कुछ स्थानों की औसत वार्षिक वर्षा

स्थान	इंचों में	सेण्टीमीटर में
१	२	३
मंसूरी	८६·६०	२२२·५
दार्जिलिंग	१२६·४२	३२१·१
शिलांग	८४·६४	२१५·०
शिमला	६१·०४	१५५·०
चेरापूंजी	४२५·२३	१,०८०·१
आगरा	२६·७४	६७·९
अलीगढ़	३०·८४	७८·४
नई दिल्ली	२६·३४	६६·६
इलाहाबाद	४१·८२	१०६·२
कानपुर	३५·९१	९१·२
पटना	४६·६९	११८·६
वाराणसी	४०·९७	१०४·१
कलकत्ता	६२·९८	१६०·०
जयपुर	२४·०२	६१·०
बीकानेर	११·४७	२९·१
उदयपुर	२८·००	७०·०
अजमेर	२०·७७	५२·८
जोधपुर	१४·२१	२६·१
कोटा	२९·५४	७५·०
अहमदाबाद	२९·२१	७४·२
नागपुर	४९·२४	१२५·१
हैदराबाद	२९·४२	७४·७

[1] Kendrew, W. G., *Climate of the Continents*, 1941, p. 138.

१	२	३
मैसूर	३१·१८	७९·२
भोपाल	५२·२१	१३२·६
इन्दौर	३४·७२	८८·२
उटकमण्ड	५४·८९	१३९·४
पूना	२६·४९	६७·३
बंगलौर	३४·०८	८६·८
मद्रास	४९·९२	१२६·८
तिरुवनन्तपुरम	६६·७९	१६९·६
कटक	५९·९७	१५२·३
मंगलौर	१२९·५९	३२९·२
बम्बई	७१·२१	१८०·३
पुरी	५३·६६	१३६·३

भारतीय वर्षा की विशेषताएँ (Chief Features of Rainfall)

(१) भारत की सम्पूर्ण वर्षा का ७५ प्रतिशत भाग ग्रीष्म ऋतु (जून से सितम्बर तक) में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से होता है। शीत ऋतु का मानसून भारत के लिए विशेष महत्त्व नहीं रखता। दक्षिणी-पश्चिमी मानसून काल (जून-सितम्बर) में देश की सम्पूर्ण वर्षा का ७४% मानसून उपरान्त काल (अक्टूबर-दिसम्बर) में १३%, शीतकालीन मानसून काल (जनवरी-फरवरी) में ३% और पूर्व मानसून काल (मार्च-मई) में १०% वर्षा होती है।[1]

(२) ग्रीष्म में होने वाली वर्षा विश्वासजनक नहीं होती। किसी-किसी वर्ष कहीं तो ऐसी घनघोर वर्षा हो जाती है कि जिससे भयानक बाढ़ों का सामना करना पड़ता है लेकिन कभी-कभी उन्हीं स्थानों पर उन्हीं समयों में इतनी कम वर्षा होती है कि वहाँ अकाल का सामना करना पड़ता है। १८६६ का अकाल इसी प्रकार की अनावृष्टि का ही फल था। पिछले ८ वर्षों से बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश के अनेक भागों में बिलकुल या अत्यन्त कम वर्षा होने से अकाल पड़ रहे हैं।

(३) किसी वर्ष तो वर्षा निश्चित समय से पूर्व ही आरम्भ हो जाती है और निश्चित समय से पूर्व ही समाप्त भी हो जाती है जिससे खरीफ की फसल को बड़ी हानि उठानी पड़ती है और रबी की फसल को बोने में भी कठिनाई पड़ती है। १८८३ में पश्चिमी बंगाल में एक महीने पूर्व ही मानसून पीछे हट गयी थी जिससे खेती नष्ट-

[1] Ministry of Agriculture, *Indian Agriculture in Brief*, 1973, p 19.

भ्रष्ट हो गयी । सन् १६५६ में पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी पंजाब में मानसूनो से भीषण वर्षा होने से नदियों की बाढ़ों द्वारा अकथनीय हानि हुई ।

(४) वर्षा का वितरण भी समान नहीं है । किन्हीं-किन्हीं भागो मे तो वर्षा २५० सेण्टीमीटर से अधिक हो जाती है किन्तु कुछ भागो मे १३ सेण्टीमीटर से भी कम होती है । सम्पूर्ण देश के ११% भाग मे १६० सेण्टीमीटर से अधिक वर्षा होती है; २१% भाग में १२५ से १६० सेण्टीमीटर तक; ३७% भाग मे ७६ से १२५ सेण्टीमीटर तक, २४% भाग मे ३८ से ७६ सेण्टीमीटर तक और ७% भाग मे ७६ सेण्टीमीटर से भी कम वर्षा होती है ।[1]

(५) वर्षा लगातार नहीं होती वरन् कुछ दिनों के अन्तर से रुक-रुककर हुआ करती है । कभी-कभी तो यह अन्तर जुलाई और अगस्त के महीने में बहुत लम्बा हो जाता है जिससे किसानों को बड़ी हानि उठानी पड़ती है क्योंकि फसलें सूख जाती हैं ।

(६) किन्हीं भागो में वर्षा बड़ी तेज पड़ती है और कहीं बिलकुल ही बौछारों के रूप मे होती है । भारी वर्षा का सम्बन्ध बंगाल की खाड़ी की ओर से आने वाले चक्रवातो से सम्बन्धित होता है । एक ही दिन में ५० सेण्टीमीटर वर्षा हो जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है । बिहार मे पूर्णिया में एक ही दिन में ८६ सेण्टीमीटर तक वर्षा होने का आलेख है । नैलोर जैसे सूखे भाग में भी २४ घण्टो में ५७ सेण्टीमीटर वर्षा होने के समाचार मिले हैं । प्रत्येक बरसाती दिन की औसत वर्षा असम और पश्चिमी घाट में २ ५ सेण्टीमीटर, बगाल और उत्तर प्रदेश में १·५ सेण्टीमीटर, कर्नाटक और दक्षिणी प्रायद्वीप में १ सेण्टीमीटर और राजस्थान के शुष्क भागो मे ½ सेण्टीमीटर वर्षा का अंकन किया गया है । चेरापूंजी में १८० दिन में १,१२० सेण्टीमीटर और श्रीगंगानगर में १० से १२ दिनों मे १२ सेण्टीमीटर हो वर्षा हुई है । इसलिए कहा जाता है "It pours, it never rains in India."[2] अत जब वर्षा अधिक तेजी से गिरती है तो वर्षा का जल भूमि का क्षरण कर उसे कृषि के अयोग्य बना देता है ।

(७) कुल वर्षा की लगभग ८०% वर्षा जून से सितम्बर के महीनों में होती है अर्थात् वर्षा का प्रायः दो-तिहाई भाग सूखा ही रह जाता है । इस सूखे काल में फसलों की सिंचाई करनी पड़ती है ।

(८) पहाड़ों के पवनमुखी ढालो पर उनके विमुख ढालों की अपेक्षा कम वर्षा होती है ।

(६) भारत में वर्षा के दिन बहुत कम होते हैं; जैसे मद्रास में ५५ दिन, बम्बई में ७५ दिन, कलकत्ता में ११८ दिन और अजमेर में ४५ दिन ।

[1] *Census of India Report* for 1951.
[2] Kuriyan. G., *India : A General Survey*, 1969, p. 63.

(१०) भारत के विशाल क्षेत्रों में वर्षा की अनियमितता बहुत है। उदाहरण के लिए, राजस्थान में जहाँ वर्षा केवल १२ सेण्टीमीटर होती है अनियमितता ३० प्रतिशत है, परन्तु कानपुर में जहाँ ६० सेण्टीमीटर वार्षिक वर्षा होती है वहाँ अनियमितता केवल २०% है। कलकत्ता में १६० सेण्टीमीटर वर्षा होती है तो अनियमितता केवल ११% है। मानसून की सबसे कम अनियमितता उत्तरी-पूर्वी भारत में होती है। इन भागों में वर्षा सामान्यतः औसत से १०% भीतर ही होती है।[1] वर्षा की अनियमितता अधिकतम और न्यूनतम वर्षा
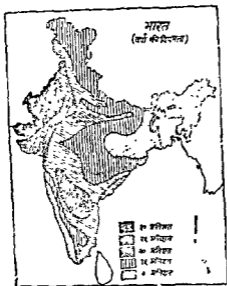
चित्र—४·६

क्षेत्रों में महत्वपूर्ण नहीं होती क्योंकि अधिकतम वर्षा के क्षेत्रों में सदैव ही फसलों के लिए पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार शुष्क क्षेत्रों में फसलें उगाने के लिए सिंचाई के साधनों की समुचित व्यवस्था की जाती है किन्तु अन्य क्षेत्रों में वर्षा न होने से भारी क्षति पहुँचती है। ऐसे क्षेत्र देश के मध्यवर्ती भागों में स्थित हैं जहाँ साधारणतया वर्षा ५० से १०० सेण्टीमीटर तक होती है। यही भारत के प्रमुख अकाल का क्षेत्र (Famine Zones) कहलाते हैं। यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि एक ओर जहाँ कड्प्पा, कर्नूल, अनन्तपुर (आन्ध्र प्रदेश) तथा राजस्थान के पश्चिमी जिलों में सूखा पड़ता है, वहीं दूसरी ओर तमिलनाडु में बाढ़ आती है।

भारत में वर्षा का वितरण

सम्पूर्ण भारत में वर्षा का वितरण समान नहीं है कहीं अधिक और कहीं कम। भारत की वर्षा का औसत १०७ सेण्टीमीटर (४२") अर्थात् हमारे यहाँ प्रति एकड़ भूमि पीछे एक लाख मन जल गिरता है।[2] कभी-कभी तो इस सामान्य औसत

[1] Parthasarthy, K., *Monsoons of the World*, Indian Meteorological Department, New Delhi, 1958, p. 185.

[2] *Census of India Report* for 1951, Vol. I, Pt. I, A. p. 10

भारत
(औसत वार्षिक वर्षा)
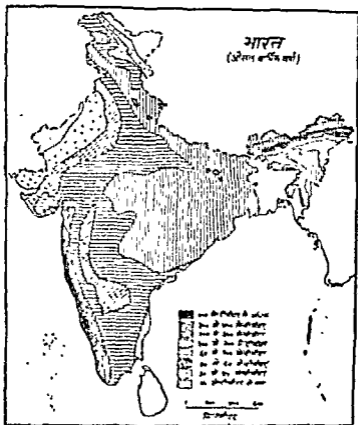
वार तट, पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल और नर्मदा की ऊपरी घाटी सम्मिलित किये जाते हैं।

(२) अनिश्चित वर्षा वाले प्रदेश (Regions of Uncertainty)—इन प्रदेशों के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश, पश्चिमी और उत्तरी राजस्थान, उत्तर प्रदेश का सीमावर्ती भाग, मध्य राजस्थान का पठारी भाग, महाराष्ट्र और गुजरात के भाग, पूर्वी घाट के ढालों के अतिरिक्त सम्पूर्ण तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश का दक्षिणी और पश्चिमी भाग, कर्नाटक, बिहार और उड़ीसा के कुछ जिले हैं।

डॉ० स्टाम्प के अनुसार वर्षा का सामान्य वितरण इस प्रकार है :

(१) अधिक वर्षा वाले भाग—इसमें पश्चिमी तट के कोंकन, मालाबार और दक्षिणी कनारा तथा उत्तर में हिमालय की दक्षिणवर्ती तलहटी में उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, असम, नागालैण्ड, अरुणाचल, मिजोराम, मनीपुर तथा त्रिपुरा सम्मिलित हैं। अधिक जलवृष्टि के कारण इन क्षेत्रों में उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन मिलते हैं। इन क्षेत्रों की मुख्य उपज धान है तथा वर्षा की मात्रा २०० सेण्टीमीटर (८०") से अधिक होती है।

(२) साधारण वर्षा वाले भाग—इस क्षेत्र के अन्तर्गत पश्चिमी घाट के पूर्वोत्तर ढाल और पश्चिमी बंगाल के दक्षिण-पश्चिम में उड़ीसा, बिहार, दक्षिणी-पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं तराई के समान्तर उत्तर प्रदेश और पंजाब की संकीर्ण पेटी है। यहाँ वर्षा १०० से २०० सेण्टीमीटर (४०" से ८०") तक होती है। इस क्षेत्र में वर्षा की विषमता १५ से २० प्रतिशत तक रहती है। मानसूनी वन प्रदेश इन क्षेत्रों में ही मिलते हैं। मानसूनों के देर में आने से चावल की फसल को बड़ी हानि उठानी पड़ती है। पश्चिमी भागों में गेहूँ प्रमुख उपज है। गन्ना एवं तिलहन भी खूब पैदा किया जाता है। इसी क्षेत्र में अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि से अकाल आते हैं। अतः बड़ी-बड़ी सिंचाई की योजनाएँ कार्यान्वित की गयी हैं।

(३) न्यून वर्षा वाले भाग—साधारण वर्षा वाले क्षेत्र के बीच में दक्षिण के पठार से लेकर गुजरात, समस्त मध्य प्रदेश, उत्तरी और दक्षिणी आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, पूर्वी राजस्थान एवं दक्षिणी पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में वर्षा ५० से १०० सेमी० (२०" से ४०") तक होती है। वर्षा की मात्रा न केवल अपर्याप्त ही है वरन् अनिश्चित भी है। वर्षा की विषमता २० से २५ प्रतिशत तक रहती है अतएव सही अर्थ में ये क्षेत्र अकाल क्षेत्र हैं। यहाँ सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ती है और उसी के सहारे ज्वार, बाजरा, कपास, तिलहन एवं गेहूँ पैदा किया जाता है।

(४) अपर्याप्त वर्षा वाले भाग—उपरोक्त क्षेत्र के पश्चिम में राजस्थान में वर्षा की मात्रा ५० सेण्टीमीटर (२०") से भी कम होती है। तमिलनाडु का रायलसीमा भी ऐसा ही क्षेत्र है। इन क्षेत्रों में बहुत ही कम वर्षा होने से सिंचाई के सहारे ही फसलें पैदा की जा सकती हैं।

जलवायु का भारत के आर्थिक जीवन पर प्रभाव
(INFLUENCE OF CLIMATE ON THE ECONOMIC LIFE OF INDIA)

भारत की जलवायु की कुछ विशेषताएँ हैं जिनका भारत के आर्थिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। शायद ही किसी देश में वर्षा जीवन पर इतना अधिक प्रभाव डालती हो जितना भारत मे क्योंकि ७०% जनता भरण-पोषण के लिए खेती पर निर्भर रहती है जो स्वयं दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पर आधारित है। वास्तव में "मानसून वह धुरी है जिस पर भारत का समस्त जीवन-चक्र घूमता है क्योंकि वर्षा का अभाव खेती को नष्ट ही नहीं कर देता अपितु किसान एव देश की आर्थिक स्थिति को भी डाँवाडोल कर देता है। सच पूछिए तो मानसून हमारा वह माली है जिसके प्रताप से हमारी भारत वसुन्धरा शस्यश्यामला कहलाती है। मानसून के कारण ही श्री इकबाल के शब्दों मे, *"गोदी में खेलती हैं इसकी हजारों नदियाँ, गुलशन जिसके दम में रहते जहाँ हमारी।"* अन्य प्रभाव इस प्रकार हैं :

(१) शीतकाल मे भी भारतवर्ष का तापमान बहुत नीचा नहीं होता वरन् प्रत्येक भाग मे यथेष्ट गर्मी रहती है। इस कारण कृषि कार्यों के लिए अधिक समय मिलता है। अधिकांश भागों में पाला और कुहरा भी नहीं गिरता। इस कारण भारत शीतकाल में शीतोष्ण कटिबन्ध की फसलें उत्पन्न कर सकता है और गर्मियों मे उष्ण कटिबन्ध तथा अर्द्ध-उष्णकटिबन्ध की फसलें उत्पन्न की जा सकती हैं।

(२) ग्रीष्मकालीन तापमान ऊँचे होते हैं और अचानक बढ़ जाते हैं। अतः फसलें भी भारत मे शीघ्र पक जाती हैं। शीघ्रता से पकने के कारण वे घटिया होती हैं। अतः भारत गुणात्मक (qualitative) उत्पादक नहीं वरन् परिमाणात्मक (quantitative) उत्पादक देश माना जाता है। यह बात सर्दी और गर्मी दोनों ही फसलों के लिए लागू होती है क्योंकि दोनों ही फसलों के पकने का समय गर्मियों में ही आता है।

(३) अधिकांश वर्षा जून, जुलाई और अगस्त के महीनों में होती है। इससे ज्वार, बाजरा, मकई, आदि की फसलें शीघ्र ही तैयार हो जाती है। इन दिनों के गर्म और नम जलवायु के कारण पौधों की बढ़ाकर और उत्पत्ति अधिक होती है जिससे पशुओं को यथेष्ट चारा मिल जाता है।

(४) देश में वर्षा कुछ ही महीनों तक सीमित रहती है। इस कारण वर्ष का शेष भाग शुष्क रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि यहाँ घास के मैदान नहीं पाये जाते। जो कुछ भी घास वर्षा के दिनों में उगती है वह वर्षा के उपरान्त धूप की तेजी से जल जाती है। इस कारण भारत में चारे की कमी रहती है और जो कुछ भी चारा होता है वह घटिया होता है इसीलिए पशुओं को सूखे समय में जमा किया हुआ चारा खिलाना पड़ता है।

(५) भीषण गर्मी के उपरान्त वर्षा के आने से बहुत-से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ भागों में मलेरिया का भीषण प्रकोप होता है। जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ मलेरिया के कारण जनसंख्या की कार्यक्षमता नष्ट हो जाती है। इसी तरह वर्षा-काल में तथा अप्रैल में प्रवाहिका, हैजा, चेचक, आदि बीमारियाँ भीषण रूप से फैलकर बच्चों की मृत्यु संख्या में वृद्धि करती हैं।

(६) गर्मी और नमी होने के कारण वर्षा के दिनों में बीमारियों की ही वृद्धि नहीं होती वरन् मनुष्य में आलस्य और पुरुषार्थहीनता भी उत्पन्न होती है। इससे उत्पादन कार्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु यह बुरा प्रभाव केवल उन्हीं प्रदेशों में दिखायी देता है जहाँ वर्षा अधिक होती है।

(७) भारत में वर्षा बहुत ही अनिश्चित होती है। किसी वर्ष वर्षा बहुत कम होती है और सूखा पड़ जाता है और फसलें नहीं होतीं तथा दुर्भिक्ष पड़ जाता है। दूसरे वर्ष वर्षा अधिक होने से नदियों में बाढ़ें आ जाती हैं उससे भी फसलों को हानि पहुँचती है। इस कारण भारतीय ग्रामीण निराशावादी और भाग्यवादी बन गया है। वर्षा की कमी के कारण ही भारत सरकार के वित्त विभाग का बजट 'मानसून का जुआ' (Gamble in Monsoons) समझा जाता है, क्योंकि अकाल पड़ने पर लगान वसूली बन्द हो जाती है और उल्टे सरकार को अकाल-पीड़ितों की सहायता करनी पड़ती है।

(८) वर्षा केवल तीन महीनों तक ही रहती है और वह भी अनिश्चित। इस कारण शीतकाल में फसलें उत्पन्न करने के लिए सिंचाई की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। यही कारण है कि भारतवर्ष की खेती सिंचाई पर बहुत कुछ निर्भर है और खेती के लिए सिंचाई का यहाँ इतना महत्त्व है कि प्राचीनकाल से ही भारत में सिंचाई के विभिन्न साधन व्यवहृत किये जा रहे हैं।

(९) मानसूनी जलवायु का ही यह प्रभाव है कि भारत में विभिन्न प्रकार की फसलें पैदा की जाती हैं, अन्यथा वर्षा के समान वितरण होने से विभिन्न प्रकार की फसलों के स्थान पर कुछ ही फसलें सभी क्षेत्रों में पैदा की जातीं। वर्षा के इस विषम वितरण के कारण ही यहाँ विभिन्न प्रकार की कृषि—आर्द्र कृषि, सिंचित कृषि तथा शुष्क कृषि की जाती है।

(१०) अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बाढ़ों के कारण अपार धन-जन एवं फसल, पशुओं, और रेलमार्गों तथा सड़कों की हानि होती है। इसी प्रकार तूफानी या वज्र-पाती वर्षा के कारण खड़ी हुई फसलों और पशुओं को भी भारी हानि उठानी पड़ती है।

भारत के जलवायु विभाग

सन् १९३१ में प्रो० विलियमसन और क्लार्क ने भारत के जलवायु सम्बन्धी विभागों का वर्णन किया था। यह विभाजन वर्षा के आधार पर १३ भागों में किया

गया। डॉ० स्टाम्प और प्रो० कैण्ड्रयू ने भी वर्षा के आधार पर भारत का विभाजन किया है। यह विभाजन काफी प्रचलित है। इसके आधार पर भारत को दो मोटे भागों में बाँटा गया है और इनको पुनः उपविभागों में। पहला भाग उत्तरी या महाद्वीपीय भारत और दूसरा भाग दक्षिणी या उष्णकटिबन्धीय भारत है।

डॉ० स्टाम्प और कैण्ड्रयू का विभाजन

दक्षिणी प्रायद्वीप कर्क और विषुवत् रेखाओं के मध्य में स्थित है अतएव इस भाग की जलवायु उष्ण कटिबन्ध जैसी है। यहाँ तापमान सदैव ऊँचा रहता है और तापमान का मौसमी अन्तर प्रायः नहीं के बराबर रहता है। शीतकाल में तापमान विषुवत् रेखा से निकटता और सामुद्रिक प्रभावों द्वारा निर्धारित होते हैं। यह तापमान २६° से २७° सेण्टीग्रेड के बीच रहते हैं किन्तु ग्रीष्म ऋतु में कर्क रेखा के निकट तापमान ३२° सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाते हैं। इस समय समुद्री तटों पर सामुद्रिक प्रभावों के कारण सम-जलवायु (Equable climate) और मेघाच्छन्नता पायी जाती है। समुद्र के धरातल से ऊँचाई तथा समुद्र से निकटता के कारण कुछ स्थानीय विभिन्नताएँ भी पायी जाती हैं। जनवरी में समताप रेखाएँ दक्षिण की ओर झुकी पायी जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पूर्वी तट के शीतकालीन तापमान पश्चिमी तट की अपेक्षा अधिक गर्म रहते हैं। मालाबार तट पर तापक्रमान्तर केवल ३° सेण्टीग्रेड रहता है, जबकि दक्षिणी-पूर्वी तमिलनाडु में यह लगभग ८° सेण्टीग्रेड तक रहता है। पठारी प्रदेश में वर्षा साधारण किन्तु तटीय भागों में २०३ सेण्टीमीटर तक होती है।

उत्तरी भारत कर्क रेखा के उत्तर में स्थित है किन्तु इस भाग की जलवायु सब भागों में एकसमान नहीं है। पश्चिमी भाग में (मुख्यतः पंजाब और राजस्थान) गर्मी का मौसम बहुत गरम और जाड़े की ऋतु बहुत ठण्डी होती है तथा वायु में वाष्प की मात्रा बहुत ही कम होती है। इसके विपरीत पूर्वी प्रदेश में बंगाल, असम, बिहार, और पूर्वी उत्तर प्रदेश में शीतकाल कम ठण्डा और गर्मियों में कम गर्म होता है तथा वायु में सदैव ही नमी बनी रहती है। उत्तरी भारत में ग्रीष्मकाल के तापमान पर इन बातों का प्रभाव पड़ता है. (i) सूर्य की सीधी किरणें, (ii) समुद्र से दूर होने के कारण स्थल का प्रभाव, (iii) प्रतिचक्रवात जो निरन्तर तापमान को ऊँचा बनाये रखते है; (iv) वर्षा लाने वाली दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पवनों के आने से तापमान में कमी हो जाना। गर्मी के मौसम में भारत में अधिकतम तापमान दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश और राजस्थान में रहते हैं। जाड़े के मौसम में सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने के अतिरिक्त यहाँ चलने वाले प्रतिचक्रवात भी तापमान को निर्धारित करते हैं। शीतकालीन तापमान १३° से १८° सेण्टीग्रेड के बीच रहते हैं और जून में ३२° से ३८° सेण्टीग्रेड के बीच में। वर्षा पश्चिमी भागों में ७६ सेण्टीमीटर से कम किन्तु पूर्वी भागों में २५४ सेण्टीमीटर से भी अधिक होती है।

उपर्युक्त दोनों भागों को जनवरी के तापमान (१८° सेण्टीग्रेड की समताप रेखा) एवं वर्षा की मात्रा के आधार पर कई उप-विभागों में बाँटा जा सकता है। ये उप-विभाग इस प्रकार हैं :

(क) महाद्वीपीय भारत कर्क रेखा के उत्तर में फैला है। इसके अन्तर्गत निम्नांकित उप-विभाग हैं :

(१) हिमालय प्रदेश,
(२) उत्तरी-पश्चिमी पठार,
(३) उत्तरी-पश्चिमी शुष्क मैदानी प्रदेश,
(४) मध्यम वर्षा का प्रदेश,
(५) अधिक एवं मध्यम वर्षा के मध्य का भाग,

(ख) उष्ण-कटिबन्धीय भारत कर्क रेखा के दक्षिण में स्थित है। इसके निम्नांकित उप-विभाग हैं :

(६) अत्यधिक वर्षा का प्रदेश,
(७) अधिक वर्षा का प्रदेश,
(८) मध्यम वर्षा वाला प्रदेश,
(९) पश्चिमी समुद्रतटीय प्रदेश (कोंकन तट),
(१०) पश्चिमी समुद्र तट (मालाबार तट),
(११) तमिलनाडु तट।

(क) महाद्वीपीय भारत

(१) हिमालय प्रदेश (Himalayan Region)—यह प्रदेश भारत के उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक लगभग २,४०० किलोमीटर की लम्बाई में फैला है। विभिन्न ऊँचाइयों पर तापमान में विभिन्नता पायी जाती है। २,४३८ मीटर तक शीतकाल का तापमान ४° सेण्टीग्रेड से ७° सेण्टीग्रेड तक रहता है और ग्रीष्म ऋतु में १३° से १८° सेण्टीग्रेड तक। औसत तापमान १३° सेण्टीग्रेड रहता है किन्तु पश्चिमी हिमालय प्रदेश में यह हिमांक बिन्दु से नीचे भी गिर जाता है। मसूरी तथा शिमला जैसे नगरों में शीत ऋतु में हिम गिरना एक साधारण-सी बात है। बंगाल की खाड़ी से उठने वाले मानसून से असम से उत्तर प्रदेश की तराई तक २०० सेण्टीमीटर वर्षा हो जाती है। हिमाचल प्रदेश के हिमालयी प्रदेश में चक्रवातों द्वारा पर्याप्त वर्षा हो जाती है। पश्चिमी हिमालय प्रदेश का प्रतिनिधि नगर शिमला एवं पूर्वी हिमालय का दार्जिलिंग है।

(२) उत्तरी-पश्चिमी पठार (North-Western Plateau)—यह प्रदेश सतलज नदी के उत्तर-पश्चिम में है। इसकी भूमि पठारी और शुष्क है। शीतकाल में इसका तापमान १६° सेण्टीग्रेड से कम रहता है। कहीं-कहीं तो तापमान हिमांक बिन्दु से भी नीचे हो जाता है। ग्रीष्म ऋतु में औसत तापमान २४° सेण्टीग्रेड तक रहता है। यहाँ वर्षा बहुत कम होती है अर्थात् ३८ सेण्टीमीटर से भी कम। अधिकतर वर्षा चक्रवातों द्वारा होती है। अमृतसर इस भाग का प्रतिनिधि नगर है।

(३) उत्तरी-पश्चिमी शुष्क मैदानी प्रदेश (*North-West Dry Lowlands*) के अन्तर्गत दक्षिणी पश्चिमी, हरियाणा और राजस्थान सम्मिलित हैं। यहाँ तापमान ग्रीष्म ऋतु में ४६° सेण्टीग्रेड से ऊँचा किन्तु जनवरी में १३° से २४° सेण्टीग्रेड तक रहता है। यह प्रदेश शुष्क है। वर्षा २५ सेण्टीमीटर से भी कम होती है। कहीं-कहीं तो १३ सेण्टीमीटर से भी कम होती है। जब कभी वर्षा होती है तो प्राय: बाढ़ें आ जाती हैं। जयपुर इस प्रदेश का प्रतिनिधि नगर है।

(४) मध्यम वर्षा का प्रदेश (Region of Moderate Rainfall) के अन्तर्गत पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मालवा के पठार का पश्चिमी भाग, पूर्वी राजस्थान और दिल्ली हैं। ग्रीष्म के आरम्भिक महीनों (अप्रैल-मई) में इस प्रदेश का तापमान बहुत ऊँचा हो जाता है और अधिकांश भागों में 'लू' चलती है। जनवरी का तापमान १५° से १८° सेण्टीग्रेड के बीच में रहता है तथा जुलाई का तापमान ३२° से ३५° सेण्टीग्रेड तक। ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्मी और शीत ऋतु में पर्याप्त सर्दी पड़ती है। वर्षा का औसत ३८ से ७६ सेण्टीमीटर तक है। ग्रीष्म ऋतु प्राय शुष्क बीतती है। कुछ वर्षा शीतकाल में चक्रवातों से हो जाती है।

(५) अत्यधिक एवं मध्यम वर्षा के मध्य का भाग (Transitional Region) के अन्तर्गत उत्तरी बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश हैं। इसका जनवरी तापमान १६° से १८° सेण्टीग्रेड रहता है। वर्षा का औसत १०० से १५२ सेण्टीमीटर है। इसका लगभग ६०% बंगाल की खाड़ी के मानसून द्वारा प्राप्त होता है। पटना इस प्रदेश का प्रतिनिधि नगर है।

(ख) उष्ण कटिबन्धीय भारत

(६) अत्यधिक वर्षा का प्रदेश (Regions of Very Heavy Rainfall) असम, नागालैण्ड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, मिजोराम, त्रिपुरा और मनीपुर में पड़ता है। इस प्रदेश की जलवायु बहुत नम है। वर्षा ऋतु लम्बी होती है। अधिकतर वर्षा बंगाल की खाड़ी के मानसून द्वारा होती है। औसत वर्षा २५० सेण्टीमीटर से भी अधिक होती है। चेरापूँजी नामक स्थान में १,०८७ सेण्टीमीटर वर्षा हो जाती है। इस प्रदेश का तापमान साधारणतया ऊँचा रहता है *(२७° सेण्टीग्रेड तक)*। शीत ऋतु छोटी होती है। चेरापूँजी इसका प्रतिनिधि नगर है।

(७) अधिक वर्षा का प्रदेश (Region of Heavy Rainfall) के अन्तर्गत पूर्वी पठार और गंगा की घाटी के मध्यवर्ती और निचले भाग सम्मिलित हैं; यथा बंगाल, उड़ीसा, दक्षिणी बिहार और दक्षिणी-पूर्वी मध्य प्रदेश। यहाँ जनवरी का तापमान १८° से २४° *सेण्टीग्रेड तक और मई का तापमान २९° से ३५° सेण्टीग्रेड तक* रहता है। वर्षा की मात्रा पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण कम होती जाती है। वर्षा १०० से २०० सेण्टीमीटर तक होती है जिसका कुछ भाग शीत ऋतु में बंगाल की खाड़ी से उठने वाले चक्रवातों द्वारा प्राप्त होता है। नागपुर और कलकत्ता इस प्रदेश के प्रतिनिधि नगर हैं।

(८) मध्यम वर्षा वाला प्रदेश (Region of Moderate Rainfall) में गुजरात, सौराष्ट्र तथा दक्षिणी मध्य प्रदेश से लेकर कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश तक स्थित पूर्वी तथा पश्चिमी घाट के पहाड़ों के बीच का क्षेत्र सम्मिलित है। यह प्रदेश पश्चिमी घाट के वृष्टि-छाया में आ जाने के कारण साधारण वर्षा प्राप्त करता है। यहाँ वर्षा ७६ सेण्टीमीटर से अधिक नहीं होती। यहाँ ग्रीष्मऋतु में साधारण गर्मी और शीतऋतु में मामूली सर्दी पड़ती है। मई का औसत तापमान ३२° सेण्टीग्रेड और जनवरी का १८° से २४° सेण्टीग्रेड रहता है। हैदराबाद इस प्रदेश का प्रतिनिधि नगर है।

(९) पश्चिमी समुद्रतटीय प्रदेश (Western Coast Region) नर्मदा से आरम्भ होकर गोआ तक फैला है। समुद्र के निकट होने के कारण यह प्रदेश उससे प्रभावित रहता है। जनवरी में तापमान २४° सेण्टीग्रेड से नीचे नहीं गिरता। औसत तापमान २४° सेण्टीग्रेड से २७° सेण्टीग्रेड तक रहता है। वार्षिक ताप-परिसर ३° सेण्टीग्रेड से थोड़ा ही अधिक रहता है। वर्षा यहाँ २०० सेण्टीमीटर से अधिक हो जाती है। यह अरब सागर के मानसून से होती है। बम्बई यहाँ का प्रतिनिधि नगर है।

(१०) पश्चिमी तट का दक्षिणी प्रदेश (मालाबार) यह प्रदेश गोआ से लगाकर कुमारी अन्तरीप तक फैला है। यहाँ के स्थानों में वर्षा ५०० सेण्टीमीटर तक होती है। यह प्रधानत: दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से होती है। यहाँ का वार्षिक औसत तापमान २७° सेण्टीग्रेड तक रहता है। वार्षिक ताप-परिसर ३° सेण्टीग्रेड रहता है। इसलिए इस प्रदेश को विषुवत्रेखीय जलवायु की श्रेणी में रखा जाता है। त्रिवेन्द्रम इस प्रदेश का प्रतिनिधि नगर है।

(११) तमिलनाडु का तट प्रदेश में जनवरी का तापमान २४° सेण्टीग्रेड रहता है तथा वार्षिक ताप-परिसर ३° सेण्टीग्रेड से कुछ ही अधिक रहता है। वर्षा की मात्रा १०० से १५० सेण्टीमीटर तक होती है, किन्तु इसका अधिकांश नवम्बर-दिसम्बर में लौटते हुए उत्तरी-पूर्वी मानसून द्वारा प्राप्त होता है। मद्रास इस प्रदेश का प्रतिनिधि नगर है।

कुछ अन्य विद्वानों ने जलवायु प्रदेशों के अनुसार भारत को इस प्रकार बाँटा है :

कोपेन का वर्गीकरण (Koepen's Classification)

ब्लादिमिर कोपेन ने वनस्पति के आधार पर विश्व को अनेक जलवायु प्रदेशों में बाँटा था। इनके अनुसार वनस्पति के द्वारा ही किसी स्थान पर तापमान और वर्षा का प्रभाव ज्ञात किया जा सकता है। इन्होंने अपने वर्णन में सांकेतिक शब्दों का प्रयोग किया है। भारत को इन्होंने निम्न जलवायु विभागों में बाँटा है

(१) Amw या अधिक वर्षा वाले जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश में मानसूनी पवनों द्वारा ग्रीष्म ऋतु में अधिक वर्षा होती है तथा शुष्क ऋतु अपेक्षतया छोटी होती है। इनमें उष्णकटिबन्धीय सदाबहार वन मिलते हैं। मालाबार तट तथा पश्चिमी

घाटों के दक्षिणी-पश्चिमी भागों में यही जलवायु प्रदेश मिलते हैं। यहाँ २०० सेण्टीमीटर तक वर्षा होती है।

(२) Aw या उष्णकटिबन्धीय सवाना जलवायु प्रदेश—इन प्रदेशों में ग्रीष्म ऋतु में तेज गर्मी पड़ती है तथा वर्षा भी अधिकतर ग्रीष्म में ही होती है। शुष्क ऋतु शीतकालीन होती है। यहाँ सवाना महत्त्व वनस्पति तथा मानसूनी वन मिलते हैं। अधिकांश गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिणी मध्य प्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी तमिलनाडु, उड़ीसा, दक्षिणी-पश्चिमी बंगाल और दक्षिणी बिहार इस जलवायु प्रदेश में सम्मिलित किये जाते हैं।
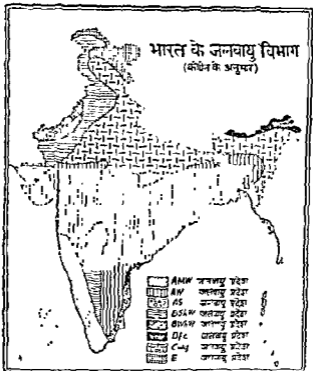
चित्र—४·११.

(३) As या शीतकालीन वर्षा वाले जलवायु प्रदेश—इन भागों में शीत ऋतु में मानसूनों से वर्षा होती है। ये क्षेत्र दक्षिण-पूर्वी तटों पर ही स्थित हैं।

(४) Bshw जलवायु प्रदेश—यह अर्द्ध-शुष्क प्रदेश है जिसमें वर्षा ग्रीष्म ऋतु में साधारण तथा शुष्क ऋतु में बिल्कुल नहीं होती। वनस्पति मुख्यतः स्टैपी प्रकार की है तथा कटीदार झाड़ियाँ और घासें पैदा होती हैं। अरावली के पश्चिमी ढालों तथा कर्नाटक के कुछ भागों में इस प्रकार के जलवायु प्रदेश मिलते हैं।

(५) Bwhw जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश में शुष्क उष्ण मरुस्थलीय जलवायु की दशाएँ पायी जाती हैं। वर्षा बहुत ही कम होती है। किन्तु वाष्पीभवन क्रिया अधिक होती है। राजस्थान का पश्चिमी क्षेत्र इसी प्रदेश के अन्तर्गत आता है।

(६) Dfc जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश में शीत ऋतु अधिक ठण्डी होती है। वर्ष के चार महीने तापमान १०° सेण्टीग्रेड से भी कम रहता है। ग्रीष्म ऋतु छोटी किन्तु वर्षा वाली होती है। हिमालय प्रदेश के पूर्वी भाग में इसी प्रकार की जलवायु मिलती है।

(७) Cwg जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश में शीत ऋतु में मौनसूनी पवनों से वर्षा नहीं होती है। यह ग्रीष्म ऋतु के कुछ ही महीनों तक सीमित होती है। साधारणतः वर्षा ऋतु में वर्षा शुष्क ऋतु की अपेक्षा दस गुनी अधिक होती है। उत्तरी भारत के बड़े मैदान तथा मालवा के पठार इस प्रदेश में सम्मिलित किये जाते हैं।

(८) E जलवायु प्रदेश—इसमें शीत कटिबन्धीय जलवायु की दशाएँ मिलती हैं। ग्रीष्म ऋतु का तापमान १०° सेण्टीग्रेड से कम होता है। सम्पूर्ण उत्तरी कश्मीर एवं लद्दाख क्षेत्र इस प्रदेश में आते हैं।

(९) Et जलवायु प्रदेश—हिमालय प्रदेश में पश्चिमी और मध्यवर्ती भागों में अधिक ऊँचाई के कारण सदा बर्फ जमी रहती है। तापमान ०° सेण्टीग्रेड के बीच पाये जाते हैं। वर्षा हिमपात के रूप में होती है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होगा कि Cwg और Aw जलवायु विभागों के मध्य की रेखा ही महाद्वीपीय भारत एवं उष्ण कटिबन्धीय भारत को विभाजित करने वाली उस रेखा के समान है जो काजी अहमद, डॉ० स्टाम्प तथा नारमड द्वारा प्रस्तुत की गयी है।

थॉर्नवेट का वर्गीकरण (Thornwaite's Classification)

थॉर्नवेट महोदय ने भी अपने विभाजन में विभिन्न सांकेतिक शब्दों का उपयोग किया है। इसका आधार भी वनस्पति है। यह उपर्युक्त वर्गीकरण से अधिक मान्य है क्योंकि इसमें वर्षा की मात्रा के अतिरिक्त वाष्पीभवन की मात्रा को भी दृष्टिगत रखा गया है। तापमान और वर्षा के मौसमी एवं मासिक वितरण का भी इस वर्गीकरण में ध्यान रखा गया है। किन्तु यह विभाजन अधिक जटिल हो गया है क्योंकि इसमें भूमध्य रेखा से लगाकर ध्रुवों तक की सभी जलवायु भारत में मिलती हुई बताई गयी है। थॉर्नवेट के अनुसार भारत के जलवायु प्रदेश ये हैं :

(१) AA'r जलवायु प्रदेश—इसमें तापमान एवं वर्षा सालभर ही अधिक रहती है। यहाँ उष्ण कटिबन्धीय वनस्पति मिलती है। मालाबार तटीय प्रदेश, गंगा के डेल्टा के पूर्वी भाग एवं असम के दक्षिणी भाग इस प्रदेश में सम्मिलित किये जाते हैं।

(२) BA'w जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश में गर्मियाँ तर और सर्दियाँ शुष्क रहती हैं। पश्चिमी घाट और पश्चिमी बंगाल के पूर्वी भाग इसी प्रदेश में पड़ते हैं।

(३) B'Bw जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश में ग्रीष्म ऋतु लम्बी एवं वर्षायुक्त तथा शीत ऋतु छोटी और शुष्क होती है। असम में यह जलवायु मिलती है।
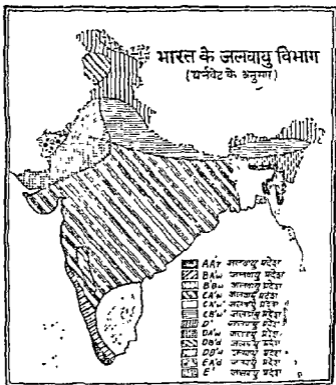
चित्र—४'१२

(४) CA'w जलवायु प्रदेश—इस प्रकार के प्रदेश अधिकांश प्रायद्वीप एवं उत्तर के बड़े मैदान के दक्षिणी और पूर्वी भागों में हैं। यहाँ वर्षा ग्रीष्म ऋतु में

होती है, शीत ऋतु प्रायः शुष्क रहती है और सवाना वनस्पति तथा मानसूनी वन पाये जाते हैं।

(५) CA'w' जलवायु प्रदेश—यहाँ उष्ण-कटिबन्धीय न्यून वर्षा वाले भाग हैं जिनमें वर्षा शीतकाल में होती है। वनस्पति का रूप घास के मैदान होते हैं। मद्रास के दक्षिण-पूर्वी तटीय प्रदेश इसी के अन्तर्गत हैं।

(६) CB'w जलवायु प्रदेश—ये प्रदेश लम्बी ग्रीष्म ऋतु और अधिक वर्षा वाले तथा छोटी शुष्क शीतकाल वाले होते हैं। यहाँ भी घास के मैदानों की सी वनस्पति पायी जाती है। उत्तरी मैदान के दक्षिणी भाग में पूर्व से पश्चिम फैली पेटी में ये प्रदेश पाये जाते हैं।

(७) D' जलवायु प्रदेश—इनमें तापक्रम ग्रीष्म ऋतु में अधिक नहीं बढ़ पाते। शीतकाल सुहावना होता है। वर्षा ग्रीष्म ऋतु में ही होती है। हिमालय प्रदेश के निचले भागों में पूर्व से पश्चिम तक ऐसे ही प्रदेश मिलते हैं।

(८) DA'w जलवायु प्रदेश—इन प्रदेशों में ग्रीष्मकालीन तापमान ऊँचे रहते हैं, वर्षा कम होती है तथा अर्द्ध-मरुस्थलीय वनस्पति पायी जाती है। कच्छ, प० राजस्थान तथा उसके दक्षिणी और पूर्वी भाग इसी प्रदेश में सम्मिलित किये जाते हैं।

(९) DB'd जलवायु प्रदेश—इनमें भी ग्रीष्म ऋतु लम्बी एवं शीत ऋतु छोटी होती है। वर्षा बहुत ही कम तथा ग्रीष्म में होती है। यहाँ अर्द्ध-मरुस्थलीय वनस्पति मिलती है। पश्चिमी घाट के वृष्टि छाया प्रदेश ऐसे ही भाग हैं।

(१०) DB'w जलवायु प्रदेश—यहाँ शीत ऋतु छोटी और शुष्क किन्तु ग्रीष्म ऋतु लम्बी और वर्षा वाली होती है। यहाँ भी कँटीली झाड़ियाँ एवं अर्द्ध-मरुस्थलीय वनस्पति मिलती है। राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी एवं पंजाब और हरियाणा के दक्षिण-पश्चिमी भाग इसी प्रदेश में आते हैं।

(११) EA'd जलवायु प्रदेश—यह अत्यन्त गर्म और शुष्क भाग है। राजस्थान का मरुस्थल ही ऐसा क्षेत्र है।

(१२) E' जलवायु प्रदेश—यहाँ टुण्ड्रा की भाँति अधिक ठण्डे तापक्रम पाये जाते हैं। वर्षा हिमपात के रूप में होती है। कश्मीर के उत्तरी भाग इसी प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं।

ट्रिवार्था का वर्गीकरण (Trewartha's Classification)

प्रो० ट्रिवार्था ने डॉ० कोपेन द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण में संशोधन कर अपना अन्य वर्गीकरण दिया है। यह वर्गीकरण बड़ा सरल और बोधगम्य है। इसके अनुसार भारत में निम्न जलवायु प्रदेश मिलते हैं,

इस वर्गीकरण में जलवायु के चार प्रमुख विभाग किये गये हैं क्रमशः A, B, C और H। इन्हें फिर ७ उप-विभागों में बाँटा गया है

(iii) C जलवायु विभाग अर्द्ध-उष्णकटिबन्धीय तट जलवायु है जिसमें सबसे ठण्डे महीने का तापमान ०° सेण्टीग्रेड से १८° सेण्टीग्रेड तक रहता है। इसका उपविभाग अर्द्ध-उष्णकटिबन्धीय तट क्षेत्र है जिसमें शीतकाल शुष्क होता है।

(iv) H जलवायु पर्वतीय क्षेत्रों की जलवायु सूचित करती है। इसका विवरण निम्न प्रकार है :

(१) Am जलवायु प्रदेश—ये वे प्रदेश हैं जिनमें औसत वार्षिक तापमान २७° सेण्टीग्रेड से अधिक और वर्षा २५० सेण्टीमीटर से भी अधिक होती है। वे ऐसे प्रदेशों में सम्मिलित किये जाते हैं—पश्चिमी तटीय क्षेत्र, असम के दक्षिणी भाग, त्रिपुरा एवं बंगाल के दक्षिणी भाग।

(२) Aw जलवायु प्रदेश—इनका औसत तापमान २७° सेण्टीग्रेड तथा वर्षा १०० सेण्टीमीटर के लगभग होती है। वर्षा ग्रीष्म काल में ही होती है। वनस्पति सवाना किस्म की मिलती है। प्रायद्वीपीय भारत का अधिकांश क्षेत्र इसी प्रदेश में है।

(३) Bsh जलवायु प्रदेश—इनमें औसत तापमान २७° सेण्टीग्रेड तक तथा वर्षा ५० से १०० सेण्टीमीटर तक होती है। ये अर्द्ध-शुष्क प्रदेश हैं जिनमें घास के मैदान पाये जाते हैं। इसी में गुजरात और राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग तथा पूर्वी भाग सम्मिलित हैं।

(४) Bwh जलवायु प्रदेश—इन प्रदेशों में तापमान अधिक ऊँचे और वर्षा प्रायः बहुत ही कम होती है। वनस्पति मरुस्थलीय एवं काँटों वाली होती है। थार का मरुस्थल इसी क्षेत्र में है।

(५) Bs जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश में औसत तापमान २७° सेण्टीग्रेड से अधिक तथा वर्षा ग्रीष्म ऋतु में ही होती है। वर्षा का औसत १०० सेण्टीमीटर से कम का होता है। प्रायद्वीप के घाट वाले वृष्टिछाया प्रदेश में ये प्रदेश फैले हैं। वनस्पति घास के मैदानों सदृश्य है।

(६) Caw जलवायु प्रदेश—ये अर्द्ध-उष्ण आर्द्र प्रदेश हैं जिनमें पश्चिमी भागों में वर्षा कम तथा शीत ऋतु में चक्रवातीय वर्षा होती है। पंजाब से असम तक के क्षेत्र इसी भाग में हैं।

(७) H जलवायु प्रदेश—यहाँ तापमान काफी कम, वर्षा शीत काल में हिमपात के रूप में और ग्रीष्म काल में मानसूनों से होती है। कश्मीर के उत्तरी-पूर्वी भाग इसमें सम्मिलित किये जाते हैं।

5

मिट्टियाँ
(SOILS)

मिट्टियाँ भारतीय कृषक की अमूल्य सम्पदा हैं जिस पर देश का सम्पूर्ण कृषि उत्पादन निर्भर करता है। अमरीकी मिट्टी विशेषज्ञ डॉ० बेनेट के अनुसार, "मिट्टी भू-पृष्ठ पर मिलने वाले असगठित पदार्थों की वह ऊपरी पर्त है जो मूल चट्टानो अथवा वनस्पति के योग से बनती है।" मिट्टियो का निर्माण जलवायु तथा चट्टानो के विखण्डन के फलस्वरूप होता है जिनमें अनेक प्रकार के रासायनिक तत्त्व पाये जाते हैं। फलत. विभिन्न जलवायु मे और विभिन्न चट्टानों से बनी मिट्टियो में न तो एकरूपता ही पायी जाती है और न सबकी उर्वरा शक्ति ही एकसी होती है।

मिट्टियो का वर्गीकरण अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानो ने किया है जिनमें श्री विश्वनाथ और ऊकील, डॉ० चटर्जी, डॉ० वाडिया, डॉ० कृष्णन और मुकर्जी तथा श्रीमती चोकाल्स्काया रूसी महिला प्रमुख हैं। परम्परागत दृष्टि से भारतीय मिट्टियों का वर्गीकरण कछारी, लाल, रेगड़, लैटराइट, आदि मिट्टियो के रूप में किया गया है। भारतीय कृषि अनुसन्धानशाला के रॉय चौधरी और मुकर्जी ने भारतीय मिट्टियो को निम्न श्रेणी में बाँटा है :

(१) नदियो द्वारा लायी गयी मिट्टी, (२) नदियो द्वारा लायी गयी वह मिट्टी जिसमें खनिज नमक भी मिले रहते हैं, (३) तटीय प्रदेशों की बलुही मिट्टी जो नदियों द्वारा लायी गयी है, (४) नदी की तलहटियों की पुरानी मिट्टी, (५) डेल्टा प्रदेश की नमकीन मिट्टी, (६) चूना मिली हुई मिट्टी, (७) गहरी काली मिट्टी, (८) माध्यमिक काली मिट्टी, (९) छिछली चिकनी दोमट, (१०) लाल व काली मिट्टी का मिश्रण, (११) लाल दोमट, (१२) लाल बलुही मिट्टी, (१३) मिश्रित लाल दोमट बलुही मिट्टी, (१४) ककरीली मिट्टी, (१५) तराई की मिट्टी, (१६) पहाड़ो की मिट्टी, (१७) दलदली मिट्टी, (१८) पीट मिट्टी, और (१९) मरुस्थली मिट्टी।

इस विभाजन मे एक ही प्रकार की मिट्टी को कई उपविभागो मे बाँट दिया गया है अतः इनके आधार पर प्रादेशिक वितरण निर्धारित करना असम्भव-सा हो जाता है।

चट्टानों के आधार पर भारतीय मिट्टियों का विभाजन

किसी स्थान की मिट्टी में उन पैतृक चट्टानों के गुण पाये जाते हैं जिनसे इसकी उत्पत्ति हुई है। अतः भारत के भूगर्भशास्त्रियों ने विभिन्न चट्टानों को ही भारतीय मिट्टियों का मूलाधार माना है। उनके अनुसार भारतीय मिट्टियों की उत्पत्ति निम्न प्रकार की चट्टानों से हुई है :

(१) अति प्राचीनकाल की रवेदार और परिवर्तित चट्टानें जो अधिकांशतः मारत के पठारी भाग पर पायी जाती हैं, जैसे ग्रेनाइट, नीस, रवेदार, शिस्ट आदि। इनमें लोहे और मैंगनीज के कण पर्याप्त मात्रा में मिले रहने से जो मिट्टी जलवायु सम्बन्धी कारणों से इन चट्टानों की टूट-फूट से बनी है उनका रंग स्वतः ही लाल होता है। वर्षा के दिनों में इनका ह्यूमस नष्ट हो जाता है और गर्मियों में केशाकर्षण छिद्रों द्वारा लोहा ऊपर आ जाता है।

चित्र—५'१

(२) कड़प्पा और विन्ध्य युग की चट्टानें बड़ी पुरानी होने के कारण पूर्णतः परिपक्व हो चुकी हैं अतः इनसे बनने वाली मिट्टी भी पूर्णावस्था को प्राप्त कर चुकी है। इनमें बारीक बलुही और अधिक क्षारीय मिट्टियाँ बनी हैं।

(३) गोंडवाना काल की चट्टानें भारतीय प्रायद्वीप में मुख्यतः नदियों की घाटियों और प्राचीनकाल के छिछले जल अवशेषों में मिलती हैं जिनमें नदियों द्वारा लाये गये पदार्थ, बालू, आदि अवसाद जम गये हैं। इन चट्टानों से बनी मिट्टी अभी पूरी प्रकार परिपक्व नहीं हो पायी है तथा वह रवेदार और अनुपजाऊ होती है। सामान्यतः यह मिट्टियाँ पतली तह वाली, बलुही और क्षारयुक्त होती हैं जिनमें ह्यूमस की मात्रा कम होती है। इन प्रदेशों में निकृष्ट भूमियाँ (Bad lands) पायी जाती हैं।

(४) दक्कन ट्रैप प्राचीनकाल के ज्वालामुखी उद्गार के समय दक्षिणी पठार के एक बड़े भाग पर पृथ्वी के गर्भ से निकले हुए द्रव और ठोस पदार्थों के जम जाने से बनी चट्टानें हैं। इनमें लोहे और मैंगनीज के अंश अधिक पाये जाते हैं। फलतः इनसे जो मिट्टी बनी है वह काले रंग की तथा अधिक उपजाऊ होती है।

(५) प्रायद्वीप के बाहरी भागों में टर्शरी और मध्य-जीव युग से बनी चट्टानें मुख्यतः पहाड़ियों के ऊपरी भागों और नदियों की घाटियों में बिखरे रूप में मिलती हैं। इनसे अधिकतर चूना अथवा बालू मिली मिट्टियाँ बनी हैं।

(६) *नवीन कल्प की चट्टानों का चूर्ण जल अथवा वर्षा द्वारा बहकर अपने बनने के स्थान से काफी दूर बिछा हुआ पाया जाता है।* सिन्धु-गंगा के मैदान की खादर और बांगर मिट्टी, डेल्टाओं की काँप मिट्टी, लैटेराइट और मरुस्थलीय मिट्टी इसी प्रकार की है। उचित मात्रा में जल मिल जाने पर इसमें अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्था (दिल्ली) के अनुसार भारत की मिट्टियों का वर्गीकरण इस प्रकार है :[1]

(१) लाल मिट्टी, (२) काली मिट्टी, (३) लैटेराइट मिट्टी, (४) क्षारयुक्त मिट्टी, (५) हल्की काली एवं दलदली मिट्टी, (६) काँप मिट्टी, (७) रेतीली मिट्टी, और (८) वनों वाली मिट्टी।

सुविधा की दृष्टि से हम भारतीय मिट्टियों का अध्ययन उसके भू-भागों की दृष्टि से करेंगे :

(१) पहाड़ी क्षेत्रों की पहाड़ी मिट्टियाँ,
(२) मैदानी भागों की नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टियाँ
(३) दक्षिणी पठार की मिट्टियाँ, एवं
(४) *अन्य मिट्टियाँ।*

१. पहाड़ी क्षेत्रों की पहाड़ी मिट्टियाँ (SOILS OF MOUNTAINS)

क्षेत्रफल एवं वितरण

इसके अन्तर्गत लगभग २·०४ करोड़ हैक्टेअर क्षेत्र आता है जिसमें ०·२४ करोड़ हैक्टेअर में पहाड़ी मिट्टी है, १·१६ करोड़ हैक्टेअर में पहाड़ी चरागाह मिट्टी और ०·६४ करोड़ हैक्टेअर में अवर्गीकृत पहाड़ी मिट्टी पायी जाती है। हिमालय पर्वत पर पायी जाने वाली मिट्टियाँ नयी ही हैं। अधिकांशतः यह मिट्टियाँ पतली, दलदली और छिद्रमय होती हैं। नदियों की घाटियों और पहाड़ी ढालों पर ये अधिक गहरी पायी जाती हैं। हिमालय के दक्षिणी ढाल अधिक सीधे होने के कारण उत्तरी

[1] "Council of Indian Agriculture Research. *An All-India Soil Survey Scheme,* 1953, p. 13.

ढालों की अपेक्षा मिट्टी इकट्ठी नहीं होने देते। हिमालय पर्वत की मिट्टी कई प्रकार की है। पहाड़ी ढालों की तलहटी में टरशियरी मिट्टी पायी जाती है जो हल्की बलुही, छिछली और छिद्रमय होती है जिसमें वनस्पति का अंश कम होता है किन्तु पश्चिमी हिमालय के ढालों पर कुछ अच्छी बालू मिट्टी मिलती है। मध्य हिमालय क्षेत्र में पायी जाने वाली मिट्टी वनस्पति के अंश की अधिकता के कारण बड़ी उपजाऊ है।
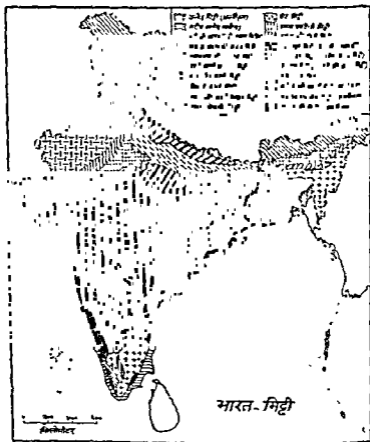
चित्र—५२

इसी कारण अच्छी वर्षा होने पर द्वार और दून की घाटी तथा कांगड़ा जिले में अच्छी चाय पैदा होती है।

हिमालय प्रदेश मे तीन प्रकार की मिट्टियाँ मुख्यतः पायी जाती हैं :

(१) हिमालय के दक्षिणी भाग मे पथरीली मिट्टी अधिक पायी जाती है जिसे नदियो ने लाकर एकत्रित कर दिया है। इस मिट्टी का दाना बड़ा होता है तथा इसमे कंकड़ और पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े भी मिले रहते हैं किन्तु इस मिट्टी मे वनस्पति, चूने और लोहे का अंश कम होता है, अत. इसमे अच्छी पैदावार नही होती। घाटियों मे (दून और कांगड़ा) तथा असम और दार्जिलिंग मे जहाँ चिकनी और महीन मिट्टी मिलती है वहाँ चाय, आलू, आदि वस्तुएँ पैदा की जाती हैं।

(२) हिमालय प्रदेश में कई स्थानो पर चूने और डोलोमाइट चट्टानों से प्राप्त मिट्टी मिलती है, विशेषकर नैनीताल, मंसूरी, चकराता, आदि स्थानो के निकट। वर्षा के फलस्वरूप चूने का अधिकांश भाग बहकर चला जाता है, थोड़ा भाग भूमि पर ही रह जाता है जिससे भूमि अनुत्पादक और बीहड़ों वाली हो जाती है। ऐसी भूमि में केवल चीड़, साल, आदि के वृक्ष ही पैदा हो सकते हैं। घाटियों में जहाँ कहीं यह मिट्टी जमी हुई पायी जाती है वहाँ चावल पैदा किया जाता है।

(३) हिमालय के कई भागों मे ज्वालामुखी के उद्गार हुए है जिनके कारण यहाँ ग्रेनाइट, डोलोमाइट, आदि आग्नेय चट्टानें पायी जाती हैं। पर्वतीय ढालों पर इन मिट्टियों में खेती की जाती है क्योंकि इसकी नमी धारण करने की शक्ति अधिक है।

डॉ० जिन्सबर्ग के शब्दों में कहा जा सकता है कि "उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में लिथोसोल (Lithosol) मिट्टियाँ मुख्यत. गहरे और ऊँचे ढालू भागों में मिलती हैं, किन्तु धीमे ढाल वाले भागो में छिछली मिट्टियाँ मिलती है। अत्यन्त ही निचले उष्ण-कटिबन्धीय ढालों पर लाल या पीली मिट्टियाँ पायी जाती हैं। ऊँचाई के अनुसार भूरी पोडसोल तथा पर्वतीय चरागाह मिट्टियाँ भी मिलती हैं। ये पर्वतीय प्रदेश मैसो-थर्मल, माइक्रोथर्मल और टुण्ड्रा जलवायु प्रदेश की मिट्टियाँ प्रदर्शित करते हैं जिनका स्वरूप अर्द्ध-उष्णकटिबन्धीय, शीतोष्ण-कटिबन्धीय और पर्वतीय वनस्पति में परि-लक्षित होता है।"[1]

२. नदियों द्वारा लायी गयी काँप, दोमट, जलोढ़ या कच्छारी मिट्टी (RIVERBORNE SOILS)

क्षेत्रफल एवं वितरण

डॉ० जिन्सबर्ग के अनुसार भारत के ३० से ३५% क्षेत्र पर जल या वायु द्वारा प्रवाहित मिट्टियाँ पायी जाती हैं तथा लगभग २०% भाग पर काँप, बलुही, चिकनी और चीका मिट्टी मिलती है।[2]

यह मिट्टियाँ हिमालय की नदियों (जमुना, घाघरा, गंडक, गोमती और गंगा) द्वारा लायी गयी है। इसमें कंकड़ नहीं होते। इस मिट्टी वाले प्रदेश का क्षेत्रफल

[1] Ginsberg, Norton (Ed.), *Pattern of Asia*, 1958, p. 508.
[2] *Ibid.*

७५ लाख वर्ग किलोमीटर है। मोटे तौर पर १० करोड़ हैक्टेअर भूमि में दोमट मिट्टी पायी जाती है। इसके अतिरिक्त १·६८ करोड़ हैक्टेअर भूमि में मुहाना प्रदेश की दोमट मिट्टी, ०·८८ करोड़ हैक्टेअर में अत्यधिक चूने वाली दोमट मिट्टी; ०·८४ करोड़ हैक्टेअर में किनारे की दोमट मिट्टी पायी जाती है। यह मिट्टी अधिकतर उत्तरी भारत के मैदानों में तथा दक्षिणी प्रायद्वीप के पूर्वी और पश्चिमी तटीय प्रदेशों में पायी जाती है। इस मिट्टी का प्रादेशिक वितरण निम्न प्रकार है -

पंजाब/हरियाणा में अमृतसर, फीरोजपुर, हिसार, गुड़गाँव, रोहतक, करनाल, अम्बाला, लुधियाना और जलन्धर जिलों में।

पश्चिमी बंगाल में हुगली, नादिया, मुर्शिदाबाद, मालदा, जैस्सोर का सम्पूर्ण भाग, २४ परगना, वीरभूम, जलपाईगुड़ी के अधिकांश भाग, मिदनापुर, बांकुड़ा और बर्दवान के कुछ भागों में।

बिहार में पटना, उत्तरी सारन, मुजफ्फरपुर, चम्पारन, दरभंगा, पूर्णिया जिले तथा धनबाद, मुंगेर और गया जिलों के कुछ भाग।

उत्तर प्रदेश में दक्षिणी और उत्तरी सीमा को छोड़कर सभी जिलों में।

असम में लखीमपुर, धरांग, शिवसागर, कामरूप, गोलपाड़ा जिले में।

मेघालय में गारो पहाड़ियों के कुछ भागों में।

उत्तरी-पूर्वी राजस्थान में भरतपुर, अलवर, जयपुर, सवाईमाधोपुर जिलों में।

दक्षिण भारत में गोदावरी, कृष्णा, कावेरी नदियों के डेल्टो; पूर्वी और पश्चिमी समुद्रतटीय मैदान तथा नर्मदा और ताप्ती नदियों की घाटियों में।

विशेषताएँ

यह मिट्टी हल्के भूरे रंग की होती है और इसमें वे ही विशेषताएँ पायी जाती हैं जो रूस, उत्तरी अमरीका, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के स्टैपी प्रदेशों की मिट्टी में मिलती हैं। इस मिट्टी की गहराई का अभी तक ठीक प्रकार से पता नहीं लग पाया है। खुदाई करने पर ज्ञात हुआ है कि ४६० मीटर की गहराई तक यह मिट्टी मिलती है।

इस मिट्टी में नेत्रजन, फास्फोरस और वनस्पति के अंश की कमी है परन्तु पोटाश और चूना पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। अधिकतर स्थानों में यह पीली दोमट मिट्टी होती है जबकि अन्य स्थानों में बलुही और चिकनी।

इन मिट्टियों के रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि इनमें अल्यूमीना की मात्रा ४·३८%; लोहा ३·१०%, चूना ०·४३%, मैगनेशिया ०·३२%, पोटाश ०·६४%; फॉस्फोरस ०·८% पायी जाती है। अन्य वस्तुएँ सोडा, कार्बन ऑक्साइड, जीवाश्म और अघुलनशील पदार्थों का होना है। नेत्रजन की मात्रा ०·००१ से ०·०२५% तक ही पायी जाती है।

प्रकार

उत्तरी मैदान की इन मिट्टियों की माटी के भिन्न-भिन्न भागों के अनुसार तीन मुख्य विभागों में बाँटा जा सकता है : (i) पुरातन जलोढ़ (Older Alluvium or Bangar); (ii) नूतन जलोढ़ (Newer Alluvium); और (iii) नूतनतम जलोढ़ (Newest Alluvium)।

(i) पुरातन जलोढ़ मिट्टी—ये नदियों द्वारा निर्मित प्राचीन मिट्टियाँ हैं। ऊँचे भागों में पायी जाने वाली ये मिट्टियाँ उन क्षेत्रों में मिलती हैं जहाँ नदियों की बाढ़ का जल नहीं पहुँच पाता। इन मिट्टियों के क्षेत्र में आवरण क्षय अधिक होता है और प्रायः भू-क्षरण द्वारा आकस्मिक रूप से अधिक वर्षा के कारण आने वाली बाढ़े इसमें सहयोग देती हैं। इसके फलस्वरूप बाँगड़ मिट्टी के क्षेत्रों में कहीं-कहीं ककड़ों वाली कठोर मिट्टी की ऊँची तहें दिखायी देती हैं जो टीलों आदि के रूप से मुलायम मिट्टी कटकर बह जाने के बाद बची होती हैं। यही कंकरीली भूमि कालान्तर में रेह (Reh) में परिणित हो जाती है। रेह-युक्त भूमि प्रायः ऊसर अथवा बजर के रूप में कृषि कार्य की दृष्टि से अनुपयुक्त हो जाती है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान के कुछ भागों में रेह मिट्टी मिलती है। पंजाब के कुछ भागों में तो चूना-युक्त मिट्टी मिलती है। इस प्रकार की मिट्टी को क्षारीय मिट्टी कहते हैं। जिन क्षेत्रों में मिट्टी के कण अधिक खुरदरे और बड़े होते हैं उन्हें भूड़ (Bhurs) कहते हैं। इस प्रकार बाँगड़ मिट्टी के क्षेत्रों में भी स्थानीय विभिन्नताएँ मिलती हैं।

(ii) नूतन जलोढ़ मिट्टी—इनका वितरण नदियों के बाढ़ के मैदान तक ही सीमित रहता है। यह मिट्टियाँ अधिक महीन कणों द्वारा निर्मित होती हैं और इनकी जलधारण शक्ति बाँगड़ की अपेक्षा अधिक होती है। स्थान-स्थान पर इन मिट्टियों को थोड़ा-सा भी खोद देने से जल निकल आता है। खादर मिट्टियों को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती जबकि बाँगड़ मिट्टियों में नदी के जल के प्राप्त न होने के कारण, ऊँची भूमि होने के कारण तथा जल-तल नीचा होने के फलस्वरूप सिंचाई की आवश्यकता होती है। मिट्टी के कण नदी के उद्गम से मुहाने की ओर महीन होते जाते हैं। इन मिट्टियों में पोटाश, फास्फोरिक एसिड, चूना तथा जीवांशों की भी मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है, अतः यह मिट्टियाँ विश्व की कुछ बहुत ही उपजाऊ मिट्टियों में से हैं। प्रतिवर्ष बाढ़ के कारण यह मिट्टियाँ नयी होती रहती हैं अतः इनमें खाद देने की भी आवश्यकता नहीं होती जबकि बाँगड़ मिट्टियों में उर्वरा-शक्ति सुरक्षित रखने के लिए खादों की अत्यधिक आवश्यकता है।

(iii) नूतनतम जलोढ़ मिट्टियाँ—ये सुन्दर वन, महानदी, कृष्णा, गोदावरी और कावेरी नदियों के डेल्टाओं में पायी जाती हैं। ये अधिकतर दलदली और नमकीन होती हैं। इनके कण बड़े बारीक होते हैं। इनमें पोटाश, चूना, मैग्नेशियम, फॉस्फोरस और जीवांश अधिक मात्रा में मिलते हैं। मैदान की कांप मिट्टियों के

उपजाऊ होने के कई कारण हैं। ये मिट्टियाँ अधिकांशतः हिमालय की नयी चट्टानों को काटकर लायी गयी हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों पर बहकर आने के कारण नदियाँ कई चट्टानों के चूर्ण को बहाकर लाती हैं जिनमें अनेक प्रकार के लवण एवं रासायनिक पदार्थ मिले रहते हैं। इस प्रकार की मिट्टियाँ बड़ी उपजाऊ होती हैं। प्रति वर्ष नदियों की बाढ़ के बाद मिट्टी की नयी तह जमी रह जाती है और इस प्रकार मिट्टी में सतत के हेर-फेर होते रहने से उसकी उपजाऊ शक्ति कम नहीं हो पाती। इस मिट्टी का दाना महीन, छिद्रमय तथा हल्का होता है इसलिए इनकी जुताई सरलता से की जा सकती है। किन्तु इन मिट्टियों का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें अधिक समय के लिए जल नहीं ठहर पाता। अतः जिन फसलों को अधिक जल की आवश्यकता पड़ती है उन्हें सींचना आवश्यक हो जाता है।

फिर भी अन्य मिट्टियों की अपेक्षा ये सबसे अधिक उपजाऊ होती हैं। इनमें सिंचाई के सहारे गन्ना, चावल, जूट, गेहूँ, तम्बाकू, तिलहन और सब्जियाँ अधिकता से पैदा की जाती हैं।

इन मिट्टियों वाले प्रदेश अधिक घने बसे भागों में गिने जाते हैं।

३. दक्षिण के पठार की मिट्टियाँ
(SOILS OF THE DECCAN PLATEAU)

प्रायद्वीपीय भारत प्राचीन कठोर चट्टानों का बना है अतः यहाँ की मिट्टियाँ भी पुरानी हैं, जो अधिकतर अपने निर्माण के स्थान पर ही पड़ी पायी जाती हैं। रंग, रचना और उपजाऊपन के अनुसार इन्हें काली, लाल, पीली, लैटेराइट आदि मिट्टियों में बाँटा जा सकता है :

(१) काली या रेगड़ मिट्टी (Black or Regur Soils)

क्षेत्रफल एवं वितरण—इस प्रकार की मिट्टियाँ १०° से २५° उत्तरी अक्षांश और ७०° से ८०° पूर्वी देशान्तरों के बीच पायी जाती हैं। ये मिट्टियाँ गुजरात से अमरकंटक और बेलगाँव से गुना तक लगभग ५ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हैं। महाराष्ट्र के अधिकांश भाग (विदर्भ, खानदेश, मराठवाड़ा), मध्यवर्ती और पश्चिमी मध्य प्रदेश, उड़ीसा के दक्षिणी भाग, कर्नाटक के उत्तरी जिलों, आन्ध्र प्रदेश के दक्षिणी और तटवर्ती भाग, तमिलनाडु के सलेम, रामनाथपुरम, कोयम्बटूर तथा तिरुनलवेली जिलों तथा राजस्थान के बूँदी और टोंक जिलों तथा उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड सम्भाग में भी मिलती है।

महाराष्ट्र में इस मिट्टी के क्षेत्र काफी विस्तृत हैं। यह दक्कन ट्रैप से बनी है। पहाड़ी ढालों पर यह हल्के रंग की, पतली तथा अनउपजाऊ और निचले भागों में गहरी तथा उपजाऊ होती है। नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटियों में यह ६ मीटर से भी अधिक गहरी पायी जाती है। भीतरी मिट्टी में चूने की मात्रा अधिक होती है। गुजरात के सूरत और भड़ौच जिलों में भी यह मिट्टी पायी जाती है।

मध्य प्रदेश में नर्मदा की घाटी में गहरी और काले रंग की तथा छिछली काली मिट्टी मिलती है। इसमें कपास का उत्पादन अधिक होता है। कर्नाटक में काली मिट्टी में नमक के कण भी मिले रहते हैं।

प्रायद्वीपीय काली मिट्टी को सामान्यतः तीन भागों में बाँटा जाता है :

(i) छिछली काली मिट्टी—इसका निर्माण दक्षिण के बेसाल्ट ट्रैप से हुआ है। मिट्टी सामान्य दोमट से लगाकर चिकनी तक होती है तथा इसका रंग गहरे काले से लगाकर गहरा पीला तक होता है। इस प्रकार की मिट्टी मध्य प्रदेश के होशंगाबाद, नृसिंहपुर, छिंदवाड़ा और बेतूल क्षेत्रों तथा महाराष्ट्र के नागपुर, वर्धा और भंडारा जिलों में मिलती है।

(ii) मध्यम काली मिट्टी—यह काले रंग की मिट्टियाँ हैं जिनका निर्माण, बेसाल्ट, धारवाड़ शिस्ट, ग्रेनाइट, नीस, आदि चट्टानों की टूट-फूट से होता है। इनकी गहराई ५० से १२० सेण्टीमीटर तक होती है। ये अधिकतर महाराष्ट्र, उत्तर-पश्चिमी मध्य प्रदेश, उत्तरी कर्नाटक, मध्यवर्ती कच्छ और उत्तरी-पूर्वी आन्ध्र प्रदेश में पायी जाती हैं।

(iii) गहरी काली मिट्टी—यह ही वास्तविक काली मिट्टी है जिसका निर्माण ज्वालामुखी के उद्गार से हुआ है। यह बड़ी उपजाऊ होती है और मुख्यतः गुजरात के सूरत, भड़ौच और अहमदाबाद जिलों में तथा महाराष्ट्र में कृष्णा, खानदेश और कर्नाटक के चित्तलद्रुग में पायी जाती है।

इस मिट्टी के निर्माण के सम्बन्ध में विद्वानों के कई मत हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार तमिलनाडु और गुजरात के कुछ भागों में मिट्टी का जन्म प्राचीनकाल के समुद्रों में नदियों द्वारा लाकर लावा के जमावों से हुआ है किन्तु क्रेब का कथन है की यह मिट्टी मुख्यतः परिपक्व मिट्टी है जिसका निर्माण भूतल की विशेषताओं एवं जलवायु सम्बन्धी कारणों से हुआ है न कि लावा की चट्टानों द्वारा। यह मिट्टी इन विद्वानों के अनुसार उन्हीं क्षेत्रों में मिलती है जहाँ वर्षा की मात्रा ५० से ७५ सेण्टीमीटर तक होती है और जहाँ वर्षा वाले दिनों का औसत ३० से ५० तक होता है। आधुनिक मान्यता यह है कि ये मिट्टियाँ ज्वालामुखी विस्फोट से निकले हुए लावा के जम जाने से बनी हैं।

विशेषताएँ

इसका रंग गहरा काला और इसके कणों की बनावट घनी होती है। इसमें अधिक देर तक जल ठहर सकता है। इसमें रासायनिक तत्वों की मात्रा अधिक होती है किन्तु सूख जाने पर इसमें दरारें पड़ जाती हैं अतः हल चलाना कठिन हो जाता है। दक्षिण की पहाड़ियों और पठारों के ढालों पर यह मिट्टी कम उपजाऊ, हल्की और बड़े छिद्रों वाली होती है जिसमें जल अधिक समय तक के लिए नहीं ठहर पाता। अतः इसमें केवल ज्वार, बाजरा, रागी या दालें पैदा की जाती हैं। निम्न भूमि पर

यह मिट्टी गहरी और अधिक काली होती है। इसमें गेहूँ, कपास, ज्वार, तम्बाकू, रेंडी, मूंगफली, बाजरा पैदा किये जाते हैं। इस मिट्टी में चूना, पोटाश, मैगनेशिया, एल्यूमीना तथा लोहा पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है किन्तु फॉस्फोरस, नेत्रजन तथा जीवांशों का अभाव पाया जाता है। नागपुर में किये गये परीक्षणों के अनुसार इस मिट्टी में घुलनशील अंश ६८·७१%; फैरिक ऑक्साइड ११·२४%, एल्यूमीना ६·३६%, जल तथा जीवांश ५·८३%; चूना १·८१% तथा मैगनेशिया १·७६% है।

(२) लाल पीली मिट्टी (Red and Yellow Soils)

लाल मिट्टी शुष्क और तर जलवायु के बारी-बारी में बदलने के फलस्वरूप प्राचीन रवेदार चट्टानों और परिवर्तित चट्टानों के टूट-फूट के कारण बनती है, और अपने बनने के स्थान पर ही पड़ी रहती है। तापी नदी की घाटी में पहाड़ियों के ढालों पर लगातार अधिक गर्मी पड़ने से चट्टानों के टूटने पर उनमें मिला हुआ लोहा मिट्टी में एक-सा फैल गया है जिससे इस मिट्टी का रंग लाल हो गया है। कहीं-कहीं इसका रंग भूरा, चाकलेटी, पीला अथवा काला भी हो गया है। क्योंकि ग्रेनाइट आदि चट्टानों से बनने के कारण मूल चट्टान के चाकलेट रंग वाले खनिज तत्त्व (जैसे फेल्सपार) के महीन कण इसमें पाये जाते हैं। जहाँ कहीं यह मिट्टी बहुत ही छोटे-छोटे टुकड़ों की बनी है वहाँ यह काफी उपजाऊ है। लेकिन दूसरे भागों में मिट्टी की तहों में जल न रुकने के कारण यह प्रायः बंजर रह गयी है।

क्षेत्रफल एवं वितरण

इस प्रकार की मिट्टी मध्य प्रदेश के बुन्देलखण्ड से लगाकर ठेठ दक्षिण तक पायी जाती है। इसका क्षेत्र २ लाख वर्ग किलोमीटर में है। यहाँ मिट्टियाँ आन्ध्र प्रदेश; मध्य प्रदेश के रीवां, सतना, पन्ना, छतरपुर, रायगढ़, जिलों में, बिहार के संथाल परगना और छोटा-नागपुर के पठार पर; बंगाल के बीरभूम, बाकुड़ा और मिदनापुर जिलों में; मेघालय की खासी, जयन्तिया, गारो पहाड़ियों और नागालैण्ड, उत्तर प्रदेश के हमीरपुर, मिर्जापुर, बाँदा और झाँसी जिलों में तथा राजस्थान के अरावली पर्वत के पूर्वी क्षेत्रों तथा दक्षिणी-पूर्वी महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु के कुछ भागों में मिलती हैं।

विशेषताएँ

अनेक प्रकार की चट्टानों से बनी होने के कारण यह गहराई और उर्वरा शक्ति में बहुत तरह की होती है। ये मिट्टियाँ अत्यन्त रन्ध्रयुक्त होती हैं और अत्यन्त बारीक तथा गहरी होने पर ही उपजाऊ होती हैं। अतः शुष्क ऊँचे मैदानों में पायी जाने वाली मिट्टी उपजाऊ नहीं होती। यहाँ पर यह हल्के रंग की, पथरीली और कम गहरी होती है। इसमें बालू के समान मोटे कण पाये जाते हैं। अतः इस मिट्टी में केवल बाजरा ही पैदा होता है। किन्तु निम्न भूमियों की लाल मिट्टी गहरे लाल रंग की, अधिक गहरी और उपजाऊ होती है। इसमें कपास, गेहूँ, दालें, मोटे अनाज, आदि पैदा किये जाते हैं।

इस मिट्टी में लोहा, अल्यूमीनियम और चूना यथेष्ट होता है किन्तु नेत्रजन, फास्फोरस और वनस्पति का अंश कम होता है।

लाल मिट्टी का रासायनिक संगठन इस प्रकार का है : अघुलनशील तत्व ६०.४७, लोहा ३.५१, अल्यूमीनियम २.६२, जीवांश और जल १.०१, मैग्नेशिया ०.७०, चूना ०.५६, कार्बन-डाई-ऑक्साइड ०.३०, पोटाश ०.२४, सोडा ०.१२, फॉस्फोरस ०.०६, नेत्रजन ०.०८, योग १००।

(३) लैटेराइट मिट्टी (Laterite Soils)

क्षेत्रफल एवं वितरण—ऐसी मिट्टी लगभग १.२२ लाख वर्ग कि०मी० क्षेत्र में फैली है। यह विशेषकर मध्य प्रदेश, (ग्वालियर, पन्ना और रीवां जिले में) पूर्वी और पश्चिमी घाटों के समीप, कर्नाटक, दक्षिणी महाराष्ट्र, केरल (मालाबार), राजमहल की पहाड़ियों, उड़ीसा तथा असम के कुछ भागों में पायी जाती है। चट्टानों का ठोसपन और बुलबुलीदार रचना इनकी विशेषताएँ हैं। इस मिट्टी का रंग ललाई लिए होता है।

इन मिट्टियों का निर्माण अधिकतर ऐसे भागों में होता है जहाँ शुष्क और नम मौसम बारी-बारी से होता है। ये मिट्टियाँ लैटेराइट चट्टानों की टूट-फूट से बनती हैं। अपने निर्माण करने वाले कणों के आधार पर लैटेराइट मिट्टियों के तीन उपभेद किये जाते हैं : (i) गहरी लाल लैटेराइट जिसमें लौह-ऑक्साइड और पोटाश की मात्रा अधिक होती है किन्तु कैओलिन की मात्रा कम। इस मिट्टियों की उर्वरा शक्ति कम होती है किन्तु निचले भागों में इसमें कुछ कृषि की जाती है।

(ii) सफेद लैटेराइट जिसमें कैओलिन की अधिकता के कारण मिट्टी का रंग सफेद होता है। इसकी उर्वरा शक्ति सबसे पहले कम होती है।

(iii) भूगर्भवर्ती जल वाली लैटेराइट मिट्टियाँ जिनमें मिट्टियों के निर्माण तथा गुणों में भूगर्भीय जल का हाथ रहता है। ग्रीष्म ऋतु में ऊपरी तहों में यह मिट्टियाँ सूखकर कड़ी हो जाती हैं किन्तु वर्षाकाल में जल मिलने पर ऊपरी तह के घुलनशील पदार्थ भूमि के नीचे चले जाते हैं। ऊपरी तह की मिट्टियाँ उपजाऊ होती हैं क्योंकि लौह-ऑक्साइड आदि तत्त्व जल में घुलकर नीचे रिस जाते हैं।

तमिलनाडु में पहाड़ी भागों और निचले क्षेत्रों दोनों में ही लैटेराइट मिट्टी मिलती है जिसकी उत्पत्ति जलवायु और मौसमी कारणों से हुई मानी जाती है। इस प्रकार की मिट्टी अपने बनने के स्थान पर ही नहीं रहती वरन् नदियों द्वारा बहाकर अपने डेल्टाओं में भी जमा दी जाती है। निचले भागों में इस मिट्टी में चावल, कपास, गेहूँ, दालें, मोटे अनाज, सिंकोना, चाय, कहवा, आदि बोया जाता है।

केरल के कुर्ग जिले में यह मिट्टी सारे जिले में बिखरी मिलती है। महाराष्ट्र में रत्नागिरी जिले में पायी जाती है। यहाँ इसका दाना बड़ा मोटा होता है। केरल राज्य में चौड़े समुद्री तट और पूर्वी भागों के बीच में इस प्रकार की मिट्टी मिलती है। पश्चिमी बंगाल में बेमाल्ट और ग्रैनाइट पहाड़ियों के बीच-बीच में लैटेराइट मिट्टी पायी जाती है। उड़ीसा के पठार के ऊपरी भागों और घाटियों में मिलती है।

विशेषताएँ

ये मिट्टियाँ कई प्रकार की होती हैं। पहाड़ियों पर पायी जाने वाली मिट्टियाँ बहुत कम उपजाऊ होती हैं और उसमें नमी भी नहीं ठहर सकती। इसके विपरीत निम्न भूमियों पर इस मिट्टी के साथ चिकनी और दोमट मिट्टी भी मिली पायी जाती है। इसमें नमी काफी समय तक के लिए ठहर सकती है। इस मिट्टी में चूना, फॉस्फोरस और पोटाश कम पाया जाता है किन्तु वनस्पति का अंश यथेष्ट होता है। मिट्टी पर किये गये रासायनिक परीक्षणों के अनुसार इसमें लोहा १८·७%, सिलिका ३२·६२%, एल्यूमीना २५·२८%, फॉस्फोरस ०·७०%, चूना ०·४२% और अघुलनशील तत्त्व होते हैं।

४. अन्य मिट्टियाँ
(OTHER SOILS)

(१) मरुस्थलीय मिट्टी (Desert Soil)

इस प्रकार की मिट्टी शुष्क प्रदेशों में विशेषतः पश्चिमी राजस्थान, गुजरात, दक्षिणी पंजाब, दक्षिणी हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मिलती है। इसका विस्तार क्षेत्र लगभग १·४४ करोड़ हैक्टेअर में है। यह मिट्टी प्रधानतः बालू है जिसमें मोटे कण होते हैं। यह मिट्टी दक्षिण-पश्चिम मानसून द्वारा कच्छ के रण की ओर से उड़ाकर यहाँ जमा की गयी है। इसमें खनिज नमक अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। किन्तु ये शीघ्र जल में घुल जाते हैं। बालू मिट्टी में नमी की कमी रहती है तथा वनस्पति के सड़े गले अंश भी कम मात्रा में पाये जाते हैं। जल मिल जाने पर यह मिट्टी उपजाऊ हो जाती है। सिंचाई के सहारे गेहूँ, गन्ना, कपास, ज्वार-बाजरा, सब्जियाँ, आदि पैदा की जाती हैं। जहाँ सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं वहाँ भूमि बंजर पड़ी रहती है।

(२) नमकीन मिट्टियाँ (Saline and Alkaline Soils)

शुष्क और अर्द्ध-शुष्क भागों तथा दलदली क्षेत्रों में इस प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती हैं। इन्हें कई नामों से पुकारा जाता है, जैसे थूर, ऊसर, कल्लर, रॉकड़, रेह और चोपन। शुष्क एवं अधिक वर्षा वाले भागों में जल प्रवाह दोषपूर्ण होने तथा जल रेखा ऊँची होने से इन मिट्टियों का जन्म होता है। मिट्टी में सोडियम, कैल्शियम और मैगनेशियम लवणों की मात्रा अधिक होने से ये मिट्टियाँ प्रायः अनुत्पादक होती हैं।

इन मिट्टियों में नमक की मात्रा तीन प्रकार से पहुँचती है (१) हिमालय की अनेक नदियाँ अपने जल में लवण के खनिज बहाकर लाती हैं जो मैदानों में मिट्टी के नीचे मिल जाते हैं। नमक के कणों का जमाव शुष्क जलवायु और दोषपूर्ण अपवाह वाले क्षेत्रों में निरन्तर रहता है। तेज गरमी के समय भाप के साथ ये कण भूमि के नीचे से धरातल पर खिंच आते हैं और वहाँ सफेद चादर के रूप में बिछ जाते हैं। इस मिट्टी का रंग सफेद-भूरा होता है तथा इसकी सतह बड़ी कठोर और अभेद्य हो

जाती है। इस पर किसी प्रकार की वनस्पति पैदा नहीं हो सकती। (२) जब दक्षिण-पश्चिम मानसून पवनें कच्छ के रण पर होकर आती हैं तो वे अपने साथ नमक के कण उड़ा लाती हैं। ये धरातल पर जमते रहते हैं और वर्षा ऋतु मे जल मे घुलकर निम्न क्षेत्रो मे जम जाते हैं। (३) समुद्रतटीय क्षेत्रों में ज्वार के समय समुद्र का नमकीन जल भूमि को आवृत करता रहता है। इससे दलदली क्षेत्रों मे नमकीन मिट्टी की अधिकता बढ़ती जाती है।

वितरण एवं क्षेत्रफल

इस प्रकार की मिट्टियों का प्रादेशिक वितरण इस प्रकार है :

उत्तरी भारत मे नहरी क्षेत्रो में अत्यधिक सिंचाई के कारण तथा शुष्क जलवायु के कारण लगभग ७५ लाख हैक्टेअर भूमि पंजाब में पायी जाती है जिस पर नमक जम जाने से खेती नहीं की जाती।

उत्तर प्रदेश में भी लगभग ७७ लाख हैक्टेअर भूमि इस नमकीन मिट्टी के कारण कृषि के अयोग्य हो गयी है। मध्य एवं उत्तरी-पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे गंगा के बायें किनारे पर ऐसे क्षेत्र सबसे अधिक विस्तृत पाये जाते हैं।

राजस्थान मे लगभग २५ लाख हैक्टेअर भूमि पर तथा उत्तरी बिहार में लगभग २५ लाख हैक्टेअर भूमि इस क्षार के कारण पूर्णतः नष्ट हो चुकी है।

पश्चिमी बंगाल मे नमकीन मिट्टी मुख्यतः मिदनापुर, २४ परगना जिलो और सुन्दर वन क्षेत्रो मे पायी जाती है। ऐसी मिट्टी कलकत्ता के निकट उत्तरी और दक्षिणी नमकीन झीलो के चारों ओर भी मिलती है। ऐसी मिट्टी का क्षेत्र अनुमानतः २१ लाख एकड़ है।

दक्षिणी भारत मे यह मिट्टियाँ इन भागों मे पायी जाती हैं :

दक्षिण के पठार के ऊपरी भागो में महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु राज्यों मे विशेषतः तापी, गोदावरी और भीमा नदियो के बीच में जहाँ अत्यधिक सिंचाई के कारण लगभग १·८७ लाख हैक्टेअर भूमि कृषि के अयोग्य हो गयी है।

कावेरी और महानदी के डेल्टाओं में तथा तटीय भागो में ज्वार के कारण लगभग १५० लाख हैक्टेअर भूमि नमकीन बन चुकी है। इसमें से ७२,००० हैक्टेअर भूमि केरल में है।

इस प्रकार की मिट्टी महाराष्ट्र के तटीय भागों में (६३,००० हैक्टेअर में) कच्छ के रण (५५,००० हैक्टेअर) मे भी पायी जाती है।

गुजरात और महाराष्ट्र में क्षार और लवण भूमियाँ निरन्तर ज्वार के कारण जल में डूबी रहती हैं। अतएव नमकीन मिट्टियाँ महाराष्ट्र में रत्नागिरी, थाना और कोलाबा जिलों में; गुजरात के अमरेली, भड़ौंच, सूरत, अहमदाबाद, महसाना और बनासकाँठा जिलों में ही पायी जाती है। अकेले गुजरात में ही ७५ हैक्टेअर भूमि नमकीन है।

तमिलनाडु के तटीय जिलों में कन्याकुमारी, रामनाथपुरम, तंजौर, दक्षिण अरकाट, तिरुनलवैली में नमकीन मिट्टी के विस्तृत क्षेत्र पाये जाते हैं। सिचाई के कारण भी राज्य की लगभग २५ लाख हैक्टेअर भूमि कृषि के अयोग्य हो गयी है।

विशेषताएँ

नमकीन मिट्टी में अनेक प्रकार के खनिज लवण मिले पाये जाते हैं किन्तु इसमें कैल्शियम और नेत्रजन का अभाव पाया जाता है। यह मिट्टी भयानक रूप से अप्रवेश्य होती है। इस प्रकार की मिट्टी में नेत्रजन की मात्रा ०·०३ से ०·१३; पोटाश ०·०३ से ०·०७; फॉस्फोरस ०·०३ से ०·१३ और चूना ०·२ से ३% होता है। यदि इन मिट्टियों से चूने की मात्रा कम की जा सके तथा जल प्रवाह में सुधार किया जाये, ऊँची जलरेखा को नालियाँ काटकर नीचा बनाया जाय तथा भूमि पर जिप्सम की मात्रा सिंचाई के समय दी जाये तो इससे क्षार का अंश कम हो सकता है।

भारतीय मिट्टियों की विशेषताएँ

मिट्टियों के विस्तृत विवेचन से स्पष्ट होगा कि भारतीय मिट्टियों की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं :

(१) अपनी रचना में भारतीय मिट्टियाँ अनेक देशों की मिट्टियों से भिन्न हैं क्योंकि ये बहुत पुरानी और पूर्णतः परिपक्व हैं।

(२) भारत की अधिकांश मिट्टियाँ प्राचीन जलोढ हैं जो न केवल पैतृक चट्टानों के विखण्डन से ही बनी हैं, वरन् उनके निर्माण में जलवायु सम्बन्धी कारकों का भी हाथ रहा है।

(३) प्रायः सभी मिट्टियों में नेत्रजन, जीवांश, वनस्पति अंश और खनिज लवणों की कमी पायी जाती है।

(४) मिट्टियों में तापमान ऊँचे पाये जाते हैं। शीतोष्ण कटिबन्धीय मिट्टियों की तुलना में यह १०° से २०° सेण्टीग्रेड अधिक होते हैं। इससे चट्टानों के टूटते ही उनका रासायनिक विघटन (chemical decomposition) शीघ्र आरम्भ हो जाता है।

(५) पठारी एवं पहाड़ी भागों में मिट्टी का आवरण हल्का और फैला होता है जबकि मैदानी क्षेत्रों और डेल्टाई प्रदेशों में यह गहरा और सगठित होता है।

(६) निरन्तर खेती किये जाने से भारतीय मिट्टियों की उर्वरा शक्ति के नष्ट होने के साथ-साथ उनका अपरदन भी होता जा रहा है।

भूमि क्षरण की समस्या
(PROBLEM OF SOIL EROSION)

भारतीय मिट्टियों की उर्वरा शक्ति प्रति वर्ष गिरती जा रही है। इसके साथ साथ बड़ी मात्रा में मिट्टियाँ बहती हुई जलधारा के जोर से कटकर समुद्र में चली जा रही है। भूमि के अपक्षरण की यह समस्या भारत में बड़ी विषम है। मिट्टी के अपक्षरण

को 'रेंगती हुई मृत्यु' कहा जाता है। यह परिणाम भूमि तक ही सीमित नहीं है किन्तु उन्हें मनुष्यों को भी भुगतान पड़ता है क्योंकि भूमि के नष्ट होने से भूमि की पैदावार क्षीण होती है। भूमि की सतह के ऊपर ही वनस्पतिजन्य रासायनिक तत्व एकत्रित रहते हैं जिनसे पौधों को भोजन मिलता रहता है। यदि एक बार यह ऊपरी सतह नष्ट हो जाती है तो भूमि की उर्वरा शक्ति भी क्षीण हो जाती है जिसके फलस्वरूप वहाँ किसी प्रकार की वनस्पति पैदा होना असम्भव हो जाता है।

भूमि क्षरण के प्रकार (Types of Soil Erosion)

भारत की उन सब ढालू भूमियों पर जहाँ न तो वन हैं न घास के मैदान और जहाँ कृषि योग्य भूमि की ठीक प्रकार से मेड़-बन्दी भी नहीं की जाती है वहाँ की मिट्टी सदैव कटती रहती है। प्रत्येक स्थान पर मिट्टी का अपक्षरण समान नहीं होता। यह कई बातों पर निर्भर है; जैसे मिट्टी का गुण, भूमि का ढाल, वर्षा की मात्रा, आदि। कठोर मिट्टी की अपेक्षा कोमल छोटे कण वाली मिट्टी अधिक ढाल और मूसलाधार वर्षा में शीघ्र कटकर बह जाती है।

मिट्टी का अपरदन कई प्रकार का होता है। जब घनघोर वर्षा के कारण निर्जन पहाड़ियों की मिट्टी जल में घुलकर बह जाती है तो इसे भूमि का परत अपक्षरण (Sheet erosion) कहते हैं। इस प्रकार का क्षरण ढलुएँ खेत, खाली पड़ी भूमि में तथा अत्यधिक चराई, वनों के नाश और बदलती खेती के फलस्वरूप होता है। धारातलीय अपक्षरण सभी ढालू भूमि की ऊपरी मूल्यवान मिट्टी को बहा देता है जिससे उसकी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है।

जब जल बहता है तो उसकी विभिन्न धाराएँ मिट्टी को कुछ गहराई तक काट देती हैं जिससे धरातल में कई फुट गहरे गड्ढ बन जाते हैं। इस प्रकार के अपक्षरण को अवनालिका अपक्षरण (gully erosion) कहते हैं। परन्तु यह अपक्षरण प्रथम प्रकार के अपक्षरण से अधिक हानिकारक होता है।

मरुभूमि में प्रचण्ड वायु द्वारा भी मिट्टी का अपक्षरण होता रहता है। इसके द्वारा मिट्टी काटकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले आयी जाकर बिछा दी जाती है। इसे वायु द्वारा अपक्षरण (Wind erosion) कहते हैं।

इन विभिन्न प्रकार के अपक्षरणों द्वारा भारतवर्ष की हजारों हैक्टेअर भूमि नष्ट की जा चुकी है। भारत में तीनों ही प्रकार के कटाव मिलते हैं।

भूमि क्षरण के कारण

भूमि अपक्षरण अनेक कारणों द्वारा होता है यथा,

(१) अनेक शताब्दियों से मानव ईंधन एवं घरेलू कार्यों के लिए निर्मयता-पूर्वक वनों को नष्ट करता रहा है। इस क्रिया से भूमि के रक्षात्मक तत्व तेजी से बहने वाले वर्षा जल के साथ घुलकर चले जाते हैं और वहाँ बड़े बीहड़ उत्पन्न हो

जाते हैं। यमुना, चम्बल, माही और उनकी अनेक सहायक नदियों के किनारे भूमि का अपक्षरण निरन्तर गति से हो रहा है। इससे उपजाऊ क्षेत्र नष्ट होते जा रहे हैं। वनाच्छादित भूमि में जल तथा मिट्टी का ह्रास २३ टन प्रति हैक्टेअर, चरागाह भूमि में ९८ टन प्रति हैक्टेअर जल तथा ८० टन प्रति हैक्टेअर मिट्टी एवं आवरणहीन भूमि (Barren land) में ३१२ टन प्रति हैक्टेअर जल और २,००० टन प्रति हैक्टेअर मिट्टी का ह्रास प्रतिवर्ष होता है।[1]

(२) *वनों के समीप रहने वाले निवासी असंख्य मात्रा में भेड़-बकरी आदि* पशुओं को पालते रहे हैं जो भूमि की वनस्पति को अन्तिम बिन्दु तक चरकर उसे खोखला कर देती हैं। यही ढीले भाग जल अथवा मिट्टी के वेग के साथ बहकर भूमि को अनुपजाऊ बना देते हैं।

(३) अनेक क्षेत्रों के पहाड़ी ढालों पर (विशेषतः असम, नागालैण्ड, मेघालय, दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान, निचले हिमालय, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, आदि में) आदिवासियों
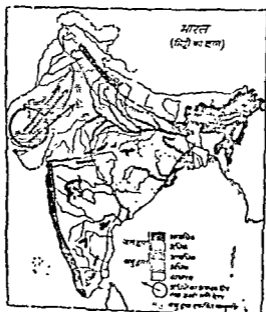
चित्र—५.३

द्वारा झूमिंग प्रणाली के अन्तर्गत वनों को काटकर कृषि योग्य बनाया जाता है जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे सभी क्षेत्रों के वन नष्ट होकर भूमि क्षरण आरम्भ हो जाता है।

[1] Howard, H., *Post-war Forest Policy in India*, 1944, pp. 30-31

(४) वर्षा ऋतु के आगमन से पूर्व मरुस्थलीय क्षेत्रों में भीषण गर्म आँधियाँ चलती हैं जो भूमि की ऊपरी पर्त की ढीली मिट्टी को उड़ा ले जाती हैं। इस क्रिया द्वारा धरातल पर आवरण-क्षय होता रहता है और कालान्तर में यह क्षेत्र अनुपजाऊ बन जाते हैं।

(५) कृषि के अवैज्ञानिक ढंग अपनाकर कृषक स्वयं मिट्टी के क्षरण को बढ़ाता है। ढलुए क्षेत्र में समोच्च रेखाओं (Contour lines) से समान्तर जुताई न करने से, दोषयुक्त फसल चक्र (Rotation of Crops) अपनाने से या आवरण फसलें (Cover Crops) गलत तरीके से बोने से मिट्टी का क्षरण बढ़ता है। हिमालय और नीलगिरि क्षेत्र में जिस प्रकार से आलू की दोषयुक्त खेती होती थी उससे मिट्टी का क्षरण अधिक मात्रा में हुआ है।

भारत में भूमि क्षरण के क्षेत्र

भूमि क्षरण की विभीषिका ने भारत में अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर रखा है। इसको भारतीय कृषि की पहली श्रेणी का शत्रु माना जाता है। डॉ० ग्लोवर के अनुसार भूमि क्षरण से भारत में १५ करोड़ एकड़ भूमि की क्षति हो रही है। डॉ० रसेल का अनुमान है कि देश के विभिन्न भागों में प्रति हैक्टेअर २.५ से २८८ टन मिट्टी नष्ट हो रही है। मोटे तौर पर भारत के कुल क्षेत्र में से लगभग ८ करोड़ हैक्टेअर तथा वास्तविक कृषित क्षेत्र में से लगभग ४ करोड़ हैक्टेअर क्षेत्र जल एवं वायु द्वारा क्षरण से प्रभावित है।

एक अन्य अनुमान के अनुसार प्रति वर्ष वर्षा से भूमि की $\frac{1}{2}$ सेण्टीमीटर ऊपरी उपजाऊ मिट्टी नष्ट हो रही है। औसतन प्रतिवर्ष मिट्टी का २% भाग बहकर चला जाता है।

(१) जल द्वारा क्षरण (Water Erosion)

भारत में जल द्वारा भूमि क्षरण के मुख्य क्षेत्र ये हैं: (१) उत्तर प्रदेश में ब्रज भूमि की वर्तमान स्थिति भूमि क्षरण से होने वाले विनाश का सजीव प्रतीक है। राष्ट्रीय आयोजन समिति (१९४८) के अनुसार, "एक समय जहाँ दूध और घी की नदियाँ बहा करती थीं वहाँ आज विश्व के इस सर्वाधिक उर्वर भू-भाग के मध्य में सैकड़ों वर्ग किलोमीटर तक फैली हुई भूमि अतिशय पशुचारण के फलस्वरूप अपने प्राकृतिक आवरणों से वंचित होकर मरुस्थल हो गयी है।" उत्तर प्रदेश में लगभग ३५ लाख एकड़ ऊबड़-खाबड़ भूमि और उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के बीच का मानव-निर्मित मरुस्थल जो राज्य के दक्षिणी-पश्चिमी जिलों को भी अपनी लपेट में लेना चाहता है और जिसके फलस्वरूप पंजाब और उत्तर प्रदेश की नहरों में कीचड़ जमा हो गया है, भूमि क्षरण का मुख्य स्थल है।

आगरा, मथुरा और इटावा के जिलों में दूर-दूर तक विस्तृत बंजर भूमि है। इटावा में ही ४८ हजार हैक्टेअर बंजर भूमि है। यहाँ चम्बल, गोमती, यमुना और

उनकी सहायक नदियाँ भूमि को काटती हैं। इस जिले में प्रति सैकण्ड ११ घन फीट मिट्टी बेकार होती है जो ५ किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ्तार से बहने वाली लगभग ४ मीटर चौड़ी और ०·६ मीटर गहरी जलधारा से कटने वाली मिट्टी के बराबर है। उत्तर प्रदेश में भूमि-क्षरण से ध्वस्त भूमि ३६ लाख हैक्टेअर है। अवध, बुन्देलखण्ड और आगरा के बजर में धरातलीय क्षरण गत २०० वर्षों से हो रहा है जिससे १/३ मीटर गहराई तक मिट्टी कट कर चली गयी है।

(२) मध्य प्रदेश में चम्बल तथा अन्य नदियों में लगातार आने वाली बाढ़ों से विशाल भूमिखण्ड (लगभग २० लाख हैक्टेअर) अनुर्वर हो गया है। अनुमान लगाया गया है कि यमुना-चम्बल घाटी में जो भूमि-क्षरण हुआ है वह गत १,००० वर्षों से प्रति दूसरे दिन और रात में ½ टन मिट्टी हटने के बराबर है। इस क्षेत्र में भूमि-क्षरण से प्रभावित भूमि ११२ किलोमीटर लम्बी और मध्य में २१ किलोमीटर चौड़ी है। सब मिलाकर लगभग १,२५,००० एकड़ क्षेत्र में १५ से २० फीट गहरे खड्ड पाये जाते हैं। गहरे खड्डों द्वारा लगभग १५ लाख एकड़ भूमि प्रभावित हो चुकी है, इसमें से ६ लाख एकड भिण्ड, मुरैना और ग्वालियर जिलों में फैली है।[1] चम्बल नदी भूमि-क्षरण को सर्वाधिक प्रोत्साहित करने वाली मानी जाती है। इन क्षेत्रों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि यह विशाल भू-खण्ड अनेक नालों और खड्डों में विभक्त हो गया है। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं जिनमें पूरी की पूरी सेना समा सकती है। इन खड्डों और दूर-दूर तक विस्तृत नालों में डाकू दल विचरण करते हैं। इस भूमि पर खेती करने की बात तो दूर यह चरागाह के लिए भी अनुपयुक्त है। ये खण्ड और नाले भूमि-क्षरण तज्जन्य विनाश क्षेत्र के जीते-जागते नमूने हैं।

गंगा और उसकी सहायक नदियों के मैदानी क्षेत्र भी इस विभीषिका से सर्वथा मुक्त न रह सके। सच तो यह है कि नदियाँ धीरे-धीरे किन्तु क्रम से मैदानों में गहरे नाले बनाकर भूमि की उर्वर परत को बहाकर साफ करती रही हैं। इन भागों में नदी तट का भूमि-क्षरण सामान्यतः देखा जा सकता है। विद्वानों का मत है कि अकेली गंगा नदी प्रतिवर्ष ३० करोड़ टन मिट्टी ले जाकर बंगाल की खाड़ी में डालती है। सिन्धु प्रतिदिन १० लाख टन और ब्रह्मपुत्र इससे भी अधिक मात्रा में मिट्टी बहाकर ले जाती है।[2] दक्षिणी बंगाल में प्रायः सभी नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में भूमि-क्षरण का भीषण प्रकोप है जिसके फलस्वरूप न केवल कृषि-योग्य भूमि ही नष्ट हो रही है वरन् जनसंख्या को भी क्षति पहुँच रही है।

(३) शिवालिक तथा हिमालय पर्वतमाला में ये खड्ड और नाले सैकड़ों मीटर गहरे हैं और जहाँ कहीं भी भूमि-क्षरण के फलस्वरूप दरारें पड़ गयी हैं वहाँ के लोग गाँव और घर छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए बाध्य हुए हैं।

[1] Pichamuthu, C. S., *Physical Geography of India*, 1967, pp. 167-68.
[2] Kuriyan, G., *India, A General Survey*, p. 28.

(४) महाराष्ट्र तथा दक्खन के पठार पर कपास उत्पादन करने वाली मिट्टी जल की घातक क्रियाओं को बिल्कुल ही नहीं सहन कर पाती और कतिपय क्षेत्रों में अनुमानतः प्रतिवर्ष प्रति एकड़ १३३ टन मिट्टी की क्षति होती है।

(५) तमिलनाडु में भी गड्ढों का आधिक्य उत्तरी अर्काट, दक्षिणी अर्काट, कन्याकुमारी, तिरुचिरापल्ली, चिंगलपुर, सलेम और कोयम्बटूर जिलों में है।

(६) पश्चिमी बंगाल में कांसवती नदी के प्रवाह क्षेत्र में, विशेषकर पुरुलिया जिले में, जल द्वारा निर्मित अनेक गहरी नालियाँ पायी जाती हैं। एक मोटे अनुमान के अनुसार मिट्टी के क्षरण द्वारा प्रभावित क्षेत्र लगभग १,००,००० एकड़ तक पहुँच गया है।

(२) वायु द्वारा क्षरण (Wind Erosion)

निश्चित अंश तक धरातलीय और अवनालिका क्षरण के बाद ये क्षेत्र वायु से होने वाले भूमि-क्षरण के शिकार बन जाते हैं। इन क्षेत्रों की बढ़ती हुई शुष्कता के फलस्वरूप वायु का वेग वृक्षों, झाड़ियों तथा घास के आवरण को नष्ट करता हुआ सारी भूमि को मरुभूमि बना देता है। दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान के बाहरी भागों की ओर मरुस्थल अबाध गति से बढ़ रहा है। इसको रोकने के लिए दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब की सीमा पर रक्षात्मक वृक्षों की पट्टी लगाने का प्रयत्न किया गया है। राजस्थान और पाकिस्तान की सीमा के बीच में ८ किलोमीटर चौड़ी और ६७४ किलोमीटर लम्बी वृक्षों की कतारें लगायी गयी हैं।

[illegible] जोधपुर, बीकानेर, कोटा, [illegible] के क्षेत्रों में देखा जाता है। [illegible] से लगभग ३ करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी का विनाश हुआ है। इस स्थल के अनेक क्षेत्रों में तेज वायु बहुधा जोते और बोये खेतों पर बालू की परत जमा देती है जिसके फलस्वरूप बीज अंकुरित नहीं होने पाता अथवा हल्की मिट्टी के उड़ जाने से नन्हें पौधे अरक्षित होकर नष्ट हो जाते हैं।

भूमि-क्षरण की हानियाँ

विभिन्न प्रकार से होने वाले भूमि-क्षरण के संयुक्त प्रभावों का राष्ट्रीय योजना समिति (१९४८) ने निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण दिया है :

(१) भीषण तथा आकस्मिक बाढ़ों का प्रकोप। (२) सूखे की लम्बी अवधि जिसका प्रभाव नहरों पर पड़ता है। (३) जल के अतिरिक्त स्रोतों पर प्रतिकूल प्रभाव जिससे कुओं तथा सरों की सतह नीची हो जाती है और सिंचाई में कठिनाई होती है। (४) नदियों की तह में बालू का जम जाना जिससे नदी की धारा में परिवर्तन होता रहता है और नहरों तथा बन्दरगाहों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। (५) उच्च कोटि की भूमि नष्ट हो जाने से कृषि का उत्पादन कम होता जाता है। (६) गड्ढों से होने वाले भूमि-क्षरण तथा नदियों के किनारे के भूमि-क्षरण से खेती योग्य भूमि में कमी पड़ने लगती है।

मिट्टी की सुरक्षा के उपाय

मिट्टी के क्षरण को रोकने के लिए निम्न उपाय काम में लाना आवश्यक है :

(१) पहाड़ी ढालों पर, बंजर भूमि में और नदियों के किनारे वृक्षारोपण किया जाय तथा पशुओं की चराई पर नियन्त्रण रखा जाये।

(२) जोते हुए खेतों के रक्षात्मक आवरण को बनाये रखने के लिए फसलों का हेर-फेर, भूमि को समय पर परती तथा खुला रखना वाञ्छनीय है।

(३) बहते हुए जल का वेग रोकने के लिए खेतों में मेड़बन्दी करना, ऊँची भूमि पर पतली खेती और मैदान में टेढ़ी-मेढ़ी खेती की पद्धति अपनाना आवश्यक है।

(४) बहते हुए जल की मात्रा और मारोपन में कमी करना भी आवश्यक है। इसके लिए (अ) पहाड़ियों के ढाल पर अथवा ऊँचे-नीचे क्षेत्र में बहते हुए जल को संग्रह करने के लिए छोटे-छोटे तालाबों का बनवाना आवश्यक है। (ब) बड़ी हुई नदियों का अतिरिक्त जल रोक रखने के लिए विशाल संग्रहालय तैयार कराये जायें। (स) खेतों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर ऐसे बाँध बनवाये जायें जो एकत्रित जल को अनेक भागों में बाँटकर जल का वेग कम कर देते हैं। इससे उस भूमि की उपजाऊ मिट्टी बहकर जाने से रुक जायेगी।

(५) जो मिट्टी जल द्वारा कट गयी है उसे रोकने के लिए ढालू खेतों के छोर पर खाई खोदना ठीक होता है।

(६) देश के सभी भागों में गाँवों, कस्बों, नगरों के बाहर पशुओं के चराने के लिए निश्चित भूमि में चरागाहों का विकास किया जाये। उन्हें अन्य क्षेत्रों में भटकने से रोका जाय तथा उन्हें उन्हीं चरागाहों में चराया जाय।

जल द्वारा होने वाले मिट्टी के क्षरण को रोकने हेतु (१) भूमि को जोतने के बाद उसे वनस्पति से ढँककर तेज बूँदों के आघात से बचाया जा सकता है। (२) भूमि पर ही पड़ी रहने वाली वनस्पति को स्वतः सड़ने दिया जाय जिससे भूमि की जल-ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि होकर मिट्टी का कटाव रुक सकेगा। (३) खेतों में लतादार पौधे या दालें बोने से भी मिट्टी का कटाव रुकेगा।

वायु द्वारा किये जाने वाले क्षरण को रोकने के लिए (१) उन खादों का प्रयोग किया जाये जिससे भूमि में जल-ग्रहण शक्ति बढ़ती है और भूमि चिपचिपी हो जाती है। (२) बोये और बिना बोये खेतों को बारी-बारी से काम में लाया जाये जिससे बोये हुए खेतों की ढीली भुरभुरी मिट्टी, जो वायु द्वारा उड़ाई जाये, दूसरे खेत में एकत्रित हो जाये और मिट्टी का नष्ट होना रुक जाये। (३) मरुस्थलीय क्षेत्र में मिट्टी को उड़ने से रोकने के लिए १½-२ मीटर ऊँची लोहे की चादरें वायु चलने की दिशा में लगा दी जायें। इससे उड़ती हुई मिट्टी रुक जाती है। इन बालू स्तूपों पे वनस्पति लगा दी जाये। इस प्रकार के प्रयास राजस्थान में किये गये हैं।

योजनाओं के अन्तर्गत भूमि संरक्षण कार्य

प्रथम योजनाकाल में भूमि संरक्षण कार्य के लिए १·६ करोड़ रुपया व्यय किया गया। १० क्षेत्रीय अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण केन्द्र[1] खोले गये। राजस्थान में १९५२ में जोधपुर में एक मरुस्थल वृक्षारोपण तथा अनुसन्धान केन्द्र खोला गया। यह केन्द्र मरुस्थल के उपयुक्त पौधे लगाता है तथा यहाँ से पौधे और बीज उगाने के लिए वितरित किये जाते हैं। लगभग ६ हज़ार हैक्टेअर पर समोच्च बाँध बाँधे गये; ४,८०० हैक्टेअर में वन-रोपण किया गया तथा १·८६ लाख हैक्टेअर में भूमि-संरक्षण के कार्यक्रम लागू किये गये।

द्वितीय योजनाकाल में इस कार्यक्रम में १८ करोड़ की राशि व्यय की गयी। महाराष्ट्र राज्य में लगभग ५० हैक्टेअर एकड़ भूमि पर मेड़बन्दी की गयी। ३०० लाख हैक्टेअर भूमि का भूमि संरक्षण की दृष्टि से सर्वेक्षण किया गया। राजस्थान में जोधपुर के निकट ही चरागाहों के विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत ५०० हैक्टेअर प्रत्येक के ५५ बाड़े स्थापित करने का कार्य आरम्भ किया गया जिसमें अब तक ५० बाड़े तैयार हो चुके हैं।

तृतीय योजनाकाल में लगभग ७७ करोड़ रुपया खर्च कर भूमि संरक्षण कार्य को और भी अधिक बढ़ा दिया गया। इस योजना में निम्न कार्यक्रम निर्धारित किये गये : (१) ३०० लाख हैक्टेअर भूमि पर मेड़बन्दी तथा ५५० लाख हैक्टेअर भूमि पर शुष्क खेती करने की प्रणाली अपनाना। (२) नदी घाटियों में बने बाँधों को अधिक स्थायी बनाने, बाढ़ों को रोकने, भूमि के कटाव का नियन्त्रण करने, मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने तथा ईंधन और औद्योगिक लकड़ी की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए भाखड़ा-नागल, दामोदर, हीराकुड तथा अन्य नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत नदियों के प्रवाह-क्षेत्रों में २५ लाख हैक्टेअर भूमि पर वृक्षारोपण करना। (३) नमकीन और ऊसर मिट्टी का पुनरुद्धार करने तथा उसकी उपजाऊ शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए पंजाब, राजस्थान, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, दिल्ली, गुजरात, आदि राज्यों में ५ लाख हैक्टेअर भूमि का सुधार करना। (४) मरुस्थलीय क्षेत्रों में चरागाह तथा वृक्षारोपण क्रिया द्वारा २½ लाख हैक्टेअर भूमि का पहाड़ी क्षेत्रों तथा बंजर भूमि पर भूमि संरक्षण कार्य करना।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल में ५८ लाख हैक्टेअर भूमि पर संरक्षण कार्य करना था, जिसमें से ५३·६ लाख हैक्टेअर कृषि योग्य और ४·५ लाख हैक्टेअर कृषि के अयोग्य थी। इस कार्य में १५९ करोड़ रुपया व्यय किया जाना था। इसमें १० लाख हैक्टेअर भूमि का पुनरुद्धार किया जाना था। पंचम योजना में मिट्टी का संरक्षण कार्यक्रम ६० लाख हैक्टेअर भूमि पर और अधिक किया जायेगा।

[1] देहरादून, जोधपुर, कोटा, ऊटर, बेलारी, इब्राहिमपटनम, वसद, आगरा, उटकमण्ड और चण्डीगढ़।

उर्वरक और खादें
(MANURES & FERTILIZERS)

खेती पर आश्रित जनसंख्या में वृद्धि होने के फलस्वरूप कृषि योग्य भूमि का अधिकाधिक उपयोग किया जाने लगा है किन्तु इससे गहरी खेती के रूप में अथवा अनेक फसलों के उत्पादन से खेतों की उर्वरा शक्ति का निरन्तर ह्रास हो रहा है। यद्यपि भारतीय मिट्टियाँ विश्व की सर्वोत्तम मिट्टियाँ मानी जाती हैं किन्तु इनका उपजाऊपन अधिक समय तक नहीं चल सकता जब तक कि उसके नष्ट होने वाले तत्त्वों का फिर से उसमें समावेश न किया जावे। अतएव खोई हुई उर्वरा शक्ति पुनः प्राप्त करने के लिए खेतों में उर्वरकों और खादों का देना अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यह उपजाऊ तत्त्व वायु, कीड़े-मकोड़ों तथा वनस्पति द्वारा तो प्रदान किये ही जाते हैं किन्तु कृत्रिम रूप से उपजाऊ तत्त्वों का मिलाया जाना भी आवश्यक है। खेती के प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाने के लिए बाहर से जिन तत्त्वों को मिट्टी में मिलाया जाता है उन्हें खाद या उर्वरक की संज्ञा दी जाती है।

भारतीय मिट्टियों की सबसे बड़ी कमी नाइट्रोजन की है। इस अभाव की पूर्ति के लिए निम्न उपायों का सहारा लिया जाता है :

(१) खेत की खाद (*Farmyard manure*)—यह पशुओं के मलमूत्र तथा घास-पात को मिलाकर तैयार की जाती है। अनुमानतः वर्तमान पशुओं के खाद से प्रति वर्ष ८·३ लाख नाइट्रोजन तैयार होता है। उसका २० प्रतिशत तो नष्ट हो जाता है, ४० प्रतिशत ईंधन के रूप में निकल जाता है और केवल ४० प्रतिशत को खाद के रूप में उपयोग होता है जबकि भारत में प्रति वर्ष कम से कम २६ लाख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता पड़ती है।

यह अनुमान लगाया गया है कि खेतों से तैयार की जाने वाली खाद में यदि उन्नति के सामान्य उपाय ही काम में लाये जायें तो खाद के परिमाण में ५० प्रतिशत और उसके नेत्रजन तत्त्व में १०० प्रतिशत वृद्धि हो सकती है। इससे धरती को सहज ही १० लाख टन अतिरिक्त नाइट्रोजन मिल सकेगा और भारत के खाद्य उत्पादन में प्रतिवर्ष एक करोड़ टन की वृद्धि सम्भव हो सकेगी।

इस प्रकार की उन्नति के ये उपाय काम में लाये जा सकते हैं किसान को खेती की खाद को समुचित ढंग से सुरक्षित रखने की शिक्षा दी जाय। अन्य प्रकार की खादों (उदाहरणार्थ, कम्पोस्ट खाद, रासायनिक खाद, तिलहन की खली की खाद) के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाय और किसानों के लिए सस्ता ईंधन उपलब्ध किया जाय जिससे पशुओं का गोबर खाद के काम में आ सके।

(२) कम्पोस्ट (Compost)—यह हर प्रकार के रद्दी पदार्थों (जैसे कूड़ा-करकट, घास-पात, गोबर-मूत्र, झाड़-झखाड़ और विशेष स्थिति में मैले) को सड़ाकर तैयार किया जाता है। यह प्रक्रिया सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत अब ग्रामीण

खेतों में काफी प्रचलित है जहाँ हर प्रकार का कूड़ा-करकट कम्पोस्ट के रूप में पुन धरती में ही मिला दिया जाता है।

(३) दाल के पौधे और हरी खाद (Leguminous crops)—चना, सनई ग्वार, ढेंचा, मूँगफली, आदि की फसलें भूमि के उपजाऊपन को बढ़ाने वाली होती हैं। सनई की फसल को तो खेत में ही जोतकर उसकी खाद बनाई जा सकती है। भारत में हरी खाद का प्रयोग बहुत कम होता है क्योंकि किसान दरिद्रता के कारण भूमि पर हरी खाद उगाने की अपेक्षा उसमें खाद्यान्नों का उत्पादन करने को बाध्य होते हैं। अनुभव और प्रयोग बताता है कि हरी खाद से फसल को ५० प्रतिशत से लेकर ८० प्रतिशत तक नाइट्रोजन शक्ति प्राप्त होती है और इसका प्रभाव दो तीन वर्ष तक बना रहता है। हरी खाद का उपयोग आंध्र प्रदेश तमिलनाडु उत्तर प्रदेश और बिहार में बढ़ रहा है।

विभिन्न प्रकार की खादों का उपयोग निम्न प्रकार से किया गया है [1]

	१९६६ ६७	१९७० ७१	१९७२
ग्रामीण कम्पोस्ट (करोड़ टन)	१२ २	१५ ५	
शहरी कम्पोस्ट (लाख टन)	३७ ०	४३ ०	४५ ०
हरी खाद (लाख हैक्टेयर भूमि में)	८५ ०	१०४ ०	१०० ०
नाइट्रोजन खाद (लाख टन)	८ ४	१४ ३	१७ ६
फास्फेट खाद (लाख टन)	२ ५	४·६	५ ६
पोटाश खाद (लाख टन)	१ ७	२ ३	३ ०

(४) रासायनिक तथा कृत्रिम खाद (Chemical or Artificial manures) के प्रयोग में दो कठिनाइयाँ आती हैं। पहली, इस तरह की खाद काफी महँगी पड़ती है और दूसरी यदि उचित उपाय न किया जाय तो इनके प्रयोग से भूमि को काफी हानि भी पहुँचती है। कृत्रिम खाद का उपयोग वास्तविक खाद को उत्तजित करने के लिए अथवा उसे पूरक के रूप में करना चाहिए। वस्तुत अनुभव यह रहा है कि लगातार केवल कृत्रिम खाद का ही प्रयोग करने से न केवल भूमि की उर्वरा शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है बल्कि उपज की गन्ध, खाद्यान्न के मूल्य तथा अन्य बातों पर भी इसका घातक प्रभाव पड़ता है। फल और तरकारी इस खाद के प्रयोग से आकार में बड़े हो जाते हैं किन्तु उनमें जल का आधिक्य हो जाता है और वे अपेक्षाकृत जल्द सड़ने लग जाते हैं। अन्न तथा चारे में विटामिन तथा विकास और उन्नति के अन्य उपकरणों की कमी होने लगती है।

मुख्य रासायनिक खादें ये हैं—(1) फास्फेट खाद बिहार में हजारीबाग मुंगेर और गया जिलों से प्राप्त होने वाली अभ्रक का अग होता है। आग्नेय तथा परिवर्तित चट्टानों से भी फास्फेट मिलती है। ऐसी चट्टानें विरुचिरापल्ली और

[1] *India*, 1973 p. 206.

मसूरी के निकट पायी जाती हैं। (ii) पोटाशियम खाद पंजाब, बिहार तथा उत्तर प्रदेश से प्राप्त होती है। (iii) कैलशियम खाद चूने के पत्थर से प्राप्त होती है। यह बहुत सस्ती पड़ती है। भारत में यह शाहबाद (बिहार), कटनी (मध्य प्रदेश) तथा जोधपुर (राजस्थान), जयन्तिया और खासी की पहाड़ियों से प्राप्त होती है। डोलोमाइट से मैगनेशियम के साथ कैलशियम भी मिलती है। डोलोमाइट मसूरी, देहरादून, नैनीताल तथा मध्य प्रदेश से प्राप्त होती है। जिप्सम कश्मीर, उत्तर प्रदेश (देहरादून), जोधपुर और सौराष्ट्र से प्राप्त होती है। (iv) पोटाशियम नाइट्रेट भारत में उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा बिहार में बनाया जाता है। अमोनियम सल्फेट टाटा के लोहे के कारखाने से प्राप्त होती है।

(५) अन्य प्रकार की खादों (Other manures) के अन्तर्गत मछली और समुद्री घास आती है जिसका प्रयोग समुद्रतटीय क्षेत्रों में होता है। इसके अतिरिक्त खाद के रूप में हड्डी का चूरा, धान की भूसी तथा अन्य ऐसे ही तत्त्वों का उपयोग होता है।

(६) बूचड़खानों से प्राप्त पशुओं के लहू को खाद में परिवर्तित करने का कार्य उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल और आन्ध्र राज्यों में किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश में कानपुर, लखनऊ, हापुड़ और गोरखपुर में इस प्रकार की खाद बनायी जाती है। महाराष्ट्र में पूना नगर, पूना छावनी और बम्बई नगर में कई केन्द्रों द्वारा इसका उत्पादन हो रहा है। भारत में हड्डी पीसने की लगभग १०० फैक्ट्रियाँ हैं जहाँ प्रति वर्ष लगभग १½ लाख टन हड्डियाँ पीसी जाती हैं। इस चूर्ण का उपयोग खाद के रूप में किया जाता है।

पंचम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत रासायनिक खादों का उपयोग १९७३-७४ में २० लाख टन से बढ़कर ५२ लाख टन होने का अनुमान है।

वन
(FORESTS)

प्रकृति द्वारा भारत को एक बहुमूल्य उपहार प्राकृतिक वनों के रूप में मिला है, किन्तु मनुष्य ने इसके महत्त्व को पूरी तरह नहीं आँका। विदेशी सत्ता के स्थापित होने, जनसंख्या में तीव्र गति के कारण ईंधन और रेल मार्गों के लिए आवश्यक लकड़ियाँ प्राप्त करने, खेती के लिए अतिरिक्त भूमि प्राप्त करने, बाढ़ एवं दावाग्नि फैल जाने तथा आदिवासियों द्वारा झूमिंग प्रणाली द्वारा खेती किये जाने से वनों का क्रूरता के साथ विनाश किया गया। फलतः आधुनिक काल में वास्तविक वन प्रदेश केवल पहाड़ी भागों में ही मिलते हैं।

वनों के विनाश से होने वाली हानियाँ

वन हमारे देश की राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। इनके कट जाने से देश को अपार आर्थिक क्षति और हानियाँ सहन करनी पड़ती हैं। इन हानियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :

(१) वनों का देश की जलवायु पर गहरा प्रभाव पड़ता है। पंजाब में शिवालिक पर्वतमाला के ढालों पर लगे हुए वनों को बुरी तरह नष्ट कर देने से वहाँ की जलवायु शुष्क हो गयी है जिससे वहाँ की भूमि मरुस्थलीय बनती जा रही है।

(२) वनों के कट जाने से वर्षा कम होने लगती है और भूमि का जल भारी मात्रा में वाष्प बनकर उड़ने लगता है। अब से लगभग ४० वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में वर्षा की झड़ी लग जाती थी जो निरन्तर एक दो सप्ताह तक बनी रहती थी। अब ऐसी वर्षा नहीं होती जिसका कारण वनों की कमी ही है।

(३) पर्वतीय ढालों पर से वन काट देने पर नदियों का प्रवाह तेज हो जाता है जिससे मिट्टी का क्षरण अधिक होने लगता है। वनों के कट जाने से बाढ़ों की भयंकरता में वृद्धि हो जाती है और तटवर्ती ग्रामों को अपार हानि उठानी पड़ती है।

(४) वनों की कमी से भारतीय ग्रामों के निवासियों को ईंधन के लिए लकड़ियाँ कम मिलती हैं। विवश होकर उन्हें गोबर रूपी अमूल्य खाद को उपले बना कर जलाना पड़ता है जिससे खेतों की पैदावार भी घटती जा रही है।

(५) पहाड़ी ढालों पर चाय, रबड़, कहवा, इलायची, आदि की फसलें पैदा किये जाने से भी वनों का क्षेत्रफल कम होता गया है, विशेषकर पश्चिमी घाटों पर।

(६) वनों के कट जाने से पशुओं के लिए चारे में कमी पड़ जाती है। दुधारु पशु निर्बल हो जाते हैं तथा कम दूध देते हैं।

(७) वनों के कट जाने से वनों पर निर्भर उद्योग-धन्धों को भीषण आर्थिक हानि सहन करनी पड़ती है।

सामान्य वनस्पति (Natural Vegetation)

भारत का अधिकांश भाग उष्णकटिबन्ध में स्थित है जबकि कुछ भाग समुद्र

चित्र—६·१

तट से अधिक ऊँचे होने के कारण शीत कटिबन्ध में गिने जा सकते हैं। इन दोनों ही

भागों के मध्य शीतोष्ण कटिबन्ध के भाग हैं। कुछ भागों में वर्षा औसत से भी अधिक हो जाती है जबकि अन्य भाग प्रायः निर्जल ही रहते हैं। भूमि और जलवायु की असमानता के कारण भारत में विभिन्न प्रकार की वनस्पति मिलती है। वर्षा की मात्रा और वितरण ही किसी देश में पायी जाने वाली वनस्पति का निर्णय करता है। प्राकृतिक वनस्पति झाड़ियों, घास के मैदानों अथवा जंगलों का रूप ले लेती है। जहाँ २०० सेण्टीमीटर से अधिक वर्षा होती है वहाँ सदैव हरे-भरे रहने वाले चौड़ी पत्ती के वन होते हैं। ये वन विषवत् रेखीय वनों के अनुरूप होते हैं। इनमें लताएँ, गुल्म, झाड़ियाँ, आदि अधिक होती हैं। १०० से २०० सेण्टीमीटर वर्षा वाले भागों में मानसूनी वन होते हैं जिनकी चौड़ी पत्तियाँ ग्रीष्म में सूख जाती हैं किन्तु वर्षा के अच्छी तरह आरम्भ होने से कुछ ही पहले इनमें फूल आ जाते हैं और पत्तियाँ निकल आती हैं। ये वन अधिक खुले होते हैं, केवल बाँस के वृक्षों के नीचे ही घनी वृद्धि हो सकती है। इन वनों में मुख्यतः साल, सागवान, रोजवुड, पाइन, आदि वृक्ष अधिक होते हैं। ५० से १०० सेण्टीमीटर वर्षा के भागों में कंटीले वृक्षों वाले वन पाये जाते हैं क्योंकि यहाँ भूमि इतनी शुष्क होती है कि इसमें पर्याप्त वृक्षों की उत्पत्ति नहीं होती। कटीली झाड़ियाँ भूमि पर दूर-दूर उगती हैं। बीच की भूमि वर्ष के आधे भाग में खाली रहती है किन्तु वर्षा ऋतु में हरी घास और छोटी झाड़ियों से ढक जाती है। यहाँ बबूल, खेजड़ा, प्रोसोपिस, आदि झाड़ियाँ अधिक उगती हैं। यहाँ ५० सेण्टीमीटर से कम वर्षा के क्षेत्र में अर्द्ध-मरुस्थलीय वनस्पति मिलती है।

जलवायु और भौतिक परिस्थितियों में अन्तर होने के कारण भारत में शीतोष्ण और उष्ण कटिबन्धीय दोनों ही प्रकार की वनस्पतियाँ मिलती हैं। ४१.८ लाख हैक्टेअर भूमि पर कोणधारी वन तथा ६६६.५ लाख हैक्टेअर पर चौड़ी पत्ती वाले वन फैले हैं, अर्थात् कुल वन प्रदेशों का ७% शीतोष्ण वन (३% कोणधारी और ४% चौड़ी पत्ती के वन) और ९३ उष्णकटिबन्धीय वनों के अन्तर्गत (८०% मानसूनी वन, १२% सदाबहार वन और १% अन्य वन) हैं।[1]

भारत में वन-प्रदेशों का वितरण (Distribution of Forests in India)

भारत में ७५३ लाख हैक्टेअर भूमि पर वन हैं। सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल के २३ प्रतिशत भाग में वन फैले हुए हैं। किन्तु वनों का विस्तार सभी क्षेत्रों में समान नहीं है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी बंगाल में वनों का क्षेत्रफल सम्पूर्ण क्षेत्रफल का ८.८ प्रतिशत है जबकि उत्तर प्रदेश में ११.९, उड़ीसा में २२.५%, तमिलनाडु में १३.९%, पंजाब में २.७%, मध्य प्रदेश में ३०.५, बिहार में २२.५%, केरल में २२.७%, आन्ध्र में २०.५%, जम्मू-कश्मीर में २.२, कर्नाटक में १४%, गुजरात में १५.१%,

महाराष्ट्र में ११·८%, असम में २४%, अण्डमान में ७३% और राजस्थान में ४·१% भूमि पर वन पाये जाते हैं।

विभिन्न राज्यों में वनों का विस्तार (१९७०–७१)

(००० हैक्टेअर में)

राज्य	कुल भौगोलिक क्षेत्रफल	वनों के अन्तर्गत क्षेत्रफल
आंध्र प्रदेश	२७,६७६	६,३३७
असम	७,८५३	२,०८०
बिहार	१७,३८८	२,९२८
गुजरात	१९,५९८	१,६३४
हिमाचल प्रदेश	५,५६७	२,७८८
जम्मू-कश्मीर	२२,२२४	२,७७६
कर्नाटक	१९,१७७	२,९९०
केरल	३,८८६	१,०५५
मध्य प्रदेश	४४,२८४	१४,४५९
महाराष्ट्र	३०,७७६	५,६३७
मेघालय	२,२४८	१८०
नागालैण्ड	१,६५३	२९६
उड़ीसा	१५,५८४	४,६७३
पंजाब	५,०३६	१२३
राजस्थान	३४,२२२	१,३५५
उत्तर प्रदेश	२९,४४१	४,९९३
पश्चिमी बंगाल	८,७८५	१,१०१
अंडमान-नीकोबार	८२९	७४०
अरुणाचल प्रदेश	८,३५८	३,१८४
भारत	३२,८,०४८	६५,९२८

भारत के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र में २०·६ प्रतिशत भाग पर, उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र में १०·७ प्रतिशत, मध्यवर्ती क्षेत्र में २६·१ प्रतिशत और दक्षिणी क्षेत्र पर १८·८ प्रतिशत भाग पर वन प्रदेश फैले हैं।

सम्पूर्ण देश के वनों का केवल ८०% भाग ही काम में आने लायक लकड़ियाँ प्रदान करता है शेष २०% अप्राप्य हैं। विश्व के अन्य देशों की तुलना में हमारे यहाँ बहुत ही कम वन पाये जाते हैं। अन्य देशों में तो न्यून से न्यून भी २० से २५ प्रति-

सात भूमि पर वन हैं । सन् १९५२ की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार देश की कम से कम ३३% भूमि पर वन-क्षेत्र होना अनिवार्य है । इस क्षेत्र का वितरण हिमालय पर्वत, दक्षिण के पठार और अन्य पहाड़ी या पठारी क्षेत्रों की ६० प्रतिशत भूमि पर और मैदानों की २० प्रतिशत भूमि पर होना चाहिए । जनसंख्या के बढ़ते हुए भार और ईंधन की माँग के कारण नदी तटों तथा अन्य अनुपजाऊ क्षेत्रों में भी वन प्रदेशों का होना आवश्यक माना गया है ।

प्रशासनिक दृष्टि से वनों का विभाजन

ब्रिटिश शासन में वनों के संरक्षण के लिए प्रशासनिक दृष्टि से उन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा गया था :

(१) जो वन जलवायु की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं उन्हें सुरक्षित वन (Reserved forests) कहते हैं । इन वनों का क्षेत्रफल ४३% है अर्थात् ३५९·० लाख हैक्टेअर । इनमें से न तो लकड़ियाँ ही काटी जा सकती हैं और न पशु ही चराने दिये जाते हैं क्योंकि ये सरकारी सम्पत्ति माने जाते हैं । बाढ़ों को रोकने, भूमि को क्षरण से बचाने, मरुस्थल के प्रसार को रोकने और जलवायु तथा भौतिक कारणों से इनकी आवश्यकता होती है ।

(२) दूसरे प्रकार के वनों को रक्षित वन (Protected forests) कहते हैं । इनमें मनुष्यों को अपने पशुओं को चराने तथा लकड़ी काटने की सुविधा तो दी जाती है किन्तु उन पर कड़ी देखभाल की जाती है जिससे वनों को हानि न पहुँचे । इस प्रकार के वनों का क्षेत्रफल ३०% है अर्थात् २४३·८ लाख हैक्टेअर ।

(३) शेष वनों को स्वतन्त्र या अवर्गीकृत वन (Unclassed forests) कहते हैं । इनमें लकड़ी काटने और पशुओं के चराने पर सरकार की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं है । सरकार इसके लिए कुछ शुल्क लेती है । इन वनों का क्षेत्रफल २७ प्रतिशत है अर्थात् ११३·३ लाख हैक्टेअर ।

अब इस वर्गीकरण के स्थान पर, संविधान के अन्तर्गत निम्न वर्गीकरण स्वीकृत किया गया है :

राजकीय वन (State forests) पूर्णतः सरकारी नियन्त्रण में हैं । लगभग ९५·३% वन इस प्रकार के हैं ।

सामुदायिक वन (Community forests) प्रायः स्थानीय नगरपालिकाओं एवं जिला परिषदों के अन्तर्गत हैं । लगभग २·९% वन इस प्रकार के हैं ।

व्यक्तिगत वन (Individual forests) व्यक्तिगत लोगों के अधिकार में हैं । कुल वनों का लगभग १·८% इस प्रकार के वन हैं ।

आगे दी गयी तालिका में वनों का विभिन्न प्रकार से किया गया वर्गीकरण बताया गया है :

वनों का वर्गीकरण

(लाख हैक्टेअर में)

वर्गीकरण	१९६०-६१	१९६९-७०
विदोहन की दृष्टि से		
व्यवसाय के लिए प्राप्त	४६५·६	४४५·२
भविष्य में प्रयोग किये जाने योग्य	१००·२	११६·४
अन्य	१०२·७	१८३·३
स्वामित्व की दृष्टि से		
राज्य	६५२·४	७११·१
सामुदायिक	२२·६	२०·५
व्यक्तिगत	१४·३	१४·०
वैधानिक दृष्टि से		
सुरक्षित	३१६·१	३५६·०
संरक्षित	२४०·६	२४३·८
अवर्गीकृत	११२·१	११३·३
वृक्षों के प्रकार की दृष्टि से		
पर्णपाती	४४·३	३७·१
चौड़ी पत्ती वाले :		
साल	११३·५	११६·७
सागवान	८७·५	८६·३
अन्य	४४४·३	४९०·३
कुल योग	६८९·६	७४५·६

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में वनों का महत्त्व (Importance of Forests in National Economy)

प्रत्यक्ष लाभ—भारत जैसे कृषि प्रधान देश में वनों का महत्त्व बहुत अधिक है जैसा कि निम्न तथ्यों से स्पष्ट होगा :

(१) वनों का भारत के आर्थिक जीवन में बड़ा स्थान है। १९७०-७१ में देश की राष्ट्रीय आय का लगभग ४५·७% कृषि उद्योग से प्राप्त हुआ है। इसमें १·५% वन सम्पत्ति द्वारा मिलता है अर्थात् लगभग १६६ करोड़ रुपया।

(२) भारतीय वन, चरागाहों के अभाव में, लगभग ५½ करोड़ पशुओं को चराने की सुविधा प्रदान करते हैं। पशुओं की चराई के अतिरिक्त वन प्रदेश अनेक प्रकार के कन्द-मूल-फल भी प्रदान करते हैं जिन पर गरीबों की जीविका निर्भर करती है।

(३) वन लगभग ३० लाख व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से दैनिक व्यवसाय देते हैं। ये लोग लकड़ी काटने, लकड़ी चीरने, गाड़ियाँ ढोने, नाव, रस्सी, बान, आदि तैयार करने तथा गोंद, लाख, राल, कन्द-मूल-फल, आदि एकत्रित करने लगे हैं। वन

क्षेत्र लगभग २'५ करोड़ आदिवासियों का निवासस्थान है और उनके जीवनयापन का महत्त्वपूर्ण साधन है।

(४) वनों से सरकार को काफ़ी आय होती है। १९४९-५० में सरकार को वनों से शुल्क के रूप में ११'२ करोड़ रुपये, और १९६६-६७ में ४० करोड़ रुपये तथा १९६९-७० में ६८ करोड़ रुपये प्राप्त हुए।[1]

(५) वनों से जो गौण उपज प्राप्त होती है उसका मूल्य १९४९-५० में ५'७ करोड़, १९५४-५५ में १५'८ करोड़ और १९६९-७० में २६'५ करोड़ रुपया था। इसके अतिरिक्त इन वर्षों में क्रमशः १७'२ करोड़, ५६ करोड़ और १०५'५ करोड़ रुपये की लकड़ी भी वनों से प्राप्त की गयी।[2]

आम, साखू, सागवान, शीशम, देवदार, आदि लकड़ियों से घर, मकान, दरवाजे, चौखट, कृषि के औजार, जहाज, रेल के डिब्बे, फर्नीचर बनाये जाते हैं।

मुलायम लकड़ियों से कागज और लुग्दी, दियासलाई, प्लाइवुड, तारपीन का तेल, गधाबिरोजा, आदि वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं।

इमारती लकड़ियों के अतिरिक्त जलाने के काम आने वाली लकड़ियाँ (धावड़ा, खैर, बबूल, आदि) वनों से ही प्राप्त होती हैं।

(६) भारत से प्रतिवर्ष लगभग ४ करोड़ रुपये मूल्य की लकड़ियाँ, ७ करोड़ रुपये का कागज और उससे बनी वस्तुएँ तथा १३ करोड़ रुपये के मूल्य की गौण वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं।

अप्रत्यक्ष लाभ—उपर्युक्त प्रत्यक्ष लाभों की अपेक्षा वनों से होने वाले अप्रत्यक्ष लाभ बहुत होते हैं :

(१) वनों से नमी निकलती रहती है जिससे वायुमण्डल का तापमान गिर जाता है, जलवायु में लाभदायक परिवर्तन हो जाता है और वर्षा होती है।

(२) वन वर्षा के जल को स्पंज की भाँति चूस लेते हैं अतः निम्न प्रदेशों में बाढ़ का अधिक भय नहीं रहता है और जल का बहाव धीमा होने के कारण समीपवर्ती भूमि का अपरदन भी रुक जाता है।

(३) वन प्रदेश वायु की तेजी को रोककर बहुत से भागों को शीत अथवा तेज वायु की आँधियों के भय से मुक्त कर देते हैं।

(४) वे वर्षा के जल को भूमि में रोक देते हैं और धीरे-धीरे बहने देते हैं। इससे मैदानी भाग के कुओं का जल तल से अधिक नीचे नहीं पहुँच पाता।

(५) वनों के वृक्षों से जो पत्तियाँ सूखकर गिरती हैं वे धीरे-धीरे सड़-गलकर मिट्टी में मिल जाती हैं और उसको अधिक उपजाऊ बना देती हैं।

[1] *Times of India Directory & Year Book*, 1974-75, p. 69.
[2] *India*, 1974, p. 190.

(६) वन सुन्दर एवं मनमोहक दृश्य उपस्थित करते हैं और देश के प्राकृतिक सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं। अतएव वे देशवासियों में सौन्दर्य-भावना जाग्रत करते हैं और उन्हें सौन्दर्य एवं प्रकृति प्रेमी बनाते हैं।
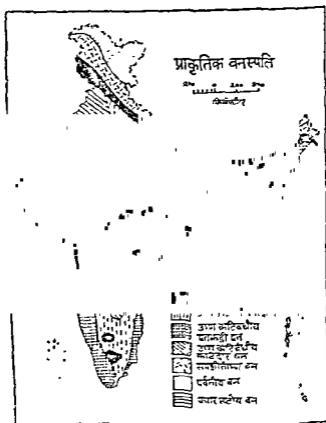
चित्र—६२

(७) घने वनों में कई प्रकार के कीड़े-मकोड़े तथा छोटे-छोटे असंख्य जीव-जन्तु रहते हैं जिन पर बड़े-बड़े जीव अपना निर्वाह करते हैं। भारतीय वनों में कई प्रकार के शाकाहारी (बारहसिंघा, हिरन, साम्भर, बैल, सूअर,) तथा मांसाहारी (तेंदुआ, चीता, शेर) जीव रहते हैं जिनका शिकार कर बहुत से व्यक्ति अपना पेट पालते हैं। भारतीय वनों में लगभग ५०० किस्म के वन्य पशु पाये जाते हैं।

इनके लिए भारत मे कई राष्ट्रीय उद्यान (National Parke) मरक्षित रखे गये हैं; जैसे कोरबट, काग्ह, तरोबा, पालामऊ और हजारों बाग में। पशुओं के क्रीड़ा स्थल के रूप में सिरिसका, गिर, मानस, भरतपुर, जबलपुर, उदयपुर, जाल्दापारा, पेरियर और वहीगाम प्रसिद्ध हैं।

श्री चटरबक के शब्दों में, "वन राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। आधुनिक सभ्यता को इनकी बड़ी आवश्यकता है। ये केवल जलाने की लकड़ी ही नहीं देते प्रत्युत हमारे उद्योग-धन्धों के लिए कच्चा माल और पशुओं के लिए चारा भी प्रदान करते हैं। किन्तु इनका अप्रत्यक्ष महत्त्व सबसे अधिक है।"

वनों के प्रकार
(TYPES OF FORESTS)

भारत में पाये जाने वाले वनों को निम्न भागों में बाँटा जाता है :

(१) उष्ण कटिबन्धीय सदा हरे रहने वाले वन (Tropical wet Evergreen Forests)—यह उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ वार्षिक वर्षा का औसत २०० सेण्टीमीटर तक होता है और वार्षिक औसत तापमान २४° सेण्टीग्रेड के लगभग रहता है। ये भाग क्रमश: उत्तर मे हिमालय की तराई, पूर्वी हिमालय के उप-प्रदेश और दक्षिण में पश्चिमी घाट के ढाल पर महाराष्ट्र से लगाकर उत्तरी और दक्षिणी कनारा, नीलगिरि, अनैमलायी की पहाड़ी, कर्नाटक, केरल और अण्डमान नीकोबार द्वीप तक फैले हैं। पश्चिमी घाट पर ये ४५७ मीटर से १,३७० मीटर की ऊँचाई के बीच और असम में १,०६७ मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं।

सामान्यत: अधिक वर्षा के कारण ये सघन और चिरहरित रहते हैं। वर्षा की मात्रा में कमी होने से ये अर्द्ध-चिरहरित (Tropical Semi-evergreen) हो जाते हैं। वनस्पति की विविधता और अधिकता इन वनों की विशेषता है। इनके वृक्षों की ऊँचाई ३० से ४५ मीटर से भी अधिक होती है। इन वृक्षों की लकड़ी काले रंग की और कठोर होती है। अत: इनको काटने में कठिनाई होती है। विभिन्न प्रकार की लताओं, गुल्मों, झाड़ियों तथा छोटे-छोटे पौधों की अधिकता से ये वन प्रायः दुर्गम होते हैं। इन वनों में अधिकतर रबड़, महोगनी, एबोनी, लौह-काष्ठ, जंगली आम, नाहर, गुरजन, तुलसर, चपलास, तून, ताड़, बाँस, आदि वृक्ष और कई प्रकार की लताएँ अधिक उगती हैं।

(२) उष्ण कटिबन्धीय तर मानसूनी वन (Tropical Wet Monsoon Forests)—ये वन अधिकतर उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा प्राय: १०० से २०० सेण्टीमीटर तक होती है। ग्रीष्म ऋतु के आते ही इन वनों के वृक्षों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं जिससे उनकी नमी अधिक नष्ट न हो सके। इन भागों में ऊँचे (३० से ५० मीटर) और मजबूत वृक्षों के लिए तो काफी जल मिल जाता है किन्तु वर्षा की इतनी अधिकता नहीं होती कि वृक्ष दुर्गम हो जायें। अत: इन वृक्षों के नीचे अधिक गहरे

झाड़-झखाड़ नहीं पाये जाते। चूंकि वृक्षों के नीचे पर्याप्त सूर्य प्रकाश पहुँचता रहता है अतः घास बहुतायत से उत्पन्न हो जाती है। बाँस अधिक पैदा होता है किन्तु बेंत, झाड़ तथा लताओं का अभाव-सा होता है।

इस प्रकार के वन पंजाब से असम तक हिमालय के बाहरी और निचले ढालों पर मिलते हैं। ये वन उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और दक्षिण में पश्चिमी घाट के पूर्व से लगाकर मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तामिलनाडु, कर्नाटक और केरल के शुष्क भागों से कुमारी अन्तरीप तक मिलते हैं। इन वनों में सागवान, साल, कुसुम, बाँस, पलास, हल्दू, हर्र-बहेड़ा, आँवला, साल, अंजन, अर्जुन, बाहल, लाल चन्दन, शहतूत, कच्छ, रीठा, चिरौंजी, आदि के वृक्ष मिलते हैं। इन्हीं वनों से मूल्यवान सागवान और साल की इमारती लकड़ियाँ प्राप्त होती हैं। इनके वनों को सुरक्षित वनों की श्रेणी में रखा गया है। मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग और महाराष्ट्र के चन्द्रपुर (चाँदा) जिले में इनका आधिक्य है।

(३) उष्ण कटिबन्धीय शुष्क कँटीले वन (*Tropical Dry Thorny Forests*)—जिन भागों में वर्षा की मात्रा ५०० सेन्टीमीटर से कम होती है वहाँ जल के अभाव में न तो अधिक ऊँचे वृक्ष ही पाये जाते हैं और न ये हरे-भरे ही होते हैं। इन वृक्षों की साधारणतः ऊँचाई ६ से ६ मीटर तक होती है। यहाँ विशेषतः ऐसे वृक्षों अथवा झाड़ियों की अधिकता होती है जो जल की कमी सहन करने में सक्षम होती हैं। कुछ वृक्षों की जड़ें बहुत लम्बी और मोटी होती हैं जिससे वे भूगर्भ से जल चूस सकें और उन्हें अपने मोटे भागों में संचित रख सकें। कुछ वृक्षों की पत्तियाँ और तने बहुत मोटे होते हैं जिनसे उनकी नमी बाहर न निकल सके। बहुतों पर पत्तियाँ बिल्कुल नहीं या बहुत कम होती हैं किन्तु काँटे अधिक होते हैं। सूर्य की तेज किरणें काँटों की नोंक द्वारा जल की बहुत ही कम मात्रा को उड़ा पाती हैं तथा इन काँटों के कारण वह पशुओं से खाये जाने से भी बच जाते हैं।

इन वनों में अधिकतर नागफनी, रामबाँस, थेजड़ा, बबूल, कीकर, बेर, रीठा, कुमटा, खजूर आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। घास का प्रायः अभाव होता है।

उत्तरी भारत में इस प्रकार के वन दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब, हरियाणा, राजस्थान दक्षिणी और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पाये जाते हैं। दक्षिणी प्रायद्वीप के शुष्क भागों में आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात और महाराष्ट्र में इस प्रकार के वन मिलते हैं।

(४) उष्ण कटिबन्धीय पहाड़ी वन (*Sub-Tropical Montane Forests*) ये वन उष्ण कटिबन्धीय हरे-भरे वनों से मिलते-जुलते हैं किन्तु इनमें न तो उनकी तरह इतना घनापन ही है और न ये उतने ऊँचे ही होते हैं। कुछ भागों में तो ये १५ मीटर या उससे भी कम ऊँचे होते हैं। इस प्रकार के वन दक्षिणी भारत में ६१५ से १,५२५ मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं। इनका सबसे अधिक विस्तार नीलगिरी, त्रिवराम, अनामलाय और पालनी की पहाड़ियों तथा उनके निकटवर्ती

भागों में और महाराष्ट्र में महाबलेश्वर तथा मध्य प्रदेश में पंचमढ़ी में हैं। यहाँ के मुख्य वृक्ष यूजिनिया और मिर्मोमम आदि हैं। उत्तरी भारत मे इस प्रकार के वन पूर्वी हिमालय तथा असम की पहाड़ियों पर ६१५ से १,८३० मीटर की ऊँचाई पर मिलते हैं।

इनमें मुख्यत: बलूत, चैस्टनट, देवदार, लॉरेल, चीड, बेतुला, एलनस, आदि वृक्ष पाये जाते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में यहाँ के वृक्ष ४५ मीटर तक ऊँचे हो जाते हैं जिनके नीचे सदैव झाड़ियों का प्राबल्य होता है।

(५) शीतोष्ण पहाड़ी वन (Temperate Montane Forests)— इस प्रकार के वनों में वृक्ष १५ से १८ मीटर ऊँचे तथा मोटे तने वाले होते हैं जिनके नीचे गहरी झाड़ियाँ आदि होती हैं। इन वृक्षों की पत्तियाँ घनी और सदाबहार होती है। इनकी टहनियों पर भी कई लताएँ आदि लिपटी रहती हैं। यह अनामलाय, पालनी और नीलगिरी पहाड़ियों के अधिक ऊँचे भागों मे पाये जाते हैं। यूजिनिया, मिचेलिया और रोडेनड्रोन्स मुख्य वृक्ष हैं। उत्तरी भारत मे इस प्रकार के वन प्रदेश पूर्वी हिमालय और असम की पहाड़ियों पर १,८३० से २,६०० मीटर ऊँचाई तक मिलते हैं। इनके वृक्ष चीड, बलूत, देवदार और चैस्टनट हैं।

(६) ज्वार प्रदेश के वन (Tidal Forests)—इस प्रकार के वन उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ समुद्र तट पर ज्वार-भाटा के कारण जल फैल जाता है। यहाँ की मिट्टी भी दलदली होती है। अस्तु, यहाँ मुख्यत: ऐसी वनस्पति पैदा होती है जिसकी जड़ें सदैव नमकीन जल मे डूबी रहती हैं। इनसे शाखाएँ निकलकर चारों ओर फैल जाती हैं। ये वृक्ष सदा हरे-भरे रहते हैं और सम्भवत ३० मीटर ऊँचे होते हैं। इनमे मुख्यतः हैरोटीरिया, ताड, नारियल, सरलोप्स, रीजोफोरा, गोनेरीटा, फोनिक्स, आदि किस्म की वनस्पति पायी जाती है।

इस प्रकार के वन मुख्यत: पूर्वी तट पर गंगा के डेल्टा, तामिलनाडु और आंध्र के तटवर्ती जिलों और महानदी, कृष्णा, गोदावरी, आदि नदियों के डेल्टा में मिलते हैं। सुन्दर वन मे सुन्दरी नामक वृक्ष की बहुतायत होती है।

(७) नदी तट के वन (Riverine Forests)—वर्षा ऋतु में नदियों की बाढ़ का जल नदियों के दोनों किनारों पर जहाँ तक फैल जाता है वहाँ वृक्ष उग आते हैं। जो वृक्ष नदी तटों के निकट होते हैं वह अपनी लम्बी जडों द्वारा भूमिगत जल को सींचकर बड़े ऊँचे और सुदृढ़ बन जाते हैं किन्तु जो वृक्ष नदी तट से दूर होते हैं वे प्रायः छोटे और दुर्बल हो जाते हैं। इन वृक्षों मे मुख्यतः बबूल, शीशम, जामुन, इमली, खैर आदि होते हैं। ऐसे वन पंजाब से लगाकर असम तक मिलते हैं किन्तु चूँकि नदी तट की भूमि में खेती अधिक की जाती है अतः वन कम घने ही होते हैं। इन्हीं से किसानों को ईंधन उपलब्ध होता है।

भौगोलिक दृष्टि से भारत के वन प्रदेश

भौगोलिक दृष्टि से भारत में निम्न ६ प्रकार के वनस्पति क्षेत्र पाये जाते हैं : *(i) पूर्वी हिमालय, (ii) पश्चिमी हिमालय, (iii) सतलज* बेसीन, जो राजस्थान में अरावली तक चला गया है, (iv) गंगा का मैदान, (v) मालाबार तट, और (vi) दक्कन।

पर्वतों की ऊँचाई के अनुसार ही उनकी वनस्पति पायी जाती है। हिमालय के पूर्वी भागों में (जहाँ वर्षा घनी होती है) पश्चिमी भागों की अपेक्षा घने और विविध प्रकार के वन पाये जाते हैं। अस्तु, हिमालय के वन प्रदेशों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है : (i) पूर्वी हिमालय के वन, और (ii) पश्चिमी हिमालय के वन।

(i) पूर्वी हिमालय के वन—(क) अर्द्ध-उष्णकटिबन्धीय वन के अन्तर्गत तराई से लेकर १,५२४ मीटर की ऊँचाई तक उगने वाले वन सम्मिलित हैं। इनमें साल, चिलौनी, दिलेनिया, बमूरा, सिनेमन, शीशम, खैर, सेमल, लँडी तथा चन्दन के वृक्ष पाये जाते हैं। सवाना प्रकार की लम्बी घास, बलसम तथा ओरचिड् की झाड़ियाँ भी इन वनों में उगती हैं। बाँस के झाड़ तथा लताओं के कारण ये वन और भी घने हो गये हैं।

(ख) शीतोष्ण कटिबन्धीय वन के अन्तर्गत पूर्वी हिमालय में ओक, बर्च, मैपिल, एल्डर, मगनोलिया तथा लारेल के चौड़े पत्तियों वाले वृक्ष १,५२४ मीटर से २,७४३ मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं।

(ग) शीत शीतोष्ण कटिबन्धीय वन २,७४३ मीटर से ३,६५७ मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं। इनमें मुख्यतः सिलोफर, रोडोडेण्ड्रम, चीड़, स्प्रूस, देवदार, आदि नुकीली पत्ती वाले वृक्ष मिलते हैं।

(घ) पर्वतीय वन ३,६५७ मीटर से ४,८७६ मीटर के बीच में मिलते हैं। इनमें सिलवर फर, बर्च, जूनीपर, भोजपत्र, रोडोडेण्ड्रम, सेज तथा विलन पैदा होती है।

(ङ) ४,८७६ मीटर से प्रायः ६,०९६ मीटर तक छोटी-छोटी घास तथा सुन्दर पुष्पों के पौधे मिलते हैं।

(च) ६,०९६ मीटर की ऊँचाई पर केवल बर्फ जमी रहती है।

(ii) पश्चिमी हिमालय के वन : (क) अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय वन १,५२४ मीटर की ऊँचाई पर पाये जाते हैं। इनमें साल, ढाक, सेमल, बाँस, ताड़, आँवला, शीशम, गूलर, जामुन, बेर, आदि अधिक पाये जाते हैं।

(ख) शीतोष्ण कटिबन्धीय वनों में चौड़ी पत्ती तथा नुकीली पत्ती वाले वृक्ष मिश्रित रूप में मिलते हैं। इनका विस्तार १,५२४ मीटर से ३,६५७ मीटर तक है। निचले भागों में वर्षा की कमी और शीत की अधिकता के कारण चीड़, देवदार,

बलसम, ब्लूपाइन, एल्डर, एल्म, बर्च, पोपलर और ओक वृक्ष मिलते हैं। यहाँ विभिन्न प्रकार के गुलाब (Lilee, Mountain Ask और Hawthorn) भी मिलते हैं। २,११८ मीटर से अधिक ऊँचाई पर नीली चीड और सिल्वर फर के वृक्ष पाये जाते हैं।

(ग) पर्वतीय वन साधारणत ३,६५७ मीटर से ४,५७२ मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं। जूनीपर, सिल्वर फर, पार्स और बर्च अधिक मिलते हैं।

हिमालय पर ऊँचाई के साथ-साथ वनस्पति की किस्म मे भी अन्तर पड़ता जाता है। निचले भागो मे चौड़ी पत्ती वाले वृक्षो की बहुलता होती है जो साधारणतः ६ से ९ मीटर ऊँचे होते है। ये वृक्ष काफी खुले होते हैं। ऊँचे भागो मे नुकीली पत्ती वाले १८ से अधिक मीटर ऊँचे मिलते हैं। बसन्त ऋतु मे इन प्रदेशों में प्रिमुला और मैग्नोलिया आदि किस्मो के फूल बहुतायत से होते हैं तथा ग्रीष्म ऋतु में उत्तम घास भी पायी जाती है।

(iii) सतलज बेसीन राजस्थान, अरावली होते हुए गुजरात और कच्छ तक फैला है। निम्न हिमालय तथा अरावली के ढालों को छोड़कर अथवा जहाँ सिंचाई की सुविधाएँ हैं, अन्य सभी क्षेत्रों में वनस्पति बहुत ही बौनी और बिखरी पायी जाती है। इसका स्वरूप अर्द्ध-मरुस्थलीय है। अधिकतर ऐसी वनस्पति मिलती है जो झाड़ियों का रूप लिए होती है और जो अधिक समय तक सूखा सह सकती है।

(iv) गंगा का मैदान एक प्रकार से वनस्पति विहीन-सा ही है, जहाँ अधिक जनसंख्या के कारण वन क्षेत्रों का निरन्तर ह्रास होता रहा है। वर्षा में भिन्नता पायी जाने के कारण तीन प्रकार की वनस्पति पायी जाती है: (अ) पश्चिम मे शुष्क उत्तर प्रदेश में सूखे वन तथा सवाना किस्म की घास पायी जाती है; (ब) गंगा के मध्य और पूर्वी क्षेत्र में बिहार, असम और प० बंगाल के डेल्टाई भागो के अतिरिक्त आम, अंजीर, ताड़, कटहल, सुपारी, आदि के वृक्ष, चावल के खेत और कमल से भरे असख्य तालाब पाये जाते हैं; (स) सुन्दर वन में सुन्दरी वृक्षो के अतिरिक्त सुपारी, केवडा, रोजीफोरा, आदि के वृक्ष मिलते हैं।

(v) मालाबार तट की जलवायु आर्द्र एवं उष्ण है अतः घनी वनस्पति पायी जाती है। तटीय क्षेत्रों में नारियल, सुपारी, कटहल तथा कालीमिर्च और पान की लताएँ पायी जाती हैं। वनस्पति अधिकतर मलयेशिया समूह और श्रीलंका समूह से मिलती-जुलती पायी जाती है। घाटी के पूर्वी शुष्क भागो मे सागवान तथा चन्दन के वृक्ष पाये जाते हैं। पश्चिमी घाटो के पश्चिमी भागो में अधिक वर्षा के कारण सदा-बहार वन मिलते हैं जिन्हें शोला वन (Shola forests) कहते हैं।

(vi) दक्कन के पठार पर तटीय भागो मे तथा पूर्वी भागो में सदाबहार वन और अन्यत्र मानसूनी वन मिलते हैं। उत्तर में साल, मध्यवर्ती क्षेत्रों मे सागवान और दक्षिणी भागों में सेटिनवुड, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, तुन, आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।

भारतीय वनों से प्राप्त होने वाली वस्तुऐं (Forest Produce)

भारतीय वनों का महत्त्व उनके क्षेत्र के कारण नहीं है वरन् इन वनों से कुछ विशिष्ट प्रकार की उपजें प्राप्त होती हैं जो विश्व के अन्य भागों में उत्पन्न नहीं होतीं और जिनका आर्थिक महत्त्व होता है, जैसे चन्दन की लकड़ी, लाख, बीड़ी बनाने की पत्तियाँ, गर्गगया, बेलेडोना, नक्स-वोमिका, ऐट्रोपा और एकोनाइट प्रभृति औषधियाँ।

वनों से प्राप्त होने वाली विभिन्न वस्तुओं को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है :

(१) मुख्य उपजें,
(२) गौण उपजें।

(१) मुख्य उपजें (Major Products)

भारतीय वन कई प्रकार की लकड़ियों में धनी हैं। इनमें ५,००० किस्मों से भी अधिक प्रकार की लकड़ियाँ मिलती हैं जिनमें से ४५० तो व्यापारिक महत्त्व की हैं। इन वनों से सागवान, साल, देवदार, शीशम, चीड़, बबूल, चन्दन आदि की दृढ़ और टिकाऊ लकड़ियाँ मिलती हैं। १९५०-५१ में १९ करोड़ रुपये के मूल्य की लकड़ियाँ वनों से प्राप्त की गयीं, १९५५-५६ में २७'६ करोड़, १९६०-६१ में ४८'५ करोड़, १९६५-६६ में ५८'५ करोड़ और १९६९-७० में १०४'५ करोड़ रुपये की।[1]

औद्योगिक एवं ईंधन की लकड़ियों का उत्पादन

वर्ष	औद्योगिक लकड़ियाँ	ईंधन की लकड़ियाँ	योग	मूल्य
		(लाख घन मीटर में)		(करोड़ रुपयों में)
१९६०-६१	५४'३	११६'४	१७०'७	४८'५०
१९६७-६८	८७'३	१२६'५	२१३'८	८३ ०२
१९६८-६९	९६'८	११५ ५	२१२'३	९७ ८९
१९६९-७०	९३'९	१२६'०	२१९'९	१५० ५१

हिमालय प्रदेश की लकड़ियाँ

(१) श्वेत सनोबर (Silver fir) नुकीली पत्ती वाले वृक्ष २,२०० से ३,००० मीटर की ऊँचाई तक पश्चिमी हिमालय में कश्मीर से झेलम तक और पूर्वी हिमालय

[1] *India*, 1974, p. 190.

में विचास से नेपाल तक मिलते हैं। यह ६० मीटर तक ऊँचे और ६ से ७ मीटर तक मोटे होते हैं। इनकी लकड़ी सफेद और नर्म होती है किन्तु टिकाऊ नहीं होती। अतः इसका प्रयोग हल्के सन्दूक, पैकिंग, तख्ती, दियासलाई तथा कागज की लुग्दी अथवा फर्श में तख्ताबन्दी करने मे होता है। इनकी मात्रा बहुत अधिक है किन्तु ये अधिकतर ऊँचाई पर होने से अप्राप्य हैं।

(२) देवदार (Deodar) का सदाबहार पर्णपत्ती वृक्ष स्वाभाविकतया ३० मीटर तक ऊँचा और १० मीटर मोटा है। यह हिमालय मे काश्मीर और चम्बा जिले में १,६६० से ५,४०० मीटर की ऊँचाई तक गढ़वाल के पश्चिम मे जौनसार बावर तथा हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियों में पाया जाता है। इसका क्षेत्रफल ५,१८० वर्ग किलोमीटर है। इसकी लकड़ी साधारणत: कठोर, भूरी, पीली और सुगन्धयुक्त तथा टिकाऊ होती है। यह सभी प्रकार के निर्माण कार्यों (विशेषकर रेल के स्लीपरों के बनाने) में प्रयुक्त होती है क्योंकि यह टिकाऊ होती है। इससे एक प्रकार का सुगन्धित तेल भी निकाला जाता है।

(३) चीड़ (Chir) का नुकीली पत्ती वाला सदाबहार वृक्ष १,००० से २,००० मीटर की ऊँचाई पर काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा नैपाल मे बाहरी हिमालय के उत्तरी ढालों पर ७,३६० वर्ग किमी० क्षेत्र में पाया जाता है। लघु-हिमालय के दक्षिणी ढालों पर इसका अभाव पाया जाता है क्योंकि यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है और मानसूनी वर्षा भी बहुत होती है। इसकी ऊँचाई १८ से ३० मीटर तक होती है। इसकी लकड़ी का उपयोग चाय तथा साबुन पैक करने की पेटियों और नाव बनाने में होता है। लकड़ी में तारपीन का तेल और बिरोजा प्राप्त किया जाता है। इसकी लकड़ी लाल और कठोर होती है।

(४) नीली पाइन (Blue Pine) का वृक्ष १,८०० से ३,६०० मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। इनके अनेक वन अधिकतर पंजाब, काश्मीर, हिमालय प्रदेश तथा सम्पूर्ण हिमालय और तिब्बत की चुम्बा घाटी से पूर्व की ओर वाले भागों में पाये जाते हैं। इसकी लकड़ी साधारणतः कठोर और अच्छी होती है तथा हल्के लाल रंग की होती है। इसका वृक्ष ३० से ४५ मीटर ऊँचा और १ से ४ मीटर मोटा होता है। यह साज-सामान, बढ़िया बिरोजा, तारपीन का तेल और स्लीपर आदि बनाने के काम आती है।

(५) स्प्रूस (Spruce) प्राय: २,१०० से ३,६०० मीटर की ऊँचाई तक मिलता है। इसकी लकड़ी सफेद और कोमल होती है। उत्तरी भारत में यह लकड़ी काश्मीर से हिमालय में मिलती है। इसका प्रयोग मकानों की छतों पर फर्श में तख्ताबन्दी करने और सस्ते फर्नीचर बनाने में होता है। इसका वृक्ष ६१ मीटर से भी अधिक ऊँचा और ६ मीटर तक मोटा होता है।

मानसूनी वनों की लकड़ियाँ

(१) सागौन (Teak) तामिलनाडु, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, पश्चिमी घाट,

नीलगिरि पहाड़ियों के निचले ढालों तथा उड़ीसा से प्राप्त होता है। इसके मुख्य क्षेत्र महाराष्ट्र के उत्तरी किनारा, चन्द्रपुर और खानदेश जिले तथा मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले हैं। इसकी लकड़ी बहुत दृढ़ और सुन्दर होती है तथा टिकाऊ होने के कारण इससे रेलगाड़ी के डिब्बे, फर्नीचर, जहाज, आदि बनाये जाते हैं। इसके वनों का क्षेत्रफल ५७,२१६ वर्ग किलोमीटर है। इसका उपयोग टिकाऊ और घरेलू फर्नीचर बनाने में अधिक होता है।

(२) साल (Sal) के वन पंजाब प्रदेश के कांगड़ा से लेकर असम के नवगाँव जिले तथा गारो की पहाड़ियों तक हिमालय के निचले ढालों एवं तराई के भागों में विस्तृत पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, असम, छोटा नागपुर, मध्य प्रदेश, उत्तरी तमिलनाडु और उड़ीसा में भी इनके वन फैले हैं। यह भूरे रंग की कठोर और टिकाऊ लकड़ी होती है। इसके वन १,०६,६४६ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हैं। इसका प्रयोग रेल के डिब्बे, लकड़ी की पेटियाँ, तम्बू, पुल, खम्भे, खिड़कियाँ बनाने और घरेलू काम में होता है।

(३) शीशम (Sisoo) मुख्यतः उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा तमिलनाडु के शुष्क भागों में प्राप्त होती है। कुछ सीमित परिमाण में यह पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, असम और मध्य प्रदेश से भी प्राप्त होती है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है अतः साधारणतया कठोर होती है। इसका उपयोग, मकान, फर्श तथा फर्नीचर बनाने और रेल के डिब्बे बनाने में होता है।

(४) महुआ (Mahua) अधिकतर छोटा नागपुर के पठार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान में बहुत होता है। यह लकड़ी बहुत कठोर होती है इसलिए इसके काटने में बहुत कठिनाई होती है। इसका कच्चा फल पकाया जाता है और तेल निकाला जाता है। पके फल से देशी शराब बनायी जाती है।

(५) हर्र-बहेड़ा (Myrabolans) महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार और पश्चिमी बंगाल में मिलती है। हर्र दवाई और रंगाई के काम आती है तथा बहेड़ा की लकड़ी बहुत कठोर होने के कारण पेटियाँ, सामान भरने के डिब्बे आदि बनाने के काम में आती है।

(६) चन्दन (Sandalwood) का वृक्ष मुख्यतः दक्षिणी भारत के शुष्क भागों (कर्नाटक और तामिलनाडु) में उगता है। इसकी लकड़ी कठोर और ठोस होती है तथा इसका रंग पीला-भूरा होता है और इसमें से तेज सुगन्ध आती है। इसी से इसका मूल्य और महत्त्व अधिक है। इससे चन्दन का तेल निकाला जाता है तथा लकड़ी का उपयोग खुदाई करने और सजावट की सामग्री बनाने में किया जाता है।

(७) सेमल (Semul) का वृक्ष असम, बिहार और तामिलनाडु में उगता है। इसकी लकड़ी मुलायम और सफेद रंग की होती है। इसका उपयोग खिलौने, तख्ते और पेटियाँ बनाने में होता है।

(८) सुन्दरी (Sundari) वृक्ष गंगा के डेल्टा में बहुतायत से होता है। इसकी लकड़ी कठोर और ठोस होती है। इससे नाव, मेज, कुर्सियाँ, खम्भे, आदि बनाये जाते हैं।

सदाबहार वनों की लकड़ियाँ

आबनूस (Ebony) लकड़ी बहुत काले रंग की किन्तु दृढ़, कठोर और टिकाऊ होती है। यह पश्चिमी घाट के जंगलों में पायी जाती है। इसका अधिकतर प्रयोग फर्नीचर, छड़ियाँ और छतरियों के दस्ते बनाने में होता है। इस पर खुदाई का काम भी अच्छा होता है।

(२) गौण उपजें (Minor Products)

अन्य उपयोगी वस्तुएँ जो वनों से प्राप्त होती हैं वे बबूल, शहद, मोम, बाँस, आँवला, बाम, बेंत, अनेक प्रकार के रेशे, गोंद, लाख, बिरोजा और चमड़ा रंगने की छालें, आदि हैं। ये सभी भागों में उपलब्ध होती हैं। भारतीय वनों में लगभग ३,००० से भी अधिक किस्म की गौण वस्तुएँ प्राप्त होती हैं जिनका मूल्य १९५०-५१ में ५.६ करोड़ रुपया; १९५५-५६ में ८ करोड़, १९६०-६१ में ११ करोड़ रुपया; १९६५-६६ में १५.८ करोड़ रुपया था तथा १९६९-७० में २६.५ करोड़ रुपया था।

गौण वस्तुओं का उत्पादन

(मूल्य लाख रुपयों में)

वस्तुएं	१९६७-६८	१९६८-६९	१९६९-७०
बाँस एवं बेंत	३०१.१७	३४७.९७	३६४.४४
घास	१३८.७१	११९.०४	१५४.४४
बाम	५७.६६	४७.७६	५२.९३
गोंद/बिरोजा	३२८.११	३४६.६३	३५७.८९
बीड़ी बनाने की पत्तियाँ	८८३.९८	१३७२.०७	१०६०.७८
लाख	२.५३	१.४६	३.८८
अन्य	६११.८६	७८९.७७	९५६.२०
योग	२४१३.०२	३०२४.७३	२६५०.५६

लाख (Shellac) भारत ही विश्व में ऐसा देश है जहाँ सबसे अधिक लाख उत्पन्न की जाती है। लैसीफर लक्का (*Laccifer lacca*) या लाख का कीड़ा (Lac Bug), कुसुम, बरगद, सिरस, खैर, अरहर, रीठा, घोंट, सीसू, कोठन, पीपल, बबूल, गूलर और पलाश आदि वृक्षों की नरम डालों के रस को चूसकर एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ निकालते रहते हैं, इसे ही लाख कहते हैं। ये वृक्ष विशेषतः बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में पैदा होते हैं। लाख का कीड़ा प्रधानतः समुद्र-तल से १०५ मीटर ऊँचे भागों में, जहाँ १२° सेंटी० तक तापमान और १५० सेमी० से कम वर्षा होती है, पाया जाता है। बहुत से क्षेत्रों में तो लाख वृक्षों पर जंगली अवस्था में

पायी जाती है लेकिन जिन क्षेत्रों में लाख का कीड़ा बिना पाले हुए मिलता है वही स्थान लाख के अनुकूल समझा जाता है। अधिकतर लाख को उत्पन्न करना पड़ता है। लाख पैदा करने के लिए ऊपर के वृक्षों में छोटी-छोटी लकड़ियाँ बाँध दी जाती हैं जिनमें लाख के कीड़ों के बीज होते हैं। ये कीड़े धीरे-धीरे सारे वृक्ष पर फैल जाते हैं। जून, जुलाई, अक्टूबर और नवम्बर के महीनों में नये वृक्षों पर लाख का कीड़ा फैलाया जाता है। यह उन वृक्ष का रस चूसकर लाख बनाना आरम्भ कर देता है। छः महीने के पश्चात् लाख इकट्ठी कर ली जाती है। इस लाख को पीसकर चलनियों से छाना जाता है फिर उसे कई बार धोकर शुद्ध लाख (Shellac), दाना लाख (Seed lac) या बटन लाख (Button lac) प्राप्त की जाती है और सफाई करने के बाद इससे चपड़ा तैयार किया जाता है। लाख साफ करने और उससे चपड़ा तैयार करने का काम उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर, बिहार में राँची और इस्लामगंज, मध्य प्रदेश में कटनी, गोंदिया और उमरिया तथा बंगाल में लटरा, मालदा और कलकत्ता में किया जाता है।

भारत लाख का सबसे बड़ा उत्पादक है। यहाँ लाख उत्पादन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र निम्नलिखित हैं :

(i) बिहार—छोटा नागपुर संभाग (जहाँ भारत में उत्पादित कुल लाख के ५०% भाग से अधिक उत्पादन होता है); संथाल परगना और गया जिले। (ii) मध्य प्रदेश : बिलासपुर, मण्डारा, रायपुर, बालाघाट, छिंदवाड़ा, जबलपुर, सरगुजा, माण्डला, रायगढ़, उमरिया, शहडोल और होशंगाबाद जिले। (iii) पश्चिमी बंगाल : मुर्शिदाबाद, मालदा और बाँकुड़ा जिले। (iv) मेघालय—(खासी और जैंतिया, गारो की पहाड़ियाँ), असम (नौगाँव, कामरूप और शिवसागर जिले)। (v) उड़ीसा—सम्बलपुर, मयूरभंज, बोलंगिर, ढेंकनाल और क्योंझार जिले। (vi) गुजरात—पंचमहल और बड़ौदा जिले, और (vii) उत्तर प्रदेश—मिरजापुर जिला।

एक वर्ष में लाख की चार फसलें प्राप्त हो जाती हैं। रंगीन अंशु (strain), बेर और पलास के वृक्षों से प्राप्त होने वाली फसलों को बैसाखी और कतकी, 'कुसुम' वृक्षों पर 'कुसुम' अंश से प्राप्त होने वाली फसलें अगहनी और जेठवी के नाम से पुकारी जाती हैं।

कुल उत्पादन का ६२% बैसाखी फसल में, २३% कतकी और १५% जेठवी और अगहनी फसल का होता है। १९५०-५१ में ४० हजार मीटर टन, १९६०-६१ में ६३ हजार मीटर टन और १९६६-६७ में कुल उत्पादन लगभग ३० हजार मीटर टन का हुआ। १९७०-७१ में ४५ हजार मीटर टन का उत्पादन किया गया। १९७३-७४ में यह उत्पादन ५२ हजार मीटर टन था।

लाख के उत्पादन का अधिकांश भाग निर्यात कर दिया जाता है (लगभग ९५ प्रतिशत भाग)। १९७२-७३ में लगभग ६ करोड़ के मूल्य का निर्यात हुआ। १९७०-७१ में यह ४·९ करोड़ के मूल्य का था। यह निर्यात मुख्यतः अमरीका, ब्रिटेन, प०

जर्मनी हांगकांग, इटली, फ्रांस, जापान, चीन, स्वीडेन, ब्राजील, अर्जेन्टाइना और रूस को होता है। भारत विदेशों से विशेषतः थाईलैण्ड और मलयेशिया से लाख का आयात भी करता है। उससे चपड़ा या बटन लाख बनाकर पुनः निर्यात कर देता है। भारत से लाख का निर्यात मुख्यतः दाना लाख और चपड़े के रूप में होता है। किन्तु कच्ची लाख, कीरी लाख और रद्दी लाख का भी निर्यात किया जाता है।

लाख का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह मद्यसार (alcohol) को छोड़कर अन्य सामान्य द्रवों में नहीं घुलता। यह एक विद्युत निरोधक तत्त्व भी है। इन्हीं दोनों कारणों से लाख का उपयोग अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाने में किया जाता है। भारत में लाख का उपयोग लेपन उद्योग में बहुत अधिक होता है। इस क्षेत्र में यह प्रायः सजावट अथवा सुरक्षित रखने के लिए विविध प्रकार की वार्निशों और सुनहरी वार्निशों आदि पदार्थों के रूप में प्रयोग किया जाता है। जिन उद्योगों में लाख का प्रयोग अधिक होता है इनमें से कुछ मुख्य ये हैं: दवाइयाँ, नाखूनों पर लगाने का वार्निश, डेंटल-प्लेट, आतिशबाजी और युद्ध-सामग्री, चूड़ियाँ, जवाहरात की जड़ाई, बरतनों, आदि पर लेप करना, चिकनाई रोक कागज, शीशे के लिए लेप, मोम की रंगीन पेंसिलें बनाना, ऐनकों के फ्रेम, ग्रामोफोन-रेकार्ड, चमड़ा, मोमजामा, बिजली निरोधक कपड़ा, मुहर लगाने का चपड़ा, माइकेनाइट उद्योग, आदि।

भारत में कच्ची लाख से लाख तैयार करने के कारखानें पाँच राज्यों में हैं: बिहार (३७), प० बंगाल (३३), मध्य प्रदेश (२०), महाराष्ट्र (७) और उत्तर-प्रदेश (४)।

चमड़ा रंगने के पदार्थ (Tanning Materials)

भारतीय वनों में उत्पन्न अनेक वृक्षों की छाल, फल आदि चमड़ा कमाने और रंगने के काम आते हैं। बबूल के वृक्ष की छाल, हड़ और बहेड़ा आदि से चमड़ा कमाया और रंगा जाता है। यह वृक्ष उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजस्थान, हरियाणा में बहुतायत से उगता है। तुरवड़ की झाड़ियों की जड़ों से छाल प्राप्त कर चमड़ा रंगने का कार्य महाराष्ट्र और तामिलनाडु में किया जाता है। डेल्टाई वनों में सुन्दरी वृक्ष की छाल से तथा शुष्क पहाड़ों भागों और तराई के वनों से कथ वृक्ष के फल से चमड़ा रंगा जाता है। बहेड़ा फल का सबसे अधिक उपयोग चमड़ा रंगने के लिए किया जाता है। यह मुख्यतः महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तामिलनाडु, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में पैदा होता है। इससे सूत, ऊन और रेशम रंगा जाता है। राजस्थान में आवला, रोमरू की छाल, ढाक के फूल और फलों से हरा, नीला लाल और पीला रंग प्राप्त कर कपड़ा और चमड़ा रंगा जाता है।

दियासलाई बनाने के लिए सेमल, मुरकट, धूप, पपीता, आम, सुन्दरी, सलाई, आदि वृक्षों की लकड़ी काम में ली जाती है। ये वृक्ष मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश की तराई में पाये जाते हैं।

गोंद (Gum) सामान्यतः नीम, पीपल, खेजड़ा, कीकर, बबूल, आदि वृक्षों का

रस होता है जो सूखने पर इन वृक्षों के तनों पर जम जाता है। इसका उपयोग चिपकाने वाला गोंद, चूड़ियाँ, खाने वाला गोंद बनाया जाता है। वस्त्रों पर छींट बेल-बूटे आदि छापने के रंग तैयार करने तथा काली स्याही तैयार करने में भी भारी मात्रा में उपयोग में लाया जाता है।

राल और बिरोजा (Resin)—चीड़ और नीली चीड़ के वृक्षों पर चीरे लगा कर दूध के रूप में प्राप्त होता है इसे राल कहते हैं। इसी राल से तारपीन का तेल बनाया जाता है। तेल बनाने के उपरान्त जो कीचड़ या मैल-सा बच जाता है वह शुष्क होने पर बिरोजा कहलाता है। राल का उपयोग स्याही, कागज, तैलिया कागज, लाख, साबुन आदि बनाने के कामों में लिया जाता है। राल अधिकतर उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी पंजाब के पर्वतीय क्षेत्रों से प्राप्त की जाती है। तारपीन के तेल से वार्निश, नकली कपूर और जूतों की पालिश तैयार की जाती है।

गूगल का वृक्ष मुख्यतः राजस्थान के शुष्क कटीले क्षेत्रों में अधिकता से पैदा होता है।

तुंग के वृक्षों से तेल निकाला जाता है। इसका उपयोग वार्निश, रंग तथा जल निरोधक कपड़े बनाने में किया जाता है। यह अधिकतर असम, बिहार और उत्तर प्रदेश में पैदा होता है।

महुआ के फलों से तेल एवं शराब निकाली जाती है। यह मुख्यतः राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र में होता है।

बांस और बेंत मुख्यतः महाराष्ट्र, दक्षिण राजस्थान, उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल, केरल, कर्नाटक, असम, नागालैण्ड, मेघालय, त्रिपुरा, राज्यों में होती हैं। इनसे छप्पर, टोकरियाँ, मकान की छतें तथा कुर्सियाँ आदि बनायी जाती हैं।

घासें (Grasses)—भारत के कई भागों में सुगन्धित घासें पायी जाती हैं जिनसे सुगन्धित तेल प्राप्त किया जाता है। (i) खसखस घास मुख्यतः राजस्थान के भरतपुर जिले में प्राप्त होती है। इससे खसखस का तेल और खसखस की टाटियाँ बनायी जाती हैं। (ii) रोशाघास महाराष्ट्र, दक्षिणी भारत और मध्य प्रदेश के शुष्क भागों में पैदा होता है। इससे सुगन्धित तेल बनाया जाता है। इससे कृत्रिम सुगन्ध बनायी जाती है। (iii) लेमनघास (Lemon grass) कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु में पैदा होती है। इससे सुगन्धित द्रव तैयार किये जाते हैं। (iv) मूंज, हाथी घास, सबाई, भैंब आदि घासों का उपयोग कागज बनाने में विशेष रूप से किया जाता है। ये घासें तराई, उत्तर प्रदेश, बिहार उड़ीसा और पश्चिम बंगाल, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश तथा असम के वनों से प्राप्त होती हैं।

अन्य वस्तुएँ—उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त और भी कई पदार्थ भारतीय वनों से प्राप्त किये जाते हैं; जैसे :

(१) पौष्टिक फल, बेर, आँवला, खिरनी, इमली, गोंद, आम, जामुन, सीता-फल, टींमरू, महुआ, चिरौंजी आदि।

(२) हाथीदांत, हड्डियाँ, मोम, शहद, कत्था, कद्द, पक्षियों के पंख, आँतें, सिंह चर्म और मृगछाला, साँप और चमड़ा, खालें।

(३) रीठा, रंग बनाने वाले फूल और पौधे, राल, रबड़।

(४) रेशेदार पौधे, सेमल, आक, रामबांस, वन कपास।

(५) अनेक प्रकार की व्यापारिक महत्त्व की जड़ी-बूटियाँ जिनसे सुगन्धित एवं औषधि तेल बनाया जाता है। युकलिप्टस, क्लोरोट, पीपरमिंट, यूकेलिप्टस, एगेटिक एसिड, सर्पगंधा, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, बेलाडोना, सिकोना, मेंथिल एल्कोहोल, मल्फोनीमाइड औषधियाँ हैं।

वन उद्योग की हीन दशा (Backwardness of Indian Forestry)

पाश्चात्य देशों की तुलना में भारत के वन उद्योग की दशा बड़ी गिरी हुई है। इन वनों की वार्षिक प्रति हैक्टेअर उत्पादकता केवल ०·२८ घन मीटर है जबकि अमरीका में यह १·२२, जापान में २·८ और फ्रांस में ३·६ घन मीटर है। भारतीय वनों की हीन दशा के निम्न मुख्य कारण हैं :

(१) असम और मध्य प्रदेश को छोड़कर शेष लगभग सभी राज्यों में वनों का क्षेत्रफल न्यूनतम आवश्यक क्षेत्र (३३%) से भी कम है और वन क्षेत्र का वितरण बड़ा असमान है। प्रति व्यक्ति पीछे भारत में वनों का क्षेत्रफल ०·१५ हैक्टेअर है जबकि यह क्षेत्रफल रूस में ३·५ हैक्टेअर तथा संयुक्त राज्य में १·८ हैक्टेअर है। विश्व का औसत १·१६ हैक्टेअर है।

(२) एक क्षेत्र में एक ही प्रकार के वृक्ष समूह में इकट्ठे नहीं मिलते बल्कि अन्य प्रकार के वृक्षों के साथ मिले पाये जाते हैं। अतः किसी विशेष प्रकार की लकड़ी प्राप्त करने में समय और खर्च दोनों ही अधिक लगता है।

(३) भारत में लकड़ियों का उपभोग कम रहता है। लोगों के रहन-सहन का स्तर नीचा होने से फर्नीचर आदि का अधिक उपयोग नहीं किया जाता। अशिक्षा के कारण कागज बनाने के लिए लकड़ी की अभी उतनी माँग नहीं रहती जितनी संयुक्त राज्य या इंगलैण्ड में। अतः वन प्रदेशों का विदोहन पूरी तरह नहीं हो पाता।

(४) लगभग ४०% वन ऊँचे पर्वतों पर होने से मनुष्य की पहुँच से परे हैं और जहाँ पहुँच सम्भव है वहाँ भी परिवहन के साधनों की कमी से वनों का पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता है।

(५) लगभग ३७% वन निजी सम्पत्ति हैं और साधारणतः बिना विचारे नष्ट किये जाते हैं। शेष ६३% सरकार की सम्पत्ति हैं परन्तु केवल ५०% वन विभागों के नियन्त्रण में हैं। दुर्भाग्य से कुछ समय पूर्व तक वन विभागों का उद्देश्य भी केवल वनों की रक्षा करना था। वनों का क्षेत्रफल बढ़ाने या इनसे व्यापारिक लाभ उठाने की ओर इनका ध्यान नहीं गया था।

(६) प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव, अवैज्ञानिक वन व्यवस्था और वन उपज के उपयोग सम्बन्धी अनुसन्धानों का अभाव भी इसके लिए उत्तरदायी है।

(७) वन-विज्ञान और वन-रक्षण विद्या के ज्ञान के अभाव में वन सम्पत्ति का पूरा लाभ नहीं उठाया जा सका है। आज भी हम अपने वनों में पायी जाने वाली कई प्रकार की लकड़ी के गुणों, महत्त्व और उपयोगिता के विषय में अनभिज्ञ हैं।

(८) हमारे देश में लकड़ी काटने के ढंग भी बहुत पुराने हैं। इससे बहुत सी लकड़ी व्यर्थ ही नष्ट हो जाती है। अधिकतर कच्ची लकड़ी ही काटली जाती है जो काटने पर सिकुड़ने के साथ-साथ कीटाणुओं से भी नष्ट हो जाती है।

(९) कई राज्यों मे वन-विभाग अविकसित हैं। सख्या और योग्यता दोनों की दृष्टि से हमारी वन-सेवा पिछड़ी हुई है।

वनों की उन्नति के उपाय

वन हमारी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। हमको इसी रूप में इनकी रक्षा और विकास करना होगा और इनके सर्वोत्तम उपयोग के साधन जुटाने होंगे। कुछ सुझाव निम्न प्रकार हैं :

(१) केन्द्रीय वन-मण्डल (Central Board of Forestry) को चाहिए कि प्रारंभिक जाँच करके प्रत्येक प्रदेश के लिए वनों का न्यूनतम प्रतिशत निर्धारित करे और वन विभागों को इन न्यूनतम प्रतिशतों तक पहुँचाने की योजनाएँ बनाकर काम करना चाहिए। सौभाग्य से हमारे देश में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यथेष्ट भूमि है और प्राकृतिक दशा तथा जलवायु भी अनुकूल है। जिस भूमि पर खेती नहीं की जाती है या नहीं की जा सकती है उस पर वन लगाये जाने चाहिए। जिस भूमि पर एक समय वन थे परन्तु नष्ट हो गये हैं वहाँ फिर से वन लगाये जाने चाहिए। ऊसर और बजर भूमि पर भी वन लगाने के लिए प्रयत्न किये जाने चाहिए। इसी प्रकार तालाबों, नहरों और सड़कों के किनारे वृक्ष लगाये जाने चाहिए। जमींदारी और जागीरदारी समाप्त हो जाने पर जो वन भूमि सरकारी हो गयी है उस पर भी वनों का विकास किया जाना चाहिए। निजी भूमि पर वन लगाने के लिए वन-विभागों द्वारा प्रोत्साहन और सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक प्रदेश में न्यूनतम वन-क्षेत्र का उद्देश्य प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिए।

(२) कई राज्यों मे वनों को सुरक्षित और अरक्षित श्रेणियों मे विभाजित किया जाता है। वन रक्षा की दृष्टि से केवल प्रथम श्रेणी के वनों को उपयुक्त प्रबन्ध है। शेष दो श्रेणियों के वनों की व्यवस्था सन्तोषप्रद नहीं है। निजी वनों में तो वन का नाम ही नहीं है। वन विभागों को अरक्षित वनों के सुप्रबन्ध की व्यवस्था करनी चाहिए और वनों पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

(३) रेलों, सड़कों और नदियों तथा नहरों में नौका सचालन की उन्नति द्वारा उन वनों का उपयोग करना चाहिए जो इन साधनों के अभाव में उपयोग नहीं हो रहे हैं।

(४) वन-रक्षण और वृक्ष लगाने और वृक्ष काटने के वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग किया जाना चाहिए।

(५) वन-विद्या और वन अनुसन्धान की उन्नति की जानी चाहिए। इस दिशा में देहरादून की वन-अनुसन्धान-संस्था (Forest Research Institute) का कार्य सराहनीय है। इस संस्था ने लकड़ी की रक्षा करने और वृक्षों को कीड़ों और रोगों से बचाने के तरीके निकाले हैं और कागज, प्लाईवुड, तारपीन आदि उद्योगों की स्थापना में सहायता की है। परन्तु इस संस्था के अनुसन्धान के परिणामस्वरूप जनता तक पहुँचाने के लिए इनको प्रकाशित करने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए और इस संस्था और उद्योगों से सम्पर्क स्थापित होना चाहिए।

(६) वन उद्योग के व्यापारिक पहलू की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इससे सरकार को अधिक आय होगी और देश में रोजगार बढ़ेगा।

(७) वन-विभाग के कर्मचारियों की संख्या और योग्यता में वृद्धि की जानी चाहिए क्योंकि जमींदारी और जागीरदारी प्रथाओं की समाप्ति से अधिक वन-क्षेत्र सरकारी नियन्त्रण में आ गये हैं और वनों की जाँच-पड़ताल और विकास के लिए यथेष्ट संख्या में योग्य कर्मचारियों की आवश्यकता है। राज्यों की वन सेवा के उच्च कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए भारतीय वन-महाविद्यालय, देहरादून तथा रेंजर के प्रशिक्षण के लिए इण्डियन फोरेस्ट रेंजर कालेज, देहरादून और रीजनल फोरेस्ट कॉलेज, कोयम्बटूर कार्य कर रहे हैं। कई राज्यों में वन-विद्यालय हैं। इन संस्थाओं का विकास किया जाना चाहिए और इनको एक-सूत्र में बाँधकर एक वन-विश्वविद्यालय की स्थापना की जानी चाहिए।

(८) वनों के प्रति नया दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। हमको देश की वन सम्पदा को अपने देश की धरोहर मानना चाहिए और हमारा कर्तव्य होना चाहिए कि इसको बढ़ाकर हमारी आने वाली पीढ़ियों को देवें। हम केवल इस सम्पत्ति का ब्याज काम में ले सकते हैं, इसके मूल को कम करना आने वाली पीढ़ियों के प्रति अन्याय होगा।

वन नीति (Forest Policy)

वनों के विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों को लागू करने हेतु सन् १९५२ में भारत सरकार ने राष्ट्रीय वन-नीति घोषित की। इस नीति के अनुसार भूमि के ३३ प्रतिशत भाग में वन होने चाहिए। वन सम्बन्धी नीति के दो उद्देश्य हैं: एक ओर तो वन साधनों के दीर्घकालीन विकास की व्यवस्था करना और दूसरी ओर निकट भविष्य में इमारती लकड़ी तथा ईंधन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करना।

इस नीति के अन्तर्गत निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है:

(१) भूमि का ऐसा सन्तुलित और पूरक उपयोग करना जिससे प्रत्येक प्रकार की भूमि से अधिकतम उत्पत्ति मिले और उसका न्यूनतम ह्रास हो।

(२) पर्वतीय क्षेत्रों में बाढ़ रोकना, नदियों के किनारे और ढालू मैदानों में मिट्टी का कटाव रोकना जिससे भूमि की उपजाऊ शक्ति का क्षय नहीं हो।

(३) समुद्री किनारों और मरुभूमि की मिट्टी को आगे बढ़ने से रोकना।

(४) यथासम्भव प्राकृतिक और जलवायु सम्बन्धी सुधार करने के लिए नये वन लगाना।

(५) चराई के लिए घास और खेती के लिए औजारों और ईंधन की पूर्ति के लिए लकड़ी की व्यवस्था करना जिससे गोबर का उपयोग खाद के रूप में किया जा सके।

(६) सुरक्षा परिवहन और *अन्य उद्योगों के लिए व्यापारिक लकड़ी की* स्थायी पूर्ति करना।

(७) उपयुक्त आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ वनों से अधिकतम आय प्राप्त करना।

इस नीति के अनुसार भारतीय वनों को निम्न चार भागों में बाँटा गया है :

(१) संरक्षित वन (Protection Forests) वे वन हैं जिनका होना राष्ट्र की भौतिक अथवा जलवायु सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए आवश्यक है। इस हेतु पहाड़ी क्षेत्रों, नदी घाटियों, तटीय भागों पर न केवल वृक्षारोपण किया जाता है वरन् इन स्थानों में उपलब्ध वर्तमान वनों की भी रक्षा की जाती है।

(२) राष्ट्रीय वन (National Forests) देश की सुरक्षा, यातायात, उद्योग तथा सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं। इस सम्बन्ध में इस *बात पर जोर दिया जाता है कि वर्तमान क्षेत्रों के टिम्बर क्षेत्रों में खेती न करने दी* जाय और न ही उनका अविचारपूर्ण विदोहन किया जाय।

(३) ग्राम्य वनों (Village Forests) का महत्त्व गाँवों और निकटवर्ती नगरों के *लिए सस्ते ईंधन की उपलब्धि करना है जिससे कण्डे आदि का ईंधन* के रूप में प्रयोग रोका जाकर खेतों में खाद के रूप में व्यवहृत किया जा सके। इन्हीं वनों में कृषि-यन्त्रों के लिए तथा अन्य कार्यों के लिए सीमित मात्रा में लकड़ी मिलती है।

(४) वृक्ष वनों (Tree Lands) की आवश्यकता भी देश की भौतिक अवस्था के लिए होती है।

सन् १९५२ की वन-नीति के अनुसार जुलाई १९५२ से भारत सरकार ने *वन महोत्सव (Van-Mahotsava) मनाना आरम्भ किया है। प्रति-वर्ष जुलाई-अगस्त* मास में वृक्षारोपण सप्ताह मनाया जाता है। वन-महोत्सव आन्दोलन का मूल आधार "वृक्ष के अर्थ जल हैं, जल का अर्थ रोटी है और रोटी ही जीवन है।"

योजनाओं के अन्तर्गत वनों का विकास

प्रथम और द्वितीय योजनाओं के अन्तर्गत क्रमशः ९'५ करोड़ और १९'३ करोड़ रुपये की राशि वन-सम्बन्धी कार्यक्रमों पर खर्च की गयी। तृतीय योजना में ५१ करोड़ की व्यवस्था की गयी, किन्तु वास्तविक व्यय ४६ करोड़ रुपये का ही हुआ। चतुर्थ योजना में ९२ करोड़ रुपये की व्यवस्था की जानी थी।

प्रथम दो योजनाओं मे किये प्रयत्नों के फलस्वरूप १९५१-६१ की अवधि में वनो से प्राप्त मुख्य उपज १६ करोड़ रुपयों से ४६ करोड़ रुपये तक बढ़ी। इसी अवधि मे गौण उपज मे ६·६३ से ११·१३ करोड़ रुपयो की वृद्धि हुई। सुरक्षित वन क्षेत्र २·७३ लाख वर्ग किलो मीटर से ३·६५ किलोमीटर हो गया। पुनर्स्थापित एवं वनीकरण किया गया क्षेत्र ११ हजार वर्ग किलोमीटर से १३ किलोमीटर बढ़गया। वनो मे लगे व्यक्तियों की सख्या ४ से ५० लाख हो गयी।

तृतीय योजनाकाल में ६४,००० हैक्टेअर भूमि मे शीघ्र उगने वाले वृक्ष २·४० लाख हैक्टेअर में आर्थिक महत्व के वृक्ष लगाये गये। २ लाख हैक्टेअर वनों का पुनर्स्थापन किया गया। ११ हजार कि० मी० सडको का निर्माण हुआ तथा ४ हजार कि० मी० सड़को की मरम्मत की गयी।

चतुर्थ योजना में औद्योगिक विकास के लिए बढ़ती हुई मात्रा में कागज, प्लाईवुड, दियासलाई आदि की माँग पूरी करने को ४ लाख हैक्टेअर भूमि पर शीघ्र उगने वाले वृक्ष तथा ३·४ लाख हैक्टेअर भूमि पर आर्थिक दृष्टि से लाभदायक वृक्ष (टीक, सेमल, शीशम) और ईंधन के लिए ७५ हजार हैक्टेअर भूमि मे नये वन लगाये जाने थे। २ लाख हैक्टेअर भूमि मे नये वनों की पुनर्व्यवस्था की जानी थी।

वन प्रदेशों के समुचित विकास के लिए १६ हजार कि० मी० लम्बी सडको का निर्माण तथा वर्तमान २ हजार कि० मी० लम्बी सडको की मरम्मत करने तथा लगभग २ लाख हैक्टेअर भूमि पर पशुओं के लिए चारा पैदा करने की व्यवस्था की गयी।

अनुमान है कि औद्योगिक लकड़ियों की माँग १९६५-६६ मे ११० लाख घन मीटर से बढकर १९७०-७१ में १७० लाख घन मीटर और १९७५-७६ मे २४० लाख घन मीटर हो जायगी। इसकी पूर्ति के लिए उपरोक्त लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं।

१९५१ से १९७२ के बीच ७४ करोड़ रुपये नये क्षेत्रो मे औद्योगिक लकडियो के उद्यान लगाने पर खर्च किये गये। इसके फलस्वरूप १·७८ लाख हैक्टेअर भूमि पर नये वन लगाये गये।

पंचम पंचवर्षीय योजना में वनो के कार्यक्रम पर २२० करोड़ रुपये का व्यय किये जाने का प्रावधान है जिसके अन्तर्गत सड़को, नदियों, नहरो, रेलमार्गों के किनारे तथा बाढ़ के नियन्त्रण हेतु शीघ्र उगने वाले औद्योगिक एवं व्यापारिक उपयोग के वृक्षों को लगाया जायेगा तथा वन क्षेत्रों में सड़कों का और अधिक निर्माण किया जायेगा।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत भूमि क्षरण को रोकने के लिए नदी घाटियों, पहाड़ी क्षेत्रो, बीहड़ भूमियों और परती भूमि में आग फैलने से रोकने के लिए वृक्षा-

रोपण किया जा रहा है। वनों में आने-जाने के लिए सड़कें बनाने तथा छोटे-छोटे बागान तैयार करने और नष्ट हुए वनों को सुधार करने के प्रयास हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त नहरों और रेल मार्गों के किनारे, सड़कों के दोनों ओर बाढ़ रोकने और मरुभूमियों पर नियन्त्रण करने के लिए नये वन लगाये जा रहे हैं।

सन् १९५३ में भूमि उर्वर केन्द्रीय संरक्षण संगठन स्थापित किया गया जिसका मुख्य कार्य भूमि सम्बन्धी योजनाएँ बनाना और भूमि क्षरण वाले क्षेत्रों की जाँच-पड़ताल कर राज्य सरकारों को उचित परामर्श देना है। देहरादून, कोटा, बलारी, जोधपुर, उटकमण्ड और छपरा में भूमि क्षरण अनुसन्धान क्षेत्र कार्यशील है। जोधपुर में मरुभूमि अनुसन्धान शाखा भूमि सुधार क्षेत्र मे जंगलो की पेटियाँ लगाने की योजना पर काम कर रही है। इसके अतिरिक्त लगभग ५५ कि० मी० लम्बी और ७ कि० मी० चौड़ी वृक्षों की पेटी लगायी गयी हैं। देहरादून की वन अनुसन्धानशाला वनों की सुरक्षा और उचित उपयोग के लिए वन सम्बन्धी वैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन करती है।

7

सिंचाई
[IRRIGATION]

वर्षा के अभाव में खेतों को कृत्रिम ढंग से जल पिलाने की क्रिया को सिंचाई करना कहा जाता है। भारत एक उष्ण-कटिबन्धीय देश है जिसमें कृषि मुख्यतः मानसूनी वर्षा पर ही निर्भर है, किन्तु इस वर्षा की प्रकृति एवं उसके वितरण में कई दोष पाये जाते हैं। इन दोषों को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय सिंचाई की व्यवस्था करना है।

सिंचाई की आवश्यकता

(१) जहाँ वर्षा अनिश्चित होती है तथा स्थान-स्थान में उसकी मात्रा में भी भिन्नता रहती है। मोटे तौर पर अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक ६ वर्ष में एक बार सूखा पड़ जाता है। श्री लवडे (Loveday) के अनुसार, "अकाल पाँच वर्षों के चक्रों में और बड़े अकाल ५० वर्षों के चक्रों में पड़ते हैं।" ये सम्बन्धित क्षेत्रों की कृषि सम्बन्धी समूची अर्थ प्रणाली को अस्त-व्यस्त कर देते हैं और उसका सन्तुलन बिगाड़ देते हैं। ऐसा कोई वर्ष शायद ही निकलता हो जबकि देश के किसी न किसी भाग में अभाव की स्थिति न उत्पन्न हो जाती हो। इसके अतिरिक्त वर्षा का समय भी प्रायः अनिश्चित ही रहता है। कभी तो समय से बहुत पहले ही वर्षा हो जाती है और कभी बहुत देर से। वस्तुतः नियमित रूप में कृषि करने के लिए सिंचाई आवश्यक है।

(२) सम्पूर्ण देश में वर्षा का वितरण असमान है। राजस्थान में जहाँ १६ से २५ सेण्टीमीटर तक वर्षा होती है तो दूसरी ओर असम में चेरापूँजी में १,०८७ सेण्टीमीटर से भी अधिक वर्षा होती है। गंगा नदी के मैदान तथा पश्चिमी समुद्र तट को छोड़कर अन्य सभी भागों में वर्षा की कमी से (जहाँ औसत १२७ सेण्टीमीटर से कम रहता है) सदैव अकाल का संकट उपस्थित रहता है। राजस्थान, हरियाणा, और दक्षिणी पंजाब के उन भागों में जहाँ बिलकुल वर्षा नहीं होती, सिंचाई के बिना खेती करना सम्भव नहीं है। दक्षिण के ऊपरी भागों में भी (विशेषतः गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र-प्रदेश, (कर्नूल, कड्डप्पा, अनन्तपुर जिलों के आन्तरिक भागों में)

तामिलनाडु, मध्य-प्रदेश, उड़ीसा और कर्नाटक में सदैव सूखे का प्रकोप रहता है। इन सभी क्षेत्रों में सिंचाई अपेक्षित है।

(३) भारत के सभी भागों में एक ही मौसम में वर्षा नहीं होती। ग्रीष्म ऋतु में भीषण गर्मी के साथ-साथ वर्षा का अभाव रहता है। शीतकाल में केवल दक्षिणी-पूर्वी भागों में ही वर्षा होती है और शेष भाग सूखे रहते हैं। वर्षा का ८०% जून से सितम्बर के महीनों में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून द्वारा प्राप्त होता है, २०% शीत ऋतु में उत्तरी-पूर्वी मानसून द्वारा। कुल वार्षिक वर्षा तामिलनाडु में ५३%; काश्मीर में २९%; आंध्र में २८%; केरल में २०%; और *अन्य राज्यों में ४ से १४% शीत* ऋतु में प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में वनस्पति अथवा कृषि उत्पादन के लिए सिंचाई आवश्यक हो जाती है।

(४) *भारत की वर्तमान जनसंख्या ५७ करोड़ है।* सन् २,००० तक यह ६० करोड़ हो जाने का अनुमान है। प्रति वर्ष इस बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्नों की आवश्यकता पड़ती है। देश में इनका उत्पादन कम होने से औसतन २०० करोड़ रुपये का अनाज आयात करना पड़ता है। आयात बन्द करने के लिए अतिरिक्त उत्पादन, गहरी खेती और प्रति हैक्टेअर एक से अधिक फसलें उगाने से ही सम्भव है। अतः शुष्क ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता अनुभव की जाती है। देश की वर्तमान खाद्य समस्या को हल करने के लिए सिंचाई की सहायता अनिवार्य है। ऐसा अनुमान है कि यदि गेहूँ और धान उत्पादक क्षेत्रों में सिंचाई की समुचित व्यवस्था की जा सके तो इन अनाजों का अतिरिक्त उत्पादन क्रमशः ६० लाख टन और १ करोड़ टन तक बढ़ सकता है।

(५) चावल, गन्ना, जूट, मिर्चें, प्याज, लहसुन, और आलू आदि फसलों के लिए नियमित रूप से अधिक जल की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार लूसर्न और बरसीम चारे के लिए प्रतिवर्ष ६० सेण्टीमीटर, रसदार फलों के लिए १०० सेण्टीमीटर तथा कठोर फलों के लिए ७५ सेण्टीमीटर जल की आवश्यकता पड़ती है। अतः आवश्यक जल की पूर्ति सिंचाई द्वारा की जाती है।

(६) उत्तरी मैदान तथा नदियों के डेल्टों में उपजाऊ काँप मिट्टी पायी जाती है। इसमें थोड़ी-सी सिंचाई करने से उत्पादन बढ़ जाता है। अन्य भागों में बलुही और दोमट मिट्टी अधिक समय तक जल रोकने में असमर्थ रहती है। अतः उसे कृषि योग्य बनाये रखने के लिए बार-बार सिंचाई करना *आवश्यक हो जाता है।*

(७) *भारत में वर्षा प्रायः* तेज बौछारों के रूप में होती है जो कृषि के लिए हितकर नहीं है। इससे वर्षा का जल भूमि में रिस नहीं पाता और भूमि प्यासी रह जाती है। फसलों के उत्पादन के लिए तब सिंचाई करना अनिवार्य हो जाता है।

(८) पशु-पालन और दुग्ध व्यवसाय को *प्रोत्साहन* देने के लिए *प्राकृतिक* चरागाहों की रक्षा करना आवश्यक है तथा नये चरागाहों के लिए पर्याप्त मात्रा में जल की उपलब्धि होना आवश्यक है।

(९) कृषि के अन्तर्गत कुल क्षेत्रों के २०% पर व्यावसायिक फसलें पैदा की जाती हैं, जिनसे कृषि उत्पादन के कुल मूल्य का ३३% प्राप्त होता है। इन फसलों के अन्तर्गत केवल १२% भाग ही सिंचाई की सुविधाएँ पाता है। चूँकि व्यावसायिक फसलों के निर्यात द्वारा भारत को लगभग ६०% विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है और देश के उद्योगों के लिए कच्चा माल मिलता है, अतः इनके उत्पादन में वृद्धि करने के लिए सिंचाई की आवश्यकता मानी जाती है।

(१०) असम, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश और केरल के अच्छी वर्षा वाले भागों में भी सूखा पड़ने पर पूरक रूप में सिंचाई की जाती है। महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात और बिहार में तो सम्पूर्ण धान के उत्पादन का सिंचाई के सहारे ही प्राप्त किया जाता है जबकि राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में सभी फसलों की सिंचाई की जाती है।

सिंचाई की सुविधाएं

उत्तरी मैदान और नदियों के डेल्टों में सिंचाई की विशेष सुविधाएँ पायी जाती हैं। इसके मुख्य कारण इस प्रकार हैं :

(१) यह भाग समतल है। इन भागों की भूमि का ढाल इतना धीमा है कि नदियों के ऊपरी भागों से निकली हुई नहरों का जल सरलता से ही सारे मैदान में फैल जाता है।

(२) उत्तरी भारत की भूमि अधिकांशतः नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी से बनी होने के कारण बड़ी उपजाऊ है। अतः इस मिट्टी को जल मिल जाने पर उत्तम फसलें पैदा की जा सकती हैं तथा सिंचाई पर किया गया व्यय कुछ ही वर्षों में पूरा किया जा सकता है।

(३) कई भागों में वर्षा का जल भूमि में सोखकर धरातल के नीचे जमा हो जाता है। इसे कुएँ खोदकर निकाला जा सकता है। पठारी क्षेत्र में वर्षा का जल तालाबों या झीलों के रूप में एकत्रित किया जा सकता है।

(४) इन भागों में शैलें कम हैं तथा धरातल मुलायम है अतः नहरें बनाने में बड़ी सुगमता रहती है और व्यय भी अधिक नहीं होता।

(५) उत्तरी मैदानों में हिमालय से निकलने वाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बहती हैं जिनमें अथाह जल-राशि भरी रहती है। अतः इनसे जो नहरें निकाली जाती हैं वे भी वर्ष भर भरी रहती हैं जिससे लगातार सिंचाई की जा सकती है।

(६) देश की अधिकांश जनसंख्या खेती-बाड़ी में संलग्न है, अतः खेती के लिए तथा अधिक उत्पादन करने के लिए सिंचाई की माँग भी अधिक है।

(७) दक्षिणी भारत की पथरीली और ऊँची-नीची भूमि में तालाब या बाँधों के रूप में जल संग्रहित करने की सुविधा है। इनसे नहरें निकालकर घाटियों और डेल्टाई भागों की सिंचाई की जा सकती है।

भारत के जल स्रोत और उनका उपयोग
(WATER RESOURCES AND THEIR UTILIZATION)

अनुमान लगाया गया है कि सम्पूर्ण देश में वर्षा द्वारा ११७ सेण्टीमीटर जल प्राप्त होता है। यह मात्रा ३,७०,०४४ करोड़ घन मीटर के बराबर होती है, किन्तु इसमें से केवल १,६७,२२० करोड़ घन मीटर ही नदियों को प्राप्त होता है। यह मात्रा अमरीका के बराबर है। धरातल की विभिन्नता, जलवायु और मिट्टी के गुणो

चित्र—७·१

में असमानता आदि कारणों से यह सम्पूर्ण राशि सिंचाई के लिए उपलब्ध नहीं होती। अनुमानतः नदी जल की ५६,००० करोड़ घन मीटर मात्रा सिंचाई के लिए काम में लायी जा सकती है। १९५१ में इसमें से काम में लायी जा सकने वाली राशि का १७% (और कुल जल-राशि का ६%) जल (अर्थात् ९,५०० करोड़ घन मीटर)

सिंचाई के लिए उपलब्ध हुआ। द्वितीय योजना के अन्त में यह मात्रा २७% (अर्थात् १४,८०० करोड़ घन मीटर) और ९% थी। तीसरी योजना के अन्त तक कुल उपलब्ध नदी जल के ३३% भाग (अर्थात् १९,३०० करोड़ घन मीटर) और १२% का उपयोग सम्भव हो गया। मार्च १९७० तक लगभग २२,२०० करोड़ घन मीटर जल का उपयोग किया जाने लगा था[1] अर्थात् ३९% उपलब्ध जल का चौथी योजना में ४९% जल का उपयोग किया जा सकेगा।

सिंचाई के साधन (Means of Irrigation)

भारत की भौतिक रचना में विभिन्नता होने के कारण सिंचाई के विभिन्न साधन काम में लाये जाते हैं। उत्तरी भारत में विशेषकर नहरों और कुँओं से तथा दक्षिण के प्रायद्वीपीय भागों में तालाबों द्वारा सिंचाई की जाती है। कुल कृषि भूमि के केवल १८.२% भाग पर ही सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। शेष ८१.८% भाग को अभी भी वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। मोटे तौर पर, कुल सिंचित क्षेत्रफल का आधे से अधिक छोटे साधनों—कुएँ, तालाब, झीलें, जलाशय, बाँध, छोटे एनीकट, नलकूप, मिट्टी के बाँध, नदों तथा स्रोतों द्वारा सींचा जाता है। शेष भाग बड़े और मध्यम साधनों द्वारा, जिनके अन्तर्गत नहरें,नालियाँ और उनकी सहायक धाराएं सम्मिलित की जाती हैं।

नीचे की तालिका में विभिन्न साधनों द्वारा की जाने वाली सिंचाई का क्षेत्र दर्शाया गया है।[2]

साधन	१९५०-५१	१९६०-६१	१९६८-६९	१९६९-७०
	(करोड़ हैक्टेअर में)			
नहरें	०.८३	१.०३	१.१९	१.३३
तालाब	०.३६	०.४६	०.३९	०.४४
कुएँ	०.६०	०.७३	१.०७	१.११
अन्य साधन	०.३०	०.२४	०.२३	०.२५
वास्तविक सिंचित क्षेत्र	२.०९	२.४६	२.९०	३.०३
एक बार से अधिक सिंचित क्षेत्र	०.१७	०.३३	०.६४	०.७०
कुल सिंचित क्षेत्र	२.२६	२.७५	३.५४	३.७३

१९६९-७० में नहरों द्वारा ४०.४%; तालाबों द्वारा १४.७%, कुँओं द्वारा ३६.७% और अन्य साधनों द्वारा ८.२% क्षेत्र सींचा गया। १९५०-५१ की तुलना में सिंचाई के क्षेत्रफल में ९४ लाख हैक्टेअर की वृद्धि हुई।

[1] *India*, 1974, p. 173.
[2] *India*, 1973, p. 240.

१. नहरें
(CANALS)

नहरें भारत में सिंचाई का मुख्य साधन हैं। अधिकांश नहरें या तो उत्तरी भारत के मैदानों में या तटवर्ती नदियों के डेल्टों में पायी जाती हैं। नहरें बनाने के लिए मुख्यतः दो बातों की आवश्यकता होती है। समतल भूमि और नदियों में जल का निरन्तर प्रवाह। ऐसी आदर्श अवस्था उत्तरी भारत में नदियों के विशाल मैदान में मिलती है। नहरों में जल या तो नदियों से पहुँचाया जाता है या कृत्रिम तालाबों से। उत्तरी भारत की प्रायः सभी नहरों में साल भर नदियों द्वारा ही जल आता रहता है, किन्तु दक्षिण की अधिकांश नहरों में जल जलाशयों में एकत्रित किये गये भाग से मिलता है क्योंकि यहाँ की नदियाँ गर्मियों में सूख जाती हैं। अतः नदियों की बाढ़ के समय उनका जल बड़े संग्राहकों में इकट्ठा कर लिया जाता है और यही जल नालियों द्वारा निकटवर्ती भूमि की सिंचाई करता रहता है।

नहरें दो प्रकार की होती हैं :

(१) अनित्यवाही या बाढ़ की नहरें (Inundational Canals)—ऐसी नहरों को जल तब मिलता है जब नदियों में बाढ़ें आती हैं अतएव ऐसी नहरें अक्टूबर से अप्रैल तक जल की कमी में सूखी रहती हैं। जहाँ इस प्रकार की अनित्यवाही नहरें मिलती हैं उन भागों में एक ही फसल पैदा की जाती है और प्रायः अक्टूबर से अप्रैल तक खेत खाली रहते हैं अथवा कुओं आदि से सिंचाई में सहायता लेकर फसलें पैदा की जाती हैं। ऐसी नहरें अब अधिकांशतः नित्यवाही नहरों में परिवर्तित कर दी गयी हैं।

(२) नित्यवाही नहरें (Perennial Canals)—उन नदियों से निकाली जाती हैं जिनमें सदैव ही जल भरा रहता है। नदी के जल को कभी-कभी बाँध बनाकर रोक दिया जाता है और फिर इस रोके गये जल से नहरों द्वारा आस-पास के प्रदेश के खेतों की सिंचाई की जाती है। उत्तर प्रदेश की नहरें इसी प्रकार की हैं। यहाँ कुल कृषि भूमि का लगभग एक-तिहाई नहरों द्वारा सींचा जाता है।

नित्यवाही नहरें दो प्रकार की हैं, एक वे जो दक्षिण भारत की नदियों के डेल्टों में पायी जाती हैं तथा दूसरी वे जो प्रायद्वीप तथा गंगा की निचली भूमि में मिलती हैं।

डेल्टाई नहरें मुख्यतः गोदावरी, कृष्णा, कावेरी और महानदी के डेल्टा में पायी जाती हैं, जहाँ भूमि का धरातल सम और हल्के ढाल वाला है तथा मिट्टी लाल है। नहरें नदियों के ऊपरी भागों से निकाल कर निचले क्षेत्रों की सिंचाई करती हैं किन्तु वर्षा ऋतु में इनमें बाढ़ें आ जाने से कृषि को अकथनीय हानि पहुँचती है। मुख्य फसल चावल है।

प्रायद्वीपी नहरें मुख्यतः पठार पर नदियों के मार्ग में विशाल जलाशय (जैसे मेट्टूर, कृष्णाराजा सागर आदि) बनाकर उनसे निकाली जाती हैं। गंगा के मैदान में धरातल उपयुक्त होने के कारण नहरें अधिक बनायी जाती हैं।

नहरों से सिंचित क्षेत्रफल अधिकतर आन्ध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य-प्रदेश, तामिलनाडु, पंजाब हरियाणा और उत्तर प्रदेश में पाया जाता है।

उत्तरी भारत की नहरें

पंजाब और हरियाणा में वर्षा का औसत २५ से ४० सेण्टीमीटर के बीच का ही रहता है क्योंकि दक्षिणी-पश्चिमी मानसून यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते शुष्क हो जाते है किन्तु भूमि कृषि के सर्वथा उपयुक्त है अतः कृषि उत्पादन के लिए सिंचाई का सहारा लिया जाता है। इन राज्यों की मुख्य नहरें इस प्रकार है।

(१) पश्चिमी यमुना नहर (Western Jamuna Canal) १४वीं शताब्दी में फीरोजशाह तुगलक द्वारा बनायी गयी थी। १५६८ में अकबर ने इसे ठीक कराया तथा १६२८ में अली मरदान अली ने इसका पूर्णतः जीर्णोद्धार कराया था। सन् १८८६ में अंग्रेज सरकार ने इसे सुधार कर सिंचाई के योग्य बनाया। यह नहर यमुना नदी से तेजवाला के निकट जल लेकर हरियाणा के अम्बाला, करनाल, रोहतक, हिसार (दक्षिणी-पश्चिमी) और पंजाब के पटियाला जिले में सिंचाई करती है। उत्तरी राजस्थान और दिल्ली के कुछ भागों में भी इससे सिंचाई होती है। इस नहर का विस्तार १९४४-४५ में किया गया। सम्पूर्ण नहर पर १२८ लाख रुपये खर्च हुए हैं। इस नहर की तीन प्रमुख शाखाएँ हैं: (१) दिल्ली शाखा, (२) हाँसी शाखा और (३) सिरसा शाखा। पश्चिमी यमुना नहर के द्वारा १,६०० प्रशाखाओं के सहयोग से ४८,००० लाख हैक्टेयर भूमि में सिंचाई होती है। यह नहर ३,२०० किलोमीटर लम्बी है।

(२) सरहिन्द नहर (Sirhind Canal) भी हरियाणा राज्य की नहर है जो सतलज नदी से रूपड़ स्थान पर निकाली गयी है। यह पंजाब के लुधियाना, फिरोजपुर, पटियाला, नाभा और हरियाणा के हिसार और जिन्द जिलों की ६ लाख हैक्टेयर भूमि में सिंचाई करती है। इसकी लम्बाई शाखाओं सहित ६,११५ किमी० है। इसकी मुख्य शाखाएँ अबोहर, भटिण्डा, पटियाला, कोटला, घग्घर और डोमा हैं। यह नहर सन् १८८६ में २६६ लाख रुपये व्यय करके बनायी गयी थी। इसमें शीघ्र मिट्टी भर जाती है। फिरोजपुर के निकट यह नहर पुनः सतलज में मिल जाती हैं।

(३) ऊपरी बारी दोआब नहर का निर्माण पंजाब में सन् १८७८ में आरम्भ कर सन् १८७९ में २२७ लाख रुपया के व्यय से पूरा किया गया। यह रावी नदी से माधोपुर स्थान पर निकाली गयी है। इसकी लम्बाई २,६०० किमी० है। इसके द्वारा गुरदासपुर तथा अमृतसर जिलों में ३ लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई होती है। शाखाओं सहित इसकी लम्बाई ४,६०० किलोमीटर है। इसकी मुख्य शाखाएँ लाहौर, कसूर और सबरो हैं। प्रथम दो शाखाएँ अब पाकिस्तान में हैं।

(४) नांगल बाँध की विद्युत नहर नांगल बाँध से निकाली गयी है। यह ६४ किलोमीटर लम्बी है। यह पूरी सीमेंट से बनायी गयी है। यह नहर १९५४ में बनकर तैयार हुई है। इससे पंजाब में अम्बाला, पटियाला, नाभा तथा हरियाणा के हिसार, करनाल जिले और उत्तरी राजस्थान की लगभग २७ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई हो रही है।

चित्र—७२

(५) विस्त दोआब नहर १९५४ में तैयार हुई है। यह भाखड़ा-नांगल की ही शाखा है जो सतलज नदी से रोपड़ स्थान पर निकाली गयी है। शाखाओं सहित इसकी लम्बाई १४५ किलोमीटर है। इस नहर द्वारा सतलज और व्यास के दोआबों में जलन्धर और होशियारपुर जिलों की लगभग ४ लाख हैक्टेअर भूमि में सिंचाई हो रही है।

(६) भाखड़ा नहर सतलज से निकाली गयी है जहाँ रोपड़ के निकट नांगल विद्युत नहर का जल इसमें गिराया जाता है। इस नहर से हरियाणा, हिसार, करनाल और रोहतक जिलों की लगभग ७ लाख हैक्टेअर भूमि सींची जाती है।

(७) पूर्वी नहर पंजाब में १९५४ में बनकर तैयार हुई। माधोपुर व्यास सम्पर्क नहर खोदकर रावी नदी का अतिरिक्त जल पूर्वी नहर में डाला गया है। इससे फिरोजपुर जिले में सिंचाई की जाती है।

(८) गुड़गाँव योजना की नहरें हरियाणा राज्य में हैं। यह ओखला के निकट यमुना नदी से निकाली जा रही है। इसके द्वारा गुड़गाँव जिले के पलवल, बल्लभगढ़, नूह और गुड़गाँव तहसीलों की लगभग ३·२ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होगी।

उत्तर प्रदेश की नहरें

उत्तर प्रदेश की उन्नति का प्रमुख कारण बड़ी नहरें हैं। उत्तर प्रदेश में कुल बोयी गयी भूमि के ३० प्रतिशत भाग में सिंचाई होती है। ऊपरी गंगा की घाटी में वर्षा प्रतिवर्ष १०० सेण्टीमीटर से भी कम होती है, अतः इस प्रदेश की खेती की उन्नति में नहरों का प्रमुख स्थान है। सिंचाई के सहारे यहाँ गन्ना, कपास तथा मक्का पैदा की जाती है। उत्तर प्रदेश में सिंचाई के लिए नहरों और कुँओं दोनों का ही महत्त्व अधिक है। उत्तर प्रदेश में निम्न नहरें मुख्य हैं :

(१) पूर्वी जमुना नहर फैजाबाद के निकट जमुना नदी के बायें किनारे से निकाली गयी है जो दिल्ली तक जमुना के समानान्तर बहती है और फिर उसी में मिल जाती है। अपनी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित इसकी लम्बाई १,४४० किलोमीटर है। इसके द्वारा मेरठ, सहारनपुर, दिल्ली और मुजफ्फरनगर की २ लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है। यह नहर सन् १८३१ में बनायी गयी थी।

(२) आगरा नहर जमुना के दायें किनारे से ओखला नामक स्थान पर निकाली गयी है (यह स्थान दिल्ली से १८ किलोमीटर नीचा है) यह सन् १८५७ में बनायी गयी थी। यह नहर अपनी १,६०० किलोमीटर लम्बी शाखाओं-प्रशाखाओं द्वारा दिल्ली, मथुरा, आगरा, गुड़गाँव और भरतपुर की १½ लाख हैक्टेयर भूमि को सिंचाई करती है।

(३) ऊपरी गंगा की नहर गंगा नदी से हरिद्वार के पास निकाली गयी है। इस नहर का निर्माण सन् १८४२ से प्रारम्भ होकर सन् १८५६ में समाप्त किया गया। इस पर ४६५ लाख रुपया खर्च हुआ था। रुड़की तक आने में इसे ऊँची-नीची भूमि में होकर निकलना पड़ता है। अतः हरिद्वार और रुड़की के बीच में कई स्थानों पर इसे नदियों के नीचे, कहीं-कहीं नदियों के ऊपर और कहीं-कहीं नदियों के साथ-साथ

चित्र—७·२

बहना पड़ता है। इस नहर के मार्ग में ११ स्थानों पर झरने बनाकर बिजली उत्पन्न की जाती है। यह गंगा-जमुना दोआब के उत्तरी भाग के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, मेरठ, अलीगढ़, मथुरा, एटा, इटावा, कानपुर, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और

फतेहपुर जिलों की लगभग ७ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई करती है। प्रमुख नहर ३४० किलोमीटर लम्बी है तथा शाखाओं सहित इसकी लम्बाई ५,६४० किलोमीटर है। यह नहर आगरा नहर और गंगा की निचली नहर को भी जल देती है। इसकी प्रमुख शाखाएं अनूपशहर, इटावा और माठा हैं। अनूपशहर नहर से मुजफ्फरनगर, माठा नहर से मेरठ और मथुरा जिलों में तथा इटावा नहर से अलीगढ़ एटा, और इटावा जिलों की सिंचाई की जाती है। इस नहर से जलविद्युत भी उत्पन्न की जाती है। सिंचाई के सहारे कपास, गन्ना और गेहूँ पैदा किया जाता है।

(४) निचली गंगा की नहर गंगा नदी से नरोरा के निकट निकाली गयी है। इसकी दो प्रधान शाखाएँ हैं : कानपुर शाखा और इटावा शाखा। प्रधान नहर तथा शाखाओं सहित इसकी लम्बाई लगभग ८,८०० किलोमीटर है। इससे मैनपुरी, फर्रुखाबाद, एटा, कानपुर और फतेहपुर जिलों की लगभग ४½ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। यह नहर सन् १८७२ में आरम्भ की जाकर सन् १८७८ में समाप्त की गयी। इसके निर्माण में लगभग ४६० लाख रुपया खर्च किया गया। यह कासगंज के पास ऊपरी गंगा नहर से मिल जाती है, इससे इसमें जल की मात्रा पर्याप्त हो जाती है। आगे जाकर यह पुनः ऊपरी गंगा से अलग हो जाती है।

(५) शारदा नहर सन् १६२६ में बनायी गयी थी। यह नहर गोमती नदी से बनवासा स्थान से निकाली गयी है। इसके निर्माण पर १,५०७ लाख रुपया खर्च हुआ। इसकी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित लम्बाई १२,३६८ किलोमीटर है। इसकी जल देने की सर्वाधिक क्षमता ६,५०० क्यूसेक प्रति सैकिण्ड है। यह नहर रोहिलखण्ड और अवध के पश्चिमी भाग को सींचती है। इस नहर द्वारा इलाहाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, रायबरेली, बाराबंकी, उन्नाव, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, खेरी शाहजहाँपुर, बरेली और पीलीभीत जिलों की ८ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है। इसकी मुख्य शाखाएँ खेरी, शारदा-देवा, बीसलपुर, निगोही, सीतापुर, लखनऊ और हरदोई है।

शारदा नहर पर जल विद्युत शक्ति उत्पन्न करने के लिए एक शक्तिगृह भी बनाया गया है जिसे खातिमा शक्ति केन्द्र कहते हैं।

(६) बेतवा नहर बेतवा नदी से झाँसी से २४ किलोमीटर दूर परिच्छा नामक स्थान से निकाली गयी है। इस नहर द्वारा झाँसी, जालौन, हमीरपुर आदि की ८३,००० हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। हमीरपुर और कठौना इसकी दो प्रमुख शाखाएँ हैं। यह नहर सन् १८८६ में बनायी गयी थी।

उत्तर प्रदेश की अन्य नहरें - (१) केन नहर, (२) घसान (घग्घर) नहर और (३) मिर्जापुर नहर हैं। इनके द्वारा क्रमशः बाँदा, हमीरपुर तथा मिर्जापुर जिलों की सिंचाई की जाती है।

बिहार की नहरें

बिहार में वर्षा की अनियमितता के कारण भूमि की सिंचाई करने के हेतु

गंडक और सोन नदियों से नहरें निकाली गयी हैं। यहाँ कुल बोयी गयी भूमि के २३% भाग पर सिंचाई होती है। बिहार में निम्नांकित नहरें मुख्य हैं :

(१) पूर्वी सोन नहर सन् १८७५ में सोन नदी के दाहिने किनारे पर बारुन नामक स्थान से निकाली गयी थी। यह नहर पटना के समीप गंगा नदी में मिला दी गयी है। इसके द्वारा पटना और गया जिलों की २½ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। इस नहर की लम्बाई १३० किलोमीटर है।

(२) पश्चिमी सोन नहर सोन नदी के बायें किनारे से डेहरी नामक स्थान से निकाली गयी है। इसकी दो शाखाएँ हैं। एक शाखा बक्सर के निकट गंगा नदी में मिल जाती है और दूसरी शाखा आगे चलकर तीन भागों में विभक्त हो जाती है। उत्तर की ओर की शाखा डुमराव नहर कहलाती है और दूसरी शाखा का नाम आरा नहर है जो उत्तर-पूर्व की ओर बहकर गंगा में मिल जाती है। तीसरी नहर चौसा नहर है। प० सोन नहर से शाहाबाद जिले की सिंचाई होती है।

(३) त्रिवेणी नहर गण्डक नदी से त्रिवेणी नामक स्थान के निकट से निकाली गयी है। इससे उत्तरी बिहार के चम्पारन जिले की लगभग १ लाख हैक्टेअर भूमि सींची जाती है।

(४) कोसी बाँध की नहरें—कोसी बाँध के अन्तर्गत दो बाँधों से नहरें निकाली जा रही हैं। नदी के पूर्व की ओर और पश्चिम की ओर। इनके द्वारा पूर्णिया, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, चम्पारन और सारन जिलों की लगभग ४ लाख हैक्टेअर भूमि सींची जायेगी।

(५) कनाडा बाँध की नहरें—संथाल परगने में मयूराक्षी नदी पर मंसनजोर नामक स्थान पर एक १,०६५ मीटर लम्बा और ४६ मीटर ऊँचा बाँध बनाया गया है। इससे नहरें निकाल कर लगभग १० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है और चावल पैदा किया जाता है।

(६) गण्डक बाँध योजना गंगा की सहायक गण्डक नदी पर त्रिवेणी घाट नामक स्थान पर एक बाँध बनाया गया है। इससे दो नहरें निकाली गयी हैं। एक पूर्वी किनारे और दूसरी पश्चिमी किनारे से। इन्हें क्रमशः तिरहुत नहर और सारन नहर कहते हैं। इनसे नेपाल और बिहार के सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर और दरभंगा की लगभग १० लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। इससे २० हजार किलोवाट विद्युत भी बनायी जा रही है।

पश्चिमी बंगाल की नहरें

अधिक वर्षा के कारण बंगाल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु फिर भी यहाँ कुछ नहरें बनायी गयी हैं।

(१) मिदनापुर नहर सन् १८८८ में मिदनापुर के पास कोसी नदी से निकाली गयी है। यह पूर्व में हुगली नदी से मिल जाती है। यह ५२० किलोमीटर लम्बी है।

इस नहर का कुछ भाग तो केवल सिंचाई करने के काम में और कुछ भाग सिंचाई तथा नावें चलाने दोनों ही काम में आता है। सिंचाई के सहारे धान पैदा किया जाता है। इससे लगभग ५० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(२) एडन नहर सन् १९३९ में दामोदर नदी से निकाली गयी है। इससे १० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है। यह लगभग ६५ किलोमीटर लम्बी है।

(३) तिलपाड़ा बाँध की नहरों के अन्तर्गत तिलपाड़ा बाँध बनाड़ा बाँध से ३१ किलोमीटर नीचे की ओर मयूराक्षी नदी पर बंगाल के वीरभूमि जिले में सूरी नामक स्थान पर बनाया गया है। यह ३१० मीटर लम्बा है। इससे दो नहरें निकालकर बंगाल के वीरभूमि, मुर्शिदाबाद और वर्दवान जिले की लगभग २½ लाख हैक्टेअर और विहार की लगभग १० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(४) दामोदर नदी की नहरें दुर्गापुर नामक स्थान पर दामोदर नदी पर एक बाँध बनाकर दो नहरें निकाली गयी हैं। इनसे आसनसोल, हुगली और वर्दवान जिलों की लगभग ४ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जा रही है।

राजस्थान की नहरें

बीकानेर या गंग नहर (Bikaner or Gang Canal)—राजस्थान के पश्चिमी भागों में वर्षा बहुत ही कम होती है। इस असुविधा से संरक्षण पाने के लिए बीकानेर नहर बनायी गयी है। यह नहर १९२८ में सतलज नदी से फिरोजपुर के निकट हुसैनीवाला से निकाली गयी है। इसकी तली सीमेण्ट की बनी है जिससे जल भूमि में नहीं सोख पाता है। इसके द्वारा बीकानेर सभाग के गंगानगर, राजपुर, पदमपुर रायसिंहनगर और अनूपगढ़ तहसीलों की लगभग १½ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है। इसके सहारे गन्ना, कपास और गेहूँ पैदा किया जाता है। इससे सम्बन्धित कुल नहरों की लम्बाई १,२९० किलोमीटर है। इस नहर को गंग नहर भी कहते हैं। इसकी मुख्य शाखाएँ लक्ष्मीनारायणजी, लालगढ़, करणीजी और समिजा हैं।

राजस्थान की अन्य सिंचाई योजनाएँ निम्न हैं :

(१) पार्वती परियोजना—भरतपुर जिले में धौलपुर से लगभग ५० किमी० दूर पार्वती नदी पर एक जलाशय बनाया गया है जिससे पार्वती नदी की बायीं तरफ नहर निकालकर लगभग ३५ हजार एकड़ भूमि में सिंचाई हो रही है। यह योजना सन् १९६१ में पूरी हो गयी थी। इस पर १'१० करोड़ रुपये व्यय हुए।

(२) गुढ़ा परियोजना—बूँदी से लगभग २० किलोमीटर दूर मेजा नदी पर मिट्टी का एक बाँध बनाया गया है, जिसके दोनों ओर नहरें बनाकर ३७ हजार एकड़ भूमि में सिंचाई हो रही है। इस योजना पर ७१ लाख रुपये व्यय हुए। यह योजना भी सन् १९६१ में पूरी हो गयी है।

(३) मोरेल परियोजना—सवाई माधोपुर जिले में लालसोट से लगभग १५ किलोमीटर दूर मोरेल नदी पर मिट्टी का बाँध बनाया गया है। यह बाँध और इनसे निकलने वाली नहरों का निर्माण हो चुका है। अभी १४ हजार एकड़ भूमि में सिंचाई हो रही है।

(४) जग्गर परियोजना—हिण्डौन के समीप जग्गर नदी पर मिट्टी का एक बाँध बनाकर ६ हजार एकड़ भूमि में सिंचाई हो रही है।

(५) कालीसिल परियोजना—मोरेल की सहायक कालीसिल नदी पर करौली प्रदेश में मिट्टी का बाँध और नहरें बनायी गयी हैं। इस योजना से १४,००० एकड़ भूमि पर सिंचाई होती है।

(६) मेजा बाँध—यह भीलवाड़ा जिले में मांडल के पास कोठारी नदी पर बनाया गया है। इससे भीलवाड़ा क्षेत्र की सिंचाई होती है।

(७) गम्भीर परियोजना—चित्तौड़गढ़ से ३२ कि०मी० दक्षिण में गम्भीरी नदी पर एक बाँध बनाकर जल एकत्रित किया गया है। इसके दोनों किनारों पर नहरें बनायी गयी हैं। इनसे सिंचाई हो रही है।

(८) बाँकली परियोजना—अरावली पर्वत के पश्चिमी ढालों से निकलने वाली सूकड़ी नदी पर जो मुख्य रेतीले किन्तु उपजाऊ मैदान में बहती हुई लूनी नदी में मिल जाती है, मिट्टी का बाँध बनाया गया है, इससे जालौर क्षेत्र में सिंचाई हो रही है।

(९) सरेरी परियोजना—मांसी नदी के जल को उपयोग में लाने के लिए एक मिट्टी का बाँध सन् १९६० में सरेरी रेलवे स्टेशन से ८ किलोमीटर दूर पश्चिम में बनाया गया था। इस योजना पर २० लाख रुपये व्यय हुए।

(१०) नमूना परियोजना—बनास नदी पर नाथद्वारा (उदयपुर) से लगभग ८ किलोमीटर दूर मिट्टी का बाँध बनाया गया है। यह योजना सन् १९५६ में पूरी की गयी।

राजस्थान नहर

सतलज तथा व्यास के संगम पर निर्मित हरीके बैरेज राजस्थान नहर का उद्गम है। यह स्थान राजस्थान की सिंचाई की दृष्टि से सर्वोच्च तल पर है। प्रमुख नहर हरीके से रामगढ़ तक ६८३ किलोमीटर (४२५ मील) लम्बी होगी। प्रमुख नहर का प्रथम १७६ किलोमीटर (११० मील) की लम्बाई में सरहिन्द फीडर के लगभग समानान्तर पंजाब में है। यहाँ इसका नाम राजस्थान फीडर है और इससे इस क्षेत्र में सिंचाई नहीं होती है। राजस्थान में प्रवेश करने के बाद भी प्रथम ३८ किलोमीटर (२४ मीटर) में इसका उपयोग नहीं किया जाता। राजस्थान में प्रथम २०६ किलोमीटर की दूर तक यह पंजाब-राजस्थान की सीमा के निकट बहती है और तब सूरतगढ़ की ओर मुड़ती है तथा दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हुई यह रामगढ़ के पास समाप्त हो जाती है। प्रमुख नहर से निकलने वाली शाखा नहरों की लम्बाई ६४४ किलोमीटर (४०० मील) और वितरक नहरों की लम्बाई ३,२१६ किलोमीटर (२००० मील) होगी। खेतों में बनने वाली नालियों की लम्बाई ८०,४६७ किलोमीटर (५०,००० मील) होगी। नहर की अधिकतम चौड़ाई (तल में) ३७ मीटर (१२५ फीट) और गहराई ७½ मीटर (२१ फीट) होगी। जैसलमेर जिले में अपने

अन्तिम सिरे पर इसकी चौड़ाई (तल में) १७ मीटर (५५ फीट) एवं गहराई ६ मीटर (१५ फीट) होगी। हरीके पर जल प्रवाह का परिमाण १८,५०० क्यूसेक होगा।

सम्पूर्ण राजस्थान फीडर तथा नहर पक्की होगी। यह परियोजना दो अवस्थाओं में पूर्ण होगी। प्रथम अवस्था में रावी तथा व्यास नदियों के प्राकृतिक प्रवाह के जल का उपयोग होगा। दूसरी अवस्था में रावी तथा व्यास नदियों के वर्षाकालीन अतिरिक्त जल का उपयोग करने के लिए जलाशयों का निर्माण किया जायेगा। द्वितीय अवस्था के पूर्ण हो जाने के बाद ही १४½ लाख हैक्टेयर भूमि में निरन्तर सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध करना सम्भव हो सकेगा।
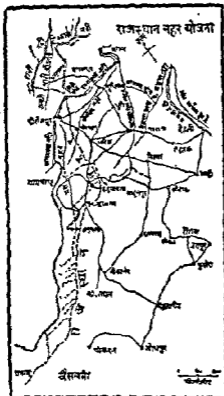
चित्र—७४

प्रथम अवस्था में निम्नलिखित कार्य भी दो सोपानों में समाप्त किये जाएँगे :

प्रथम सोपान के अन्तर्गत फीडर २१५ किलोमीटर (१३४ मील) १९५ किलोमीटर (१२१·८ मील) की लम्बाई में राजस्थान नहर, सूरतगढ़ लो-लेविल और नौहेरा शाखाओं का निर्माण होगा। यह २१५ किलोमीटर लम्बी नहर बन चुकी है। नहर के दायीं ओर कुछ ऊँचाई पर स्थित लूनकरनसर, समसार तथा बीकानेर नगरों की जलपूर्ति के लिए एक १०० क्यूसेक क्षमता की लिफ्ट नहर होगी। नहर तल से लगभग १५ मीटर ऊँचे २ लाख एकड़ के क्षेत्र में जल को ऊँचा उठाकर सिंचाई की व्यवस्था होगी। सन् १९७३-७४ तक यह सोपान पूरा हो जायेगा। इस सोपान के सम्भावित व्यय का अनुमान ७५ करोड़ रुपये है।

द्वितीय सोपान में मुख्य नहर के शेष भाग (१६६ कि० मी० से ४६७ कि० मी० तक) तथा नोहेरा शाखा के नीचे भी सम्पूर्ण वितरण व्यवस्था का निर्माण सम्मिलित है। मुख्य नहर में तो कोई झरने नहीं है पर वितरक नहरों मे आने वाले झरनों का लाभ उठाकर जल विद्युत शक्ति का उत्पादन भी आयोजित है। सन् १९७८ तक योजना के अन्त तक इसके पूर्ण हो जाने की सम्भावना है। इस अवधि में २७४ कि० मी० मुख्य नहर तथा अन्य सहायक नहरें बनायी जायेंगी। इस चरण पर ६४ करोड़ रुपया खर्च होगा।

राजस्थान नहर की सिंचन क्षमता को बढ़ाने तथा अनवरत सिंचन सम्भव करने के लिए वर्ष पर्यन्त अधिक जल की आवश्यकता है। जल की इस कमी की पूर्ति के लिए व्यास नदी पर पोंग गाँव के समीप पोंग बाँध बनाया जायेगा। इस बाँध के बनाने वाले जलाशय की जल धारण क्षमता ८० लाख एकड़ फीट होगी। यह जलाशय बाँध स्थल के ऊपर ३७ कि० मी० तक फैला होगा तथा इससे २३,००० हैक्टेअर भूमि जलमग्न होगी। बाँध की अनुमानित लागत ६५ करोड़ रुपये है। इस पर कार्य प्रारम्भ किया जा चुका है तथा सन् १९७५ तक इसके पूर्ण होने की सम्भावना है। इस जल का उपयोग राजस्थान नहर द्वारा किया जायेगा। जल की यह पूर्ति आंशिक रूप से भाखड़ा होते हुए सतलज-व्यास नहर से होगी। इसके लिए हिमालयी क्षेत्रों में ४० कि० मी० लम्बी सुरंगें बनानी होंगी। ३०५ मी० ढलान होने से जल विद्युत भी पैदा की जा सकेगी। शेष जल हरीके बाँध जलाशय में डालकर राजस्थान की सहायक नहर मे दिया जायेगा। पोंग बाँध से पंजाब, राजस्थान और हरयाणा में २१ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जायेगी।

पूर्ण विकसित होने पर परियोजना द्वारा श्रीगंगानगर, बीकानेर, और लगभग जैसलमेर जिलों की लगभग १४½ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होगी। सिंचाई के लिए जो नाले बनाने पड़ेंगे उनकी लम्बाई ६४ हजार किलोमीटर होगी। इसके सहारे खाद्यान्नों का ९.५ लाख टन अतिरिक्त उत्पादन होगा। कपास तथा चारे आदि का उत्पादन भी बढ़ेगा। इस उपज के मूल्य का अनुमान २६ करोड़ रुपया प्रति-वर्ष लगाया गया है तथा सन् १९८८ तक सिंचाई व्यवस्था से ५० करोड़ रुपये से अधिक की पैदावार होगी। देश की खाद्य स्थिति पर भी इसका परिणाम शुभ होगा। द्वितीय अवस्था के पूर्ण हो जाने के बाद जबकि १४½ लाख हैक्टेअर मे सिंचाई होने लगेगी यद्यपि सिंचाई योग्य क्षेत्र तो इससे भी अधिक है, २५.७१ लाख टन खाद्यान्न व चारे तथा १.६ लाख टन कपास का उत्पादन होगा जिसका मूल्य ६६ करोड़ होगा।

कृषि की पैदावार पर निर्भर, चीनी, कपड़ा आदि उद्योगों का विकास होगा और विभिन्न कुटीर उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन प्राप्त होगा। इस प्रदेश मे अन्य राज्यों के व्यक्तियों को भी बसाया जायेगा। इस प्रदेश की वर्तमान जनसंख्या एक लाख से भी कम है तथा पूर्ण विकसित होने पर २० लाख व्यक्तियों को रोजगार

दिया जा सकेगा। नयी बस्तियां बसाने और विकास पर अनुमानतः २ अरब १३ करोड़ रुपये खर्च होंगे।

इस परियोजना के द्वारा २०-२५ वर्षों में ५२३ किलोमीटर (३२५ मील) लम्बे तथा ४८ कि० मी० (३० मील) चौड़े लगभग १६,००० वर्गमील में विस्तृत वनस्पतिविहीन बंजर, तथा पिछड़े हुए क्षेत्र का स्वरूप ही बदल जायेगा।

इस नहर योजना में २०० करोड़ रुपये से अधिक का व्यय होगा।

दक्षिण भारत की नहरें

दक्षिण भारत में तमिलनाडु, महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश में अधिक नहरें पायी जाती हैं। ये नहरें अधिकतर नदियों के डेल्टों में बनायी गयी हैं क्योंकि पूर्वी भाग में तटीय मैदानों में ग्रीष्म काल में मानसून पवनों से इतनी पर्याप्त वर्षा नहीं होती जिससे फसलों के लिए जल की पूर्ति हो जाय किन्तु शीतकाल में यहाँ अच्छी वर्षा हो जाती है। अस्तु सिंचाई केवल ग्रीष्म ऋतु में करने की आवश्यकता पड़ती है। इस ऋतु में पश्चिमी घाटों पर घनी वर्षा होने से इस ओर की नदियों में काफी जल भरा रहता है। इसी जल का प्रयोग पश्चिमी घाट के पूर्वी भागों में महाराष्ट्र, मध्यवर्ती भाग में मध्य प्रदेश, पूर्वी तट की ओर आन्ध्र और तमिलनाडु राज्यों में गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों के डेल्टाओं में सिंचाई के लिए किया जाता है।

महाराष्ट्र की नहरें

यहाँ की प्रमुख नहरें ये हैं :

(१) गोदावरी की नहर गोदावरी नदी पर बेल झील के पास एक २८ मीटर ऊँचा बाँध बनाकर उसके दोनों किनारों से नहरें निकाली गयी हैं। यह नहरें लगभग २०० किलोमीटर लम्बी हैं। नासिक और अहमदनगर जिलों में लगभग २७ हजार हैक्टेअर भूमि की ऐसे भागों में सिंचाई करती हैं जहाँ बहुधा अकाल पड़ा करता है। यह सन् १९१६ में बनायी गयी थीं।

(२) मूठा नहर का निर्माण सन् १८६७ में पूना को पेय जल पहुँचाने के लिए फाइफ झील से किया गया। यह खडकवासला नामक स्थान से निकाली गयी है। इससे दो नहरें निकाली गयी हैं। दाहिनी ओर की नहर ११२ किलोमीटर लम्बी और बायीं ओर की २६ किलोमीटर लम्बी है। इससे पूना जिले की लगभग ४½ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई भी की जाती है।

(३) भण्डारदरा बाँध का निर्माण सन् १९३५ में किया गया। यह बाँध पश्चिमी घाट के ऐसे स्थान पर बनाया गया है जहाँ बहुत अधिक वर्षा होती है। बाँध बनने से पहले इस राज्य की वर्षा का समस्त जल बहकर सागर में चला जाता था लेकिन वह अब इसी में इकट्ठा होकर सिंचाई के काम आता है। प्रवोरा नदी पर भंडारदरा स्थान पर ८२ मीटर ऊँचा बाँध बाँधा गया है जिसे विलसन बाँध कहते हैं। इसमें २०,००० लाख एकड़ फीट जल इकट्ठा किया जाता है। इस बाँध से

निकाली हुई नहरें लगभग १३७ कि० मी० लम्बी हैं और अहमदनगर जिले मे इनसे लगभग २७ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई भी होती है।

(४) भाटागर बाँध का निर्माण सन् १६२६ मे किया गया। महाराष्ट्र में कृष्णा की सहायक नीरा नदी पर भाटागर नामक स्थान पर लायड बाँध बनाकर २,४२,००० लाख एकड़ फीट जल संग्रहित किया गया है। इस बाँध के दायें-बायें किनारो से नहरें निकाल कर पूना, सतारा और शोलापुर जिलों की सिंचाई की जाती है, सिंचित क्षेत्रफल ६५ हजार हैक्टेअर है।

(५) गंगापुर बाँध गोदावरी नदी पर उद्गम से १६ कि० मी० नासिक के पास बनाया गया है। यह बाँध ३,८१२ मीटर लम्बा और ४३ मीटर ऊँचा है। इसकी जल संग्रहण क्षमता ६५ करोड़ घन मीटर की है। इससे बायीं ओर की नहर को नासिक नहर कहते हैं। यह ३८ कि० मी० लम्बी है और इससे लगभग २५ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। दूसरी नहर से ८ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

मध्य प्रदेश की नहरें

मध्य प्रदेश मे अधिकांश सिंचाई तालाबों द्वारा होती है किन्तु इस राज्य की मुख्य नहरें ये हैं :

(१) महानदी नहर रुद्री नामक स्थान से महानदी से निकाली गयी है। शाखाओं-प्रशाखाओं सहित यह १,५३० किलोमीटर लम्बी है। इस नहर द्वारा लगभग ८४ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है। यह सन् १६२७ में बनायी गयी। इस पर १६० लाख रुपया व्यय हुआ है।

(२) वैनगंगा नहर वैनगंगा नदी से निकाली गयी है। यह नहर लगभग ४५ किलोमीटर और इसकी दो शाखाएँ ३५ कि० मी० लम्बी हैं। इसके द्वारा मध्य प्रदेश के बालाघाट और महाराष्ट्र के भण्डारा जिले मे लगभग ४ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है।

(३) तन्दुला नहर तन्दुला और सुखा नदियों के संगम पर दो बाँध बनाकर निकाली गयी है। यह सन् १६३१ मे तैयार की गयी। इसके द्वारा रायपुर और दुर्ग जिलों की ६ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है।

(४) बरना सिंचाई योजना—बरना नर्मदा की एक सहायक नदी है जो भोपाल के निकट विन्ध्याचल की पहाड़ियों से ५३३ मीटर ऊँचाई से निकलती है। इस नदी की कुल लम्बाई ६६ कि० मी० है और यह अपने निकास से ५६ कि० मी० उत्तर-पूर्व में समरीघाट के निकट नर्मदा मे मिलती है। नर्मदा से मिलने के पूर्व यह १·६ कि०मी० लम्बे एक पतले खड्ड में से गुजरती है। बाँध इसी स्थान पर बनाया जायेगा। इस नदी का अपवाह क्षेत्र १,१७६ वर्ग कि०मी० है जो अधिकतर पहाड़ों और वनों से ढँका है। इस क्षेत्र से गालक माटी ताल से सिंचाई की जाती है। इसमे ८५ वर्ग कि० मी० जल इकट्ठा होना है।

इस बाँध की लम्बाई ३५४ मीटर और अधिकतम ऊँचाई ३७ मीटर होगी। यह मिट्टी का बनाया जायेगा इसके जल का फैलाव ७० वर्ग कि० मी० में होगा जिसकी मात्रा ४० करोड़ ७० लाख घन मीटर होगी। इसके ऊपर दायीं और बायीं ओर दो नहरें निकाली जायेंगी जिससे लगभग ६६,४०० हैक्टेअर भूमि की सिंचाई से रायसेन जिले में ४३,९८२ मीट्रिक टन खाद्यान्न अधिक पैदा होंगे। इस बाँध पर ७ करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान है।

(५) हलाली सिंचाई योजना—बेतवा घाटी विकास योजना के अन्तर्गत मध्य-प्रदेश के विदिशा जिले में कार्यान्वित की जाने वाली हलाली सिंचाई परियोजना १९६८ में पूरी हुई। हलाली परियोजना की अनुमानित लागत लगभग ४०४ लाख रुपये है। इससे लगभग ७३½ हजार एकड़ क्षेत्र में सिंचाई होगी। इससे लगभग डेढ़ लाख टन गन्ने के उत्पादन के अतिरिक्त करीब १७½ हजार टन अन्य फसलों का उत्पादन अधिक होगा। परियोजना के अन्तर्गत हलाली नदी पर दीवानगंज स्टेशन से लगभग १५ कि० मी० दूर खोआ ग्राम के सकरी घाटी में ६०३ मीटर लम्बा सीधा ग्रेविटी बाँध बनाया गया है जिसकी अधिकतम ऊँचाई नींव के तल से २९ मीटर है। बाँध से निर्मित जलाशय की कुल जल-संचय क्षमता २ लाख ५७ हजार एकड़ फीट है। बाँध में दो द्वार हैं तथा अतिरिक्त जल का निकास करने वाले स्थल की लम्बाई ७६ मीटर है। नहरों की लम्बाई लगभग ७६ कि० मी० है।

(६) चम्बल की नहरें—मध्य प्रदेश में चम्बल की नहर मुरैना जिले की श्योपुर तहसील में प्रवेश करती है। टरेरा के पास इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं। बायीं ओर की शाखा अम्बाह शाखा १७१ कि० मी० लम्बी है। दाहिनी ओर की शाखा मुरैना शाखा है। शाखाओं सहित चम्बल की नहरों से ग्वालियर, भिंड, मुरैना जिलों की तहसीलों और लगभग १३,००० गाँवों की लगभग २½ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

तमिलनाडु की नहरें

तामिलनाडु की मुख्य नहरें ये हैं:

(१) कावेरी डेल्टा की नहरों का निर्माण दूसरी शताब्दी में किया गया। डेल्टा तक पहुँचने के पूर्व २९ किलोमीटर ऊपर की ओर कावेरी नदी धाराओं में बँट जाती है। कावेरी की प्रधान धारा श्रीरंगम द्वीप के दाहिनी ओर से और कोलरून नदी बायीं ओर से बहती है। कावेरी के जल को कोलरून की ओर बह जाने से रोकने के लिए कोलरून पर ग्रांड एनीकट (Grand Enicut) नामक बाँध बनाया गया है जो ३३० मीटर लम्बा, १२ से १८ मीटर चौड़ा और ५ से ६ मीटर तक ऊँचा है। दूसरा बाँध श्रीरंगम पर ऊपरी एनीकट के नाम से बाँधा गया है। यह ७८० मीटर लम्बा है। इसकी मुख्य नहरों की लम्बाई शाखाओं सहित २,४१५ किलोमीटर है। इसी की सहायता से कावेरी डेल्टा में तन्जौर जिला दक्षिण का उद्यान

बन गया है। इससे डेल्टा की लगभग ४ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। इसमें चावल का उत्पादन अधिक किया जाता है।

(२) पेरियर योजना पेरियर नदी पर बनायी गयी है। यह नदी पहले इलायची की पहाड़ियों से निकलकर पश्चिम की ओर बहती हुई अरब सागर में गिर जाती थी और इसके जल का कोई उपयोग नहीं होता था जबकि इन पहाड़ियों के पूर्व में तमिलनाडु के मदुराई और तिरुनलवेली जिलों में बहुत कम वर्षा के कारण बहुधा अकाल पड़ा करते थे। अतएव इन्जीनियरों ने इस नदी का प्रवाह मार्ग पूर्व की ओर

चित्र—७'५

बदल डालने के लिए पश्चिम की ओर एक ४२ मीटर ऊँचा बाँध बनाकर इस नदी को एक झील के रूप में परिणत कर दिया है। फिर इस झील का जल एक तीन किलोमीटर लम्बी कृत्रिम सुरंग द्वारा पूर्व की ओर ले जाकर वेगई नदी में डाल दिया गया है। इससे वेगई नदी में बहुत जल हो गया है। इसलिए उससे नहरें निकालकर मदुराई जिले की आस-पास की लगभग ४० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाने लगी है। पेरियर प्रणाली की नहरों की लम्बाई लगभग ४३२ किलोमीटर है।

(३) मैट्टूर योजना के अन्तर्गत १९३४ में कावेरी नदी पर उसके उद्गम स्थान से लगभग ४०० किलोमीटर दूर के पहाड़ी प्रदेश में मैट्टूर नामक स्थान पर एक बाँध बनाकर ८,४१५ लाख घन मीटर जल रोका गया है। इससे २०० किमी० लम्बी ग्राण्ड एनीकट और बदावर नहरें निकाल कर कावेरी डेल्टा में तथा सलेम और कोयम्बटूर जिलों की १'३४ लाख हैक्टेअर भूमि में सिंचाई की जाती है। सिंचाई के सहारे मूँगफली, चावल, कपास पैदा किया जाता है।

(४) निचली भवानी योजना की नहरें—सन् १९५६ में कावेरी की सहायक भवानी नदी पर एक बाँध १० करोड़ रुपये की लागत से बनाया गया। यह ६ किलोमीटर लम्बा और ६२ मीटर ऊँचा है। इसी को बाँधकर भवानी सागर झील का निर्माण किया गया है। इससे नहरें निकालकर कोयम्बटूर जिले के भवानी, ईरोड, धारापुरम, गोवी, पैटीपलायम् तालुकों की ८० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है और कपास तथा अनाज बोया जाता है।

केरल राज्य की नहरें

(१) मालमपुजा बाँध—केरल राज्य के मालाबार जिले में यह बाँध सन् १९५६ में मालमपुजा नदी पर ५'८ करोड़ रुपयों की लागत से बनाया गया। इसके द्वारा निकाली गयी नहरों से मालाबार जिले की ३८ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(२) वलायर जलाशय—केरल राज्य में कोरयार की सहायक वलायर पर १९५७ में १ करोड़ रुपये के व्यय से बाँध बनाया गया है जो १,४८० मीटर लम्बा और ३० मीटर ऊँचा है। इसमें ७३३ लाख घन मीटर जल एकत्रित किया गया है। इससे १५ किलोमीटर लम्बी चार नहरें निकाली गयी हैं जो मालाबार जिले के पालघाट तालुक की ३,२०० हैक्टेअर भूमि को सींचती है।

(३) मंगलम योजना की नहरें—केरल राज्य के मालाबार जिले में ८५ लाख रुपये के व्यय से ये नहरें बनायी गयी हैं। बाँध २७ मीटर ऊँचा है। इसमें जल संग्रहण की मात्रा ५६३ लाख घन मीटर की है तथा इसके द्वारा बायीं नहर से नौगाँव में २,६०० हैक्टेअर भूमि तथा दायीं नहर से ८०० हैक्टेअर भूमि की सिंचाई करके चावल की ३ फसलें प्राप्त की जाती हैं।

आन्ध्र प्रदेश की मुख्य नहरें

आन्ध्र प्रदेश की मुख्य नहरें ये हैं :

(१) गोदावरी डेल्टा की नहरें—गोदावरी नदी अपने डेल्टा में गोमती, गोदावरी तथा वशिष्ठ गोदावरी नामक शाखाओं में विभक्त होकर बहती है। गोमती, गोदावरी पर धौलेश्वरम् तथा रोली बाँध क्रमशः १,५२० मीटर और १०० मीटर लम्बे बनाये गये हैं। वशिष्ट गोदावरी पर मुद्दूर और विजेश्वरम् बाँध क्रमशः ४६० मीटर तथा ७६० मीटर लम्बे हैं। इन दोनों से नहरें निकाली गयी हैं जिनसे

प्रधान शाखाओं की लम्बाई ८०० किलोमीटर और प्रशाखाओं की लम्बाई ३,२२० किलोमीटर है। गोदावरी डेल्टा की नहरें १८९० में लगभग ३ करोड़ रुपये की लागत से बनायी गयी थी। इनके द्वारा ५ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है।

(२) कृष्णा डेल्टा की नहरें—कृष्णा नदी अपने मुहाने से ९७ किलोमीटर विजयवाड़ा की ११,८८७ मीटर चौड़ी घाटी में जहाँ पहुँचती है वहीं उसका जल बाँध बनाकर रोका गया है। इससे दोनों ओर की नहरें निकालकर डेल्टा में सिंचाई की जाती है। नहरों का निर्माण सन् १८९८ में २½ करोड़ रुपये की लागत से किया गया। इनके द्वारा ४ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। इन नहरों को गोदावरी नदी के डेल्टे की नहरों से जोड़ दिया गया है जिससे इन दोनों के बीच यातायात भी होता है।

(३) कृष्णा सिंचाई योजना के अन्तर्गत कृष्णा नदी पर कृष्णा एनीकट से १८ मीटर ऊपर की ओर एक बाँध सन् १९५६ में बनाया गया था। यह १,०९९ मीटर लम्बा है इसके द्वारा नहरें निकालकर डेल्टा तथा ऊपर के क्षेत्र में २९ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(४) रामपद सागर योजना—के अनुसार गोदावरी नदी पर पोलावरम नामक स्थान पर रामपद सागर बाँध ८८ मीटर ऊँचा और ६८२ किमी० लम्बा बनाकर १२० लाख एकड़ फुट पानी रोका गया है। इस बाँध के दोनों किनारों से दो नहरें निकालकर गोदावरी डेल्टा में विशाखापट्टनम, कृष्णा, गोदावरी, गंटूर जिलों में लगभग ११ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(५) तुंगभद्रा योजना के अन्तर्गत कृष्णा की सहायक तुंगभद्रा नदी पर मालपुरम स्थान पर एक ५० मीटर ऊँचा और लगभग २,४४० मीटर लम्बा बाँध बनाया गया है। इससे नहरें निकालकर आन्ध्र प्रदेश की १ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। सिंचित क्षेत्रफल पर कपास, मूंगफली, चावल, गन्ना और ज्वार-बाजरा पैदा किया जाता है।

(६) कृष्णा-पेनार योजना—कृष्णा नदी पर कर्नूल जिले में सिद्धेश्वर नामक स्थान पर एक बाँध तथा पेनार नदी पर दूसरा बांध सोमेश्वर में बनाया गया है। इसमें नहरें निकालकर आन्ध्र प्रदेश की १२ लाख हैक्टेअर भूमि पर सिंचाई की जाती है। नहरों की लम्बाई १,३०० कि० मी० है। इससे १½ लाख किलोवाट बिजली भी पैदा की जायेगी।

प्रथम योजना से १९७० तक समाप्त की गयी सिंचाई की प्रमुख नहरें

	निर्माण व्यय (ला० रु०)	सिंचित क्षेत्रफल (ह० हैक्टेअर)
आन्ध्र		
मूसी	३३४	१९·२
रलायद	१०६	४·४
रामपेरू	१२७	४·१
ऊपरी पैनार	१४८	९·१

	फोइन सागर	६१	३७.९
	नारायणपुरम	६७	१४.९
बिहार			
	बदुआ	६६०	४२.४
	कांची	१५२	१८.२
	दोरो	६६	१०.६
	सोन बैरेज कमला बांध	१५२	—
गुजरात			
	ब्राह्मणी	६१	१०.९
	मच्छू I	१५८	९.७
	मोज	६६	४.८
	पानाडूगरी	८५	३.१
	ससोई	८७	३.१
	शतरंजी	६६७	३४.८
	बनास	१,०८८	४४.५
	हाथमाती	५४४	३७.४
	मदार	४१७	१७.१
	मेशवा	३१४	२३.६
केरल			
	चलाकुडी प्रथम सोपान	१५३	२२.६
	पीची	२३५	२८.१
	वजानी	१०८	७.१
	मनायार	१३२	६.५
	नम्बूर प्रथम सोपान	२३५	१५.४
	„ द्वितीय „	१७०	८.१
	पोथूंडी	२७८	८.६
महाराष्ट्र			
	नागपुर प्रथम सोपान	४०१	१६.८
	नागपुर द्वितीय „	११२	७.६
	मोह	१८०	२४.५
	पीर	५३५	२१.०
	बोर	३२८	१३.४
	पूर्णा	१,७००	६१.१
	मानगंगा	२७३	८.७

कर्नाटक		
तुंग	३११	८·१
तुंग एनीकट	२६७	८·८
घर्मा	१३८	५·३
अम्बलीगोला	१११	३·०
तमिलनाडु		
अमरावती	३३०	२१·६
निम्न भवानी	१,०३४	७८·६
मनीमुथार	५०५	४१·७
नैयर द्वितीय सोपान	६०	३·८
सथानूर	२५८	८·५
विदुर	८८६	१·३
वेगई	३३०	६·२
उत्तर प्रदेश		
बेलन और टोंस	२७६	४१·१
माताटीला	१,२४६	१६५·७
नानक सागर	४२०	५३·७
मेजा	३३४	२१·१

नहरों द्वारा सिंचाई के लाभ

(१) सिंचाई से बंजर भूमि हरे-भरे खेतों में परिणित की जा सकती है। पंजाब और हरियाणा की नहरी बस्तियाँ तथा उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और दक्षिण के पठार इसके सजीव उदाहरण हैं। नहरों ने बड़ी सीमा तक अकाल की भयानक आशंका को निर्मूल कर दिया है और आर्थिक सुख-समृद्धि के लिए एक नूतन अध्याय का सूत्रपात किया है। अकाल-ग्रस्त क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध करना उनके विरुद्ध बीमा कराने के समान है। सिंचाई के कारण डॉ० स्टाम्प के शब्दों में, "भारत एक नये मिस्र की वृद्धि कर लेता है।" (२) किसी क्षेत्र में सिंचित भूमि की उपज में असिंचित भूमि की अपेक्षा प्रति हैक्टेअर ५० से लेकर १०० प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि सिंचित क्षेत्र में चावल की उपज में ५३%, गेहूँ में ५३%, जौ में ५७%, बाजरा में ४६%, मक्का में ५३% वृद्धि हुई है। (३) गन्ना, जूट, रुई आदि व्यापारिक फसलों के उत्पादन में उन्नति हुई है। नहरों का जल अपने साथ उपजाऊ मिट्टी लाकर सिंचित भूमि की उर्वरता में और अधिक वृद्धि कर देता है। (४) नहरों से उन विशाल क्षेत्रों के लिए यातायात तथा संचार साधन की सन्तोषजनक व्यवस्था हो जाती है जहाँ सड़कों तथा यातायात का सर्वथा अभाव है। उदाहरणार्थ, पूर्वी डेल्टा की नहरों द्वारा सिंचाई और यातायात

दोनों ही कार्य होते हैं। (५) साधारणतया नहरों में लगायी गयी पूँजी से सरकार को ७ से लेकर ८ प्रतिशत तक की आय होती है। इससे एक लाभ यह भी है कि अकाल सहायता सम्बन्धी सरकारी व्यय में कमी हो जाती है। (६) घटिया किस्म के खाद्यान्नों (जैसे ज्वार, बाजरा आदि) के स्थानों पर गेहूँ, चावल जैसे अच्छे किस्म के अन्नों का उत्पादन होने लगा है। इससे किसानों की आय में वृद्धि होने के साथ ही उन्हें पुष्टिकर भोजन भी मिलता है। (७) नहरों या तालाबों द्वारा की जाने वाली सिंचाई की एक विशेषता यह है कि इससे भूगर्भ जल की सतह ऊँची उठ जाती है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है और कुएँ सुगमतापूर्वक तथा कम व्यय में खोदे जा सकते हैं।

नहरों द्वारा सिंचाई से होने वाली हानियाँ

(१) अधिक सिंचाई से नीची भूमि के धरातल पर हानिकारक नमक जम जाता है जिससे मिट्टी का उपजाऊपन नष्ट हो जाता है। महाराष्ट्र की नीरा नदी की घाटी में नमक की तह जम जाने से लगभग ३६ हजार हैक्टेयर भूमि खेती के अयोग्य हो गयी है। (२) जिस भूमि में इस प्रकार नहर का जल जमा हो जाता है वहाँ मच्छर उत्पन्न हो जाते हैं क्योंकि सारी भूमि इतनी अधिक संपृक्त हो जाती है कि उसमें सदा जल भरे रहने से वह दलदल हो जाती है। अतः भूमि मलेरिया और अन्य संक्रामक रोगों की जन्म-स्थान बन जाती है। (३) नहरों का तल और उसके किनारे हानिकारक नमक की क्रियाओं से जम जाते हैं जो कि नहरों की सुरक्षा की दृष्टि से हानिकारक होते हैं। (४) अधिक सिंचाई के कारण भूमि से इतनी अधिक फसलें प्राप्त हो जाती हैं कि कृषक को उनका उचित मूल्य नहीं मिलता फलतः कृषि में मन्दी आ जाती है। (५) नहरों द्वारा कभी-कभी सिंचाई के लिए जल समय पर नहीं मिलता अत. जब कभी यह उपलब्ध हो जाता है तो कृषक आवश्यकता से कहीं अधिक जल भूमि को दे देता है। डॉ० हावर्ड के शब्दों में, "जल के ऐसे दुरुपयोग से भूमि की उर्वरा-शक्ति कम हो जाती है।"

भूमि के नीचे का जल और उसका उपयोग

जैसा कि पहले बताया गया है कि भारत में वार्षिक वर्षा के द्वारा लगभग ३७,००,५४० करोड़ घन मीटर जल प्राप्त होता है। इसमें से ३३% भाप बनकर उड़ जाता है और २२% भूमि द्वारा सोख लिया जाता है। इसी सोखे हुए जल को कुओं या नलकूपों द्वारा धरातल पर खींचकर सिंचाई के लिए व्यवहृत किया जाता है। धरातल के नीचे जल पहुँचकर प्रवेश्य चट्टानों में भर जाता है।

१९५३ में भारतीय भूगर्भिक सर्वेक्षण और अमरीकी सहायता से विभिन्न क्षेत्रों में की गयी जाँच पड़ताल से पता लगा है कि भारत के अनेक क्षेत्रों में धरातल के नीचे पर्याप्त मात्रा में जल स्थित है। ऐसे क्षेत्र मुख्यतः तीन हैं : (१) गंगा का प्रवाह प्रदेश, (२) पंजाब में कम मिट्टी के क्षेत्र जो लुधियाना से लगाकर अमृतसर

तक फैले हैं; और (३) पश्चिमी क्षेत्र, जो २८° अक्षांश के उत्तर में होता हुआ दक्षिण की ओर गुजरात के मैदान में अहमदाबाद तक चला गया है। पिछले दो क्षेत्रों में भूगर्भ जल पर्याप्त मात्रा में होने में सन्देह है किन्तु गंगा का बेसीन इस प्रकार के जल-स्रोतों में बड़ा धनी है। नर्मदा की घाटी (सतपुड़ा के उत्तर में), ताप्ती नदी का बेसीन (मध्य प्रदेश, गुजरात), पूर्णा बेसीन (महाराष्ट्र, गुजरात और सौराष्ट्र), आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु भूगर्भिक जल में धनी हैं। एक अनुमान के अनुसार लगभग ६३,६०० वर्ग किलोमीटर भूमि में भूगर्भिक जल सन्निहित है जिसका उपयोग साधारण कुएँ, छिद्रदार कुएँ या पम्पिंग सैट, रेंहट, नलकूपों द्वारा किया जा सकता है।

ऐसा अनुमान है कि २२० लाख हैक्टेअर मीटर जल का उपयोग २२० लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई करने में किया जा सकता है। इसमें से १९५०-५१ में ६५ लाख हैक्टेअर, १९६०-६१ में ८२ लाख और १९७०-७१ में ११० लाख हैक्टेअर भूमि सींची गयी।

कुएँ
(WELLS)

भारत में कुँओं द्वारा सिंचाई करने का ढंग प्राचीन काल से चला आ रहा है। कुल सिंचित भूमि के लगभग ३७% भाग में कुँओं द्वारा सिंचाई होती है। कुँओं द्वारा सिंचाई उन्हीं भागों में की जाती है जहाँ कुँओं के निर्माण के लिए निम्न भौगोलिक दशाएँ अनुकूल होती हैं :

(१) देश में एक बहुत बड़े भाग में चिकनी बलुई मिट्टी पायी जाती है जिसमें जहाँ-तहाँ बालू के बीच काँप की तहें मिलती हैं। इनमें मिट्टी से रिस कर काफी मात्रा में जल एकत्रित हो जाता है अस्तु, काँप की तहें जल का अगाध भण्डार बन जाती हैं। इन्हें खोदने पर काफी जल प्राप्त हो जाता है। इस जल को सरलता से ऊपर उठाकर धरातल पर पहुँचाया जा सकता है। भारत की भौगर्भिक बनावट इतनी सरल है कि जहाँ भी जल का दबाव इतना है कि वह स्वतः ही धरातल तक आ सके वहाँ पाताल तोड़ कुएँ आसानी से बन सकते हैं। जिन स्थानों पर काँप की तहें काफी मोटी पायी जाती हैं वहाँ गहरे छेद करके साधारण कुँओं की अपेक्षा अधिक जल प्राप्त किया जा सकता है।

(२) अधिकतर कुएँ वहीं बनाये जाते हैं जहाँ जल भूमि के निकट ही पाया जाता हो। इस दृष्टि से गंगा-सतलज का मैदान कुँओं द्वारा सिंचाई के लिए बड़ा उपयुक्त है क्योंकि यहाँ भूमिगत-जल प्रायः सभी स्थानों पर भूमि धरातल से थोड़ी ही गहराई पर मिल जाता है। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ कुँओं में जल थोड़ी ही गहराई पर मिल जाता है किन्तु जहाँ [illegible] है। यही [illegible] पर ही [illegible] स्थान में

६० से ९० मीटर की गहराई पर जल-तल मिलता है। अतः सिंचाई करने में इन स्थानों में परिश्रम और व्यय दोनों ही अधिक होते हैं।

१९५०-५१ में भारत में लगभग ५० लाख कुएँ थे। तीसरी योजना की समाप्ति तक ७,९०,००० कुएँ और खोदे जा चुके थे। इस प्रकार वर्तमान में लगभग ६० लाख कुएँ हैं।[1] अन्ततः इनकी संख्या ७० लाख हो जाने की है।

कुँओं से सिंचाई करने के दृष्टिकोण से सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग पंजाब से लेकर बिहार तक का सतलज गंगा का मैदान है। पंजाब और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भागों में कुँओं से सिंचाई, नहरों द्वारा सिंचाई के सहायक रूप में होती है क्योंकि यहाँ अधिकांश भागों में नहरों का जल मिल जाता है। पूर्वी उत्तरप्रदेश और बिहार के कुछ भागों में कुएँ सिंचाई के मुख्य साधन हैं। इन भागों में कुँओं में जल भूमि के धरातल के निकट ही मिल जाता है अतः फसलों के लिए जल की उतनी आवश्यकता नहीं रहती जितनी पश्चिमी भागों में। इन भागों में बहुत से कच्चे कुएँ आवश्यकतानुसार थोड़े ही खर्च में बना लिए जाते हैं। जिस वर्ष वर्षा कम होती है ऐसे कुँओं की संख्या भी बढ़ जाती है। ऐसे कुएँ एक या दो मौसम से अधिक काम नहीं देते। बिहार के पूर्व में वर्षा की अधिकता के कारण बंगाल में सिंचाई की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पंजाब में पूर्वी भागों की अपेक्षा जल अधिक गहराई पर मिलता है। अतः सामान्यतः पक्के कुएँ ही बनाये जाते हैं। इन कुओं की कोठी काफी नीचे तक जल में बैठायी जाती है और तब नीचे की चिकनी मिट्टी में—जिस पर कुएँ का ढांचा खड़ा होता है—छिद्र करके स्रोतों से जल निकाला जाता है। इस प्रकार के कुँओं में जल की पूर्ति काफी अधिक होती है किन्तु इनके निर्माण में व्यय अधिक होता है। पूर्वी भागों में जल ऊपर लाने के लिए प्राय: हल्के साधन काम में लिए जाते हैं—जैसे हाथ से जल निकालना, ढेंकली द्वारा आदि—किन्तु पश्चिमी भागों में चरस और रेंहट द्वारा जल निकाला जाता है। साधारणतः ढेंकली द्वारा प्रतिदिन में १/८ एकड़, चरस द्वारा १ एकड़ और रेंहट द्वारा ८ से १० एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकती है।

कुँओं द्वारा सिंचित क्षेत्र ये हैं

(१) कुँओं से सिंचाई प्राप्त करने वाले मुख्य क्षेत्र तमिलनाडु का दक्षिणी भाग और नीलगिरी और इलायची की पहाड़ियों का पूर्वी भाग है जो गन्तूर से कोयम्बटूर होता हुआ तिरुनलवेली तक त्रिभुजाकार रूप में फैला है। यह प्रदेश पूर्वी समुद्र तट के मैदान का भाग है जहाँ ग्रीष्म में इतनी पर्याप्त वर्षा नहीं होती कि फसलें उगाई जा सकें। यहाँ कोयम्बटूर, रामनाथपुरम और मदुराई जिलों में कुँओं द्वारा अधिक सिंचाई होती है।

[1] *Geographical Society of India, Mountains and Rivers of India.*

(२) महाराष्ट्र के दक्षिणी पठार से लगाकर पश्चिमी घाट के पूर्वी भागों में काली मिट्टी के क्षेत्र में (जहाँ यह अधिक गहराई तक फैली है) भी कुँओं द्वारा सिंचाई होती है। अहमदनगर, पूना, कोल्हापुर और शोलापुर जिलों में कुँओं से सिंचाई की जाती है।

(३) पंजाब के हिमालय के निकटवर्ती जिलों में भी कुँओं द्वारा सिंचाई होती है।

(४) गंगा की घाटी के मध्य क्षेत्र में कुँओं द्वारा सिंचाई की जाती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के बहराइच, गोंडा, बस्ती, फैजाबाद, सुल्तानपुर, जौनपुर, रायबरेली, प्रतापगढ़, वाराणसी, आजमगढ़, बलिया, गाजीपुर, गोरखपुर एवं देवरिया जिलों में, बिहार के शाहबाद, पटना, गया, सारन, मुंगेर, मुजफ्फरनगर और भागलपुर में तथा पश्चिमी बंगाल के पुर्णिया, बाँकुड़ा, बर्द्धवान, वीरभूमि और मुर्शिदाबाद जिलों में कुँओं द्वारा सिंचाई की जाती है।

(५) राजस्थान में प्राय: उत्तरी, पूर्वी और पश्चिमी तथा मध्य भागों में कुओं द्वारा सिंचाई होती है।

कुँओं द्वारा सिंचाई का सबसे अधिक क्षेत्र राजस्थान में है। इसके बाद गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा और तमिलनाडु का स्थान है।

इन क्षेत्रों के विपरीत, हिमालय के बहुत ही निकटवर्ती असम गारो जयन्तिया की पहाड़ियाँ, पश्चिमी घाट के पश्चिमी क्षेत्र कुँओं द्वारा सिंचाई के लिए उपयुक्त हैं।

कुँओं द्वारा उत्तरी भारत में ही अधिक सिंचाई की जाती है, क्योंकि,

(१) तराई की ओर से आने वाला जल धीरे-धीरे रिस कर भूमि में समा जाता है अत: उसका तल ऊँचा रहता है और कुँआ खोदने में सुविधा रहती है।

(२) उत्तरी भारत की मिट्टी मुलायम होने से खुदाई करना सरल है।

(३) कृषक अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से ही कुँआ बना लेता है अत: व्यय अधिक नहीं होता।

कुँओं द्वारा सिंचाई के दोष/गुण

कुँओं की सिंचाई में कई दोष पाये जाते हैं जैसे

(१) यदि लगातार अधिक समय तक कुँओं से जल निकाला जाय तो कुएँ शीघ्र ही सूख जाते हैं तथा जिस वर्ष वर्षा कम होती है उस वर्ष भी जल की कमी पड़ जाती है। अत: सिंचित क्षेत्रफल में भी कमी हो जाती है। (२) कुँओं द्वारा सिंचाई करने में नहरों की अपेक्षा व्यय और परिश्रम दोनों ही अधिक होते हैं। अत: वैसी ही फसलें अधिक बोयी जाती हैं जिनसे कृषक को आर्थिक लाभ मिल सकता है— गन्ना, तिलहन, हरा चारा, कपास या गेहूँ। (३) कुँओं से केवल सीमित क्षेत्रों में ही

सिंचाई हो सकती है। उदाहरणार्थ, कच्चा कुँआ अधिक से अधिक प्रतिदिन ३ एकड़ और पक्का कुँआ १५-२० एकड़ भूमि सींच सकता है। (४) अधिकांश कुओं का जल खारी होता है जो सिंचाई के लिए अनुपयुक्त होता है। यह फसलों को भी नष्ट कर देता है।

किन्तु कुओं का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनके बनाने में व्यय कम होता है और इन्हें खोदने में किसी यन्त्र विशेष की आवश्यकता नहीं पड़ती और न ही विशिष्ट ज्ञान अपेक्षित होता है। अतः भारतीय किसान के लिए सिंचाई का यही सबसे सस्ता और सरल साधन है।

(१) कुँएं के जल में अनेक रासायनिक तत्त्व घुले रहते हैं जैसे नाइट्रेट, क्लोराइड, सल्फेट और सोडा। ये भूमि को उपजाऊ बनाकर पैदावार में वृद्धि करते हैं।

(२) नहरों द्वारा सिंचाई करने पर जो भूमि के जल प्लावित हो जाने, क्षार की वृद्धि होने तथा भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो जाने का अंदेशा रहता है, वह कुँओं से सिंचाई करने पर नहीं होता।

(३) चूँकि जल निकालने के लिए कृषक को परिश्रम करना पड़ता है अतः जल का उपयोग मितव्ययिता से होता है।

नलकूप
(TUBEWELLS)

भारत में हिमालय पर्वत से निकलने वाली नदियों का जल गंगा के मैदान के नीचे पर्याप्त मात्रा में रिस जाता है। सतपुड़ा के उत्तर में नर्मदा नदी की घाटी में यह जल पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। गुजरात क्षेत्र में २७० से ३७० मीटर की गहराई पर काफी जल भरा है इसका प्रमाण बीरमगाँव के निकट खोदे गये एक पाताल तोड़ कुएँ से मिला है जहाँ प्रति घण्टा १,१४,००० लीटर जल प्राप्त होता है। महाराष्ट्र में लावा के पठार पर छिद्रों में नदियों के किनारे भी भूगर्भिक जल पाया जाता है। राजस्थान के पश्चिमी भागों में प्राचीनकाल की सरस्वती और हकरा नदियों का लुप्त हुआ जल भूमि के नीचे पाये जाने का अनुमान है। लूनी नदी के बेसीन में इस प्रकार के जल स्रोत हैं। जैसलमेर से ५ किलोमीटर पश्चिम में ३१२ मीटर की गहराई पर खोदे गये नलकूप से प्रति घण्टा ३,१८,२२० लीटर और जैसलमेर के पूर्व में ४८ किलोमीटर दूर चंदन कुएँ से ८८७ मीटर की गहराई से प्रति घण्टा २,२७,३०० लीटर जल प्राप्त हो रहा है। इसी प्रकार बावला के निकट १३ किलोमीटर पूर्व की ओर के क्षेत्र में खोदे गये कुँएं से १,०४,५५८ लीटर जल प्रति घण्टा मिल रहा है। भूगर्भ के नीचे जल के इतने बड़े परिमाप में मिलने से विशेषज्ञों का अनुमान है कि जैसलमेर और पोकरण नगरों के बीच ११२ किलोमीटर लम्बे क्षेत्र में मीठे जल के गहरे भण्डार मौजूद हैं। १९७० तक इस क्षेत्र में २३ और नलकूप तैयार किये जा चुके हैं।

नलकूपों का निर्माण उन क्षेत्रों में सम्भव है जहाँ जल १५ मीटर से अधिक गहराई पर पाया जाता है। भूमि में छेद करके पम्पों द्वारा जल को धरातल तक लाया जाता है। नलकूपों का प्रयोग सामान्यतः वहाँ किया जाता है जहाँ नहर का जल नहीं पहुँच पाता। नलकूपों का प्रयोग सिंचाई के अतिरिक्त बेकार भूमि को खेती योग्य बनाने में भी किया जाता है।

भारत में नलकूपों का आरम्भ सबसे पहले गंगा की घाटी में १९३० में किया गया। १९५१ में २,५०० नलकूप थे। १९६०-६१ में भारत में ६,१९८ नलकूप थे। १९६५-६६ में इनकी संख्या ११,१६४ हो गयी। इनके द्वारा इन वर्षों में क्रमशः ४ लाख, ६'६५ लाख और १४'२५ लाख हैक्टेअर भूमि सींची गयी। १९६८ में लगभग २ लाख नलकूप कार्य कर रहे थे, जिसमें से प्रत्येक की सिंचाई करने की क्षमता ४०० हैक्टेअर की है तथा अन्य ४०० हैक्टेअर को ये सूखे से संरक्षण देते हैं। सबसे अधिक नलकूप उत्तर प्रदेश में हैं। उत्तर प्रदेश में ८,०००, पंजाब में लगभग १,६००; गुजरात में ४६०; पश्चिम बंगाल में २४०, बिहार में ६५०, उड़ीसा में २१ और मध्य प्रदेश में ६० हैं।

कुछ नलकूप तो वर्ष में ७०० घण्टों से भी अधिक समय तक के लिए जल देते हैं और इनके द्वारा लगभग ३ से ४ हजार हैक्टेअर भूमि सींची जाती है। वृहद् कलकत्ता क्षेत्र में तो नलकूपों से प्रति घण्टा औसतन २७,००० लीटर जल मिलता है। साधारण कुँओं की अपेक्षा नलकूप बनाने में ५० से ८० हजार रुपया व्यय होता है।

साधारणतः नलकूपों के निर्माण के लिए निम्न दशाएँ आवश्यक हैं

(i) भूमि तल के नीचे जल की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिए जिससे वह धरातल की माँग को स्थायी रूप से पूरा कर सके। (ii) जल-तल का धरातल भूमि से १५० मीटर की गहराई से अधिक नहीं हो तथा उसका तल साधारण तल से नीचा हो। (iii) सिंचाई की माँग औसत रूप से वर्ष भर में ३,२०० घण्टे हो। (iv) सस्ती विद्युत-शक्ति की उस क्षेत्र में सुविधा हो। यह साधारणतः दो पैसे प्रति इकाई से अधिक न हो। (v) मिट्टी इतनी उपजाऊ हो कि नलकूप-निर्माण में किया गया व्यय उस पर अधिक उत्पादन करके प्राप्त किया जा सके।

नलकूपों से खेतों तक जल पहुँचाने के लिए कभी-कभी १'६ किलोमीटर की दूरी तक पक्की और ३'२ किलोमीटर की दूरी तक कच्ची नालियाँ (Guls) बनानी पड़ती हैं।

नलकूपों से सिंचित क्षेत्र

नलकूपों द्वारा सिंचित क्षेत्रफल अधिकतर उत्तर प्रदेश में ही पाया जाता है। इसके निम्नांकित कारण हैं :

(क) यहाँ नदियों के मैदान के अधिकांश भागों में ३० मीटर के परिमाण के अच्छे जल धारण करने वाले स्तर पाये जाते हैं जिनमें भूमि की ऊपरी सतह से ६१

मीटर नीचे तक भली-भाँति खुदाई हो सकती है। बोरिंग द्वारा नीचे वाले स्तरों में छिद्र किये जाते हैं ताकि निकट वाले साधारण कुँओं में जल की कमी न हो जाय। अगर इस ३० मीटर मोटाई के जल-धारण करने वाले स्तर में १५ सेण्टीमीटर व्यास वाले बोरिंग का जल ५ मीटर नीचा बैठा दिया जाय तो एक कुँऐं से लगभग ३४,००० गैलन प्रति घण्टा के हिसाब से जल लिया जा सकता है। इतने जल से सामान्यतः एक नलकूप के अन्तर्गत २५० हैक्टेअर भूमि होती है।

(ख) यहाँ के अधिकांश कुँओं में जल स्रोत पृथ्वी की ऊपरी सतह से १० मीटर से भी कम गहराई पर मिलता है। इन कुँओं में केन्द्रोपसारी पम्प लगाये जाते हैं जो बिजली की एक इकाई शक्ति से २,५०० से ४,५०० गैलन तक जल खींच लेते हैं। जिन भागों में जल-स्रोत ६ से १२ मीटर की गहराई पर मिलता है वहाँ नल-कूपों में छिद्र का प्रयोग किया गया है जिससे प्रति घण्टा २ हजार से ३ हजार गैलन जल फेंका जाता है

(ग) यहाँ वर्ष भर ही सिंचाई की माँग रहती है। खरीफ के मौसम में गन्ना, चरी और कपास तथा रबी के मौसम में गेहूँ, चना और चरी आदि की फसल की सिंचाई की जाती है।

उत्तर प्रदेश में नलकूपों की सिंचाई के क्षेत्र मुख्यतः दो भागों में विभाजित हैं:

(१) गंगा नदी के पश्चिम की ओर के भाग जिसमें मेरठ, मैनपुरी, एटा, इटावा, फर्रुखाबाद, बुलन्दशहर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और अलीगढ़ के वे जिले हैं जिनमें वर्षा की मात्रा कम होती है तथा यहाँ जल का स्रोत भूमि के ऊपरी धरातल से ६-९ मीटर की गहराई पर मिल जाता है। इस क्षेत्र को विद्युत गंगा ग्रिड जल योजना से मिलती है।

(२) गंगा नदी के पूर्व की ओर के भाग जिनमें बिजनौर, मुरादाबाद, जौनपुर, देवरिया, आजमगढ़, गोरखपुर, बलिया बनारस, गाजीपुर, सुल्तानपुर, फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच, और बदायूँ के जिले सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में जल स्रोत भूमि से ४½ से ६ मीटर नीचे की गहराई पर मिलता है। गंगा की नहरों से उत्पादित सस्ती बिजली इन कुँओं को चलाने के लिए उपलब्ध है।

दक्षिणी भारत में जल सहित स्तर केवल मुहावदार भागों में या चट्टानों के खड्डों में ही मिलते हैं। अतः ऐसे कूप कम हो मिलते हैं।

गुजरात में अहमदाबाद के निकट पाताल तोड़ कुँऐं भी मिलते हैं। जल ७६ मीटर गहराई से पम्प करके प्राप्त किया जाता है। इससे प्रति घण्टा ४ लाख गैलन जल मिलता है। अहमदाबाद के निकट धोलेरा में २५७ मीटर गहरा पाताल तोड़ कुआँ है जिससे प्रतिदिन ६,५०,००० गैलन जल मिलता है।

हरियाणा के हिसार जिले में घग्घर नदी के साथ-साथ टोहाना से लेकर ओटू झील तक मीठे जल की ५१ कि०मी० लम्बी और ६ कि० मी० चौड़ी पट्टी पायी

गयी है। इसमें टोहाना, रनिया और सिरसा खण्डों में १,४०० नलकूप खोदे जायेंगे। गुड़गाँव जिले में ६६ कि० मी० लम्बी मीठे जल की पट्टी मिली है। इसमें २,३०० नलकूप खोदे जायेंगे। महेन्द्रगढ़ जिले के दादरी खण्ड में घाघरा नामक स्थान पर मीठे जल की एक और पट्टी मिली है जिसमें १,२०० नलकूप और ७०० साधारण कुँएँ खोदे जायेंगे।

हरियाणा के *हिसार और गुड़गाँव जिलों में तथा पंजाब के लुधियाना और पटियाला जिलों में नलकूपों द्वारा सिंचाई की जा रही है।*

पश्चिमी राजस्थान में जैसलमेर, जोधपुर और पाली जिलों में नलकूप बनाये गये हैं।

तालाब
(TANKS)

तालाबों द्वारा भारत के सिंचित क्षेत्रफल का लगभग १५% भाग सींचा जाता है। भारत में सब मिलाकर लगभग ५ लाख बड़े और ५० लाख छोटे तालाब हैं।

तालाब दक्षिण की विशेष परिस्थिति के द्योतक हैं। इसके कई कारण हैं (१) दक्षिण की नदियाँ बर्फीली नहीं हैं इसलिए वे वर्षा के जल पर ही निर्भर होकर बहती हैं। इस प्रकार नदियों और जलप्रपातों की अस्थायी दशा तथा दक्षिण का पहाड़ी धरातल, दोनों स्थितियाँ नहरों के निर्माण में बाधा डालती हैं। (२) वहाँ की दृढ़ चट्टानें भी जल को सोख नहीं सकतीं इसलिए कुँओं का निर्माण होना असम्भव है परन्तु बड़े-बड़े जलाशयों द्वारा वर्षा के जल को रोककर खेतों तक नालियों से पहुँचाया जा सकता है। (३) वहाँ की जनसंख्या बिखरी हुई है इसलिए स्वयं बाँध बनाने की योजना के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करती है, अतः यही एक सुव्यवस्थित और सुविधाजनक उपाय है। जिसके कारण वर्षा का जल संग्रह करके सिंचाई के प्रयोग में लाया जा सकता है अन्यथा वह यों ही बहकर व्यर्थ चला जाता है।

तालाबों द्वारा सींचा जाने वाला सबसे अधिक क्षेत्र तमिलनाडु में पाया जाता है जहाँ लगभग २४,००० तालाब हैं। सबसे अधिक तालाब तिरुचिरापल्ली जिले में हैं। चिंगलपुट, मदुराई, रामनाथपुरम, तिरुनलवेली, दक्षिणी और उत्तरी अर्काट, सलेम, कोयम्बटूर और तंजौर जिलों में तालाबों द्वारा लगभग ६ लाख हैक्टेअर भूमि सींची जाती है।

आंध्र प्रदेश में निजामसागर, कर्नाटक में *कृष्णराज सागर और राजस्थान में* जयसमन्द, राजसमन्द, बालसमन्द, *आदि तालाबों और झीलों का निर्माण सिंचाई और* पीने के लिए मीठे जल की प्राप्ति के लिए ही किया गया था।

तालाबों द्वारा कुछ सिंचाई पश्चिमी बंगाल, दक्षिणी बिहार, दक्षिणी मध्य प्रदेश एवं दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान में भी की जाती है।

तालाबों के प्रमुख दोष ये हैं : (१) तालाबों में जल केवल वर्षा द्वारा प्राप्त होता है इसलिए जिस वर्ष वर्षा नहीं होती है या कम होती है, उस वर्ष तालाबों में भी जल का अभाव हो जाता है। (२) तालाबों में वर्षा का जल अपने साथ मिट्टी, आदि भी बहाकर ले आता है और तालाब की तह में एकत्रित करता रहता है। इससे तालाब की गहराई कम होती जाती है और समय-समय पर तालाब को साफ करना पड़ता है जिसमें बहुत व्यय होता है। (३) तालाब स्थान अधिक घेरते हैं। (४) तालाबों से खेतों तक जल पहुँचाने में काफी श्रम, व्यय एवं समय लगता है। किन्तु इन दोषों के विपरीत तालाब दक्षिण भारत के लिए सिंचाई के अत्युत्तम साधन हैं क्योंकि वर्षा के अतिरिक्त जल का उपयोग इनके द्वारा ही सम्भव है; इनके द्वारा निकटवर्ती क्षेत्रों का जल-तल ऊँचा उठ आता है जिससे कुएँ बनाने में आसानी हो जाती है।

बाँध
(DAMS)

बाँधों का आकार तालाबों से बड़ा होता है तथा इनके निर्माण में व्यय भी अधिक होता है। किन्तु इनमें जल रोककर वर्ष भर ही नहरों द्वारा निकटवर्ती क्षेत्रों को जल दिया जा सकता है। ऐसे बाँध उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक में अधिक पाये जाते हैं।

उत्तर प्रदेश के बाँध

(१) चन्द्रप्रभा बाँध वाराणसी जिले में चन्द्रप्रभा नदी पर चकिया नामक स्थान से २० किलोमीटर दूर दक्षिण में बनाया गया है। यह २० मीटर ऊँचा और २४३ मीटर लम्बा है। इसमें ३२१ घन मीटर जल समा सकता है। इसमें नहरें निकालकर चन्दौली और चकिया तहसीलों की लगभग ६,६०० हैक्टेअर भूमि सींची जाती है।

(२) ललितपुर बाँध झाँसी जिले में बेतवा की सहायक शहजाद नदी पर बनाया गया है। यह ३,३०० मीटर लम्बा और २० मीटर ऊँचा है। इससे नहरें निकालकर २४,००० हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(३) सपरार बाँध झाँसी जिले के मऊरानीपुर से ७ किलोमीटर दक्षिण में करौंधा नामक गाँव में बनाया गया है। इससे नहरें निकाल कर बस्तरी-पसान दोआब की १६,००० हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(४) नगवा-शाहगंज बाँध झाँसी जिले में नगवा स्थान पर कर्मनासा नदी पर मिर्जापुर से १२६ किलोमीटर दक्षिण-पूर्व की ओर बनाया गया है। इससे लगभग २५ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है।

(५) माताटीला बाँध झाँसी जिले में बेतवा नदी पर बनाया गया है। यह ७१३ मीटर लम्बा और ३६ मीटर ऊँचा है। इसमें जल संग्रह क्षमता ३७० करोड़ घन मीटर की है। माताटीला जलाशय से गुरसराय तथा मन्दर नहर निकालकर

झाँसी, जालौन एवं हमीरपुर और मध्य प्रदेश की लगभग १½ लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(६) सिरसी बाँध सम्पूर्णतः मिट्टी का बना है। यह १½ कि० मी० लम्बा और २२ मीटर ऊँचा है। यह बाँध सिरसी प्रपात के निकट बनाया गया है। इसके द्वारा ४० वर्ग कि० मी० क्षेत्र की झील बन गयी है। इसमें १५ लाख घन मीटर जल एकत्रित होता है और लगभग ४० हजार हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है।

उत्तर प्रदेश के अन्य मुख्य बाँध/जलाशय ये हैं :

बाँध	स्थिति	सिंचित क्षेत्र
(i) अहरौरा बाँध—क्षेत्रफल ८ वर्ग किलोमीटर	मिर्जापुर जिले में गड़ई नदी पर	मिर्जापुर और वाराणसी जिले की ६ हजार हैक्टेयर भूमि।
(ii) खजूरी बाँध ऊपरी बाँध २,२१५ मीटर लम्बा, १७ मीटर ऊँचा निचला बाँध २,००० मीटर लम्बा, १६ मीटर ऊँचा	मिर्जापुर जिले में खजूरी नदी पर	खजूरी और इतर नदियों के दोआब, बिजनौर नदी के दोआब आदि में।
(iii) बेलन बाँध ७४० मीटर लम्बा	बेलन नदी पर मिर्जापुर जिले में	बेलन, टौंस और गंगा के दोआब में लगभग ४०,००० हैक्टेयर भूमि।

अन्य राज्यों में सिंचाई के लिए बनाये गये बाँध ये हैं :

बाँध	स्थिति	सिंचित क्षेत्र
(i) गुजरात		
ककरापार ६२१ मीटर लम्बा और १४ मीटर ऊँचा	ताप्ती घाटी में ककरापार के निकट १९५३ में	सूरत जिले की २.२७ लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई होती है।
ऊकाई बाँध ७१ मीटर ऊँचा और ४,९२८ मीटर लम्बा	ताप्ती नदी के आर-पार ऊकाई गाँव के निकट पाँचवीं योजना तक पूरा होगा।	१.५ लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई
(ii) केरल		
पेरियर घाटी योजना २११ मीटर लम्बा	पेरियर नदी के आर-पार अल्वाये के निकट पूरा हो चुका है।	२९ कि० मी० लम्बी नहरें निकालकर ४१ ह० हैक्टेयर की सिंचाई एर्नाकुलम जिले में।

बाँध	स्थिति	सिंचित क्षेत्र
(iii) मध्य प्रदेश		
तवा बाँध १,८२३ मीटर लम्बा	तवा नदी के आर-पार होशंगाबाद जिले में १९७३-७४ तक समाप्त होगा।	होशंगाबाद जिले में २२२ कि०मी० लम्बी नहर निकाल कर ३·३० लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई।
(iv) महाराष्ट्र		
गिरना बाँध ९६३ मीटर लम्बा और ५५ मीटर ऊँचा	नासिक जिले में गिरना नदी पर पंजवान गाँव के निकट चौथी योजना के अन्त तक पूरा होगा।	१६८ किलोमीटर लम्बी नहरें निकालकर ५७ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जायगी।
पूर्णा बाँध एक बाँध ४,७८६ मीटर लम्बा और ५१ मीटर ऊँचा दूसरा, ६,३०९ मीटर लम्बा और ३८ मीटर ऊँचा	पूर्णा नदी पर पूरा हो चुका है। योलदारी गाँव के निकट सिद्धेश्वर गाँव के निकट	इसके द्वारा प्रभानी जिले की ६२ हजार हैक्टेअर भूमि सींची जा रही है।
(v) कर्नाटक		
भद्रा बाँध	भद्रा नदी पर	कर्नाटक के शिमोगा, चिकमगलूर, चितलदुग और बेलारी जिलों की ६६ हजार हैक्टेअर।
कृष्णा बाँध	कृष्णा नदी पर	२$\frac{1}{2}$ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई।

संक्षेप में, सिंचाई सम्बन्धी प्रमुख तथ्य ये हैं :

(१) भारत की कृषि भूमि के केवल २०% भाग पर सिंचाई की जाती है। यद्यपि क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत में सिंचित क्षेत्र अन्य कृषि प्रधान देशों की तुलना में अधिक है किन्तु कृषि के लिए यह अभी भी अपर्याप्त है। जापान की कृषि भूमि का ७५%, पाकिस्तान का ५०%, मलयेशिया और इण्डोनेशिया का ३०% और मिस्र का १००% भाग सिंचाई पाता है।

(२) भारत की सम्पूर्ण नदियों की बहाव शक्ति १,६७,७५२ करोड़ घन मीटर आँकी गयी किन्तु इसमें से कम जलराशि का उपयोग ही सिंचाई के लिए किया

आ सका है। राज्यों की दृष्टि से यह उपयोग कर्नाटक में ८३% से लगाकर आन्ध्र प्रदेश में ५५%; महाराष्ट्र-गुजरात में ६६%; उड़ीसा में ६७%; मध्य प्रदेश में ६६%; पंजाब में ८२%; पश्चिमी बंगाल में ६२% और उत्तर प्रदेश में ७४% है। नहरों या नदियों द्वारा सिंचाई की सम्भावनाएँ अब और अधिक नहीं हैं।

(३) भारत में नहरों की कुल लम्बाई १,१२,६०५ किलोमीटर है जिनकी कुल क्षमता प्रति सेकण्ड २,२०,००० क्यूसेक की है। भारत में जितनी लम्बी नहरें हैं वे पृथ्वी की परिधि के तीन चक्कर लगा सकती हैं। किन्तु इन नहरों का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है, क्योंकि जल का वितरण बड़ा ही दोषपूर्ण है और जल की दरें काफी ऊँची हैं (कुल कृषि उत्पादन के मूल्य की ५० से ६०%)। नहरों का अधिकांश जल खेतों तक पहुँचने के पहले ही भूमि द्वारा सोख लिया जाता है। गंगा नहर पर किये गये परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि मुख्य नहर में इस प्रकार की हानि १५% तक होती है, उसकी सहायकों में ७% और गाँवों के निकट २२%। इस हानि को रोकना आवश्यक है।

(४) वर्षा के जल का उपयोग करने के लिए बड़े जलाशय बनाये गये हैं जिनकी संग्रहण क्षमता १६५१ में १,२३३·४ करोड़ घन मीटर थी। १६६६ में यह ६,१६७ करोड़ घन मीटर हो गयी। अतः इस जल के अधिकाधिक उपयोग करने की विशाल सम्भावनाएँ मौजूद हैं।

सिंचाई के साधनों में प्रगति

भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल से ही सिंचाई के उन्नत साधनों को अपनाया गया था। इसके कई प्रमाण हैं। ऋग्वेद, अथर्ववेद, महाभारत प्रभृति पुस्तकों से स्पष्ट होता है कि कुँओं, तालाबों और नहरों से सिंचाई की जाती रही है। आचार्य चाणक्य का कथन है कि "सेतुबन्ध कृषि के आधार होते हैं। इनके अभाव में नदियाँ बाढ़ों से पूरित होकर नहरों और ग्रामों को बहा ले जाती हैं और उनसे महान जन-धन का विनाश हो जाता है।" ३०० वर्ष पूर्व मैगस्थनीज ने बताया था कि सम्पूर्ण देश में सिंचाई के साधन उत्कृष्ट हैं। दूसरी शताब्दी में दक्षिण भारत में बनाया गया कावेरी नदी का ग्रांड एनीकट आज भी सिंचाई का उत्तम प्रमाण माना जाता है। यह बाँध ३३० मीटर लम्बा, १२ से १८ मीटर चौड़ा और ४·६ से ५·५ मीटर ऊँचा है। १,६०० वर्षों तक कावेरी की बाढ़ों को इस बाँध ने सहा है। ११वीं शताब्दी में सिंचाई के लिए भोजपुर (भोपाल) झील का निर्माण किया गया। इसका क्षेत्रफल ६५० वर्ग किलोमीटर था।

मध्ययुग में भी मुगल बादशाहों द्वारा सिंचाई की नहरें बनवाई गयीं। १४ से १७वीं शताब्दी तक नहर निर्माण का कार्य सुचारु रूप से किया गया। १३वीं शताब्दी के अन्त में फिरोजशाह तुगलक ने दिल्ली के निकट यमुना नदी से नहर

निकलवाई, इससे काफी बड़े क्षेत्र में सिंचाई की जाती थी। अकबर और शाहजहाँ के काल में इनका जीर्णोद्धार एवं विस्तार किया गया। मुहम्मदशाह (१७१६-१७४८) के काल में पश्चिमी यमुना नहर का निर्माण किया गया। १७वीं शताब्दी में अली मर्दन खाँ द्वारा पंजाब में रावी नदी से बारी दोआब नहर बनवाई गयी। इसके उपरान्त पंजाब में सरहिंद नहर और उत्तर प्रदेश में गंगा नहर का निर्माण किया गया।

अंग्रेजी काल में निश्चय ही सिंचाई के साधनों मे अच्छा विकास किया गया। न केवल पूर्वी और पश्चिमी यमुना नहरों और कावेरी डेल्टा की नहरों तथा ग्रांड एनीकट का जीर्णोद्धार किया गया वरन् उनका विस्तार भी हुआ। आर्थर कॉटन नामक अंग्रेज इंजीनियर के प्रयासों से कावेरी की सहायक कोलरून नदी पर विशाल बाँध बनाया गया जिससे सन् १८३६ से १९वीं शताब्दी के अन्त तक विशाल पैमाने पर सिंचाई होती रही। इसी इंजीनियर ने गोदावरी नदी पर दोलेश्वरम बाँध भी बनाया। प्रोबीन कॉटले ने गंगा नदी से ऊपरी गंगा नहर निकाली जिसका निर्माण सन् १८४२ में आरम्भ होकर सन् १८५४ में समाप्त हुआ। इसी अवधि में उत्तर प्रदेश में निचली गंगा नहर, आगरा नहर और बेतवा नहर बनी। पंजाब में सरहिंद नहर, बम्बई में मूथा नहर तथा दक्षिणी भारत में पेरियर नहर भी इसी काल में तैयार हुई। इसी समय गोदावरी नदी पर राजमहेन्द्री के निकट, कृष्णा पर विजयवाड़ा के निकट बाँध बनाकर इनके डेल्टाई क्षेत्रों में नहरें निकाली गयीं।

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भीषण अकालों की पुनरावृत्ति के फलस्वरूप कई नहरों का निर्माण किया गया। पंजाब में ट्रिपल-नहर, महाराष्ट्र में गोदावरी नहरें और बिहार में त्रिवेणी नहर। प्रथम युद्धकाल के उपरान्त दक्षिण भारत में मेट्टूर और कृष्णराजा सागर बाँध तथा उत्तर में गंगा और शारदा नहरों का निर्माण और विस्तार किया गया। इसके अतिरिक्त कई छोटे-बड़े जलाशय और नहरें भी देश में बनायी गयीं।

सन् १९४७ में देश के विभाजन के फलस्वरूप सिंचाई के साधनों का गहरा अभाव अनुभव किया गया। अविभाजित भारत की नहरों द्वारा बहाये जाने वाले कुल जल की मात्रा का पाकिस्तान को ८,१०,४०० लाख घन मीटर जल मिला, जबकि भारत को केवल १,११,००० लाख घन मीटर। अर्थात् भारत के भाग में लगभग २० लाख हैक्टेअर सिंचित भूमि तथा पाकिस्तान को ८० लाख हैक्टेअर सिंचित भूमि मिली। इस समय पाकिस्तान में वास्तविक कृषि क्षेत्र के ३६% भाग पर सिंचाई उपलब्ध थी, जबकि भारत में यह अनुपात केवल १८% था। अतएव, भारत में सिंचाई के साधनों को बढ़ाने के लिए भागीरथ प्रयत्न किये गये।

आगे की तालिका में गत ६० वर्षों की अवधि में कृषित क्षेत्र और सिंचित क्षेत्र की वृद्धि प्रदर्शित की गयी है :

भारत में सिंचित क्षेत्र में वृद्धि १९५१-१९७१

वर्ष	कुल कृषित क्षेत्र	कुल सिंचित क्षेत्र	(करोड़ हैक्टेअर) सिंचित क्षेत्र का कुल कृषित क्षेत्र से अनुपात(%)
१९५१-१९५२	१३·१७	२·०८	१५·७९
१९५५-१९५६	१४·५०	२·२५	१५·५१
१९६०-१९६१	१५·२२	२·७९	१८·३३
१९६५-१९६६	१६·०८	३·५६	२०·२१
१९६६-१९६७	१५·५६	२·७४	२०·१०
१९६७-१९६८	१६·३६	२·७२	१८·७
१९६८-१९६९	१५·६६	३·९०	२१·००
१९६९-१९७०	१३·७८	३·०४	२०·४
१९७०-१९७१	१६·७४	३·१३	१८·२
१९७२-१९७३	१०६	८७	८२

भारत मे धरातल पर जल का वार्षिक बहाव १६·७४ करोड हैक्टेअर मीटर है, जिसमे से लगभग ९४ लाख हैक्टेअर मीटर या ५·६% जल का ही उपयोग सिंचाई के लिए १९५१ तक किया गया था। दूसरी योजना के अन्त तक (१९६०-६१) यह उपयोग बढ़कर १४८ लाख हैक्टेअर मीटर हो गया था, अर्थात् उपयोग का प्रतिशत १७ से २७ हो गया। तृतीय योजनाकाल में उपभोग की मात्रा १८५ लाख हैक्टेअर मीटर हो गयी, अर्थात् ३३%। इस प्रकार पहली, दूसरी और तीसरी योजनाओं मे ९१ लाख हैक्टेअर मीटर अधिक जल सिंचाई के लिए काम मे लाया गया। सन् १९५१ तक भारत मे २·२४ करोड़ हैक्टेअर क्षेत्र सिंचित था। तीन योजनाओ (१९५१-१९६६) में लगभग १·४४ करोड़ हैक्टेअर क्षेत्र मे सिंचाई की अतिरिक्त क्षमता उत्पन्न हो गयी। अनुमान है कि चतुर्थ योजना के अन्त तक ४·५० करोड हैक्टेअर भूमि मे सिंचाई की गयी। दीर्घकाल मे कुल सिंचित क्षेत्रफल ७·४० करोड हैक्टेअर तक बढ़ाया जा सकता है।

सिंचाई की नयी नीति के अनुसार छोटी योजनाओं पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है क्योंकि वे कम लागत मे शीघ्र फलदायी होती हैं। उन्हे बनाने के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती और उनकी देखभाल व्यक्तिगत स्तर पर भलीभाँति होती है। उनकी क्षमता का वास्तविक उपयोग भी अधिक होता है।

योजना काल मे बड़ी सिंचाई योजनाओ के फलस्वरूप सिंचाई की क्षमता बढ़ी अवश्य है किन्तु उसका उपयोग पूरी तरह नहीं हो पा रहा है जैसा कि आगे की तालिका से स्पष्ट होगा :

सिचाई की सम्भावित क्षमता एवं उसका वास्तविक उपयोग[1]

(लाख हैक्टेअर)

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९६७-६८	१९६९-७०	१९७०-७१	१९७१-७२
१. सम्भावित क्षमता	९७	२५	४६	६६	८२	८९	९२	९७
२. वास्तविक उपयोग	९७	१५	३४	५५	६७	७४	७८	७९
३. उपयोग क्षमता सर्व मे उत्पन्न क्षमता के प्रतिशत के रूप मे	१००	४८	७७	८७	७६	८२	८४	८४

चतुर्थ योजनाकाल में नये सिचाई कार्यक्रमों की अपेक्षा वर्तमान कार्यक्रमों को पूरा करने पर ही अधिक बल दिया गया और सिंचाई से अधिकतम लाभ तथा सिंचाई क्षमता का अधिकतम उपयोग करने के लिए खेतो तक पहुँचने वाली उप-नालियाँ बनाने पर अधिक ध्यान दिया गया।

अप्रेल १९७४ तक अन्ततः १० ७० करोड हैक्टेअर भूमि पर सिंचाई की जाने की क्षमता उपलब्ध होने का अनुमान था किन्तु केवल ४'५० करोड़ हैक्टेअर की ही क्षमता प्राप्त की जा सकी। इसमे से भी वास्तविक उपयोग केवल ४'३५ करोड़ हैक्टेअर भूमि पर ही हो पाया। दूसरे शब्दो मे, चतुर्थ योजना में सिंचित क्षेत्रफल ३'७५ करोड हैक्टेअर से ४'५५ करोड हैक्टेअर हो जाना था किन्तु वास्तविक वृद्धि केवल ७८ लाख हैक्टेअर की ही हुई।

पंचम योजना मे सिंचाई पर २,४०१ करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान है जिससे बडी और मध्यम योजनाओं द्वारा ६२ लाख हैक्टेअर भूमि पर सिंचाई की जा सकेगी। इसके अतिरिक्त छोटी योजनाओ पर ८११ करोड रुपये की लागत से ६० लाख हैक्टेअर अतिरिक्त भूमि पर सिंचाई की जाने लगेगी।

[1] *India*, 1973, p. 240.

८

बहुउद्देशीय परियोजनाएँ
(MULTIPURPOSE PROJECTS)

भारत की जलराशि

भारत की नदियों में अथाह जलराशि बहती है जिसका लगभग $\frac{1}{3}$वाँ भाग बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों से प्राप्त होता है, किन्तु राजस्थान के शुष्क मरुस्थल में जल-राशि का अभाव है।

भारत में होने वाली वार्षिक वर्षा का अनुमान १,६७,२३० करोड़ घन मीटर का लगाया गया है। इसमें से ५,५७१ करोड़ घन मीटर जल वाष्पीभवन क्रिया द्वारा उड़ जाता है, लगभग ३,६२१ करोड़ घन मीटर भूमि सोख लेती है। केवल ३,७६० करोड़ घन मीटर जल ही नदियों में बहता है। इस राशि का ६०% हिमालय की नदियों (गंगा, ब्रह्मपुत्र और सिन्धु) में, १६% मध्य भारतीय नदियों (नर्मदा, ताप्ती, महानदी) में और २४% दक्षिणी पठार की नदियों (कृष्णा, गोदावरी और कावेरी) में बहता है।[1] भूमि के असमान धरातल, जलवायु एवं मिट्टियों की प्रकृति में भिन्नता होने के कारण इस सम्पूर्ण जल राशि का उपयोग नहीं किया जा सकता। सिंचाई के लिए केवल ५६,००० करोड़ घन मीटर का ही उपयोग सम्भव है। अभी तक सम्पूर्ण जल-राशि का सिंचाई के लिए जो उपयोग हो सका है उसका प्रतिशत १९५१ में ६ था, १९६१ में यह बढ़कर ९ प्रतिशत हो गया और १९६५-६६ में १२ प्रतिशत तथा मार्च १९७० तक १८%। इसी प्रकार भारतीय नदियों के जल में सम्भावित शक्ति की राशि ४ करोड़ किलोवाट अनुमानित की गयी है। इसमें से वास्तविक राशि का उत्पादन १९५१ में केवल १·४ प्रतिशत हुआ था। यह १९६१ में २·१ प्रतिशत और १९६६ में १२·४ प्रतिशत हो गया।

संयुक्त राज्य अमरीका की टैनेसी घाटी योजना (T.V. A.) के ढंग पर विश्व के अन्य देशों (फ्रांस, जर्मनी और रूस) में नदी घाटी योजनाओं की सफलता

1 Law, B. C. *Mountains and Rivers of India*

से उत्साहित होकर भारत में जलराशि का उपयोग करने के लिए ही इन योजनाओं को अपनाया गया है। इन योजनाओं के निम्न उद्देश्य हैं :

(१) सिंचाई और भूमि का वैज्ञानिक उपयोग एवं प्रबन्ध,

(२) विद्युत शक्ति उत्पादन में वृद्धि और औद्योगीकरण;

(३) बाढ़ नियन्त्रण और बीमारियों की रोकथाम में सहायता;

(४) जल मार्गों का विकास तथा क्षेत्रीय आर्थिक प्रगति;

(५) घरेलू कार्यों के लिए जल व्यवस्था;

(६) मछली उद्योग का विकास तथा कृत्रिम झीलों में आमोद-प्रमोद के साधन उपस्थित करना;

(७) वनों की रक्षा, वृक्षारोपण एवं ईंधन का प्रबन्ध;

(८) पशु-सम्पत्ति के लिए चारे की व्यवस्था;

(९) दुर्भिक्ष आदि से मुक्ति दिलाना;

(१०) भूमि का कटाव रोककर उसे कृषि योग्य बनाना;

(११) उस सम्पूर्ण घाटी क्षेत्र के निवासियों और साधनों का समुचित उपयोग करना।

एक से अधिक उद्देश्य होने के कारण ही इन परियोजनाओं को **बहुउद्देशीय परियोजना** की संज्ञा दी गयी है। इनसे विभिन्न प्रकार के इतने अधिक लाभ मिलते हैं कि जिनके सन्दर्भ में स्वर्गीय प० नेहरू ने कहा था कि "ये परियोजनाएँ मेरे लिए आधुनिक भारत के मन्दिर और तीर्थस्थान हैं।"

प्रमुख परियोजनाओं को व्यवस्था की दृष्टि से दो समूहों में विभक्त किया जा सकता है :

केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत—दामोदर घाटी परियोजना (हुगली बहाव क्षेत्र); कोसी परियोजना (पूर्वी गंगा प्रदेश); हीराकुण्ड परियोजना (महानदी डेल्टा क्षेत्र); रिहन्द परियोजना (उत्तर प्रदेश); भाखड़ा-नांगल परियोजना (सतलज बहाव क्षेत्र।

राज्य सरकारों के अन्तर्गत—नागार्जुन सागर और रामपद सागर परियोजना (आन्ध्र प्रदेश,) मच्छकुण्ड (आन्ध्र, बिहार), निचली भवानी, मनीमुथार और कुन्दा (तमिलनाडु); कांग्सी और मयूराक्षी (पश्चिमी बंगाल, बिहार), माताटीला (उत्तर प्रदेश); भद्रा (कर्नाटक); तवा (मध्य प्रदेश), चम्बल (राजस्थान, मध्य प्रदेश), घाटप्रभा, गंगापुर, पूर्णा और गिरणा (महाराष्ट्र), ककरापार और उकाई (गुजरात), व्यास (पंजाब, हरियाणा और राजस्थान), तुंगभद्रा (आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु), परम्बीकुलम-अलीयार परियोजना (तमिलनाडु, केरल), और गडण्क परियोजना (बिहार और उत्तर प्रदेश)।

भारत की कुछ प्रमुख नदी घाटी परियोजनाओं पर कुल व्यय और सिंचित क्षेत्र निम्न प्रकार से है :

(करोड़ रुपये में)

परियोजना	कुल व्यय (सिंचाई सम्बन्धी)	कुल सिंचित भूमि (लाख हैक्टेअर में)
१. व्यास (हरियाणा/राजस्थान)	११७·४३	१०·४२
२. भाखड़ा-नागल (पंजाब, हरियाणा/राजस्थान)	१०१·८६	१४·४२
३. हीराकुड (उड़ीसा)	६३·३४	८·६३
४. नागार्जुन सागर (आंध्र)	६१·१२	८·२४
५. राजस्थान नहर (राजस्थान)	६६·४७	६·७४
६. चम्बल (राजस्थान/मध्य प्रदेश)	५४·८५	५·६०
७. तुगभद्रा (आंध्र/कर्नाटक)	५७·५३	४·१२
८. गंडक (बिहार/उत्तर प्रदेश/बंगाल)	४६·४५	१२·५५
६. नर्मदा (गुजरात)	४३·०६	३·८५
१०. माही (गुजरात/राजस्थान)	४१·७८	३·००
११. दामोदर घाटी (बंगाल)	३४·६८	५·०६
१२. रामगंगा (उत्तर प्रदेश)	३४·५५	६·८२
१३. कोयना (महाराष्ट्र)	६·५०	०·३७
१४. कल्लडा (केरल)	८·४०	०·४३
१५. परम्बीकुलम (तमिलनाडु/केरल)	२४·८७	०·६६

भारत की कुछ प्रमुख परियोजनाएँ ये हैं .

(१) दामोदर घाटी योजना (Damodar Valley Project)

दामोदर नदी छोटा नागपुर की पहाड़ियों से ६१० मीटर की ऊँचाई से निकलती है। यह ५३० किलोमीटर लम्बी है तथा बिहार में २६० किलोमीटर बहने के बाद पश्चिमी बंगाल में २४० किलोमीटर बहकर हुगली नदी में गिर जाती है। इसकी ऊपरी घाटी में वर्षा काल में अत्यधिक वर्षा होने से इसमें भयंकर बाढ़ें आती हैं तथा अपने किनारों की मिट्टी को काटकर बहा ले जाती है। इसमें करोड़ों रुपयों की फसल और सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, यातायात के मार्ग रुक जाते हैं तथा १८,००० वर्ग किलोमीटर भूमि विध्वंस को प्राप्त होती है।

यह नदी अपनी बाढ़ों के लिए प्रसिद्ध रही है। अस्तु, सन् १९४८ में भारत सरकार ने एक कानून द्वारा दामोदर घाटी की सर्वांगीण उन्नति करने हेतु दामोदर घाटी निगम (Damodar Valley Corporation) की स्थापना की। इस निगम का मुख्य उद्देश्य दामोदर नदी की घाटी का आर्थिक विकास करना तथा सिंचाई, जल-विद्युत की सुविधाएँ प्राप्त कर बाढ़ को रोकना और अन्य उद्देश्यों को पूरा करना है जिससे इसके पृष्ठ देश का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके।

दामोदर घाटी परियोजना के अन्तर्गत आठ बाँध (जिनसे विद्युतगृह सम्बद्ध होंगे) और एक बड़ा अवरोधक (Barrage) बनाया जायेगा। ये बाँध क्रमशः बाराकर नदी पर मैथान, बाल पहाड़ी और तिलैया बाँध; दामोदर नदी पर पचेत हिल, अय्यर और बर्मो बाँध, बुकारो पर बुकारो बाँध और कोनार पर कोनार नामक स्थानों पर बनाये जायेंगे। एक बड़ा अवरोधक दुर्गापुर के निकट बनाया जायेगा जिससे लगभग २,५०० किलोमीटर लम्बी नहरें और शाखाएँ निकाली जायेंगी। इन बाँधों से बाढ़ का जल रोका जायेगा और सभी बाँधों से जल-विद्युत शक्ति उत्पन्न की जायेगी। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर जल शक्ति के केन्द्रों को सहायता देने के लिए एक ५ लाख किलोवाट शक्ति का विशाल कोयला शक्ति केन्द्र भी बनाया जायेगा।

यह योजना केन्द्रीय सरकार तथा बिहार और बगाल की राज्य सरकारों के सहयोग से कार्यान्वित हो रही है इसमें लगभग ११० करोड़ रुपया खर्च होगा और अन्ततः सम्पूर्ण योजना की समाप्ति पर निम्नलिखित लाभ होंगे :

(१) दामोदर और उसकी सहायक नदियों में आने वाली बाढ़ों पर नियन्त्रण हो सकेगा। (२) लगभग ७४ लाख हैक्टेअर भूमि पर नित्यवाही सिंचाई हो सकेगी जिससे अतिरिक्त खाद्यान्न और जूट प्राप्त होगा। (३) कलकत्ता और पश्चिमी बंगाल के कोयला क्षेत्रों के बीच १४५ किलोमीटर लम्बा एक नव्य-जलमार्ग बन जायेगा। (४) बाँधों में नावें चलाने, तैरने तथा मछली पकड़ने की सुविधाएँ हो जायेंगी। (५) घरेलू कार्यों के लिए नलों द्वारा शुद्ध जल प्राप्त हो सकेगा। लगभग १,१२० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में जल प्रसार की समस्या दूर हो जायगी। (६) छोटा नागपुर के उजाड़ क्षेत्रों में भूमि के कटाव को रोकने के निमित्त वृक्षारोपण होगा जिनसे पशुओं के लिए चारा, रेशम के कीड़ों के लिए शहतूत के वृक्ष तथा उद्योगों के लिए लाख तथा बाँस प्राप्त होगा। (७) इससे लगभग ३ लाख किलोवाट विद्युत उत्पन्न होगी जो दक्षिणी बिहार, कलकत्ता, पटना, जमशेदपुर तथा डालमिया नगर तक भेजी जायेगी।

धन, सामान, मशीनों और श्रमिकों की कमी के कारण इस योजना को पूर्ण करने के लिए दो चरणों में बाँट दिया गया है। अभी प्रथम चरण पर कार्य हुआ है। यह इस प्रकार है :

(१) तिलैया, कोनार, मैथान और पचेत पहाड़ी पर चार बाँधों का निर्माण जिन पर कोनार को छोड़कर शेष तीन बाँधों पर जल विद्युत उत्पादन केन्द्र हैं। इनकी उत्पादन क्षमता १०४ मेगावाट है।

(२) बोकारो, दुर्गापुर और चन्द्रपुरा में कोयले से चलने वाले विद्युतगृहों का निर्माण जिनकी अन्तिम क्षमता ६५७ मेगावाट शक्ति की है।

(३) १,२८७ किलोमीटर लम्बी विद्युत सम्प्रेषण लाइनें बनाना।
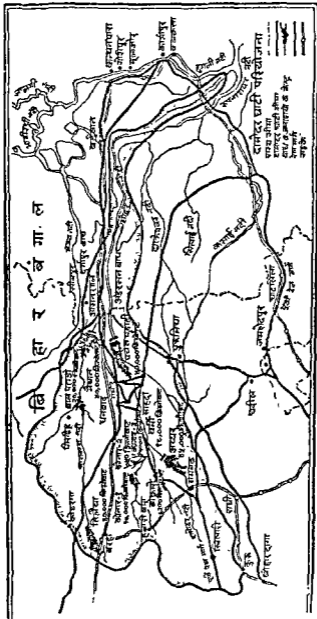
(४) दुर्गापुर के निकट सिंचाई के लिए एक नीचे अवरोधक का निर्माण जिसके द्वारा ०३ लाख हैक्टेयर भूमि की साल भर सिंचाई हो सकेगी।

तिलैया बाँध—हजारीबाग जिले में बाराकर नदी पर उसके तथा दामोदर के संगम से २१० किलोमीटर ऊपर सन् १९५३ में बनाया गया। यह बाँध ३५० मीटर लम्बा और ३३ मीटर ऊँचा है इसमें लगभग ५४,००० हैक्टेयर मीटर जल एकत्रित किया गया है। इससे लगभग ७५,००० हैक्टेयर भूमि की सिंचाई होती है। इस बाँध पर एक भूमिगत विद्युत-शक्तिगृह भी बनाया गया है जिसकी उत्पादन क्षमता ६०,००० किलोवाट है। यह शक्ति कोडरमा और हजारीबाग की अभ्रक खानों को दी जा रही है।

कोनार बाँध दामोदर नदी के संगम से २४ किलोमीटर पूर्व में कोनार नदी पर सन् १९५५ में बनाया गया है। यह बाँध ८८५ मीटर लम्बा और ४८ मीटर ऊँचा है। यह बाँध मुख्य रूप से बोकारो के विद्युतगृह को ठण्डा जल पहुँचाने के लिए है। इस बाँध से अन्ततः ४०,००० हैक्टेयर भूमि की सिंचाई भी होगी। बाँध के ठीक नीचे ४०,००० किलोवाट क्षमता का एक भूगर्भ स्थित विद्युतगृह भी बनाया गया है।

मैथान बाँध बाराकर नदी पर दामोदर नदी के संगम से कुछ ही ऊपर बनाया गया है। यह ४,३६५ मीटर लम्बा और ५६ मीटर ऊँचा है। इस बाँध में १३,६१० लाख घन मीटर जल एकत्रित कर लगभग १½ लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है। बाँध के निकट भूगर्भ स्थित विद्युतगृह की सम्भावित क्षमता ६०,००० किलोवाट है। यह बाँध सन् १९५८ में समाप्त हुआ था।

पंचेत पहाड़ी बाँध मानभूम जिले में मैथान से २० किलोमीटर दक्षिण की ओर है। यह बाँध लगभग २,५५० मीटर लम्बा और ४० मीटर ऊँचा है। इस बाँध द्वारा १४,६७० लाख घन मीटर जल एकत्रित कर दामोदर की निचली घाटी में लगभग २½ लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की जा सकेगी। बाँध के निकट ४०,००० किलोवाट क्षमता का एक विद्युतगृह बनकर तैयार हो चुका है।

बोकारो में कोयले से चलने वाला विद्युतगृह चालू हो चुका है। इसकी उत्पादन क्षमता २,२५,००० किलोवाट है।

दुर्गापुर अवरोधक बाँध ६९३ मीटर लम्बा और १२ मीटर ऊँचा है। इस बाँध से निकाली गयी नहरों से ४ लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई होगी। इस बाँध से दोनों किनारों पर नहरें होंगी। दाहिने ओर की नहर ६४ किलोमीटर और बायीं ओर की नहर १३७ किलोमीटर लम्बी है। यह दामोदर नदी को कलकत्ता से ४८ किलोमीटर ऊपर की ओर हुगली नदी से मिलाती है। इस नहर द्वारा कलकत्ता और घाटी के बीच में कोयला आदि वस्तुएँ ढोने की सुविधा हो गयी है। इस बाँध से निकाली गयी नहरों और शाखाओं की कुल लम्बाई २,४१४ किलोमीटर है।

चन्द्रपुरा में १४० मेगावाट शक्ति वाली २ इकाइयाँ स्थापित की जा चुकी हैं।

बोकारो में २२५ मैगावाट शक्ति का तापगृह स्थापित किया जा चुका है। दुर्गापुर में २६० मैगावाट शक्ति की तीन इकाइयाँ कार्य कर रही हैं।

दामोदर घाटी निगम से पश्चिमी बंगाल में वर्दवान, हावड़ा, हुगली और बाकुड़ा में १½ लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की जा रही है।

इस योजना के द्वितीय चरण के अन्तर्गत बरमा, अय्यर, बोकारो और दाल पहाड़ी स्थानों पर जल विद्युत शक्ति के लिए बाँध बनाये जायेंगे।

(२) कोसी परियोजना

कोसी नदी अपनी विनाशकारी बाढ़ों के लिए पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी है। अनुमान है कि जब साधारण रूप से कोसी में बाढ़ आती है तो यह प्रतिवर्ष बिहार में लगभग ३ से ५ हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की अपार हानि करती है और
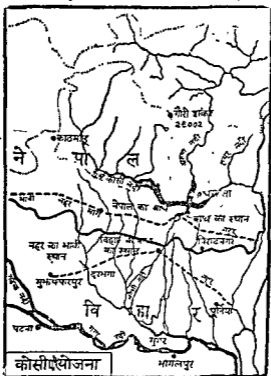
चित्र—८·२

बाढ़ के बाद भूमि मलेरिया से ग्रस्त हो जाती है। इस नदी के जल पर नियन्त्रण करने के लिए यह परियोजना तैयार की गयी। इसका उद्देश्य सिंचाई और शक्ति की

सुविधाएँ प्राप्त करना, बाढ़ पर नियन्त्रण करना, मिट्टी के कटाव और दलदलों को साफ कर कृषि के लिए भूमि प्राप्त करना, बाँध में मछली पकड़ने और नावें चलाने की सुविधा देना तथा नहरों में यातायात सुलभ कराना है।

इस परियोजना के अन्तर्गत ६९·१३ करोड़ रुपये के व्यय से तीन इकाइयों पर कार्य पूरा करना है : (i) नेपाल में हनुमाननगर के निकट एक अवरोधक बाँध, (ii) लगभग २४० किलोमीटर लम्बा बाँध बाढ़ों को रोकने के लिए और (iii) पूर्वी कोसी नहर का निर्माण करना।

पहला बाँध कोसी के आर-पार नेपाल में हनुमान नगर से ५ किलोमीटर ऊपर की ओर बनाया गया है। इसके पूर्वी किनारे से नहर निकाल कर नेपाल के सप्तारी जिले में तथा बिहार की पूर्णिया और सहरसा जिलों को लगभग ६ लाख हैक्टेअर भूमि में सिंचाई की व्यवस्था की जाती है।

कोसी बाँध के दाहिने और बायें किनारों के बीच एक २४२ किलोमीटर लम्बा बाढ़ रोकने के लिए बाँध बनाया गया है। इससे बिहार और नेपाल की लगभग २०,७२० वर्ग किलोमीटर भूमि को बाढ़ से संरक्षण मिला है और लगभग २·६३ लाख हैक्टेअर भूमि डूबने से बच गयी है।

इन कार्यों के अतिरिक्त द्वितीय चरण में निम्न बातों का समावेश किया गया है :

(क) पूर्वी कोसी नहर पर जलविद्युत शक्ति के उत्पादन के लिए एक शक्ति-गृह की स्थापना करना जिसकी क्षमता २० मेगावट होगी। यह शक्ति आधी-आधी बिहार और नेपाल दोनों राज्यों को दी जाये। इस पर लगभग ६.१७ करोड़ रुपया लगेगा।

(ख) पश्चिमी कोसी नहर, जो कोसी बाँध के दाहिने किनारे से निकाली जायेगी। यह ११२ किलोमीटर लम्बी होगी और इसके द्वारा दरभंगा जिले की ३ लाख हैक्टेअर और सप्तारी जिले की १२ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जायेगी। इसकी लागत १९·६६ करोड़ रुपये होगी।

(ग) पूर्वी कोसी नहर का विस्तार (राजपुर नहर के रूप में) जिसके द्वारा मुंगेर और सहरसा जिलों में १·६० लाख हैक्टेअर भूमि सींची जायेगी। इस पर ६·८२ करोड़ रुपया खर्च होगा। अन्ततः यह पूर्णिया, दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिले की जनसंख्या का जीवन-स्तर उठाने में भी सहयोग प्रदान करेगी। बिहार के इस प्रदेश में जल की अधिकता से बाढ़ भी आया करती है तथा उससे जल की कमी से अकाल भी पड़ा करता है। इसलिए यह परियोजना जल नियन्त्रण कर उसके उपयुक्त वितरण द्वारा यहाँ कृषि के उत्पादन में सहयोग प्रदान करेगी। इस परियोजना में २८ लाख किलोवाट शक्ति का उत्पादन होगा। इसके शक्तिगृहों को दामोदर घाटी के शक्तिगृहों से मिलाकर एक जाल-सा बनाने की योजना है।

(३) हीराकुड परियोजना

इस योजना के अन्तर्गत सम्बलपुर जिले में महानदी पर सम्बलपुर से १४ किलोमीटर ऊपर की ओर हीराकुड नामक स्थान पर तथा तिरकपाड़ा और नराज में तीन बाँध बनाये जायेंगे। सम्पूर्ण योजना से ८ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई तथा ३,५५,००० किलोवाट विद्युत का उत्पादन होगा। बंगाल की खाड़ी से मध्य प्रदेश की सीमा तक ५६१ किलोमीटर लम्बा और कम से कम ३ मीटर गहरा जल-मार्ग बनाया जायेगा। मुख्य बाँध के दोनों ओर से नहरें निकाली जायेंगी और दोनों स्थानों पर जल विद्युत उत्पन्न की जायेगी। इसमें ९७ करोड़ रुपये का व्यय होगा।

चित्र—८·३

सबसे पहले योजना में हीराकुड बाँध का कार्य पूरा किया गया है। इसमें ६८ करोड़ रुपया खर्च हुआ है। हीराकुड बाँध नदी के तल से ६१ मीटर ऊँचा और ४,८०० मीटर लम्बा है। यह विश्व का सबसे लम्बा बाँध है। इसके द्वारा ६३० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में ८१० करोड़ घन मीटर जल एकत्रित किया गया है। बाँध के दाहिनी ओर ११ किलोमीटर और बायीं ओर १० किलोमीटर लम्बे मिट्टी के दो बाँध और बनाये गये हैं। *प्रथम चरण में इस प्रणाली की मुख्य ३ नहरें बनायी गयी हैं।* ये क्रमशः दाहिनी ओर बोरगढ़ नहर और बायीं ओर सेसन नहर तथा सम्बलपुर नहर हैं। बोरगढ़ नहर ८८ किलोमीटर लम्बी है। इसकी दो बड़ी शाखाएँ अट्टाबीरा और रेतमुण्डा हैं तथा २० छोटी नहरें हैं। मुख्य नहरें ऊँची-नीची भूमि पर होकर निकलती हैं अतः अनेक नदियों को पार करने के लिए पुल बनाये गये हैं। सबसे बड़ा पुल जीरा नदी पर २२२ मीटर लम्बा है।

इससे सम्बलपुर, बोलगिर, पुरी, तथा कटक जिलों की स्थायी रूप से लगभग २.६ लाख हैक्टेअर भूमि की सिचाई हो रही है।

बाँध के निकट एक शक्तिगृह बनाया गया है जिसकी उत्पादन क्षमता १,२३,००० किलोवाट की है। इसमें ४ शक्ति उत्पादक यन्त्र लगाये गये हैं। यह शक्ति हीराकुड के अल्यूमीनियम के कारखाने, राजगंगपुर की सीमेण्ट की फैक्टरी, रूरकेला के इस्पात, जोशा के फैरो-मैंगनीज, बृजराजनगर के कागज तथा सूती वस्त्र के कारखानों को मिल रही है। इसके अतिरिक्त शक्ति कटक, जमशेदपुर, पुरी, सम्बलपुर, सुन्दरगढ़, धेनगढ़, क्योंझार, बलवार आदि स्थानों को भी भेजी जा रही है। यह बिजली की लाइन मच्छकुन्द शक्तिगृह को भी जोड़ती है। अनुमान है कि सिचाई सम्बन्धी योजना के पूर्ण हो जाने पर लगभग ७.१ लाख टन अन्न और २.६ लाख टन गन्ना अधिक पैदा होने लगेगा तथा ये बाँध बाढ़ों को रोककर लगभग १२ लाख रुपये का लाभ करेंगे।

द्वितीय चरण में चिपलिमा में, जो बाँध से २५ किलोमीटर नीचे की ओर है, अधिक शक्ति प्राप्त करने के लिए ३ इकाइयाँ २४,००० किलोवाट शक्ति प्रति इकाई की लगायी गयीं। हीराकुड के बाँध के शक्तिगृह पर भी ३७,५०० किलोवाट शक्ति वाले दो यन्त्र लगाये गये हैं। द्वितीय चरण में १५ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है।

इस परियोजना से महानदी घाटी के विभिन्न क्षेत्रों की (विशेषतः डेल्टा में) सिचाई, विद्युत, नौका-सचालन और बाढ़ नियन्त्रण की सुविधा मिलने लगी है।

(४) रिहन्द बाँध या गोविन्द वल्लभ सागर परियोजना (Rihind or Govind Vallabh Sagar Project)

रिहन्द-योजना उत्तर प्रदेश की अब तक की सबसे बड़ी योजना है जो पिपरी में बनायी गयी है। यह स्थान मिर्जापुर से १६१ किलोमीटर दक्षिण में है। यहाँ रिहन्द नदी तंग घाटी में होकर बहती है जहाँ दोनों ओर की चट्टानें बड़ी कठोर हैं। कंक्रीट बाँध नींव से ९२ मीटर ऊँचा है और नदी तल से १६७ मीटर ऊँचा है। इसकी लम्बाई ९३० मीटर है और तलहट में ७० मीटर चौड़ा है तथा ऊपर ७ मीटर। गोविन्द वल्लभ पन्त सागर का क्षेत्रफल १३० वर्ग किलोमीटर है जहाँ ११.४ लाख हैक्टेअर मीटर जल जमा हो सकता है। बाँध की एक विशेषता यह है कि उसके भीतर उसके विभिन्न भागों के निरीक्षण और सफाई के लिए चार सुरंगें बनायी गयी हैं, जिनकी लम्बाई क्रमशः १३७, १८३, १६८, ९३२ मीटर है। स्पिलवे की लम्बाई २०० मीटर है। इसमें १४ फाटक लगे हैं जिनका आकार ९ मीटर और १२ मीटर का है। स्पिलवे के ऊपर एक पुल है जिस पर ७ मीटर चौड़ी सड़कें और २ मीटर चौड़ी पटरी पैदल चलने वालों के लिए बनायी गयी है। बाँध के निर्माण में लगभग ३ लाख टन सीमेण्ट-कंक्रीट लगी है। इस परियोजना में ३७.४ करोड़ रुपया लगा है।

बाँध के नीचे की ओर ओबरा में बने हुए बिजलीघर में शक्ति पैदा करने वाली ६ मशीनें लगी हैं। इस बिजलीघर से ३०० मेगावाट बिजली मिलती है।

इस प्रदेश के औद्योगिक विकास की सम्भावनाएँ बहुत अधिक हैं। सोन की घाटी में १६० से २०० किलोमीटर की परिधि में अनेक महत्त्वपूर्ण खनिज उपलब्ध हैं। सिंगरौली और कोटाग्राम में कोयले के लगभग २० लाख टन के संचय हैं। उच्चकोटि का चूने का पत्थर तथा १६ लाख टन से अधिक संगमरमर और बॉक्साइट के भण्डार भी यहाँ मौजूद हैं। इन्हीं के आधार पर अब साहूपुरी में रसायन, गोरखपुर में खाद, नैनी में टायर-ट्यूब; मिर्जापुर में सीमेण्ट, सोडा फैक्ट्री, बिजली का सामान, कागज और गत्ता बनाने के कारखाने स्थापित किये गये हैं। प्लास्टिक, अभ्रक, कॉस्टिक सोडा, आदि उद्योगों को और मिर्जापुर के अल्युमीनियम के कारखाने को इसी

चित्र—८४

परियोजना की शक्ति मिल रही है। शक्ति का उपयोग अन्ततः रेलों को चलाने, राजकीय और निजी नलकूपों में भी किया जाता है।

पन्त सागर के जल ने सोन नदी में पहुँच कर उसकी सिंचाई क्षमता को बढ़ा दिया है। सोन की नहर प्रणाली द्वारा बिहार की लगभग २½ लाख हैक्टेअर भूमि

की सिंचाई की जा रही है। रिहन्द बाँध में मत्स्योत्पादन, भूमि संरक्षण और मनोरंजन की भी सुविधा मिल रही है।

(५) तुंगभद्रा बाँध परियोजना (Tungbhadra Project)

तुंगभद्रा कृष्णा की सहायक नदी है। इस योजना के अन्तर्गत एक पक्के बाँध का निर्माण, मुख्य बाँध की बगल में हौज बनाने के लिए दो छोटे बाँधों का निर्माण, नदी के दोनों ओर दो नहरें, एक ऊँची सतह नहर और शक्तिगृह है। तुंगभद्रा नदी के आर-पार कर्नाटक के बलारी जिले में हास्पेट के निकट मालापुरम में एक २,४४१ मीटर लम्बा और ५० मीटर ऊँचा बाँध सन् १९५६ में बनाया गया। इसमें १८ मीटर चौड़े और ६ मीटर ऊँचे ३३ दरवाजे बनाये गये हैं। मुख्य बाँध १८३ मीटर लम्बा है और पूरा पत्थर का बना है। इसके बायीं ओर दो बाँध हैं एक मिट्टी का और दूसरा पत्थर तथा मिट्टी मिश्रित। इन बाँधों का कार्य तुंगभद्रा को बगल से रोकना है। इस जलाशय में भूमि का लगभग ४ लाख हैक्टेयर मीटर जल रोका गया है
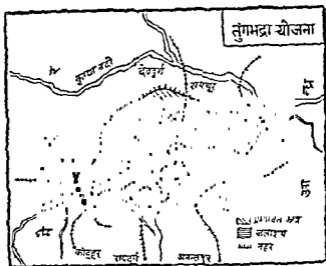
चित्र—८.५

और इससे निकली हुई बायें किनारे की ओर लो-लैवल ३४० किलोमीटर लम्बी नहरों द्वारा कर्नाटक और आन्ध्र राज्यों की ३.३२ लाख हैक्टेयर भूमि को सींचा जा रहा है। इसके दाहिने किनारे से निकलने वाली नहर १९६ किलोमीटर लम्बी है और कर्नाटक राज्य को ३६,००० हैक्टेयर भूमि को सींचती है। इसके बायें किनारे से २२७ किलो-

मीटर लम्बी नहर निकाली गयी है जो आन्ध्र प्रदेश की १'८२ लाख हैक्टेअर भूमि को सींचती है।

यहाँ दो बिजलीघर बनाये गये हैं। एक बाँध के नीचे और दूसरा २२½ किलो-मीटर लम्बी विद्युत नहर के किनारे हम्पी में जिसमें बिजली बनाने के ८ यन्त्र लगे हैं। इनसे कुल ७२ हजार किलोवाट विद्युत मिल रही है। सिंचाई के सहारे लगभग १½ लाख टन खाद्यान्न और लगभग १ लाख टन व्यावसायिक फसलें प्राप्त होने का अनुमान है। इस परियोजना में लगभग १०० करोड़ रुपया व्यय हुआ है।

(६) भाखड़ा-नांगल परियोजना (*Bhakhra-Nangal Project*)

पंजाब में अम्बाला जिले में रूपड़ से ८० किलोमीटर ऊपर की ओर भाखड़ा कन्दरा के आरपार सतलज नदी पर एक बाँध बनाया गया है। इस बाँध के कारण नदी का जल एक विशाल झील के रूप में परिणित हो गया है जो लगभग ८० किलो-मीटर लम्बी और ३-४ किलोमीटर चौड़ी है। इस (गोविन्द सागर) झील में ११४ करोड़ घन मीटर जल संग्रह हो सकता है। इससे लगभग २३ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई हो सकेगी और इससे ६ लाख किलोवाट जल विद्युत उत्पन्न की जा सकेगी। अन्ततः विद्युत की मात्रा १२ लाख किलोवाट तक बढ़ायी जा सकेगी। इसमें १७५ करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है।

यह योजना भारत की सबसे बड़ी बहुमुखी योजना मानी गयी है। इसके निम्न उद्देश्य हैं :

(१) *सतलज और जमुना के मध्यवर्ती भाग की सिंचाई करना,* (२) सरहिंद नहर में जल बढ़ाकर उसके सिंचाई के क्षेत्र में वृद्धि करना, (३) *गंगा-नहर द्वारा राजस्थान में सिंचाई के लिए जल पहुँचाना,* (४) *जल से लगभग १२ लाख किलोवाट* विद्युत-शक्ति उत्पन्न करना।

इस योजना के अन्तर्गत ८ बातें मुख्य हैं : (१) भाखड़ा बाँध; (२) नांगल बाँध; (३) नांगल विद्युत नहर; (४) दो शक्तिगृह, (५) भाखड़ा नहर व्यवस्था; (६) रूपड़ हैडवर्क्स और सरहिंद नहर का सुधार; (७) बिस्त दोआब नहर, तथा (८) बिजली के तारों का जाल।

भाखड़ा बाँध भाखड़ा नामक स्थान पर सतलज नदी के आर-पार बनाया गया है जो नदी के तल से २२५ मीटर ऊँचा है किन्तु समुद्रतल से यह ५२२ मीटर ऊँचा है और विश्व के सीधे बाँधों में यह सबसे बड़ा है। इस विशाल बाँध के निर्माण के लिए (जिसकी लम्बाई शिखर पर ५१८ मीटर है और नीचे जल के भीतर इसकी चौड़ाई ३३८ मीटर है) सतलज नदी के प्रवाह की दिशा बदली गयी है। इसके लिए नदी के दायें-बायें तटवर्ती पहाड़ियों में लम्बी गुफाएँ निकाल कर दो मार्ग बनाने पड़े हैं। ये दोनों गुफाएँ लगभग ०'८–०'८ किलोमीटर लम्बी हैं और इनका व्यास १५ मीटर है—जो आस-पास की दीवारों में सीमेण्ट और कंक्रीट की मोटी तह जमा देने के बाद है। सतलज नदी के जल को इन दोनों गुफाओं में से ले

चित्र—८६
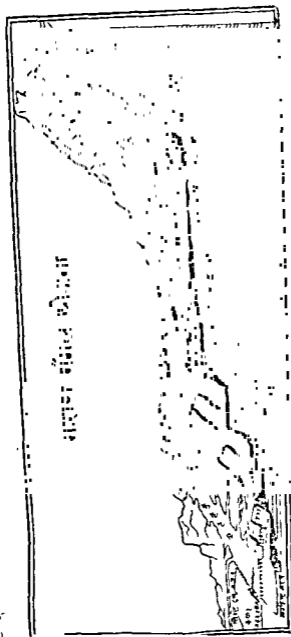
जाकर निर्दिष्ट स्थान पर नदी को मुड़ाकर वहाँ बाँध बनाया गया है। यह बाँध सन् १९६३ में बन चुका है।

भाखड़ा नहर प्रणाली के अन्तर्गत भाखड़ा बाँध से ये नहरें निकाली गयी हैं :

(i) भाखड़ा की मुख्य नहर १७३ किलोमीटर लम्बी है। यह रोपड़ से निकलकर हिसार जिले की सीमा पर स्थित टोहना तक जाती है। यहाँ यह दो भागों में बँट जाती है, एक पक्कास्तरयुक्त (भाखड़ा मुख्य शाखा) और दूसरी पक्कास्तररहित (फतेहाबाद शाखा)। अपनी शाखाओं सहित भाखड़ा नहर १,०५० किलोमीटर लम्बी है तथा इसकी उपशाखाओं की लम्बाई ३,३६० किलोमीटर है।

(ii) बिस्त दोआब नहर रोपड़ के दाहिने किनारे से निकाली गयी है। इस नहर की शाखाओं सहित लम्बाई १,०६० किलोमीटर है तथा इसकी शाखाओं की लम्बाई लगभग ६,४३७ किलोमीटर है। इससे होशियारपुर, जलन्धर और पूर्वी पंजाब के जिलों की सिंचाई की जाती है।

(iii) सरहिन्द नहर में जल की मात्रा को प्रति सैकिण्ड ६,००० क्यूसेक से बढ़ाकर १२,००० क्यूसेक किया गया है। इसी नहर से आगे बढ़कर सिधवाँ शाखा निकाली गयी है।

(iv) नरवाना शाखा नहर भाखड़ा की मुख्य नहर से १२वें किलोमीटर पर निकाली गयी है। यह १०३ किलोमीटर तक पूरी पक्कास्तरयुक्त है। इस नहर को मार्ग में अनेक नदियों को पटियाला, घग्घर, टांगरी, मारकण्डा और सरस्वती को पार करना पड़ता है। इस नहर से सिरसा शाखा को अधिक जल मिलता है तथा करनाल जिले के कुछ क्षेत्रों की सिंचाई होती है।

भाखड़ा नहर प्रणाली के अन्तर्गत लगभग २७ लाख हैक्टेअर भूमि है। इसमें से २४ लाख हैक्टेअर कृषि योग्य है। इसमें से प्रति वर्ष १५ लाख हैक्टेअर भूमि सींची जायेगी। सिंचाई की दृष्टि से इस प्रकार पंजाब के जलन्धर, फिरोजपुर, होशियारपुर, लुधियाना और हरियाणा के करनाल, हिसार और अम्बाला की लगभग १२ लाख हैक्टेअर भूमि पर तथा राजस्थान के बीकानेर सम्भाग की लगभग ३ लाख हैक्टेअर भूमि को लाभ पहुँचाया जा सकेगा।

नांगल बाँध नांगल पर सतलज नदी के आरपार एक अवरोधक बनाया गया है। यह भाखड़ा बाँध के जल के लिए सन्तुलन का कार्य करता है। नांगल बाँध कंक्रीट से तैयार किया गया है। यह २६ मीटर ऊँचा और ३१५ मीटर लम्बा तथा १२१ मीटर चौड़ा है। इस बाँध में लगभग ३.२ हजार एकड़ फीट जल जमा होता है। इस बाँध की नींव नदी के जल के अन्दर १५ मीटर की गहराई पर डाली गयी है। इसमें ३.३ मीटर चौड़ी २८ नालियाँ (जल-प्रणालिकाएँ) हैं, जिनमें प्रत्येक में लोहे का फाटक लगा है। इसकी सहायता से नदी के जल को वर्तमान धरातल से १५ मीटर ऊँचा पहुँचा दिया जाता है। यदि सब जल-मार्ग खुले हों तो उनसे ३० लाख ५० हजार क्यूसेक जल प्रवाहित हो सकता है।

नागल जल विद्युत नहर (Nangal Hydel Channel) नागल बाँध के बायें किनारे से निकाली गयी है जो लगभग ६४ किलोमीटर लम्बी और ८ मीटर गहरी है। इस नहर की पूरी लम्बाई तक सीमेण्ट और टाइलों का पलस्तर किया गया है जिससे जल भूमि में न मिद सके। ६४ किलोमीटर के भीतर सब मिलाकर ५८ मेहराबदार जल-प्रणालिकाएँ तैयार करनी पड़ी हैं।

शक्तिगृह—नागल जल विद्युत नहर पर तीन बिजलीघर बनाने की योजना है जिनमें दो बिजलीघर बाँध से २० किलोमीटर और २८ किलोमीटर नीचे गंगूवाल और कोटला में बनाये गये हैं। इन दोनों स्थानों में २६-२६ हजार किलोवाट शक्ति उत्पादक दो-दो यन्त्र लगाये गये हैं। बिजलीघरों से १'५ लाख किलोवाट शक्ति तैयार होती है। तीसरा बिजलीघर रूपड़ के निकट बनाया गया है। गंगूवाल और कोटला में उत्पन्न होने वाली बिजली ३,६६० किलोमीटर लम्बे तारों द्वारा रूपड़, लुधियाना, अम्बाला, पानीपत, हिसार, भिवानी, रोहतक, नाभा, जोगेन्दरनगर, पटियाला, मोगा, फिरोजपुर, फरीदकोट, कालका, कसौली, शिमला, जालंधर, होशियारपुर, कपूरथला, पठानकोट, फाजिल्का, हांसी, मुक्तसर, राजपुरा, धिलावान और अन्य कई छोटी-छोटी बस्तियों को बिजली भेजी जा रही है। भाखड़ा की योजना पूरी हो जाने से अब दिल्ली, गुड़गाँव, पलवल और रिवाड़ी तक बिजली भेजी जा रही है। बिजली पहुँचाने के लिए चारों ओर तार हैं। एक दुहरी सर्किट २२० किलोवाट की लाइन दिल्ली गयी है। दूसरी दुहरी सर्किट १३२ किलोवाट की लाइन लुधियाना गयी है जो दो भागों में बँट जाती है—एक जालन्धर और दूसरी मोगा और मुक्तसर को जाती है। इकहरी सर्किट ३१२ किलोवाट लाइन पानीपत से हांसी, हिसार तथा राजस्थान के राजगढ़ और रतनगढ़ को गयी है।

इस शक्ति की सहायता से पंजाब में विशेषकर जगाधरी में यन्त्रचालित लगभग १ हजार कुएँ बनाये गये हैं और उनसे सिंचाई में वृद्धि की जा रही है। नलकूपों के बन जाने से दलदली भागों का जल हटाकर शुष्क भागों में पहुँचाया जा रहा है। कुछ समय बाद इस शक्ति का उपयोग अमृतसर और दिल्ली के बीच चलने वाली मुख्य रेलगाड़ियों में भी किया जा सकेगा। भाखड़ा-नांगल योजना से राजस्थान के चुरू, बीकानेर, गंगानगर, झुंझनू और सीकर जिलों के नगरों को भी शक्ति प्राप्त हो रही है। सम्पूर्ण योजना के पूर्ण हो जाने पर पंजाब के जालन्धर, फिरोजपुर, अम्बाला, लुधियाना; हरियाणा के करनाल, हिसार और राजस्थान के बीकानेर जिलों को अप्रत्याशित लाभ मिलने लगा है। मोटे तौर पर लगभग २५० नगरों को बिजली मिलने लगी है।

(७) चम्बल परियोजना (Chambal Project)

चम्बल ९६६ किलोमीटर लम्बी नदी है। इसका प्रभाव क्षेत्र ८८ हजार किलो-मीटर है। यद्यपि वर्षाकाल में यह जल की अपार राशि के कारण तीव्र धारा बन जाती है किन्तु बाकी समय में यह अत्यन्त क्षीण हो जाती है। अतएव वर्षा का सारा

जल व्यर्थ ही बह कर चला जाता है। इससे चम्बल के मध्यवर्ती क्षेत्रों में बाढ़ें भी आ जाती हैं और भूमि उपक्षरण भी अपनी चरम सीमा तक पहुंच चुका है। अस्तु, इस नदी के जल का उपयोग करने हेतु मध्य प्रदेश और राजस्थान सरकार ने सम्मिलित रूप से चम्बल घाटी योजना बनायी है जो तीन अवस्थाओं में पूर्ण होगी। इसके अन्तर्गत ३ बाँध, ५ बिजलीघर और १ सिंचाई अवरोधक जलाशय बनाये जाने की योजना है।

प्रथम अवस्था में गाँधी सागर बाँध, विद्युत स्टेशन, विद्युत सम्प्रेषण लाइनें कोटा सिंचाई बाँध की नहरों का निर्माण होगा।

द्वितीय अवस्था में राणाप्रताप सागर बाँध तथा बिजलीघर बनाये जायेंगे।

तृतीय अवस्था मे कोटा बाँध और एक शक्तिगृह बनाया जायेगा।
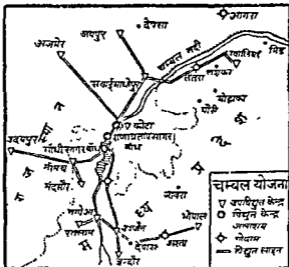
चित्र—८७

(1) गाँधी सागर बाँध (Gandhi Sagar Dam) मानपुरा तहसील मे मानपुरा से ३३ किलोमीटर और चौरासीगढ़ से ८ किलोमीटर दूर, जहाँ घाटी की चौड़ाई कम है, १९६० मे बनाया गया। यह बाँध ५१० मीटर लम्बा और ६२ मीटर ऊँचा है। इसके ऊपर ५ मीटर चौड़ी सड़क बनायी गयी है। बाढ़ का अतिरिक्त जल निकालने के लिए स्पिलवे मार्ग मे १८ मीटर और २४ मीटर के १० फाटक हैं। बाँध से जो विशाल जलाशय तैयार हुआ है उसका क्षेत्रफल ५१० वर्ग किलोमीटर है। इसमे ७७,४६० लाख हैक्टेयर मीटर जल समा सकता है। बाँध पर ही गाँधी सागर

विद्युत स्टेशन ६३ मीटर लम्बा है जिसमें १५-१५ मीटर की दूरी पर २३,००० किलोवाट शक्ति के ५ उत्पादन यन्त्र लगाये गये हैं। इससे ६०% भाराश (Load factor) की कम से कम ८०,००० किलोवाट बिजली मिलने लगी है। इसको नहरों से राजस्थान और मध्य प्रदेश की ४·४४ लाख हैक्टेअर भूमि सींची जा रही है।

राणा प्रताप सागर बाँध (Rana Pratap Sagar Dam)—गाँधी सागर बाँध से ४८ कि०मी० दूर बहाव की ओर राजस्थान ने ४० फीट ऊँचे चूलिया प्रपात के पास रावतभाटा में समाप्त हो चुका है। यह बाँध १,१०० मीटर लम्बा और ३६ मीटर ऊँचा है। इसके द्वारा बनने वाले जलाशय का क्षेत्रफल ११३ वर्ग कि० मी० है और उसमें ३·१ लाख हैक्टेअर मीटर जल समा सकता है। यह बाँध न केवल गाँधी सागर बाँध से छोड़े गये जल को बल्कि १,४४० वर्ग कि० मी० क्षेत्र के अपने स्वतन्त्र जल संग्रहण क्षेत्र का भी जल इकट्ठा करता है। भूपाल विद्युतगृह इस प्रपात के निकट है जिससे जलाशय के जल-तल तथा प्रपात के जल गिरने के अन्तर का लाभ उठाया जा सके जो वर्षा ऋतु में ६१ मीटर तक हो जाता है। इस बिजलीघर का विद्युत उत्पादन चार इकाइयों का प्रति इकाई पीछे ४३,००० किलोवाट विद्युत का है। इस बाँध से १·२ लाख हैक्टेअर भूमि में सिंचाई की जा रही है। इस बाँध पर ३१ करोड़ रुपया खर्च हुआ है।

कोटा या जवाहर सागर बाँध (*Kota Dam*) *राणा प्रताप सागर बाँध से* ३२ कि० मी० आगे है। इसपर कार्य चल रहा है। यहाँ चम्बल की चौड़ाई चौरासी-गढ़ की अपेक्षा १२२ मीटर कम हो जाती है। यह केवल एक पिक-अप-बाँध (pick-up-dam) ही होगा। पहले दो बाँधों से छोड़ा गया जल ही यहाँ विद्युत उत्पादन के लिए *प्रयुक्त होगा। यह बाँध ५४८ मीटर लम्बा और २४ मीटर ऊँचा होगा।* इस बाँध की जल धारण शक्ति १·४ लाख एकड़ फीट है। यहाँ शक्ति उत्पादन के लिए ३ यन्त्र लगाये जायेंगे जिनकी प्रत्येक की क्षमता ३३,००० किलोवाट की होगी और ६०% भाराश की ६०,००० किलोवाट बिजली पैदा होती है। इस पर १८ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है।

कोटा बैरेज (*Kota Barrage*)—कोटा बाँध से १६ किलोमीटर आगे कोटा नगर के पास एक सिंचाई अवरोधक का निर्माण किया गया है। यह बाँध ३६ मीटर ऊँचा और ६०० मीटर लम्बा है। इसकी जल संग्रहण की क्षमता ७७,४६० लाख घन मीटर है। इस बाँध से दो नहरें निकाली गयी हैं जो एक बायीं ओर और दूसरी *दायीं ओर है। यह ३·२ किलोमीटर लम्बी है।* इसकी दो शाखाएं बूँदी और कप्रेन प्रत्येक ६४ किलोमीटर लम्बी है। इससे मध्य प्रदेश और राजस्थान की ४४ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है। दायीं नहर ३७३ किलोमीटर लम्बी है। यह नहर प्रथम १२६ किलोमीटर में राजस्थान की भूमि में है।

बाँध के सम्पूर्ण हो जाने पर *अन्ततः ३ लाख ८६ हजार किलोवाट शक्ति* उत्पन्न होगी और ६ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जायगी। इसके द्वारा लगभग

५ लाख टन अधिक अनाज पैदा किया जा सकेगा । सिंचित क्षेत्र में साग-सब्जी, फल, रुई, गन्ना और चारे का उत्पादन भी बढ़ेगा । बाँध में मछलियाँ पैदा की जा सकेंगी । बाँध की नहरों के कारण निकटवर्ती क्षेत्र का जल-तल भी ऊँचा उठ सकेगा ।

विद्युत तारों द्वारा उत्पादित बिजली ३२२ किलोमीटर के अर्द्ध-व्यास की परिधि के क्षेत्र में पहुँचायी जाती है । गाँधी सागर शक्तिगृह से दो मुख्य लाइनें जाती हैं । पहली दक्षिण में इन्दौर की ओर और दूसरी उत्तर में कोटा, सवाई माधोपुर, जयपुर, ग्वालियर, अजमेर और उदयपुर की ओर । विद्युत की सुगमता से साभर झील के नमक, मकराने का संगमरमर, जयपुर और भीलवाड़ा का घीया पत्थर, जयपुर, किशनगढ़, कोटा और भीलवाड़ा की सूती कपड़े की मिलों, उदयपुर की जावर की खानों, (हिन्दुस्तान जिंक स्मेल्टर तथा अन्य उद्योग, बूँदी के सीमेण्ट तथा जयपुर के धातु और बॉल बीयरिंग उद्योग की पर्याप्त उन्नति होगी । विद्युत शक्ति से चित्तौड़गढ़, उदयपुर और नीमच के सीमेण्ट के कारखाने; कोटा में रेयन, मुरैना, भिंड और रतलाम जिलों में शक्कर तथा शक्ति अल्कोहल; अलवर जिले में ताँबा उद्योग, नागदा और सांभर जिलों में रासायनिक उद्योग, बाँसवाड़ा जिले में फैरो-मैंगनीज संयन्त्र, निमाड़ जिले में गन्ना-कागज और मन्दसौर जिले में विद्युत प्रवाह-अवरोधक सामग्री कारखानों को भी प्रोत्साहन मिलेगा ।

(८) जवाई बाँध योजना (Jawai Project)

राजस्थान में जवाई बाँध पाली जिले में जवाई नदी पर एरनपुरा रेलवे स्टेशन से ३ किलोमीटर दूर दक्षिण में बनाया गया है । इस योजना के अन्तर्गत एक जलाशय का निर्माण, एक कंक्रीट बाँध का निर्माण, दो मिट्टी के बाँधों का निर्माण, दो पहलू दीवारें (flank walls) और नहरों का निर्माण सम्मिलित है । यह बाँध ३४ मीटर ऊँचा और ९२३ मीटर लम्बा है । इस बाँध का क्षेत्रफल १६ वर्ग किलोमीटर है । इसमें ४८० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का ६५,००० लाख घन फुट जल एकत्रित होता है । यहाँ से इस जल का वितरण कंक्रीट की तैयार की हुई नहरों के द्वारा किया गया है । मुख्य बाँध के अगल-बगल दो बाँध बनाये गये हैं जिनका सामना तो पक्का है किन्तु आधार मिट्टी का है । इन बाँधों का काम जल को जलाशय की बगलों से इधर-उधर से जाने से रोकना है । इसी प्रकार दो बगल की दीवारें हैं जिनकी लम्बाई क्रमशः १,०६६ मीटर तथा १,२१६ मीटर है । ये दीवारें जलाशय के तटों का काम करती हैं ताकि बाढ़ के रूप में जल नष्ट हो सके । इस बाँध से २२ किलोमीटर लम्बी नहर निकाली गयी है । इस मुख्य नहर से ४ शाखाएँ और निकाली गयी हैं जो १७६ किलोमीटर लम्बी हैं । इस योजना पर ३ करोड़ से अधिक खर्च हुआ है । इससे लगभग १ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है । इस योजना के फलस्वरूप शुष्क क्षेत्रों में रबी की फसलें उगाई जाने लगी हैं । इस योजना का अधिक लाभ पाली, जालोर और सिरोही जिलों को हुआ है ।

(९) मयूराक्षी परियोजना

यह पश्चिमी बंगाल की प्रमुखतः सिंचाई योजना है यद्यपि इसमें ४,००० किलोवाट क्षमता का विद्युत-केन्द्र भी स्थापित है। इस योजना के अनुसार बीरभूमि जिले में मयूराक्षी नदी पर एक बाँध बनाया गया है, जिसकी लम्बाई ६४० मीटर और ऊँचाई ४७ मीटर है। इसे मैसेनजोर या कनाड़ा बाँध कहते हैं। इसकी जल संग्रहण क्षमता ६,६१० लाख हैक्टेअर मीटर की है। बाँध की निकली धारा से ३२ किलोमीटर ३०८ मीटर लम्बा तिलपारा अवरोधक बाँध बनाया गया है। इसके दोनों ओर से २२ मीटर लम्बी दूरी पर दो नहरें निकाली गयी हैं। इसी प्रकार बाँध से भी एक नहर निकाली गयी है। इस नहर पद्धति की कुल लम्बाई १,३६७ किलोमीटर है जिसमें पश्चिमी बंगाल और बिहार की २½ लाख हैक्टेअर भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हो रही हैं। २,००० किलोवाट विद्युत उत्पादक की एक इकाई सन् १९५६ में एवं दूसरी सन् १९५७ से आरम्भ हो गयी है। इससे बीरभूमि, मुर्शिदाबाद और बिहार के संथाल परगना जिले में विद्युत का प्रदाय हो रहा है। इस योजना की लागत २०·४ करोड़ है

(१०) नागार्जुन सागर परियोजना

इस योजना के अनुसार आन्ध्र प्रदेश में नन्दीकोंड ग्राम के पास कृष्णा नदी पर ९२ मीटर ऊँचा एवं १,४५० मीटर लम्बा बाँध बनाया गया है। इस बाँध के दोनों ओर १७९ मीटर और २०४ मीटर लम्बी दो नहरें निकाली गयी हैं, जिससे आन्ध्र प्रदेश की ८⅔ लाख हैक्टेअर भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हैं। जलाशय में ११८ वर्ग किलो मीटर क्षेत्र का १,१५६ करोड़ घन मीटर जल संग्रहित किया जा सकता है। इस योजना की लागत १६४ करोड़ रुपये है तथा सन् १९६३-६४ में यह पूर्ण हुआ था।

(११) उकाई परियोजना

गुजरात में सूरत नगर से ११६ किलोमीटर ऊपर की ओर उकाई नामक स्थान पर ताप्ती नदी पर एक पक्का बाँध बनाया गया है जो ४,९२८ मीटर लम्बा और ७० मीटर ऊँचा है। इससे दायें-बायें किनारे से दो नहरें निकालकर लगभग १·५ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जा रही है। इस परियोजना के अन्तर्गत ३०० मैगावाट विद्युत उत्पादन करने की योजना भी रखी गयी है। इसकी पूर्ण लागत ९६ करोड़ रुपया है।

(१२) भद्रा-संघ योजना

यह कर्नाटक सरकार की बहुमुखी योजना है, जिससे शिमोगा, चिकमगलूर, चितलदुर्ग तथा बेलारी जिले की ९९,०११ हैक्टेअर भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। ३३,००० किलोवाट विद्युत-शक्ति का उत्पादन होता है। बाँध की ऊँचाई एवं लम्बाई ३२ मीटर एवं ४२६ मीटर है, जिसमें ३,९०,३५० लाख घन फीट

जल समा सकता है। इसके दोनों ओर ३१४ किलोमीटर लम्बाई की नहरें निकाली गयी हैं। इस पर ३५ करोड़ रुपया व्यय हुआ है।

(१३) ककरापार योजना

यह तापी नदी के विकास का पहला चरण है। सूरत से ८० किलोमीटर ऊपर की ओर ककरापार के निकट ६२१ मीटर लम्बा और ९ मीटर ऊँचा बाँध बनाया गया है। इसके दायें-बायें किनारे से दो नहरें निकाली गयी हैं जो क्रमशः ५०५ किलोमीटर और ८३७ किलोमीटर लम्बी हैं। इनसे सूरत जिले की लगभग २½ हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जा रही है।

(१४) जमनालाल बजाज सागर या माही परियोजना

माही नदी मध्य प्रदेश के धार जिले में विन्ध्याचल पर्वत के उत्तरी ढलाव से समुद्र की सतह से ५६३ मीटर की ऊँचाई से आरम्भ होती है और मध्य प्रदेश में लगभग १६६ किलोमीटर बहने के पश्चात बाँसवाड़ा के समीप राजस्थान में प्रवेश करती है। राजस्थान में यह लगभग १७१ किलोमीटर तक बहती है। यहाँ इस नदी की मुख्य सहायक नदियाँ अनास, सोम, जाखम और इराऊ हैं। राजस्थान के बाद यह नदी गुजरात में प्रवेश करती है फिर खंभात की खाड़ी में जा गिरती है।

इस परियोजना का जल संग्रह क्षेत्र ६,२४० वर्ग किलोमीटर है। यह क्षेत्र अधिकतर पर्वतीय है और उस क्षेत्र में वर्षा का औसत ८० सेण्टीमीटर रहता है। यहाँ की भूमि पथरीली और कुछ मीटर तक मिट्टी होने के कारण यहाँ कुएँ खोदना बहुत कठिन है। यहाँ की भूमि बहुत कठिन है। यहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ है। फिर भी सिंचाई सुविधा के अभाव में मुख्यतः खरीफ की खेती ही की जाती है। रबी की फसल केवल उन्हीं क्षेत्रों में की जाती है जहाँ कुएँ सफलतापूर्वक खोदे जा सकते हैं। बाँध बन जाने से इस क्षेत्र में जल की सतह ऊँची होगी और इसके फलस्वरूप कुओं में अधिक पानी आ सकेगा।

इस परियोजना के पूरा होने पर २,६८० हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जा सकेगी और ४० हजार किलोवाट बिजली पैदा हो सकेगी। परियोजना के अन्तर्गत राज्य के सुदूर दक्षिण भाग में माही नदी पर एक बाँध का निर्माण किया जायगा। बाँध की ऊँचाई नदी के स्तर से ६१ मीटर होगी और वह सीमेंट, सुर्खी व गारे से बनाया जायगा। बाँध पर ८ करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान है। बाँसवाड़ा और डूँगरपुर, जो अधिकतर आदिवासी क्षेत्र हैं, इस परियोजना से प्राप्त होने वाली सिंचाई सुविधाओं और जल विद्युत से लाभान्वित होंगे।

(१५) दाँतीवाड़ा योजना

गुजरात राज्य में बनासकाँठा जिले के दाँतीवाड़ा गाँव के पास बनास नदी पर एक बाँध सिंचाई के लिए बनाया जा रहा है जिस पर लगभग ८·२७ करोड़ रुपया व्यय होगा। इस योजना के अन्तर्गत दाँतीवाड़ा जलाशय में १६ अरब ४० घन फीट

जल जमा किया जा सकेगा। इस बाँध का २७४ मीटर लम्बा बीच का भाग पक्का होगा और दोनों ओर कुल ४,७६२ मीटर लम्बे मिट्टी के तट होंगे। बाँध के पक्के भाग की सबसे अधिक ऊँचाई ५० मीटर और मिट्टी के तटबन्ध की ७६ मीटर होगी। इस जलाशय की नहर से बनासकाठा और महसाना जिलों की १ लाख १० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। बाद में यहाँ १ हजार किलोवाट बिजली भी बनायी जायगी।

(१६) परम्बीकुलम-अलियार परियोजना

यह तमिलनाडु और केरल राज्यों की सम्मिलित परियोजना है जिस पर लगभग ५१ करोड़ रुपया व्यय हुआ है। इसके अन्तर्गत अनामलाई पर्वत की निरार, शोलायार, परम्बीकुलम, तुनकादावू, टेकडी और मेरुवारी पालम नदियों द्वारा मैदानी क्षेत्र की दो नदियों अलीयार और पालर को एक-दूसरे से जोड़ने के लिए इन पर जलाशय बनाये गये हैं और उन्हें सुरंगों द्वारा आपस में मिला दिया गया है। सुरंगों द्वारा जल कोयम्बटूर और चित्तूर (केरल) जिलों की लगभग ६७,१२८ हैक्टेअर भूमि को सींचने में व्यवहृत किया जायगा और नहरों पर पड़ने वाले प्रपातों से १८५ मेगावाट शक्ति का उत्पादन किया जायेगा।

(१७) व्यास परियोजना

यह राजस्थान, पंजाब और हरियाणा की सम्मिलित रूप से कार्यान्वित की जाने वाली परियोजना है। इसके अन्तर्गत दो इकाइयाँ होंगी :

सतलज-व्यास लिंक भाखड़ा बाँध के ऊपर पडोह के पास व्यास नदी पर एक बाँध बनाया जायेगा जो ६१ मीटर ऊँचा होगा। इससे निर्मित जलाशय में १० हजार एकड़ फीट जल संग्रहित हो सकेगा। इसमें तीन नहरें निकाली जायेंगी। दो नहरें १२-१२ किलोमीटर लम्बी सुरंगों में होकर निकलेंगी जिनका व्यास ८ मीटर होगा। तीसरी नहर विद्युत नहर होगी जो खुली होगी। ये नहरें सुकेत घाटी से सतलज नदी तक जल पहुँचायेंगी। इन पर एक शक्तिगृह बनाया जायेगा जिसकी उत्पादन क्षमता ६६० मेगावाट की होगी। संग्रहित जल द्वारा पंजाब और हरियाणा की लगभग ५½ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जायगी। इस इकाई पर १४७ करोड़ का व्यय होगा और यह सम्भवतः पाँचवीं योजना में समाप्त हो पायेगी।

दूसरी इकाई के अन्तर्गत धौलाधर पहाड़ियों की घाटी में पौंग गाँव के निकट व्यास नदी पर ११६ मीटर ऊँचा और १२ मीटर चौड़ा बाँध बनाया जायेगा। इसका मुख्य उद्देश्य राजस्थान नहर को शीतकाल में जल देना होगा और इससे पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान में स्थायी रूप से २१ लाख हैक्टेअर भूमि भी सींची जायेगी। बाँध द्वारा ४० किलोमीटर लम्बा जलाशय बनेगा। एक शक्तिगृह की स्थापना भी की जायेगी जिसकी क्षमता २४० मेगावाट की होगी। इस इकाई पर १३० करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है। अन्ततः व्यास परियोजना से प्राप्त शक्ति १,०१० मेगावाट होगी।

(१८) गण्डक परियोजना

यह उत्तर प्रदेश और बिहार राज्य की सम्मिलित परियोजना है जिसका लाभ इन दोनों राज्यों के अतिरिक्त नेपाल को भी मिलेगा। इसके अन्तर्गत निम्न अंग हैं :

(१) गण्डक नदी पर बिहार में वाल्मिकी नगर के निकट एक ७४३ मीटर लम्बा अवरोधक बाँध

(२) मुख्य पश्चिमी नहर जिसके द्वारा बिहार के सारन जिले में ४·६१ लाख हैक्टेअर और उत्तर प्रदेश के गोरखपुर और देवरिया जिलों की ३·०८ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होगी। इसी नहर से एक सहायक नहर निकालकर पश्चिमी नेपाल के भैरवा जिले की १६,४०० हैक्टेअर भूमि सींचेगी।

(३) मुख्य पूर्वी नहर जिसके द्वारा बिहार के चम्पारन, मुजफ्फरनगर और दरभगा जिलों की ६·६० लाख हैक्टेअर भूमि और नेपाल की परसा, बारा और राऊतहाट जिलों की ५१,००० हैक्टेअर भूमि सींची जायेगी।

(४) नेपाल क्षेत्र में पश्चिमी नहर से १४ किलोमीटर दूर एक शक्तिगृह होगा जिसकी उत्पादन क्षमता १५ मैगावाट होगी।

अवरोधक बाँध और नहरों का निर्माण कार्य समाप्तप्राय है। इस परियोजना पर १५८ करोड़ रुपया व्यय होगा।

9

कृषि उत्पादन
(AGRICULTURE PRODUCTION)

कृषि भारतीय अर्थ-व्यवस्था का आधार है। हमारी ७० प्रतिशत जनसंख्या भूमि पर निर्भर है और ४७ प्रतिशत राष्ट्रीय आय कृषि एवं उससे सम्बन्धित क्रियाओं से प्राप्त होती है। कृषि उत्पादन का पर्याप्त मात्रा में निर्यात होता है, जिससे विदेशी विनिमय की प्राप्ति होती है। शक्कर, जूट, वनस्पति तेल और वस्त्र उद्योग जैसे महत्त्वपूर्ण उद्योग कृषि द्वारा उत्पादित कच्चे माल पर ही आधारित हैं। लाख के उत्पादन में तो भारत को लगभग एकाधिकार है तथा चाय और मूंगफली के उत्पादन में विश्व में सर्वप्रथम है। संसार के चावल, जूट, गन्ना, कपास, आदि के उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान है।

भारत मे भूमि का उपयोग बहुत ही असयोजित है। १६७०-७१ के आंकड़ों के अनुसार कुल भौगोलिक क्षेत्रफल ३२ ८० करोड़ हैक्टेअर में से ७% भूमि (२ २२ करोड़ हैक्टेअर) के सम्बन्ध में किसी प्रकार के उपयोग सम्बन्धी तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। शेष भूमि का उपयोग इस प्रकार है :[1]

वन भूमि ६'५६ करोड़ हैक्टेअर·······२०'४%
कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि ४ ६२ करोड़ हैक्टेअर······१५ ८%,
कृषि के लिए अयोग्य पड़ती भूमि ३'२५ करोड़ हैक्टेअर·· ··१२%,
पड़ती भूमि २'१५ करोड़ हैक्टेअर ··७'४%,
कुल कृषित भूमि १४'१२ करोड़ हैक्टेअर······४४'८%,
एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र २ ६३ करोड़ हैक्टेअर,
कुल बोया गया क्षेत्र······१६'७४ करोड़ हैक्टेअर।

भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषताएं

(१) भारत मे सम्पूर्ण जनसंख्या का ६६'५% कृषि मे लगा है जबकि चीन, जापान, पाकिस्तान, इटली, कनाडा, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमरीका तथा ब्रिटेन मे यह प्रतिशत, क्रमश ६०, ४०, ६५, ३२, ११, २६, ७ और ५ ही है।

[1] *Agricultural Situation in India*, August, 1974, p 172.

(२) कुल भूमि का ४५% खेती के लिए व्यवहृत होता है, जबकि चीन, जापान, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, फ्रांस और स्पेन में यह प्रतिशत केवल १२, १५, २३, २२, ८, ३६·३ और ३५·६ ही है।

(३) भारत में फसलों की विविधता पायी जाती है। कृषि में खाद्यान्नों का प्रतिशत ८० रहता है, जबकि ८% के अन्तर्गत अन्य अखाद्य पदार्थ, ४% रेशेदार पदार्थ, ४% तिलहन और ४% चारा पैदा किया जाता है।

(४) भारतीय खेतों का आकार बहुत ही छोटा है अर्थात् ६ हैक्टेअर का, जबकि ब्रिटेन में औसत खेत २६·५; संयुक्तराज्य में ५८; न्यूजीलैण्ड में १८४, हालैण्ड में २६ और फ्रांस में ८ हैक्टेअर के खेत पाये जाते हैं।

(५) जनसंख्या में वृद्धि होने के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि का भाग कम होता गया है। १९२१ में यह ·८ हैक्टेअर था, जो १९३१ में ·७२, १९४१ में ·६४, १९५१ में ·७५, १९६१ में ·३० और १९६७ में ०·२६ हैक्टेअर हो गया। विश्व का यह औसत ४·५ हैक्टेअर प्रति व्यक्ति पीछे है। कनाडा में २·१२ हैक्टेअर, अर्जेण्टाइना में १·२५; रूस में १·०३; संयुक्तराज्य में ०·८६, आस्ट्रेलिया में ३·३९ हैक्टेअर है।[1] पौष्टिक भोजन देने के लिए भारत में यह क्षेत्र बहुत ही कम है।

(६) खाद्यान्नों के उत्पादन के अपर्याप्त होने के कारण भारी मात्रा में इनका आयात करना पड़ रहा है। १९५१ में ४,८०० हजार टन, १९५६ में ३,४६५ हजार टन; १९६१ में ३,६४० हजार टन; १९६६ में १०,३५८ हजार टन, १९७० में ३,६३१ हजार टन, १९७१ में २,०५४ हजार टन और १९७२ में ४४६ हजार टन आयात किया गया।

(७) भारत में फसलों का प्रति हैक्टेअर उत्पादन कम है क्योंकि भूमि के उपजाऊ तत्त्वों का अत्यधिक शोषण किया गया है। वर्षा अनियमित एवं अनिश्चित होती है, भूमि का उपयोग अव्यवस्थित है, अनुपजाऊ और अनुपयुक्त भूमि पर भी खेती की जाती है, मिट्टी का कटाव बढ़ रहा है, उत्तम बीजों और रासायनिक खाद का उपयोग अधिक नहीं किया जाता है तथा खेती का ढंग पुराना है और खेत छोटे-छोटे एवं टुकड़ों में बँटे हैं। ये सभी कारण प्रति हैक्टेअर पीछे अधिक उत्पादन होने में बाधा डालते हैं। सिंचाई की अपर्याप्तता तथा पूँजी की कमी भी एक प्रमुख कारण है।

(८) भारत में पशुओं के लिए विशेष रूप से ऐसी कोई फसल नहीं उगायी जाती जिसका उपयोग उन्हें खिलाने के लिए किया जाता हो। पशुओं का चारा अधिकांशतः खाद्यान्न फसलों की गौण उपज भूसा है।

(९) भारत की पशु सम्पत्ति अधिक तो है लेकिन वह बहुत ही निर्बल और

[1] *Commerce Annual*, 1970.

छोटी है जो गहरी जुताई के उपयुक्त हल नहीं खींच पाती। अभी तक भारतीय कृषि का मशीनीकरण नहीं हुआ है।

(१०) शीतोष्ण कटिबन्धों की तुलना में भारत में वर्ष में एक से अधिक फसलें उगायी जाती हैं। सामान्यतः दो फसलें तो सभी स्थानों में पैदा की जाती हैं। खरीफ की फसल गरमी में बोकर वर्षा ऋतु के बाद काटी जाती है। जिन फसलों को अधिक जल की आवश्यकता पड़ती है वे ही इसमें बोई जाती हैं। इसमें चावल, ज्वार, बाजरा, मकई, उर्द, मूँग, दालें, मूंगफली, कपास, तम्बाकू, तिल, आदि बोया जाता है। रबी की फसल वर्षा ऋतु के उपरान्त बोकर शीत ऋतु के बाद काटी जाती है। इसमें गेहूं, जौ, चना, सरसों, मटर, अलसी, आलू, आदि पैदा किये जाते हैं।

(११) वर्षा के विभाजन के अनुसार भारत के दो भाग किये जा सकते हैं

(क) दक्षिणी और पूर्वी भाग, जहाँ वर्षा १०० से १२० सेण्टीमीटर होती है, में चावल, गन्ना, जूट, आदि बोये जाते हैं। (ग) उत्तरी और पश्चिमी भाग, जिनमें वर्षा १०० सेण्टीमीटर से कम होती है वहाँ मोटे अनाज, कपास, गेहूं, आदि बोये जाते हैं।

(१२) पिछले कुछ वर्षों से निश्चित जल प्राप्ति वाले कुओं अथवा सिंचित क्षेत्रफल में प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाने के लिए नयी किस्मों का अधिकाधिक प्रयोग किया गया है। इसमें पर्याप्त सफलता मिली है। १९६९-७० में नयी किस्मों के अन्तर्गत ८० लाख हैक्टेअर भूमि थी। १९७३-७४ तक लगभग २१४ लाख हैक्टेअर भूमि पर अधिक उत्पादन देने वाली फसलें बोयी जाने का अनुमान है।

चावल की ये किस्में ताइचुंग नेटिव I, ताइचुंग ६५, तैनान ३, A.D.T. २७ और IR-८ हैं। गेहूं की उन्नत किस्में क्रमशः लरमा रोजो और सोनोरा ६४ हैं।

नयी किस्मों के प्रयोग से प्रति हैक्टेअर उत्पादन इस प्रकार प्राप्त हुआ है :

किस्म	सामान्य औसत उत्पादन (किलोग्राम में)	उन्नत किस्मों का उत्पादन	
चावल	१,८७० से ७,२३२	ताइचुंग नेटिव I	११,५९५
		तैनान ३	८,४०७
		ADT-27	४,२८२
		ताइचुंग ६५	६,६३७
	-	औसत	११,०००
गेहूं	१०००	मैक्सिकन	६,१६१
		K-2	३,६६६
मकई	१,०८१ से ४,०५३		६,८५४
ज्वार	२,०६६ से ४,५१३		६,८३४
बाजरा	६६६ से ३,६४५		६,६३३

(१३) निश्चित क्षेत्रों में थोड़े समय में ही पक जाने वाली फसलों के उत्पादन, फसलों के हेर-फेर से बोये जाने और अधिक खाद तथा उत्तम बीजों के उपयोग से अब एक से अधिक बार (multiple cropping) फसलें बोयी जाने लगी हैं। १९७१-७२ में १९ लाख हैक्टेअर भूमि पर एक से अधिक बार फसलें बोई गयीं। इनके अन्तर्गत खाद्यान्न, तिलहन, आलू, दालें और सब्जियाँ पैदा की जाती हैं।

खाद्यान्नों का उत्पादन

(हजार टनों में)

खाद्यान्न	१९५०-५१	१९६०-६१	१९६५-६६	१९७०-७१	१९७१-७२	१९७२-७३
चावल	२०,५७६	३४,५७४	३५,८६६	४२,४४८	४२,७३४	३८,६३३
ज्वार	५,४९५	९,८१४	७,५२७	८,१८८	७,७५३	६,४४२
बाजरा	२,५९५	३,२८३	३,६५५	८,०००	५,३५७	३,७९५
मकई	१,७२९	४,०८०	४,७६०	७,४१३	५,०२६	६,२०६
रागी	१,४२९	१,८३८	१,१७९	२,२०१	२,१६७	१,९१४
छोटे अनाज	१,७५०	१,९०९	१,६५६	१,८७३	१,५८२	१,४७४
गेहूँ	६,४६२	१०,९९७	१०,४२४	२३,२४७	२६,४७७	२४,९२३
जौ	२,३७८	२,८१९	२,३७७	२,७६५	२,५००	२,३२७
चना	३,६५१	६,२५०	४,२०६	५,२४७	५,१०६	४,४६९
तूर	१,७१९	२,०६६	१,७३६	१,८४१	१,५७४	१,७४८
सभी दालों का योग	८,४११	१२,७०४	९,८००	११,५७६	११,०५७	९,४८८
कुल खाद्यान्न	५०,८१५	८२,०१८	७२,०३०	१,०७,८११	१,०४,६५६	९५,२०१

भारतीय कृषि के रूप

देश की प्राकृतिक दशा, जलवायु तथा मिट्टी में भिन्नता होने के कारण भारत के विभिन्न भागों में कई प्रकार की खेती होती है। खेती की निम्नलिखित मुख्य पद्धतियाँ हैं :

(१) तर खेती (Wet Cultivation) विशेषतः काँप मिट्टी के उन भागों में की जाती है जहाँ साधारणतया वर्षा २०० सेण्टीमीटर से ऊपर होती है जैसे, मध्य और पूर्वी हिमालय प्रदेश, दक्षिणी बंगाल, मालाबार तट, असम, नागालैण्ड, मेघालय, त्रिपुरा और मनीपुर में। इन भागों में एक से अधिक बार भूमि से कृषि उत्पादन प्राप्त किया जाता है। यहाँ बिना सिंचाई ही खेती द्वारा गन्ना, चावल, जूट, आदि की फसलें उत्पन्न की जाती हैं।

(२) आर्द्र खेती (*Humid Farming*) विशेषकर काँप मिट्टी और काली मिट्टी के प्रदेशों में की जाती है जहाँ वर्षा १०० से २०० सेण्टीमीटर के बीच होती है।

ऐसे भाग मध्यवर्ती गंगा का मैदान और मध्य प्रदेश हैं जहाँ प्राय. दो फसलें पैदा की जाती हैं। कभी-कभी जायद फसलें भी उत्पन्न कर ली जाती हैं।

(३) सिंचाई द्वारा खेती (*Irrigation Farming*) उन प्रदेशों में की जाती है जिनमें ५० से १०० सैण्टीमीटर तक वर्षा हो जाती है। ऐसे भाग पंजाब, हरियाणा, आन्ध्र प्रदेश, गंगा का पश्चिमी मैदान, उत्तरी तमिलनाडु और दक्षिणी भारत की नदियों के डेल्टा प्रदेश हैं। यहाँ सिंचाई के द्वारा गेहूँ, चावल, गन्ना, आदि फसलें पैदा की जाती हैं। किन्हीं क्षेत्रों में दो और किन्हीं में एक फसल पैदा की जाती है।

(४) शुष्क खेती (*Dry Farming*) उन भागों में की जाती है जहाँ वर्षा ५० सैण्टीमीटर से कम होती है. सूखी खेती पश्चिमी और दक्षिणी उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्य प्रदेश और गुजरात में की जाती है। इसके अन्तर्गत ज्वार, बाजरा, चना, जौ, गेहूँ, आदि अनाज बोये जाते हैं जिन्हें कम नमी की आवश्यकता होती है।

(५) झूमिंग प्रणाली द्वारा खेती (*Jhuming*) असम, नागालैण्ड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, मध्य-प्रदेश पश्चिमी घाट तथा राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी भाग में की जाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत पहले भूमि को वन आदि जलाकर साफ कर लिया जाता है फिर पहली वर्षा के बाद उस राखयुक्त मिट्टी में मोटे अनाज आदि बिखेर कर बो दिये जाते हैं। इस प्रकार के खेतों से दो या तीन वर्षों तक फसलें प्राप्त की जा सकती हैं। उसके बाद नयी भूमि साफ कर ली जाती है।

(६) पहाड़ी खेती (*Terrace Cultivation*) विशेषकर हिमालय और दक्षिण के पहाड़ी ढालों पर की जाती है। पहाड़ी निवासी ढालों को सीढ़ियों के आकार में काटकर छोटे खेत बना लेते हैं और उसमें बड़े परिश्रम के साथ, आलू, चावल अथवा चाय पैदा कर लेते हैं। इस प्रकार की खेती असम और हिमालय के पहाड़ी ढालों पर की जाती है।

खेतीहर क्षेत्र

भारत में फसलों का उत्पादन मुख्यत: जल वर्षा पर निर्भर करता है। अस्तु, देश में जल प्राप्ति की मात्रा के अनुसार कहीं दो और कहीं तीन फसलें पैदा की जाती हैं। कुल खेती योग्य भूमि के केवल १२ प्रतिशत भाग पर ही दो बार खेती की जाती है। यहाँ खेती का कार्य प्राय: जून में आरम्भ हो जाता है।

भारत में जितनी खेती होती है उसका प्राय. दो-तिहाई खरीफ की फसल और एक-तिहाई रबी की फसल होती है। पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु राज्यों में पर्याप्त गर्मी और दोनों ऋतुओं से प्राप्त होने वाली वर्षा के कारण खरीफ और रबी दोनों ही फसलों में लगभग एक-सी उपजें बोयी जाती हैं। महाराष्ट्र में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के कारण खरीफ फसल का महत्त्व अधिक है और उत्तरी-पूर्वी मानसून के कारण तमिलनाडु में रबी की फसल का। उत्तरी भारत में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से वर्षा होने के कारण ग्रीष्म ऋतु में खरीफ और शीत ऋतु में रबी की फसल बोयी जाती है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत के सभी भागों में खेती नहीं की जाती क्योंकि सभी जगह भूमि समान रूप से उपजाऊ नहीं है। खेती योग्य भूमि उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु तक ही सीमित है। सतलज-गंगा का मैदान, समुद्रतटीय मैदान और काली लावा मिट्टी के क्षेत्र कृषि के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं। इन भागों में वर्षा पर्याप्त होने के साथ-साथ मिट्टी उपजाऊ और भूमि समतल है किन्तु निम्न भागों में कृषि करने में निम्न कठिनाइयाँ पड़ती हैं :

(१) पूर्वी महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में (काली मिट्टी वाले क्षेत्रों को छोड़ कर) अधिकांशतः भूमि अनुपजाऊ है।

(२) असम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मनीपुर तथा नागालैण्ड के कई भागों में पहाड़ी धरातल, सघन वन प्रदेश और अस्वास्थ्यप्रद जलवायु के कारण खेती करना असम्भव है।

(३) राजस्थान में शुष्क जलवायु और वर्षा की कमी के कारण पश्चिमी भागों में खेती करना कठिन है।

(४) हिमालय और पूर्वी मैदान के बीच में स्थित तराई, पश्चिमी घाट के समान्तर सकरी पट्टी और पूर्वी घाट के समान्तर मिट्टी जो तमिलनाडु, उड़ीसा, आन्ध्र और मध्य प्रदेश में चौड़े क्षेत्र का रूप धारण कर लेती है। इन तीनों ही क्षेत्रों में वर्षा का औसत १२७ से २५४ सेण्टीमीटर तक होता है और भूमि भी उपजाऊ है किन्तु इन सभी भागों में सदैव मलेरिया का प्रकोप रहता है। ऐसी भूमि का उपयोग तभी हो सकता है जब मलेरिया पर नियन्त्रण किया जाय।

(५) दक्षिण में पश्चिमी घाट और समुद्र तट के बीच में और उत्तर में गोआ से दक्षिण में कोंकन तक सारे प्रदेश में वर्षा १५२ सेण्टीमीटर से ऊपर होती है। वन प्रदेशों का आधिक्य है किन्तु भूमि उपजाऊ है फिर भी वर्षा की अधिकता, अस्वास्थ्यप्रद जलवायु, मलेरिया का प्रकोप, मजदूरों की कमी और यातायात की असुविधाओं के कारण खाद्यान्न अधिक मात्रा में नहीं पैदा किये जाते। यदि इन असुविधाओं को दूर कर दिया जाय तो इनमें कृषि उत्पादन किया जा सकता है।

यह स्मरणीय है कि भारत में ३०% भूमि असमान तथा अन्य कारणों से और २० से ३०% वर्षा के अभाव में बोयी नहीं जाती।

पंचम योजनाकाल में सकल कृषित क्षेत्रफल में १६·६ करोड़ हैक्टेयर से बढ़ कर १८० करोड़ हैक्टेयर की वृद्धि होने का अनुमान है।

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अनेक बहुमुखी उपाय काम में लाये जायेंगे, जिनके अन्तर्गत उन्नत बीजों का उपयोग, अधिक रासायनिक खाद, उचित जल की व्यवस्था, उपजों के विपणन में सुधार तथा सिंचाई के साधनों में सुधार करना मुख्य हैं। इन सब उपायों से कृषि सम्बन्धी वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि का अनुमान अग्र प्रकार लगाया गया है :

उपज	इकाई	चतुर्थ योजना के पाँच वर्षों में	पंचम योजना के पाँच वर्षों में
	करोड़ टन		
चावल	,,	२०.८	२५.४
गेहूँ	,,	१२.६	१६.८
मक्का	,,	३.०	३.७
ज्वार	,,	४.२	५.१
बाजरा	,,	३.०	३.७
अन्य अनाज	,,	२.६	३.३
दालें	,,	५.५	६.५
कुल खाद्यान्न	,,	५२.०	६४.५
तिलहन	,,	४.१५	५.५
गन्ना	,,	६३.५०	७७.५
कपास	लाख गाँठें	२.८१	३.६०
जूट और मेंस्टा	,,	३.२०	३.६०

प्रमुख फसलें (Principal Crops)

भारत उष्ण और समशीतोष्ण दोनों कटिबन्धों में स्थित है अतः जहाँ एक ओर चावल, गन्ने तथा केले जैसी उष्ण कटिबन्धीय फसलें पैदा होती हैं, वहाँ दूसरे भागों में कपास, गेहूँ तथा तम्बाकू जैसी समशीतोष्ण कटिबन्धीय वस्तुएँ भी उत्पन्न की जाती हैं। इसके अतिरिक्त भारत की भौतिक अवस्था, जलवायु, मिट्टी, आदि की विभिन्नता के कारण यहाँ अनेक प्रकार की फसलें उत्पन्न की जाती हैं।

भारत की प्रमुख फसलें निम्न हैं :

१. खाद्यान्न—चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, रागी, जौ, मक्का, दालें।

२. व्यावसायिक और मुद्रादायिनी फसलें—गन्ना, तिलहन, गर्म मसाले, रबड़।

३. पेय पदार्थ—चाय, कहवा, तम्बाकू।

४. रेशेदार पौधे—कपास, जूट, मेंस्टा, सन, पटुआ।

१. खाद्यान्न
(FOODGRAINS)

चावल (Rice) ✓

यह मानसूनी प्रदेशों की उपज है। यहाँ इसके पनपने की आदर्श दशाएँ पायी जाती हैं। चावल भारत के लगभग तीन-चौथाई मनुष्यों का भोज्य पदार्थ है। यहाँ इसकी खेती ईसा के ३,००० वर्ष पूर्व से हो रही है। विश्व के उत्पादन का २८% चावल भारत से प्राप्त होता है।

भौगोलिक दशाएँ—(१) चावल उष्ण कटिबन्धीय पौधा है अतः ऊँचे तापमान की आवश्यकता होती है । बोते समय २०° सेण्टीग्रेड तथा फसल पकने के लिए २७° सेण्टीग्रेड तापमान ठीक माना गया है । १६° सेण्टीग्रेड से कम तापमान में चावल पैदा नहीं होता । इसको प्रचुर मात्रा में प्रकाश की भी आवश्यकता होती है । अधिक लम्बा मेघाच्छादित मौसम इसके लिए *हानिकारक होता है ।* तेज वायु भी पौधे को गिराकर नष्ट कर देती है ।

(२) जल की मात्रा खेतो में ७५ दिन तक भरी रहनी अच्छी है । चावल की खेती अधिकतर नदियों के डेल्टों में, समुद्री किनारे के नीचे तटीय प्रदेशों में और ऐसे प्रदेशों में, जहाँ मानसून के समय बाढ़ें आया करती है, की जाती है । साधारणतः ६० सेण्टीमीटर से लगाकर ७५ सेण्टीमीटर तथा २०० सेण्टीमीटर वर्षा वाले भागों में चावल बोया जाता है । १५० सेण्टीमीटर वाले भागो में बिना सिंचाई और ६० से ७५ सेण्टीमीटर वर्षा वाले भागो मे सिंचाई के सहारे चावल बोया जाता है । भारत की वार्षिक वर्षा का वितरण के मानचित्र के धान के क्षेत्रों की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि ज्यों-ज्यों समुद्रतटीय भागों से देश के भीतर की ओर बढ़ते है वर्षा की कमी के साथ-साथ चावल की खेती का महत्त्व भी कम होता जाता है । बंगाल और असम के बाहर पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और दक्षिणी-पूर्वी तटीय भागों के डेल्टाओं में सिंचाई द्वारा चावल पैदा किया जाता है । सम्पूर्ण उत्पादन का ३८% सिंचाई के सहारे प्राप्त किया जाता है । आन्ध्र प्रदेश में ९५%, तमिलनाडु में ८५%, बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में क्रमशः ३२%, ११% और १०% धान के अन्तर्गत खेतो की सिंचाई की जाती है ।

(३) चावल के लिए उपजाऊ चिकनी, कछारी अथवा दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है जिससे धान की जड़ें बँधी रहें और पौधा खड़ा रह सके । चावल भूमि की उपजाऊ शक्ति को नष्ट कर देता है अतः इसमें खाद देना आवश्यक हो जाता है । हरी खाद (ढैंचा, गुवार, आदि), हड्डियो की खाद, अमोनियम सल्फेट, सुपरफॉस्फेट, आदि देकर चावल की प्रति एकड़ पैदावार बढ़ायी जाती है । ० ४ हैक्टेअर (१ एकड़) में १० किलोग्राम नेत्रजन या ५० किलोग्राम अमोनियम सल्फेट देने पर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाता है । यह खाद साधारणतः बुवाई के पहले और अंकुर निकलने के समय दी जाती है ।

(४) चावल को बोने के लिए अधिक मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता होती है क्योंकि *क्यारियों से निकालकर खेतों में पौधों को एक-एक कर रोपना पड़ता है ।* उत्पादक क्षेत्रों में जनसंख्या अधिक होने से श्रमिक अधिकता से प्राप्त हो जाते हैं ।

भारत में चावल को तीन प्रकार से बोया जाता है छिटक कर, हल द्वारा बोकर या पौधों को दुबारा लगाकर । (१) जहाँ भूमि ऊँची-नीची होती है और नमी की मात्रा तथा श्रमिकों की कमी होती है वहाँ चावल छिटक कर (Broadcasting)

बोया जाता है। इस ढंग द्वारा फसल मानसून के आरम्भ होते ही बो दी जाती है। (२) हल चलाकर (Ploughing) चावल की खेती दक्षिणी प्रायद्वीप के अधिकांश भागों में की जाती है। इसके अनुसार जुताई करते समय दाना बोते जाते हैं (३) पौधा लगाकर (Plantation) चावल की खेती के अनुसार पहले बीजों को छोटी-छोटी क्यारियों में बो देते हैं। जब ४-५ सप्ताह में पौधे बड़े हो जाते हैं तो उन्हें उखाड़कर पहले से ठीक किये गये खेतों में एक-एक कर ४-६ इकट्ठे करके रोप दिये जाते हैं। साधारणत. ये पौधे १५ से २५ इंच की दूरी पर लगा दिये जाते हैं। इन पौधों को तब तक जल से भरा रखते हैं जब तक कि धान पकने पर न आवे। ऐसी खेती में अधिक श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है किन्तु उत्पादन अधिक होता है।

भारत में जापानी विधि से चावल पैदा करने वाला पहला प्रयोग सन् १९५३ में आरम्भ किया गया। जापानी कृषि प्रणाली के अनुसार सर्वप्रथम बीज को जल में डाल दिया जाता है और कम्पोस्ट खाद डालकर खेत में १$\frac{1}{2}$ मीटर चौड़ी क्यारियाँ बना ली जाती हैं। प्रति २० वर्ग मीटर भूमि में ४० किलोग्राम कम्पोस्ट खाद प्रयुक्त होती है। २८ या ३० दिन के बाद इन बेहन को एक-एक करके २५ × १५ सेण्टीमीटर की दूरी पर रोप दिया जाता है। प्रत्येक पंक्ति एक दूसरी से २५ सेण्टीमीटर की दूरी पर तथा प्रत्येक पौधा एक दूसरे से १५ सेण्टीमीटर की दूरी पर रहता है। रोपने के १५ या २० दिन बाद निराई की जाती है जिससे पौधा स्वच्छन्दतापूर्वक विकास कर सके। इस प्रणाली में उत्तम प्रकार के बीजों का अधिक उपयोग किया जाता है।

भारत में चावल की फसल शीतकाल की फसल है। इसकी बुवाई अप्रैल से अगस्त तक होती है और नवम्बर से जनवरी तक इसको काट लिया जाता है। किन्तु असम, बिहार, बंगाल उड़ीसा और तमिलनाडु में शीतकाल के अतिरिक्त पतझड़ और ग्रीष्म ऋतुओं में भी चावल की फसल प्राप्त की जाती है।

भारत में चावल की जो तीन फसलें पैदा की जाती हैं उनमें से अधिक महत्त्व शीतकाल की फसल का ही है क्योंकि इसी से ६२% उत्पादन मिलता है। पतझड़ की फसल से केवल ३७%। ग्रीष्म की फसल का महत्त्व नगण्य (१%) है।

औस (Aus) या शरद्कालीन फसल ऊँची भूमि पर बोयी जाती है। अप्रैल और मई से जुलाई तक ऊँचाई पर स्थित सूखे भागों में धान के बीज बो दिये जाते हैं। वर्षा होने पर लगभग १ मीटर तक जल भरा रखा जाता है। अगस्त से दिसम्बर तक इसकी कटाई हो जाती है। इस फसल को कातिकी फसल भी कहते हैं। इस फसल का प्रति हैक्टेअर उत्पादन १,००० किलोग्राम होता है।

अमन (Aman) या शीतकालीन फसल अप्रैल से अगस्त तक वर्षा होते पर बो दी जाती है और जल की ऊँचाई के साथ-साथ यह बढ़ती जाती है। अक्टूबर से जनवरी तक इसकी कटाई होती रहती है। इसे अगहनी फसल भी कहते हैं। यही फसल सबसे मुख्य होती है। प्रति हैक्टेअर उत्पादन १,२८० किलोग्राम होता है।

जिनका प्रति हैक्टेअर उत्पादन ५,००० से ११,००० किलोग्राम तक का है जबकि देशी किस्मों का केवल ४०० से ८०० किलोग्राम तक का ही होता है।

भारत में भिन्न-भिन्न स्थानों की वर्षा, सिंचाई, मिट्टी की प्रकृति और बोने तथा काटने के समय के अनुसार प्रति हैक्टेअर पैदावार में भिन्नता पायी जाती है। पतझड़ की अपेक्षा शीतकाल की फसल का प्रति हैक्टेअर उत्पादन अधिक होता है। इसी प्रकार जापानी चावल (Japonica) का उत्पादन भारतीय चावल (Indica) की अपेक्षा अधिक होता है। भारत में प्रति हैक्टेअर पीछे १७० किलोग्राम चावल प्राप्त होता है जबकि केनिया में ६४०; आस्ट्रेलिया में ६२०; मिस्र में ५४०, जापान में ५२६; चीन में २५४ और इण्डोनेशिया में १८० किलोग्राम। भारत में सबसे अधिक प्रति हैक्टेअर उत्पादन तमिलनाडु में १,६७४ किलोग्राम तक का होता है।

उत्पादक क्षेत्र भारत में बोयी गयी फसलों के अन्तर्गत सबसे अधिक क्षेत्रफल चावल का है। कुल बोयी गयी भूमि के १५% भाग पर तथा खाद्यान्नों के अन्तर्गत बोयी गयी भूमि के ३७% भाग पर धान की खेती की जाती है। आन्ध्र, असम, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, केरल और पश्चिमी बंगाल मिलकर कुल क्षेत्रफल के ९०% से कुछ अधिक भाग पर चावल पैदा करते हैं। अन्य उत्पादक कश्मीर, हरियाणा और दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान हैं।

पश्चिमी बंगाल भारत का प्रमुख चावल उत्पादन करने वाला राज्य है। यहाँ भूमि के अधिक उपजाऊ होने से खाद अधिक देने की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु कभी-कभी फसल को बाढ़ से हानि उठानी पड़ती है। यहाँ प्रत्येक जिले में कृषि भूमि के ७० प्रतिशत से अधिक भाग पर चावल बोया जाता है। यहाँ के मुख्य चावल उत्पादक जिले कूचबिहार, जलपाईगुड़ी, बाकुड़ा, मिदनापुर, दिनाजपुर, बर्दवान और दार्जिलिंग हैं। पश्चिमी बंगाल में चावल की तीन फसलें पैदा की जाती हैं। अमन की फसल प्रमुख है।

असम में धान की खेती ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदी की घाटियों में तथा पहाड़ी ढालों पर की जाती है। गोलपाड़ा, नवगाँव, कामरूप, आदि प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

बिहार में वर्ष में चावल की तीन फसलें पैदा की जाती हैं किन्तु मानसूनी वर्षा की अनिश्चितता के कारण सिंचाई का आश्रय लेना पड़ता है। यहाँ गया, मुंगेर, मुजफ्फरपुर, भागलपुर और पूर्णिया जिलों में धान पैदा किया जाता है।

उत्तर प्रदेश में धान के दो मुख्य क्षेत्र हैं। हिमालय की तराई में जहाँ उपजाऊ भूमि, वर्षा की अधिकता एवं अनुकूल तापमान के कारण धान बोया जाता है। लघु एवं मध्यवर्ती हिमालय की सीमाओं पर पहाड़ी ढालों पर चौरस खेतों में जल रोककर धान बोया जाता है। देहरादून, पीलीभीत, सहारनपुर, देवरिया, गोंडा, बहराइच, बस्ती, रायबरेली, बलिया, लखनऊ और गोरखपुर मुख्य उत्पादक जिले हैं। यहाँ चावल अप्रैल-मई से सितम्बर-अक्टूबर तक पैदा किया जाता है।

महाराष्ट्र में पहाड़ी एवं मैदानी धान की खेती पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल और समुद्र तटीय भागों में रत्नागिरि, कनारा तथा कोंकण तट पर चावल पैदा किया जाता है।

तमिलनाडु से देश के कुल उत्पादन का ११% चावल प्राप्त होता है। यहाँ चावल की दो फसलें पैदा की जाती हैं। एक मई से दिसम्बर तक बोयी जाती है और सितम्बर से अक्टूबर तक काट ली जाती है। दूसरी अक्टूबर से मार्च तक बोकर जनवरी से जून तक काट ली जाती है। यहाँ के मुख्य उत्पादक थंजवूर, चिंगलपुट, दक्षिणी अरकाट, कोयम्बटूर और नीलगिरि जिले हैं।

आन्ध्र प्रदेश से भी ११% चावल प्राप्त होता है। यहाँ भी तमिलनाडु की ही भाँति दो फसलें प्राप्त की जाती है। यहाँ गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटों में चावल बोया जाता है। प्रमुख उत्पादक जिलें विशाखापट्टनम, नैलोर, चित्तूर, कड्डप्पा, कर्नूल, अनन्तपुर, पूर्वी और पश्चिमी गोदावरी हैं।

कर्नाटक में तुंगभद्रा, वैगाना और कावेरी नदियों की घाटियों में, विशेषतः पूर्वी भाग में, चावल पैदा किया जाता है।

केरल में पहाड़ी ढालों और मालाबार तटीय मैदान में चावल पैदा होता है। कोचीन, त्रावणकोर, अलप्पी, क्विलोन प्रमुख उत्पादक जिलें हैं।

मध्य प्रदेश में तापी नदी की घाटी में रायपुर, जबलपुर, गोंदिया, आदि जिलों में चावल पैदा होता है।

पंजाब में यह पहाड़ी जिलों में तथा कश्मीर में झेलम की घाटी में पैदा किया जाता है।

राजस्थान में चावल डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़, बाँसवाड़ा, उदयपुर और गंगानगर जिलों में पैदा होता है।

उड़ीसा में कटक, पुरी, सम्बलपुर, बालासोर, आदि जिलों में भी चावल पैदा किया जाता है।

मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, गोआ, मनीपुर, तथा त्रिपुरा अन्य उत्पादक राज्य हैं।

उत्पादन एवं व्यापार—१९५०-५१ में ३०८ लाख हैक्टेअर भूमि पर चावल बोया गया, १९६०-६१ में ३४१ लाख हैक्टेअर पर और १९७२-७३ में ३६० लाख हैक्टेअर भूमि पर। इन वर्षों में इसका उत्पादन क्रमशः २·०, ३·४ और ३.८ करोड़ टन हुआ।

धान उपजाने वाले क्षेत्रों की घनी जनसंख्या के कारण धान का निर्यात नहीं किया जाता है किन्तु इसका व्यापार अन्तर्राज्यीय होता है। कम वर्षा राज्य मध्य प्रदेश, उड़ीसा और असम से इसका स्थानान्तरण बंगाल, तमिलनाडु, आन्ध्र, केरल, कर्नाटक और महाराष्ट्र को होता है।

देश में चावल की माँग अधिक होने से बर्मा, थाइलैण्ड, इण्डोनेशिया, श्रीलंका, ब्राजील, कम्बोडिया और अरब गणतन्त्र से चावल आयात किया जाता है। १९६१ में ३·८ लाख टन और १९६७ में ५·५ लाख टन चावल का आयात किया गया। १९६९-७० में ५८·२ करोड़ रुपये और १९७२-७३ में ११ करोड़ रुपये के मूल्य का चावल आयात किया गया।

भविष्य में चावल का उत्पादन नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत बढ़ा कर देश को स्वावलम्बी बनाया जा सकता है। अच्छे बीज और उत्तम खाद के उपयोग से उत्पादन में ५० प्रतिशत वृद्धि की जा सकती है।

गेहूँ (Wheat—*Triticum*)

मोहनजोदड़ो में की गयी खुदाई में जो गेहूँ के दाने मिले हैं उनसे ऐतिहासज्ञों का मत है कि भारत ही सम्भवतः गेहूँ का आदि स्थान रहा है। यहाँ इसकी खेती बहुत ही प्राचीन काल से की जाती है। विश्व के उत्पादन का केवल ३·५% गेहूँ ही भारत से प्राप्त होता है।

भौगोलिक दशाएँ—(१) *गेहूँ के पकने के लिए अधिक गर्मी की आवश्यकता पड़ती है।* जाड़े के आरम्भ में बोने के समय तापमान १०° से १५° सेण्टीग्रेड तक और पकने के समय २०° से २४° सेण्टीग्रेड तक का तापमान साधारणतः उपयुक्त माना जाता है।

(२) गेहूँ को बोने के समय जल की आवश्यकता होती है किन्तु अधिक वर्षा वाले भागों में फसल नहीं बोयी जाती जबकि पंजाब और उत्तर प्रदेश के शुष्क भागों में सिंचाई की सहायता से गेहूँ बोया जाता है। उत्तर प्रदेश में ४२%, पंजाब और हरियाणा में ४५% और राजस्थान में ४५% गेहूँ की फसल सींची जाती है। बुवाई के १५ दिन बाद और पकने के १५ दिन पूर्व यदि चक्रवातीय वर्षा हो जाती है तो गेहूँ की फसल के लिए लाभदायक होती है। गेहूँ के लिए आदर्श वर्षा ५० से ७५ सेण्टीमीटर मानी गयी है।

(३) *इसके लिए हल्की दोमट या गाढ़े रंग की मटियार मिट्टी अच्छी रहती है।* काली मिट्टी में भी यह पैदा किया जाता है।

(४) *गेहूँ के खेतों को जोतने, बोने, काटने और दानों को भूसे से अलग करने* में काफी परिश्रम की आवश्यकता होती है इसलिए जहाँ श्रमिक सस्ते और आसानी से मिल सकते हैं वहाँ गेहूँ अधिक मात्रा में बोया जाता है।

साधारणतः गेहूँ को पकने में ३ से ६ महीने लगते हैं। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में गेहूँ थोड़े ही समय में पक जाता है क्योंकि गेहूँ को पकने के लिए जितनी गर्मी की आवश्यकता होती है वह थोड़े ही समय में प्राप्त हो जाती है। दक्षिण के प्रदेशों में गेहूँ दिसम्बर से ही काटना प्रारम्भ हो जाता है लेकिन मध्य प्रदेश में यह साधारणतः मार्च में काटा जाता है और पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली और पंजाब के *प्रदेशों में गेहूँ अप्रैल के अन्त तक काटा जाता है।* उत्तरी भारत में गेहूँ की फसल

अक्टूबर या नवम्बर के अन्त में और दक्षिणी भारत में सितम्बर या अक्टूबर के मध्य में बोयी जाती है।

भारत का औसत उत्पादन १,२२८ किलोग्राम प्रति हैक्टेअर है जबकि संयुक्त राज्य में १,७४० किलोग्राम, इटली में २०६ किलोग्राम, फ्रांस में ३,६३० किलोग्राम और रूस में १,०५० किलोग्राम है। साधारणतः फसल को जल मिलने के परिमाण के अनुसार प्रति हैक्टेअर पैदावार में अन्तर पाया जाता है। जैसे, उन प्रदेशों में जहाँ सिंचाई का प्रबन्ध है वहाँ प्रति हैक्टेअर उत्पादन अधिक होता है तथा जहाँ उपज वर्षा पर निर्भर रहती है वहाँ उत्पादन कम होता है। भारत में प्रति हैक्टेअर उत्पादन बहुत कम है क्योंकि भारत के किसान गरीब, पुराने विचारों के और अशिक्षित हैं। भारत में प्रति हैक्टेअर उत्पादन केवल १२० किलोग्राम का होता है जबकि नीदरलैण्ड्स में ४५० किलोग्राम, इंगलैण्ड में ४१० किलोग्राम, डेनमार्क में ४०० किलोग्राम का है। अब मैक्सिकन (सरमा राजो, सोनेरा ६३ और ६४) और अन्य किस्में (सोना २२७, कल्याण सोना, सोनालिका, छोटी सरमा, शरबती सोनेरा, सफेद सरमा) उत्पन्न की जाने लगी हैं जिनका प्रति हैक्टेअर उत्पादन कई गुना अधिक होता है।

भारत में प्रायः दो प्रकार का गेहूँ उत्पन्न किया जाता है। प्रथम प्रकार के गेहूँ को साधारण रोटी का गेहूँ (Common Bread wheat) कहते हैं। यह देखने में चमकीला, सुडौल तथा पीसने में मुलायम होता है और इसका रंग सफेद होता है। इस प्रकार का गेहूँ भारत के उत्तरी मैदान में होता है। दूसरे प्रकार का गेहूँ जिसे मैकरोनी गेहूँ (Macroni wheat) कहते हैं, अपेक्षाकृत कठोर, लाल रंग का और छोटे दाने वाला होता है। मैकरोनी गेहूँ वर्षा के जल का अपेक्षित होता है और इसलिए यह मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र के काली मिट्टी के क्षेत्र, आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु में अधिकतर उगाया जाता है।

भारतीय गेहूँ की कृषि की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं :

(१) भारत में गेहूँ की कृषि समशीतोष्ण और उष्ण दोनों ही कटिबन्धों में होती है किन्तु अधिक तापमान के कारण दक्षिणी भारत का गेहूँ उत्तरी भारत के गेहूँ से पहले पकता है। (२) यहाँ गेहूँ की कृषि अक्टूबर के अन्त में आरम्भ हो जाती है और फरवरी तक एक या दो बार सींच दी जाती है किन्तु मार्च महीने में तापमान के सहसा बढ़ जाने और पछुआ पवन के झकोरों के कारण दाने शीघ्र पककर सूख जाते हैं। यही कारण है कि भारत का गेहूँ उच्च कोटि का नहीं होता। (३) तापमान के अचानक बढ़ने के साथ-साथ शुष्क और तेज पवनें भी दाने को सुखा देती हैं। अतः यहाँ का गेहूँ अन्य देशों की भाँति पूर्ण विकसित और सुडौल नहीं होता वरन् पतला और सिकुड़ा होता है। वायु के अधिक तेज चलने से फसल को भी हानि पहुँचती है, क्योंकि डण्ठल कमजोर होने से पौधा भूमि पर गिर जाता है और गेहूँ का दाना बिगड़ जाता है। (४) भारत के विभिन्न भागों में गेहूँ अक्टूबर से दिसम्बर तक

बोया जाता है और मार्च से जून तक काटा जाता है। अधिकतर भागों में शीतकाल में वर्षा नहीं होती। अतः खेतों की सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है। (५) यहाँ गेहूँ की फसल उस समय पकती है जब विश्व के अन्य देशों के गेहूँ की फसल खेतों में बढ़ रही होती है। विश्व की मण्डियों का गेहूँ इस समय तक समाप्त रहता है। ऐसी दशा में भारतीय गेहूँ विदेशी बाजार में प्रवेश कर सकता है। (६) इस देश में गेहूँ
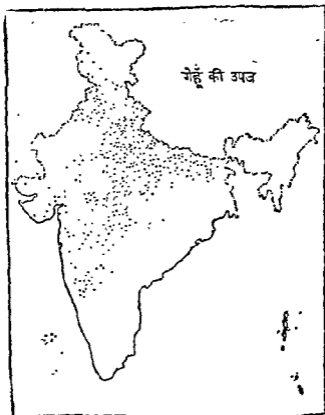
चित्र—६·२

की कृषि की एक और विशेषता यह है कि इसे बहुधा विनष्टकारी रोगों (गेरुई, रतुआ, इरदा) और शीतकालीन तुषार और झझावातों द्वारा बहुत क्षति पहुँचती है।

उत्पादक क्षेत्र भारत में खाद्यान्नों के अन्तर्गत बोयी गयी भूमि के १० प्रतिशत भाग पर गेहूँ बोया जाता है। यह अधिकांशतः उत्तरी और मध्य भारत की मुख्य फसल

है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान और बिहार मिलकर कुल उत्पादन क्षेत्र के ६० प्रतिशत भाग में गेहूँ पैदा करते हैं।

उत्तर प्रदेश भारत का ३० प्रतिशत गेहूँ उत्पन्न करता है। दक्षिण के पहाड़ी एवं पठारी भूमि को छोड़कर उत्तर प्रदेश में सर्वत्र गेहूँ की कृषि होती है। *गेहूँ के अन्तर्गत आधा क्षेत्रफल गंगा और घाघरा नदियों के बीच के क्षेत्र में पाया* जाता है। गंगा और यमुना के दोआबों में भी गेहूँ अधिक उत्पन्न किया जाता है। मेरठ, बुलन्दशहर, देहरादून, सहारनपुर, आगरा, अलीगढ़, मुजफ्फरनगर, मुरादाबाद, इटावा, फर्रुखाबाद, बदायूँ, कानपुर, फतेहपुर, आदि जिलों की लगभग एक-तिहाई *कृषि योग्य भूमि पर केवल गेहूँ की कृषि होती है। सिचाई का प्रबन्ध, गंगा, यमुना* तथा शारदा नदियों से निकलने वाली नहरों से होता है। इन जिलों की जलवायु शुष्क तथा गेहूँ के उत्पादन के लिए सर्वथा अनुकूल है अतः इन जिलों की प्रति हैक्टेअर उपज अधिक है। उत्तर प्रदेश के पूर्व और पूर्वोत्तर भाग में वर्षा की अधिकता के कारण गेहूँ की कृषि का महत्त्व कम है और धान तथा गन्ने की फसलों की प्रधानता है। गोरखपुर की कृषि योग्य भूमि के केवल ७ क्षेत्र में ही गेहूँ का उत्पादन होता है। घाघरा नदी के पूर्व में स्थित क्षेत्र गेहूँ का द्वितीय महत्त्वपूर्ण उत्पादक क्षेत्र है। गंगा, यमुना के कछारों में तो गेहूँ बिना सींचे पैदा होता। नैनीताल जिले के भावर और तराई क्षेत्रों में भी गेहूँ पैदा किया जाता है।

पंजाब में अमृतसर, लुधियाना, गुरुदासपुर, पटियाला, जालन्धर तथा फिरोजपुर मुख्य गेहूँ उत्पादन करने वाले जिले हैं जहाँ नहरों की सहायता से सिचाई का समुचित प्रबन्ध है। इन जिलों से पंजाब का लगभग आधा गेहूँ प्राप्त किया जाता है।

हरियाणा के दक्षिणी-पूर्वी जिलों की जलवायु अधिक शुष्क है और सिचाई के साधनों का विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ है फिर भी रोहतक, अम्बाला, करनाल, जिंद, हिसार तथा गुड़गाँव में गेहूँ की कृषि सिचाई के सहारे की जाती है। भाखरा-नांगल योजना की सहायता से गेहूँ के क्षेत्र को दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ाया जा रहा है।

मध्य प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में *ताप्ती और नर्मदा, तवा, गंजल, हिरण, आदि* नदियों की घाटी और मालवा के पठार की काली मिट्टी के क्षेत्र में सिचाई द्वारा गेहूँ पैदा किया जाता है। होशंगाबाद, सागर, ग्वालियर, नीमाड़, उज्जैन, भोपाल, देवास, रीवाँ और जबलपुर मुख्य उत्पादक जिले हैं।

अन्य उत्पादकों में गुजरात में अहमदाबाद, नासिक; भड़ौंच में कछारी और काली मिट्टी में; महाराष्ट्र में खानदेश; कर्नाटक में बेलगाँव, धारवाड़ और बीजापुर जिले में गेहूँ बोया जाता है। पश्चिमी बंगाल और बिहार की जलवायु गेहूँ के उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं है, अतः बहुत ही थोड़े क्षेत्र में गेहूँ बोया जाता है। पश्चिमी बंगाल में नादिया, मालदा, पश्चिमी दिनाजपुर, मुर्शिदाबाद और बीरभूमि जिले में

थोड़ा गेहूँ पैदा किया जाता है। राजस्थान में गंगानगर, भीलवाड़ा, कोटा, झालावाड़ और सवाईमाधोपुर जिलों में गेहूँ पैदा किया जाता है।

१९५०-५१ मे ६,७४६ हजार हैक्टेअर भूमि में गेहूँ बोया गया। इसका उत्पादन ६'४६ करोड़ टन का हुआ। १९६०-६१ मे यह १२,६७७ हजार हैक्टेअर और १९७२-७३ में १९,८८१ हजार हैक्टेअर भूमि में बोया गया। इन वर्षों में इसका उत्पादन क्रमशः १०'६ करोड़ और २४'६ करोड़ टन का हुआ।

उत्पादन एवं व्यापार गेहूँ का आन्तरिक व्यापार पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश से महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल को होता है जहाँ गेहूँ खाने वाली जनसंख्या अधिक है। विभाजन से पूर्व भारतवर्ष बहुत बड़ी मात्रा में गेहूँ निर्यात करता था लेकिन क्रमशः इसकी जनसंख्या में वृद्धि होने, विदेशों में गेहूँ पैदा करने वाले क्षेत्रों की वृद्धि होने तथा सन् १९४७ में विभाजन से पश्चिमी पंजाब का गेहूँ पैदा करने वाला देश पाकिस्तान में चले जाने से अब निर्यात बन्द हो गया है। माँग की पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष बहुत-सा गेहूँ विदेशों से मँगवाना पड़ता है। यह आयात मुख्यतः अर्जेन्टाइना, रूस, कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका और आस्ट्रेलिया से किया जाता है। १९६१ में ३० लाख टन गेहूँ और आटे का आयात किया गया। १९६७ में यह मात्रा ६४ लाख टन थी। १९७३ में १६ लाख टन गेहूँ और आटा आयात किया गया। १९६७-६८ और १९७२-७३ में आयात किये गये गेहूँ का मूल्य क्रमशः ३७८ करोड़ और ४८ करोड़ रुपया था।

मोटे अनाज या मिलेट्स
(MILLETS)

मोटे अनाज कई जातियों और श्रेणियों के होते हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार की भौतिक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। मुख्य मोटे अनाजों में ज्वार, बाजरा, रागी, कोरा या काँगनी, कोदों, कुटकी, चीना, सावक, आदि अनाज सम्मिलित किये जाते हैं। ये अनाज प्रायः भारत के सभी राज्यों में पैदा किये जाते हैं। इनका उपयोग और उत्पादन देश में प्रागैतिहासिक काल से होता रहा है। ये ऐसी परिस्थितियों में भी पैदा किये जाते हैं जिनमें अन्य अनाज पैदा नहीं होते। इनके पकने में साधारणतः ३ से ४ महीने लगते हैं और इनसे पौष्टिक पदार्थ भी कम मात्रा में ही मिलते हैं। ये अधिकांशतः सूखे भागों में सिंचाई के सहारे पैदा किये जाते हैं और सामान्यतः ग्रामीणों तथा दरिद्रों का मुख्य भोजन होता है।

ज्वार (*Jowar* or Pearl Millet)

तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र और पश्चिमी राजस्थान के किसानों का प्रधान खाद्यान्न है। यह गर्म और सूखे भागों में जहाँ कहीं साधारण वर्षा ६२ सेण्टीमीटर हो जाती है वहाँ बिना सिंचाई के पैदा की जा सकती है। यह कम वर्षा वाले भागों में पैदा की जाती है। इसके लिए उपजाऊ काँप या चिकनी मिट्टी की आवश्यकता होती है। यद्यपि यह लाल, पीली, हल्की और भारी दोमट तथा रेतीली

मिट्टी में समान रूप से होती है। इसके बढ़ने के लिए तापमान २५° से ३०° सेण्टीग्रेड तक चाहिए।

ज्वार की फसल भारत के अधिकांश राज्यों में खरीफ की फसल है। महाराष्ट्र में यह रबी और खरीफ दोनों ही फसलों में बोयी जाती है। बालों और मिश्रित काली मिट्टी वाले क्षेत्रों में, जहाँ वर्षा सामान्य और सुवितरित होती है, यह प्रमुख व्यावसायिक फसल है। यह मानसूनी वर्षा के बाद जुलाई के महीने में बो दी जाती है और नवम्बर के अन्त तक काट ली जाती है।

उत्पादक क्षेत्र

ज्वार के मुख्य उत्पादक राज्य आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक और राजस्थान हैं। ये सब मिलाकर ज्वार के अन्तर्गत लगभग ६६% क्षेत्र पर खेती करते हैं।

ज्वार के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र निम्न हैं :

महाराष्ट्र में पूना, शोलापुर, सतारा और खानदेश जिले।
गुजरात में बड़ौदा, भड़ौच और सुरेन्द्रनगर जिले।
आन्ध्र प्रदेश में हैदराबाद, महबूबनगर और निजामाबाद जिले।
कर्नाटक में बीजापुर, बेलगाँव और रायचूर जिले।
राजस्थान में कोटा, बूँदी और झालावाड़ जिले।

१९५०-५१ में १५,५७१ हजार हैक्टेअर में ज्वार बोयी गयी। इसका उत्पादन ५४·६ लाख टन का हुआ। १९६०-६१ में यह अंक क्रमशः १८,२४६ हजार हैक्टेअर और ८०·२ लाख टन थे। १९७२-७३ में १४,८११ हजार हैक्टेअर भूमि में ६४ लाख टन ज्वार पैदा हुई।

बाजरा (*Bajra* or Bullrush Millet)

बाजरा के लिए ज्वार से भी अधिक शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। यह ४० से ५० सेण्टीमीटर तक वर्षा वाली बलुही भूमि में अधिक उत्पन्न होता है। यह ५० से ७० सेण्टीमीटर वर्षा वाले भागों में भी बोया जाता है किन्तु ८० सेण्टीमीटर से अधिक वर्षा वाले भागों में इसकी खेती नहीं की जा सकती। अतः जहाँ सिंचाई के साधन भी प्राप्त न हों वहाँ भी बाजरा पैदा किया जाता है। कम उपजाऊ भूमि में बिना खाद डाले ही बाजरा पैदा किया जाता है। यदि यहाँ वर्षा हल्की फुहार के रूप में ही होती रहे तो निकृष्ट भूमि में भी बाजरा का उत्पादन हो सकता है। इसलिए बाजरा की कृषि भारत में ८०° देशान्तर के पश्चिम में स्थित अनुपजाऊ भूमि में अधिक होती है। यह सामान्यतः अन्य खाद्यान्नों के साथ मिलाकर बोया जाता है। यह मई से सितम्बर तक बोया जाता है और सितम्बर से फरवरी तक काट लिया जाता है। इसके लिए औसत तापमान १५° से ३२° सेण्टीग्रेड उपयुक्त रहते हैं।

इसके मुख्य उत्पादक राज्य आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और राजस्थान हैं। इनमें बाजरा के अन्तर्गत ८९% क्षेत्र पाया जाता है।

१९५०-५१ में ९,०२३ हजार हैक्टेअर भूमि में बाजरा बोया गया। १९६०-६१ और १९७२-७३ में इसका क्षेत्रफल क्रमशः ११,४६९ और ११,७१६ हजार हैक्टेअर था। इन वर्षों में इसका उत्पादन क्रमशः २५'९; ३२'८ और ३७'९ लाख टन का हुआ।

बाजरा गरीब देहातियों का मुख्य खाद्यान्न है। अतः अधिकांश उत्पादन उपभोग में आ जाता है। केवल २५% का निर्यात सूडान, अरब, नीदरलैण्ड्स, पूर्वी अफ्रीका, जर्मनी और अदन को किया जाता है। यह निर्यात बम्बई और कांदला से होता है।

रागी (*Ragi* or Finger Millet)

रागी सब अनाजों में सबसे अधिक सूखा सहन करने वाला अनाज है जो शुष्क खेती की प्रणाली द्वारा पैदा किया जाता है। यह बहुत ही कम वर्षा वाले भागों में पैदा किया जाता है। इसके दाने में पौष्टिक तत्त्व अधिक होने से शारीरिक कार्य करने वालों का यह मुख्य खाद्यान्न है। सिंचाई के सहारे भी इसका उत्पादन किया जा सकता है।

रागी खरीफ की फसल है। यह मई से अगस्त तक बोयी जाती है और सितम्बर से फरवरी तक काट ली जाती है।

इसके मुख्य उत्पादक आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु राज्य हैं, जहाँ कुल उत्पादन क्षेत्र का लगभग ६६ प्रतिशत पाया जाता है। शेष बिहार, महाराष्ट्र, *उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में पाया जाता है।*

रागी के अन्तर्गत १९५०-५१, १९६०-६१ और १९७२-७३ में २२ लाख हैक्टेअर, २५ लाख हैक्टेअर और २३ लाख हैक्टेअर भूमि थी। इन वर्षों में रागी का उत्पादन क्रमशः १४'२, १८'३ और १६'१ लाख टन का हुआ।

जौ (Barley)

जौ भारत का महत्वपूर्ण खाद्यान्न है। इसका उपयोग अधिकतर खाने के लिए किया जाता है। गेहूँ की अपेक्षा इसे कम देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। अतः यह सभी भागों में बो दिया जाता है।

भौगोलिक दशाएँ—जौ का पौधा प्रायः शुष्क और बालूमिश्रित काँप मिट्टी में उगता है। इसके उत्पादन के लिए गेहूँ की भाँति *उपजाऊ दोमट या मटियार मिट्टी की* आवश्यकता नहीं पड़ती। गेहूँ की अपेक्षा जौ अधिक शीत एवं नमी सहन कर सकता है। इसीलिए *जौ की कृषि उत्तरी म बहुत तक सम्भव है।* जौ का पौधा शुष्क जलवायु में भी पूर्णरूप से विकसित हो सकता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं पंजाब की शुष्क एवं *सिंचाई के साधनों से रहित भूमि में भी जौ की कृषि सफलतापूर्वक की जाती है।* जौ के पौधे को कम तापमान (१५° से १९° सेण्टीग्रेड) की आवश्यकता होती है।

अन्यथा न तो इसका बीज अच्छी तरह से उग सकता है और न अच्छी तरह से पक ही सकता है। साधारणतया जो को उत्तर प्रदेश में गेहूँ के बाद बोया और गेहूँ के पहले ही काटा जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जौ का पोधा अक्टूबर या नवम्बर की जाड़े वाली रातों में अच्छी तरह उगता और विकसित होता है किन्तु यह मार्च के महीने का सहसा ऊँचा उठता हुआ तापमान और शुष्क पछुआ पवन के झोकों को सहन नहीं कर सकता। अधिक गर्मी पाने से जौ का दाना सूख कर पतला पड़ जाता है और आटे की अपेक्षा भूसी का अनुपात बढ़ जाता है।

भारत में जौ रबी की फसल है। यह अक्टूबर-नवम्बर में बोया जाता है और मार्च के अन्त में काट लिया जाता है।

उत्पादक क्षेत्र—भारत में जौ का उत्पादन दो क्षेत्रों में होता है। पहला क्षेत्र इलाहाबाद के पूर्व से लेकर पश्चिमी बंगाल तक और दूसरा क्षेत्र इलाहाबाद के पश्चिम से पंजाब तक विस्तृत है। जौ का सबसे अधिक उत्पादन उत्तर प्रदेश में है, जहाँ कुल जौ के क्षेत्रफल का ६०% पाया जाता है। यहाँ मुख्य उत्पादक जिले वाराणसी, आजमगढ़, जौनपुर, बलिया, गाजीपुर, गढ़वाल, गोरखपुर, इलाहाबाद और प्रतापगढ़ हैं। बिहार भारत के ५% क्षेत्र में जौ पैदा करता है। यहाँ चम्पारन, सारन और मुजफ्फरपुर मुख्य उत्पादक जिले हैं। पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में भी थोड़ा जौ पैदा किया जाता है।

१९५०-५१ में जौ के अन्तर्गत ३१ लाख हैक्टयर भूमि थी। १९६०-६१ और १९७२-७३ में यह क्षेत्रफल क्रमशः ३२ लाख और २४ लाख हैक्टेअर था। इन वर्षों में उत्पादन की मात्रा क्रमशः २३'७; २८'१ और २३'३ लाख टन की थी।

भारत में उत्पादित जौ का उपयोग देश में ही हो जाने के कारण इसका निर्यात बिल्कुल नहीं होता।

मकई (Maize or American corn)

मकई भारत के शुष्क भागों का मुख्य खाद्यान्न है। इसे कई फसलों के साथ मिलाकर बोया जाता है। विश्व की केवल १'४ प्रतिशत मकई भारत में पैदा की जाती है।

भौगोलिक दशाएँ—मकई के लिए गर्म रात और गर्म दिन की आवश्यकता होती है। अतः मकई गर्म अयनवृत्तीय क्षेत्रों में या लम्बी गर्मी की ऋतु होने वाले प्रदेशों में अच्छी नहीं होती। साधारणतया मकई के लिए ४ से ६ महीने लम्बी गर्मी का मौसम (जिसमें पाला या सर्दी न हो और दिन व रात में समान रूप से गर्मी रहे) होना आवश्यक है। इसके साथ ही साथ खुला हुआ आकाश और अच्छी वर्षा यदि कुछ समय के बाद होती रहे (जिसमें पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक नमी तो पहुँचती रहे किन्तु मिट्टी अधिक गीली न हो) तो ऐसी जलवायु मकई के लिए आदर्श होती है।

इसके लिए २५° से ३०° सेण्टीग्रेड तापमान उपयुक्त होता है किन्तु १२° से २५° सेण्टीग्रेड तापमान वाले क्षेत्र में भी यह पैदा होती है, जहाँ ३ महीने २५° सेण्टी-

ग्रेड से अधिक तापमान रहता है। १२° से कम तथा ३५° सेण्टीग्रेड से अधिक तापमान में यह भली-भाँति नहीं उगती।

यह ५० से १०० सेण्टीमीटर वर्षा वाले भागों में अच्छी पैदा की जाती है। ५० सेण्टीमीटर की वर्षा रेखा इसकी पश्चिमी सीमा और ८० सेण्टीमीटर की वर्षा रेखा पूर्वी सीमा निर्धारित करती है। अधिक वर्षा इसके लिए हानिकारक है। इसके लिए नैत्रजनयुक्त गहरी दोमट मिट्टी और ढालू भूमि अच्छी रहती है जिससे जल का प्रवाह उचित रूप से हो सके।

यह मई से जुलाई तक बोयी जाती है और अगस्त से नवम्बर तक काट ली जाती है।

उत्पादक क्षेत्र—मकई उत्पादक मुख्य राज्य आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश हैं। यहाँ मकई के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का ६५ प्रतिशत पाया जाता है। शेष मकई उड़ीसा और बंगाल में पैदा होती है।

भारत में मकई का प्रयोग विशेषतः खाने में किया जाता है। इससे शरबत, स्टार्च और ग्लूकोज भी बनाया जाने लगा है। इसका निर्यात व्यापार बहुत ही थोड़ा है।

भारत में अब कई वर्णसंकर किस्मों की मकई बोयी जाने लगी हैं जिनका प्रति हैक्टेअर उत्पादन ४५ से ७० क्विंटल होता है। गंगा १०१, गंगा ३, गंगा सफेद २, रणजीत, दक्खन, हिमालय १२३, हि-स्टार्च, जवाहर, सोना, विक्रम, विजय, अम्बर, आदि किस्में प्रमुख हैं।

मकई के अन्तर्गत १९५०-५१, १९६०-६१ और १९७२-७३ में क्षेत्रफल क्रमशः ३१·५, ४४·० और ५७·३ लाख हैक्टेअर था। इन वर्षों में इसका उत्पादन इस प्रकार रहा : १७·२, ४०·८ और ६२·१ लाख टन।

दालें
(PULSES)

दालों के अन्तर्गत चना, अरहर, मूँग, मोठ, चावल, उर्द, मटर, मसूर, लोबिया, आदि का विशेष महत्त्व है। इनकी खेती रबी तथा खरीफ दोनों ही फसलों में की जाती है। अरहर, चना, मटर, मसूर, गेहूँ, जौ, आदि रबी की फसल के साथ मार्च-अप्रेल में तैयार हो जाते हैं और मूँग, उर्द, चावल, मोठ, आदि की फसल खरीफ की फसल है जो जुलाई में बोयी जाकर शीतकाल में काटी जाती है।

चना (Bengal gram or Chicken pea)

चने के लिए हल्की बलुही मिट्टी और ऊँचे तापमान की आवश्यकता होती है। चने की पैदावार हल्की ऊँची और भली-भाँति सूखी हुई भूमि में अच्छी होती है। पाला पड़ जाने से इसका फूल नष्ट हो जाता है जिससे

इसका दाना सूख जाता है। चना बोते समय मिट्टी में नमी होना आवश्यक है लेकिन बाद की वर्षा की कमी इसे हानि नहीं पहुँचाती है। जहाँ जल की कमी के कारण गेहूँ या जौ पैदा नहीं हो सकता वहाँ चना उत्पन्न किया जा सकता है। चना जाड़े की उपज है। फसल पकने में ४ से ६ महीने लग जाते हैं। उत्तरी भारत में नवम्बर से अप्रैल तक तथा मध्य और दक्षिणी भारत में नवम्बर से फरवरी तक फसल पक जाती है।

भारतवर्ष में चने की खेती गंगा तथा सतलज नदियों की ऊपरी घाटी और उससे लगे हुए मध्य प्रदेश तक ही सीमित है। समस्त चने के क्षेत्रफल का ६० प्रतिशत गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार और पंजाब में पाया जाता है। चने का सबसे घना क्षेत्र उत्तर प्रदेश (आगरा और मिर्जापुर के बीच में), पंजाब, हरियाणा, मध्यवर्ती बिहार, दक्षिणी कर्नाटक और उत्तरी-पूर्वी मध्य प्रदेश हैं।

अरहर (Tur or Pigeon pea)

इसका उत्पादन देश के सभी भागों में होता है किन्तु इसका उपभोग गुजरात और दक्षिणी भारत में अधिक होता है। यह ज्वार, बाजरा, रागी, आदि अन्य अनाजों के साथ बोयी जाती है। यह मई से जुलाई तक बोयी जाती है तथा ६ से ८ महीने में पककर तैयार हो जाती है अर्थात दिसम्बर से मार्च तक।

उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, बिहार, आन्ध्र, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश अरहर के मुख्य उत्पादक राज्य हैं। इन राज्यों में अरहर के अन्तर्गत ६५% क्षेत्रफल पाया जाता है।

अन्य प्रकार की दालों का उत्पादन देश भर में होता है। आन्ध्र, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश और राजस्थान मुख्य उत्पादक राज्य हैं।

सभी प्रकार की दालों का उत्पादन १९५०-५१ में ८४ लाख टन; १९६०-६१ में ८२ लाख टन और १९७२-७३ में ९५ लाख टन का हुआ।

२. व्यावसायिक और मुद्रादायिनी फसलें
(COMMERCIAL AND CASH CROPS)

भारत में अनेक प्रकार की व्यावसायिक फसलें पैदा की जाती हैं जिससे कृषक को मुद्रा की प्राप्ति होती है। इस प्रकार की प्रमुख फसलें निम्न हैं :

गन्ना (Sugarcane—*Saccharum officinarum*)

भारत गन्ने का जन्मस्थान माना जाता है जहाँ आज भी विश्व के गन्ने के क्षेत्र का लगभग ३७% क्षेत्र पाया जाता है, किन्तु वैज्ञानिक ढंग से क्यूबा भारत की अपेक्षा अधिक गन्ना पैदा करता है, अतः उत्पादन की दृष्टि से भारत का स्थान द्वितीय है।

भौगोलिक दशाएँ— गन्ना मुख्यतः अयनवृत्तीय पौधा है किन्तु इसकी खेती अर्द्ध-उष्णकटिबन्धों में भी की जाती है। भारत में इसकी खेती ८° उत्तरी अक्षांश से

३२° उत्तरी अक्षांश तक की जाती है। इसके लिए निम्न दशाओं की आवश्यकता होती है :

(१) गन्ने की फसल को तैयार होने में लगभग १ वर्ष लग जाता है। अंकुर निकलने के समय २०° सेण्टीग्रेड तापमान लाभदायक रहता है किन्तु बढ़ने के लिए २०° से २१° सेण्टीग्रेड की आवश्यकता पड़ती है। ३०° से अधिक और १८° सेण्टीग्रेड से नीचे के तापमान में यह पैदा नहीं होता है। अत्यधिक शीत और पाला फसल के लिए हानिकारक होता है। साधारणतः इसके लिए लम्बी और तापयुक्त गर्मियाँ अधिक लाभदायक रहती हैं।

(२) यह १०० से २०० सेण्टीमीटर वर्षा वाले भागों में भली प्रकार पैदा किया जा सकता है। कई क्षेत्रों में तो १५० से २५० सेण्टीमीटर की वर्षा वाले भागों में भी यह पैदा होता है। यदि वर्षा की मात्रा कम होती है तो पौधे को सिंचाई के सहारे पैदा किया जाता है। गर्मी के पौधे को कम से कम चार बार सींचने और गोड़ने से एक-एक पौधे में कई अंकुर निकल आते हैं और वह भूमि में भली प्रकार जम जाता है।

(३) गन्ने के लिए उपजाऊ दोमट मिट्टी अथवा नमी से पूर्ण भूमि (विशेषतः गहरी और चिकनी दोमट मिट्टी) उपयुक्त होती है। दक्षिण की लावायुक्त भूमि में भी गन्ना पैदा किया जाता है। गन्ने के पौधे को पर्याप्त खाद की आवश्यकता होती है। अतः साधारणतः गन्ना तीनवर्षीय हेर-फेर के साथ बोया जाता है। गोबर, कम्पोस्ट अथवा अन्य प्रकार की प्राणिज खादों और सनई, ढैंचा, आदि हरी खाद, अमोनियम सल्फेट और सुपरफॉस्फेट, आदि का भी खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(४) गन्ने को रोपने, निराई-गुड़ाई करने और काटकर बण्डल बनाने तथा समय-समय पर सिंचाई करने के लिए पर्याप्त मात्रा में सस्ते श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है।

(५) गन्ना सामुद्रिक वायु के सम्पर्क से बहुत अच्छे और अधिक रस वाला बनता है। इस प्रकार की अनुकूल अवस्थाएँ भारत के तटीय क्षेत्रों में पायी जाती हैं। यहाँ इसका प्रति हेक्टेयर उत्पादन भी उत्तरी भारत की अपेक्षा अधिक होता है।

यह साधारणतः मध्य जनवरी से मध्य अप्रैल तक लगाया जाता है तथा आगामी फरवरी-मार्च में काट लिया जाता है। गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक में अडसाली फसल जून से जुलाई तक बोयी जाती है और नयी पौध जनवरी में बोयी जाती है। तमिलनाडु में पौध लगाने का समय मार्च से सितम्बर तक होता है। एक बार का बोया पौधा तीन वर्षों तक अच्छी फसल देता है। उपजाऊ भूमि, अच्छी सिंचाई और तेज गर्मी मिलने पर गन्ने का पौधा काफी ऊँचा बढ़ जाता है। कभी-कभी तो यह ७½ मीटर तक ऊँचा हो जाता है।

भारत में जलवायु सम्बन्धी विभिन्नताओं के कारण उत्तरी भारत में पतला और दक्षिणी भारत में मोटा गन्ना उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त ज्यों-ज्यों बंगाल

से पंजाब की ओर बढ़ते हैं त्यों-त्यों गन्ने में रेशे का अश बढ़ता जाता है और मिठास की मात्रा कम होती जाती है। भारत में रस की मात्रा तथा गन्ने का प्रति हैक्टेअर उत्पादन अन्य देशों की तुलना में बहुत कम होता है।

उत्पादक क्षेत्र—यद्यपि गन्ने की खेती के लिए उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत भौगोलिक सुविधाओं की दृष्टि से अधिक अनुकूल है तथापि अधिक गन्ना उत्तरी भारत में ही पैदा किया जाता है। अकेला उत्तर प्रदेश देश की उपज का ५०%; पंजाब तथा हरियाणा १५% तथा बिहार १२% पैदा करता है।
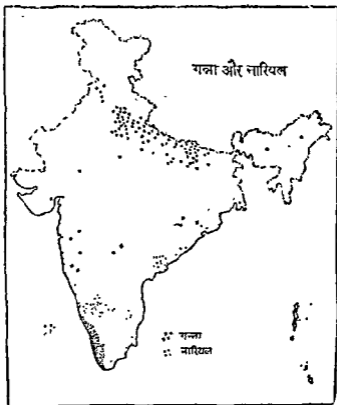
चित्र—६३

गंगा की मध्यवर्ती घाटी में ही गन्ना अधिक पैदा किया जाता है। इसके कई कारण हैं : (१) यहाँ प्रतिवर्ष बाढ़ के समय खेतों में कछारी मिट्टी-फैल जाती है।

(२) जल कम गहराई पर मिल जाता है जिससे सिंचाई आसानी से हो जाती है। वर्षा भी १०० सेण्टीमीटर तक हो जाती है। (३) समतल मैदान होने के कारण खेती सरलतापूर्वक की जा सकती है। (४) पाले का अभाव रहता है। (५) तापमान लगभग २७° सेण्टीग्रेड तक रहता है। (६) घनी जनसंख्या होने के कारण मजदूर सस्ते और आसानी से मिल जाते हैं।

उत्तर प्रदेश का उत्पादन की दृष्टि से भारत में सर्वप्रथम स्थान है। भारतीय क्षेत्र का लगभग आधा भाग केवल उत्तर प्रदेश में स्थित है। यहाँ गन्ने के दो प्रमुख क्षेत्र हैं। पहला क्षेत्र तराई प्रदेश से सम्बद्ध है और रामपुर से प्रारम्भ होकर बरेली, पीलीभीत, सीतापुर, खीरी लखीमपुर, गोंडा, फैजाबाद, आजमगढ़, जौनपुर, बस्ती, बलिया, देवरिया और गोरखपुर होता हुआ बिहार के सारन तथा चम्पारन तक फैला है। इस क्षेत्र का केन्द्र गोरखपुर-देवरिया कहा जा सकता है जहाँ कई चीनी की मिलें हैं।

दूसरा क्षेत्र गंगा-यमुना नदियों के दोआब में स्थित है। यह मेरठ से इलाहाबाद तक विस्तृत है। इस क्षेत्र का केन्द्र मेरठ में है। मेरठ का गन्ना उत्तम कोटि का, ऊँचा, मोटा तथा रस वाला होता है।

आन्ध्र प्रदेश में गन्ने की कृषि गोदावरी तथा कृष्णा के डेल्टों में होती है क्योंकि इस प्रदेश में उपर्युक्त नदियों के डेल्टों में नहरों द्वारा सिंचाई करने की सुविधा प्राप्त है। यहाँ की भूमि बड़ी उर्वर है। पूर्वी और पश्चिमी गोदावरी, विशाखापट्टनम, श्रीकाकुलम और निजामाबाद प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

तमिलनाडु में कोयम्बटूर, रामनाथपुरम तिरुचिरापल्ली, उत्तरी और दक्षिणी अर्काट एवं मदुराई जिलों में गन्ने की कृषि विशेष रूप से होती है। कोयम्बटूर में गन्ने की अनुसन्धानशाला भी है जिससे गन्ने की कृषि के उन्नत उपायों और नयी किस्मों के अनुसन्धान में सहायता मिलती है।

महाराष्ट्र में गन्ने का क्षेत्र नासिक के दक्षिण में गोदावरी की ऊपरी घाटी में स्थित है। अहमदनगर, नासिक, पूना और शोलापुर प्रमुख उत्पादक जिले हैं। यहाँ गन्ने की सिंचाई के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनायी गयी हैं। तापमान वर्ष भर सम रहता है जिससे गन्ने से रस अधिक निकाला जाता है और वर्ष भर ही मिलों को गन्ना मिलता रहता है। इन्हीं सब कारणों से अहमदनगर के निकट गन्ना पेरने की बड़ी-बड़ी मिलें स्थापित हो गयी हैं।

कर्नाटक में गन्ना का उत्पादन तुंगभद्रा, कावेरी और कृष्णाराजासागर बाँध से निकाली गई नहरों के सहारे शिमोगा, बेलारी और पश्चिमी बेलगाँव जिलों में किया जाता है।

पंजाब और हरियाणा भी महत्त्वपूर्ण गन्ना उत्पादक राज्य हैं जहाँ सिंचाई की सहायता से गन्ना उत्पन्न किया जाता है। यहाँ के प्रमुख गन्ना उत्पादक जिले गुड़गाँव, हिसार, रोहतक, जालन्धर, फिरोजपुर, गुरुदासपुर एवं अमृतसर हैं। यहाँ १५ प्रतिशत भारतीय गन्ने का उत्पादन होता है।

पश्चिमी बंगाल में अतिवृष्टि जूट की अपेक्षा गन्ना के लिए कम उपयोगी है फिर भी दामोदर, भागली और पद्मा नदियों की घाटी मे यह पैदा किया जाता है। बर्दवान, बीरभूम, हुगली, मुर्शिदाबाद, चौबीस परगना और नादिया जिलों की .१ प्रतिशत से १ प्रतिशत कृषि योग्य भूमि पर गन्ने की खेती की जाती है।

बिहार में गन्ना उत्पादक क्षेत्र उत्तर प्रदेश की तराई वाले क्षेत्र से सम्बद्ध है। प्रधान गन्ना उत्पादक जिले चम्पारन, सारन, शाहाबाद, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया और भागलपुर हैं जहाँ कृषि योग्य भूमि के ५ प्रतिशत से लेकर १० प्रतिशत क्षेत्र मे केवल गन्ने की खेती होती है।

भारत मे गन्ने की खेती की प्रमुख समस्याएँ निम्न हैं :

(i) गन्ने की आदर्श दशाएँ दक्षिणी भारत मे मिलती हैं, किन्तु इसकी खेती अधिकतर उत्तरी भारत मे की जाती है, जहाँ शुष्क ऋतु अधिक लम्बी होने के कारण गन्ना अधिक समय तक खेत मे नहीं रह पाता। अतः यह पतला और कम रस वाला होता है।

(ii) गन्ने का प्रति हैक्टेअर उत्पादन बहुत ही कम है। प्रति हैक्टेअर पीछे भारत में उत्पादन ४,८३० किलोग्राम है। पीरू मे यह उत्पादन १६,००० किलोग्राम इथोपिया १४-४६० किलोग्राम, रोडेशिया १२,००० किलोग्राम है (१९७०) इसका कारण खेतों का छोटा और बिखरा हुआ होना, यन्त्रीकरण का अभाव, उत्तम खाद और बीज की कमी तथा सिंचाई की सुविधाओं का समय पर न मिलना है।

कोयम्बटूर के अनुसन्धान केन्द्र में प्रसारित अब गन्ने की कई नयी किस्में बोयी जाने लगी हैं CO 410, CO 419, CO 431, CO 213, CO 312, CO 290, CO 205, आदि। अतएव प्रति हैक्टेअर इसका उत्पादन बढ़ा है।

उत्पादन और व्यापार—१९५०-५१, १९६०-६१ और १९७२-७३ में गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्रफल क्रमशः १७·० लाख, २४·१ लाख और २४·८ लाख हैक्टेअर था। इन वर्षों मे इसका उत्पादन ५७·० लाख टन, ११० लाख टन और १२६ लाख टन हुआ। १९७३-७४ मे यह मात्रा १५० लाख टन (अर्थात् २५% अधिक) हो जाने का अनुमान है।

भारत मे जितना गन्ना पैदा होता है उसका ५१% गुड़ बनाने में, ३०% सफेद चीनी बनाने में और शेष चूसने तथा बीज के रूप मे काम मे लाया जाता है।

तिलहन
(OILSEEDS)

तिलहन के उत्पादन मे भारत का स्थान विश्व में प्रमुख है। यहाँ विश्व की ⅓ मूंगफली, ¼ तिल, ⅕ रेंडी और ⅙ सरसों उत्पन्न की जाती है। तिलहन के अन्तर्गत दो प्रकार के बीज सम्मिलित किये जाते हैं। एक वे जिनका दाना छोटा है जैसे, अलसी, सरसों, राई और तिल। दूसरे वे जिनका दाना बड़ा होता है जैसे, मूंगफली, रेंडी, बिनौला, महुआ, नारियल, आदि। छोटे दाने वाले तिलहन अधिकांशतः उत्तरी भारत मे और बड़े दाने वाले दक्षिणी भारत में होते हैं।

सभी प्रकार के तिलहनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी, वर्षा एवं ताप की आवश्यकता होती है। अतः ये भारत के सभी राज्यों में न्यूनाधिक मात्रा में पैदा किये जाते हैं। १९५०-५१, १९६०-६१ और १९७२-७३ में सभी प्रकार के तिलहनों का उत्पादन क्रमशः ६१.७ लाख टन, ८९.४ लाख टन और ६७.१ लाख टन हुआ था। १९७३-७४ तक यह १०५.० लाख टन (अर्थात् २४% अधिक) हो जाने का अनुमान है।

चित्र—९.४
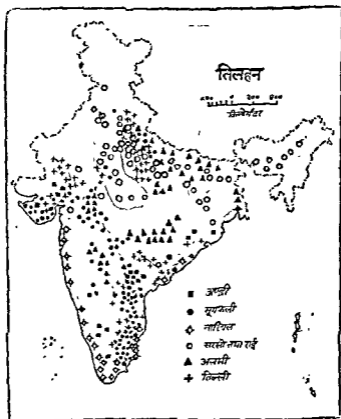
मूंगफली (Peanut or Groundnut)

मूंगफली के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में सर्वप्रथम है। विश्व के उत्पादन का लगभग ३२% भारत से ही प्राप्त होता है।

भौगोलिक दशाएँ—यद्यपि यह उष्ण कटिबन्धीय पौधा है किन्तु यदि गर्मियाँ अच्छी रहें तो इसकी खेती अर्द्ध-उष्णकटिबन्धीय भागों में भी की जा सकती है। साधारणतः इसे ७५ से १,० सेण्टीमीटर तक वर्षा पर्याप्त होती है। इससे कम वर्षा होने पर सिंचाई का सहारा लिया जाता है। यह अधिक वर्षा वाले भागों में भी पैदा की जा सकती है।

मूँगफली का पौधा इतना मुलायम होता है कि अधिक शीतल प्रदेशों में इसका
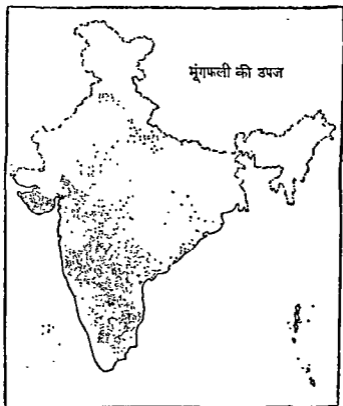
चित्र—६'५

उगना असम्भव है। साधारणतया इसे १५° से २५° सेण्टीग्रेड तक तापमान की आवश्यकता होती है। पाला फसल के लिए हानिकारक है।

यह हल्की मिट्टी में, जिसमें खाद पड़ी हो और जीवांश मिले हों, अच्छी पैदा होती है। भारत में इसकी फसल महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात और तमिलनाडु राज्यों के काली मिट्टी और दक्षिण के पठार के लाल मिट्टी के क्षेत्र में भी होती है। गंगा की कछारी बालू मिट्टी में भी यह बोयी जाती है। हल्की बलुई मिट्टी में कठोर चिकनी मिट्टी की अपेक्षा अधिक फलियाँ लगती हैं।

मूँगफली प्रायः खरीफ की फसल है जो मई से लेकर अगस्त तक बोयी तथा नवम्बर से जनवरी तक खोदी जाती है।

यह साधारणतः शुष्क भूमि की फसल है। इसके पकने में ६ महीने तक लगते हैं। यद्यपि अब ऐसी किस्म भी पैदा की जाने लगी है जो ६० से १०० दिनों में ही पक जाती है। इसे ज्वार, बाजरा, रेंडी, अरहर अथवा कपास के साथ मिलाकर बोया जाता है।

उत्पादक क्षेत्र—भारत में मूँगफली के मुख्य उत्पादक आन्ध्र, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्य हैं जिनमें कुल क्षेत्रफल का ९० प्रतिशत पाया जाता है।

महाराष्ट्र में इसका उत्पादन बरसी, शोलापुर, कोल्हापुर, खानदेश और गुलबर्गा जिलों में किया जाता है। यहाँ बम्बई बोल्ड किस्म की मूँगफली होती है।

गुजरात में बराड़ और सौराष्ट्र में लाल नंटाल और बम्बई बोल्ड मूँगफली पैदा की जाती है।

आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में कोरोमण्डल तट पर उत्तरी सरकार तथा दक्षिणी अर्काट जिलों में कोरोमण्डल या मारीशस किस्म बोयी जाती है।

अन्य उत्पादक मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश हैं।

१९५०-५१, १९६०-६१ और १९७२-७३ में मूँगफली के अन्तर्गत ४४६ लाख, ६४६ लाख और ६८·७ लाख हैक्टेअर भूमि थी। इन वर्षों में इसका उत्पादन क्रमशः ३४·८ लाख टन, ४८·१ लाख टन और ३९·२ लाख टन रहा।

कुल उत्पादन का १०% भूनकर खाने में और ४०% तेल बनाने में उपयुक्त होता है। शेष का निर्यात किया जाता है।

भारत से मूँगफली का निर्यात मुख्यतः कनाडा, बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, इटली और इंगलैण्ड को किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों से मूँगफली के तेल का भी निर्यात किया जाने लगा है। बम्बई, मद्रास और सौराष्ट्र के बन्दरगाहों द्वारा मूँगफली निर्यात की जाती है।

अलसी (Linseed)

अलसी दो कार्यों के लिए पैदा की जाती है। भारत में इसका उत्पादन विशेषतः बीजों के लिए किया जाता है जिससे तेल प्राप्त होता है, जबकि शीतोष्ण देशों में अलसी के पौधे से रेशे प्राप्त किये जाते हैं जिससे लिनेन वस्त्र बुना जाता है। तेल का उपयोग रंग-रोगन बनाने में किया जाता है।

अलसी या तीसी उत्पन्न करने वाले देशों मे भारत का स्थान चौथा है। यहाँ से कुल उत्पादन का १२% प्राप्त होता है।

भौगोलिक दशाएँ—अलसी के लिए ठण्डी जलवायु की आवश्यकता होती है। अतः जिन स्थानों में गेहूँ की पैदावार हो सकती है वहाँ अलसी भी आसानी से हो सकती है। इसके लिए औसत तापमान १५° से २५° सेण्टीग्रेड ठीक रहता है। अलसी सभी प्रकार की मिट्टी में हो सकती है यदि वहाँ काफी नमी हो। इसके लिए ७५ से १५० सेण्टीमीटर तक की वर्षा पर्याप्त होती है।

भारत मे प्रायद्वीपीय एवं मैदानी दो प्रकार की अलसी उत्पन्न की जाती है। प्रथम प्रकार की बड़ी अलसी को गहरी काली मिट्टी की आवश्यकता होती है जो कुछ समय तक नमी संचित रख सके। दूसरे प्रकार की छोटी अलसी कछारी मिट्टी में पैदा की जाती है।

इसकी खेती पजाब से लगाकर बंगाल तक भिन्न-भिन्न जलवायु मे होती है। भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी एवं जलवायु मे उत्पन्न होने वाली अलसी की बुवाई और कटाई भी भिन्न-भिन्न समय मे होती है। प्रायः वर्षा के समाप्त होते ही अक्टूबर से दिसम्बर तक अलसी बोयी जाने लगती है और फरवरी से अप्रैल तक काटी जाती है। अलसी की कृषि रबी की फसल के साथ-साथ होती है अतः अन्य फसलों के साथ-साथ यह भी सींची जाती है अथवा बिना सींचे भी उत्पन्न की जा सकती है। भारत में दो प्रकार की अलसी बोयी जाती है—बड़े दाने की बादामी रंग की और छोटे दाने की पीले रंग की।

उत्पादक क्षेत्र—अलसी के मुख्य उत्पादक राज्य मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरात हैं। कुल क्षेत्रफल का लगभग ६०% इन राज्यों मे है। कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश मे भी यह पैदा की जा सकती है। उत्तर प्रदेश में गोरखपुर, वाराणसी और झाँसी जिलों मे तथा पंजाब में काँगड़ा, गुरुदासपुर और होशियारपुर जिलों में यह विशेष रूप से पैदा होती है।

१९५०-५१ मे ३६७ हजार टन अलसी पैदा हुई थी। १९७२-७३ में यह मात्रा ४१६ हजार टन थी।

कुल उत्पादन का ४०% तेल निकालने मे व्यवहृत होता है। तेल का २/३ औद्योगिक कार्यों मे और १/३ कारखाने में प्रयुक्त किया जाता है।

अलसी का निर्यात पहले इंगलैंण्ड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, हालैण्ड, इटली, आदि देशों को किया जाता था किन्तु अब तेल पेरने वाली मशीनों के प्रचार से तेल अधिक और अलसी कम मात्रा में भेजी जाती है।

तिल (Sesamum)

तिल के उत्पादन मे विश्व में भारत का स्थान दूसरा है। तिल की पैदावार *भारत मे उण्डे भागों में खरीफ की फसल और गर्म भागों मे रबी की फसल की भाँति की*

जाती है। पहले भागों में यह मई से अगस्त तक बोया जाता है और अगस्त से दिसम्बर तक काटा जाता है। दूसरे भागों में अक्टूबर से जनवरी तक बोया जाता है और मई से जुलाई तक काट लिया जाता है।

इसकी खेती अनेक प्रकार की जलवायु में की जाती है। इसके लिए २०° से २१° सेण्टीग्रेड या इससे कुछ अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। ५० से १०० सेण्टीमीटर तक की वर्षा इसके लिए पर्याप्त होती है।
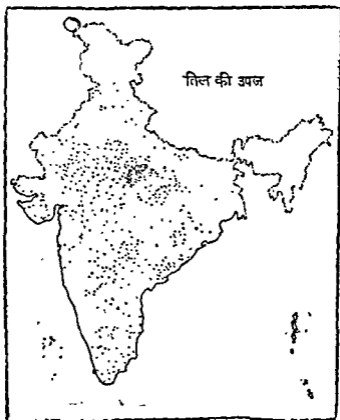
चित्र—६'६

तिल के लिए हल्की बलुही मिट्टी की आवश्यकता होती है जिसमें जल रुके नहीं। जब खेत में जल रुक जाता है तो पौधा नष्ट जाता है। इसकी खेती निकृष्ट एवं अनुपजाऊ ऊबड़-खाबड़ भूमि में भी की जाती है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और तमिलनाडु इसके मुख्य उत्पादक हैं। इन राज्यों में तिल के अन्तर्गत ६०% क्षेत्र पाया जाता है।

१९५०-५१ और १९७२-७३ में तिल का उत्पादन क्रमशः ३५५ हजार टन और ४५६ हजार टन था।

पिछले कुछ वर्षों से तिल का निर्यात व्यापार नगण्य-सा ही है। तिल का तेल ही अधिक निर्यात किया जाता है। इसके मुख्य खरीददार इंगलैण्ड, मारीशश, अरब, श्रीलंका, फ्रांस, बेल्जियम, मिस्र, जर्मनी और इटली हैं।

सरसों और राई (Mustard and *Rye*)

सरसों और राई गेहूँ, जौ, आदि फसलों के साथ मिलाकर बो दिये जाते हैं। अतः इनके लिए भी वैसी ही जलवायु और मिट्टी की आवश्यकता होती है जैसी गेहूँ या जौ के लिए। औसत तापमान २०° से २५° सेण्टीग्रेड और वर्षा ७५ से १५० सेण्टीमीटर लाभदायक होती है किन्तु जल की अधिकता पौधों को नष्ट कर देती है। उपजाऊ दोमट मिट्टी इसके लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। यह अगस्त से अक्टूबर तक बोयी जाती है और जनवरी से अप्रैल तक काट ली जाती है। यह अधिकतर गेहूँ, चना तथा मटर के साथ बोयी जाती है।

भारत में ये दोनों ही उत्तरी भारत में अधिक पैदा किये जाते हैं। इनके मुख्य उत्पादक उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, और पंजाब हैं। विश्व के कुल उत्पादन का ८०% भारत से ही प्राप्त होता है। उत्तर प्रदेश में यह गोंडा, बहराइच, मिर्जापुर, कानपुर, सीतापुर, सुल्तानपुर, मथुरा, अलीगढ़ और बुलन्दशहर जिलों में पैदा की जाती है। पंजाब में फिरोजपुर, गुरुदासपुर और होशियारपुर जिलों में तथा हरियाणा में गुड़गाँव, हिसार, रोहतक और करनाल जिलों में पैदा की जाती है।

१९५०-५१ और १९७२-७३ में इसका उत्पादन क्रमशः ७६२ हजार टन और १,८५३ हजार टन था।

भारत की उपज का अधिकांश भाग बेल्जियम, इटली, फ्रांस और इंगलैण्ड को निर्यात किया जाता है। देश में इसका उपयोग तेल बनाने में तथा इसकी खली पशुओं को खिलाने के काम में लायी जाती है।

रेंडी (Castor seed)

रेंडी के विश्व उत्पादन का २७% भारत से प्राप्त होता है। रेंडी की कृषि मैदानों तथा पठारों पर समान रूप से होती है। रेंडी का पौधा ६ से ७ मीटर तक ऊँचा उगता है और नमं स्थानों की अपेक्षा गर्म स्थानों में सरलता से उगता है। यह पौधा शुष्क जलवायु में भी हरा-भरा रहता है किन्तु अधिक जल वाले स्थान में पीला होकर गल जाता है। इसके पौधे के लिए शुष्क बलुही या काँप मिट्टी के क्षेत्र की आवश्यकता होती है। पाला पड़ने से रेंडी के वृक्ष की पत्तियाँ सूख जाती हैं और फसल को बड़ी क्षति पहुँचती है।

रेंडी की कृषि अधिकतर ज्वार, बाजरा, अरहर तथा कपास के साथ-साथ की जाती है। रेंडी को रबी और खरीफ दोनों फसलों में उगाया जाता है। साधारणतया जुलाई के महीने में पहली वर्षा पड़ने पर रेंडी बो दी जाती है और दिसम्बर से मार्च तक काटी जाती है।

भारत में इसके मुख्य उत्पादक आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक और उड़ीसा है। कुछ रेंडी मध्य प्रदेश, बिहार तथा उत्तर प्रदेश में भी पैदा की जाती है।

१९५०-५१ और १९७२-७३ में रेंडी का उत्पादन क्रमशः १०३ हजार टन और १३६ हजार टन था।

भारत में रेंडी का उपयोग तेल निकालने में किया जाता है जो मशीनों को चिकना करने में उपयुक्त है। इसकी खली पशुओं को खिलायी जाती है तथा खेतों में खाद के रूप में प्रयुक्त होती है। इसका उपयोग चमड़ा उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, रंग-रोगन उद्योग और दवाइयों में भी किया जाता है।

भारत में रेंडी के तेल का निर्यात मुख्यतः ग्रेट ब्रिटेन, बेल्जियम, फ्रांस, इटली, संयुक्त राज्य अमरीका, हालैण्ड, स्पेन, आदि देशों को किया जाता है।

नारियल (Coconut)

नारियल का वृक्ष उष्णकटिबन्धीय जलवायु क्षेत्रों में ही पैदा होता है जहाँ अधिक वर्षा और पर्याप्त तापमान रहते हैं। साधारणतः तापमान २०° से २५° सेण्टीग्रेड तक और वर्षा १५० सेण्टीमीटर से अधिक होनी चाहिए। यह अधिकतर समुद्र तटों पर, नदियों के डेल्टों और द्वीपों में कौर भूमि में पैदा किया जाता है। यद्यपि इसे समुद्री वायु की आवश्यकता रहती है किन्तु यह समुद्र से दूर वाले स्थानों में भी पैदा किया जाता है।

भारत में सबसे अधिक नारियल केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गोआ, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और असम में पैदा होते हैं।

तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश का तीन-चौथाई उत्पादन पूर्वी गोदावरी और कावेरी डेल्टा से प्राप्त होता है। केरल में मध्यवर्ती तथा तटीय भागों की निम्न भूमि (मालाबार जिले) में नारियल पैदा होते हैं। कर्नाटक के तुमकुर, हसन, मैसूर, चित्तलदुर्ग और कादूर जिलों में; उड़ीसा के पुरी और कटक जिलों में और महाराष्ट्र के कनारा तथा रत्नागिरि जिलों में नारियल पैदा किया जाता है। पश्चिमी बंगाल में इसका उत्पादन निम्न भागों में चावल के खेतों के बीच-बीच में सभी जगह किया जाता है। गोआ में भी खूब नारियल पैदा किया जाता है।

नारियल का ४५% उपयोग खोपरे के रूप में, ४५% भोजन की वस्तुओं के रूप में (चटनी, मिठाई, हलुआ, कढ़ी आदि) और १०% कच्चे नारियल (डाब) के रूप में होता है। १९७२-७३ में नारियल के अन्तर्गत १०·९ लाख हैक्टेअर भूमि थी जिसमें ५९५ करोड़ नारियल प्राप्त किये गये। १९५०-५१ में यह क्षेत्रफल ६.२ लाख हैक्टेअर और उत्पादन ३५८ करोड़ का था।

भारत से खोपरा और खोपरा के तेल का निर्यात मुख्यतः फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, संयुक्त राज्य अमरीका, आदि देशों को किया जाता है।

रबड़ (Rubber)

भारत में रबड़ के उद्यान सबसे पहले सन् १६०० में मारक्वीस ऑफ सैलिसबरी के प्रयत्नों द्वारा आरम्भ किये गये। सन् १६०२ में अमरीका से पारा रबड़ के बीज मँगवाकर केरल में पेरियार नदी के किनारे इसके वृक्ष लगाये गये।

भौगोलिक दशाएं—पारा रबड़ समुद्र के धरातल से ३०५ मीटर की ऊँचाई तक उगाया जाता है। रबड़ के वृक्ष के लिए २०४ सेण्टीमीटर से अधिक वर्षा और ३२° सेण्टीग्रेड तक के औसत तापमान की आवश्यकता रहती है। वर्षा यदि समान रूप से होती रहे तो १०४ सेण्टीमीटर तक के क्षेत्रों में यह पैदा किया जा सकता है, किन्तु अधिक तापमान और शुष्क दशाओं में उपज में कमी हो जाती है। अतः भारत में इसकी खेती तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आदि राज्यों में ही मुख्यतः की जाती है।

रबड़ का पौधा भिन्न-भिन्न गुणों वाली मिट्टी में सरलतापूर्वक उग सकता है। दक्षिण भारत की लाल लैटेराइट, चिकनी मिट्टी तथा दुमट और दो प्रदेशों की मिट्टी में भी इसका पौधा सरलता से उगता है। रबड़ के उत्पादन में वृक्षों की देख-रेख के लिए अधिक मानव श्रम की आवश्यकता पड़ती है।

भारत में रबड़ के पौधे रोपे जाते हैं अथवा कलम करके लगाये जाते हैं। कलमी पौधों के लिए सुमात्रा से अवोर, जावा से बोजोंग, तिरावंजी तथा जासिता, मलयेशिया से पारंग, बेसर, सवरंग, ववाना, आदि किस्मों को मँगवाकर उपयोग किया जाता है। कलमी पौधे से बीज-पौधे की अपेक्षा चौगुना दूध मिलता है। साधारण बीज-पौधे से प्रति एकड़ पीछे ३०० पौण्ड तथा कलमी पौधे से ७०० से ८०० पौण्ड तक दूध प्रतिवर्ष मिलता है।

उत्पादक क्षेत्र—रबड़ का उत्पादन पूर्णतः दक्षिणी भारत में ही किया जाता है। यहाँ केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु में लगभग १ ८ लाख हैक्टेअर भूमि पर रबड़ के बगीचे हैं जिनसे सामान्यतया ७० हजार टन रबड़ प्राप्त किया जाता है। कुल क्षेत्रफल का लगभग ७५% केरल में, २०% तमिलनाडु, ३% कर्नाटक और २% अण्डमान-नीकोबार में है। मुख्य उत्पादक क्षेत्र कन्याकुमारी, कोयम्बटूर सलेम, नीलगिरि, मदुराई (तमिलनाडु) तथा कुर्ग और गोआ हैं। उत्पादन का लगभग ५०% ही उत्तम किस्म का रबड़ होता है।

१६५०-५१ और १६७०-७१ में ५८ और २०० हजार हैक्टेयर भूमि पर रबड़ बोया गया जिससे उत्पादन क्रमशः १४ हजार टन और १६७ हजार टन था।

अब देश में रबड़ की वस्तुओं के उत्पादनों की माँग बढ़ जाने से रबड़ उत्पादन की एक १०-वर्षीय योजना स्वीकृत की गयी है जिसके अन्तर्गत प्रति ७,००० एकड़ भूमि पर रबड़ के वृक्ष लगाये जायेंगे। इसके अतिरिक्त १०,००० एकड़ नयी भूमि पर प्रतिवर्ष २,००० एकड़ भूमि पर पाँच वर्षों में वृक्ष लगाये जायेंगे। नयी रबड़ की पौध दक्षिणी भारत में भी लगायी जा रही है जहाँ इसके लिए उपयुक्त भूमि और जलवायु मिलती है विशेषतः मालाबार तट तथा ट्रावनकोर-कोचीन जिलों में।

भारत से कुछ रबड़ का निर्यात इगलैण्ड, श्रीलंका, हालैण्ड, स्टेट्स सैटलमेंट्स तथा जर्मनी को किया जाता है। भारत में रबड़ का विनिमय और उत्पादन भारतीय रबड़ बोर्ड के अन्तर्गत किया जाता है।

३. पेय पदार्थ
(BEVERAGES)

चाय (Tea—*Thea sinensis*)

चाय का उत्पादन भारत में पहली बार सन् १८३४ में अंग्रेज सरकार द्वारा परीक्षण के रूप में व्यापारिक पैमाने पर किया गया यद्यपि जंगली अवस्था में यह असम में पहले से ही पैदा होती थी। इगलैण्ड को इसका निर्यात असम की चाय कम्पनी द्वारा किया गया।

इस समय चाय भारत की प्रमुख मुद्रादायिनी फसल है जिसके निर्यात से औसतन १२५ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। विभिन्न करों के रूप में सरकार को ३५ से ४० करोड़ रुपयों की आय होती है। चाय पैदा करने में लगभग १० लाख श्रमिक लगे हैं, जिनमें से ५ लाख से अधिक तो असम के उद्यानों में ही हैं।

चाय पैदा करने में भारत का स्थान दूसरा है। पहला स्थान चीन का माना जाता है किन्तु उसके विश्वसनीय आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। वस्तुतः भारत ही विश्व में प्रमुख उत्पादक और निर्यातक देश है।

उत्तरी भारत में पंजाब में हिमालय प्रदेश के उद्यान ३३° उत्तरी अक्षांश तक और दक्षिणी भारत में १०° से १२° उत्तरी अक्षांश के बीच स्थित हैं।

भौगोलिक दशाएँ—(१) चाय के उत्पादन के लिए आर्द्र जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। यदि बसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु में वर्षा हो जाय तो चाय की पत्तियों को वर्ष में ४-५ बार तक तोड़ा जा सकता है। साधारणतः वर्षा का औसत १५० सेण्टीमीटर होना चाहिए। असम के पहाड़ी भागों में यह १२५ से ३७५ सेण्टीमीटर तक में तथा द्वार और दार्जिलिंग में २५० से ५०० सेण्टीमीटर तक वर्षा वाले भागों में होती है। दक्षिणी भारत के चाय क्षेत्रों में तो इससे भी अधिक वर्षा होती है। चाय के पौधे के विकास के लिए जड़ों में जल का एकत्रित होना हानिकारक होता है। इसलिए चाय के

उद्यान समुद्रतल से ६१० से १,८३० मीटर ऊँचे पहाड़ी ढालों पर ही मिलते हैं। हिमालय का दक्षिणी ढाल सूर्योन्मुखी है और अधिक ताप एवं जलवृष्टि दोनों ही प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त यह ढाल मानसूनों की शीतल हवाओं से भी सुरक्षित रहता है। अतः इन ढालों पर चाय का उत्पादन किया जाता है।

(२) चाय छायाप्रिय पौधा है जो हल्की छाया में बड़ी तीव्र गति से बढ़ता है। इसके लिए मासिक तापमान २४° से ३०° सेण्टीग्रेड के बीच उपयुक्त माने गये हैं। जब अधिकतम तापमान २४° सेण्टीग्रेड से नीचे गिर जाते हैं या औसत न्यूनतम तापमान १८° सेण्टीग्रेड से नीचे हो जाते हैं तो इसकी वृद्धि रुक जाती है। असम में तो ३७° सेण्टीग्रेड तापमान वाले भागों में भी छाया में चाय का उत्पादन किया जाता है। ठण्डी पवनें और ओले चाय के लिए हानिकारक होते हैं।

(३) चाय का उत्पादन पहाड़ों के ढालों पर या समतल भूमि पर भी किया जा सकता है यदि वर्षा के अतिरिक्त जल बहने की सुविधा हो। भारत के कुछ सर्वोत्तम चाय के उद्यान असम में समुद्रतल के धरातल से १५ से १२० मीटर ऊँचाई तक पाये जाते हैं। साधारणतः मिट्टी गहरी और गन्धक वाली होनी चाहिए। बहुधा वनों को साफ की गयी भूमि चाय के लिए अच्छी मानी जाती है। उपजाऊ मुलायम बलुही मिट्टी में भी अच्छी चाय पैदा होती है यदि उसमें प्राणिज अथवा रासायनिक तत्त्वों का आधिक्य हो। असम के उद्यानों में चाय की झाड़ियों के छाँटने से जो टहनियाँ गिरती हैं, उन्हें भूमि में गाड़ दिया जाता है। इससे मिट्टी को प्रति वर्ष वनस्पति-तत्त्व उपलब्ध होते रहते हैं। दार्जिलिंग की चाय इसलिए सुगन्धित होती है कि वहाँ की मिट्टी में पोटाश और फॉस्फोरस अधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं। चाय को अमोनियम सल्फेट, हड्डी का चूरा, कम्पोस्ट और हरी खाद दी जाती है।

(४) चाय को चुनाई के लिए सस्ते और अधिक मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि चाय की पत्तियाँ एक-एक कर तोड़ी जाती हैं जिससे कोमल पत्तियाँ नष्ट न हों। अपनी कोमल अँगुलियों के कारण ही चाय के उद्यानों में स्त्री मजदूरों द्वारा पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं। अब पत्तियाँ तोड़ने के लिए डायनमो से चलने वाली मशीनों का भी प्रचलन किया गया है।

चाय को अक्टूबर-नवम्बर में बोया जाता है तथा पत्तियाँ चुनने का मौसम अप्रैल से अक्टूबर तक चलता है। साधारणतः प्रति झाड़ी से तीन बार पत्तियाँ चुनी जाती हैं। पहली बार अप्रैल से जून तक, दूसरी बार जुलाई से अगस्त तक और तीसरी बार सितम्बर से अक्टूबर तक। पौधों को पहले छोटी क्यारियों में लगाया जाता है, फिर कुछ बड़ा होने पर इसे अन्यत्र रोप दिया जाता है। समय-समय पर झाड़ी की छँटाई की जाती है जिससे कोमल पत्तियाँ मिलती हैं तथा अधिक ऊँची झाड़ी न होने से पत्ती चुनने में सुविधा रहती है।

भारत में चाय का उत्पादन, (१९७२-७३)

(हजार किलोग्राम में)

जिले	उत्पादन	जिले	उत्पादन
अन्नामलाई	१७,०२१	मुण्डाकयम	३५३
कन्याकुमारी	१९७	दक्षिणी केरल	२,०६५
मदुराई	१,६७८	वायनाद	७,६५२
नीलगिरि	२०,४८५	असम घाटी	२,२३,१०२
नीलगिरि-वायनाद	६,९५८	कछार	२५,०८६
कुर्ग	३०१	दार्जिलिंग	१०,४५६
कर्नाटक	२,४१३	द्वार	८४,५२१
तिरुनलवेली	७६२	तराई	१२,४४५
मध्य ट्रावनकोर	१७,१०८	त्रिपुरा, बिहार, कूचबिहार,	
कोचीन	१,८९१	पश्चिमी बंगाल	४,८२५
कानन-देवन्म	१३,५६४	उत्तरी भारत	३६,००६
मालाबार	१७४	दक्षिणी भारत	१,०१,३०२
		भारत का योग	४,६१,३७१

उत्पादन एवं व्यापार—१९५५-५६ में ३,०८७ लाख किलोग्राम और १९७१-७२ में ४,२६० लाख किलोग्राम चाय पैदा की गयी। १९७३-७४ में यह ४५० लाख टन हो जाने का अनुमान है। इसका निर्यात १९५०-५१ में २,३७५ लाख किलोग्राम और १९७१-७२ में २,०७० लाख किलोग्राम था। १९७२-७३ में निर्यात केवल १९२० लाख किलोग्राम का ही हुआ। यह निर्यात मुख्यतः ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी, आयरलैण्ड, रूस, श्रीलंका, बर्मा, मिस्र, अफगानिस्तान, ईरान, कनाडा, नीदरलैण्ड्स, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमरीका, सूडान, अरब गणराज्य, इराक, कुवैत, न्यूजीलैण्ड, टर्की तथा मध्य-पूर्व के देशों को होता है। कुल निर्यात का लगभग ७०% ब्रिटेन खरीदता है। चाय का यह निर्यात कलकत्ता, बम्बई, कोचीन मद्रास और मंगलौर बन्दरगाहों से होता है।

भारत के कुल उत्पादन का लगभग ७५ प्रतिशत निर्यात कर दिया जाता है। देश में २० से २५ प्रतिशत ही चाय खपती है। खपत में वृद्धि होने का मुख्य कारण भारतीय चाय विपणन समिति की बिक्री योजनाओं का कार्यान्वित किया जाना है। फिर भी भारत में चाय की खपत प्रति व्यक्ति पीछे बहुत ही कम है। संयुक्त राज्य अमरीका में ३·२ किलोग्राम प्रति व्यक्ति पीछे पी जाती है, इंगलैण्ड में ४·५ किलोग्राम, नीदरलैण्ड्स में ३·५ किलोग्राम, आस्ट्रेलिया में ४ किलोग्राम और भारत में केवल ०·२३ किलोग्राम है।

१९३३ में भारत, जावा तथा श्रीलंका के बीच एक समझौता हुआ था जिसमें प्रत्येक देश का निर्यात निश्चित कर दिया गया था। इस समझौते के अनुसार भारत

फल चुन लेते हैं जबकि नीलगिरि में मई से जून तक कई बार फल चुने जाते हैं। एक वृक्ष से औसतन ½ से ¾ किलोग्राम तैयार किया गया कहवा मिलता है अथवा प्रति हेक्टेयर पीछे २० से २१० किलोग्राम तक।

कहवा की उपज ऊँचाई, आकार, वर्षा का समय, छाया, छँटाव, खाद, आदि बातों पर निर्भर करती है। १९७१ में अरेबिका कहवा का प्रति हेक्टेयर उत्पादन ४२५ किलोग्राम तथा रोबस्टा कहवा का ४१० किलोग्राम था।

कहवा के फल को तोड़कर दो ढंग से तैयार किया जाता है। पहले ढंग के अनुसार उसे धूप में २ से ३ सप्ताह तक सुखाया जाता है और फिर मशीन से साफ बीज निकाले जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त किये गये कहवा को चेरी *(Cherry)* कहते हैं। दूसरे ढंग के अनुसार फलों को इकट्ठा कर उनका गूदा निकाल लेते हैं फिर बड़े-बड़े हौजों में उसे साफ कर बीज निकाले जाते हैं। इनको धूप में सुखाकर पार्चमेन्ट (Parchment) कहवा प्राप्त किया जाता है।

जब कहवा के बीजों को बारीक पीसा जाता है तो उससे अधिक सत प्राप्त होता है किन्तु मोटे पीसे गये कहवा से छानने योग्य कहवा प्राप्त होता है। आजकल दैनिक उपयोग के लिए रोबेस्टा कहवा से तैयार की गयी तुरन्त कॉफी (Instant coffee) का प्रचलन अधिक है।

यूरोपीय देशों में भारत के मानसूनी कहवा की अधिक माँग होती है। इस प्रकार का कहवा तैयार करने के लिए कहवा के बीजों को भूमि पर फैला देते हैं और उन्हें उलटते-पुलटते रहते हैं फिर उन्हें बोरी में भरकर उनमें मानसूनी पवनों का प्रवेश कराया जाता है।

भारत में मुख्यतः दो प्रकार का कहवा पैदा किया जाता है: (१) अरेबिका कहवा (Coffee Arabica), और (२) रोबस्टा कहवा (Coffee Robusta)। पहले प्रकार का कहवा सामान्यतः ७५० से १,५०० मीटर की ऊँचाई पर उत्पन्न किया जाता है। यह उच्च कोटि का होता है तथा अधिक क्षेत्रफल में बोया जाता है किन्तु इसमें कीड़े और रोग अधिक लग जाते हैं। अरेबिका कहवा की मुख्य किस्में चिक, कुर्ग, केंट, मारगोपाइप, बोरबन, अमरीलो तथा ब्लू माउण्टेन हैं। कुल क्षेत्रफल का ६० प्रतिशत अरेबिका कहवा के अन्तर्गत है। इस प्रकार का कहवा कर्नाटक में बाबाबूदन; केरल में उत्तरी और दक्षिणी कुर्ग, अन्नामलाई, कानन-देवन्स, तमिलनाडु में शिवराय, नीलगिरि, वायनाद, नेलियमपति और बेलगिरि में बोया जाता है। १९७२-७३ में ६१,००० टन अरेबिका कहवा प्राप्त किया गया। रोबेस्टा कहवा आजकल अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। इसको रोगों और कीड़ों-मकोड़ों का भय कम रहता है। इसका प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी अधिक होता है। कर्नाटक और केरल राज्यों में इसे केला, आम, नारंगी तथा काली मिर्चों के साथ पैदा किया जाता है। इसके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का ४० प्रतिशत है। यह मुख्यतः मालाबार, वायनाद,

गयी। यह समझौता मार्च १९५५ में समाप्त हो गया। अब भारत से चाय का निर्यात कोटा चाय बोर्ड की लाइसेन्स समिति द्वारा तय किया जाता है।

१९६७-६८ और १९७२-७३ में भारत से निर्यात की गयी चाय का मूल्य क्रमशः १०७ करोड़ और १४७ करोड़ रुपया था।

कहवा (Coffee)

भारत में कहवा का पौधा १७वीं शताब्दी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा लाया गया। सन् १७९८ में तैलीचेरी के निकट यह प्रयोगात्मक रूप से बोया गया किन्तु सन् १८३० में व्यवस्थित रूप से यह पैदा किया जाने लगा। विश्व के उत्पादन का केवल २ प्रतिशत कहवा भारत से प्राप्त होता है। किन्तु इसका स्वाद उत्तम होने के कारण विश्व के बाजारों में इसका मूल्य अधिक मिलता है। भारतीय कहवा को मधुर कहवा (Mild Coffee) कहा जाता है।

भौगोलिक दशाएँ—(१) इसका उत्पादन उन क्षेत्रों तक ही सीमित है जहाँ औसत वार्षिक तापमान १५° से २८° सेण्टीग्रेड से अधिक नहीं बढ़ता। साधारणतः १०° से २७° सेण्टीग्रेड तक का तापमान ठीक रहता है। कहवा अधिक तेज धूप को नहीं सह सकता, अतः इसके आस-पास छायादार वृक्ष—जैसे केला, सिकोना, रबड़, मटर, सेम, नारंगी, सिल्वर-ओक, आदि के वृक्ष लगाये जाते हैं।

(२) इसके लिए १५० से २५० सेमी० तक की वर्षा पर्याप्त मानी गयी है। यदि वर्षा का वितरण समान रूप से हो तो यह ३०० सेमी० तक की वर्षा वाले क्षेत्रों में भी पैदा किया जा सकता है। किन्तु अधिक समय तक सूखा पड़ने से इसका उत्पादन कम हो जाता है। पहाड़ी ढालों पर, जहाँ वर्षा का अतिरिक्त जल बहकर चला जाता है, इसका उत्पादन किया जाता है। साधारणतः ९०० से १,८०० मीटर की ऊँचाई तक यह पैदा किया जाता है। दक्षिणी भारत में कहवा के उद्यान साधारणतः घाटियों के पार्श्ववर्ती भाग में तथा पश्चिमी घाटों पर पाये जाते हैं जहाँ वर्षा काल में चलने वाली तेज पवनों से पौधे का बचाव हो जाता है।

(३) कहवा अधिकतर वनों को साफ की गयी भूमि में अच्छा होता है जहाँ भूमि में अधिक उपजाऊ तत्त्व मिलते हैं। कहवा के लिए दोमट मिट्टी अथवा ज्वालामुखी के उद्गार से निकली हुई लावा मिट्टी भी अधिक उपयुक्त होती है जिसमें क्रमशः वनस्पति और लोहे के अंश मिले रहते हैं।

यह जनवरी से मार्च तक बोया जाता है। तीन वर्ष बाद पौधे से फल मिलने लगता है और ३० से ५० वर्षों तक मिलता रहता है। फल अधिकतर अक्टूबर से जनवरी तक चुने जाते हैं। दक्षिणी भारत में वर्षा की प्रथम बौछारों के बाद फूल आने आरम्भ होते हैं और फल लगभग ८-९ महीने में पककर तैयार हो जाता है तथा इसे अक्टूबर-नवम्बर में चुन लेते हैं। कर्नाटक में फरवरी तक पौधे से ३-४ बार

फल चुन लेते हैं जबकि नीलगिरि में मई से जून तक कई बार फल चुने जाते हैं। एक वृक्ष से औसतन ½ से ¾ किलोग्राम तैयार किया गया कहवा मिलता है अथवा प्रति हैक्टेअर पीछे २० से २१० किलोग्राम तक।

कहवा की उपज ऊँचाई, आकार, वर्षा का समय, छाया, छंटाव, खाद, आदि बातों पर निर्भर करती है। १९७१ में अरेबिका कहवा का प्रति हैक्टेअर उत्पादन ४२५ किलोग्राम तथा रोबस्टा कहवा का ४१० किलोग्राम था।

कहवा के फल को तोड़कर दो ढग से तैयार किया जाता है। पहले ढग के अनुसार उसे धूप मे २ से ३ सप्ताह तक सुखाया जाता है और फिर मशीन से साफ बीज निकाले जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त किये गये कहवा को चेरी (*Cherry*) कहते हैं। दूसरे ढग के अनुसार फलो को इकट्ठा कर उनका गूदा निकाल लेते हैं फिर बड़े-बड़े हौजों में उसे साफ कर बीज निकाले जाते हैं। इनको धूप मे सुखाकर पार्चमेण्ट (Parchment) कहवा प्राप्त किया जाता है।

जब कहवा के बीजो को बारीक पीसा जाता है तो उससे अधिक सत प्राप्त होता है किन्तु मोटे पीसे गये कहवा से छानने योग्य कहवा प्राप्त होता है। आजकल दैनिक उपयोग के लिए रोबेस्टा कहवा से तैयार की गयी तुरन्त कॉफी (Instant coffee) का प्रचलन अधिक है।

यूरोपीय देशों मे भारत के मानसूनी कहवा की अधिक माँग होती है। इस प्रकार का कहवा तैयार करने के लिए कहवा के बीजों को भूमि पर फैला देते हैं और उन्हें उलटते-पुलटते रहते हैं फिर उन्हें बोरी मे भरकर उनमे मानसूनी पवनो का प्रवेश कराया जाता है।

भारत मे मुख्यतः दो प्रकार का कहवा पैदा किया जाता है : (१) अरेबिका कहवा (Coffee Arabica), और (२) रोबस्टा कहवा (Coffee Robusta)। पहले प्रकार का कहवा सामान्यतः ७५० से १,५०० मीटर की ऊँचाई पर उत्पन्न किया जाता है। यह उच्च कोटि का होता है तथा अधिक क्षेत्रफल मे बोया जाता है किन्तु इसमे कीड़े और रोग अधिक लग जाते हैं। अरेबिका कहवा की मुख्य किस्मे चिक, कुर्ग, केंट, मारगोपाइप, बोरबन, अमरीलो तथा ब्लू माउण्टेन हैं। कुल क्षेत्रफल का ६० प्रतिशत अरेबिका कहवा के अन्तर्गत है। इस प्रकार का कहवा कर्नाटक मे बाबाबूदन; केरल मे उत्तरी और दक्षिणी कुर्ग, अन्नामलाई, कानन-देवन्स, तमिलनाडु में शिवराय, नीलगिरि, वायनाद, नेलियमपति और बेलगिरि में बोया जाता है। १९७२-७३ में ६१,००० टन अरेबिका कहवा प्राप्त किया गया। रोबेस्टा कहवा आजकल अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। इसको रोगो और कीड़ों-मकोड़ो का भय कम रहता है। इसका प्रति हैक्टेअर उत्पादन भी अधिक होता है। कर्नाटक और केरल राज्यों में इसे केला, आम, नारंगी तथा काली मिर्चों के साथ पैदा किया जाता है। इसके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का ४० प्रतिशत है। यह मुख्यतः मालाबार, वायनाद,

द० कुर्ग, अन्नामलाई क्षेत्रों में बोया जाता है। १९७२-७३ में २६,००० टन कहवा इस प्रकार का प्राप्त किया गया। इसी वर्ष पौध वाला (Plantation) कहवा का उत्पादन ३५,३३४ टन का हुआ। १९७२-७३ में सभी प्रकार के कहवे का उत्पादन ९०,००० टन था। १९६०-६१ में यह ५४,१०० टन का था।

उत्पादक क्षेत्र—भारत में कहवा के ५१,६६१ उद्यान हैं जिनमें ४७,८८२ जोतें (holdings) हैं। इसमें से १९,४४३ जोतें कर्नाटक में हैं और शेष तमिलनाडु तथा केरल एवं अन्य राज्यों में जिनमें २,३६,२६५ श्रमिक काम करते हैं। कहवा के उद्यानों का ७० प्रतिशत अंग्रेजों और ३० प्रतिशत भारतीयों के अधिकार में है।

भारत में १·३६ लाख हैक्टेअर भूमि पर कहवा पैदा किया जाता है। ८४,३६२ हैक्टेअर पर अरेबिका और ५५,११६ हैक्टेअर भूमि पर रोबस्टा कहवा बोया जाता है। कहवा के अन्तर्गत क्षेत्रफल का ६१ प्रतिशत कर्नाटक में, १६ प्रतिशत तमिलनाडु में; २२ प्रतिशत केरल में तथा १% आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, असम, आदि राज्यों से प्राप्त होता है।

कर्नाटक में लगभग ४,६०० उद्यान हैं। यहाँ कहवा अधिकतर दक्षिणी और दक्षिणी-पश्चिमी भाग में कादूर, शिमोगा, हसन और मैसूर जिलों में पैदा होता है जो साधारणतः १,२०० मीटर ऊँचे हैं और जहाँ औसत वर्षा १२५ सेन्टीमीटर होती है।

तमिलनाडु में सम्पूर्ण दक्षिण-पश्चिम में उत्तरी अर्काट जिले से लगाकर तिरुनलवैली तक कहवा बोया जाता है। नीलगिरि पर्वत प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है।

महाराष्ट्र में सतारा, रत्नागिरि तथा कनारा जिले में, केरल में कुर्ग और आन्ध्र प्रदेश में विशाखापट्टनम जिले में भी कहवा पैदा किया जाता है।

गत १५ वर्षों में कहवा का उपभोग और व्यापार दोनों ही बढ़े हैं। इस वृद्धि का कारण भारतीय कहवा बोर्ड के प्रयास हैं। कहवा का आन्तरिक उपभोग कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल में अधिक होता है।

उत्पादन एवं व्यापार—१९५०-५१ में २४,६०० टन और १९७२-७३ में १,०६,००० टन कहवा पैदा किया गया। १९७२-७३ में ५०६ लाख किलोग्राम कहवा निर्यात किया गया। १९५८-५९ में यह मात्रा १५६ लाख किलोग्राम थी। इसका मूल्य २२ करोड़ रुपया था। कहवा का निर्यात मुख्यतः इंगलैण्ड, रूस, पोलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, हॉलैण्ड, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया और ईराक को किया जाता है। निर्यात का लगभग ७६ प्रतिशत मंगलौर, ११ प्रतिशत तैलीचेरी, १० प्रतिशत कोजीकोड और ३ प्रतिशत मद्रास के बन्दरगाह से जाता है। पिछले कुछ समय से ब्राजील से स्पर्द्धा होने से भारत के निर्यात में काफी कमी आ गयी है।

तम्बाकू (Tobacco)

भारत में तम्बाकू का पौधा पुर्तगालियों द्वारा १५०८ में लाया गया और तब से इसकी खेती का क्षेत्र भारत के लगभग सभी भागों में फैल गया है। भारत विश्व के उत्पादन का लगभग ७ प्रतिशत तम्बाकू उत्पन्न करता है।

भौगोलिक दशाएँ—(१) तम्बाकू की पैदावार का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। इसका उत्पादन समुद्र के धरातल से लेकर १,८०० मीटर की ऊँचाई तक भी किया जा सकता है। इसके पूर्ण विकास के लिए तापमान १६° से ४० सेण्टीग्रेड का ठीक रहता है। पाला तम्बाकू के लिए हानिकारक है अतः इसकी खेती वहीं की जाती है जहाँ पाले का भय नहीं रहता जैसे पश्चिमी बंगाल, बिहार, गुजरात और महाराष्ट्र में। (२) इसके लिए साधारणतः ५० से १०० सेण्टीमीटर की वर्षा पर्याप्त होती है। इससे अधिक वर्षा वाले भागों में इसकी खेती नहीं की जा सकती। पत्तियों के पकने के समय वर्षा हो जाने से इसकी किस्म बिगड़ जाती है। पकने के समय स्वच्छ और तेज धूप तथा वर्षारहित मौसम होना आवश्यक है। इसकी जड़ों में जल नहीं जमना चाहिए इसलिए तम्बाकू की कृषि नदियों की ढालू घाटियों और पठारी भागों पर अधिक की जाती है।

(२) तम्बाकू के लिए बलुही, दोमट अथवा मिश्रित कछारी मिट्टी उपयुक्त रहती है। तम्बाकू मिट्टी में से उपजाऊ तत्वों को बहुत शीघ्र खींच लेती है, अतः पोटाश, फॉस्फोरिक एसिड और लोहाश के रूप में खाद की आवश्यकता पड़ती है। अधिकतर हरी या रासायनिक खाद (अमोनिया सल्फेट) दी जाती है।

(३) तम्बाकू की पौध लगाने, काटने, पत्तियों के सुखाने और तैयार करने में सस्ते श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है।

तम्बाकू शीतकाल में पैदा होती है। जहाँ सिंचाई की सुविधाएँ प्राप्त हैं वहाँ दो फसलें भी प्राप्त की जाती हैं। पहली फसल जनवरी से जून तक तथा दूसरी अक्टूबर से मार्च तक। साधारणतः इसकी फसल जुलाई से अक्टूबर तक बोयी जाती है और फरवरी से मई तक काटी जाती है।

तम्बाकू की किस्म मिट्टी, अपने रंग, वजन और स्वाद पर निर्भर करती है। मौसम में हल्के परिवर्तन एवं पत्तियों की छँटनी और सफाई का भी इसकी किस्म पर प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः कहा जा सकता है कि ठण्डी, नम ग्रीष्म ऋतु और हल्की नरम भूमि होने पर पत्तियाँ अच्छे रेशे वाली और मधुर स्वाद वाली होती हैं। किन्तु जब भूमि कठोर और तापमान ऊँचा रहता है तो पत्तियाँ मोटी और तेज स्वाद वाली होती हैं।

यद्यपि भारत में लगभग ६० किस्म की तम्बाकू बोयी जाती है किन्तु इनमें दो किस्में ही मुख्य हैं : निकोटिना टुबैकम (Nicotina tobaccum) और निकोटिना

रस्टिका (Nicotina rustica)। भारत में सबसे अधिक क्षेत्रफल प्रथम किस्म के अन्तर्गत है। टुबैकम सारे भारत में बोयी जाती है। इसमें गुलाबी रंग के फूल होते हैं। इसका पौधा लम्बा तथा पत्तियाँ बड़ी होती हैं। सिगरेट, चुरुट, बीड़ी, हुक्का तथा खाने और सूँघनी बनाने में इसी का प्रयोग अधिक किया जाता है। चूँकि *रस्टिका तम्बाकू को ठण्डी जलवायु की आवश्यकता है, अतः यह मुख्यतः* उत्तरी और

चित्र—६'८

उत्तरी-पूर्वी भारत में पैदा की जाती है। इसका पौधा छोटा, पत्तियाँ रूखी और भारी होती हैं। रंग काला और महक तेज होती है। इसका उपयोग हुक्का, खाने और सूँघनी बनाने में होता है।

उपयोग के अनुसार भारतीय तम्बाकू को सामान्यतः चार श्रेणियों में बांटा जाता है :

(१) बीड़ी तम्बाकू कुल क्षेत्र के २५ प्रतिशत भाग पर बोयी जाती है। यह विशेषकर गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान में पैदा की जाती है।

(२) चुरट की तम्बाकू मुख्यतः तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश में दोमट मिट्टी से लगाकर काली और बलुही दोमट मिट्टी में बोयी जाती है।

(३) खाने की तम्बाकू प्रायः सभी राज्यों में पैदा की जाती है विशेषकर बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और कर्नाटक में।

(४) हुक्का तम्बाकू मुख्यतः पंजाब, हरियाणा और बिहार में पैदा की जाती है।

उत्पादन क्षेत्र—भारत में तम्बाकू का उत्पादन मुख्यतः आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्यों में होता है। इन तीनों राज्यों में कुल क्षेत्र का लगभग ७४ प्रतिशत पाया जाता है। शेष अन्य राज्यों से यथा राजस्थान, असम, बिहार, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और पश्चिमी बंगाल।

गन्तूर क्षेत्र में आन्ध्र प्रदेश के गन्तूर, कृष्णा, पूर्वी और पश्चिमी गोदावरी जिले तथा तेलंगाना क्षेत्र सम्मिलित हैं किन्तु २/३ से भी अधिक क्षेत्र गन्तूर जिले में है। इस क्षेत्र की मिट्टी काले रंग की है जिसमें चूने की मात्रा अधिक है। इसमें जल धारण करने की क्षमता अधिक होती है। पत्तियों की तैयारी के समय पर्याप्त आर्द्रता रहती है जिससे पत्तियाँ सुन्दर और उत्तम किस्म की होती हैं। पूर्वी तट पर सिंचाई की भी सुविधा रहती है। इस प्रदेश में अधिकतर गर्म वायु में सिझाये गये तथा सूर्य की धूप में सिझाये गये विभिन्न प्रकार की वर्जीनिया तम्बाकू तथा नाटू, थोक आकू और करा आकू नाम की देशी तम्बाकू पैदा की जाती हैं। लंका नामक विशेष तम्बाकू पूर्वी गोदावरी और कृष्णा जिले में उगायी जाती है। यह मुख्यतः चुरट और सिगार बनाने में प्रयोग में लायी जाती है।

उत्तरी बिहार में बिहार के मुजफ्फरपुर, दरभंगा, मुंगेर और पूर्णिया जिले तथा पश्चिमी बंगाल के जलपाईगुडी, माल्दा, हुगली, कूचबिहार और बरहामपुर जिले सम्मिलित हैं। गंगा के ढालू मैदान की उपजाऊ मिट्टी इसकी कृषि के लिए आदर्श है। यहाँ हुक्के के लिए उपयोगी एन. टुबेकम, एन. रस्टिका की विविध किस्में (विलायती, मोतीहारी और जाति) पैदा की जाती हैं। खाने और सूँघने की तम्बाकू भी यहाँ पैदा की जाती है।

चरोत्तर क्षेत्र में गुजरात राज्य के खेड़ा जिले के आनन्द, बोरसद, पेटलाद, और नाडियाड ताल्लुके सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में तम्बाकू की विविध किस्में (निकोटिना रस्टिका और वर्जीनिया टुबेकम) बोयी जाती है। यहाँ की तम्बाकू बीड़ी के लिए अधिक उपयुक्त होती है।

निपानी क्षेत्र में महाराष्ट्र के कोल्हापुर सांगली, मिरज और सतारा जिलों और कर्नाटक के बेलगांव जिले में मुख्यतः बीड़ी तम्बाकू उगायी जाती है। यहाँ गहरी काली और गहरे लाल रंग की मिट्टी में तम्बाकू पैदा की जाती है।

उत्तर प्रदेश के बनारस, मेरठ, बुलन्दशहर, मैनपुरी, सहारनपुर और फर्रुखाबाद जिले; पंजाब के अमृतसर, जालन्धर, गुरुदासपुर तथा फिरोजपुर जिले और हरियाणा के गुड़गांव, करनाल और अम्बाला जिले तम्बाकू के मुख्य उत्पादक हैं। यहाँ हुक्का के लिए तथा खाने के लिए बढ़िया किस्म की कलकतिया तम्बाकू उगायी जाती है।

दक्षिणी तमिलनाडु प्रदेश में तमिलनाडु राज्य के मदुराई, कोयम्बटूर, थंजवूर, डिंडीगल, तिरुचिरापल्ली जिले सम्मिलित हैं। इनमें सिगार और चुरुट में भरने वाली तथा खाने और सूँघने की तम्बाकू उगायी जाती है।

उत्पादन एवं व्यापार—भारत में तम्बाकू के अन्तर्गत १९५०-५१ में ३·५७ लाख हैक्टेअर, १९६०-६१ में ४·०१ लाख हैक्टेअर और १९७२-७३ में ४·३३ लाख हैक्टेअर भूमि थी। इन वर्षों में इसका उत्पादन क्रमशः २·६१ लाख टन, ३·०७ लाख टन और ३·६३ लाख टन हुआ।

उत्पादन का अधिकांश देश में ही खप जाता है। निर्यात के लिए अधिक मात्रा नहीं बच पाती। फिर भी यहाँ से बिना तैयार की हुई तम्बाकू का निर्यात किया जाता है। १९६०-६१ में २५ करोड़ रुपये की तम्बाकू का निर्यात किया गया। १९७२-७३ में यह ६१ करोड़ रुपये का किया गया। यह निर्यात संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत रूस, अदन, बेल्जियम, श्रीलंका, चीन, नीदरलैण्ड्स, फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका, ब्रिटेन, मिस्र, सिंगापुर, जापान और हांगकांग को किया जाता है। निर्यात कलकत्ता, मद्रास और बम्बई बन्दरगाहों द्वारा होता है।

उच्च कोटि की सिगरेटों में मिश्रण के लिए संयुक्त राज्य अमरीका से गर्म वायु में सुखायी गयी तम्बाकू आयात की जाती है। कुछ तम्बाकू मिस्र, पाकिस्तान और बर्मा से भी आयात होती है।

४. रेशेदार पौधे
(FIBROUS CROPS)

कपास (Cotton)

कपास भारत की ही उपज है जहाँ पूर्व ऐतिहासिक काल से ही इसकी खेती की जा रही है। यहाँ से ३२७ ई० पू० के लगभग यूनान में इस पौधे का प्रचार हुआ। यहीं से यह पौधा चीन और विश्व के अन्य देशों को ले जाया गया। आज भी कपास के उत्पादन में भारत का स्थान मुख्य है। यहाँ से विश्व की ८ प्रतिशत कपास प्राप्त होती है।

भौगोलिक दशाएं—(१) इसके पौधे के लिए उच्च तापमान की (साधारणतः २०° से ३०° सेण्टीग्रेड) आवश्यकता पड़ती है। किन्तु यह ४०° सेण्टीग्रेड तक की गर्मी में पैदा किया जा सकता है। पाला अथवा ओला इसकी फसल को हानि पहुँचाते हैं। अतः इसे २०० दिन पालारहित ऋतु चाहिए। इससे कम समय में न तो पौधे का पूर्णतः विकास ही होता है और न बड़े-बड़े फूल ही आते हैं। बौण्डियां (Bolls) खिलने के समय स्वच्छ आकाश, तेज और चमकदार धूप होनी आवश्यक है जिससे रेशे में पर्याप्त चमक आ सके और बौण्डियां पूरी तरह खिल सकें। समुद्री वायु के प्रभाव से उगने वाली कपास का रेशा लम्बा और चमकदार होता है।

(२) कपास के लिए साधारणत. ५० से १०० सेण्टीमीटर तक की वर्षा पर्याप्त होती है। यह मात्रा थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर से प्राप्त होनी चाहिए। १०० सेण्टीमीटर से अधिक वर्षा वाले भागों में, इसकी खेती नहीं हो सकती। जहाँ वर्षा ५० सेण्टीमीटर से कम होती है वहाँ सिंचाई के सहारे कपास पैदा की जाती है। यदि वर्षा दोनों ही मानसून काल में आती है तो दो फसलें प्राप्त की जा सकती हैं अन्यथा एक ही।

वर्षा पर आश्रित क्षेत्र में कपास दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के आरम्भ में ही जून या जुलाई में बोयी जाती है जबकि सिंचाई पर आश्रित कपास एक-दो महीने पूर्व ही बोयी जाती है। आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक राज्य के दक्षिणी भाग में कपास जून से अगस्त के अन्त तक बोयी जाती है और चुनाई जनवरी से अप्रैल तक की जाती है। तमिलनाडु में इसको बोना दोनों ही मानसूनों के अनुसार होता है। यह मई, जुलाई, सितम्बर और अक्टूबर में बोयी जाती है और फरवरी-अप्रैल तक चुनी जाती है। दक्षिणी प्रायद्वीप के बाहर यह मार्च से अगस्त तक बोयी जाती है और सितम्बर से दिसम्बर तक इसकी चुनाई होती है। कपास भारत में सामान्यत खरीफ की फसल है।

(३) कपास विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में पैदा की जा सकती है किन्तु आर्द्रतापूर्ण चिकनी और काली मिट्टी अधिक लाभप्रद मानी जाती है क्योंकि पौधे की जड़ जल में न डूबे तब भी उसे अधिक आर्द्रता की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से दक्षिणी भारत की काली मिट्टी इसके लिए बड़ी उपयोगी है। सामान्यत भारत में कपास तीन प्रकार की मिट्टियों में पैदा की जाती है: (क) भारी काली दोमट मिट्टी में जो गुजरात, महाराष्ट्र राज्यों में मिलती है। भारत की सर्वोत्कृष्ट कपास का क्षेत्र भड़ौंच, अहमदाबाद, खानदेश जिलों में फैला है। (ख) लाल और काली चट्टियल मिट्टी जो दक्कन, बरार और मालवा के पठार पर फैली है। (ग) सतलज-गंगा के कछारी भाग में।

(४) कपास की खेती में बोने, निराने और ढोंडिया चुनने के लिए सस्ते मजदूरों की भी आवश्यकता पड़ती है। ज्यों ही पौधे पर फूल निकलकर बड़े होने लगें त्यों ही उनको चुन लेना आवश्यक होता है अन्यथा देरी होने पर फूल खराब होकर गिरने लगते हैं और कपास की किस्म बिगड़ जाती है। खेत में ही कपास की फसल ३-४ बार में इकट्ठी की जाती है। इसका फूल अधिकतर स्त्रियों द्वारा ही चुना जाता है। दिनभर में १० से ३० किलोग्राम तक कपास चुनी जा सकती है।

कपास की जलवायु की दृष्टि से दक्षिणी भारत की जलवायु उत्तरी भारत की अपेक्षा अधिक अनुकूल है क्योंकि जाड़े में उत्तरी भारत का तापमान कम हो जाता है और भूमध्यसागरीय चक्रवातों के आगमन से बादल छाये रहते हैं तथा ढोंडियों को प्रस्फुटित होने के लिए पर्याप्त मात्रा में ताप एवं चमकदार धूप नहीं मिल पाती। कभी-कभी जाड़े में वर्षा भी हो जाती है अथवा ओले गिर जाते हैं इससे फसल को क्षति पहुँचती है।

भारत में कपास के साथ कई अन्य फसलें भी बोयी जाती हैं। इसके साथ सबसे अधिक मूंगफली बोते हैं। पंजाब में अमरीकन और देसी कपास मिलाकर बोते हैं। उत्तर प्रदेश में इसे मेथी, मूंग, वरसीम, तोरिया, ग्वारबर, आदि फसलों के साथ बोते हैं। राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में इसके साथ ज्वार बोयी जाती है। लाल मिट्टी वाले क्षेत्रों में कपास के साथ अरहर, तिल, ज्वार या बाजरा बोया जाता है। मध्य महाराष्ट्र और पश्चिमी महाराष्ट्र के काली मिट्टी वाले क्षेत्र में कपास और मकई तथा गुजरात में कपास और अरहर तथा धान और आन्ध्र के दक्षिणी भाग में कपास और मूंगफली तथा रागी साथ-साथ बोया जाता है।

भारत में कपास का प्रति हैक्टेयर उत्पादन केवल १२४ किलोग्राम का है, जबकि मिस्र में यह ५०० किलोग्राम और संयुक्त राज्य अमरीका में ३७५ किलोग्राम का है। सिंचाई वाले भागों में असिंचित क्षेत्रों की तुलना में प्रति हैक्टेयर उत्पादन अधिक होता है।

कपास की किस्में (*Varieties of Cotton*)—भारत में तीन जाति की कपास पैदा की जाती है :

प्रथम जाति की कपास (*Gossypium arboreum*) भारत की ही उपज मानी जाती है। इस जाति की कपास खुरदरी और छोटे रेशे वाली होती है (११/१६ इन्च से कम) यद्यपि कुछ मध्यम रेशे वाली कपास भी होती है। इसका उत्पादन देश के सभी कपास उत्पादक राज्यों में किया जाता है।

दूसरे जाति की कपास (*Gossypium herbaceum*) भारत में मध्य पूर्व के देशों से लाकर लगायी गयी है। यह कपास प्रथम जाति की अपेक्षा अधिक अच्छी

और लम्बी होती है (रेशा १/२ इंच से ७/८ इंच तक होता है)। इसके उत्पादक क्षेत्र गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और कर्नाटक हैं।

तीसरे जाति की कपास (*Gossypium hirsutum*) भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में बोयी जाने लगी। इसका धागा मध्यम से लम्बा (७/८ इंच से अधिक) और उत्तम श्रेणी का होता है। इस प्रकार की कपास का उत्पादन पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान के बीकानेर संभाग, मध्य प्रदेश के कुछ भागों में, आन्ध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में होता है।

भारत में कपास के कुल उत्पादन क्षेत्र का १७ प्रतिशत छोटे रेशे वाली, ४४ प्रतिशत मध्यम रेशे वाली और ३६ प्रतिशत लम्बे रेशे वाली कपास के अन्तर्गत पाया जाता है। कुल कपास के उत्पादन का लगभग १६ प्रतिशत छोटे रेशे वाली, ४३ प्रतिशत मध्यम रेशे वाली और ४१ प्रतिशत लम्बे रेशे वाली का होता है।

व्यापारिक दृष्टिकोण से भारत में मुख्यतः १४ किस्मों की कपास पैदा की जाती है। इनकी अच्छाई या बुराई, उनकी मजबूती, धागे, सूक्ष्मता, रंग, चमक और मोटाई की प्रतिशतता पर निर्भर करती है। ये किस्में इस प्रकार हैं: बंगाल, अमरीकन, धोलेरा, उमरा, मड़ौच, सूरती, कम्पटा, कम्बोडिया, जयवंत, कोमिला, दक्षिणी सलेम, मद्रास, यूगड़ा और तिरुनलवेली।

पिछले कई वर्षों में भारत में दो किस्मों को मिलाकर नयी और अच्छी किस्म तैयार करने की ओर प्रयास किये गये हैं। इनमें काफी सीमा तक सफलता मिली है। भारतीय केन्द्रीय कपास समिति इस ओर काफी प्रयत्नशील रही है और इसने जिन नयी किस्मों को निकाला है उनमें मुख्य ये हैं कल्याण, विजय, विजनपा, विस्तार, जरीला, जयधर, लक्ष्मी, प्रताप, गारोनी, सूरती-सुयोग, हैदराबाद-गारोनी, इन्दौरी और मालवी।

उत्पादक क्षेत्र—भारत में कपास की खेती का क्षेत्र अत्यन्त बिखरा हुआ है। इन क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की जलवायु, मिट्टी और उत्पादन की दशाएं पायी जाती हैं। अतएव प्रत्येक क्षेत्र की कपास अन्य क्षेत्रों से भिन्न होती है और उस क्षेत्र की अवस्थाओं के अनुरूप होती है। कपास के उत्पादन की दृष्टि से दक्षिण की काली मिट्टी का प्रदेश बड़ा महत्त्वपूर्ण है। गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश मिलकर देश के उत्पादन का लगभग ५० प्रतिशत कपास उत्पन्न करते हैं। अन्य मुख्य उत्पादक तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, आदि हैं।

महाराष्ट्र कपास उत्पादन क्षेत्रों में प्रमुख है। यहाँ कपास अगस्त तक बोयी जाती है और दिसम्बर-जनवरी तक चुन ली जाती है। यहाँ कपास का उत्पादन कई क्षेत्रों में किया जाता है: (१) अकोला और अमरावती जिलों में उमरा और कम्बोडिया कपास बोयी जाती है। (२) यवतमाल जिले में पूसद, दरवाहा तालुकों में उमरा कपास होती है। (३) बुलढाना जिले के मलकपुर, महकार खामगाँव और

जलगाँव तालुकों में ऊमरा और कम्बोडिया कपास पैदा की जाती है। (४) नागपुर, वर्धा, चन्द्रपुर और छिन्दवाड़ा जिलों में कम्बोडिया कपास होती है। इन सब जिलों में कपास वर्षा के सहारे ही पैदा की जाती है। (५) कर्नाटक सामली,

चित्र—६६

बीजापुर, नासिक, अहमदनगर, शोलापुर, पूना, तथा प्रमाली अन्य उत्पादक जिले हैं। यहाँ ऊमरा और खानदेशी कपास होती है।

गुजरात में समुद्र तटीय क्षेत्रों को छोड़कर मुख्यतः तीन क्षेत्रों में कपास पैदा की जाती है। अधिकतर उत्पादन वर्षा के सहारे ही होता है। छोटे रेशे वाली देशी कपास अधिक पैदा की जाती है। (१) उत्तरी गुजरात में अहमदाबाद, महसाना और

बनासकांठा जिलों में साबरमती नदी के पार और उत्तरी सौराष्ट्र तथा कच्छ में भौलेरा और वागड़ किस्म की कपास पैदा की जाती है और अमरेली, अहमदाबाद तथा दक्षिणी सौराष्ट्र में घटिया किस्म की कपास। (२) मध्य गुजरात के नडीय, बड़ौदा, खेड़ा, गोहिलवाड, पंचमहल, साबरकांठा जिलों में भड़ौंच कपास पैदा की जाती है। (३) दक्षिणी गुजरात के सूरत और पश्चिमी खानदेश जिलों में सूरती और नवसारी किस्में पैदा की जाती हैं।

गुजरात में उत्तम काली मिट्टी पायी जाती है और वर्षा ६० सेण्टीमीटर तक होती है। कपास जून तक बोयी जाती है और अक्टूबर-नवम्बर से मार्च-अप्रैल तक चुन ली जाती है।

मध्य प्रदेश में जून में बुआई की जाती है और नवम्बर से मार्च तक चुनाई की जाती है। यहाँ मालवा के पठार एवं नर्मदा-ताप्ती की घाटियों में काली और कछारी मिट्टियों में इसका उत्पादन किया जाता है। नीमाड़, इन्दौर, रायपुर, धार, देवास, उज्जैन, रतलाम, मन्दसौर जिलों में ऊमरा, जरीला, विरनार, मालवी और इन्दौरी कपास बोयी जाती है।

राजस्थान में गंगा नहर क्षेत्र में गंगा नहर में पंजाब देशी और पंजाब-अमरीकन तथा झालावाड, कोटा, टोंक, बूंदी जिलों में मालवी कपास तथा भीलवाड़ा, उदयपुर, चित्तौड़, अजमेर और उदयपुर जिलों में राजस्थान देशी और अमरीकन कपास बोयी जाती है।

पंजाब और हरियाणा में कपास की बुआई मार्च से अगस्त तक और चुनाई जनवरी तक की जाती है। अधिकतर उत्पादन सिंचाई के सहारे किया जाता है। प्रमुख उत्पादक जिले पंजाब में अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना, पटियाला, संगरूर, भटिंडा तथा हरियाणा में गुड़गाँव, करनाल और रोहतक हैं। इनमें अधिकतर पंजाब-अमरीकन कपास पैदा की जाती है।

उत्तर प्रदेश में गंगा और यमुना के दोआब तथा रुहेलखण्ड और बुन्देलखण्ड संभागों में सिंचाई के सहारे छोटे रेशे वाली कपास पैदा की जाती है। लम्बे रेशे वाली कपास का उत्पादन भी किया जाने लगा है। मेरठ, बिजनौर, मुज़फ्फरनगर, एटा सहारनपुर, बुलन्दशहर, अलीगढ़, आगरा, इटावा, कानपुर, रामपुर, बरेली, नैनीताल (तराई), मथुरा, मैनपुरी और फर्रुखाबाद प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

तमिलनाडु में कपास दोनों ही मानसून कालों में बोयी जाती है और साल भर ही यह कपास किसी न किसी क्षेत्र में बोयी जाती है। यहाँ अधिकतर कम्बोडिया, यूगैंडा, मद्रास-यूगैंडा, सलेम, तिरुचिरापल्ली किस्म की कपास पैदा की जाती है। यह सारा उत्पादन काली मिट्टी के क्षेत्रों में किया जाता है। कपास उत्पादक प्रमुख जिले कोयम्बटूर, सलेम, रामनाथपुरम, मदुराई, तिरुचिरापल्ली, तिरुनलवैली और थंजवूर हैं।

आन्ध्र प्रदेश में कपास का उत्पादन गुंटूर, कड्डप्पा, करनूल, पश्चिमी गोदावरी, कृष्णा, महबूबनगर, आदिलाबाद और अनन्तपुर जिलों में किया जाता है। यहाँ मुख्यतः मुगारी किस्म बोयी जाती है।

कर्नाटक में दो प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है। प्रथम क्षेत्र काली मिट्टी का है जिसे सलाहट्टी क्षेत्र कहते हैं। इसके अन्तर्गत बलारी, हसन, शिमोगा, चिकमगलूर और चित्तलदुग जिलों में वर्षा के सहारे अधिकतर देशी कपास पैदा की जाती है। दूसरा क्षेत्र लाल मिट्टी का है जिसे डोड़ाहट्टी कहते हैं। इसमें वर्षा और सिंचाई दोनों के सहारे पंजाब-अमरीकन कपास बोयी जाती है।

असम और मेघालय में कपास का उत्पादन पहाड़ी क्षेत्रों में किया जाता है। खासी, जयन्तिया, मिकिर, लुशाई, नागा और गारो पहाड़ियों में सीढ़ीदार खेतों में वनों को जलाकर साफ की गयी भूमि में कपास पैदा की जाती है।

अन्य उत्पादकों में बिहार, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में भी यत्र-तत्र कपास पैदा की जाती है।

बिहार में सारन, चम्पारन, संथाल परगना, मुजफ्फरपुर, हजारीबाग और रांची जिलों में; उड़ीसा में धेनकनाल, कटक, सुन्दरगढ़ और कोरापुट जिलों में तथा पश्चिमी बंगाल में चौबीस परगना, मुर्शिदाबाद जिलों में कपास पैदा की जाती है।

उत्पादन एवं व्यापार—सन् १९५०-५१ में कपास के अन्तर्गत ५८.८ लाख हैक्टेअर, १९६०-६१ में ७६.१ लाख हैक्टेअर और १९७२-७३ में ७७.० लाख हैक्टेअर भूमि थी। इन वर्षों में कपास का उत्पादन क्रमशः २८.७ लाख, ५२.९ लाख और ५४.९ लाख गाँठों का हुआ था। प्रत्येक गाँठ में १८० किलोग्राम कपास आती है। १९७३-७४ में कपास का उत्पादन ८० लाख गाँठ (अर्थात् ३३ प्रतिशत अधिक) हो जाने का अनुमान है।

भारत के विभाजन के पूर्व कपास पैदा करने में भारत का स्थान दूसरा था और यहाँ से काफी मात्रा में कपास का निर्यात किया जाता था किन्तु विभाजन के पश्चात् से भारत कपास का मुख्य आयातक बन गया है क्योंकि प्रमुख कपास उत्पादक क्षेत्र पाकिस्तान को चले गये। फिर भी भारत की छोटे रेशे वाली खुरदरी कपास की माँग संयुक्त राज्य अमरीका और जापान में होती है जहाँ ऊन के साथ मिलाकर मोटे कम्बल और मोटे वस्त्र बनाये जाते हैं। थोड़ी मात्रा में रुई का निर्यात इंगलैण्ड, जापान, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, हालैण्ड, न्यूजीलैण्ड और आस्ट्रेलिया को भी किया जाता है। लम्बे रेशे वाली रुई का आयात पाकिस्तान, मिस्र, संयुक्त राज्य अमरीका, सूडान, केनिया, पीरू आदि देशों से किया जाता है। १९५०-५१ में १३.७ करोड़ लाख रुपये और १९७२-७३ में २१.५ करोड़ रुपये के मूल्य की कपास का निर्यात भारत से किया गया। इन वर्षों में आयात का मूल्य क्रमशः २६.४ लाख और ९०.८ लाख रुपया था।

जूट या पटसन (Jute)

विश्व में जूट उत्पन्न करने वाले देशों में अविभाजित भारत का स्थान सबसे आगे था किन्तु विभाजन के फलस्वरूप इस परिस्थिति में अन्तर पड़ गया। जूट पैदा करने वाले पावना, बोगरा, माइमेनसिंह, रंगपुर, मालदा, ढाका और फरीदपुर जिले बंगला देश (तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान) को चले गये। अब विश्व के उत्पादन का ३८% भारत और ५३% बंगला देश से प्राप्त होता है।

भौगोलिक दशाएँ—(१) जूट की खेती के लिए ऊँचे तापमान और नम जलवायु की आवश्यकता होती है। साधारणतः तापमान २५° से ३५° सेण्टीग्रेड तक का उपयुक्त रहता है।

(२) अंकुर निकलने के दो-तीन महीने बाद पौधे को अधिक जल की आवश्यकता पड़ती है अतः इसकी खेती १०० से २०० सेण्टीमीटर या उससे भी अधिक वर्षा वाले भागों में होती है। प्रति सप्ताह २ से ३ सेण्टीमीटर वर्षा होना इसके लिए लाभप्रद है।

(३) जूट की खेती में भूमि बहुत ही अनुपजाऊ हो जाती है। इस कारण जूट की खेती उन्हीं क्षेत्रों में की जाती है जहाँ प्रति वर्ष नदियाँ उपजाऊ मिट्टी लाकर बिछाती रहती हैं। बंगाल के डेल्टा में प्रतिवर्ष करोड़ों टन मिट्टी बाढ़ के समय भूमि पर फैली जाती है। इसी में अधिक जूट पैदा किया जाता है। सर्वोत्कृष्ट जूट दोमट मिट्टियों में होता है। काँप मिट्टी में भी यह पैदा किया जाता है किन्तु उसमें एक-रूपता नहीं रहती। बलुही मिट्टी में रेशे खुरदरे होते हैं।

बंगाल में जूट का उत्पादन अधिकतर नदियों के पुराने या नये कगारों पर उभरी हुई भूमि (चार भूमि) और बलुहे किनारों पर किया जाता है।

जूट के पौधों से रेशा प्राप्त करने के लिए उसको २०-२५ दिन तक जल में भिगोकर रखना पड़ता है अतः उत्तम और मीठे जल की भी आवश्यकता होती है। जूट के डण्ठल को खेत से काटकर तालाब, तलैया और झील के स्थिर जल में गाड़ दिया जाता है। जब वह २०-२५ दिन तक सड़ चुकता है तो उसे पीटकर धोया जाता है और फिर डण्ठल को सुखाकर उससे रेशे को अलग कर लेते हैं।

(४) जूट के लिए सस्ते मजदूरों की भी आवश्यकता होती है क्योंकि तैयार पौधों को काटने तथा बण्डल बनाने के लिए अधिक मजदूर चाहिए।

जूट का उत्पादन पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम, आदि राज्यों तक ही सीमित है क्योंकि यहाँ गंगा, महानदी और ब्रह्मपुत्र, द्वारा लायी हुई उपजाऊ मिट्टी मिलती है और बाढ़ के साथ बदलते रहने से इसकी उपजाऊ शक्ति का ह्रास नहीं होता। बिना खाद दिये इन राज्यों में जूट की खेती की जाती है।

जूट का पौधा साधारणतः ३ से ३॥ मीटर ऊँचा होता है। इसकी खेती उस उभरी हुई भूमि पर होती है जो नदियों के पुराने या नये कगारों के कारण बन

जाती है। गर्तो में धान और जूट को बारी-बारी से बोते हैं। जूट मार्च से मई तक बोया जाता है और अगस्त से सितम्बर तक काट लिया जाता है। पश्चिमी बंगाल में भूमि के ऊँचे-नीचे होने पर ही जूट बोने का समय निर्भर रहता है। निम्न भूमियों में बाढ़ें आती हैं अतः वहाँ उच्च भूमियों की अपेक्षा शीघ्र ही बोआई करदी जाती है। निम्न भूमियों पर फरवरी से मार्च तक तथा उच्च भूमियों पर मार्च से जून तक जूट की बोआई की जाती है। जो फसल सबसे पहले बोयी जाती है उसी को पहले काटा जाता है। वैसे सभी प्रकार की फसल के लिए कटाई अगस्त से सितम्बर तक की जाती है।

भारत में दो प्रकार की जूट पैदा की जाती है : चीनी जूट (Chinese Jute) नदियों के उभरे हुए किनारों (Chars) या नदी के द्वीपों में बोया जाता है। देशी जूट (Indian Jute) मुख्य रूप से नीची भूमियों (Bils) में बोया जाता है। भारत के अनेक भागों में ये दोनों प्रकार के जूट साथ-साथ उगते हैं। प्रथम प्रकार का जूट सफेदी लिए और चमकीला तथा अच्छा होता है।

उत्पादक क्षेत्र—जूट उत्पादन के क्षेत्र मुख्यतः पश्चिमी बंगाल, बिहार, असम तथा मेघालय में हैं। ये चारों राज्य मिलकर कुल जूट क्षेत्रफल के ६० प्रतिशत पर जूट बोते हैं। शेष उत्पादन उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और त्रिपुरा में प्राप्त होता है। जूट की खेती दक्षिण की ओर गंगा के मुहाने के पास कम होती है क्योंकि यहाँ भूमि इतनी नीची है कि जूट के लिए अनुपयुक्त है। पश्चिम में दक्षिण के पठार की ओर भी, जहाँ पथरीली भूमि अधिक है, जूट की खेती कम होती है।

पश्चिमी बंगाल में कूचबिहार, दार्जिलिंग, जलपाईगुड़ी, बाकुंडा, बर्दवान, हुगली, हावड़ा, माल्दा, मिदनापुर, मुर्शिदाबाद, पश्चिमी दिनाजपुर, २४ परगना और इसलामपुर मुख्य उत्पादक जिले हैं।

असम में कछार, दरांग, गोलपाड़ा, कामरूप, लखीमपुर, नवगाँव, शिवसागर तथा मेघालय में गारो, खासी और जयन्तिया पहाड़ियों, मिकिर और उत्तरी कछार की पहाड़ियों में जूट पैदा किया जाता है।

बिहार के मुख्य उत्पादक तराई से संलग्न हैं। चम्पारन, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, सारन, सहरसा, भागलपुर, मुंगेर और संथाल परगना में यह विशेष रूप से पैदा किया जाता है।

उड़ीसा में तटीय भागों में विशेषकर बोलंगिर, पटना, धेनकनाल, गंजाम, कालाहांडी, क्योंझार, कोरापुट, बालासोर, कटक और पुरी जिलों में जूट बोया जाता है।

उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में बहराइच, देवरिया, गोंडा, सीतापुर और खेरी जिलों में जूट पैदा होता है।

कुछ जूट आन्ध्र प्रदेश, (विशाखापट्टनम और श्रीकाकुलम जिले), मध्य प्रदेश

(रायपुर जिला), केरल (मालाबार तट), त्रिपुरा और मनीपुर में भी पैदा किया जाता है।

उत्पादन एवं व्यापार—१९५०-५१ में ५·७१ लाख हैक्टेअर भूमि पर जूट की खेती की गयी। १९६०-६१ और १९७२-७३ में यह क्षेत्र क्रमश: ७·७० लाख हैक्टेअर और ७·०५ लाख हैक्टेअर था। इन वर्षों में जूट का उत्पादन ३३·०६ लाख गाँठें, ४१·३४ लाख गाँठें और ४८.६८ लाख गाँठें हुआ। प्रत्येक गाँठ में १८० किलोग्राम जूट होता है। १९७३-७४ में यह उत्पादन ७४ लाख गाँठ (अर्थात् १६ प्रतिशत अधिक) हो जाने का अनुमान है। १९७१-७२ में जूट का कोई आयात नहीं किया गया।

विभाजन के फलस्वरूप भारत में जूट की कमी अनुभव होने लगी क्योंकि जूट उत्पादक क्षेत्रों का ७३ प्रतिशत तत्कालीन पाकिस्तान को चला गया जबकि जूट के प्रायः सारे कारखाने भारत में ही रहे। अतः जूट की कमी पूरा करने के लिए इसका उत्पादन क्षेत्र बढ़ाया जा रहा है। इसके लिए घाघरा, सरयू, ताप्ती, महानदी, आदि की घाटियों और समुद्र तटीय क्षेत्रों तथा तराई प्रदेश में जूट का उत्पादन बढ़ाने के प्रयासों में सफलता मिली है। फिर भी अभी बंगला देश से जूट का आयात किया जाता है। १९५०-५१ में २७५ लाख रुपये और १९७२-७३ में ११३ लाख रुपये का जूट आयात किया गया।

भारत से बहुत ही अल्प मात्रा में कच्चे जूट का निर्यात संयुक्त राज्य अमरीका, इंगलैण्ड, रूस, मिस्र, आस्ट्रेलिया को किया जाता है। १९७२-७३ में ३·५ करोड़ रुपये का जूट निर्यात किया गया।

मैस्टा (Mesta)

भारत में जूट की कमी को पूरा करने के उद्देश्य से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जूट के समान ही रेशा पैदा करने वाले पौधे मैस्टा का उत्पादन बढ़ाया गया है। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में इसे कई नामों से पुकारा जाता है, जैसे महाराष्ट्र और मेवाड़ में *अम्बाड़ी, आन्ध्र में बिमली, बिहार में बन्ना, महाराष्ट्र में बम्बई पटुआ,* आदि। भारत के बाहर इसे कैनाफ, रोजेला, आदि कहते हैं।

मैस्टा का उत्पादन ऐसी भूमि पर किया जाता है जो पूर्णतः जूट की पैदावार के उपयुक्त नहीं है। यह सूखे भागों में पैदा किया जा सकता है। इसका पौधा ३ से ४ मीटर तक ऊँचा होता है और बोने के १०० से १८० दिन बाद काटने लायक हो जाता है। आन्ध्र, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में यह अकेला ही बोया जाता है किन्तु अन्य राज्यों में इसे रागी, मोटे अनाज, दालें, चावल और कपास के साथ ही बोया जाता है। इसके लिए जूट जैसी जलवायु चाहिए। पौधे से रेशा प्राप्त करने के लिए इसे कई दिनों तक जल में सड़ाया जाता है।

मेस्टा का उत्पादन आन्ध्र और बंगाल में अधिक होता है। ये दोनों राज्य मिलकर कुल उत्पादन का लगभग ७६ प्रतिशत पैदा करते हैं। अन्य उत्पादक राज्य तमिलनाडु, असम, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा और पंजाब हैं।

१९६०-६१ और १९७२-७३ में २.३१ लाख हैक्टेयर और २.८८ लाख हैक्टेयर भूमि में मेस्टा बोया गया। इसका उत्पादन ११.६ लाख और ११.६ लाख गाँठों का हुआ।

सन या सनई (Flex)

सनई एक रेशेदार पौधा होता है जिसके रेशे सफेद और चमकीले होते हैं। सन प्राप्त करने के लिए इसके पौधों को भी सड़ाकर रेशा लिया जाता है। इसके लिए उपजाऊ भूमि की आवश्यकता नहीं होती। इसकी विशेषता यह है कि जहाँ जूट पैदा नहीं होता वहाँ यह उत्पन्न हो सकता है। साधारणतः इसके लिए ५० सेन्टीमीटर तक की वर्षा और १५° से २५° सेन्टीग्रेड तक का तापमान चाहिए। इसकी कृषि कई प्रकार की मिट्टियों पर की जाती है किन्तु हल्की दोमट मिट्टी इसके लिए सर्वोत्तम होती है। निचले क्षेत्रों में चीका मिट्टी में पौधों का उत्पादन अधिक होता है किन्तु रेशा घटिया किस्म का होता है।

सनई का सबसे अधिक उत्पादन उत्तर प्रदेश में किया जाता है। यहाँ यह वाराणसी, जौनपुर, इलाहाबाद, प्रतापगढ़, पीलीभीत, सुलतानपुर और आजमगढ़ जिलों में पैदा की जाती है।

बिहार में यह पटना, मुंगेर, भागलपुर, सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर और पूर्णिया जिलों में उत्पन्न होती है।

मध्य प्रदेश के प्रमुख उत्पादक छिन्दवाड़ा, जबलपुर, बेतूल, होशंगाबाद, माण्डला और सिऊनी जिले हैं।

उड़ीसा में यह सम्बलपुर, कटक, बालासोर और गंजाम जिलों में, महाराष्ट्र में रत्नागिरि; गुजरात में पंचमहल और अहमदाबाद जिलों में, आन्ध्र प्रदेश में गन्तूर, कृष्णा, वारंगल, तन्दूर, गुलबर्गा और पूर्वी गोदावरी जिलों में, पंजाब में होशियारपुर, कांगड़ा, लुधियाना, अम्बाला, जालंधर, गुरदासपुर जिलों में और हरियाणा में रोहतक और करनाल जिलों में भी पैदा की जाती है।

सनई का रेशा तीन तरह का होता है सफेद, गंजाम या हरा और देवगढ़ी। सबसे अधिक उपज सफेद रेशे वाली सनई की होती है। कुल उपज का लगभग ६६ प्रतिशत भाग सफेद रेशे वाली सनई का होता है। सफेद सनई व्यापार की दृष्टि से चार श्रेणियों की होती है—बनारस, छपरा, बंगाल और गोपालपुर। यह मुख्यतः बिहार, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश के पूर्वी और मध्य जिलों तथा उड़ीसा के कुछ भागों में उगाई जाती है। इसमें लगभग ५० प्रतिशत बनारसी किस्म की होती है। गंजाम या हरी किस्म की सनई मुख्यतः मध्य प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश के पीलीभीत

और मुरादाबाद जिलों तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों तथा उड़ीसा और कर्नाटक राज्यों में उगायी जाती है। इस किस्म की उपज कुल उपज का ४३ प्रतिशत होती है। देवगढ़ी किस्म महाराष्ट्र राज्य के केवल रत्नागिरि जिले में उगायी जाती है। इसकी उपज कुल उपज का केवल एक प्रतिशत होती है।

भारत सनई का सबसे अधिक निर्यात इंग्लैण्ड को करता है। इसके अतिरिक्त अमरीका, फ्रांस और इटली भारत से सनई खरीदते हैं।

पटुआ या हैम्प (Sann-hemp)

भारत में इसकी तीन किस्में होती हैं—सीसल हैम्प, सन हैम्प और भारतीय हैम्प। इनमें सबसे अच्छी सन हैम्प होती है। यह महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा आन्ध्र में गोदावरी और कृष्णा जिले तथा तमिलनाडु में तिरुनलवैली जिलों में होता है। इसका अधिकतर भाग संयुक्त राज्य, बेल्जियम, इटली, फ्रांस और जर्मनी को निर्यात कर दिया जाता है।

यह भारत में अधिकतर भांग, गांजा और चरस के रूप में काम में लायी जाती है। रेशों के लिए इसका उपयोग भारत में कम होता है। रेशों के लिए इसकी पैदावार दक्षिणी-पश्चिमी हिमालय के भागों में (नेपाल, शिमला, कश्मीर, कुमायूँ और कांगड़ा) होती है। सिसल हैम्प का अभी तक व्यावसायिक उपयोग कम हुआ है। यह सिलहट (असम), तिरहुत (बिहार), महाराष्ट्र और दक्षिणी भारत में उगायी जाती है। १९७२-७३ में १.३ लाख हैक्टेयर भूमि पर ५० हजार टन हैम्प का उत्पादन किया गया।

फल, सब्जियाँ और गर्म मसाले

फल (Fruits)

भारत में फलों के बगीचे बहुत कम पाये जाते हैं। इसका विशेष कारण यही है कि यहाँ फलों के बगीचे लगाने की ओर भारतीयों की रुचि नहीं है। देश की केवल एक प्रतिशत भूमि में ही फल उगाये जाते हैं। भारतीय फलों में आम, नारंगी और केला मुख्य हैं। सब्जियों में आलू, गोभी, तोरई, सीताफल, प्याज टमाटर, आदि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

भारत में विभिन्न प्रकार के फल लगभग १३८० लाख हेक्टेयर भूमि में उगाये जाते हैं। भारत की सघन जनसंख्या के विचार से यह क्षेत्रफल बहुत कम है। भारत में लगभग १३ करोड़ मन फलों का उत्पादन होता है। इसमें से बाजार में बिकते समय तक पर्याप्त मात्रा में फल नष्ट हो जाते हैं। ऐसा अनुमान किया गया है कि लगभग २ करोड़ ६० लाख मन फल बेकार हो जाते हैं और केवल १० करोड़ मन का ही उपयोग होता है। प्रति व्यक्ति प्रतिदिन केवल १ औंस फल ही उपयोग में आते हैं। यह औसत बहुत ही कम है। संयुक्त राज्य अमरीका के प्रमुख नगर न्यूयार्क में फलों के उपयोग का प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसत १६ औंस है। हमारे देश में सिवाय देसी आम के गाँवों में और कोई फल अधिक नहीं खाया जाता।

फल उत्पादक क्षेत्र

कुल कृषिगत भूमि के केवल २% भाग पर ही फल और सब्जियाँ पैदा की जाती हैं। सबसे प्रमुख क्षेत्र गंगा-ब्रह्मपुत्र की घाटी में पाया जाता है। ज्यों-ज्यों पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ते हैं फलों के क्षेत्र में वृद्धि होती जाती है। उत्तर प्रदेश में कृषिगत भूमि के १% भाग पर, बिहार में २५% भाग पर, असम में ७% भाग पर तथा बंगाल में ३% भाग पर ये पैदा किये जाते हैं।

(१) भारत में कश्मीर की घाटी, कुमायूँ की पहाड़ियाँ, हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियाँ और कुलू की घाटी फलों की खेती के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इस भाग में सेब, नाशपाती, बेर, स्ट्राबेरी, आदि फल बहुतायत से पैदा होते हैं।

(२) सतलज की घाटी में गर्म और शुष्क स्थानों पर चिलगोजे की खेती की जाती है। उच्च पर्वतीय ढालों पर बिना सिंचाई के ही फलों की पैदावार हो जाती है परन्तु निचली घाटियों में ग्रीष्म ऋतु में फलों के बगीचों में सिंचाई की व्यवस्था करनी पड़ती है।

(३) उत्तरी शुष्क क्षेत्र में पंजाब के मैदान, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिले, पश्चिमी मध्य प्रदेश, राजस्थान, आदि सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रों में ५० से ८५ सेण्टीमीटर तक की वार्षिक वर्षा होती है। इस क्षेत्र में आम, फालसा, नाशपाती, बेर, अनार, अंजीर, अमरूद, लीची, सन्तरा, आदि अनेक प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं।

मुख्य फल

भारत में तीन प्रकार के फल पैदा किये जाते हैं : (१) शीतोष्ण कटिबन्धीय, *जैसे सेब, नाशपाती, खुबानी, अंगूर, बेर, स्ट्राबेरी, आदि;* (२) अर्द्ध-उष्णकटिबन्धीय, *जैसे नारंगी, नीबू, अंजीर, लीची, लुकाट, खरबूजा, तरबूज, आदि;* (३) उष्णकटिबन्धीय, *जैसे आम, खजूर, अमरूद, केला, अनन्नास, आदि।*

आमों की अनेक प्रकार की किस्में उत्तर प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, मेरठ, सहारनपुर, बरेली और हरदोई जिलों में, पंजाब के होशियारपुर, अम्बाला, गुरदासपुर, करनाल, आदि जिलों में तथा दिल्ली राज्य में बहुतायत से होती हैं। आम की कुछ अच्छी किस्में पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों, उड़ीसा और मध्य प्रदेश के बिलासपुर, जबलपुर, होशंगाबाद, आदि जिलों में, आन्ध्र प्रदेश के गोदावरी, कृष्णा और विशाखापट्टनम, आदि जिलों में और महाराष्ट्र तथा गुजरात के कुछ जिलों में एवं तमिलनाडु और कर्नाटक के कुछ जिलों में होती हैं। *आम का व्यापारिक महत्त्व बहुत थोड़े ही दिनों से बढ़ा है, आम की फसल प्रायः घरेलू खपत की पूर्ति करती है। शीघ्र ही सड़ जाने के कारण इसका विदेशी व्यापार बहुत कम* है। आम का मुरब्बा और अचार बनाकर भी विदेशों को भेजा जाता है।

केला भी भारत का एक महत्त्वपूर्ण फल है। इसे तरकारी के रूप में भी खाया जाता है। दक्षिणी भारत में केला बहुतायत से पैदा होता है। एक एकड़ भूमि

में लगभग ८०० केले के वृक्ष लगाये जाते हैं। एक वृक्ष पर केले का एक ही घरक्षा लगता है जिसमें ४० से ५० तक फलियाँ होती हैं। इसके लिए तालाबों की काली मिट्टी, समुद्री किनारे के आस-पास की भूमि तथा मटियार दुमट भूमि अनुकूल पड़ती है। केले को नमी की बहुत आवश्यकता होती है। इसलिए जिन क्षेत्रों में वर्षा यथेष्ट मात्रा में नहीं होती वहाँ इसकी पैदावार के लिए सिंचाई आवश्यक है। इसकी खेती पश्चिमी बंगाल में मालदा, मुर्शिदाबाद, वर्द्धवान, नादिया और २४ परगना जिलों में, मध्य प्रदेश (भुसावल, नीमाड़ जिलों में), उड़ीसा; बिहार के दरभंगा, भागलपुर, सारन, पूर्णिया, चम्पारन जिलों में, आन्ध्र प्रदेश के गोदावरी, कृष्णा और विशाखापट्टनम जिलों में; महाराष्ट्र के अकोला, अमरावती, वर्धा जिलों में, कर्नाटक तथा तमिलनाडु में बहुतायत से होती है। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, कुमायूँ, उत्तराखण्ड क्षेत्रों में भी केले की पर्याप्त फसल होती है।

सन्तरे और नारंगियाँ भारत के प्रायः सभी राज्यों में उत्पन्न की जाती हैं। परन्तु नागपुर, सिलहट, दार्जिलिंग आदि में बहुतायत से पैदा किये जाते हैं। नागपुर का सन्तरा तो अपनी मिठास के लिए भारत भर में प्रसिद्ध है।

मौसम्मी उत्तर प्रदेश के बनारस जिले, महाराष्ट्र के पूना, सतारा, नासिक जिले और बिहार के राँची जिले में बहुतायत से पैदा होता है। उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, वाराणसी, बरेली और फैजाबाद जिले तथा बिहार के भागलपुर, मुजफ्फरपुर और चम्पारन जिले अमरूद के उत्पादन के लिए भारत भर में प्रसिद्ध हैं।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल में फलों का उत्पादन ४,४०,००० हैक्टेअर भूमि पर और बढ़ाया जायगा।

सब्जियाँ (Vagetables)

साग-सब्जियों में आलू की बड़ी महत्ता है। कहा जाता है कि विश्व में आलू दक्षिणी अमरीका में सबसे पहले पाया गया था और वहीं से यूरोप होता हुआ हमारे देश में आया है। भारत में इसकी खेती लगभग १००-१२५ वर्षों से ही की जाने लगी है। गत कुछ वर्षों से ही इसका औद्योगिक महत्त्व बढ़ गया है और यह एक अति प्रसिद्ध खाद्य वस्तु बन गया है।

आलू की खेती मैदानी भाग से लेकर सात हजार फुट की ऊँचाई तक के पहाड़ी स्थानों में की जाती है। इसकी खेती के लिए ५०° फा० से ८०° फा० तक का तापमान अपेक्षित है। इसकी खेती मैदानी भागों से लगाकर २,००० मीटर की ऊँचाई तक की जाती है। भारत में यह सर्दियों तथा गर्मियों दोनों ऋतुओं में उत्पन्न होता है। गर्मी की फसल फरवरी से अप्रैल तक बोकर मई से सितम्बर तक खोद ली जाती है। सर्दियों की फसल सितम्बर से दिसम्बर तक बोयी जाती है और जनवरी से अप्रैल तक खोद ली जाती है। देश में आलू की लगभग २८ किस्में बोयी जाती हैं। यूरोपीय आलू की किस्में पहाड़ों पर बोयी जाती हैं तथा फुलवा, दार्जिलिंग, लाल

गोला और गोला नामक देशी किस्में मैदानों में बोयी जाती है। भारत में असम, बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल इसके प्रसिद्ध उत्पादक क्षेत्र हैं। इन राज्यों में भारत की आलू की खेती का लगभग ८० प्रतिशत भाग पाया जाता है। शेष २० प्रतिशत भाग महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, उड़ीसा, पंजाब और हिमाचल प्रदेश में बोया जाता है।

१९५०-५१ में ३·६ लाख हैक्टेअर और १९७२-७३ में ५·३ लाख हैक्टेअर भूमि पर आलू बोया गया। इन वर्षों में उत्पादन १६·६ लाख टन और ४४·३ लाख टन था।

आलू के अतिरिक्त अरबी, तोरई, गोभी, ककड़ी, शकरकद, कद्दू, पीया, भिण्डी, टमाटर, लौकी, बैंगन, गाजर, मूली, आदि तरह-तरह की साग-सब्जियाँ स्थानीय खपत के अनुसार देश भर में सर्वत्र पैदा कर ली जाती हैं।

गरम मसाले (Spices)

भारत में मसालों का अति प्राचीन काल से ही उत्पादन होता आ रहा है। विदेशों को भी हमारे देश से प्राचीन काल से भारी मात्रा में मसाले निर्यात किये जाते थे। मसालों में काली मिर्च, लाल मिर्च, हल्दी, जीरा, इलायची, लहसुन, धनिया, अदरक, आदि कई प्रकार की वस्तुएँ सम्मिलित की जाती हैं।

काली मिर्च (Pepper) एक लता से प्राप्त होती है। इसका उत्पादन कहवा तथा नारंगी के साथ मिश्रित रूप में तथा अलग से भी किया जाता है। दक्षिणी भारत के किसान इसकी लता अपनी झोंपड़ियों पर तथा आम, कटहल आदि के वृक्षों पर चढ़ा देते हैं। जंगलों में इसकी लताएँ अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं जिनसे काली मिर्च तोड़कर इकट्ठी कर ली जाती है।

इसका उत्पादन समुद्र तल से एक हजार मीटर की ऊँचाई तक होता है। यह बड़ा नाजुक पौधा होता है। इसलिए इसे प्रायः छाया में उगाते हैं। इसके लिए लोम मिट्टी बहुत अनुकूल बैठती है। परन्तु यह लाल दोमट और रेतीली दोमट में पश्चिमी घाट के ढलानों पर बहुतायत के साथ पैदा की जाती है इसके लिए १५० से २०० सेण्टीमीटर की वर्षा तथा १०° सेण्टीग्रेड से ३८° सेण्टीग्रेड तक का तापमान आवश्यक है।

भारत में इसकी खेती मालाबार तट पर पश्चिमी घाट के दोनों ओर के ढलानों पर उत्तर में कोंकन से लेकर दक्षिण से कोचीन तक उगाई जाती है। इसके प्रमुख उत्पादक राज्य केरल, तमिलनाडु और कर्नाटक हैं जिनमें इसके उत्पादन का लगभग ९८ प्रतिशत उत्पन्न होता है। संयुक्त राज्य अमरीका हमारे देश की काली मिर्च का सबसे बड़ा ग्राहक है। ग्रेट ब्रिटेन, अदन, कनाडा, मैक्सिको मिस्र, सोवियत रूस तथा इटली को भी काली मिर्च का निर्यात किया जाता है।

लाल मिर्च (Chillies) का उत्पादन उष्ण और अर्द्ध-कटिबन्धीय जलवायु में सरलता से किया जाता है। समुद्र के धरातल से लगाकर १,५२० मीटर तक उन क्षेत्रों में यह पैदा की जाती है जिनमें वर्षा की मात्रा ६३ सेण्टीमीटर से १२७ सेण्टीमीटर तक होती है। अधिक वर्षा होने पर पत्तियाँ और फल नष्ट हो जाते हैं। इसका पौधा जून और फरवरी दोनों ही महीनों में लगाया जाता है। कम वर्षा वाले भागों में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

मिर्च के लिए भारी दोमट मिट्टी, जिसमें कंकड़-पत्थर न हों तथा जहाँ पानी जमा न रह सके अच्छी होती है। बलुही अथवा हल्की कछारी मिट्टी में सिंचाई और खाद के सहारे अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

जून अथवा जुलाई के प्रथम सप्ताह में इसका बीज नर्सरी में लगाया जाता है और जब पौधा ४०-५० दिन का हो जाता है तो अन्य क्यारियों में रोप दिया जाता है। इसके १ महीने बाद ही फूल आने लग जाते हैं और नवम्बर में इसकी चुनाई आरम्भ हो जाती है। फिर इन्हें धूप में सुखा देते हैं। पूरी तरह सूखने में लगभग ११ दिन लगते हैं।

यह प्रायः सारे भारत में पैदा की जाती है। मुख्य उत्पादक मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक, पंजाब, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात और बिहार हैं।

इलाइची (Cardamoms) भारत के पश्चिमी घाट के बहुत से भागों में जंगली रूप में पैदा होती है। उस भाग में ८५० से १,७०० मीटर तक की ऊँचाई के भागों में इसकी खेती की जाती है। इसके लिए गर्म, नम मौसम तथा १०° से ३०° सेण्टीग्रेड तक का तापमान आवश्यक है। ऊँचे जंगली वृक्षों के छाये में इसका उत्पादन खूब होता है। इसकी खेती के लिए १५० सेण्टीमीटर से अधिक वार्षिक वर्षा तथा ह्यूमस की भारी मात्रा में आवश्यकता होती है। उपज की इन दशाओं के कारण इसका उत्पादन दक्षिणी भारत के नम सदाबहार वृक्षों के जंगलों की भूमि पर ही होता है। केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु और महाराष्ट्र इसके उत्पादक राज्य हैं। केरल में इलाइची की पैदावार इलाइची की पहाड़ी पर सबसे अधिक होती है। कर्नाटक में यह हसन जिले में, तमिलनाडु में मदुराई और नीलगिरि जिले तथा महाराष्ट्र में उत्तरी कनारा जिले में भी पैदा की जाती है। भारत में हरी और सफेद दो प्रकार की इलाइची पैदा की जाती है। भारत में इलाइची का उत्पादन १९७२-७३ में ३१ हजार टन था तथा यह ७६ हजार हैक्टेअर भूमि पर बोई गयी। सऊदी अरब, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका और स्वीडन हमारे देश की इलाइची के सबसे बड़े ग्राहक हैं।

इनके अतिरिक्त हल्दी, जीरा, लाल मिर्च, धनियाँ, सोंठ, प्याज, लहसुन, आदि का उत्पादन हमारे देश के विभिन्न भागों में घरेलू माँग की पूर्ति के अनुसार कर लिया जाता है।

दालचीनी (Cinamon) का पौधा अधिकतर कांप बलुही मिट्टी में आर्द्र-गर्म भागों में पैदा होता है जहाँ वर्षा लगभग २०० सेण्टीमीटर तक होती है। नीलगिरि पहाड़ियों के ढालों पर यह ७२५ मीटर तक पैदा किया जाता है। इसको रोक कर लगाया जाता है। यह रोपण अक्टूबर से नवम्बर तक होता है। वर्षा ऋतु में वृक्ष से छाल प्राप्त की जाती है। वृक्ष से ३-४ वर्ष बाद पहली बार छाल प्राप्त की जाती है और प्रति एकड़ में ५० से ६० पौंड तक छाल मिल जाती है। १० वर्ष के बाद तो इस वृक्ष का इतना विकास हो जाता है कि प्रति एकड़ १५० से २०० पौंड तक दालचीनी मिलती है।

भारत में इसका उत्पादन ५०० हैक्टेअर में होता है। यह उत्पादन मालाबार और नीलगिरि की पहाड़ियों से होता है। तेलीचेरी में 'ब्राउन उद्यान' १०० हैक्टेअर बड़ा है।

अदरक या सोंठ (Ginger) मुख्यतः अधिक वर्षा वाले भागों में पैदा किया जाती है। यह बलुही अथवा चिकनी दोमट मिट्टी में या लाल दोमट मिट्टी में अच्छी पैदा होती हैं। इसकी खेती समुद्र तल से लगाकर ६१५ मीटर तक (जैसे कर्नाटक में) और हिमालय के ढालों पर १,५२० मीटर तक होती है। इसके लिए पश्चिमी घाट के ढाल सर्वोत्तम माने जाते हैं। यह अधिक गर्मी और तरी चाहने वाला पौधा है।

इसका पौधा बारहमासी होता है। इसे पकने में ९ से १० महीने तक लगते हैं। यह मई के अन्त में बोया जाता है और दिसम्बर-जनवरी तक तैयार हो जाता है।

इसका सबसे अधिक उत्पादन केरल राज्य में होता है। यहाँ वाईकम, मुवत्तूपूजा, थोडूपूजा, मीनाछिल, थालापिली और कुनायँनाड जिले प्रमुख उत्पादक हैं। पश्चिमी तट पर मालाबार जिले में इरनाद ताल्लुके में भी अधिक उत्पादन किया जाता है। उत्तर प्रदेश (कुमायूँ), बगाल, महाराष्ट्र, गुजरात (खेड़ा और अहमदाबाद जिले) और आन्ध्र अन्य उत्पादक राज्य हैं। केरल में अदरक से सोंठ बनायी जाती है।

भारत में प्रमुख मसालों का उत्पादन इस प्रकार था -

	१९६९-७०	१९७१-७२	१९७२-७३
सोंठ	१९'३ हजार टन	३३ ८ हजार टन	३३ ९ हजार टन
लाल मिर्च	३८९ ७ ,,	४३९ ३ ,,	४०८'० ,,
हल्दी	१२७ ८ ,,	१४३'९ ,,	१३९ ६ ,,
काली मिर्च	२५ ५ ,,	२६'२ ,,	२६ ९ ,,
सुपारी	१३७ ८ ,,	१५० ५ ,,	१५१ ० ,,

10

पशु-उत्पादन
(ANIMAL PRODUCTION)

किसी देश की अर्थ-व्यवस्था मे पशुओं का स्थान बडा महत्त्वपूर्ण होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश मे पशुओ का कितना महत्त्व है यह डॉ० डार्लिंग के शब्दों से स्पष्ट होगा। वे कहते हैं, "इनके बिना खेत बिना जुते-बोये पडे रहते हैं, खलिहान खाद्यान्नों के अभाव मे खाली पडे रहते है तथा एक शाकाहारी देश में इससे अधिक दुखदायी बात क्या हो सकती है कि यहाँ पशुओ के अभाव मे घी, दूध, आदि पौष्टिक पदार्थों का उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा ही कम है।"

भारत मे पशुओ द्वारा निम्न उद्देश्यो और लाभो की पूर्ति होती है -

(१) कृषि कार्यों मे सहायता के लिए, हल खींचने, दाँय चलाने, गन्ने की चरखियाँ फेरने, कुओं से पानी खींचने और बोझा ढोने के लिए बैलो तथा अन्य पशुओ का उपयोग किया जाता है। अनुमान लगाया गया है कि भारतीय कृषि कार्य मे लगभग १,८८५ करोड़ कार्यशील घण्टे प्रति वर्ष पशु शक्ति से प्राप्त किये जाते हैं। सन् १९७१ मे भारत मे लगभग ९ करोड़ पशु काम करने वाले थे।

(२) पशुओं से खेतों के लिए गोबर की खाद प्राप्त होती है तथा हड्डी और खून की खाद भी महत्त्वपूर्ण है। ये खादें भूमि की उर्वरता को निरन्तर बनाये रखती हैं।

भारत में १९६७-६८ में १३'९ करोड टन और १९७२-७३ में १६ करोड टन पशुओ के गोबर एवं मूत्र आदि का खाद तैयार किया गया।

(३) पशुओं से चमड़ा और खालें (विशेषकर कसाई घर में काटे गये पशुओं से) प्राप्त किये जाते हैं। खालें, गाय, बैल, ऊँट और घोड़े या भैंसो से प्राप्त होती हैं, जबकि चमड़ा भेड़, बकरी और बछड़ों से प्राप्त होता है।

भारत में गाय, बैल, आदि की खालों का वार्षिक उत्पादन लगभग १'६ करोड़; भैंसो की खाल का ५० लाख तथा बकरियों का चमड़ा २'१ करोड और भेड़ों का चमडा १'६ करोड़ होता है।

(४) भेड़ो से ऊन प्राप्त किया जाता है। १९७३-७४ में ३०० लाख किलो-ग्राम ऊन भेड़ो से प्राप्त किया गया। इसका लगभग २५% निर्यात कर दिया जाता है।

(५) पशुओ से पौष्टिक पदार्थ दूध के रूप मे मिलता है जिसका उत्पादन २,३२० करोड़ लीटर अनुमानित किया गया है।

भारत में खालो का आयात और निर्यात दोनो ही होता है। १९५०-५१ और १९७२-७३ मे क्रमशः ६५६ लाख और ८७ लाख रुपये की खालों का निर्यात किया गया। इन वर्षों मे इनके आयात का मूल्य क्रमशः २४८ लाख और ६६ लाख रुपया था।

पशुओ से होने वाले प्रत्येक प्रकार के लाभ का मूल्य केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन के अनुसार इस प्रकार आँका गया है :

दूध एव दूध से बनी वस्तुएँ ७५६ करोड़ रुपये, जुताई तथा अन्य कृषि कार्य ६०० करोड़ रुपये, कृषि उपज का यातायात ३०० करोड़ रुपये, मांस ६२ करोड रुपये; चमड़ा और खालें १६ करोड़ रुपये; गोबर ५४३ करोड रुपये; बाल और ऊन १३ करोड़ रुपये; अण्डे आदि २८ करोड रुपये; हड्डियाँ २ करोड रुपये, योग २,३५० करोड़, रुपये।

भारत में १९६१, १९६६ और १९७१ में चौपायों की सख्या इस प्रकार थी ·

	१९६१	१९६६	१९७१
गाय और बैल (करोड़)	१७·५५	१७·६१	१७ ७२
भैंस और भैंसे (,,)	५·१२	५ २६	५·५२
भेड़ें (,,)	४·०२	४ २०	४ ३२
बकरियाँ (,,)	६·०८	६ ४६	६ ४६
घोड़े और टट्टू (लाख)	१३ ००	११·४८	१० ०
ऊँट (,,)	९·०	१०·७	—
सूअर (,,)	४६ ७	५१·७	७१ ०
अन्य (खच्चर, गदहे, आदि) (लाख)	११·७	११·५	
योग	३४·३७	३४ ३६	३४ ८६

भारत मे विश्व के लगभग १६% चौपाये, १८% बकरियाँ, ४०% भेड़ें और लगभग ५०% भैंसें पायी जाती है।

भारत के पशु-पालन क्षेत्र
(CATTLE REARING AREAS)

शुष्क जलवायु में जहाँ चरने की आर्थिक सुविधाएँ होती हैं पशु अधिक संख्या में पाले जाते हैं। भारत की प्रमुख पशु मेखला भारतीय मरुस्थल के चारो ओर (जहाँ वर्षा की मात्रा में अपेक्षतया कमी होती है) फैली हुई है। भारत में पशु-पालन के वह क्षेत्र अन्य देशों की स्थिति के बिल्कुल समान ही हैं जहाँ पशु-पालन उन घास के मैदानों में होता है जो या तो मरुस्थलों की बाहरी सीमा पर स्थित हैं अथवा उन शुष्क भागों में हैं जहाँ प्रतिकूल प्राकृतिक रचना के कारण कृषि का विकास कठिन है। भारत के मुख्य पशु-पालन क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, पश्चिमी उत्तर प्रदेश हैं। इन भागों में वर्षा की इतनी मात्रा नहीं होती कि उत्तम घास पैदा हो सके अतः चरवाहे अपने पशुओं के लिए खेतों में ऐसी फसलें उगाते हैं जिनके डण्ठल पशुओं की चराई में काम आ सकें। किन्तु जिन भागो में वर्षा पर्याप्त मात्रा में होती है अथवा जहाँ सिंचाई के उत्तम साधन उपस्थित हैं वहाँ उत्तम पशु-पालन नहीं किया जाता। अतः असम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, केरल और तमिलनाडु में उत्तम श्रेणी के पशु नहीं पाये जाते। इन भागों में पशु दुबले-पतले, रोगी और कम दूध देने वाले होते हैं। यही कारण है अधिक आर्द्र भागों में शुष्क भागों की अपेक्षा उतना ही दूध प्राप्त करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक पशु पालने पड़ते हैं।

मिट्टी की प्रकृति, तापक्रम एवं वर्षा के अनुसार भारत के निम्न पशु विभाग किये गये हैं :[1]

(१) हिमालय प्रदेशीय विभाग के अन्तर्गत भूटान, नेपाल, उत्तर प्रदेश के कुमायूँ तथा गढ़वाल जिले, हिमालय प्रदेश का शिमला जिला, कांगड़ा एवं कुलू की घाटी और जम्मू तथा कश्मीर सम्मिलित किये जाते हैं। इस प्रदेश में भेड़-बकरियाँ ही मुख्य पालतू पशु हैं और इनसे ऊन प्राप्त करना मुख्य उद्योग है। इन भागों का ऊन श्वेत और उत्तम किस्म का होता है। शहद की मक्खियाँ पालने का उद्योग भी किया जाता है।

(२) उत्तरी शुष्क जलवायु प्रदेश में पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग इसमें सम्मिलित होते हैं। यहाँ मुख्यतः ऊँट, घोड़े तथा गदहे अधिक मिलते हैं। शुष्क भाग होने के कारण यहाँ गेहूँ का उत्पादन सिंचाई के सहारे किया जाता है। इस भाग में दूध देने वाले पशुओं की उत्तम नस्लें पायी जाती हैं जिनके लिए अधिकांश भागों में चारा पैदा किया जाता है।

[1] Randhawa, M. S. *Agriculture and Animal Husbandry in India*, 1968.

(३) **पूर्वी और पश्चिमी तट** विभाग में बिहार, बंगाल, उड़ीसा, असम, पूर्वी उत्तर प्रदेश, पूर्वी तमिलनाडु, केरल, पश्चिमी समुद्रतटीय पट्टी तथा आन्ध्र प्रदेश सम्मिलित किये जाते हैं। इन भागों में वर्षा १२५ सेण्टीमीटर से अधिक होती है अतः चारे के अन्तर्गत बहुत ही कम भूमि बोयी जाती है। चावल इन भागों की मुख्य उपज है। इसी के डण्ठल पशुओं को खिलाये जाते हैं। इसमें पोषक तत्त्व अधिक नहीं होते अतः इन भागों के पशु भी छोटे, दुबले-पतले और कम दूध देने वाले होते हैं। भैंस और भैंसे दोनों ही अधिक पाले जाते हैं जिनसे दूध लेने और खेती में काम करने को प्रयुक्त किया जाता है।

(४) **मध्यम वर्षा वाले विभाग** के अन्तर्गत काली मिट्टी के प्रदेश (मध्य प्रदेश, आन्ध्र के पश्चिमी भाग, कर्नाटक, पूर्वी महाराष्ट्र, पश्चिमी तमिलनाडु और दक्षिणी उत्तर प्रदेश) सम्मिलित हैं। यहाँ वर्षा १२५ सेण्टीमीटर से कम होती है। ज्वार, बाजरा, रागी, आदि मोटे अनाज यहाँ की मुख्य फसलें हैं। इस विभाग में भारत में सबसे अधिक भेड़ें पाली जाती हैं किन्तु इनका ऊन अच्छी किस्म का नहीं होता।

भारत में विश्व में सबसे अधिक पशु (विश्व का ¼) पाये जाते हैं। गायों का लगभग ¼ भाग और भैंसों का आधा भारत में ही मिलता है किन्तु संख्या का लगभग आधा निम्न कोटि का दुर्बल होता है अतः बेकार है।

यहाँ अन्य देशों की तुलना में प्रति १०० हैक्टेयर भूमि पर पशुओं का घनत्व अधिक पाया जाता है, अर्थात् १३० का जबकि डेनमार्क में यह ११०, न्यूजीलैण्ड में ४६, आस्ट्रेलिया में ४ और अमरीका में २२ पशुओं का है। पशुओं की तुलना में भारत में चरागाह क्षेत्र भी बहुत ही कम हैं, अर्थात् कुल क्षेत्र के ४% पर स्थायी चरागाह पाये जाते हैं।

गायें मुख्यतः कम वर्षा वाले शुष्क राज्यों में पाली जाती हैं जहाँ अनुकूल जलवायु के कारण पौष्टिक चारा उत्पन्न होता है। मध्य प्रदेश के मालवा का पठार, सौराष्ट्र एवं गुजरात, पंजाब और हरियाणा के हाँसी, हिसार, रोहतक, करनाल और गुड़गाँव जिलों में गायें विशेष रूप से पायी जाती हैं। महाराष्ट्र, केरल, कर्नाटक, और आंध्र में भी गाय-बैल पाले जाते हैं। राजस्थान के पश्चिमी जिले बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, नागौर, आदि विशेष रूप से गाय-बैलों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

भैंसें मुख्यतः उत्तर प्रदेश में पाली जाती हैं। पंजाब, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात और मध्य प्रदेश अन्य प्रमुख भैंस-पालक राज्य हैं।

चौपायों की नस्लें (*Cattle Breeds*)

भारत में अधिक दूध देने वाली गाय की १४ नस्लें, काम के लिए अच्छे बैल पैदा करने वाली १२ नस्लें और भैंसों की ७ नस्लें मिलती हैं।

भारत में चौपायों की नस्लें मुख्यतः तीन भागों में बाँटी जाती हैं :

(१) दूध देने वाली नस्ल (Milk Breeds) से दूध अधिक मिलता है तथा बैलों से साधारणतया ढोने का काम लिया जा सकता है। इस नस्ल वाले पशु हृष्ट-पुष्ट होते हैं। इस प्रकार की नस्ल वाली मुख्य गायें गिर, साहीवाल, सिंधी और देवनी हैं। पंजाब की हाँसी, हरियाणा, गिर, सिंधी, साहीवाल तथा मुर्रा नस्लों से १,५०० से २,२५० किलोग्राम तक दूध प्राप्त होता है। दिल्ली की मुर्रा, सौराष्ट्र की जाफराबादी, गुजरात की महसाना और पंजाब की रोहतक भैंसें भी अधिक दूध देती हैं।

(२) सामान्य उपयोग वाली नस्लों (General Utility Breeds) में गायें अच्छा दूध देने वाली और बैल बोझ ढोने योग्य होते हैं। हरियाणा, ओंगोल, गोआलो, कृष्णा घाटी, थारपरकार और कंकरेज जाति की गायें बहुत प्रसिद्ध हैं।

(३) बोझा ढोने वाली नस्लों (Draught Breeds) में गायें बहुत ही कम दूध देने वाली होती हैं किन्तु बैल बोझा ढोने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त होते हैं। इनमें मुख्य नागोरी, बचौर, कनकथा, मालवी, खेरीगढ़, हल्लीकर, कांगायम, अमृतमहल, खिलारी, पवार और सीरी गायों की जातियाँ हैं।
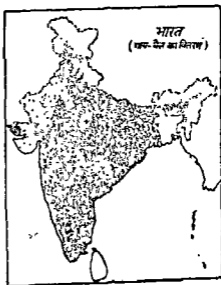
चित्र—१०१

भारत में गायों की मुख्य नस्लें ये हैं :

गिर (Gir) नस्ल मुख्य रूप से दूध देने वाली नस्ल है। इसका मूल स्थान गुजरात में गिर-वन प्रदेश है। यह गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान में मिलती है। इसका शरीर हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ट, ललाट चौड़ा और उठा हुआ, कान लम्बे तथा ऐंठे हुए, सींग टेढ़े और पीछे को मुड़े हुए, चेहरा धँसा हुआ और आँखें छोटी होती हैं। गिर बैलों की पूँछ लम्बी, शरीर भारी और पुष्ट, रंग लाल अथवा सफेद धब्बों वाला होता है। गिर नस्ल की गायों से औसतन प्रति दुग्ध काल में १,००० किलोग्राम दूध मिलता है। डेयरी फार्मों में उचित व्यवस्था होने पर यह मात्रा २,००० किलोग्राम तक बढ़ जाती है। जूनागढ़, अहमदाबाद, बम्बई और जामनगर के डेयरी फार्मों में यही नस्ल विशेष रूप से रखी जाती है।

ककरेज (Kankrej) नस्ल विशेषत: पश्चिमी भारत में पायी जाती है। इसका मूल स्थान कच्छ की खाड़ी का तटीय प्रदेश है। यह बनास और सरस्वती नदियों के निकटवर्ती क्षेत्रों में विशेष रूप से मिलती है। इस नस्ल का शरीर भारी, सींग मोटे और बड़े होते हैं। इससे औसतन प्रति दुग्ध काल में १,४०० किलोग्राम तक दूध मिलता है। ककरेज नस्ल के बैल बोझा ढोने और खेतों के लिए उपयुक्त होते हैं।

देवनी (*Deoni*) नस्ल हैदराबाद के निकटवर्ती क्षेत्रों में मिलती है। इसकी पीठ सीधी, पुट्ठे और पैर मजबूत, कान छोटे और लटके हुए तथा सींग मुड़े हुए और शरीर धब्बेदार होता है। प्रति ३०० दिन के दुग्ध काल में इस नस्ल से ७५० किलोग्राम दूध मिल जाता है जबकि सरकारी फार्मों पर पाली गयी नस्ल १,२५० किलोग्राम तक दूध दे देती है। इस नस्ल के बैल कृषि कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं।

खैरागढ़ी (Kheragarhi) नस्ल उत्तर प्रदेश के खैरागढ़ में मिलती है। इस नस्ल की दूध की मात्रा कम ही मिलती है औसतन प्रति दुग्ध काल में ७५० से ९०० किलोग्राम तक।

मेवाती (Mewati) नस्ल उत्तर प्रदेश के कोसी क्षेत्र में मिलती है। इसका वितरण राजस्थान के अलवर, भरतपुर और उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में विशेष रूप से पाया जाता है। इसका रंग सफेद, सिर, गला और कंधा कुछ भूरे, सींग मुड़े हुए और टाँगें लम्बी होती हैं। इससे प्रति दुग्ध काल पीछे १,००० किलोग्राम तक दूध मिलता है। इस नस्ल के बैल भारी काम के लिए उपयुक्त होते हैं।

निमाड़ी (Nemari) नस्ल मध्य प्रदेश के निमाड़ जिले में विशेष रूप से मिलती है। इसमें प्रति दुग्ध काल में ६०० से ९०० किलोग्राम तक दूध मिलता है।

कांग्याम (Kangyam) नस्ल तमिलनाडु के कोयम्बटूर जिले में अधिक पायी जाती है। इस नस्ल के बैल बोझा ढोने के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

भैंस (Buffaloes)

गायों के अतिरिक्त दुग्ध प्राप्ति के लिए भैंसें अधिक पाली जाती हैं। इनका दूध अधिक पौष्टिक, भारी और चिकना होता है। भैंसे भारी कृषि कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं। भैंसों का वितरण सबसे अधिक उत्तर प्रदेश, आन्ध्र और महाराष्ट्र में मिलता है। मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, तमिलनाडु में भी भैंसें पाली जाती हैं।

भैंसों की कई नस्लें प्रसिद्ध हैं, जैसे जाफराबादी, मुर्रा, भदावरी, सूरती, महसाना, नीली, पंढरपुरी, तैलंगाना, एलिचपुरी, परलाकीमेदी और रावी। साधारण भैंस से जहाँ ६७५ किलोग्राम दूध मिलता है वहाँ जाफराबादी भैंस से १,५०० किलोग्राम से भी अधिक दूध प्राप्त किया जाता है।

जाफराबादी नस्ल सौराष्ट्र के गिर वन प्रदेश में पायी जाती है। इसका रंग काला, सींग बड़े और झुके हुए और सिर बड़े होते हैं। इस नस्ल में दूध अधिक मिलता है, कुछ तो ४,००० किलोग्राम तक दूध देती हैं।

मुर्रा नस्ल विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में मिलती है। दक्षिणी पंजाब, हरियाणा और दिल्ली में भी यह नस्ल अधिकता से मिलती है। इसका रंग भी काला, शरीर भारी और सुगठित एवं सिर छोटा होता है। प्रति दुग्ध काल में इससे औसतन ४,००० किलोग्राम तक दूध मिलता है।

भदावरी नस्ल उत्तर प्रदेश की बाह तहसील में मिलती है। इटावा और ग्वालियर जिले में यह विशेष रूप से मिलती है। इस नस्ल से १,२०० किलोग्राम तक दूध मिलता है।

नीचे की तालिका में राज्यों के अनुसार भारतीय गाय तथा भैंस की नस्लें बतायी गयी हैं :

राज्य	गाय	भैंस
आन्ध्र, तमिलनाडु, कर्नाटक	देवनी (उत्तरी-पश्चिमी आन्ध्र) ओंगोल (ओंगोल क्षेत्र, नेलौर तथा गतूर जिले) कृष्णावेली (कृष्णा-घाटी और पश्चिमी आन्ध्र में) हलीकर (कर्नाटक के हसन, तमकूर और मैसूर जिले में) अमृतमहल (कर्नाटक) कांगाम (तमिलनाडु के कोयम्बटूर जिले में) बरगूर (कोयम्बटूर के बरगूर ताल्लुक में)	टोंडा तेलगाना, परलाकीमेडी, एलिचपुरी
गुजरात-महाराष्ट्र	गिर (सौराष्ट्र) डांगी (अकोला ताल्लुक, सोनकड ताल्लुक, नासिक, थाना, कोलाबा जिले तथा डाग जिला)	जाफराबादी (द० सौराष्ट्र) सूरती (गुजरात के चारोंतर-क्षेत्र, खेरा, बड़ौदा और नाडियाद जिले), महसाना (बड़ौदा)
	गोआसी (नागपुर जिला) कंकरेज (कच्छ के रण के दक्षिण-पूर्व से लगाकर दक्षिण में धोलका (अहमदनगर) और पूर्व में दीसा से राधानपुर तक)	नागपुरी (नागपुर, वर्धा)

राज्य	गाय	भैंस
	खिलारी (शोलापुर, सतारा जिला, सतपुड़ा श्रेणी एवं दक्षिणी महाराष्ट्र के भाग)	
मध्य प्रदेश	गौलो, मालवी (मालवा के पठार के पूर्वी भागों में तथा आन्ध्र के उत्तरी- पूर्वी भागों में); निमारी (निमाड़ और खारगोव जिले में)	भदावरी (ग्वालियर) नागपुरी
उत्तर प्रदेश	मेवाती (मथुरा की कोसी तहसील में); पोंवार (पीलीभीत और लखीम- पुर खेरी जिले), कन्कथा (बांदा जिला), खैरीगढ़ (खैरागढ़ परगना)	भदावरी (आगरा, इटावा
पंजाब-दिल्ली	हरियाणा (रोहतक, हिसार, गुड़- गांव, करनाल जिले, दिल्ली, नाभा, पटियाला), शाहीवाल (द० पंजाब)	मुर्रा (रोहतक, हिसार, जिंद, गुड़गांव, पटियाला, नाभा, जिंद, जिले) नीली (फिरोजपुर)
राजस्थान	नागोरी (उत्तर-पूर्व जोधपुर जिला) हरियाणा (जयपुर, जोधपुर, लोहारू, अलवर, भरतपुर जिले), मेवाती (अलवर, भरतपुर) रथ (अलवर, दक्षिणी राजस्थान)	

पारपरकार

दुग्ध उद्योग
(DAIRY INDUSTRY)

भारत में दुग्ध उत्पादन उद्योग का विकास अभी तक आधुनिक पद्धति से नहीं हुआ है। न्यूजीलैण्ड, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया तथा अमरीका की तुलना में भारत का यह उद्योग बहुत ही पिछड़ा हुआ है। भारत में प्रति गाय पीछे लगभग २०८ लीटर दूध मिलता है, जबकि डेनमार्क में यह मात्रा ३,४५० लीटर, आस्ट्रेलिया में १,८७० और अमरीका में २,९४४ लीटर है। भारत की गायें अत्यन्त कम मात्रा में दूध देने के कारण ही Tea-cup Cows कहलाती हैं।

भारत में दूध का उत्पादन १९६१ में २०० लाख टन था, १९७२ में यह २३२ लाख टन हो गया। पंचम योजना में उत्पादन का लक्ष्य २९६ लाख टन का रखा गया है।

प्रतिवर्ष दूध और दूध से बने जो पदार्थ काम में लाये जाते हैं उनका लगभग ३९·२% भाग दूध के रूप में, ९·१% दही के रूप में; ४३·३% घी के रूप में;

६·३% मक्खन के रूप में, ४·१% खोये के रूप मे तथा १% अन्य पदार्थों के रूप में उपयोग मे लाया जाता है।

कुल दूध जिसकी प्रक्रिया करके अन्य पदार्थ बनाये जाते हैं उसका ६७·८% घी, १४·३% दही, ९·८% मक्खन, ६·५% खोआ और १·६% अन्य पदार्थ बनाये जाते है।

भारत मे जितना दूध होता है उसका ४२·२% गाय का, ५७·६% भैंस का और ०·४% बकरी का होता है।

भारत मे सबसे अधिक दूध का उत्पादन उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार, आन्ध्र, राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश में होता है। बड़े पैमाने पर काम करने वाली दुग्धशालाएँ अभी बहुत ही सीमित हैं। अलीगढ की कैवेण्टर्स, आगरा की राधास्वामी संस्था, बम्बई की आरे, आनन्द की पोलसन और मैसूर की रायनकेरा प्रमुख दुग्धशालाएँ हैं। अन्य दुग्धशालाएँ उटकमण्ड, आगरा, मेरठ, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर और वाराणसी मे हैं। दिल्ली मे केन्द्रीय डेयरी; कलकत्ता के निकट हरिणघट्टा, मद्रास के निकट माधवरम और बम्बई के निकट आरे मे और अन्य डेरियाँ अगरतला, भोपाल, कोयम्बटूर, गया, त्रिवेन्द्रम, चण्डीगढ, पटना, जयपुर, हिसार, अहमदाबाद, बड़ौदा, अलीगढ़, कन्याकुमारी, हुब्ली, धारवाड़, कोल्हापुर, पाडीचेरी, महसाना, लखनऊ, कानपुर, वाराणसी, इलाहाबाद, बरौनी, आगरा, करनाल, मंगलोर, कटक, श्रीनगर, आदि नगरो मे खोली गयी हैं।

१९७२-७३ मे १२३ डेरियाँ थीं जिनमे से ७७ तरल दूध तैयार करने वाली (liquid milk plants), ४४ पाइलट दुग्धशालाएँ, ७ दूध का चूर्ण बनाने वाली और ४ क्रीम तैयार करने वाली डेरियाँ हैं। उटकमण्ड मे दूध जमाने का कारखाना है। २२ नयी डेरियाँ निर्माण की विभिन्न अवस्था मे हैं।

१९७२-७३ मे इन सभी दुग्धशालाओ का दूध का औसत दैनिक उत्पादन २९ लाख लिटर का था। १९६८-६९ में यह मात्रा १८ लाख लिटर थी।

दूध का चूर्ण तैयार करने वाली ६ फैक्ट्रियाँ विजयवाडा, आनन्द, अमृतसर, दिल्ली, महसाना और राजकोट मे हैं। इनका दैनिक औसत उत्पादन ५० टन चूर्ण का है। तीन नयी फैक्ट्रियाँ जिन्द (हरियाणा); मीराज, (महाराष्ट्र) और मुरादाबाद में खोली गयी हैं।

क्रीम तैयार करने वाली ४ फैक्ट्रियाँ अलीगढ, बरौनी और जूनागढ़ में हैं। इनके अतिरिक्त आनन्द, कलकत्ता, दिल्ली, अमृतसर, महसाना और राजकोट के सयन्त्रों में प्रतिदिन औसतन ४१ टन मक्खन और घी तैयार किया जाता है।

घी उत्पन्न करने वाले मुख्य राज्य उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आन्ध्र, गुजरात, पंजाब और बिहार हैं। अनुमानतः समस्त घी की उत्पत्ति ½ उत्तरी और पश्चिमी भारत में तथा ⅓ शेष भारत में होता है। कुल उत्पादन का ३० प्रतिशत गाँवों में

हो जाता है, केवल ३० प्रतिशत घी नगरों के लिए प्राप्त होता है। घी का निर्यात बर्मा, मलयेशिया, पूर्वी अफ्रीका, हांगकांग, मारीशस, स्ट्रेट सेटलमेंट्स, आदि देशों को किया जाता है। घी का आयात नेपाल और पाकिस्तान में होता है। भारत में घी की प्रसिद्ध मण्डियाँ बिहार में दरभंगा, उत्तर प्रदेश में मुर्दा, कासगंज, इटावा, अलीगढ़, बलिया और शिकोहाबाद में हैं। अन्य केन्द्र मद्रास और मथुरा है।

पशु धन की वर्तमान स्थिति

भारत में पशुओं की हीन अवस्था और निम्न मात्रा में दुग्ध उत्पादन के निम्न कारण हैं :
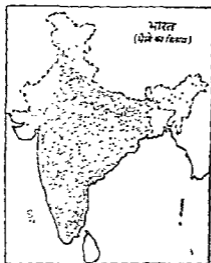
चित्र—१०२

(१) भूमि पर पशुओं का भार बहुत अधिक है इससे इनके लिए जनसंख्या के भार से बची निकृष्ट भूमि में आवश्यक चारा प्राप्त नहीं होता। उचित चारे का प्रबन्ध न होने पर दूध देने वाले और हल खींचने वाले पशुओं की शक्ति में ह्रास होता जाता है। दुधारू गायों की जनन-शक्ति चारे के अभाव में कम हो जाती है।

(२) चारे की कमी के कारण उत्तम और निकृष्ट सभी प्रकार के पशुओं को एक ही चरागाह में चराया जाता है। इनसे निम्न श्रेणी के सांडों के सम्पर्क में आने के कारण गायें दुर्बल तथा निकृष्ट श्रेणी के ही बछड़ों या गायों को जन्म देती हैं। इससे निरन्तर पशुओं की जाति बिगड़ती जा रही है। न केवल उत्तम सांडों की ही कमी है वरन् कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों का भी अभाव है।

(३) गायों और भैंसों को एक ही साथ चराये जाने, गन्दा जल पीने, सड़ी-गली वस्तुओं को खाने और गन्दे तथा अंधेरे बाड़ों में रहने के कारण वे अनेक रोगों से पीड़ित रहती हैं। वर्षा के दिनों में इनमें पैर और मुंह की बीमारियाँ हो

जाती हैं। ये रोग संक्रामक होते हैं जो एक पशु में शीघ्र ही दूसरे को फैलते हैं। इससे बड़ी सख्या में पशुओं का विनाश हो जाता है

पशु सुधार के उपाय (Lines of Development)

चारे की व्यवस्था—पशु सुधार के लिए पहला कदम यह होना चाहिए कि चारे के उत्पादन में यथाशक्ति वृद्धि की जाय और वर्तमान उत्पादन की उचित सुरक्षा में गायों के लिए काफी चारा प्राप्त किया जाय। चारे की कमी सम्बन्धी समस्या को हल करने के लिए हमें अन्य समस्त साधनों का उपयोग करना चाहिए। ये साधन निम्नलिखित हैं :

(१) वर्षा काल में उत्पन्न होने वाली सूखी घास तैयार करने का काम देश भर में आरम्भ किया जाय। (२) ऐसी फसलें बोयी जायें जिनसे केवल पोषक तत्व वाला चारा ही न मिले बल्कि बोयी जाने वाली भूमि की उर्वरा शक्ति भी बढ़े। (३) तिलों की खली पशुओं को खिलायी जाये। (४) भारतीय पशु चिकित्सा अनुसन्धानशाला के प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि आम की गुठली की गिरी, मूँज, कांस, जामुन की गुठली, बबूल की फली, मूँगफली के छिलके आदि में पोषक तत्व अच्छी मात्रा में होते हैं और उन्हें पशुओं को खिलाया जा सकता है। (५) धान में पोषक तत्वों की जो कमी होती है उसे हड्डी की भस्म मिलाकर पूरा किया जा सकता है। (६) यदि मिली-जुली खेती की जा सके तो पशुओं के चारे का प्रबन्ध भली-भाँति किया जा सकता है। (७) यदि चारे के छिलके उतार दिये जायें तो ३० प्रतिशत व्यर्थ जाने वाले चारे को बचाया जा सकता है। (८) ऐसे वृक्षों को लगाया जाय जिनकी पत्ती व छाल पशुओं को खिलायी जा सके; और (९) देश में मछली मारने के उद्योग का विकास किया जाय ताकि पशुओं को मछली से तैयार किया हुआ पोषक खाद्य दिया जा सके।

नस्ल में सुधार—पशु-धन में सुधार करने के लिए वैज्ञानिक ढंग पर पशु-पालन होना आवश्यक है। कितने ही सरकारी फार्मों पर विभिन्न नस्ल के सांड तैयार किये जाते हैं और फिर उन्हें नस्ल सुधारने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में वितरित कर दिया जाता है। प्रजनन के लिए प्रतिवर्ष लगभग १० लाख सांड उपलब्ध होते हैं। परन्तु यह सख्या देश की आवश्यकता का एक बहुत ही थोड़ा भाग पूरा करती है। इसलिए नस्ल-सुधार के लिए ये उपाय किये जा सकते हैं : (क) फार्म से प्राप्त गौओं को एक विशेष क्षेत्र में इकट्ठा किया जाय, (ख) ऐसी नस्लों का विकास करने का प्रयत्न किया जाय जिनसे दुधारू गायों के साथ सबल बैल भी प्राप्त हो सकें। (ग) कृत्रिम ढंग से गर्भाधान।

अच्छी व्यवस्था—पशुओं को स्वस्थ रखने के लिए रहने की उचित व्यवस्था, परिश्रम और ताजे पानी की आवश्यकता पूरी की जाये।

योजनाओं के अन्तर्गत कार्यक्रम

पशुओं की दशा सुधारने के लिए सरकार की निम्नलिखित योजनाएँ हैं :

(१) **गो-सदन**—बूढ़ी, अशक्त, दुर्बल और बेकार ढोरों को अच्छी नस्ल के

पशुओं से अलग रखने की योजना है जिनका उद्देश्य एक ओर भारतीय जनता की इस माँग पर ध्यान देना है कि कसाई घर बन्द किये जायें और दूसरी ओर व्यर्थ पशुओं के द्वारा चारे और कृषि तथा नस्ल की हानि को रोकना। प्रथम तीन योजनाओं में ६१ गो-सदन खोले गये।

(२) गोशालाएँ—भारत की लगभग १,००० गोशालाओं में से लगभग ४२३ गोशालाएँ चुनी गयीं जहाँ पशुओं की दशा सुधारी गयी है। इन गोशालाओं के व्यर्थ और अनुत्पादक मवेशी को गो-सदनों में भेज दिया जाता है। सरकार इन गोशालाओं में अच्छी नस्ल के पशु भी रखती है।

(३) ग्राम-केन्द्र योजना (*Key Village Scheme*)—प्रत्येक ग्राम-केन्द्र के अन्तर्गत तीन या चार गाँवों की तीन साल से अधिक अवस्था वाली लगभग ५०० गायें सम्मिलित की जाती हैं। इस योजना का मुख्य उद्देश्य नस्ल सुधार करना है। इस योजना के द्वारा निर्धारित ग्रामों में नस्ल का कार्य चुने हुए साँड़ों द्वारा कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों द्वारा किया जाता है। अन्य बैलों को बधिया कर दिया जाता है या हटा दिया जाता है। नस्ल सुधारने के अतिरिक्त ग्राम केन्द्र योजना बछड़ों के पालन, चारे की व्यवस्था तथा पशुओं से मिलने वाले पदार्थों की बिक्री का सहकारी ढंग पर प्रबन्ध करती है। पंचम योजनाकाल में ग्राम केन्द्रों की संख्या ६२१ से ७१३ हो जायेगी।

(४) पशुओं की बीमारियों की रोक—प्रथम योजनाकाल में पशुओं की बीमारियों को रोकने के लिए पशु चिकित्सालयों की संख्या २,००० थी जो सन् १९५६ में ४,००० हो गयी। तृतीय योजना के अन्त तक प्रत्येक विकास खण्ड में एक पशु चिकित्सालय खोला जाना था अर्थात् १९६५-६६ तक यह संख्या ८,००० हो गयी। पंचम योजनाकाल में १,३०० पशु चिकित्सालय खोले जायेंगे।

(५) उत्तम साँड़ केन्द्र—उत्तम साँड़ों की प्राप्ति के लिए अभी १२५ सरकारी फार्म हैं जहाँ प्रतिवर्ष लगभग ५,००० बैल उत्पन्न किये जाते हैं।

बकरियाँ (Goats)

बकरी गरीब की गाय समझी जाती है। इससे दूध, माँस, चमड़ा और बाल मिलते हैं। इसका दूध स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा लाभदायक माना जाता है। भारत में ६·४ करोड़ बकरियाँ पायी जाती हैं जिनसे लगभग १६ लाख टन माँस की प्राप्ति होती है। इनसे प्रतिवर्ष लगभग २·२ करोड़ खालें और ७० लाख पौण्ड बाल प्राप्त होते हैं जिनका मूल्य ६६ करोड़ और ७२ लाख करोड़ रुपया अनुमानित किया गया है। २०% बकरियाँ दूध के लिए और शेष माँस के लिए पाली जाती हैं।

बकरियाँ भारत के सभी क्षेत्रों में पायी जाती हैं किन्तु इनका पालन विशेषत दो क्षेत्रों में होता है : पहला क्षेत्र सौराष्ट्र और गुजरात से आरम्भ होकर पूर्वी राजस्थान होता हुआ पंजाब तक फैला है। पूर्वी राजस्थान से यही क्षेत्र पूर्वी उत्तर

प्रदेश और उत्तरी बिहार होता हुआ बंगाल तक चला गया है। दूसरा क्षेत्र महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों में फैला है।

भारत में बकरियों की ये नस्लें पायी जाती हैं :

(१) हिमालयी बकरी (Himalayan Goat) मुख्यतः पश्चिमी क्षेत्र में हिमालय प्रदेश, पंजाब और कश्मीर के राज्यों में भार-वहन करने और दूध के
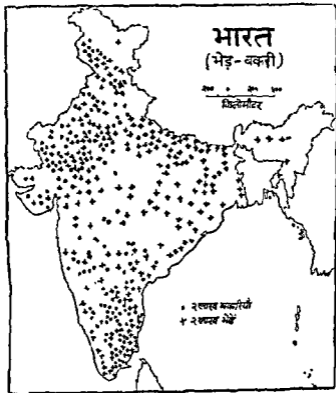
चित्र—१० ३

लिए पाली जाती हैं। हल्की किस्म का पश्मीना ऊन इन्हीं से प्राप्त होता है। विभिन्न स्थानीय भागों में इन्हें चम्बा, गद्दी और कश्मीरी नामों से पुकारते हैं। इन बकरियों पर बाल अधिक और मुलायम होते हैं। औसतन एक बकरी से ½ औंस तक बाल मिल जाते हैं। हिमालय से दूर पश्चिमी मैदान में अन्य नस्लों की बकरियाँ भी मिलती हैं जिनमें मुख्य मारवाड़ी और महसाना नस्ल हैं।

(२) जमुनापारी (*Jamunapari*) नस्ल की बकरियों का मुख्य आवास क्षेत्र जमुना, गंगा और चम्बल नदियों के बीच की भूमि है। इनसे भी भार ढोने और मांस तथा दूध प्राप्त करने का काम लिया जाता है। इनका रंग सफेद तथा भूरा होता है और इनके कान साधारणतः १० से १२ इंच तक लम्बे होते हैं। इनके सींग छोटे और चपटे, बाल लम्बे और पीछे की ओर फैले हुए और थन लम्बे होते हैं। शरीर पर काले तथा भूरे धब्बे होते हैं और सिर खाखा होता है। इनसे दुग्धकाल में साधारणतः ८०० से १,२५० किलोग्राम तक दूध मिलता है। एक बकरी से प्रतिदिन औसतन ५ किलोग्राम दूध प्राप्त होता है।

(३) बड़वारी (Barwari) नस्ल के बाल छोटे और सफेद या ललाई लिये हुए होते हैं। इसके सींग सीधे तथा रंग प्रायः भूरा होता है। शरीर पर लाल या गहरे भूरे रंग की चित्तियाँ मिलती हैं। यह मुख्यतः दिल्ली, गुड़गांव और करनाल जिलों में पायी जाती हैं। अनुकूल परिस्थितियों में इनसे १ से १॥ किलोग्राम दूध प्रतिदिन मिल जाता है।

(४) पश्मीना किस्म की बकरियाँ हिमालय क्षेत्र में ३,५०० मीटर की ऊँचाई तक पाली जाती हैं। इनसे केवल मुलायम ऊन प्राप्त किया जाता है। औसतन एक बकरी से ३८ से ६० ग्राम ऊन प्रति वर्ष प्राप्त होता है। इसका उपयोग कश्मीर और कुलू घाटी में तैयार किये जाने वाले कपड़े बनाने में किया जाता है।

(५) बंगाली नस्ल की बकरियाँ बंगाल के अधिक वर्षा वाले भागों में पाली जाती हैं। इनसे दूध कम प्राप्त होता है किन्तु इनका मांस बड़ा स्वादिष्ट होता है।

(६) सूरती नस्ल की बकरियाँ गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों में पाली जाती हैं। ये सफेद रंग की होती हैं। इनसे दूध प्राप्त किया जाता है।

भेड़ें (Sheeps)

भारत में भेड़ों का विस्तृत क्षेत्र ६३ से १०२ सेण्टीमीटर वर्षा वाले पहाड़ी भागों में है जहाँ उत्तम चरागाह पाये जाते हैं। भारत में लगभग ४२ करोड़ भेड़ें हैं। ये अधिकतर शीतल और सूखे स्थानों में मिलती हैं। गर्म और नम भागों में इनकी संख्या बहुत ही कम है क्योंकि इस जलवायु में इनको खुर का रोग हो जाता है और यद्यपि इनकी ऊन अच्छी होती है किन्तु मांस की दृष्टि से इनका कोई स्थान नहीं होता। भेड़ों को दो दृष्टि से पाला जाता है: (१) इनसे बढ़िया किस्म का ऊन प्राप्त किया जाता है। औसतन एक भेड़ से १ किलोग्राम ऊन प्रतिवर्ष मिल जाता है। १९६१ में ऊन का उत्पादन ३२५·५ लाख किलोग्राम था, १९६६ में ३१६·६ लाख किलोग्राम। १९७१ में यह ३०१ लाख किलोग्राम था किन्तु इसमें से अधिकांश ऊन मोटा और खुरदरा तथा रंगीन ही है। इसमें से आधा विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। १९७८-७९ में ऊन का उत्पादन ३४३ लाख किलोग्राम हो जाने का अनुमान है।

(२) भेड़ें मांस के लिए भी पाली जाती हैं किन्तु इनकी मात्रा बहुत ही कम होती है। भेड़ों के मांस की वार्षिक प्राप्ति ४५ करोड़ किलोग्राम है।

उत्तरी भेड़ पालन क्षेत्र

उत्तरी भारत की भेड़ें दक्षिणी भारत की भेड़ों की अपेक्षा अधिक अच्छी और सफेद बालों वाली होती हैं। दक्षिण की भेड़ों का रंग गहरा होता है। दोनों ही क्षेत्रों की ऊन छोटे रेशे वाली होती है।

भेड़ें पालने वाले मुख्य क्षेत्र पंजाब में लुधियाना, अमृतसर, पटियाला, हरियाणा में हिसार और अम्बाला जिले; उत्तर प्रदेश में गढ़वाल, अलमोड़ा और नैनीताल जिले; तमिलनाडु में कर्नूल और कोयम्बटूर जिले; कर्नाटक में बेलारी, महाराष्ट्र में खानदेश, सौराष्ट्र एवं गुजरात क्षेत्र और राजस्थान में जोधपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा, बीकानेर, जैसलमेर जिले हैं।
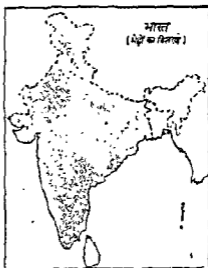
चित्र—१०६

उत्तरी भारत में हिमालय प्रदेश की मुख्य नस्लें ये हैं.

गुरेज (Gurej) नस्ल की भेड़ कश्मीर की गुरेज तहसील में पायी जाती हैं। ये बिना सींग वाली होती हैं। इनके कान छोटे होते हैं। इनसे वर्ष में दो बार ऊन प्राप्त की जाती है। ऊन सफेद रंग का होता है। प्रति भेड़ औसतन प्रति वर्ष १ से ६ किलोग्राम ऊन मिलता है।

करना (*Karna*) नस्ल की भेड़ें कश्मीर में करणा तहसील के पहाड़ी ढालों पर १,५०० से ५,००० मीटर की ऊंचाई तक पाली जाती हैं। इस नस्ल का ऊन मध्यम श्रेणी का होता है।

भक्करवाल नस्ल की भेड़ें कश्मीर के निचले ढालों पर तथा पीर-पंजाल के ऊंचे ढालों पर, श्रीनगर की घाटी और पहलगाम तहसील में पाली जाती हैं। इनसे वर्ष में तीन बार ऊन प्राप्त की जाती है। ऊन मोटी और महीन दोनों ही प्रकार की होती है।

[1] Singh. H., *Domestic Animals*, 1966.

गद्दी या भद्रवाह नस्ल की भेड़ें जम्मू की भद्रवाह और किश्तवाड़ तहसीलों में पायी जाती हैं। भेड़ों के सींग नहीं होते किन्तु भेड़े सींग वाले होते हैं। इनके मुँह पर काले या भूरे धब्बे होते हैं। इनसे वर्ष में तीन बार ऊन काटी जाती है। यह उत्तम किस्म की ऊन होती है। इसका उपयोग कम्बल और शालें बनाने में किया जाता है।

सिक्किम नस्ल की भेड़ें सिक्किम में तथा हिमालय के पूर्वी भागों में पाली जाती हैं। ये हृष्ट-पुष्ट और काले चेहरे वाली होती हैं। इन्हें मुख्यत. मांस के लिए पाला जाता है।

पश्चिमी क्षेत्र में भेड़ पालन

भारत के पश्चिमी शुष्क क्षेत्रों में ऐसी भेड़ें अधिक पाली जाती हैं जिनके बालों का उपयोग गलीचे आदि बनाने के काम आता है। राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश की भेड़ें अधिक गर्मी और कठोर शीत को सह सकती हैं तथा ये छोटी घास पर ही निर्भर रह जाती हैं।

पश्चिमी भारत में भेड़ों की ये निम्न मुख्य जातियाँ पायी जाती हैं

बीकानेरी (Bikaneri) बीकानेर जिले के सूखे भागों और पंजाब के रोहतक, लुधियाना, गुड़गाँव, फिरोजपुर और अम्बाला जिले में पायी जाती हैं।

इन भेड़ों का कद मध्यम तथा नर भेड़ का भार लगभग ५० किलोग्राम और मादा भेड़ का भार ४० किलोग्राम के लगभग होता है। इसका मुँह लाल, काला या सफेद होता है। इसके कान छोटे और सींग नहीं होते। ऊन प्राप्ति के लिए ये सर्वोत्तम मैदानी भेड़ें मानी जाती हैं। इनका ऊन लम्बा और खुरदरा होता है। प्रति भेड़ से ४ से १० किलोग्राम तक ऊन मिलता है। यह ऊन अधिकतर गलीचे बनाने के काम में आता है। यह ऊन बड़ी मात्रा में इंगलैण्ड और उत्तरी अमरीका को भेज दिया जाता है।

लोही (Lohi) भेड़ें राजस्थान के दक्षिणी जिलों और अमृतसर जिले में पायी जाती हैं। इनके ऊन से मोटे कपड़े और कम्बल बनाये जाते हैं जिनका प्रयोग अधिकतर किसान लोग करते हैं। ये भेड़ें गोश्त और दूध दोनों ही देती हैं किन्तु इनका ऊन खुरदरा होता है। इन भेड़ों के कान लम्बे और शरीर सुन्दर होता है।

मारवाड़ी (Marwari) राजस्थान के जोधपुर, पाली और बाड़मेर जिलों में पाली जाती हैं। इनका मुँह काला और बाल सफेद होते हैं। प्रति भेड़ पीछे १ से २ किलोग्राम हल्के किस्म का ऊन मिलता है। इसका उपयोग कम्बल बनाने में किया जाता है।

कच्छी (Kutchi) नस्ल कच्छ और उत्तरी गुजरात में मिलती है। इनसे माँस, ऊन और दूध तीनों ही पदार्थ मिलते हैं। ये बोझा ढोने में अच्छी होती हैं। इनका रंग गहरा चाकलेटी होता है।

दक्षिणी क्षेत्र में भेड़ पालन

दक्षिणी भारत मे मुख्यतः दो किस्म की भेड़ें पाली जाती हैं। एक वे, जिनमे केवल ऊन प्राप्त होता है और दूसरी वे, जिनमें मांस मिलता है। इस क्षेत्र में ये नस्लें पायी जाती हैं :

दक्नी भेड़ें (Deccanese) दक्षिणी महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्य मे मिलती हैं। ये ठिगने कद की किन्तु मजबूत होती हैं। इनसे ऊन की अपेक्षा गोश्त अधिक मिलता है। इनसे प्राप्त होने वाली ऊन काले या भूरे रंग की होती है। प्रति भेड़ से ५ किलोग्राम ऊन वर्ष भर मे प्राप्त होती है।

नेलोरी (Nellore) नस्ल तमिलनाडु और कर्नाटक में पाली जाती है। इनसे सफेद, गहरा भूरा, पीला या सिंदूरिया रंग की ऊन प्राप्त होती है। यह भारतीय भेड़ों में सबसे लम्बी नस्ल होती है जिसके नर में सींग होते हैं किन्तु मादा बिना सींगों वाली होती है।

भारत मे ऊन के कुल उत्पादन का लगभग ५०% अकेले राजस्थान मे प्राप्त होता है। शेष उत्पादन महत्त्व के अनुसार महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पंजाब से प्राप्त होता है।

भारतीय ऊन, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की ऊन से घटिया होती है। इसे सामान्यतः गलीचा ऊन (Carpet wool) कहा जाता है। भारत की प्रति भेड़ पीछे वार्षिक उत्पादन १ से २ किलोग्राम का होता है जबकि आस्ट्रेलिया मे यह ४ किलोग्राम का है।

अच्छी किस्म की ऊन का आयात फारस, अफगानिस्तान, मध्य एशिया, नेपाल और आस्ट्रेलिया से होता है। १९५०-५१ और १९७२-७३ मे क्रमश ५.६ और १०.७ करोड़ रुपये के मूल्य का ऊन आयात किया गया। इन वर्षों मे निर्यात का मूल्य क्रमशः ७.८ और ५.६ करोड़ रुपया था।

ऊन का उत्पादन और उसकी किस्म सुधारने तथा भेड़ पालन के विकास पर द्वितीय योजना मे लगभग १.६ करोड़ रुपया व्यय किया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत तीन भेड़ अभिजनन केन्द्र स्थापित किये गये। तीसरी योजना मे ६ नये केन्द्र तथा ४,००० प्रसार केन्द्र खोले गये। ऊन की वैज्ञानिक ढंग से कटाई, श्रेणीकरण और विपणन व्यवस्था के लिए ३०० सरकारी केन्द्र खोले गये। उन्नत भेड़ प्रजनन के लिए पश्चिमी हिमालय क्षेत्र और दक्षिणी पठार के चुने हुए क्षेत्रों मे स्थानीय नस्लों को अच्छी ऊन वाली विदेशी नस्लों से मेल कराया जाता है।

राजस्थान मे एक केन्द्रीय भेड़ अनुसन्धान संस्था स्थापित की गयी है। कुलू और कोडाई-कनाल मे दो उप-संस्थाएँ खोली गयी हैं।

घोड़े और टट्टू (Horses and Ponies)

देश में १२ लाख घोड़े और टट्टू हैं। ये असम, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, कर्नाटक और तमिलनाडु में कम पाये जाते है क्योंकि ये सभी भाग नम हैं, जबकि ये पशु अधिकतर शुष्क घास के मैदानों तथा पठारी भागों पर ही भली प्रकार रहते हैं अतः ये अधिकतर महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और मध्य प्रदेश में मिलते हैं। इनका उपयोग सवारी करने अथवा माल ढोने में किया जाता है।
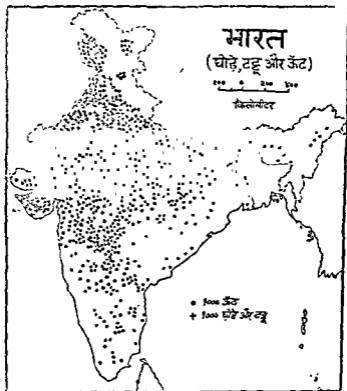
चित्र—१०·५

भारतीय घोड़ों की उत्तम नस्लें काठियावाड़ी (जो सौराष्ट्र में मिलती है), मारवाड़ी (राजस्थान के पश्चिमी भागों में), भूटिया (पंजाब और पश्चिमी बंगाल के उप-हिमालय प्रदेश में), मनीपुरी (मनीपुर में) और स्पीति (जो पंजाब के कुल्लू और कांगड़ा घाटी में पायी जाती है) हैं। इनमें सबसे उत्तम नस्लें काठियावाड़ी और

मारवाड़ी हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में भूटिया, मनीपुरी किस्म सवारी और बोझा ढोने के काम आती है। पाकिस्तानी नस्लें बलूची, हिरजाई और अनमोल भी भारत के कई भागों में पायी जाती हैं।

खच्चर (Mules)

यह गधे और टट्टू के बीच की श्रेणी का पशु होता है। यह भी सामान ढोने के लिए मारवाहक पशु के रूप में, विशेषतः पहाड़ी भागों में, उपयोग में लाया जाता है। सेनाओं में इसका उपयोग इस कार्य के लिए अधिक होता है। भारत में इनकी संख्या ५१ हजार है। सबसे अधिक खच्चर उत्तर प्रदेश में मिलते हैं। महत्त्व के अनुसार अन्य राज्य क्रमशः पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर और मध्य प्रदेश हैं। यह एक दिन में २४ से ३२ किलोमीटर चल सकता है।

ऊँट (Camels)

यह मरुस्थलीय और अर्द्ध-मरुस्थलीय पशु है। भारत में इसकी संख्या १० लाख है। इसमें कई गुण पाये जाते हैं अतः मरुस्थलीय क्षेत्रों में सवारी करने और बोझा ढोने के लिए इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। इसके कूबड़ में चर्बी का भण्डार होता है अतः यह शुष्क दशाओं में बिना खाये भी रह जाता है। इसकी चमड़ी मोटी होती है, अतः वाष्पीकरण द्वारा इसके शरीर से जल कम निकल पाता है। इसके पेट की थैली में जल भरा रहता है। अतः वह कई दिनों तक बिना जल पिये रह सकता है। इसके शरीर पर बाल होते हैं, अतः यह तीव्र गर्मी का सामना सरलता से कर सकता है। इसका पाँव चौड़ा होता है, अतः यह बालू मिट्टी में धँसता नहीं और यह शीघ्रता से दौड़ सकता है। इसकी गर्दन लम्बी होती है जिससे यह ऊँचे वृक्षों की टहनियों को तोड़ सकता है। इसकी आँखों पर लम्बी भौंहें होती हैं अतः बालू मिट्टी इसकी आँखों में नहीं घुस पाती और इसकी नासिका के छिद्र छोटे होते हैं अतः तूफानों में भी बालू से इसकी रक्षा हो जाती है। इसके होंठ मोटे और कठोर चमड़ी वाले होते हैं अतः यह कटीली झाड़ियों को सरलता से खा सकता है। इन्हीं सब कारणों से ऊँट को मरुस्थल का जहाज कहा जाता है।

ऊँट के बालों से रस्से-रस्सियाँ, कम्बल, दरियाँ, आदि बनायी जाती हैं। चमड़े का उपयोग काठी, थैले और तेल रखने की कुप्पियाँ बनाने में किया जाता है। इसका दूध पीने के काम में आता है।

भारत में यह सबसे अधिक राजस्थान में (कुल का ४०%) मिलता है। पंजाब, गुजरात, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में भी यह मिलता है। भारत में अरब किस्म का एक कूबड़ वाला ऊँट ही पाया जाता है। भारत में तीन किस्म के ऊँट मिलते हैं। मैदानी या नदीतट (Riverine) मुख्यतः पंजाब और उत्तर प्रदेश में, मरुस्थलीय (Desert camel) राजस्थान के जैसलमेर तथा बीकानेर जिलों में पाये जाते हैं। ये बड़े मजबूत होते हैं। पहाड़ी ऊँट (Hill Camel) मुख्यतः उत्तरी पंजाब के

पर्वतीय क्षेत्रों में मिलते हैं। राजस्थान में ऊँट की अलवर, बीकानेरी, काच्छी, जैसलमेरी नस्लें सर्वोत्तम मानी जाती हैं। एक ऊँट दिन भर में ४८ किलोमीटर तक चल सकता है।

गदहे (Donkeys)

यह बहुत ही सीधा पशु है जो सामान्यतः उष्ण और अर्द्ध-शुष्क भागों में पाया जाता है। इसका उपयोग माल ढोने के लिए किया जाता है। सबसे अधिक
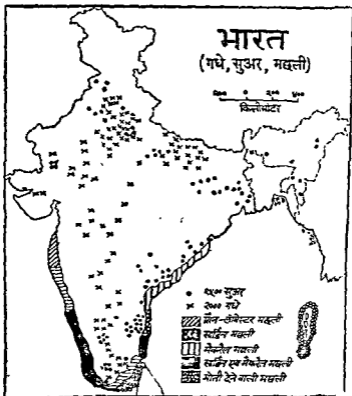
चित्र—१०·६

गधे राजस्थान में मिलते हैं। उत्तर प्रदेश, पंजाब, गुजरात तथा तमिलनाडु अन्य राज्य हैं जिनमें यह अधिकता से पाया जाता है। इसकी दो नस्लें मुख्य हैं, भूरी और सफेद रंग वाली। उत्तम गधा काठियावाड़ में पाया जाता है। इसकी संख्या ११ लाख है। यह एक दिन में २५ से ३२ किलोमीटर चल सकता है।

सूअर (Pigs)

यह एक गन्दा पशु होता है, जो अधिकतर विष्टा, अनाज के बचे-खुचे अंशों और अन्य गन्दगी पर निर्भर रहता है। अतः इसे निम्न जातियों के लोग ही पालते हैं। इसमें कई गुण पाये जाते हैं, प्रतिवर्ष इसकी संख्या में आश्चर्यजनक गति से वृद्धि होती है। १० मादा और १ नर मिलकर १६० बच्चे देती हैं। यह किसी भी वस्तु पर रह सकता है। इसके बाल कड़े होते हैं जिनका उपयोग ब्रुश बनाने में किया जाता है। अनुमानतः प्रतिवर्ष ३ लाख किलोग्राम बालों की प्राप्ति की जाती है जिनका मूल्य १ करोड़ रुपये के लगभग आँका जाता है। इसका माँस सस्ता और प्रोटीनयुक्त होने के कारण खाने में अधिक आता है।

भारत में ५२ लाख सूअर पाये जाते हैं। सबसे अधिक सूअर उत्तर प्रदेश, बिहार, आंध्र, तमिलनाडु, असम, गुजरात और मध्य प्रदेश में मिलते हैं। राजस्थान और गोआ में भी यह पाये जाते हैं। अधिकांशतः यहाँ देशी नस्ल के सूअर ही मिलते हैं किन्तु विदेशी नस्ल के सूअर (श्वेत यार्कशायर, मध्यम यार्कशायर और बर्कशायर नस्लें) उत्तम जाति के सूअर पैदा करने के लिए काम में लाये जाते हैं। अब तक ५२ सूअर प्रजनन इकाइयाँ, १४० सूअर विकास खण्ड, २ क्षेत्रीय सूअर प्रजनन केन्द्र एवं ७ माँस तैयार करने के कारखाने (Bacon factories) अलीगढ़, राँची, कुथालदुकुलम, गन्नावरम, कोरोविली और हरिंघाटा में स्थापित किये गये हैं। चतुर्थ योजना में २५ सूअर प्रजनन फार्म स्थापित किये जायेंगे तथा १० फार्मों का विस्तार किया जायेगा।

मुर्गी पालन (Poultry Farming)

यह व्यवसाय भी मुख्यतः निम्न वर्ग के लोगों द्वारा ही किया जाता है। मुर्गी पालन के अन्तर्गत मुर्गे-मुर्गियाँ, बतखें, हंस, आदि पाले जाते हैं। इनसे अण्डे, माँस और पर मिलते हैं। मुर्गियाँ सामान्यतः बहुत ही थोड़े अनाज या कूड़े-करकट पर जीवित रह सकती हैं। इनकी विशेष देख-रेख की आवश्यकता नहीं होती। ये किसी भी प्रकार की जलवायु में रह सकती हैं। किन्तु अभी तक भारत में इस उद्योग का विकास अधिक नहीं हो पाया है। धार्मिक कारणों से अण्डे का उपयोग अधिक नहीं है। दूसरे, इस उद्योग में गरीब लोग ही लगे हैं जिनके लिए यह आय का साधन है किन्तु धन के अभाव में यह उद्योग अत्यन्त अव्यवस्थित ही है। मुर्गियों को गन्दे स्थानों में पाला जाता है। भोजन की व्यवस्था ठीक न होने से अण्डे ठीक नहीं मिलते तथा शीघ्र ही मुर्गियाँ अण्डे देना बन्द कर देती हैं। अधिकांश मुर्गियाँ देशी नस्ल की हैं, जिनसे प्रति मुर्गी पीछे वार्षिक उत्पादन ५३ अण्डों तक ही होता है जबकि न्यूजीलैण्ड में १६०, बेल्जियम में १४०, जापान में १३०, डेनमार्क में १२० और संयुक्त राज्य में ११५ अण्डे तक मिलते हैं। अब विदेशी नस्लों से भारत में श्वेत लेघोर्न से १९३ और रोड आइलैण्ड रेड से २१२ अण्डों की प्राप्ति की जाने लगी है।

१९६५-६६ में ४१० करोड़ और १९६९-७० में ५३० करोड़ अण्डों का

उत्पादन किया गया। १९७२-७३ में यह ७७० करोड़ का था। जिसमें से ½ मुर्गियों और ½ बतकों के अण्डों का होता है। इनका मूल्य ७० करोड़ रुपये के लगभग होता है। पंचम योजना में इनका उत्पादन १,२४४ करोड़ अण्डों का किया जायेगा।

देश में १२ करोड़ मुर्गियाँ हैं। *सबसे अधिक मुर्गियाँ आन्ध्र में हैं।* इसके बाद क्रमशः पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडु महाराष्ट्र, असम, केरल, कर्नाटक, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और गुजरात का स्थान है। राजस्थान में सबसे कम मुर्गियाँ पाली जाती है।

बतकों की संख्या सबसे अधिक पश्चिमी बंगाल में मिलती है। इसके बाद *असम, तमिलनाडु, केरल, आन्ध्र, बिहार और उड़ीसा का स्थान आता है।*

मुर्गियों की मुख्य नस्लें देशी (असील—उत्तर प्रदेश में रामपुर और लखनऊ जिलों में; तथा आन्ध्र में हैदराबाद जिलों में, चिटगाँव बंगाल में, और घगुस आन्ध्र और कर्नाटक में पाली जाती है) के अतिरिक्त ह्वाइट लैंघोर्न, रोड आइलैंड रैड, ब्लैक मिनोर्का, प्लाइमाऊथ रॉक, आस्ट्रेलर, लाइट ससेक्स, ह्वाइट कॉनिश और न्यू हैम्पशायर जैसी विदेशी नस्लें भी पायी जाती हैं।

बतकों की मुख्य नस्लें सिलहट मेट, नागेश्वरी, इण्डियन रनर और खाकी कैम्पबैल हैं।

मुर्गी पालन विकास के लिए सतत प्रयत्न जारी हैं। डेनमार्क की सहायता से पूना में ३० लाख रुपये की लागत से एक आधुनिकतम मुर्गी प्रक्रिया संयन्त्र (Poultry Dressing Plant) स्थापित किया गया है जिसमें प्रति घण्टा एक हजार *मुर्गियों पर स्वास्थ्यप्रद वातावरण में प्रक्रिया करने की तथा १ लाख मुर्गी के बच्चे और १० लाख अण्डों की शीत संग्रह सुविधाएँ हैं।*

रेशम के कीड़े पालना (*Sericulture*)

प्राकृतिक रेशम एक प्रकार के कीड़े से प्राप्त किया जाता है जो शहतूत, महुआ, साल, बेर, अरंड, कुसुम, आदि वृक्षों की पत्तियों पर पलता है। एक बार में एक मादा ५०० अण्डे देती है। इन अण्डों को १५° से २५° सेन्टीग्रेड तापमान वाले स्थानों में या कमरों में रखा जाता है। उपयुक्त समय पर इन अण्डों से कीड़े निकल कर पत्तियों को खाने लगते हैं। काफी मात्रा खा लेने पर यह अपने मुँह से धागा-सा निकालकर अपने ही चारों ओर लपेटने लगता है और अन्ततः यह कीड़ा पूरी तरह *से धागे से लिपट जाता है। तब इन कोयों* (Cocoons) को गरम जल में डालकर रेशम का धागा प्राप्त कर *लिया जाता है* और कीड़ा मर जाता है।

भारत में रेशम का कीड़ा पालने के लिए उपयुक्त दशाएँ पायी जाती हैं। कीड़ों के अपेक्षित वृक्ष बहुतायत में भारत में मिलते हैं। सामान्यतः तापमान भी १८° से २८° सेण्टीग्रेड मिल जाते हैं। अतः बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों, तमिलनाडु के समुद्रतटीय जिलों, तथा असम में यह वर्ष भर पाले जा सकते हैं।

भारत में रेशम का कुल उत्पादन लगभग २३ लाख किलोग्राम का होता है। इसका ५०% अकेले कर्नाटक से प्राप्त होता है। शेष पश्चिमी बंगाल, असम, बिहार और मध्य प्रदेश से। चतुर्थ योजनाकाल में रेशम का उत्पादन बढ़कर ३१ लाख किलोग्राम हो जाने का अनुमान है।

कर्नाटक में यह दक्षिणी भागों से प्राप्त किया जाता है। पश्चिमी बंगाल में इगलिश बाजार, मुर्शिदाबाद, बीरभूम और मालदा जिलों में, असम में ब्रह्मपुत्र की घाटी से, बिहार में छोटा नागपुर के पठार, तमिलनाडु में कोयम्बटूर जिले तथा पंजाब में कांगड़ा की घाटी और कुछ रेशम जम्मू-कश्मीर में भी प्राप्त किया जाता है।

भारत में चार प्रकार का कच्चा रेशम (raw silk) उत्पन्न होता है -

(१) शहतूत का रेशम (Mulbery Silk), मुख्यत. शहतूत के वृक्षों पर पले कीड़ों से प्राप्त होता है। देश के कुल उत्पादन का लगभग ७५% शहतूती रेशम का ही होता है। इसका रंग गहरा पीलापन लिये होता है। यह मुख्यतः कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, असम, मेघालय, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, आंध्र और बिहार राज्यों से प्राप्त किया जाता है। इसका वार्षिक उत्पादन लगभग १७ लाख किलोग्राम का होता है।

(२) टसर रेशम (Tassar Silk) भी शहतूत पर पाले गये कीड़ों से प्राप्त किया जाता है। टसर के कीड़े एक प्रजनन, द्वि-प्रजनन और त्रि-प्रजनन वाले होते हैं। ये शहतूत के अतिरिक्त ढाक, साल, बेर, आसन, कुसुम और महुआ के वृक्षों पर पाले जाते हैं। इस रेशम का रंग हल्का पीला होता है और यह कुछ घटिया किस्म का माना जाता है। इसके मुख्य उत्पादक बिहार, उड़ीसा, तथा मध्य प्रदेश हैं। इसका वार्षिक उत्पादन लगभग २'६ लाख किलोग्राम का होता है।

(३) मूंगा रेशम (Munga Silk) सामान्यत : शहतूत के वृक्षों पर पाले गये कीड़ों से प्राप्त किया जाता है। इसका रंग सुनहरा पीला होता है। यह अधिकतर असम की घाटी में उत्तरी असम में अहोम, दक्षिणी कामरूप की गारो, रैंमाश और कछारी तथा नवगांव की लाहुंग आदि जातियों द्वारा पाला जाता है। पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक, जम्मू-कश्मीर में भी ऐसा रेशम प्राप्त किया जाता है। इसका वार्षिक उत्पादन लगभग ७०,००० किलोग्राम का है।

(४) ईरी रेशम (Eri Silk) हल्के बादामी रंग का, खुरदरा, कम चमकीला किन्तु नरम होता है। यह अधिकतर अरण्ड के पत्तों पर पाले गये कीड़ों से प्राप्त किया जाता है। इसकी प्राप्ति मध्य प्रदेश, असम, बिहार, उड़ीसा पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र और आंध्र से होती है। इसका वार्षिक उत्पादन लगभग २ लाख किलोग्राम का होता है।

भारत में कच्चे रेशम का उत्पादन (१९६८-६९)

(किलोग्राम में)

राज्य	शहतूती रेशम	गैर-शहतूती रेशम
असम	१६,१००	२,७२,६५०
बिहार	२५७	१,२६,७२६
आन्ध्र	६३	८३५
जम्मू-काश्मीर	४७,८७५	—
मध्य प्रदेश	४५८	१,३५,०००
कर्नाटक	१४,०६,१०१	१,७००
उड़ीसा	—	२१,०२०
पंजाब	२,११७	—
तमिलनाडु	३,०४२	—
उत्तर प्रदेश	२,९०५	४५
पश्चिमी बंगाल	२,६७,६५६	१४,३३०
अन्य राज्य	१,१७२	७४९
योग	१७,४७,७४६	५,७३,०६५

मछली पकड़ना (Fishing)

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ, अनेक नदियाँ एवं नहरें और उनकी प्रशाखाएँ तथा असंख्य तालाब और झीलें हैं, मछलियाँ पकड़ने के लिए विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक और भौगोलिक परिस्थितियाँ पायी जाती हैं। भारत के विभिन्न भागों में कई प्रकार की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। अब तक भारतीय समुद्रों में १,८०० प्रकार की मछलियाँ ज्ञात हो चुकी हैं किन्तु कुछ किस्मों की मछलियाँ यहाँ पर्याप्त परिमाण में पकड़ी जाती हैं। भारत में मछलियाँ पकड़ने के मुख्य क्षेत्र समुद्रतटीय सीमाएँ हैं। इनके अतिरिक्त नदियों के मुहाने, नदियाँ, सिंचाई की नहरें, बाढ़वर्ती क्षेत्र, झीलें आदि भी मछली पकड़ने के मुख्य क्षेत्र हैं। भारत की समुद्रतटीय रेखा लगभग ५,७०० किलोमीटर लम्बी है और उस समुद्र का क्षेत्रफल जो १८३ मीटर गहरा है लगभग २.७५ लाख वर्ग किलोमीटर है किन्तु इस क्षेत्रफल का बहुत थोड़ा भाग ही काम में आता है। ऐसा अनुमान किया गया है कि अभी तक तट से १० से १६ किलोमीटर के क्षेत्र तक ही मछलियाँ पकड़ने के केन्द्र सीमित हैं। सम्पूर्ण समुद्री मछलियों के केवल ५-६% क्षेत्रफल में ही मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। नदियों के मुहाने और नदियों में भी मछली पकड़ने का काम किया जाता है। इनसे देश के भीतर काफी परिमाण में मछलियों की पूर्ति हो जाती है।

उद्योग का महत्व

भारत की अर्थव्यवस्था में मछली उद्योग का योगदान निम्न तथ्यों से स्पष्ट होता है :

(१) भारतीय आहार को सन्तुलित बनाने में मछली पालन उद्योग का विशेष स्थान है। भारत में योजनाकाल में (१९५१-६६) जनसंख्या में लगभग ३७% की वृद्धि हुई है जबकि प्रतिवर्ष खाद्यान्नों की औसत कमी लगभग ५० लाख टन की पायी गयी है। यह खाद्यान्न की कमी मछली उत्पादन बढ़ाकर की जा सकती है। अनुमान लगाया गया है कि पूर्ण विकास किये जाने पर भारत में मछली का उत्पादन १ करोड़ टन तक किया जा सकता है, जबकि वर्तमान उत्पादन केवल २२·६ लाख टन का ही है। इसके द्वारा प्रतिवर्ष ३७ से ५२ लाख टन अधिक भोजन की प्राप्ति सम्भव है। १ करोड़ टन में दो-तिहाई तटीय भागों तथा गहरे समुद्र से और शेष भीतरी भागों से प्राप्त की जा सकती है।

यह स्मरणीय तथ्य है कि अभी भारत में मछली का औसत उपयोग २ किलो ही है, जबकि रूस में यह ११·४ किलो; मलयेशिया-सिंगापुर में २६.६ किलो, बर्मा में १८ किलो; नार्वे में ६१.३ किलो; जापान में ४९·४ किलो, पुर्तगाल में ४८·४ किलो और कोरिया में ३२·६ किलो है।[1]

(२) मछली उद्योग का राष्ट्रीय आय में योगदान १९५८-५९ में ७० करोड़ और १९७०-७१ में १६७ करोड़ रुपये था। इस प्रकार राष्ट्रीय आय का ०.६% तथा कृषि क्षेत्र की आय का १·४% भाग मछली उद्योग से प्राप्त होता है। अगर देश में १ करोड़ टन मछली, उत्पादन किया जा सके तो उसके द्वारा राष्ट्रीय आय में ४५० करोड़ रुपये की वृद्धि हो सकती है।

(३) भारत से मछलियों का निर्यात व्यापार किया जाता है। यह निर्यात लंका, सिंगापुर, मारीशस, हांगकांग बर्मा और सुदूर पूर्व के देशों तथा अमरीका और यूरोपीय देशों को किया जाता है। भारत के कुल निर्यात व्यापार में मछली और अन्य सामुद्रिक जीवों का भाग १९६१-६२ में केवल ०·६% था जो १९७२-७३ में यह १·४०% हो गया। इस अवधि में मछलियों का निर्यात मूल्य ३.९२ करोड़ रुपये से बढ़कर ६० करोड़ रुपया हो गया। १९७२-७३ में ३९,००० टन मछलियों का निर्यात किया गया। १९७२-७३ में निर्यात मूल्य ५४·४८ करोड़ रुपया था।

इस निर्यात में अधिकतर सूखी मछलियाँ (बम्बई डक, मरेलो, रिबन, चुड़ाई और सोल) जमी तथा डिब्बों में बन्द, श्रिंप, मेढक की टाँगें और कैंकड़े होते हैं। मैकरेल, सारडीन और झींगा मछली का अचार भी निर्यात किया जाता है। यदि निर्यात व्यापार को पूरी तरह व्यवस्थित किया जा सके तो चतुर्थ योजना तक मछलियों के निर्यात व्यापार से २७ से ४० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त की जा सकती है।

[1] *Fisheries in Food Economy, F. A. O., pp. 4-5.*

(४) मछली पकड़ने में १९५१ में ४·२१ लाख व्यक्ति लगे थे जिन पर २१ से २५ लाख व्यक्ति आश्रित थे। १९६१ में अनुमानित सब मिलाकर ६·८३ लाख व्यक्ति इस उद्योग में लगे थे। यदि प्रति मछुआ परिवार में ६ व्यक्ति हों तो ४१ लाख व्यक्तियों का भरण-पोषण इस उद्योग द्वारा होता है। ६·८३ लाख में से ६७% व्यक्ति आन्तरिक और तटीय मछली उत्पादन में लगे हैं, जबकि देश के कुल आन्तरिक जल क्षेत्र के केवल ४०% भाग में ही मछली पकड़ी जाती है। सबसे अधिक मछली पकड़ने वालों की संख्या (८४%) ग्रामीण क्षेत्रों में पायी जाती है।

(५) मछली पकड़ने के उद्योग के अतिरिक्त काफी बड़ी संख्या अन्य सम्बन्धित उद्योगों में भी लगी है। ये उद्योग नाव बनाना, मछली पकड़ने के फन्दे, औजार, हथियार, रस्से, आदि बनाना, पकड़ी हुई मछलियों को सुखाने, डिब्बों में बन्द करने या बर्फ में जमाने, उनका तेल निकालने, खाद बनाने, आदि कार्यों में लगे हैं। अकेले केरल राज्य में ही मछली उद्योग से सम्बन्धित १८ शीत भण्डारगृह, २८ नावें बनाने के यार्ड्स, २१ जमाने वाली फैक्ट्रियाँ, ११ दबाने वाली फैक्ट्रियाँ पायी जाती हैं।

(६) देश के लम्बे समुद्र तट पर मछली पकड़ने में लगभग ७४,००० नावें लगी हैं। इनमें से ६,३०० नावें यन्त्रचालित हैं। मछली उद्योग में लगे ३ राज्य सहकारी संघ, २० केन्द्रीय मछली उद्योग समितियाँ और ३,१७० प्राथमिक सहकारी मछली उद्योग समितियाँ कार्य कर रही हैं।

उत्पादन और उपभोग

विश्व के मछली उत्पादन में भारत का भाग बहुत ही कम है। १९५१ से १९६४ की अवधि में यह भाग ३·७% से घटकर २·७% हो गया था। अब अनेक प्रयासों के फलस्वरूप यह उत्पादन फिर बढ़ने लगा है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा।[1]

(००० मीट्रिक टन)

वर्ष	समुद्री क्षेत्र	भीतरी क्षेत्र	कुल योग
१९५७	८७५	३५८	१,२३३
१९६०	८७८	२८२	१,१६०
१९६१	६८४	२७७	९६१
१९६६	८७०	४३५	१,३०५
१९६७	९२०	५००	१,४२०
१९६८	९७०	५६०	१,५३०
१९६९	९१२	६९३	१,६०५

[1] Indian Agriculture in Brief, 1973, p. 103; Annual Report for 1972-73 of the Ministry of Agriculture, p. 103

१६७०	१,०३३	६८६	१,७१६
१६७१	१,१५५	६६०	१,८४५
१६७२	१,००६	७३५	१,८४१
१६७३-७४	१,४८४	७८५	२२,६६८
१६७८-७६ (अनुमान)	२,०२५	१,०५५	३,०८०

देश में जितनी मछली पकड़ी जाती है उसका ७१% खाने के काम में लाया जाता है, २% बर्फ मे जमाकर रखी जाती है, २३% सुखाकर रखी जाती है, ५% का खाद तथा पशुओं के लिए खाद्य तैयार किये जाते हैं। मछलियाँ धूप मे अथवा धुँआ पर सुखाई जाती हैं। डिब्बो में बन्द करने के पूर्व इन्हें नमक या शराब में डुबाया जाता है।

मछलियों से प्राप्त होने वाली मुख्य वस्तु तेल है, जिसमे विटामिन ए, बी और डी पाये जाते हैं। यह तेल अधिकतर शार्क, तथा सारडीन मछलियों से निकाला जाता है। बम्बई, मद्रास, कोजीकोड मे इसके कई कारखाने है। इस तेल का उपयोग दवाई के रूप मे, चमड़े को मुलायम करने, इस्पात को चमकाने, साबुन बनाने तथा रोगन बनाने मे किया जाता है। ज्यू-फिश, सामन, कैट-फिश से आइसिंग ग्लास तथा सरेस बनाया जाता है। सड़ी हुई मछलियो का खाद दिया जाता है तथा मछली के टुकड़ों को मुर्गियो और अन्य पशुओं को खिलाया जाता है।

१६७३-७४ में २२·६६ लाख टन मे से ७·८५ लाख टन ताजा जल की मछलियों का और १४·८४ लाख टन सामुद्रिक मछलियों का था। १६७८-७६ में यह उत्पादन क्रमशः ३०·८ लाख टन, १०·५५ लाख टन और २०·२५ लाख टन का होगा।

मछलियों के प्रकार (*Kinds of Fishes*)

मोटे तौर पर देश में कुल मछलियो के उत्पादन का ७१% उथले और गहरे समुद्रों से तथा २६% भीतरी भागों के जल क्षेत्रो से प्राप्त किया जाता है।

यद्यपि भारत के निकटवर्ती समुद्रो मे १,८०० से भी अधिक किस्म की मछलियाँ पायी जाती हैं किन्तु इनमें से कुछ ही प्रकार की मछलियो को अभी तक पकड़ा गया है। मत्स्य विज्ञान के विद्वानो ने समुद्री मछलियों को १४ और ताजे जल की मछलियो को ६ मुख्य भागो में वर्गीकृत किया है।

समुद्री मछलियाँ (Marine Fisheries) के अन्तर्गत सारडाइन, हेरिंग, ऐंकावी तथा प्रेन, मछलियों का स्थान प्रथम है। मैकरेल, हाँसे मैकरेल तथा पर्च का स्थान द्वितीय है। ५५ प्रतिशत उपर्युक्त दोनो प्रकार की मछलियाँ होती हैं तथा ४५ प्रतिशत में ज्यू-फिश, कैट-फिश, भारतीय सैमन, बॉम्बे डक, मुलेट्स, पाम्फ्रेट्स,

सिल्वर फिश, रिबन फिश, व्हेल मछली, ईल और दाराव, आदि हैं। इन मछलियों को पकड़ने के लिए ड्रिफ्ट नेट, कास्ट नेट तथा स्थिर-जाल आदि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की मछलियाँ समुद्रतटीय भागों में ८ से ११ किलोमीटर के घेरे में ही पकड़ी जाती हैं।

ताजे जल की मछलियों में विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान कार्प नामक मछली का है। कुल पकड़ी जाने वाली मछलियों का एक-तिहाई भाग इन मछलियों का ही होता है। इनके अन्तर्गत रोहू, कतला, कालबासु, सौर, मशीर, बघुआ, बिल्वा, वारिल, मुराल और ग्रीगल, आदि मछलियाँ मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त ताजे जल में कैट फिश, साइब फिश, प्रॉन, मुलेट्स, फेदर-बैंक, पर्च, लोच, ईल, हैरिंग और ऐंकावी मछलियाँ भी खूब पकड़ी जाती हैं। इन मछलियों का उत्पादन नदियों, झीलों, तालाबों, बाँधों और नहरों से प्राप्त किया जाता है।

मछली उत्पादक क्षेत्र (Fishing Areas)

देश में १६'२ लाख हैक्टेअर जल भूमि में मछलियाँ उत्पन्न की जा सकती है, ताजे जल के ६५ हजार हैक्टेअर और नमकीन जल के २०'२ लाख हैक्टेअर जल क्षेत्रों में किन्तु अभी तक ६,१६० हैक्टेअर भीतरी क्षेत्रों में ही मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।[1]

भारत में मछली पकड़ने वाले क्षेत्रों को निम्न रूपों में बाँटा जा सकता है :

(१) समुद्री मछलियों के क्षेत्र,
(२) देश के भीतरी भागों में मछली पकड़ने के क्षेत्र
(३) नदियों के मुहाने के क्षेत्र, और
(४) मोती देने वाली मछलियों के क्षेत्र।

(१) समुद्री मछलियाँ (Sea Fisheries)

इनका उत्पादन ताजे जल की मछलियों के उत्पादन से लगभग २½ गुना है किन्तु मूल्य की दृष्टि से ताजे जल की मछलियाँ अधिक महत्त्व की हैं।

समुद्री मछलियाँ पकड़ने के मुख्य क्षेत्र तटीय रेखा से ८ से १६ किलोमीटर की सीमा तक ही सीमित है। समुद्री मछली के प्रमुख क्षेत्र गुजरात के तटीय भागों में महाराष्ट्र और मालाबार तट, मन्नार की खाड़ी और कोरोमण्डल तट हैं। पूर्वी और पश्चिमी किनारों पर पकड़ी जाने वाली मुख्य मछलियाँ प्रॉन ज्यू मछली, मैकरेल मुलेट्स, सैमन, पॉमफ्रेट, सीर, सारडाइन, रे, पहनी मछली, चपटी मछली, हैरिंग और शार्क हैं। ये सभी मछलियाँ खाने के काम आती हैं। ये मछलियाँ सीमित मात्रा में ही पकड़ी जाती हैं क्योंकि गाँवों में इनकी माँग बहुत ही कम है।

सभी क्षेत्र एकसमान उत्पादक नहीं हैं। पश्चिमी समुद्रतट लगभग १,८५० किलोमीटर लम्बा है किन्तु यहाँ कुल उत्पादन की ६६% मछलियाँ पकड़ी जाती हैं जबकि बंगाल की खाड़ी का तट, जो २,८५० किलोमीटर से भी अधिक है, सम्पूर्ण

1 Fourth Five Year Plan, p 202.

भारत की केवल ½ ही मछलियाँ पकड़ता है। पश्चिमी तट पर ही कनारा और मालाबार जिलों में कुल भारत की पकड़ का ½ मछली पकड़ी जाती है।

भारत के समुद्रों में मछली पकड़ने का उद्योग सामयिक है। मानसून के दिनों में यह कार्य कम हो जाता है। समुद्र में तेज वायु और नदियों, तालाबों में जल का तेज-प्रवाह और अधिकता के कारण मानसून के दिनों में मछली पकड़ने में रुकावट पड़ती है। भारत के समुद्र से मछलियाँ केवल तट के निकट ही पकड़ी जाती हैं। जब समुद्र का वातावरण शान्त होता है तभी मछुए अपनी नावें समुद्रों में उतारते हैं। *पश्चिमी समुद्री तट के सभी मछली पकड़ने के केन्द्रों पर दक्षिणी-पश्चिमी मानसून* के अन्त होने के साथ ही मछली पकड़ने का मौसम आरम्भ हो जाता है। यह मौसम किन्हीं वर्षों में अक्टूबर महीने में और किन्हीं वर्षों में नवम्बर में अपनी पूर्ण अवस्था तक पहुँच जाता है। फरवरी के महीने से इसमें कमी होने लगती है। तमिलनाडु के पूर्वी तट पर परिस्थितियाँ थोड़ी भिन्न हैं क्योंकि यह भाग दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के मार्ग में नहीं पड़ता। अतः यहाँ वर्ष भर ही थोड़ी-बहुत मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। मई-जून में जब पश्चिमी तट पर बहुत कम मछलियाँ मिलती हैं तब भी यहाँ काफी मात्रा में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

भारत के विभिन्न राज्यों में मछलियों का उत्पादन इस प्रकार है[1]

(००० टनों में)

राज्य	भीतरी क्षेत्र	सामुद्रिक क्षेत्र	योग
आंध्र प्रदेश	८७·९२	८८·७१	१७६·६३
असम	३२·००	—	३२·००
बिहार	६८·००	—	६८·००
गुजरात	१५·००	१६५·००	१८०·००
कर्नाटक	७०·००	१२०·००	१९०·००
केरल	२०·००	४८०·००	५००·००
मध्य प्रदेश	९·००	—	९·००
महाराष्ट्र	१८·००	२६४·००	२८२·००
उड़ीसा	२३·००	१७·००	४०·००
तमिलनाडु	१५०·००	३००·००	४५०·००
उत्तर प्रदेश	२४·००	—	२४·००
प० बंगाल	२४०·००	१०·००	२५०·००
अण्डमान	—	०·९०	०·९०
लक्षद्वीप	—	२·५०	२·५०
गोआ, डामन द्यू	०·७५	२२·३६	२३·११
भारत का योग	७८४·००	१,४८५·४७	२,२६९·४७

[1] *Times of India's Directory and Year Book*, 1974-75, p. 71.

समुद्री मछली पकड़ने में आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु का स्थान प्रमुख है।

आन्ध्र प्रदेश की तटरेखा लगभग ६०० मील है। इसका महाद्वीपीय ढाल २० मील तक फैला है जिसका क्षेत्रफल १२,००० वर्गमील है। आन्ध्र मे मछली पकड़ने मे ३५० गांव लगे हैं। यहाँ १·८ लाख मछुए २०,००० नावो और ६१,००० जालो द्वारा लगभग १·६० लाख टन मछलियाँ पकड़ते हैं। मछलियों की मुख्य पकड़ ज्यू फिश, रिबन फिश, मैकरेल, कैट फिश और सारडीन की होती है। मुख्य केन्द्र काकीनाडा, मछलीपट्टम, नेलोर, गंजाम और विशाखापट्टनम हैं।
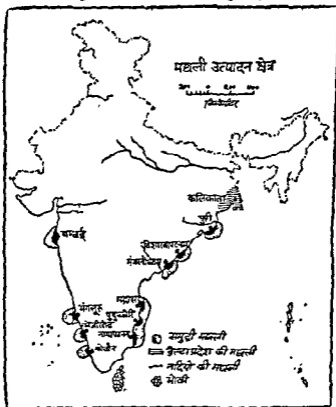
चित्र—१०·७

आन्ध्र में मछली पालन करने वाले १३ फार्म हैं: पाम्बा, इपूर, मोरद, थंकुमला, कड्डप्पा, हुसैन सागर, राजेन्द्र नगर, डिंडी, मनेर, कोमल सागर, निजामाबाद, धनीग्राम, म्यारा और बारमस में।

तमिलनाडु की तट रेखा लगभग १,००० किलोमीटर है, तथा महाद्वीपीय ढाल २०,००० वर्ग मील क्षेत्र में फैले हैं। यहाँ मछली पकड़ने मे ३०८ गाँव लगे हैं। मछलियाँ पकड़ने के लिए २८,००० कैटेमरान किस्म की नावें, ८२,००० आधुनिक ढंग के जाल काम में लाये जाते हैं। प्रति वर्ष लगभग १·६५ लाख टन मछलियाँ तमिलनाडु के तटीय भागों से प्राप्त की जाती हैं। मछली पकड़ने के मुख्य केन्द्र तूतीकोरन, कुमारीअन्तरीप, मद्रास, नागापट्टम, पाण्डिचेरी, मडापम, कोनाचेल और कड्डालोर हैं। मछलियों को सुरक्षित रखने के लिए राज्य मे १३ शीतभण्डार हैं तथा सुखाने के लिए २१ Curing Yards हैं। मुख्य पकड़ सारडीन, कैट फिश, रिबन फिश, ज्यू-फिश और मैंकरेल की होती है। मन्नार की खाड़ी में मोती देने वाली मछलियाँ भी पकड़ी जाती हैं।

महाराष्ट्र पश्चिमी तट पर सामुद्रिक मछलियाँ पकड़ने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण राज्य है। इसके तट की लम्बाई ७२० किलोमीटर है जो दक्षिण मे रेडी से लगा कर उत्तर में जाई तक फैला है। इसमे थाना, कोलाबा, रत्नागिरी और वृहत बम्बई के सामुद्रिक जिले सम्मिलित हैं। यहाँ का समुद्र तट काफी कटा-फटा है तथा वर्ष के लगभग आधे समय के लिए समुद्र शान्त रहता है। तट के निकट जल सामान्यतः छिछला है। यहाँ के मछुए (विशेषतः रत्नागिरि के) बड़े कुशल, परिश्रमी और निडर होते हैं जो काफी दूर तक जाकर मछलियाँ पकड़ने मे नहीं हिचकिचाते। राज्य सरकार की ओर से गहरे जल की मछलियाँ पकड़ने के लिए मछुओं को आधुनिक ढंग की नावें और उपकरण खरीदने के लिए आर्थिक सहायता दी जाती है। मछलियों को अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिए शीतभण्डारों का विकास किया गया है। कनारा जिले में चौंदिया और रत्नागिरि में मालवन में ऐसी व्यवस्था पायी जाती है। राज्य मे ६६ बर्फ बनाने की फैक्ट्रियाँ और १,६०० टन मछलियों को शीत भण्डारों में रखने की क्षमता पायी जाती है। मछलियों को नमक लगाकर सुखाने के लिए रत्नागिरि में २१ और कोलाबा में १ Curing Yard हैं। राज्य में मछुआ जाति की संख्या लगभग २ लाख है जिसमें से ३७,००० समुद्री मछलियाँ पकड़ने में लगे हैं। इनके पास मछलियाँ पकड़ने वाली १०,१८५ नावें हैं। मछलियों की पकड़ लगभग १·४८ लाख टन की होती है। सारंगा, हल्वा, घोल, दारा, रावस, टूना, सियर-फिश, मुलेट्स, बम्बई डक, शार्क मैंकरेल, सारडीन रिबन-फिश, प्रौन, श्रिम्प और ईल मछलियाँ विशेष रूप से पकड़ी जाती हैं।

मछली पकड़ने के मुख्य केन्द्र वॉरली, डांडा, वारसोवा, वेसीन, अरनाला, ऊटन, सतपती, नवापुर, ऊंचेली, नवगाँव, बासोली, करंजा, वेडांडा, अलीबाग, श्रीवर्धन, मुरूद, बुरोंडी, दमोल, जयगढ़, रत्नागिरि, विजयदुर्ग, जीतापुर, मलवान, देवबाग और वेंगुर्ला हैं।

मद्रास, कोलाबा और पूना मे मछली पालन के फार्म हैं।

गुजरात की तट रेखा उत्तर में लखपत से लगाकर दक्षिण मे उमर गाँव तक लगभग १,६५० किलोमीटर की लम्बाई में फैली है। मछली पकड़ने के क्षेत्र का क्षेत्र-

जल की मछलियाँ देश के भीतरी भागों में पायी जाने वाली असंख्य नदियों, नहरों, सिंचाई के नालों, तालाब तथा पोखरों में पकड़ी जाती हैं। उत्तर प्रदेश की गंगा नदी और उसकी सहायक नदियों में, बिहार, असम तथा बंगाल में ब्रह्मपुत्र नदी में, तथा महानदी, ताप्ती, नर्मदा, कृष्णा और कावेरी नदियों में मछलियों की अधिकता है। ताजे जल में मछली पकड़ने के कार्य में मौसमी दशा का काफी प्रभाव पड़ता है। उत्तरी भारत की बड़ी नदियों में वर्षाकाल में सामान्यतः मछलियाँ पकड़ने का कार्य अधिक नहीं होता। इन नदियों में जब बाढ़ आना बन्द हो जाता है तो अक्टूबर से मछली पकड़ने का मौसम आरम्भ हो जाता है। ग्रीष्म ऋतु में मैदानों में मछलियों की माँग कम रहती है, अतः ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में पंजाब के कुछ भागों, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में मछली पकड़ने का धन्धा सामान्यतः हल्का पड़ जाता है। तालाबों में जब जल की सतह नीची हो जाती है उस समय उनमें मछलियाँ अच्छी तरह पकड़ी जाती हैं। तमिलनाडु, आन्ध्र, मध्य प्रदेश और बंगाल में तो तालाबों और झीलों में ही अधिकांश मछलियाँ प्राप्त की जाती हैं। इन भागों में अप्रैल से जुलाई तक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। ताजे जल में पकड़ी जाने वाली मुख्य मछलियाँ कैट-फिश, सॉ-फिश, हेरिंग और मैकरेल हैं।

पश्चिमी बंगाल का महत्त्व ताजे जल की मछलियाँ पकड़ने के लिए अधिक है। यहाँ नदी-नालों की असंख्यता तथा मच्छी मुख्य भोजन होने के कारण अधिक पकड़ी जाती है। लगभग १ लाख मछुए इस कार्य में लगे हैं। अधिकतर पकड़ रोहू, कटला, मिगाल, कामा, कैट-फिश, प्रॉन, मैकरेल और हिल्सा की होती है। नदियों के मुहानों और तालाबों से ही अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

उड़ीसा में भी नदियों के मुहाने पर ही अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। ब्राह्मणी, स्वर्णरेखा और महानदी में भी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। यहाँ अधिकतर रोहू, मिगाल, कालबासू, कटला, कार्प, महासिर, पर्च, मैकरेल, आदि मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

कर्नाटक में लगभग १०,००० छोटे और २,७०० बड़े तालाबों और १७ जलाशयों में मछली पकड़ने का कार्य किया जाता है। लगभग सब मिलाकर १० लाख एकड़ जल क्षेत्र में ६ लाख मछुए मछलियाँ पकड़ने का कार्य करते हैं।

महाराष्ट्र में लगभग ३,२०० किलोमीटर लम्बी नदियों और २·४ लाख एकड़ क्षेत्र में तालाबों और झीलों से मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। वारसोवा, वेसीन, मनोरी, बम्बई, हारबर, जंजीरा, दयोल, विजयदुर्ग, आदि जल क्षेत्रों में लगभग १३,००० टन मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। मुरेल, तम्बीर, कटला, रोहू, मिगाल, कालबासू, बावली, मुरेल, पनत और विरहास मुख्य किस्में हैं।

गुजरात में मछली पकड़ने का कार्य बड़ौदा, खेड़ा, पचमहल, महसाना, बनासकांठा, साबरकांठा, सूरत, भड़ौच और डांग जिलों तक ही सीमित है। नर्मदा और ताप्ती नदियों में भी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

तमिलनाडु में लगभग ८ लाख एकड़ जल क्षेत्रों में तथा केरल के भीतरी नालों के तालाबों और सामुद्रिक किनारों से लगाकर त्रिवनन्तपुरम के बीच ४८ किलोमीटर लम्बी और १६ किलोमीटर चौड़ी झील में प्रॉन, कटला, मैकरेल, आदि मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

आन्ध्र प्रदेश में गोदावरी और कृष्णा नदियों में तथा उत्तर प्रदेश में जमुना, गंगा, घाग्रा, घाघरा और बेतवा नदियों में भी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

(३) नदियों के मुहानों में पकड़ी जाने वाली मछलियाँ (Estuarine Fisheries)

पुरी से हुगली के मुहाने तक महानदी, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के चौड़े मुख में कॉक-अप, हिल्सा, पॉमफ्रेट, कटला, रोहू और कैट फिश बहुत पकडी जाती हैं। सबसे अधिक मछलियाँ पश्चिमी बंगाल के डेल्टा में पकड़ी जाती है। यहाँ मछली पकड़ने का क्षेत्र ५,८०० वर्गमील में फैला है जिसमें अधिकांश भाग में दलदल, घने वन, नदियों और नालों का प्राचुर्य है किन्तु गमनागमन के साधनों की कमी होने के कारण पकड़ी गयी मछलियाँ ताजे रूप में नहीं पहुँचायी जा सकतीं अतः बहुत-सी मछलियाँ सड़कर नष्ट हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त मछली पकड़ने वाली नावें पुराने ढंग की होती हैं जो खुले समुद्रों में अथवा सुन्दर वन में नहीं जा सकतीं।

(४) मोती देने वाली मछलियाँ (Pearl Fisheries)

भारतीय राष्ट्रीय योजना समिति के अनुसार मन्नार की खाड़ी, सौराष्ट्र के समुद्री किनारे तथा कच्छ की खाड़ी में ओइस्टर मछलियों की अधिकता है जिनसे उत्तम बहुमूल्य मोती प्राप्त किये जा सकते हैं। तमिलनाडु में कुमारी द्वीप (पानबन) में ओइस्टर मछलियाँ पायी जाती हैं। इस प्रकार की कुछ मछलियाँ महाराष्ट्र में कच्छ की खाड़ी तथा सौराष्ट्र के तटीय नालों में भी मिलती हैं।

मछली पकड़ने के उद्योग का पिछड़ापन

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि भारतीय समुद्रों, नदियों और तालाबों तथा झीलों में सैकड़ों किस्म की खाद्य मछलियाँ भरी पड़ी हैं किन्तु अभी तक इन साधनों का केवल ५-६% ही उपयोग में लाया जा सका है। इस स्थिति के कई कारण हैं:

(१) हिन्दुओं में ऊँचे वर्ण के लोग इस उद्योग से घृणा करते हैं केवल निम्न श्रेणियों के लोग ही मछली पकड़ने का व्यवसाय करते हैं जो अधिकांशतः अशिक्षित और दरिद्र हैं। ये पुराने ढंगों द्वारा ही मछलियाँ पकड़ते हैं। ये कटिये तथा जाल की सहायता से छोटी-छोटी नावों में बैठकर मछली मारते हैं जिससे गहरे जल की बड़ी मछलियाँ नहीं मारी जा सकतीं। मछली पकड़ने के आधुनिक ढंगों से वे अभी तक अपरिचित हैं। मामूली प्रयत्नों को छोड़कर नये साधन अभी काम में नहीं लाये जाते। (२) मछुए लोग प्रायः छोटी-छोटी नवजात मछलियों को भी पकड़ लेते हैं। इस प्रकार इनकी उत्पत्ति में कमी होती जा रही है। (३) कई मछुए तो मछलियाँ पकड़ने के साथ-साथ खेती भी करते हैं अतः मछली पकड़ने में वे पूर्ण रुचि नहीं लेते।

इसके अतिरिक्त अधिकांश मछुए महाजनों के कर्जदार होते हैं, अतः पकड़ी गयी मछलियाँ उन्हीं के सुपुर्द कर देनी पड़ती हैं। वही लोग इनका व्यापार करते हैं। इस आय का थोड़ा-सा भाग मछुओं को मिल पाता है। (४) आवागमन के साधनों (विशेषकर शीत भण्डारों) की पूर्ण उन्नति नहीं हो पायी है अतः मछलियाँ काफी परिमाण में नष्ट हो जाती हैं। केवल बम्बई, तिरुवनन्तपुरम और मद्रास को छोड़कर मछलियों को डिब्बों में दबाने और बर्फ में रखने के कारखाने नहीं हैं। (५) प्रति वर्ष इतनी अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं कि कुछ भागों में तो अब मछलियों की संख्या कम होती जा रही है। (६) बंगाल की कई नदियों तथा तमिलनाडु में कई तालाबों में रेती भरती जा रही है। इस कारण वहाँ मछलियों की उत्पत्ति भी कम होती जा रही है। (७) कई नालों और तालाबों का जल दूषित कर दिया जाता है जिससे मछलियाँ वहाँ रहने ही नहीं पातीं। बंगाल के कई तालाबों में जूट धोने के कारण मछलियों के लिए जल विषैला हो जाता है। (८) भारत में मछली पकड़ने के क्षेत्रों की उन्नति में सबसे बड़ी कठिनाई यह पड़ती है कि यहाँ ये क्षेत्र शीतकटिबन्धों की भाँति एक ही स्थान पर न होकर समुद्र में दूर-दूर तक बिखरे हैं। इससे एक स्थान की मछली मार लेने के बाद दूसरे स्थान तक नावों द्वारा जाने में अधिक समय लग जाता है। (९) भारत की नदियों द्वारा समुद्रों में मछलियों के लिए भोज्य पदार्थ नहीं पहुँच पाते और न ही समुद्र में प्लैंकटन अधिक मात्रा में मिलता है। इसके अतिरिक्त भारत के समुद्रतट मछलियों के लिए अधिक उपयुक्त नहीं हैं। मछलियों के लिए उपयुक्त स्थान उथले, ठण्डे और कटे हुए सुरक्षित तट समझे जाते हैं किन्तु ऐसे स्थानों का यहाँ अभाव है। (१०) पशुओं को मछलियाँ खिलाने तथा मछलियों की खाद का प्रयोग करना, मछलियों से तेल और चमड़ा प्राप्त करने, आदि बातों की ओर भी अधिक उदासीनता रही है।

इन्हीं सब कारणों से अभी तक भारत में मछली पकड़ने के व्यवसाय में पूर्ण उन्नति नहीं हो सकी है।

मत्स्य उद्योग के विकास की प्रगति

पिछले कुछ वर्षों में मछली पकड़ने के व्यवसाय को उन्नत करने के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा कई प्रयत्न किये गये हैं। योजनाकाल में भारत को मछली उत्पादन के सम्बन्ध में तान्त्रिक सहायता Indo-U S. A. Technical Mission Programme, Indo-Norwegian Fisheries Community Development Programme, और F A. O. प्रभृति संस्थाओं के अन्तर्गत मिल रही है।

केन्द्रीय सरकार ने इस व्यवसाय की उन्नति के लिए निम्न कार्य किये हैं।

(१) मछली पकड़ने के लिए नये प्रकार की मोटर नावों को लिया गया है। भारत के तटीय भागों में १९७३-७४ में ९,३०० मोटर नावों और ७६ ट्रालरों से मछलियाँ पकड़ी जा रही थीं। गुजरात में देशी नावों में इंजन लगाये जा रहे हैं।

वेप्पीन से सूरत तक ऐसी नावें प्रचलित हैं जो बहुत सुन्दर हैं और जिनमें कई दिनों तक मछलियाँ रखी जा सकती हैं। केरल, कर्नाटक और आन्ध्र में भी नयी तरह की नावें बनायी गयी हैं। ऐसी नावें समुद्र में २४ किलोमीटर दूर तक जा सकती हैं।

(२) मछुओं को मछली पकड़ने के अच्छे तरीके सिखाने के लिए सतपाटी (महाराष्ट्र), वेरावल (सौराष्ट्र), कोचन और तुतुकुन्डो (तमिलनाडु) आदि स्थानों पर प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गये हैं। गुजरात के गहरे समुद्र में मछली पकड़ना सिखाने वाले केन्द्र में इस उद्योग के आधुनिक तरीके सिखाये जाते हैं। कलकत्ता में केन्द्रीय मछली गवेषण केन्द्र में नदियों और झीलों या तालाबों में अधिक मछली पैदा करना सिखाया जाता है। पंजाब में मछली पकड़ने और उनकी बिक्री के लिए विशेष रूप से प्रबन्ध किया जाता है। अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना, फिरोजपुर, अम्बाला, शिमला, करनाल और पानीपत में मछलियों की सरकारी दुकानें खोली गयी हैं।

(३) मछलियों के पकड़ने और उत्पादन बढ़ाने के लिए पश्चिमी तट पर कड्डालोर और रोयापुरम (तमिलनाडु); कारवाड़ (कर्नाटक), काडला, वेरावल (गुजरात), विंझिजम (केरल), सैसन रॉक्स (महाराष्ट्र) में और पोर्ट ब्लेयर (अण्डमान नीकोबार) मत्स्याघेत पोताश्रम बनाये गये हैं।

(४) तीन प्रमुख रेल मार्गों पर रेलगाड़ियों में शीत भण्डार चालू किये गये हैं जिनके द्वारा मछलियाँ शीघ्रता से और सुरक्षित दशा में उपभोग के केन्द्रों तक पहुँचायी जा सकें।

(५) मछलियों को सुरक्षित रखने के लिए शीत भण्डार स्थापित किये गये हैं। महाराष्ट्र में मालवान, रत्नागिरि, बम्बई, वेंदिया, पूना और अकोला में, तमिलनाडु में मद्रास तुतुकुण्डो, कड्डालूर और नीलकराय, केरल के कोजीकोड, कोचीन, क्विलोन और तिरुअनन्तपुरम में बर्फ की फैक्ट्रियाँ भी स्थापित की गयी हैं। रत्नागिरि और कनारा जिलों में मछलियों में मसाला लगाने के लिए उपयुक्त स्थान बनाये गये हैं।

(६) मछलियों के नये साधनों की खोज के लिए भारत सरकार ने मछली अनुसन्धानशालाएँ स्थापित की हैं। ताज़ जल की मछलियों के लिए कलकत्ता में वैरकपुर में सामुद्रिक मछलियों के लिए तमिलनाडु में मडापम और बम्बई में अनुसन्धानशालाएँ खोली गयी हैं। बम्बई में एक केन्द्रीय अनुसन्धानशाला भी है, जिसकी शाखाएँ कलकत्ता, कटक और मद्रास में हैं। इनमें मछलियों का उत्पादन बढ़ाने, अच्छी नस्ल की मछलियों को पालने सम्बन्धी अनुसन्धान किये जाते हैं।

(७) मछुओं की दशा सुधारने के लिए महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु और उड़ीसा में लगभग २,५०० सहकारी समितियाँ स्थापित की गयी हैं जिनका कार्य अपने सदस्यों की पकड़ी हुई मछलियों को बेचना और मछुओं को आर्थिक सहायता

तरण करता है। नयी नावें बनाने के कारखाने गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, मलनाडु और आन्ध्र प्रदेश में स्थापित किये गये हैं।

मछली उत्पादन में सुधार करने के लिए प्रथम योजना मे ४ ६ करोड रुपये, तीय योजना में १२ करोड़ रुपये और तीसरी योजना में ४५ करोड रुपये की वस्था की गयी। चतुर्थ योजना में ५७ करोड रुपये का प्रावधान था। पचवर्षीय जनाकाल में मछलियों का उत्पादन, १९७३-७४ में २२·६९ लाख टन से बढ़कर ०८ लाख टन किया जायेगा। इसमे वृद्धि करने के लिए निम्न प्रयत्न किये येंगे :

मद	१९७३-७४	१९७८-७९
यन्त्रचालित नावें	९,३००	१३,३००
बड़ी नावें	१००	३००
स्पॉन	१८,८८० लाख	४२,५७० लाख
फ्राई और फिंगरलिंग	४,८३० ,,	१२,१५० ,,
नर्सरी क्षेत्रफल	९२२ हैक्टेअर	१,७८० हैक्टेअर

इस कार्य के लिए १६१ करोड़ रुपया खर्च किया जायेगा।

11

भूगर्भिक रचना
(GEOLOGICAL STRUCTURE)

भारत के भौगोलिक अध्ययन में उसकी भूगर्भिक संरचना का सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि देश के विभिन्न भागों में पायी जाने वाली चट्टानों का स्वरूप जाने बिना उनकी उपयोगिता का पता लगाना असम्भव-सा होता है। कृषि का सम्बन्ध मिट्टी से होता है और मिट्टी का निर्माण उस देश में पायी जाने वाली चट्टानों से होता है। इन्हीं चट्टानों से देश के लिए विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ मिलते हैं जिनका देश के आर्थिक और औद्योगिक जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। अतः जब तक भारत की चट्टानों के स्वरूप और उनसे सम्बन्धित भूगर्भिक संरचना का ज्ञान नहीं हो जाता तब तक देश की आर्थिक क्षमता का ज्ञान भी अधूरा ही रह जाता है।

भूगर्भिक संरचना का इतिहास
(HISTORY OF GEOLOGICAL STRUCTURE)

भारत के भूगर्भ का इतिहास चार युगों में विभाजित किया गया है। इन्हीं चार युगों में देश के पर्वतों, मैदानों और उनसे सम्बन्धित भू-रचनाओं का निर्माण हुआ है। ये चार युग इस प्रकार हैं :

(क) अति-प्राचीन युग अथवा कैम्ब्रियन युग के पूर्व का समय,

(ख) पुराण युग अथवा कड्डप्पा और विन्ध्य युग का समय,

(ग) द्रविड़ युग अथवा कैम्ब्रियन युग से आगर युग तक का समय,

(घ) आर्य युग अथवा हिमयुग के आरम्भ होने वाला समय।

आगे की तालिका (पृष्ठ ३४१-४३) में भारत की भूगर्भिक राशियों को बताया गया है। इससे स्पष्ट होगा कि भारत के तीन प्रमुख भू-भागों में चट्टानों का क्रम भिन्न-भिन्न रूपों में चला था।

भारत की भूगर्भिक राशियाँ

युग	युग	काल	हिमालय पर्वतीय क्षेत्र	उत्तर का मैदान	दक्षिणी पठार
१	२	३	४	५	६
	चतुर्थ युग	प्लीस्टोसीन	शिवालिक क्रम	असम का दिहोंग क्रम	ऊँचे स्थानों की लैटेराइट
		आधुनिक	नदीकृत निक्षेप	खाद की काँप	डेल्टाओं की काँप, कर्नूल की गुफाओं के जमाव, मरुभूमि जमाव।
	तृतीय जीवयुग	मायोसीन	शिमला हिमालय की डागशाही तथा कसौली क्रम और शिवालिक क्रम	असम का तिपत-क्रम व सुरमा क्रम	कच्छ का गज क्रम, पूर्वी तट का कड्डालोर बालू शिलाएँ, पुरी की मायोसीन चट्टानें
		प्लीयोसीन	हिम युग के हिम निक्षेप तथा कश्मीर के कारेवा	बागर और	नर्मदा और गोदावरी की पुरातन काँप तथा निचले भागों की लैटेराइट; पोरबन्दर के पत्थर तथा राजस्थान और कच्छ की बालू
आर्य युग	द्वितीय या मध्य जीव युग	ट्रियासिक	हिमालय के ट्रियासिक		गोंडवाना क्रम के पचेत और महादेव समुदाय
		जुरैसिक	बनिहाल के जुरैसिक, गढ़वाल की ताल और स्पिति के शेल क्रम		ऊपरी गोंडवाना क्रम की कोटा, जबलपुर, राजमहल, उमरिया समूह और कुछ जुरासिक की चट्टानें, कच्छ का जुरासिक

१	२	३	४	५	६
		क्रिटेशियस	त्रिचि की ज्वालामुखी चट्टानें और चूना प्रस्तर सिपति की बालू शिलाएँ, उत्तरी हिमालय का सिक्किम क्रम		द० पूर्वी तट की छोटी चट्टानें; तिरुचिरापल्ली के सामेटा और बागपाज, असम क्रिटेशियस, हिम्मतनगर, बालू शिलाएँ विश्व के सामुद्रिक अभाव
	नवीन जीव युग	इमोसीन	जम्मू के कोयला जमाव भीतरी हिमालय की दर्रारी चट्टानें बाहरी हिमालय की सबाथू और कसल क्रम	असम के बेरल समुदाय तथा जयन्तिया समूह	बीकानेर का लाकी क्रम; राजस्थान और सौराष्ट्र के चूना प्रस्तर
		ओलीगोसीन	हिमालय में प्रविष्ट ग्रेनाइट चट्टानें		कच्छ, नारी तथा सौराष्ट्र के द्वारिका के भम
द्रविड़ युग	पुरा कल्प	कैम्ब्रियन	कश्मीर की कैम्ब्रियन चट्टानें, मध्य हिमालय की हेमन्त चट्टानों का उप-समूह		विन्ध्य समूह
		आर्डोविशियन	स्पिति तथा कश्मीर की आर्डोविशियन चट्टानें		
		सीत्यूरियन	कश्मीर तथा स्पिति की सील्यूरियन चट्टानें		

१	२	३	४	५	६
		डेवोनियन	कश्मीर और स्पिति का मुथक्रम आनसार की डेवोनियन चट्टानें		
		निम्न कारबोनीफरस	स्पिति की लिपाक सिरीज कश्मीर का चूना प्रस्तर		
		मध्य कारबोनीफरस	कश्मीर की दान और कारबोनीफरस चट्टानें तथा स्पिति का पो क्रम		
		ऊपरी कारबोनीफरस	हिमालय की गोंडवाना चट्टानें	असम का सुबनसीरी क्रम	तलचर क्रम की चट्टानें
		पर्मियन	काश्मीर का जीवन क्रम स्पिति की शेल चट्टानें तथा मध्य हिमालय की शेल और शिमला का क्रोल क्रम		रानीगंज और बाराकर का दामुदा क्रम तथा उमरिया के जमाव
पुराण युग	प्रपुरा कल्प		मध्य हिमालय की शिमला स्लेट और देव बन क्रम, पूर्वी हिमालय का बक्सर क्रम; कश्मीर का डोगरा क्रम	असम का मीजू क्रम	कड़प्पा, विन्ध्य क्रम, रीवा, कैमूर, सेमरी और कर्नूल क्रम; तथा आलोर और सेवाना ग्रेनाइट चट्टानें
अति प्राचीन युग	आद्यः कल्प		सल्लासा जुतोघ और भेल समुदाय, नीस और शिस्त की आधारभूत चट्टानें	असम की नाइस और ग्रेनाइट चट्टानें, शिलांग सिरीज चट्टानें	बुन्देलखण्डीय नीस चट्टानें, धारवाड़ और अरावली क्रम

उपर्युक्त तालिका में भारत में विद्यमान भूगर्भिक राशियों का साधारण अनुक्रम दिया गया है। स्थान-स्थान पर शिला विन्यास और पहलू में बहुत कुछ भेद हैं, अतः राशियों का पारस्परिक सम्बन्ध मुख्यतः प्रायद्वीप में कठिन हो जाता है। भारत में कुछ ऐसी परिलक्षित असमानताएँ हैं जो अन्यत्र उतनी स्पष्ट नहीं हैं। आद्यकल्प के ऊपर, जिनमें धारवाड़-समूह भी सम्मिलित है, फॉसिलरहित कडप्पा और विन्ध्य उप-समूह हैं जो स्थूल रूप से अमरीका के प्रपुराकल्प (Algonkian) के समरूप हैं। इन्हें डॉ॰ हालैण्ड ने पुराण-समूह (*Purana System*) का नाम दिया है। श्री हालैण्ड के अनुसार कैम्ब्रियन समुदाय के आधार से तलचर समुदाय के आधार तक की राशियाँ द्राविणी-समूह (Dravidian Group) की हैं। ऊपरी कारबोनीफरस के ऊपर के सम्पूर्ण स्तर आर्य समूह (Aryan Group) कहलाते हैं। इन दो समूहों को अलग करने वाली एक परिलक्षित सार्वभौम असमानता है जो प्रायद्वीप तथा हिमालय पर्वत तथा बड़े मैदान में लक्षित है।

आद्यः या उपःकल्प समूह
(ARCHEAN SYSTEM)

उपःकल्प चट्टानें पृथ्वी के धरातल पर सबसे प्राचीन चट्टानें मानी जाती हैं। इन्हीं के ऊपर आगामी काल की अन्य चट्टानों और भूगर्भिक क्रियाओं का निर्माण हुआ है। विद्वानों का विचार है कि जब सबसे पहले पृथ्वी ठण्डी हुई तो इन्हीं चट्टानों का निर्माण हुआ। ये बड़ी कठोर चट्टानें होती हैं। सम्भवतः ये उतनी ही पुरानी हैं जितना धरातल पर मानव का उद्भव। ये चट्टानें नीस, ग्रेनाइट और शिस्ट नामक चट्टानों और रवेदार चट्टानों के अंशों की बनी हुई हैं। पृथ्वी के गर्भ में अत्यधिक गर्मी और धरातल के दबाव के कारण इनमें कई क्षेत्रों में रवे पड़ गये हैं। जिन परिस्थितियों में इन चट्टानों का निर्माण हुआ तथा जिन यान्त्रिक अवस्थाओं का इन पर प्रभाव पड़ा उन सबके कारण इन चट्टानों के गुणों में बड़ी विषमता पायी जाती है।

इस प्रकार की चट्टानों के समूह प्रायद्वीपीय भारत के लगभग १,८७ ५०० हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हैं। इनका विस्तार तमिलनाडु, कर्नाटक, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छोटा नागपुर का पठार और राजस्थान में है। उत्तर-पश्चिम में ये अरावली पर्वत के सहारे-सहारे फैली हैं। सम्भवतः इन्हीं का विस्तार पश्चिम में बुन्देलखण्ड तक है। मुख्य हिमालय की समस्त लम्बाई में उसके गर्भ भागों में इन्हीं चट्टानों का आधिक्य है।

इस समूह को तीन भागों में विदरित किया जा सकता है :

(क) बंगाल नीस, जिसका विस्तार बंगाल, बिहार (मानभूम), उड़ीसा और कर्नाटक प्रदेश में है।

(ख) बुन्देलखण्ड नीस, जिसका विस्तार प्रायद्वीप के उत्तरी खण्ड में बुन्देलखण्ड जिले में मिलता है।

(ग) नीलगिरि नीस, जिसका विस्तार नीलगिरि की, पालनी और शिवराय की पहाड़ियों में है। इसे चरकोनाइट सीरीज भी कहते हैं।

धारवाड़ समूह (Dharwar System)

भारत में आद्य कल्प (Archean) की बनी हुई धारवाड़ समूह की चट्टानें (Dharwar Rocks) मानी जाती हैं। ये चट्टानें सँकरी अभिनतियों में उप कल्प समूह की नीस के सहारे-सहारे पायी जाती हैं। ये अत्यन्त ही रूपान्तरित और स्तर-भ्रष्ट हुई हैं। इनमे अधिकांशतः पत्रस्तरीय (Foliated) शिलाएँ (शिस्ट, स्लेट, हार्नब्लेण्ड, क्वार्ट्ज, रवेदार चूने पत्थर, संगमरमर आदि) पायी जाती हैं। जबलपुर के निकट ३½ किलोमीटर तक संगमरमर की चट्टानें नर्मदा घाटी में पायी जाती हैं। इनका उपयोग उत्तम प्रकार के भवन-निर्माण कार्य में होता है। धारवाड़ की चट्टानों में भारत का सर्वश्रेष्ठ लोहा, सोना, मैंगनीज, हीरा, आदि खनिज पाये जाते हैं। इन्हीं चट्टानों में वलूराइट, तांबा, क्रोमाइट, इल्मेनाइट, सीसा, सुरमा, वुलफ्राम, अभ्रक, कोबाल्ट, खड़िया, एस्बेस्टस, कोरंडम, घीया पत्थर, गार्नेट और टूर्मलीन भी मिलते हैं।

इस प्रकार की चट्टानों की उत्पत्ति कर्नाटक के धारवाड़ जिले में हुई है। इस प्रकार की चट्टानें दक्षिणी भारत में कुमारी अन्तरीप से लेकर हैदराबाद और पूर्वी घाटों से होती हुई उड़ीसा, मध्य प्रदेश और राजस्थान तक फैली हैं। (क) ये असम तथा बाहरी-प्रायद्वीप (Extra Peninsula) के कई भागों में भी पायी जाती हैं, जैसे लद्दाख, जांस्कर श्रेणी, कुमायूं, गढ़वाल, हिमालय, दार्जिलिंग प्रदेश, आदि में। (ख) दक्षिणी भारत में धारवाड़ चट्टानें बलारी और कर्नाटक के अधिकांश भागों में (जिसका विस्तार नीलगिरि, मदुराई होते हुए थौलका तक है), (ग) छोटा नागपुर, जबलपुर और नागपुर के अतिरिक्त रीवाँ और बिहार में हजारीबाग में भी पायी जाती हैं। इन सबमें कहीं भी शिलाभूत अवशेष नहीं मिलते। कर्नाटक में ये चट्टानें लम्बे सँकरे मोड़ों के रूप में मिलती हैं। इनमें क्वार्ट्ज शिलाओं की अधिकता होने से कर्नाटक में कोलार और धारवाड़ की खानों से सोना प्राप्त किया जाता है।

इस समूह की चट्टानें अरावली श्रेणी में भी पायी जाती हैं। इनकी रचना विश्व की अत्यन्त प्राचीन अभिनतियों में हुई है। ये श्रेणियाँ १,२०० से १,५०० मीटर की ऊँचाई में लगभग ६०० किलोमीटर की लम्बाई में भारतीय प्रायद्वीप का प्रमुख अंग बनाती हैं। इनका निर्माण धारवाड़ काल के अन्तिम भाग में हुआ था। फिर क्षयीकरण क्रियाओं द्वारा इनका अपक्षरण हुआ और फिर कैम्ब्रियन युग में ये पुनः ऊँची उठीं। अतः ये पर्वत मालाएँ विश्व की प्राचीनतम श्रेणियाँ मानी जाती हैं।

धारवाड़ समूह की शिलाओं के निर्माण के पश्चात् बहुत समय तक कोई तल-पटीयकरण न होकर तल-ध्वंस क्रिया चलती रही। इसके प्रभाव से तल में भारी अन्तर आने पर समुद्र का अतिक्रमण कुछ क्षेत्रों में हुआ विषमक्रमीय स्तर बना सकता है। इस घटना को कड्डप्पा समूह के स्तर अपने प्रथम स्तर को विषमक्रमीय रूप में

दिखाकर प्रकट करते हैं। कड्डप्पा के इस घटना के दुहराने पर विन्ध्य समूह दूसरी विषमक्रमीय तह बनाकर अपना निर्माण करता है।

कड्डप्पा समूह (Cuddapah System)

इस समूह की चट्टानों का नामकरण आंध्र प्रदेश के कड्डप्पा जिले के नाम पर हुआ है। इस समूह की चट्टानें आंध्र के कड्डप्पा जिले में एक विस्तृत क्षेत्र के अर्द्ध-चन्द्राकार रूप में स्थल से घिरे समूह में निर्मित पायी जाती हैं। ये ६,०६६ मीटर से भी अधिक ऊँची हैं किन्तु इनमें भी शिलाभूत अवशेष प्राप्त नहीं होते। पेन्नार नदी की पापाघ्नी नदी की घाटी में इसकी खुली चट्टानों का स्तर दिखायी पड़ता है जिसमें पहले बालुका पत्थर, फिर शेल और स्लेट तहें मिलती हैं। बीच-बीच में चूने का पत्थर भी दिखायी देता है। जहाँ ज्वालामुखी शिला उसमें घुसकर भीति के रूप में घुसी मिलती हैं वहाँ चूने का पत्थर इसके ताप से रूपान्तरित होकर संगमरमर के रूप में मिलता है।

आंध्र प्रदेश की गोदावरी और कृष्णा की घाटी; मध्य प्रदेश के छतीसगढ़, रीवाँ, बस्तर, बिजावर, ग्वालियर, आदि और महाराष्ट्र में कालाडगी, भीमा की घाटी, गोदावरी और पेनगंगा तथा महानदी की घाटी में; बिहार के छोटा नागपुर, जयपुर क्षेत्रों में और कर्नाटक के बेलगाँव के बीच के प्रदेश से इस समूह की चट्टानों का प्रसार मिलता है। ये चट्टानें लगभग ३५,००० वर्ग किलोमीटर में फैली हैं। राजस्थान में ये शिलाएँ अजमेर तथा पश्चिमी मेवाड़, अलवर, अजबगढ़ और एरिनपुरा में मिलती हैं। इन चट्टानों से कुछ उपयोगी खनिज मिलते हैं। जैसे, स्लेट, बालू पत्थर, पट्टीदार जास्पर, सीसा धातु, बेराइट, एसबस्टस और चूने का पत्थर, आदि।

विन्ध्य समूह (Vindhyan System)

विन्ध्य समूह की शिलाएँ कड्डप्पा शिलाओं के बाद बनी हैं। इन शिलाओं का नाम विन्ध्याचल के नाम पर पड़ा है। ये शिलाएँ पूर्व और पश्चिम की ओर बिहार के सहसाराम नामक स्थान से लेकर अरावली पर्वत के छोर पर स्थित चित्तौड़गढ़ तक फैली हैं। इनकी मोटाई ४,२६७ मीटर तक है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग १,००,००० वर्ग किलोमीटर है। इसके समस्त खण्ड के स्तरों के क्रम विभाग किये गये हैं और स्थान के हिसाब से उनके नाम भी दिये गये हैं। इन स्तरों की विशेषताएँ यह हैं कि इनमें किसी भी प्रकार के स्तर-क्षोभ, रूपान्तर स्तर-भ्रष्टता और मोड़ नहीं मिलते। केवल पश्चिमी भाग की ओर अरावली के पास किसी कारण कुछ मोड़ और स्तर-भ्रष्टता दिखायी देती है। धरती का तल उठकर विन्ध्य रूप में खड़ी होने वाली घटना दक्षिणी भारत के स्तर-क्षोभ की अन्तिम प्रधान घटना थी।

विन्ध्य समूह के निम्न खण्ड का खुला रूप कर्नूल, सोन की घाटी, छतीसगढ़, भीमानदी की घाटी में गुलबर्गा और बीजापुर जिलों में पाया जाता है। इसमें चूने का पत्थर और शेल पाया जाता है। अनुमानतः यह खण्ड समुद्र के गहरे पानी में बना है। किन्तु इस समूह का ऊर्ध्व खण्ड (जो कैमूर, रीवाँ, पन्ना, भंडर, आदि समु-

दायों के नाम से ज्ञात है) छिछले समुद्र में बना अनुमान किया जाता है क्योंकि इनकी चट्टानों के स्तरों पर लहरों के हलकारों के चिह्न बने मिलते हैं। परिव्यक्त शिला (Out Crop) रूप में हिमालय में भी नैनीताल, पिथौरागढ़, शिमला, आदि के पास विन्ध्य समूह के नमूने पाये जाते हैं जो शेल और चूने के पत्थर, आदि रूपों में अपनी समानता करते हैं। हिमालय की मुख्य पर्वत श्रेणी में भारत की ओर ढाल में कहीं भी शिलाभूत अवशेष नहीं मिलते। लघु हिमालय श्रेणी में भी अवशेषों का अभाव है। शिवालिक श्रेणी स्थल से घिरे समुद्र या झील में निर्मित ज्ञात होती है जो प्रथम जीवकल्प (Palaeozoic) के तो नहीं किन्तु द्वितीय जीवकल्प (Mesozoic) या बाद की सृष्टि के कुछ अवशेष प्रकट करती हैं। विन्ध्याचल भी लहरों के चिह्न के अतिरिक्त बहुत संदिग्ध रूप के कुछ क्षुद्र जन्तुओं या वनस्पतियों के असन्तोषजनक शिलाभूत दिखा पाता है।

विन्ध्य चट्टानों के समूह में शताब्दियों से हीरे निकाले जाते हैं। कैमूर, रीवाँ, मझेर समुदायों के काग्लोमरेट के पात्रों में तथा बगनपल्ली ग्रिट में हीरे प्राप्त होते हैं। गोलकुण्डा प्राचीन काल में हीरों का प्रसिद्ध बाज़ार था। सोन की घाटी, जबलपुर और भीमा की घाटी में प्राप्त चूना शिलाओं से चूना और सीमेंट प्राप्त किया जाता है। मकान बनाने तथा सजावट के लिए उत्तम श्रेणी के पत्थर और संगमरमर भी यहाँ मिलते हैं। चीनी मिट्टी, अग्निजनित मिट्टी और गेरू भी मिलती है। बालू शिलाओं का भी इनमें आधिक्य है। वर्तमान और भूतकाल की कई इमारतों जैसे आगरा, दिल्ली और जोधपुर के गढ़ और महल, फतहपुर-सीकरी का लगभग पूरा भाग और सारनाथ, भाहुँत और साँची के बौद्ध स्तूपों में विन्ध्य की बालू शिलाओं का ही उपयोग हुआ है।

प्रथम जीवकल्प
(PALAEOZOIC)

उमरिया के पास एक छोटे प्रदेश के अतिरिक्त (जो निचले परमियन काल का है) प्रथम जीवकल्प काल की समुद्री शिलाभूत अवशेष प्रायद्वीप में कहीं नहीं पायी जाती है। ऐसी शिलाएं बाहरी प्रायद्वीप में भलीभाँति विकसित हुई हैं। कुमायूं की उत्तरी सीमा पर स्थित घाटी की शिलाएं प्रथम जीवकल्प का दिग्दर्शन कराती हैं। इस क्षेत्र को छोड़कर सारा देश कदाचित् उस समय समुद्र के क्षेत्र से बाहर ही था। दक्षिणी भारत के पूर्वी तट को द्वितीय जीवकल्प आरम्भ होने से लेकर आधुनिक कल्प तक समुद्री तलछटीय स्तर बनाकर शिलाभूत अवशेष प्रस्तुत करने की साधारण एकांकी घटना को छोड़कर, भारत के शेष भूगर्भिक इतिहास में कहीं बीच के काल में पश्चिम की ओर कुछ काल के लिए समुद्र का प्रकोप उत्तर की ओर से होकर सौराष्ट्र, कच्छ अथवा पश्चिमी राजस्थान की ओर विस्तृत होने और फिर प्रतिगमित होकर अपना चिह्न कुछ स्तर निर्माण रूप में छोड़ जाने के अतिरिक्त स्थल खण्ड के अतिरिक्त कुछ स्तर-भ्रष्टता रूप में नदियों की घाटियाँ बनी मिल जाती

हैं जिनमें दामोदर, सोन, महानदी और गोदावरी का नाम लिया जा सकता है। दो स्तर-भ्रष्टता के बीच में स्खलित भूमियों में बनी भ्रंश घाटियाँ (Rift valleys) नर्मदा और ताप्ती घाटियों के रूप में मिलती है। इन स्तर-भ्रष्टताओं और भ्रंश घाटियों के बनने का समय प्रथम जीव युग का अन्तिम भाग माना जाता है। इन घाटियों को उत्पन्न करने वाला प्राकृतिक प्रकोप उत्तर में कराकोरम रूप में महान् पर्वतमाला खड़ी करने वाला स्तर वह हलचल है जिसे हर्सीनियन हड़कम्प कहा जाता है। कोयले और लोहे की प्रसिद्ध खानें और विन्ध्य समूह के निकटवर्ती दक्षिणी पठार के उत्तरी भाग की नदियों की घाटियों के निर्माण में सहायक यह हलचल प्रसिद्ध है। पृथ्वी के सब भाग इस हलचल से प्रभावित हुए और इसके कारण भूमि व समुद्र का पुनर्वितरण हुआ। वह हलचल, उस समय द्रोणी की (जहाँ अब हिमालय प्रदेश स्थित है) विस्तार का भी उत्तरदायी थी। कदाचित् दक्षिण की ओर के भूखण्ड की वज्र कठोरता ने इस हलचल का सामना किया और क्रान्तिकारी भारी परिवर्तन का अवसर न देकर उन नदियों की घाटियों के स्थान पर कुछ स्तर-भ्रष्टता होने दी।

इस समय दैवयोग से जलवायु में एक घोर परिवर्तन ने एक भीषण तुषारयुग उपस्थित किया। कदाचित् अरावली की चोटियाँ आज के हिमालय का रूप धारण किये हुए उत्तर-दक्षिण में फैली थीं। शीत के भीषण प्रकोप ने भयानक हिम को जन्म दिया जो अरावली से निकलकर चारों ओर दूर तक फैलने लगा। इन हिमखण्डों की रगड़ से कठोर पाषाण भी ध्वस्त हो गये। घाटियाँ चौरस तल वाली हो गयी। बड़े-बड़े खण्ड शिलाओं से अलग-अलग किये जाकर हिमनदियों के भारी दबाव और प्रभाव से नष्ट हो गये। इनके प्रभाव से बने घिसे हुए पथरीले ढोंके अपने निम्न तल में घसीटे जाने के कारण रेखांकित चिह्न बनाये अब भी नर्मदा नदी की घाटी में पाये जाते हैं।

गोंडवाना समूह (Gondwana System)

हिमनदियों के कारण पाषाणों का चूर्ण होकर घाटियों में उपजाऊ खण्ड बन गये। उनमें जल की राशि एकत्रित होकर आर्द्रता और दलदलीय प्रभाव दिखाने और छिछली झीलें पैदा करने में समर्थ होने लगी। इनमें प्राचीन काल के वृक्ष आदि पैदा हुए और कालान्तर में उनके गिर जाने से निचले उथले जल में दबने लगे। वनस्पति का यही विशिष्ट रूप हमें कोयले के रूप में मिलता है। इस प्रकार की कोयले की वहाँ का निर्माण भारत की प्राचीन जाति गोंडों के प्रदेश से मध्य प्रदेश में आरम्भ हुआ। इसी कारण इन्हें गोंडवाना समूह की चट्टानें कहते हैं। इन चट्टानों के समूह इन भागों में मिलते हैं : (क) पेन गंगा और गोदावरी के निचले भागों में, (ख) मध्य प्रदेश में महानदी और ब्राह्मणी नदियों के बीच तलचर से नर्मदा और सोन नदियों के ऊपरी भागों तक; तथा (ग) बंगाल में दामोदर घाटी प्रदेश तथा राजमहल की पहाड़ियों में। इन चट्टानों के भारत में ८ मुख्य कोयला क्षेत्र पाये जाते

है। दामोदर घाटी, बाराकर घाटी, महानदी घाटी, गोदावरी घाटी, राजमहल पहाड़ियाँ, उड़ीसा में तलचर, मध्य प्रदेश (जबलपुर), रीवाँ, परमोरा, महादेव पहाड़ियाँ और सतपुड़ा श्रेणी। इनमें भारत का लगभग ६८·५% कोयला मिलता है।

गोंडवाना समूह की शिलाओं में बालू-पत्थर की शिलाएँ, अग्निजनित मिट्टी, लोहा, कोयला, आदि खनिज अधिक मात्रा में पाया जाता है।

प्रथम जीव युग दो छोटे-छोटे युगों में बाँटा गया है : (i) प्राचीन पुराजन्तुक, और (ii) नवीन पुराजन्तुक युग।

(i) प्राचीन पुराजन्तुक युग में कैम्ब्रियन काल (Cambrian) की चट्टानों में प्रथम बार जीवों के अवशेष मिलते हैं जो बहुत ही निम्न श्रेणी के बिना रीढ़ की हड्डी वाले हैं। इस काल में कश्मीर की कैम्ब्रियन चट्टानें और स्पिति की नील की हेमन्त चट्टानें बनीं। इनमें मिट्टी, स्लेट, चूना शिलाएँ, स्फटिकात्मक शिलाएँ, नील मिट्टी, आदि मिलती हैं।

आर्डोविसियन काल (Ordovician) की चट्टानों में भी बिना रीढ़ वाले जीवों के अवशेष मिलते हैं किन्तु ये पूर्व काल के जीवों की अपेक्षा अधिक विकसित हैं। इस काल में कश्मीर और स्पिति की आर्डोविसियन चट्टानों का निर्माण हुआ जिनमें ग्रिट और चूना शिलाओं में युक्त बालू-शिलाएँ पायी जाती हैं।

सिल्यूरियन काल (Silurian) में ऐसे जीवों के अवशेष मिलते हैं जिनमें रीढ़ की हड्डी और दाँतों एवं आँखों का पूर्ण विकास हो चुका था। इस काल में स्पिति और कश्मीर में लिडार घाटी में सिल्यूरियन उप-समूह की चट्टानों का निर्माण हुआ।

(ii) नवीन पुराजन्तुक युग में डेवोनियन-काल (Devonian) की चट्टानें *स्पिति और कश्मीर में पायी जाती हैं। ये समानता से फैली हैं और कठोर व* सफेद स्फटिकात्मक शिलाएँ हैं। ये शिलाएँ कुमायूँ में भी मिलती हैं।

कार्बोनिफरस युग की शिलाएँ (Carboniferous) स्पिति में लीपक और पो समुदायों में तथा कश्मीर में मिलती हैं। इनमें चूना शिलाओं, शेल, आदि का आधिक्य है *जिनमें विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के अवशेष मिलते हैं।*

परमियन काल (Permian) में स्पिति में पो समुदाय के बाद इस प्रकार के जमाव मिलते हैं। इन जमावों का आरम्भ कान्गोमरेट से हुआ है। कश्मीर में इस काल की चट्टानों का अच्छा विकास पीरपंजाल में हुआ है। ये स्फटिक, ग्रेनाइट *आदि शिलाओं के उपखण्डों से युक्त हैं। शिमला-गढ़वाल में ये शिलाखण्ड* चूना शिलाओं से बने हैं।

द्वितीय या मध्य जीवकल्प
(MESOZOIC)

द्वितीय जीव कल्प को तीन भागों में बाँटा गया है : *(i) ट्रियासिक काल,* (ii) जुरैसिक काल, और (iii) क्रिटैसियस काल।

(i) ट्रियासिक काल (Triassic) की शिलाएँ उत्तरी हिमालय प्रदेश के स्पिति, कुमायूँ के बोंगनाग और मालचाल पहाड़ियों, पैनखंडा तथा नेपाल की सीमा के पास ब्यास में विशेष रूप में विकसित हुई हैं। यहाँ की शिलाएँ चूना शिलाएँ हैं जिनमें शेल अन्तर्विष्ट है। इस काल की चट्टानों में जीवों के अवशेष बहुत कम प्राप्त होते हैं।

(ii) जुरैसिक उप-समूह (Jurassic) का विकास हिमालय के तिब्बत प्रदेश और कश्मीर में स्पिति, प्रायद्वीप के कच्छ, राजस्थान और पूर्वी तट के कुछ भागों में हुआ है। स्पिति में शेल चट्टानें अधिक मिलती हैं जो भूरे या काले रंग की होती हैं और आसानी से चूर-चूर हो जाती हैं। इनमें शिलाभूत अवशेष पाये जाते हैं। ये हजारा एवं कश्मीर से नेपाल तक फैले हैं। कच्छ में ये शिलाएँ तीन भागों में पायी जाती हैं। उत्तर में कच्छ के रण के पश्चम, करीर, बेला और छोरट द्वीपों के बीच में, मध्य में लखपत के निकट और दक्षिण में कतरोल पहाड़ों और भुज के दक्षिण से होकर है। इनमें चूना शिलाएँ बालू, शिलाएँ और शेल, आदि मुख्य चट्टानें हैं। राजस्थान में जुरैसिक शिलाएँ बीकानेर, जैसलमेर, आदि जिलों में पायी जाती हैं। इनसे भवन निर्माण के लिए उत्तम प्रकार की चूना शिलाएँ मिलती हैं। पूर्वी तट पर गन्तूर जिले में ओंगोल के निकट ये शिलाएँ पायी जाती हैं।

(iii) क्रिटेसियस काल (Cretaceous) की चट्टानों का श्रेष्ठ रूप भारत में विस्तृत रूप में देखने को मिलता है। हिमालय में एक विस्तृत प्रदेश इस उप-समूह के द्वारा आवृत्त है। इसमें भू-द्रोणीय पहलू (Geosynclinal facies) दृष्टिगोचर होते हैं। प्रायद्वीप के कुछ प्रदेशों के समुद्री अतिक्रमण ने नर्मदा घाटी, असम तथा तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली-पाण्डिचेरी प्रदेश में इस काल के स्तरों को बिछाया है। इनमें से नर्मदा प्रदेश भूमध्यसागरीय प्रदेश का साम्य दिखाता है। अन्य दोनों स्तर हिन्द-प्रशान्त महासागरीय प्रदेश की राशियों से सम्बन्धित हैं। यहाँ सागर संगम सम्बन्धी और नदी सम्बन्धी जमाव भी हैं। ये या तो दकन ट्रैप के लावा के बहावों के नीचे फैले हैं या उनमें अन्तर्विष्ट हैं। इस काल का अन्त तीव्र आग्नेय क्रियाशीलता का एक काल था। बड़े परिमाण में लावा के बहावों ने प्रायद्वीप के एक विस्तृत प्रदेश को आवृत किया था। ये बहाव शायद उस स्थान के पश्चिम तक भी फैले थे जहाँ अब बम्बई का तट है।

बाहरी प्रायद्वीप के प्रदेशों में निचले और ऊपरी क्रिटेसियस समुदायों के बीच साधारणतया एक विस्तृत शृंखला है। यह शृंखला उस काल के एक समुद्री प्रतिगमन (Marine regression) को सूचित करती है। लेकिन प्रायद्वीपीय प्रदेशों में लगभग उसी काल में एक पूर्णांकित समुद्री अतिक्रमण (Marine transgression) दृष्टिगोचर होता है।

स्पिति प्रदेश में क्रिटेसियस शिलाएँ गढ़वाल, शिमला तथा अन्य स्थानों में, कुमायूँ में जौहर तथा दार्जिलिंग के उत्तर में कम्पाजोंग के निकट दिखायी देती हैं।

नर्मदा घाटी के बाघपाश (Bagh-beds) में तथा सौराष्ट्र के बाघवन और मध्य प्रदेश के ग्वालियर में भी ये शिलाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। असम में शिलांग पठार में समुद्री क्रिटेशियस शिलाएँ पायी जाती हैं। ये बालू शिलाओं से बनी हैं।

दकन ट्रैप (Deccan Trap)

प्रायद्वीप भारत के एक विस्तृत प्रदेश को आवृत करते हैं। इनका निर्माण काल ऊपरी क्रिटेशियस से इयोसीन काल तक माना जाता है। मध्य प्रदेश और नर्मदा घाटी में कुछ भागों में दकन ट्रैप के नीचे चूना-शिलाओं का एक समूह फैला है। इनके साथ बालू शिलाएँ और मिट्टियाँ भी पायी जाती हैं। ये शिलाएँ लामेटापाश (Lameta-beds) कहलाती हैं। जबलपुर के निकट लामेटा घाट में ये अच्छी तरह प्रदर्शित हैं। इनकी मोटाई ६ से ३० मीटर तक है। साधारणतः चूना शिलाएँ सिलिकामय और चिटमय हैं। इनमें दानवसरट, विभिन्न प्रकार की मछलियों, आदि के अवशेष पाये जाते हैं। इन पाशों का जन्म सागर में हुआ है।

दकन ट्रैप बेसाल्टमय लावा के बहाव हैं। पश्चिमी तथा मध्य प्रदेश में इनका विस्तार ५ लाख वर्ग किलोमीटर के लगभग है। बेसाल्टमय लावा प्रायः ट्रैप कहलाते हैं। इसका कारण यह है कि इन बहावों से सीढ़ी जैसी भू-आकृति उत्पन्न होती है। पठार के जैसे आकार को निर्मित करने की उनकी प्रवृत्ति के कारण वे पठार बेसाल्ट कहलाते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये बहाव तीव्र अतिताप के साथ भूपपड़ी की कई दरारों (Fissures) से बड़े विस्फोट के साथ बाहर निकले। इस गर्मी ने लावा को एक विस्तृत प्रदेश में क्षैतिज चादरों के रूप में फैलने में समर्थ बनाया।

दकन ट्रैप महाराष्ट्र, सौराष्ट्र और मध्य प्रदेश में एक विस्तृत क्षेत्र में फैले हैं। बिहार, तमिलनाडु और कच्छ में भी इनके कुछ भाग हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वर्तमान काल के बम्बई तट के पश्चिम में कुछ दूर तक दकन ट्रैप फैले थे किन्तु यह भाग विभगत हो गया और अब समुद्र में डूबा हुआ है। पश्चिमी तट के स्थल निपाय का सीधापन और वहाँ के ट्रैप की मोटाई (२,१३४ मीटर) दोनों ही इस मत का पोषण करते हैं।

दकन ट्रैप तीन भागों में बाँट गये हैं:

(१) ऊपरी ट्रैप (Upper Traps) ४५७ मीटर तक मोटे होते हैं। ये महाराष्ट्र में पाये जाते हैं। यह ज्वालामुखी राख की अनगिनत तहों और मध्य ट्रैपीय पात्रों से युक्त हैं।

(२) मध्य ट्रैप (Middle Traps) १,२१६ मीटर तक मोटे हैं। मध्य प्रदेश में ऊपरी भाग में अनगिनत राख के पात्र (Ash-beds) हैं लेकिन मध्य ट्रैपीय कम हैं।

(३) निचले ट्रैप (Low Traps) मध्य प्रदेश तथा पूर्व में १५२ मीटर तक मोटे हैं। कई मध्य ट्रैपीय पात्र हैं लेकिन राख के पात्र कम हैं।

दकन ट्रैप के खनिजात्मक लक्षणों में आश्चर्य करने लायक एकरूपता है। ये डोलोराइट और बेसाल्ट की प्रकृति के हैं। इनका रंग गाढ़ा भूरा, गाढ़ा हरा-मिला, भूरा, आदि है। ट्रैप के शिला-चूर्णन से गहरे काले रंग की मिट्टी का जन्म हुआ है जिसे कपास की काली मिट्टी कहते हैं। इसका गुण यह है कि गीली होने पर वह फूल जाती है और अनगिनत बड़े भ्रंशों के साथ सूख जाती है। ट्रैप से लैटेराइट नामक मिट्टी भी (मानसूनी मौसम में) बनती है। इसमें अल्यूमीना, लोहा और मैंगनीज के ऑक्साइड समाहृत होते हैं।

गोदावरी, छिंदवाड़ा, नागपुर और जबलपुर जिलों में नदी और तालाबों के अवसादीय पाज भी मिलते हैं। इनकी मोटाई ·३ से ·६ मीटर तक होती है।

दकन ट्रैप भवन निर्माण और सड़क में लगाने के लिए बहुत अच्छे पत्थर प्रदान करते हैं। इस ट्रैप में मणिभ, अगेट तथा सिलिका के अन्य रूपों का उपयोग घटिया रत्नों के रूप में होता है। राजपीपला, खंभात और रत्नागिरि में इनको काट कर मणियों और आभूषण की वस्तुएँ बनायी जाती हैं। महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के ट्रैप में बॉक्साइट के बड़े जमाव पाये जाते हैं।

तृतीय जीव-युग
(CAINOZOIC)

तृतीय जीव युग को दो भागों में बांटा गया है: (i) तृतीयक (Tertiary) युग के पूर्वार्द्ध को इयोसीन (Eocene) और ओलीगोसीन (Oligocene) नामक दो भागों में; तथा (ii) उत्तरार्द्ध तृतीयक को मायोसीन (Miocene) और प्लाओसीन (Pliocene) नामक दो भागों में।

तृतीय जीव-युग में गोंडवाना भूमि का वर्तमान के महाद्वीपों में विभाजन हो गया। अंशतः भूखण्डों के प्रवाहित होने से तथा अंशतः विभाग के फलस्वरूप समुद्र में भू-खण्डों के कुछ भागों में डूब जाने से यह विभाजन हुआ।

उसी समय टेथिस सागर की द्रोणी बड़े पर्वतों को निर्माण करने वाली गतियों द्वारा भजित हुई। उस समय जिन पर्वतों का निर्माण हुआ उनमें हिमालय, ईरानी पहाड़, काकेशस, कार्पेथियन, आल्प्स और पिरेनीज हैं। हिमालय के निर्माण में चार या पाँच उत्थानों के स्पष्ट काल देखे गये हैं। पहला उत्थान ऊपरी क्रिटेशियस का तथा दूसरा ऊपरी इयोसीन काल का है। नारी, गज तथा मुर्री समुदायों के जमाव के बाद मध्य मायोसीन काल में तीसरा उत्थान हुआ। इस उत्थान ने टेथिस सागर के अवशेषों को पूर्ण रूप से विलुप्त कर दिया। इस काल में हिमालय पर्वतों के दक्षिण में एक बड़ी द्रोणी का निर्माण हुआ। इसमें उत्तरवर्ती काल के शिवालिक अवसाद बिछाये गये। प्लायोसीन के अन्त में चौथा उत्थान हुआ। यह और इसके बाद का हिम-युग दोनों मायोसीन और प्लायोसीन काल के सम्पन्न स्तनवर्गीय जीवों के नाश के उत्तरदायी थे। पिछले प्लायोसीन काल में अन्तिम मुख्य उत्थान हुआ जिसके फलस्वरूप पीर-पंजाल ऊँचे पहाड़ों के रूप में ऊँचा उठ गया।

तृतीय जीव-युग की सब शिलाएँ समुद्री हैं। उत्तर-पश्चिमी भारत में इन शिलाओं की प्रकृति समुद्री, मुरीं शिलाओं की सागर-संगम सम्बन्धी और शिवालिक शिलाओं की नदीय है। इस कल्प में फूल लगने वाले पौधों का विकास हो गया था।

कश्मीर में पीरपंजाल के दक्षिणी भाग तथा रियासी (जम्मू) में इयोसीन काल के स्तर मिलते हैं। इनमें शेल और चूना शिलाएँ मुख्य हैं। जम्मू की इयोसीन मेखला शिमला और गढ़वाल के हिमालय के पाद-पर्वतों के अन्दर से नैनीताल के आस-पास तक चली गयी है। यहाँ के जमाव तटीय प्रकृति के हैं और पूर्व की ओर क्रमशः पतले होते जाते है। असम में हफलांग-दिशांग समुदाय की अवधि ऊपरी क्रिटेशियस से मध्य इयोसीन तक है। बरैल समुदाय ऊपरी इयोसीन और ओलिगो-सीन का प्रतिनिधि होता है। इसके ऊपरी भाग में उत्तरी-पूर्वी असम की धनसीरी घाटी के पूर्व में कोयले की मुख्य परतें पायी जाती हैं। लीडो के पड़ोस में इसका सर्वोत्तम विकास हुआ है। इन शिलाओं में नजीरा, माकूम, लीडो, नामदाग और टिकाक कोयला क्षेत्र पाये जाते हैं। इस समुदाय के मध्य भाग में कुछ तेल के स्रोत भी पाये जाते हैं।

राजस्थान में बीकानेर के पलाना के लिग्नाइट और मुलतानी मिट्टी के निक्षेप भी इसी काल के हैं। गुजरात में सूरत और भड़ौंच तथा कच्छ में भी इयोसीन शिलाएँ पायी जाती हैं।

इयोसीन का अन्त पर्वत-निर्माण क्रिया का एक काल था। उस समय टेथीस अवसाद ऊपर को उठाये गये और मार्जित किये गये। ओलीगोसीन काल में भी यह अवसाद जारी रहा। ये जमाव उथले जल की उत्पत्ति को सूचित करते हैं किन्तु कुछ स्थानों में वे काफी मोटे हैं। दूसरा उत्थान मायोसीन काल में हुआ। तीसरा उत्थान मायो-प्लायोसीन काल में अवसाद के शिवालिक उपसमूह के रूप में ऊँचा उठ जाने से हुआ। शिवालिक स्तर और उनके तुल्य शिलाएँ हिमालय की सम्पूर्ण लम्बाई के पार प्रदेश और असम में पायी जाती हैं जहाँ ये दिहिंग समुदाय कहलाती हैं। इन शिलाओं में रेती का अंश अधिक है जिससे स्पष्ट होता है कि ये नदियों द्वारा छिछले जल में बिछाई जाने से बनी हैं। इन चट्टानों से शिलाभूत अवशेष कम ही मिलते हैं। सौराष्ट्र और कच्छ में शिवालिक काल की चट्टानें पायी जाती हैं। इसमें कई स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं। केरल राज्य में कोल्लम के निकट समुद्र तट और कुछ कुओं में चूना शिलाएँ पायी जाती हैं जिनमें प्रवाल और मोलस्का प्राप्त हुए हैं।

चतुर्थ जीव-युग
(NEOZOIC)

प्लीस्टोसीन काल (Pleistocene)

चतुर्थ जीव-युग का आरम्भ एक ठण्डे मौसम द्वारा अंकित है। भारत में हिमा-नियों के प्रमाण हिमालय प्रदेश में ही मिलते हैं। यहाँ हिमानियाँ बहुत निचली ऊँचाई

को उतर आयी थीं। इसके चिह्न शिवालिकों, खरोबोदार विदों तथा मोरेन में मिलते हैं। कश्मीर की कारेवा राशि प्लीस्टोसीन काल की है। यह झेलम की घाटी और पीरपंजाल के पदों में चपटे वत्तलों (Terraces) को बनाती हैं। ये श्रीनगर गुलमर्ग के बीच में पाये जाते हैं। इस राशि में बालू, मिट्टियाँ, काँप और शिलापिंड (Boulders) पाये जाते हैं। कारेवा शिलाएँ लगभग ७,१०० वर्ग किलोमीटर में फैली हैं और १,५२४ मीटर मोटी हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कश्मीर की घाटी में इन अवसादों के निर्माण के बाद ये ऊँचे उठे हैं। ये एक बड़ी झील में जमा हुए माने जाते हैं। यह झील उस क्षेत्र में स्थित थी जो उत्तर में हिमालय-पर्वत श्रेणियों और दक्षिण में एक कूट के बीच में थी। निचली कारेवा शिलाओं में चीड़, ओक, बीच, एल्डर, विलो, हॉली, दालचीनी, आदि के अवशेष पाये जाते हैं। ये इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय का मौसम शीतशीतोष्ण था। स्वच्छ जल के सीप, मछलियाँ और स्तनपोषी जीवों के अवशेष भी इनमें मिलते हैं।

हुंडीज की सतलज घाटी में पूर्ण विकसित नदी उत्तल दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें भी प्लीस्टोसीन स्तनपोषी जीवों के अवशेष पाये जाते हैं। नर्मदा और ताप्ती नदियाँ उन स्थानों में बहती हैं जो प्लीस्टोसीन जमावों से आवृत हैं। इन जमावों की मोटाई ३० मीटर तक है। इनमें भी स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं। गोदावरी और कृष्णा नदियों की ऊपरी घाटी में प्राचीनतम काँप मिट्टी मिलती है, जो कंकर, बालू और मिट्टियों से बनी है। यह कुछ प्लीस्टोसीन प्राणियों के अवशेषों से युक्त है।

प्रायद्वीप और बाहरी प्रायद्वीप के बीच एक विस्तृत काँप का मैदान फैला है जिसमें गंगा, सतलज एवं ब्रह्मपुत्र और सिन्धु नदियों द्वारा लायी गयी काँप बिछाई गयी है। यह प्रदेश ६½ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र से अधिक में फैला है। अरावली पहाड़ों की प्रवृति रेखा दिल्ली के निकट जहाँ काँप प्रदेश को पार करती है, वहाँ वह प्रदेश बहुत सँकरा है। राजमहल और गारो के बीच में जो द्रोणी है वह प्रायः छिछली है। इस द्रोणी की अधिकतम गहराई का अनुमान १,८१८ से २,१३४ मीटर का किया गया है। ये जमाव बालू और मिट्टी से बने हैं। प्राचीनतम काँप मैदान बांगड़ कहलाता है इसका रंग काला है और इसमें कंकड़ नजर आते हैं। नया काँप का मैदान, जो खादिर कहलाता है, बालू और कंकड़ों से युक्त है। इसमें भूमिगत जल के भण्डार पाये जाते हैं। पुराना काँप मध्य से ऊपरी प्लीस्टोसीन और नया काँप ऊपरी प्लीस्टोसीन काल का बना है। प्राचीन काँप में स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं और नये काँप में जिन जीवों के अवशेष मिलते हैं वे प्रायः अब जीवित जातियों के समान हैं।

प्रायद्वीप के तटीय भागों में बालू तट हैं। साधारणतः इनमें पिछले प्लीस्टो-सीन और आधुनिक काल के सीप पाये जाते हैं। ऐसे जमाव उड़ीसा, तमिलनाडु और सौराष्ट्र के तटों पर मिलते हैं। दक्षिणी-पश्चिमी तटों में कई जलाशय मिलते हैं जो समुद्र से नीची मिट्टी के किनारों द्वारा अलग किये गये हैं। ये प्लीस्टोसीन और

आधुनिक काल के जमावों से युक्त है। पूर्वी तट में चिल्का झील है जो उन अवसादों द्वारा क्रमशः जमी है जिन्हें महानदी लाती है। नदी के मुहानों को काटकर एक बालूजिह्वा (Sandspit) चली गयी है। इसमें सीप-जमाव हैं जो समुद्र तट से कई फीट ऊँचे उठे हैं।

राजस्थान के दक्षिण में कच्छ का एक ऐसा प्रदेश है जो प्लीस्टोसीन काल में समुद्र में डूबा था। यह धीरे-धीरे शुष्क भूमि में बदलता जा रहा है। पश्चिमी राजस्थान में जो विशाल मरुस्थल फैला है उसमें बालू की अधिकता है। साधारणतः तल-शिलाओं (Bed-rock) की चोटियाँ बालू के नीचे दबी हैं। यह बालू वायु की गति द्वारा विलक्षण रूप वाले बालू-स्तूपों के रूप में एकत्रित है। मरुभूमि के जमाव मुख्यतः प्लीस्टोसीन और आधुनिक काल के हैं। ये कई हजार वर्षों से एकत्रित किये गये हैं।

आधुनिक काल
(RECENT PERIOD)

आधुनिक काल में तटीय बालुका-स्तूप, नदियों के मुहाने की काँप मिट्टी के जमाव और मिट्टियाँ, आदि बनी हैं।

भारत के पूर्वी तट पर कई भागों में बालुका-स्तूप मिलते हैं। पवनों द्वारा इनका निरन्तर पुनर्विन्यास होता रहता है। यह धीरे-धीरे देश के अन्दर की ओर बढ़ते हैं।

नदियों के मुहानों में नदियों द्वारा लायी गयी काँप मिट्टी के विस्तृत जमाव पाये जाते हैं।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि भारतीय प्रायद्वीप का अधिकतर भाग आद्य-कल्प की शिलाओं से बना है। इसमें भिन्न-भिन्न उत्पत्ति तथा प्रकृति की नाइस, शिस्ट, आग्नेय और परिवर्तन शिलाएँ पायी जाती हैं। काल के अनुसार उनके बाद कडप्पा और विन्ध्य की शिलाएँ हैं। उसके बाद कोयले से युक्त गोंडवाना राशियों और द्वितीय तथा तृतीय जीव-कल्प समूह की शिलाएँ हैं। पश्चिमी तथा मध्य प्रदेश दक्कन ट्रैप के लावा-बहाव से आवृत्त हैं। शिलाभूत अवशेषों के अवसादीय उपसमूह (Fossilized Sediments) प्रायद्वीप के एक छोटे भाग में ही मिलते हैं।

बाहरी प्रायद्वीप (Extra-Peninsula) में प्रधानतः मुख्य हिमालय अक्ष के उत्तर की ओर सभी कालों के समुद्री अवसादों का प्रभावपूर्ण विकास दृष्टिगोचर होता है। महा-हिमालय व लघु-हिमालय में मुख्यतः शिलाभूत अवशेषरहित अवसाद और आग्नेय तथा परिवर्तित शिलाएँ मिलती हैं।

भारत के कुछ विशाल प्रदेशों अर्थात् उड़ीसा, असम और हिमालय के कुछ भागों का भूगर्भिक अध्ययन अभी भी अपूर्ण है।

12

खनिज
(MINERALS)

पिछली शताब्दी तक अनेक भूगर्भशास्त्रियों का विश्वास था कि भारत में यद्यपि अनेक खनिज पदार्थ पाये जाते हैं किन्तु उनको निकालने में लाभ होना पूर्ण रूप से सम्भव नहीं होगा। उनका विचार था कि "प्राचीन काल में जब अन्य देशों ने खनिज विद्या प्राप्त न की थी तब भारत अपनी निजी आवश्यकता खनिजों के छोटे-छोटे कारखाने स्थापित कर पूरी करता रहा होगा, किन्तु आधुनिक खनिजात्मक युग में पुराने ढंग से खनिज निकालना कदापि लाभदायक नहीं हो सकता।" किन्तु यह विचार असत्य सिद्ध हुआ है। भूगर्भवेत्ताओं ने निरन्तर अनुसन्धान करके यह स्पष्टतः सिद्ध कर दिया है कि आधुनिक युग में जिन-जिन खनिजों की आवश्यकता किसी सभ्य देश को हो सकती है, वे सब भारत में वर्तमान हैं। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री डॉ० बाल का कथन उल्लेखनीय है। वे कहते हैं, "भारत के भूगर्भ में विभिन्न प्रकार की खनिजों की नसें पायी जाती हैं। यदि विश्व के सभी देशों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध न होता अथवा यदि यहाँ निकाले गये खनिजों को विदेशी व्यापार की प्रतिस्पर्द्धा से रक्षा की जाती है तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत अपने देश ही में प्राप्त हुए खनिज पदार्थों से सम्पूर्ण रूप से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता।" भारतीय औद्योगिक आयोग का भी यह मत था कि "भारत के मुख्य आधारभूत उद्योगों (केवल उन उद्योगों को छोड़कर जिनमें वैनेडियम, निकिल और मोलीबडेनम की आवश्यकता पड़ती है) के लिए भारत में खनिज सम्पत्ति पर्याप्त मात्रा में व्याप्त है। सच तो यह है कि भारत में विभिन्न प्रकार के खनिजों का अस्तित्व है और यदि इसका ठीक तरह से उपभोग किया जाय तो यह देश औद्योगिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर बन सकता है। देश के विभाजन से भारत की खनिज सम्पत्ति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। अविभाजित भारत के लोहे, अभ्रक, टाइटैनियम, आदि के भण्डार भारत में ही रहे हैं किन्तु क्रोमाइट, मुल्तानी मिट्टी, गन्धक, मिट्टी का तेल, जिप्सम, आदि के स्रोत पाकिस्तान को चले गये हैं। खनिज तेल का २०% भाग, साधारण नमक का ½ उत्पादन क्षेत्र और प्रति वर्ष १ लाख टन कोयला उत्पादन करने वाली टर्शरी कोयले की खानें पाकिस्तान को चली गयीं।

खनिज क्षेत्रों का वितरण (Distribution of Mineralised Areas)

भारत में सतलज, गंगा और ब्रह्मपुत्र का मैदान नयी चट्टानों से बना है जिसमें कई हजार मीटर की गहराई तक चिकनी मिट्टी और बालू की तहें पायी जाती हैं। *अतः यहाँ कंकड़ को छोड़ और कोई खनिज नहीं मिलता क्योंकि इन* चट्टानों में ज्वालामुखी परिवर्तनों का प्रभाव अभी तक नहीं पहुँच पाया है किन्तु भारत का दक्षिणी प्रायद्वीप अत्यन्त पुराना भाग है। दक्षिण की पाँच लाख वर्ग किलोमीटर भूमि समय-समय पर ज्वालामुखी के फूट निकलने से लावा की तहों से बनी है जो कहीं-कहीं ६०० मीटर तक मोटी है किन्तु इसमें भी खनिजों का अभाव है। प्रायद्वीप का आधे से अधिक भाग उन प्राचीन चट्टानों का बना है जो कुमारी अन्तरीप से लगाकर गंगा के पास २२,५३१ किलोमीटर तक फैली है। इनमें बुन्देलखण्ड की शैलें सबसे प्राचीन हैं। इसी तरह राजमहल की पहाड़ियाँ, दामोदर घाटी, उड़ीसा के मुहाल, छत्तीसगढ़, छोटा नागपुर के पठार और गोदावरी के पास सतपुड़ा श्रेणी ऐसे प्राचीन प्रदेश हैं जो गोंडवाना विभाग में सम्मिलित हैं। इन भागों में बहुत पुरानी चट्टानें पायी जाती हैं। इन्हीं में अधिकतर भारत के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। देश में बालू और चूने के पत्थर तो सर्वत्र ही मिलते हैं।

भारत में खनिज पदार्थों का वितरण बहुत असमान है। डॉ० डन का कथन है कि "यदि एक रेखा दक्षिण में मंगलौर से कानपुर तक और वहाँ से हिमालय पर्वत तक खींची जाये तो जो भाग इसके पूर्व में हैं वे सभी खनिज पदार्थों में धनी हैं और पश्चिम की ओर के भाग (राजस्थान में अभ्रक, नमक, हुरसौंठ, पंजाब और कश्मीर में कोयला पाने वाले स्थानों को छोड़कर) खनिज पदार्थों में बिल्कुल ही निर्धन हैं।"

भारत में खनिज क्षेत्र स्पष्टतः पाँच मेखलाओं (Belts) में पाये जाते हैं।

(१) बिहार-उड़ीसा-पश्चिमी बंगाल मेखला जो इन राज्यों में फैली है तथा जिसका सम्बन्ध पठार के उत्तरी-पूर्वी भाग से है। इस मेखला में कोयला, अभ्रक, इल्मेनाइट, क्रोमाइट, फॉस्फेट, बॉक्साइट, मैंगनीज, ताँबा, लोहा और चूने का पत्थर पाया जाता है। कोकिंग कोयला, ताँबा, लोहा, मैंगनीज और अभ्रक के वृहत् भण्डार इसी क्षेत्र में हैं। बिहार खनिज उत्पादन की दृष्टि से प्रमुख राज्य है। कोयला और अभ्रक के उत्पादन में इसका स्थान पहला, बॉक्साइट में दूसरा और लोहे में तीसरा है। उड़ीसा में लोहा, चूने का पत्थर, डोलोमाइट, मैंगनीज और बॉक्साइट पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। पश्चिमी बंगाल में लोहे और कोयले के अतिरिक्त दामोदर घाटी में खनिजों का बाहुल्य पाया जाता है। देश में उत्पन्न होने वाले कियेनाइट का १००%, लोहे का ९३%, कोयले का ८०%, क्रोमाइट का ७०%, अभ्रक का ७०%, अग्नि मिट्टी का ५०%, एस्बस्टस का ४५%, चीनी मिट्टी का ४५%, चूने के पत्थर का २०%, मैंगनीज और इमारती पत्थर का १०-१०% इसी घाटी में मिलता है। ऐसा डॉ० वाडिया का अनुमान है।

(२) मध्य प्रदेश-आन्ध्र प्रदेश-महाराष्ट्र मेखला जो इन तीनों राज्यों में फैली है। इसी मेखला से भारत का अधिकांश मैंगनीज और बॉक्साइट प्राप्त होता है। चूने का पत्थर और कोयला भी यहां मिलता है। मध्य प्रदेश में बॉक्साइट, हीरा, मैंगनीज, लोहा, कोयला और चूने के पत्थर के उत्तम स्रोत पाये जाते हैं। आन्ध्र प्रदेश में द्वितीय श्रेणी का कोयला, हीरा, अभ्रक, लोहा, बैराइट्स, एस्बस्टस, डोलोमाइट, चूने का पत्थर, तांबा और ग्रेफाइट प्राप्त किया जाता है। महाराष्ट्र में मैंगनीज, लोहा, नमक, अभ्रक, सिलीका, चिकनी मिट्टी, क्रोमाइट, चूने का पत्थर और बॉक्साइट निकाला जाता है।

(३) कर्नाटक-तमिलनाडु मेखला जिसमें आन्ध्र प्रदेश के भी कुछ भाग सम्मिलित हैं, सोना, लोहा, तांबा, क्रोमाइट और मैंगनीज के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। कर्नाटक से तो भारत का सारा सोना प्राप्त किया जाता है। लोहा, चिकनी मिट्टी, बॉक्साइट और क्रोमाइट भी यहां मिलता है। तमिलनाडु में लिगनाइट कोयला, मैंगनीज, अभ्रक, बॉक्साइट, जिप्सम, चूने का पत्थर, मैंगनीज, नमक और चूने का पत्थर प्राप्त किया जाता है।

(४) राजस्थान-गुजरात मेखला खनिजों के सम्भावित उत्पादन की दृष्टि से बड़ी समृद्ध है। राजस्थान से तांबा, जस्ता, सीसा, यूरेनियम, बैरीलियम, अभ्रक, फ्लूराइड, रॉक फॉस्फेट, मैंगनीज, एस्बस्टस, नमक, लिगनाइट कोयला, मुल्तानी मिट्टी, पन्ना, संगमरमर, घीया पत्थर और जिप्सम प्राप्त किया जाता है। यहां पैट्रोलियम, सोना और चांदी मिलने की भी सम्भावनाएं हैं। गुजरात में पैट्रोलियम, जिप्सम, चिकनी मिट्टी, मैंगनीज, नमक और बॉक्साइट प्राप्त किये जाते हैं।

(५) केरल मेखला में समुद्र तटीय क्षेत्रों में अणुशक्ति के खनिज (इल्मेनाइट, जिरकन, मोनोजाइट) के अतिरिक्त चिकनी मिट्टी, गारनेट, ग्रेफाइट, उत्तम बालू, मिट्टी, आदि खनिज प्राप्त किये जाते हैं।

उपर्युक्त खनिज मेखलाओं के अतिरिक्त दो अन्य क्षेत्रों का महत्त्व भी उनमें मिलने वाले नये खनिज भण्डारों के कारण बढ़ रहा है। ये क्षेत्र हैं :

(अ) उत्तरी-पूर्वी असम क्षेत्र, जिसमें पैट्रोलियम और लिगनाइट कोयला मिलता है।

(ब) हिमालय क्षेत्र जिसके अन्तर्गत कश्मीर में रत्न, कोयला और बॉक्साइट मिलता है। सिक्किम में तांबा प्राप्त किया जाता है।

उत्तर प्रदेश, पंजाब, और हरियाणा राज्य खनिजों की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। 1981 में

राज्यों की दृष्टि से बिहार सबसे महत्त्वपूर्ण उत्पादक है। १९७२ में यहां से देश की खनिज सम्पत्ति के मूल्य का २८% प्राप्त हुआ, पश्चिमी बंगाल से ९.१%, मध्य 23.6. 8.1

प्रदेश से १५% और शेष उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और गुजरात से प्राप्त हुआ था।

खनिज पदार्थों की दृष्टि से भारत की स्थिति

यद्यपि भारत की खनिज सम्पत्ति अटूट नहीं कही जा सकती है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह विविध प्रकार की है जिस पर कई उद्योगों का विकास किया जा सकता है। मोटे तौर पर लगभग १०० प्रकार के खनिज भारत में ज्ञात हैं किन्तु इनमें से ३० आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। योजना आयोग के अनुसार, "कुछ खनिजों का देश के उद्योगों के लिए वास्तविक महत्त्व है और इनका उत्पादन भी पर्याप्त मात्रा में किया जाता है (कोयला, लोहा, अभ्रक, मैंगनीज, सोना, इल्मेनाइट, बॉक्साइट और भवन निर्माण के पत्थर)। अन्य खनिजों के भण्डार अच्छी मात्रा में उपलब्ध हैं (जैसे औद्योगिक मिट्टियाँ, क्रोमाइट, अणु खनिज, घर्षक पदार्थ, आदि)। देश के बृहत औद्योगिक विकास के लिए जिन खनिजों का अभाव है वे जस्ता, सीसा, ताँबा, टिन, गन्धक, निकिल, ग्रेफाइट, कोबाल्ट, पारा और तेल हैं। इनको छोड़कर प्रायः वे सभी खनिज यहाँ मिलते हैं जो किसी उद्योग के लिए आधारभूत होते हैं। यद्यपि विश्व के प्रमुख खनिज क्षेत्रों की तुलना में यह बहुत अधिक नहीं हैं।"

भूगर्भशास्त्री डॉ० वाडिया ने भारत के खनिज पदार्थों को उनकी पर्याप्तता के अनुसार निम्न चार श्रेणियों में विभाजित किया है :

(१) वे खनिज पदार्थ जिनका निर्यात करके भारत अन्तरराष्ट्रीय व्यापार पर प्रभाव डालता है :

लोहा, टाइटेनियम, अभ्रक और थोरियम धातु।

(२) वे खनिज जिनका भारत से निर्यात महत्त्वपूर्ण है :

मैंगनीज, मैगनेसाइट, रिफ्रैक्टरी खनिज, बॉक्साइट, चीया पत्थर, मोनोजाइट, ग्रेनाइट, बैरीलियम, कोरंडम, प्राकृतिक घर्षण पदार्थ, सिलीका, हरसौंठ।

(३) वे खनिज पदार्थ जिनके उत्पादन में भारत आत्मनिर्भर है :

कोयला, काँच बनाने का बालू, सोना, अल्यूमीनियम, फेलस्पार, इमारती पत्थर, चूने का पत्थर, डोलोमाइट, संगमरमर, स्लेट, सीमेण्ट बनाने की सामग्री, सुरमा, ताँबा, सुहागा जिरकन, औद्योगिक मिट्टियाँ, बैराइट्स, वैनेडियम, पाइराइट, शोरा, फॉस्फेट, क्रोमाइट, तेजाब, अभ्रक, सखिया, बैंटरीज, फिटकरी, नमक, खनिज रंग।

(४) वे खनिज पदार्थ जिनके लिए भारत को मुख्यतः विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है :

चाँदी, निकिल, मिट्टी का तेल, जस्ता, सीसा, टिन, पारा, टंगस्टन, मौलबिडेनम, ग्रेफाइट एसफाल्ट, पोटाश, प्लेटीनम, गन्धक, फ्लूराइड।

भारतीय भूगर्भ पर्यवेक्षण मण्डल (GSI) के अनुसार विभिन्न खनिजों के सचित भण्डार निम्न प्रकार हैं :

(लाख टनों में)

खनिज	सिद्ध (*Proved*)	ज्ञापित (*Indicated*)	परिलक्षित (*Inferred*)
एपैटाइट	—	३·०	७·६
बैराइट्स	—	—	१३·७
बॉक्साइट	२३०·०	१६०·०	१३०·०
बैंटोनाइट	२००·०	—	५४०·०
चिकनी मिट्टी	३६·८	१,०६०·०	१,१२०·०
क्रोमाइट	—	—	८०·०
कोयला	१,६७,६६०	१२,००,०००	१३,०७,८२०
ताँबा अयस	—	—	२,४५०·०
डोलोमाइट	३२०·०	२,५२०·०	४,५३०·०
सोना	४०·०	—	—
जिप्सम	—	—	११,३००
इल्मैनाइट	—	—	१,०००·०
लोहा अयस	—	७५,६४०·४	२,१५,८३०·०
कियेनाइट	—	—	१००·०
जस्ता सीसा अयस	—	—	२,२५०,०
लिगनाइट	२०,४६०·०	—	१,२००·०
मैंगनीज	—	—	१,८२०·०
निकिल अयस	—	—	३८०·०
मैगनेसाइट	—	—	४३० ०
सिलमैनाइट	—	—	३८
मैगनेटाइट	—	—	२६० ०

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि खनिज पदार्थों का ~~६०~~ ८८% मूल्य पांच खनिजों से ही प्राप्त होता है : कोयला ६८·५%, मैंगनीज ५.१%, कच्चा लोहा ४·५%, चूने का पत्थर ३·५% और ताँबा १·१%।

सन् १९७२ में सब प्रकार की खानों की संख्या २,६३५ थी जिसमें ६,३८,५१५ श्रमिक कार्य कर रहे थे। खनिजों द्वारा राष्ट्रीय आय का लगभग १% प्राप्त होता है।

भारत में सन् १९५१ में ८९ करोड़ रुपये के, सन् १९६१ में १८१ करोड़ रुपये के तथा सन् १९६६ में ३२८ करोड़ रुपये के मूल्य के खनिज निकाले गये। १९७०

1974 में 780 करोड़, 1977 में 1324 क., 1978 में 1314 करोड़ रुपये।

में इनका मूल्य ४८६ करोड़ रुपये का था। सन् १६७१ में ४४३ करोड़ रुपये और १६७२ में ७४१ करोड़ के खनिज प्राप्त किये गये।[1]

निर्यातित महत्वपूर्ण खनिज कोयला, लोह अयस, यामिज, मैंगनेमाइट, मैंगनीज, अभ्रक और सिलैमैनाइट हैं।

विदेशो से आयातित खनिजो में मुख्य गन्धक, फॉसफेट, एस्बस्टस, सुहागा, सुरमा, क्रायोलाइट, सीसा, जस्ता, पैट्रोलियम, ताँबा, आदि खनिज मुख्य हैं।

१६७३ मे खनिज पदार्थों का उत्पादन १६७२ के स्तर पर ही रहा। निकाले गये खनिजो का मूल्य ५४३ करोड़ रुपया था। इसमें से ६६% अर्थात् ३७६ करोड़ रुपये के खनिज ईंधन; १४% अर्थात् ७४ करोड़ रुपये के धातु खनिज और १७% अर्थात् ६३ करोड़ रुपये के अधातु खनिज और अन्य छोटे खनिज थे। प्रमुख खनिजों का उत्पादित मूल्य (१६७३ मे) इस प्रकार था :

कोयला	७७१ लाख	टन	मैंगनीज अयस	१४,४५,०००	टन
लिगनाइट	३३,०३,०००	टन	पायराइट	४१,५०७	टन
पैट्रोलियम	७१,६६,०००	टन	हीरा	२०,६३५	कैरेट
ताँबा अयस	१०,६०,०००	टन	सोना	३,३२०	किलोग्राम
लोहा	३५,००,०००	टन	एस्बस्टस	१,१२,५०१	टन
बॉक्साइट	१,२७,०००	टन	अभ्रक	१३,४७५	टन
चूने का पत्थर	२३,७४७,०००	टन	घीया पत्थर	१,६१,०००	टन
डोलोमाइट	१,३६०,०००	टन	जस्ता सफेद	२३,६१३	टन

खनिज उद्योग की समस्याएँ

खनिज पदार्थों मे देश सामान्यत. धनी कहा जा सकता है किन्तु भारत में खनिज पदार्थों के निकालने मे कई असुविधाओं और कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। उनमें से मुख्य निम्न हैं :

(१) यहाँ अधिकतर खनिज-पदार्थ—मैंगनीज, अभ्रक, क्रोमाइट, मैगनेसाइट, कैनाइट और इल्मेनाइट—विदेशों को निर्यात करने को ही निकाले जाते हैं जिसमें देश को आर्थिक हानि बहुत होती है। (२) यद्यपि खानें बहुत हैं किन्तु उनमे सुव्यवस्थित रूप मे काम नहीं किया जाता। सबसे पहले ऊपरी भाग की खानें खोदी जाती हैं किन्तु ज्यों-ज्यों गहराई बढती जाती है दूसरी खानें खोद ली जाती हैं इनसे खनिज पदार्थ पूरी मात्रा मे नहीं निकाले जाते। बहुत सो यों ही व्यर्थ मे नष्ट हो जाते हैं। (३) जलमार्गों की न्यूनता के कारण अधिकतर खनिज-पदार्थों को ले जाने का कार्य रेलें ही करती हैं। अतः व्यय बहुत अधिक होने के कारण वे महँगे पड़ते हैं। (४) नये मार्गों में खनिज-पदार्थों के सम्भावित क्षेत्रों का पर्यवेक्षण अभी तक पूरी तरह नहीं हो पाया

[1] *India*, 1974, p. 251.

है। कई भागों की भू-प्रकृति का अब तक पता नहीं लग पाया है। असम और उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों की तो पूरी प्रकार जाँच भी नहीं हो पायी है। कई भागों में यद्यपि कुछ खनिजों के सुरक्षित भण्डार होने का अनुमान अवश्य लगाया गया है किन्तु विश्वसनीय तौर पर यह कहना कठिन है कि वे किस प्रकार के हैं और किस उपयोग के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। (५) खनिज पदार्थों के निकालने सम्बन्धी नीति का अभाव, खनिजों के पूर्ण उपयोग करने के साधनों की कमी, खानों पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण, खनिजों की बिक्री सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव, शिक्षित और प्रशिक्षित श्रमिकों की कमी, आधुनिक यन्त्रों का खनिज निकालने में अपर्याप्त प्रयोग, आदि अन्य असुविधाएँ हैं।

अस्तु, भारत की खनिज सम्पत्ति का पूर्ण उपयोग करने हेतु निम्न उपाय काम में लाने चाहिए :

(१) उचित अन्वेषण और निरीक्षण के उपरान्त देश की खनिज सम्पत्ति का नियमित तथा आयोजित उपभोग होना चाहिए। (२) देश की खनिज सम्पत्ति को पूरी तरह प्रयोग में लाने के लिए आयात-निर्यात दोनों पर ही भारी कर लगा देने चाहिए। इसी हेतु कच्ची मैंगनीज, क्रोमियम, अभ्रक, टाइटेनियम, फॉस्फेट तथा अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टियों का निर्यात सर्वथा रोक कर देश की खानों की उन्नति की जाये। (३) खानें खोदना प्रकृति की सम्पत्ति का अपहरण करना है। एक बार भूगर्भ से निकाले जाने पर उतनी मात्रा में खनिज सदा के लिए समाप्त हो जाते हैं। इसीलिए खानें खोदना एक प्रकार की आर्थिक डकैती (Robber Economy) कहलाती है। जिस गति से खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं अथवा उनका अनियोजित उपयोग होता है उसे देखकर भूगर्भशास्त्रियों का कहना है कि भविष्य में इन पदार्थों की कमी पड़ सकती है। अतः यह आवश्यक है कि इस सम्पत्ति का संरक्षण और उचित उपयोग किया जाय। (४) खनिज पदार्थ खाद्यान्न वस्तुएँ नहीं हैं अतः उनकी माँग में सदैव घटा-बढ़ी होती रहती है। इसी के अनुसार उनके उत्पादन की मात्रा में भी कमी या वृद्धि होती है। अस्तु, देश में ऐसे नये आधारभूत उद्योगों के विकास की नितान्त आवश्यकता है जिनमें खनिजों का प्रायः नियमित उपयोग होता रहे तथा खनिज व्यवसाय पनप सके। (५) देश के विभिन्न भागों में जहाँ यातायात की असुविधा है वहाँ यातायात के विभिन्न साधनों की उन्नति कर क्षेत्रों का पर्यवेक्षण किया जाये और खनिज पदार्थों की सरक्षित राशि का यथोचित ज्ञान प्राप्त किया जाय। (६) कुछ खनिजों के स्थानापन्न निकाले जायें जिससे हमें विदेशों पर आश्रित न रहना पड़े। इसके अतिरिक्त वर्तमान धातुओं के उपयोग की विभिन्न क्रियाएँ ज्ञात की जायें। (७) अनार्थिक खदानों को राज्य नियन्त्रण द्वारा बन्द कर दिया जाना चाहिए और खनिज व्यवसाय कुशल और शिक्षित व्यक्तियों के हाथ में रहे।

खनिज सम्बन्धी नीति

सन् १९५४ के बाद से ही देश की खनिज सम्पत्ति का समुचित उपयोग करने के लिए केन्द्रीय सरकार की ओर से प्रयास किये गये हैं। भारतीय खान विभाग

(Indian Bureau of Mines), राष्ट्रीय धातु प्रयोगशाला (National Metallurgical Institute), राष्ट्रीय ईंधन अन्वेषण संस्था (National Fuel Research Institute), राष्ट्रीय खनिज विकास निगम (National Mineral Development Corporation), खनिज सलाहकार बोर्ड (Mineral Advisory Board), राष्ट्रीय कोयला विकास निगम (*National Coal Development Corporation*) तथा तेल और प्राकृतिक गैस आयोग (Oil & Natural Gas Commission) की स्थापना खनिज पदार्थों के विदोहन, उपयोग और सुधारने के निमित्त की गयी है।

प्रथम योजनाकाल में २½ करोड़ रुपये की व्यवस्था खनिज पदार्थों के विकास के लिए की गयी। भूगर्भ निरीक्षण विभाग और भारतीय खनिज विभाग ने देश में कई पर्यवेक्षण किये। राजस्थान और बिहार में यूरेनियम की नयी खानों का पता लगाया गया। द्वितीय योजनाकाल में औद्योगिक विकास के आधारस्वरूप खनिजों का उत्पादन बढ़ाना आवश्यक मानकर लोहा, कोयला, डोलोमाइट, सीमेण्ट का पत्थर, आदि का उत्पादन बढ़ाया गया। ७२ करोड़ रुपये खनिज उद्योग के विकास के लिए रखे गये। तृतीय योजना में यह राशि १६२ करोड़ रुपये रखी गयी। इस काल में प्रमुख कार्यक्रम उन धातुओं और खनिजों के भण्डारों का पता लगाना रखा गया जो आयात किये जाते हैं। बॉक्साइट, जिप्सम, कोयला, चूने का पत्थर और लोहे के अतिरिक्त भण्डारों का पता लगाना भी रखा गया।

चतुर्थ योजना के अन्तर्गत खनिज पदार्थों सम्बन्धी नीति इस प्रकार निर्धारित की गयी है: (१) *अभी जो खनिज एवं धातुएँ पूर्णतः या अंशतः विदेशों से आयात की* जाती हैं उनके कार्यशील भण्डारों का पता लगाना। (२) लोहा, बॉक्साइट, जिप्सम, कोयला, चूने का पत्थर, आदि खनिजों के अतिरिक्त भण्डारों का पता लगाना जिससे देश की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। (३) नयी खानों और नये खनिज भण्डारों का पता लगाना जिससे उनका निर्यात अधिक मात्रा में किया जा सके।

भारत सरकार ने चार क्षेत्रीय मण्डल खनिज विकास योजना के अन्तर्गत स्थापित किये हैं जो अजमेर, कलकत्ता, नागपुर और बंगलौर में हैं। इसके कार्यक्षेत्र इस प्रकार हैं:

(१) **अजमेर तथा उत्तरी मण्डल**—जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान।

(२) **कलकत्ता तथा पूर्वी मण्डल**—पश्चिमी बंगाल, नागालैण्ड, मेघालय, बिहार, असम, मनीपुर, त्रिपुरा, उड़ीसा और अण्डमान द्वीपसमूह।

(३) **नागपुर अथवा मध्य मण्डल**—मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश।

(४) **बंगलौर अथवा दक्षिण मण्डल**—कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल।

प्रमुख खनिज पदार्थ

भारत में पाये जाने वाले खनिजों को चार भागों में बाँटा जा सकता है :

(१) धात्विक खनिज : लोह अयस्क, मैंगनीज, टंगस्टन, क्रोमाइट।

(२) अणुशक्ति वाले खनिज : यूरेनियम, थोरियम, बैरीलियम, जिरकन, ऐन्टीमनी और ग्रेफाइट।

(३) अधातु खनिज : अभ्रक, नमक, जिप्सम, हीरा, चीया पत्थर।

(४) अलौह धातुएँ : ताँबा, सीसा, जस्ता टिन, बॉक्साइट, सोना, चाँदी और इल्मेनाइट।

१. धात्विक खनिज

लोहा
(IRON ORE)

लोहे का मुख्य खनिज ठोस काले या गेरू का पत्थर हेमेटाइट या मैगनेटाइट होती है जो प्रायः धारवाड़ युग की जलज और आग्नेय शिलाओं से प्राप्त की जाती है।

भारत में चार प्रकार की अयस्क मिलती है :

(१) मैगनेटाइट अयस्क (Magnetite or Fe_3O_4)—यह आग्नेय चट्टानों वाले प्रदेशों में विशेषतः दक्षिणी-पूर्वी सिंहभूमि, तमिलनाडु, आन्ध्र, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिले और उड़ीसा की पालामऊ की खानों में मिलता है। इसमें धातु का अंश ७२ प्रतिशत तक होता है। इस धातु में टाइटेनियम, वैनेडियम और क्रोमियम के अंश भी पाये जाते हैं। यह काले रंग का चुम्बकीय लोहा होता है।

(२) हेमेटाइट अयस्क (Hematite or Fe_2O_3)—इस धातु का प्रतिशत ६० से ७० तक होता है। इसमें धातु ठोस कणों अथवा चूर्ण के रूप में मिलती है। यह ऑक्सीजन और लोहे का सम्मिश्रण होता है। यह लाल या भूरे रंग का होता है। इस प्रकार की अयस्क बिहार-उड़ीसा में सिंहभूम, केंदुरझर, मयूरभंज जिलों, मध्य प्रदेश में धाली-राजहरा की पहाड़ियों, राजघाट और जबलपुर, महाराष्ट्र में रत्नागिरि, लोहारा, पीपलगाँव, कर्नाटक में बाबाबूदन की पहाड़ियों और सदूर में मिलता है। इस प्रकार की अयस्क मुख्यतः पहाड़ियों के ऊपरी भागों में मिलती है।

(३) सिडेराइट और लिमोनाइट अयस्क (Ciderite or $FeCO_3$, Limonite or $2FeO_3$)—यह पश्चिमी बंगाल में रानीगंज कोयला क्षेत्र में विकसित निम्न गोंडवाना क्रम में लोह-प्रस्तर शैल के रूप में मिलती है। इसमें लोहे का अनुपात १० से ४० प्रतिशत तक होता है। यह पीलापन लिये होता है। यह ऑक्सीजन, जल और लोहे का सम्मिश्रण होता है।

(४) लेटेराइट अयस्क (Laterite)—लेटेराइट शैलों के ऋतुक्षरण के फलस्वरूप जब सिलिका और क्षारीय मिट्टी बहकर चली जाती है तो लोहे और अल्यूमीनियम का सकेन्द्रण होता है। इस प्रकार की अयस्क मुख्यतः महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु राज्यों में मिलती है किन्तु अन्य अयस्क सुविधापूर्वक मिल जाने से इसे अधिक नहीं निकाला जाता। इसका रंग भूरा होता है।

उत्पादन क्षेत्र

भारत का प्रमुख लोह-क्षेत्र बिहार राज्य के सिंहभूम जिले में (कोम्पिलाई) होता हुआ उड़ीसा मे केंदुरझर, बोनाई, मयूरभंज क्षेत्रों तक ४८ किमी० की लम्बाई मे चला गया है। इस क्षेत्र मे अनन्त राशि में लोहा भरा पड़ा है। मैदान के ऊपर ४५७ मीटर तक भी अधिक ऊँची पहाड़ियो के रूप मे उच्चकोटि का हैमेटाइट प्रकार का कच्चा लोहा पाया जाता है जिसमे लोहांश ६०% से ऊपर होता है। यहाँ लोहा बहुधा सतह के निकट ही मिल जाता है, अतः उसे खोदने मे अधिक व्यय नहीं पड़ता।

बिहार में लोहा सिंहभूम जिले की कोल्हन जागीर में गुआ क्षेत्र की पसिराबुरू और बड़ाबुरू खानों मे निकाला जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि पसिराबुरू मे १ करोड़ टन और बड़ाबुरू में १५ करोड़ टन लोहा पड़ा है जिसमें लोहांश लगभग ६४% है। ये खानें पूर्वी रेल से जुड़ी हैं अतः इनका अधिकांश उपयोग टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी द्वारा ही किया जाता है। कुछ लोहा भारतीय लोहा कम्पनी द्वारा भी काम में लाया जाता है। केंदुरझर में नोवामण्डी से लोहा प्राप्त किया जाता है। इसमें लोहांश ६०% से अधिक है। यह खान ३०० मीटर ऊँची दो समान्तर श्रेणियों में फैली है। यह एशिया की सबसे बड़ी लोहे की खान मानी जाती है। कुछ लोहा मानभूम, हजारीबाग और शाहबाद जिलो मे भी मिलता है।

उड़ीसा के मयूरभंज जिले में गुरुमहिसानी, ओकम्पाद और बादाम पहाड़ मे भी लोहे की महत्त्वपूर्ण खानें हैं। गुरुमहिसानी मे धातु की तहें तीन समान्तर और भिन्न पेटियों मे मिलती हैं जो क्रमशः २,१३४; १,६५६ तथा ६१४ मीटर लम्बी और कई मीटर तक चौड़ी है। यहाँ कच्ची धातु मे लोहे का अंश ६४% से भी अधिक है। गुरुमहिसानी में १·६ करोड़ टन, सुलेपात की पहाड़ी मे ८५ लाखटन और बादाम पहाड़ मे ४·४ करोड़ टन खनिज का अनुमान लगाया गया है। ओकम्पाद (सुलेपात) मे धातु का जमाव खोरकई नदी के पश्चिम मे निहित है। यहाँ सुलेपात पहाड़ी की धातु मे लोहे का अंश ७८% है। बादाम पहाड़ में ६१४ मीटर लम्बे और १५२ मीटर चौड़े क्षेत्र में लोहा मिलता है। इसमें धातु का अंश ६०% तक पाया जाता है। ये तीनों क्षेत्र सम्पूर्ण भारत का ½ भाग कच्चा लोहा उत्पन्न करते हैं। कोयले और डोलोमाइट के निकट ही मिलने के कारण इन खानों का उपयोग अधिक है।

उड़ीसा में ही बोनाई और कोमपिलाई की पहाड़ियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ के भण्डार ६५ करोड़ टन के हैं। यहाँ कच्ची धातु से ६० प्रतिशत लोहा निकाला जाता है। नये भण्डार किरिबुरू, दैतारी तथा बरसुआ में मिले हैं।

कर्नाटक में काडूर जिले की बाबाबूदन पहाड़ियों मे उत्तम श्रेणी का हैमेटाइट और मैगनेटाइट लोहा भरा पड़ा है। इनका जमाव २-३ करोड़ टन के बीच मे आँका गया है। कर्नाटक के भद्रावती लोहे के कारखानों में केमागुण्डी की खानों का

का लोहा काम में लाया जाता है। इसमें ६४% लोहे की मात्रा होती है। बलारी के सन्दूर क्षेत्र, शिमोगा, तुमकुर, धारवाड, चित्तलद्रुग और चिकमंगलौर में भी लोहा निकाला जाता है। कर्नाटक की नयी खानें दोनोमलाई में विकसित की जा रही हैं, जहाँ से प्रतिवर्ष अनुमानित ४५ लाख टन लोहा प्राप्त किया जायेगा।

तमिलनाडु में मैगनेटाइट किस्म का लोहा पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा जमाव सलेम-तिरुचिरापल्ली में ३० करोड़ टन कूता गया है किन्तु कोयले की कमी के कारण अभी तक काम में नहीं लाया जा सका है। तमिलनाडु में लोहे के मुख्य क्षेत्र गोदामलाई, थालैमलाई सिंगापट्टी, विरयामलाई, पचैमलाई, कोलेमलाई और कजैमलाई हैं। यहाँ धातु में ३५ से ४० प्रतिशत तक लोहा मिलता है। इनमें धातु के जमाव अक्षय मात्रा में होने का अनुमान है।

मध्य प्रदेश में दुग जिले में राजहरा पहाड़ी तथा बस्तर, रायगढ़, रावघाट, सरगुजा, बिलासपुर, जबलपुर, माडला, बालाघाट, आदि जिलों में धाली पहाड़ी में भी ठोस लोहे की पहाड़ियाँ पायी जाती हैं। ये पहाड़ियाँ अपने चारों ओर की चौरस भूमि की सतह से कहीं ७३० मीटर उठ गयी हैं और ३२ किलोमीटर तक लगाकर टेढ़े-मेढ़े आकार में चली गयी हैं। यहाँ लगभग ७५ लाख टन लोहे के जमाव होने का अनुमान है। इनमें लोहे का भाग ६७% है। बस्तर जिले में बैलाडीला में ६१ मीटर की गहराई तक लगभग ७० करोड़ टन के सम्भावित भण्डार हैं। ये भण्डार उच्चकोटि के हैं। रावघाट में ४५० मीटर की ऊँचाई तक हैमेटाइट पाया जाता है। इसके अनुमानित भण्डार ७४ करोड़ टन के हैं। जबलपुर में अधिकांश भण्डार ४५-६०% शुद्ध धातु वाले हैं जो अगरिया, जौली, सिलोंदी, गोसालपुर, घोघारा, सरौली और कह्नवाड़ में हैं।

पश्चिमी बंगाल के वीरभूम जिले में लोहा मिलता है। दामुदा और महादेव श्रेणियों के बालू पत्थर में भी हैमेटाइट अयस्क पाया जाता है। तामरा, दूधिया, देवचा, कांडा, राजमहल की दक्षिणी सीमा के निकट इसका पता मिला है। बर्दवान जिले में दामूदा श्रेणी से लोहा प्राप्त किया जाता है। लौह-प्रस्तर की अनुमानित मोटाई ४६५ मीटर है जो पूर्व-पश्चिम दिशा में कुल्टी से लगाकर ५० किलोमीटर तक फैली है। कुछ लोहा दार्जिलिंग में भी मिलता है।

जम्मू-कश्मीर में अशुद्ध लौह अयस्क, चूना पत्थर और अम्ल शिलाओं के साथ उत्तर ट्रायसिक युग की शिलाओं में पाया जाता है। यह जम्मू और उधमपुर जिलों में मिलता है।

उत्तर प्रदेश में गढ़वाल, अल्मोड़ा तथा नैनीताल में लगभग १ करोड़ टन के जमाव होने का अनुमान है। यहाँ हैमेटाइट और मैगनेटाइट दोनों ही प्रकार का अयस्क मिलता है।

हिमाचल प्रदेश में मण्डी क्षेत्र में लगभग १८ किलोमीटर लम्बाई में ६० मीटर

की गहराई तक ६ करोड़ टन लोहे के भण्डार हैं। यह अयस्क स्फटिक मैगनेटाइट किस्म का है। इसमें लोहांश ६४% तक पाया जाता है।

गुजरात में नवानगर, पोरबन्दर, जूनागढ, भावनगर, बड़ोदा और खाण्डेश्वर की खानों से लोहा निकाला जाता है।

आन्ध्र प्रदेश मे लोहे का खनन कृष्णा, कर्नूल, कुड्डप्पा, चित्तूर, गन्तूर तथा वारंगल जिले मे किया जाता है। आन्ध्र प्रदेश में लगभग ४० करोड़ टन जमाव होने के अनुमान लगाये गये हैं। ये खानें क्रमशः गन्तूर जिले में ओंगोल ग्रुप और नैलोर जिले मे कड्कर तालुका मे स्थित हैं। धातु का प्रतिशत ३३ से ३७ तक है।

महाराष्ट्र मे चन्द्रपुर जिले मे उत्तम श्रेणी के लोहे के पर्याप्त भण्डार हैं जिसमें धातु का अंश ६१ से ६७ प्रतिशत तक है। यहाँ लोहा अधिकतर लोहारा, रत्नागिरि और पीपलगाँव मे निकाला जाता है। लोहारा पहाडी ६० मीटर लम्बी और २० मीटर चौड़ी है। इसकी मोटाई ३६ मीटर है। पीपलगाँव के लोहा भण्डार अधिक बढ़िया श्रेणी के नहीं हैं।

पंजाब मे लोहे का जमाव एक ३½ किलोमीटर लम्बी पट्टी मे है जो पंजाब में महेन्द्रगढ जिले से होती हुई छपरा, अन्तरी और बिहारीपुर तक चली गयी है। इस पट्टी में २० लाख टन जमाव होने का अनुमान है। यह लोहा खनिज इस्पात बनाने के योग्य तो है किन्तु प्रचुर मात्रा मे नहीं है। यहाँ के अयस्क में लोहांश ५७% है। यह अयस्क पूर्व कैम्ब्रियन संगमरमर और शिष्ट शैलो के साथ पाया जाता है।

राजस्थान मे थोड़ा लोहा जयपुर, सीकर, अलवर, उदयपुर, बूंदी और भीलवाड़ा जिलो में भी मिलता है। उदयपुर जिले में नाथरा की पाल स्थान पर २० लाख टन बढ़िया किस्म के लोहे के जमाव पाये गये हैं जिनमे गन्धक और फॉसफोरस के अंशों का अभाव है। यहाँ लोहा पूर्व कैम्ब्रियन युग की रवेदार चट्टानो की नसों पाया जाता है।

गोआ में मध्यम श्रेणी का लोहा मिलता है।

लोहे के सुरक्षित भण्डार

भूगर्भशास्त्रियो का अनुमान है कि भारत मे उत्तम किस्म के (६७% 67% धातु वाले) लोहे के जमाव पर्याप्त मात्रा मे हैं। यद्यपि हमारे जमाव अन्य देशो की तुलना मे कम हैं किन्तु हमारे यहाँ की धातु मे गन्धक का अंश ० ६ प्रतिशत से अधिक नहीं होता अतएव ये जमाव उत्तरी अमरीका की मिनेसोटा, विस्कोसिन और मिशीगन की खानो से प्राप्त किये जाने वाले लोहे से अधिक उत्तम समझे जाते हैं। बिहार तथा उड़ीसा के जमाव ३०० करोड टन से अधिक के हैं।

भारतीय भूगर्भ-विभाग के अनुसार देश में विभिन्न प्रकार के अनुमानित (probable) भण्डार अग्र प्रकार हैं :

	अनुमानित भण्डार	
हैमेटाइट धातु	५३१	करोड़ टन
मैगनेटाइट धातु	९७	"
लिमोनाइट धातु	५०	"
योग	६७८	"

एक मोटे अनुमान के अनुसार भारत में विश्व के भण्डारों का एक-चौथाई
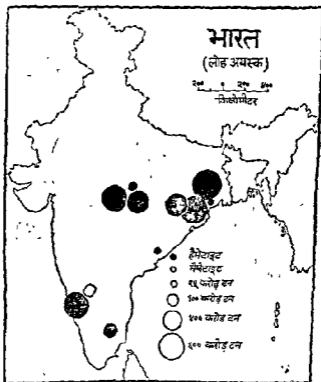
चित्र—१२·१

निहित है। भारत में सचय की मात्रा २,१६० करोड़ टन अनुमानित की गयी है। इसमें से ६०० करोड़ टन के संचित भण्डारों की सम्भावना सिद्ध हो चुकी है। लौह अयस्क के सबसे अधिक भण्डार बिहार के सिंहभूम जिले में पाये जाते हैं जहाँ भारत

के कुल सम्भावित संचित भण्डार का १७% निहित है। उड़ीसा की केंदुरक्षर खदान में १६% और कर्नाटक की बाबाबूदन खदान मे १५% भण्डार संचित हैं। उड़ीसा की बोनाई और मयूरभंज में कुल देश के भण्डारों का १२% पाया जाता है। इस प्रकार इन तीनों राज्यो मे कुल भण्डारों का ६०% निहित है। लगभग २६% भण्डार मध्य प्रदेश में हैं। शेष भण्डार तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गोआ और आन्ध्र प्रदेश में हैं।

विश्व के उत्पादन का लगभग ३% लोहा भारत से प्राप्त किया जाता है। १६५१ में लोहे का उत्पादन ३७ लाख मीट्रिक टन था, १६५५ में यह ४६ लाख टन; १६६१ में ११० लाख टन; १६६६ में २६७ लाख टन, १६७१ में ३३६ लाख टन और १६७२ में ३५२ लाख टन था।

उत्पादन एवं व्यापार

यद्यपि भारत मे सुरक्षित लोहा काफी मात्रा मे है किन्तु अभी तक इसका शोषण पूरी तरह नहीं किया जा सका है क्योंकि इस्पात बनाने के लिए कोक कोयले की कमी पायी जाती है। अतः अधिकांश लोहा निर्यात कर दिया जाता है। यह निर्यात मुख्यतः जापान, चैकोस्लोवाकिया, पश्चिमी जर्मनी, रूमानिया, इटली, यूगोस्लाविया, पोलैण्ड, बैल्जियम, हंगरी, आदि देशों को कलकत्ता, गोआ तथा विशाखापट्टनम बन्दरगाहों द्वारा होता है। १६६१-६२ मे १७ करोड़ रुपये का और १६७२-७३ में ११० करोड़ रुपये का लोहा निर्यात हुआ।

अब भारत और जापान के बीच लोहे का निर्यात व्यापार बढ़ाने के लिए एक व्यापारिक समझौता किया गया है जिसके अनुसार किरीबुरू क्षेत्र से २० लाख टन और बैलेडीला से ४० लाख टन लोहा जापान को निर्यात किया जायेगा। इस प्रकार सब मिलाकर वर्तमान निर्यात २० लाख टन+६० लाख टन+२० लाख टन अन्य देशों को=१०० लाख टन लोहा निर्यात होने लगेगा। घरेलू उद्योगों की माँग निर्यात की मात्रा सम्मिलित कर ३२० लाख टन की अनुमानित की गयी है। अतः लोहे का उत्पादन बैलेडीला, गोआ और किरीबुरू मे बढ़ाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

मैंगनीज
(MANGANESE)

मैंगनीज धातु प्रायः काले रंग की प्राकृतिक भस्मों के रूप मे धारवाड़ युग की परतदार शैलों मे पायी जाती है। यह खनिज ठोस तथा नरम और रवाहीन होता है। मैंगनीज भी लोहे की भाँति ही एक कड़ा प्रस्तर होता है। जिस लौह-प्रस्तर में ५% से कम मैंगनीज मिलता है वह लाहा कहलाता है और जिसमे ४०% से अधिक मैंगनीज होता है, वह मैंगनीज कहलाता है। जिस प्रस्तर मे लोहा और मैंगनीज दोनों ही अधिक होते हैं उसे मैंगनीज-लोहा अयस्क (Magniferous ore) कहते हैं।

इस धातु का मुख्य उपयोग इस्पात बनाने मे होता है इसके लिए लोहे और मैंगनीज का धातु मेल किया जाता है जिसे फैरो-मैंगनीज (Ferro-manganese)

कहते हैं। इसी धातु से पोटैशियम परमैंगनेट नामक लवण प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग कांच का रंग उड़ाने, रौगन और वार्निश को सुखाने तथा बिजली की बैटरियाँ बनाने में; ऑक्सीजन तथा क्लोरीन, आदि गैसों तथा ब्लीचिंग पाउडर बनाने में किया जाता है। रासायनिक उद्योगों में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

उत्पादन क्षेत्र

मैंगनीज खनिज का जमाव निम्न प्रकार की शिलाओं में पाया जाता है :

(१) मैंगनीजदार प्राचीन आग्नेय चट्टानों में कहीं-कहीं इस धातु की खनिज निविष्ट हो गयी है। इस प्रकार की खनिज आन्ध्र के गंजाम और श्रीकाकुलम तथा उड़ीसा के कोरापुट और गंजाम जिलों में पायी जाती है। फॉस्फोरस और लोहे का अंश अयस्क में अधिक होने से धातु मध्यम श्रेणी की होती है।

(२) प्राचीनकाल की परिवर्तित जलज चट्टानों की तहों में मैंगनीज की खनिज मिलती है। इन जलज चट्टानों में ताप और दबाव से मैंगनीज की खनिज कहीं-कहीं विशिष्ट हो गयी है। इस प्रकार के जमाव मध्य प्रदेश (बालाघाट, छिंदवाड़ा, सिऊनी, झाबुआ जिलों में); उड़ीसा (गंगपुर) और महाराष्ट्र (नागपुर, भण्डारा, नागपुर और छोटा उदयपुर जिले) में मिलते हैं।

(३) उपर्युक्त परिवर्तित शिलाओं के ऊपर और उनसे उत्पन्न जहाँ कहीं लैटेराइट शिलाएँ मिलती हैं उनमें मैंगनीज की खनिज पायी जाती है। यह खनिज कर्नाटक (चितलदुर्ग, चिकमगलूर, शिमोगा, काडूर, सन्दूर, बलारी तथा तुमकुर जिले में); मध्य प्रदेश (जबलपुर), बिहार (सिंहभूम और पटना), उड़ीसा (केंदुरझर, बोनाई और बोलंगिर जिले में) तथा महाराष्ट्र (रत्नागिरि) में पायी जाती है। अयस्क में लोहे का अंश अधिक होने से यह धातु निम्न श्रेणी की होती है।

भारत में मैंगनीज का मुख्य उत्पादक मध्य प्रदेश है। यहाँ यह बालाघाट, सिऊनी, छिंदवाड़ा, मांडला, बस्तर, बिलासपुर, जबलपुर, धार, झाबुआ और इन्दौर जिलों में मिलता है। देश के उत्पादन का लगभग २०% यहाँ से प्राप्त होता है।

मैंगनीज उत्पादन की दृष्टि से महाराष्ट्र का स्थान द्वितीय है। यहाँ यह बालाघाट, नागपुर, छोटा उदयपुर, भण्डारा, रत्नागिरि, उत्तरी कनारा और निजामाबाद जिलों में और गुजरात में बड़ौदा और पंचमहल जिलों में पाया जाता है। महाराष्ट्र से कुल उत्पादन का लगभग २१% प्राप्त होता है।

मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र दोनों राज्यों में कुल देश के जमावों के $\frac{3}{4}$ हैं। यहाँ २०५ किलोमीटर लम्बी और १६ किलोमीटर चौड़ी पट्टी दक्षिणी मध्य प्रदेश के बालाघाट और छिंदवाड़ा जिलों से लगाकर महाराष्ट्र के नागपुर और भण्डारा जिलों तक फैली है। इस पट्टी में १४ करोड़ टन के भण्डार संचित होने का अनुमान है।

उड़ीसा में मैंगनीज के उत्पादन के लिए गंगपुर, बोनाई, केंदुरझर, कोरापुट,

कालाहांडी, बोलगिरि, तलाक और तलचर की खानें उल्लेखनीय हैं। यहाँ से देश के उत्पादन का लगभग २५% निकाला जाता है।

बिहार राज्य में मैंगनीज सिंहभूम जिले में चौबासा में मिलता है।

आन्ध्र प्रदेश से देश के कुल उत्पादन का लगभग १५% मैंगनीज प्राप्त किया जाता है। विशाखापट्टनम, कड्डप्पा और श्रीकाकुलम जिले इसके प्रमुख उत्पादक
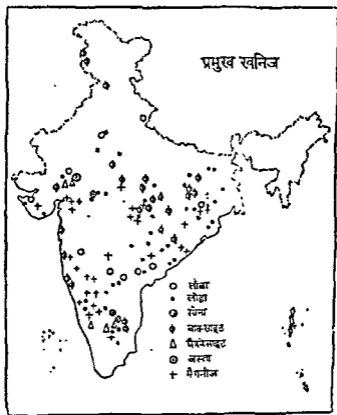
चित्र—१२·२

हैं। विशाखापट्टनम के निकट मैंगनीज की एक पहाड़ी लगभग ५०० मीटर लम्बे और ५० मीटर चौड़े क्षेत्र में फैली है। रायपुर-विशाखापट्टनम रेलमार्ग पर रामगुड़ा के निकट भी मैंगनीज मिलता है।

कर्नाटक में घटिया किस्म का मैंगनीज मिलता है। यहाँ यह चित्तलदुर्ग, कादूर, चिकमगलूर, शिमोगा, तुमकुर, बलारी और बेलगाँव जिलों में निकाला जाता है। कुल उत्पादन का यहाँ से लगभग ५% प्राप्त होता है।

भारत के सभी प्रमुख उत्पादन क्षेत्रों में अयस्क का खनन खुले हुए गड्ढों (Open cut) के रूप में किया जाता है। भूमिगत खनन विधियाँ केवल बालाघाट की कुछ ही खानों में काम में लायी जाती हैं। खुली हुई खानों से अयस्क निकालने के पूर्व निक्षेपों की मिट्टी को हटाया जाता है और फिर नियमित रूप से अयस्क निकाला जाता है। ये खानें भूमि तल से लगाकर पर्याप्त गहराई पर मिलती हैं। अयस्क चुनने का कार्य प्रायः हाथ से ही किया जाता है।

भारत में मैंगनीज खनिज में धातु का अंश ४७ से ५२ प्रतिशत तक पाया जाता है जबकि रूस में यह अंश ४५%, घाना में ४१ से ५०% और ब्राजील में ३१ से ५०% तक है। वस्तुतः भारत की खनिज उत्तम प्रकार की है। यही नहीं, यहाँ इस खनिज के जमाव भी अधिक हैं, भारत में मैंगनीज के सुरक्षित भण्डार २० करोड़ टन के हैं जिसमें से १६ करोड़ टन महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश को नागपुर-भण्डारा-बालाघाट मेखला में हैं। शेष राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार, उड़ीसा और आन्ध्र-प्रदेश में हैं। ये सामान्यतः २७० मीटर की गहराई पर पाये जाते हैं। गोवा में अनुमानित भण्डार १२·३ लाख टन के हैं। उच्चकोटि के कुल जमाव लगभग १·५ करोड़ टन के हैं।

विश्व में मैंगनीज उत्पादक देशों में भारत का स्थान रूस के बाद है। रूस से लगभग ७०% और भारत से २०% मैंगनीज प्राप्त होता है। अन्य उत्पादक दक्षिणी अफ्रीका, घाना, ब्राजील, क्यूबा, मैक्सिको और संयुक्त राज्य हैं।

१९५१ में १,३१९ हजार टन उत्पादन हुआ। १९५५ में १,६१५ हजार टन, १९६१ में १,२२४ हजार टन, १९६६ में १,७०७ हजार टन, १९७१ में १,७७९ हजार टन और १९७२ में १,६२६ उत्पादन हुआ।

भारत में मैंगनीज का निर्यात मुख्यतः फ्रांस, चैकोस्लोवाकिया, पश्चिमी जर्मनी, बेल्जियम, संयुक्त राज्य अमरीका, जापान और ब्रिटेन को होता है। यह निर्यात विशाखापट्टनम, कलकत्ता और बम्बई बन्दरगाहों द्वारा होता है। १९६१-६२ में १२ करोड़ रुपए और १९७२-७३ में ११ करोड़ रुपये का मैंगनीज निर्यात किया गया।

क्रोमाइट
(CHROMITE)

क्रोमियम की मुख्य उपज खनिज क्रोमाइट है जो लोहे के चुम्बक पत्थर के समान काले रंग की होती है। क्रोमाइट लोहे और क्रोमियम की भस्मों का सम्मेलन है। इस खनिज का रंग मटियाला काला होता है। क्रोमाइट खनिज से धातु और क्रोमियम और लोहे का धातु-मेल फेरो क्रोम बिजली की भट्टियों में शोधकर बनाया

जाता है। क्रोमाइट की ईंटें धातु शोधने की भट्टियों में अग्नि-प्रतिरोधक होने के कारण व्यवहृत की जाती हैं। क्रोमाइट का उपयोग चमड़ा सिझाने और रंगने में भी किया जाता है।

उत्पादक क्षेत्र

इसका सबसे अधिक उत्पादन कर्नाटक राज्य में होता है। यहाँ यह खनिज शिमोगा, चिण्डूबाली, चित्तलदुग, हसन और मैसूर जिलों में पाया जाता है। देश का लगभग ६५% क्रोमाइट यहीं से प्राप्त होता है। इस राज्य में उत्तम क्रोमाइट के भण्डार नुग्गीहल्ली, हसन और चित्तलदुग जिलों में स्थित हैं।

उड़ीसा में केन्दुझर, कटक, धेनकनाल, आदि जिलों से देश के उत्पादन का लगभग ३०% प्राप्त होता है। यहाँ सब मिलाकर लगभग ३½ लाख टन के भण्डार हैं।

बिहार में क्रोमाइट सिंहभूम जिले में चौबासा और सरायकेला में मिलता है।

महाराष्ट्र में क्रोमाइट रत्नागिरि और सावन्तवाड़ी जिलों में, तमिलनाडु में सलेम; आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा और खम्मामेत और कश्मीर में लद्दाख जिले में क्रोमाइट निकाला जाता है।

क्रोमाइट के कुल भण्डार ८० लाख टन के अनुमानित किये गये हैं। इसमें से लगभग २५ लाख टन उड़ीसा में, ६ लाख टन कर्नाटक, २ लाख टन तमिलनाडु और शेष महाराष्ट्र और बिहार में हैं।

उत्पादन एवं व्यापार

भारत में १९६१ में ६६ हजार टन क्रोमाइट का उत्पादन किया गया, १९६६ में ७७ हजार टन, १९७१ में २७३ हजार टन और १९७२ में २८८ हजार टन प्राप्त किया गया।

उत्पादन की प्रायः सारी मात्रा मद्रास और कलकत्ता बन्दरगाहों द्वारा ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जापान, नीदरलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमरीका को निर्यात कर दी जाती है।

टंगस्टन
(TUNGSTEN)

टंगस्टन की मुख्य खनिज वूलफ्राम है जो टंगस्टन और मैंगनीज की भस्मों का रासायनिक सम्मेलन है। इस खनिज को धमन भट्टी में शोध कर धातु निकाली जाती है। वूलफ्राम का रंग काला होता है और यह एक ओर से अधिक चमकदार होता है। यह अन्य धातु की खनिजों से अधिक भारी होती है। वूलफ्राम बिल्लौरी-पत्थर की धारियों में पाया जाता है। यह धारियाँ ग्रेनाइट नामक आग्नेय चट्टानों के पास की भूमि में पायी जाती हैं। कहीं-कहीं ऐसी धारियों के पास ही वूलफ्राम के कण नदियों की बालू में भी पाये जाते हैं।

टंगस्टन कठोर, भारी और ऊँचे द्रवणांक (३,३८२° सें०) वाली धातु है जिसका उपयोग मुख्यतः विद्युत लट्टुओं में किया जाता है। अत्यधिक कठोर होने के कारण इसका उपयोग उच्चगति इस्पातों को काटने वाले यन्त्रों में भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त विद्युत यन्त्रों, एक्सरे ट्यूब, फ्लूरोसेंट, प्रकाश वत्तियों, रडार, टेलीविजन यन्त्र, रेडियो, पारा संशोधकों, आदि के निर्माण में इसी का उपयोग किया जाता है। कुल टंगस्टन उत्पादन का लगभग ८५% केवल लौह-मिश्रित धातु (ferro-tungsten) के बनाने में होता है।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में यह बिहार राज्य के सिंहभूम जिले में कालीमाटी में; पश्चिमी बंगाल के बाँकुड़ा; महाराष्ट्र के नागपुर; मध्य प्रदेश के अगरगाँव और राजस्थान के जोधपुर में डीगाना में मिलता है। गुजरात में यह अहमदाबाद जिले के तेर और पल्लर स्थानों में और तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली जिले के कदावूर स्थान पर भी मिलता है।

१९७१ में २६,४२२ टन और ३२,३८० टन वूलफाम प्राप्त किया गया जिसका मूल्य क्रमशः १० लाख और १३ लाख रुपया था।

२. अणुशक्ति वाले खनिज
(ATOMIC MINERALS)

भारत में न केवल कोयले और खनिज तेल के भण्डार ही सीमित हैं वरन् वर्तमान गति से उपयोग में लाने पर भारत में जलशक्ति का भण्डार भी आगामी कुछ वर्षों में समाप्त हो जाने की सम्भावना वैज्ञानिकों द्वारा प्रकट की गयी है। अतः इस बात की आवश्यकता अनुभव की गयी है कि देश में अणुशक्ति वाले खनिजों का पता लगाकर उनका उपयोग किया जाय। अनुमान लगाया गया है कि १ पौंड यूरेनियम के विश्लेषण से इतनी विद्युत शक्ति प्रदान की जा सकती है जितनी २५ लाख पौण्ड कोयला जलाकर। स्पष्ट है कि अणुशक्ति वाले खनिजों द्वारा देश की शक्ति साधनों की समस्या हल की जा सकती है।

अणुशक्ति के विकास में जिन खनिजों की आवश्यकता पड़ती है वे क्रमशः ये हैं: (१) यूरेनियम, (२) थोरियम, (३) बेरीलियम, (४) जिरकन, (५) एण्टीमनी, (६) ग्रेफाइट।

यूरेनियम (Uranium) खनिज कई प्रकार की चट्टानों से प्राप्त की जाती है। भारत में यह खनिज गत ५० वर्षों से निकाला जाता था किन्तु इनमें द्वितीय युद्ध से पूर्व ही खनिज समाप्त हो गया। सन् १९४६ में इस खनिज के दो नये क्षेत्रों का पता लगाया गया। पहला क्षेत्र बिहार में सिंहभूम जिले के ताँबा क्षेत्र से सम्बद्ध है। यहाँ यूरेनियम की पट्टी ९७ किलोमीटर लम्बी है। दूसरा क्षेत्र राजस्थान में है।

भारत में इस खनिज की प्राप्ति चार स्रोतों से होती है—(१) धारवाड़ और आर्कियन चट्टानों से निम्न श्रेणी की धातु प्राप्त की जाती है (जैसे बिहार के सिंहभूम और मध्य राजस्थान में)। इन चट्टानों में यूरेनियम की मात्रा ० ०३ से ०·१ प्रतिशत तक होती है। साधारणतः हल्की श्रेणी वाली धातु १ टन चट्टान में ½ से २½ पौण्ड तक मिलती है।

(२) मिश्रित यूरेनियम पैगमेटाइट्स तथा अन्य चट्टानों से प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार की चट्टानों में यूरेनियम की मात्रा अधिक होती है (१० से ३० प्रतिशत तक) किन्तु ये चट्टानें अधिक नहीं मिलतीं। पैगमेटाइट्स चट्टानें उत्तरी बिहार के अभ्रक क्षेत्र, आन्ध्र प्रदेश में नेलोर और मध्य राजस्थान के अभ्रक क्षेत्रों से सम्बद्ध पायी जाती हैं। केरल प्रदेश में भी ऐसी चट्टानें मिलती हैं।

(३) केरल और तटीय भागों की मोनोजाइट नामक पीले रंग की बालू मिट्टी से भी यूरेनियम प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार की बालू मिट्टी कुमारी अन्तरीप तट के दोनों ओर १६१ किलोमीटर की लम्बाई तक पायी जाती है। यह मिट्टी समुद्री लहरों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप इकट्ठी हो जाती है। भारतीय मोनोजाइट विश्व की उत्तम श्रेणी की मोनोजाइट मानी जाती है। इसमें प्राय. ८ से १० प्रतिशत तक थोरियम ऑक्साइड और ०·२ से ०·४६% तक यूरेनियम मिलता है। इस खनिज के कण जिर्कन, चुम्बक पत्थर, इल्मेनाइट, गार्नेट, स्फटिक, इत्यादि अन्य खनिजों के कणों के साथ बालू में मिलते हैं। केरल राज्य के तटीय भागों में मोनोजाइट के २० लाख टन के भण्डार अनुमानित किये गये हैं।

(४) यूरेनियम का अन्य स्रोत चैरालाइट खनिज भी है। यह भी केरल की बालू में मिलता है। इसमें यूरेनियम की मात्रा ४ से ६% तथा थोरियम की मात्रा १६ से ३३% तक होती है। चैरालाइट से हजारों टन यूरेनियम प्राप्त हो सकता है।

यूरेनियम के नये भण्डार हिमालय क्षेत्र के निकटवर्ती हिमालय प्रदेश और उत्तर प्रदेश में मिले हैं। इन दोनों राज्यों में यह प्राचीन पैलिओजोइक चट्टानों में मिले हैं। उत्तर प्रदेश में ५,५०० मीटर की लम्बाई में देहरादून जिले में (बन्दल से झण्डापार) में पर्याप्त मात्रा में यूरेनियम प्राप्त होने का अनुमान है। हिमाचल प्रदेश में चिजरा से लगाकर धकिरपर तक ४५ किलोमीटर में नये क्षेत्र मिले हैं। इनके अतिरिक्त राजस्थान में कोल्हान, उदयपुर और ऊमरा के निकट, मध्य प्रदेश में गोड़वाना, सरगुजा और दुर्ग क्षेत्र में; बिहार में कुरमडीह, माटिन और बागजता-कन्यालुका क्षेत्र में; तमिलनाडु में लिगनाइट कोयला क्षेत्रों के निकट भी नये भण्डार मिले हैं।

डॉ० साराभाई के अनुसार सन् २००० तक देश को ४४,००० मेगावाट अणुशक्ति की आवश्यकता होगी जबकि देश में प्राप्त यूरेनियम भण्डार केवल १०,००० मेगावाट शक्ति के लिए ही पर्याप्त होंगे।

थोरियम (Thorium) अणुशक्ति के विकास के लिए दूसरा मुख्य खनिज है जो मोनोजाइट रेत में प्राप्त किया जाता है। केरल राज्य की बालू मिट्टी में मोनोजाइट ८ से १०½ और बिहार की रेत में १०% तक पाया जाता है जबकि ब्राजील और अन्य देशों के मोनोजाइट में ५ से ६% ही थोरियम पाया जाता है। यह नीलगिरि, हजारीबाग और उदयपुर जिलों में तथा पश्चिमी तटों के ग्रेनाइट क्षेत्रों में
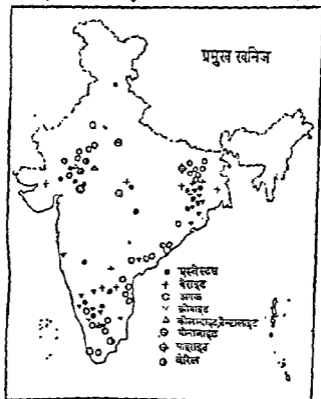
चित्र—१२·३

रवों के रूप में भी प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त यह समुद्री रेत में भी पूर्वी और पश्चिमी तटों पर मोनोजाइट नामक बालू मिट्टी से प्राप्त होता है। केरल राज्य में २० लाख टन मोनोजाइट के जमाव होने का अनुमान लगाया गया है। इनमें १.५ लाख से १.८ लाख टन थोरियम की मात्रा है। इल्मैनाइट नामक बालू मिट्टी कई क्षेत्रों में पायी जाती है। इसका विस्तार कुमारी अन्तरीप से लगाकर उत्तर में नर्मदा

नदी की इस्चुरी तक पश्चिम में और महानदी के तट से तिरुनलवेली तक पूर्वी तट पर है।

मोनोजाइट से सीरियम प्राप्त किया जाता है जो सिगरेट लाइटर्स में चिनगारी पैदा करने वाले पदार्थ बनाने में काम आता है। ट्रेसर-बुलेट्स की धुन्धियों, सर्चलाइट, अणु बम शक्ति तथा बनावटी बेंजीन बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है।

बेरीलियम (Beryllium) पदार्थ बेरील नामक खनिज से प्राप्त किया जाता है। यह देश के विभिन्न भागों में मिलने वाले पैगमेंटाइट्स से मिलता है। ऐसे पैगमेंटाइट्स अधिकांशतः अभ्रक क्षेत्रों में मिलते हैं। अतः राजस्थान, बिहार, आंध्र तथा तमिलनाडु में यह मिलता है। इसका वार्षिक उत्पादन १,००० टन का है। अब कश्मीर, सिक्किम, आंध्र, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु के अन्य भागों में भी इस खनिज की खोज की जा रही है। भारत में मिलने वाले बेरील में बेरीलियम का प्रतिशत ब्राज़ील, अर्जेन्टाइना, रोडेशिया, मैलेगासी और संयुक्त राज्य अमरीका की अपेक्षा अधिक है।

जिरकन (Zircon) खनिज केरल राज्य की बालू मिट्टी से प्राप्त किया जाता है। इससे जिरकोनिया निकाला जाता है जिसका उपयोग मिट्टी के बर्तन के उद्योग में, रेडियो-ट्यूबों में, गोला-बारूद बनाने में तथा बिजली में जोड़ लगाने के कार्यों में होता है।

सुरमा (Antimony) सफेद, रवेदार और सरलता से टूटने वाला पदार्थ है, यदि इसको रांगा, टिन या तांबे के साथ मिलाकर मिश्रणवाली धातु (alloy) बनायी जाये तो यह धातु को कड़ा बना देता है अतः इसका उपयोग बिजली की बैटरियों, नल, टाइप तथा गोला-बारूद में प्रयोग की जाने वाली धातुओं के साथ होता है। एण्टीमनी की सल्फाइड का उपयोग दियासलाई में और एण्टीमनी की ऑक्साइड का प्रयोग पिग्मेंट में होता है जो रंग-रोगन व्यवसाय में व्यवहृत होता है।

यह पंजाब के कांगड़ा जिले में लाहौल में मिलता है। मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में भी यह मिलता है।

ग्रेफाइट या लिखिज (Graphite) अधिकतर नीस शिलाओं से प्राप्त होता है। इसका उपयोग पेंसिल का सीसा, रंग-रोगन, चिकनाई के तेल, इत्यादि बनाने में होता है। यह ताप सोखने वाली धातु है अतः इससे धातु गलाने के पात्र भी बनाये जाते हैं। यह विभिन्न प्रकार की रवेदार और रूपान्तरित चट्टानों से प्राप्त किया जाता है।

इसके मुख्य उत्पादक क्षेत्र उड़ीसा में कालाहांडी, बोलंगिर, गंजाम और कोरापुट जिले हैं। आंध्र में वारंगल, पश्चिमी गोदावरी, विशाखापट्टनम और खम्मा-मेठ जिले; तमिलनाडु का तिरुनलवेली जिला, राजस्थान के जयपुर, किशनगढ़ और

अजमेर जिले; कर्नाटक का मैसूर जिला; उत्तर प्रदेश का अल्मोड़ा जिला; हरियाणा का गुड़गाँव जिला, मध्य प्रदेश का बेतूल जिला; बिहार का भागलपुर जिला; कश्मीर का उड़ी जिला और सिक्किम के सुबतांग क्षेत्र से ग्रेफाइट प्राप्त किया जाता है।

कुल उत्पादन का ५०% उड़ीसा से, २०% बिहार से, १८% आंध्र प्रदेश से होता है। १९७१ में ४,००० टन ग्रेफाइट की प्राप्ति की गयी।

३. अधातु खनिजें
(NON-METALLIC MINERALS)

अभ्रक
(MICA)

अभ्रक आग्नेय और परिवर्तित शिलाओं में सफेद या काले अभ्रक के छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में पाया जाता है। यह बड़े-बड़े टुकड़ों के रूप में भी निकाला जाता है जो साधारणतः ४ मीटर लम्बे और ३ मीटर तक मोटे होते हैं। सफेद अभ्रक के टुकड़े धारियों के रूप में बनी हुई पैग्मेटाइट नामक आग्नेय चट्टानों में ही मिलते हैं। सफेद अभ्रक को रूबी अभ्रक (Ruby mica) और हल्का गुलाबीपन लिए अभ्रक को बायोटाइट अभ्रक (Biotite mica) कहते हैं।

वर्तमान युग में अभ्रक का उपयोग अधिकतर बिजली के कारखानों में किया जाता है। प्राचीनकाल से ही अभ्रक का उपयोग दवाइयाँ बनाने, सजावट करने और आभूषणों में जड़ने के लिए किया जाता रहा है। सफेद और गुलाबी रंग का अभ्रक अपनी स्वच्छता, चमक, तड़क और बिजली तथा गर्मी के लिए अचालकता तथा पारदर्शकता गुणों के कारण छोटे-छोटे डाइनमो, बिजली की मोटरों के कम्यूटेटर, बेतार के तार, समुद्री विज्ञान, मोटर और हवाई यातायात, आदि में अधिक उपयोग में आता है। इसके अतिरिक्त अपनी स्वच्छता और पतली-पतली परतों में पृथक हो जाने की रुचि के कारण अभ्रक लालटेन की चिमनियों, नेत्र-रक्षक चश्मों, धमन भट्टियों में मुँह पर रोकने, मकानों की खिड़कियों, छतें डालने के सामान और सजावट के सुन्दर कागज तथा खपरैलों में मिलाने के काम में लाया जाता है। यह अग्नि-प्रतिरोधक पदार्थों के समान बॉयलरों के भीतर लगाने में भी काम आता है जिससे वे अधिक जल्दी ठण्डे नहीं होते। अभ्रक को काटते समय जो चूरा बच जाता है उसे स्प्रिट में मिलाकर पहले परत बना लेते हैं। इस उद्योग को माइकेनाइट उद्योग कहते हैं। माइकेनाइट की चादरें किसी भी आकार और मोटाई की बन सकती हैं। भाप से गर्म करके दबाकर घुमाने से वे किसी भी वांछित आकार में ढाली जा सकती हैं। इन उपयोगों से अभ्रक का औद्योगिक महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। युद्ध व सैनिक दृष्टिकोण से भी अभ्रक का महत्त्व अधिक है।

उत्पादक क्षेत्र

विश्व में अभ्रक उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का स्थान सर्वप्रमुख है। यहीं से विश्व के कुल उत्पादन का लगभग ८० प्रतिशत अच्छी किस्म का अभ्रक

प्राप्त होता है। निम्न प्रकार के अभ्रक से तैयार किये गये माइकेनाइट का ६०% भाग भी भारत से ही प्राप्त होता है। वैसे तो भारत में अभ्रक बिहार, आन्ध्र प्रदेश, केरल, कर्नाटक, राजस्थान, आदि राज्यों में मिलता है किन्तु व्यापारिक दृष्टि से प्रथम दो क्षेत्र ही मुख्य हैं।

भारत में अभ्रक के कुल उत्पादन का ६०% बिहार से; २५% राजस्थान और ३४% आन्ध्र प्रदेश से प्राप्त हुआ है। बिहार में ४,१६० वर्ग किलोमीटर, आन्ध्र में १,५५० वर्ग किलोमीटर और राजस्थान में ३,११० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में अभ्रक पाया जाता है।

बिहार राज्य में अभ्रक का क्षेत्र गया, हजारीबाग, भागलपुर, मुंगेर और सथाल परगना में फैला है। यह क्षेत्र १९ से २५ किलोमीटर चौड़ा और ९७ से १२९ किलोमीटर लम्बा है। यह क्षेत्र चम्पारन से आरम्भ होकर उत्तर-पूर्व की ओर हजारीबाग तथा गया जिले तक फैला है। यहाँ यह रवेदार चट्टानों की नसों में प्राप्त होता है जो ३० से ५०० मीटर मोटी हैं। इसका क्षेत्रफल लगभग ४,१६० वर्ग किलोमीटर है। अधिकतर अभ्रक की खानें कोडर्मा, गिरडीह, डोमाचन्च, चाकस, धाब, तिसरी, इत्यादि स्थानों पर हैं। ये सब खानें कोडर्मा के वनों में हैं। इस क्षेत्र से भारत का ६०% अभ्रक प्राप्त किया जाता है। इस क्षेत्र के अभ्रक को बंगाल माणिक अथवा बंगाल का लाल अभ्रक कहते हैं क्योंकि यहाँ के अभ्रक की परतों के समूह का रंग फीका लाल होता है। यह अभ्रक उत्तम श्रेणी का होता है अतः इसका उपयोग विद्युत उद्योग में बहुत होता है। यह अभ्रक कलकत्ता से ही विदेशों को निर्यात किया जाता है।

अभ्रक का दूसरा प्रसिद्ध क्षेत्र आंध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम, कृष्णा और नैलोर जिलों में है। यह क्षेत्र लगभग ९६ किलोमीटर लम्बा और २० से ३२ किलोमीटर चौड़ा है। यहाँ की प्रसिद्ध खानें कालीचेडू और तेलीबाडू हैं। ये खानें गडूर, कवाली, रायपुर और आत्मकुर में हैं। यह अभ्रक हरे रंग का होता है। अतः यहाँ का अभ्रक बिहार के अभ्रक से हल्का होता है। इसे विद्युत अभ्रक या हरा अभ्रक भी कहते हैं। यहाँ से कुल उत्पादन का १५% मिलता है।

राजस्थान अभ्रक उत्पादन में देश का तीसरा राज्य है। यहाँ अभ्रक का क्षेत्र उत्तर-पूर्व में जयपुर जिले से लगाकर दक्षिण-पश्चिम में उदयपुर जिले तक ३२० किलोमीटर की लम्बाई में तथा १०० किलोमीटर की चौड़ाई में फैला है। अभ्रक की प्राप्ति यहाँ उदयपुर (राजनगर) भीलवाड़ा (शाहपुरा, रायपुर), अजमेर (ब्यावर, केकड़ी), टोंक, अलवर, भरतपुर तथा डूंगरपुर में होती है। यहाँ का अभ्रक उत्तम किस्म का होता है जिसका रंग हल्का हरा और गुलाबी होता है। सबसे अधिक अभ्रक भीलवाड़ा जिले से प्राप्त होता है।

अभ्रक के अन्य उत्पादक क्षेत्र इस प्रकार हैं :

केरल—नम्पूर और पुन्नालूर में यह फ्लोगोपाइट किस्म का मिलता है।

बिहार में सिंहभूम और पालामाऊ जिले में।

उड़ीसा में धेनकनाल, सम्बलपुर, कोरापुट, कटक और गजम जिले में।

तमिलनाडु में सलेम और नीलगिरि जिले में।

कर्नाटक में हसन और मैसूर जिले में।

मध्य प्रदेश में बस्तर जिला में।

पश्चिमी बंगाल में बाँकुड़ा और मिदनापुर जिले में।

हरियाणा में नारनौल और गुड़गाँव जिले में।

इन प्रदेशों में चट्टानों के अनियमित विन्यास के कारण अभ्रक के भण्डार का यथोचित अनुमान लगाना कठिन है किन्तु ऐसा अवश्य अनुमान लगाया गया है कि अभी ऐसे भण्डार हैं जिन्हें अभी तक छुआ भी नहीं गया है तथा उनसे वर्तमान उत्पादन की दर से अनेक दशाब्दियों तक अभ्रक प्राप्त होता रहेगा।

उत्पादन एवं व्यापार

भारत में अभ्रक की घरेलू माँग कम है अतः उत्पादन का अधिकांश निर्यात कर दिया जाता है। यह निर्यात मुख्यतः कलकत्ता, बम्बई, विशाखापट्टनम और मद्रास बन्दरगाहों से होता है। अभ्रक के मुख्य खरीददार इंगलैण्ड, संयुक्त राज्य, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी, जापान, फ्रांस, नीदरलैण्ड्स, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, चीन, आदि हैं। कुल निर्यात का ७५% पहले दो देशों को जाता है। पिछले कई वर्षों से अभ्रक का निर्यात कम होता जा रहा है। इस ह्रास के ये कारण हैं . (१) ब्राजील के अभ्रक से भारत की स्पर्द्धा बढ़ रही है, जहाँ का अभ्रक भारत की अपेक्षा अधिक आधुनिक ढंग से निकाला जाता है। (२) परिवहन का खर्चा बढ़ता जा रहा है, अतः निर्यात लाभदायक नहीं हो रहा है। (३) उद्योगों में अभ्रक के छोटे-छोटे टुकड़ों का उपयोग माइकेनाइट में रूप में होने लगा है अतः भारतीय अभ्रक की माँग कम होती जा रही है। (४) विदेशों में अब कृत्रिम अभ्रक का उत्पादन बढ़ रहा है अतः प्राकृतिक अभ्रक की माँग कम हो जाना स्वाभाविक है।

१९६१ में २८·२ हजार टन, १९६६ में २१·७ हजार टन, १९७१ में १३·७ हजार टन और १९७२ में १३·७ हजार टन अभ्रक निकाला गया। १९६१-६२ में १६ करोड़ रुपये के मूल्य का अभ्रक निर्यात किया गया। १९७२-७३ में यह मूल्य १९·५ करोड़ रुपये का था।

नमक
(SALT)

नमक सोडियम क्लोराइड और क्लोरीन गैस का मिश्रण होता है। इसकी उत्पत्ति स्थान समुद्र अथवा खारी झीलों में होता है। नमक के उत्पादन का अधिकांश भाग खाद, रासायनिक पदार्थ, काँच, प्लास्टिक रंग, स्टार्च, आदि उद्योगों में प्रयुक्त होता है। नमक का उपयोग मछलियाँ सुखाने, माँस जमाने, चमड़ा रंगने, सोडा बनाने,

रंग को पक्का करने तथा ब्लीचिंग पाउडर बनाने में भी होता है। भोजन में तो बिना नमक के स्वाद ही व्यर्थ हो जाता है।

उत्पादन की अवस्थाएं

नमक बनाने के लिए कुछ आदर्श अवस्थाओं की आवश्यकता पड़ती है जिनमें मुख्य निम्न हैं :

(१) खारी जल मिलने की सुविधा अर्थात् समुद्रतटीय भागों में या देश के आन्तरिक क्षेत्रों में खारी जल की झीलों या कुओं का सानिध्य आवश्यक है।

(२) वर्षा का अभाव तथा शुष्क ऋतु की अनुकूलता।

(३) वेगवती पवनों और कड़ी धूप का होना।

(४) अधिक वाष्पीभवन क्रिया जिसके द्वारा नमकीन जल की क्यारियों से जल वाष्प बनकर उड़ सके।

उपर्युक्त अवस्थाएं मुख्य पाँच क्षेत्रों में पायी जाती हैं—(१) गुजरात का सौराष्ट्र तट; (२) महाराष्ट्र तट; (३) कोरोमण्डल तट का दक्षिणी भाग अर्थात् कुमारी अन्तरीप और नागापट्टम के बीच के क्षेत्र; (४) उत्तरी आंध्र तट, नैलोर और गोपालपुर के मध्यवर्ती क्षेत्र; और (५) आन्तरिक क्षेत्रों में साभर, पचभद्रा, डीडवाना, आदि खारी जल की झीलें।

सौराष्ट्र में नमक के कारखाने इन अनुकूल परिस्थितियों में हैं। वे औसतन २०० मीट्रिक टन नमक प्रति हैक्टेअर तैयार कर सकते हैं और वर्षा में लगभग २५० मीट्रिक टन प्रति हैक्टेअर जबकि राष्ट्रीय औसत उत्पादन ७५ मीट्रिक टन प्रति हैक्टेअर है।

नमक प्राप्ति के स्रोत

(१) समुद्र नमक का सबसे बड़ा भण्डार है। यह व्यापक स्रोत समुद्री तट वाले क्षेत्रों को ही प्राप्त है। भारत की तटरेखा ५,७०० किलोमीटर लम्बी होने से यह विशेष लाभ प्राप्त है। देश में नमक के कुल उत्पादन का लगभग $\frac{3}{4}$ भाग गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश के तटीय क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है।

(२) नमकीन जल की आन्तरिक झीलों के अन्तर्गत राजस्थान की साभर झील बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ नमकीन जल को वाष्पीकृत कर नमक प्राप्त किया जाता है।

(३) भूमि के नीचे मिलने वाला लवण-जल का सबसे बड़ा स्रोत कच्छ का रण है जहाँ पर नमक बनाने के कई कारखाने स्थित हैं। राजस्थान (भरतपुर) और तमिलनाडु में भी अधोभूमि लवण जल से काफी मात्रा में नमक तैयार किया जाता है।

(४) खनिज नमक जो विशेष प्रकार की चट्टानों से प्राप्त किया जाता है। नमक की चट्टानें कई सौ मीटर मोटी होती हैं।

नमक बनाने के तरीके

नमक बनाने के लिए निम्न ढंग काम में लाये जाते हैं :

(१) सौर वाष्पीकरण—समुद्री जल, नमकीन झीलों और अधोभूमि के लवण-जल में से और वाष्पीकरण द्वारा तरल पदार्थों का अंश निकाला जाता है। (२) खुले बर्तन द्वारा वाष्पीकरण—खुले बरतन में रखे हुए लवण-जल में से अग्नि और वाष्प के द्वारा नमी का अंश निकालकर नमक प्राप्त किया जाता है। (३) निर्वात पात्र द्वारा वाष्पीकरण—लवण-जल में तरल पदार्थ का अंश बहुविध प्रभाव वाले वाष्पक यन्त्रों द्वारा नमक निकाला जाता है। (४) बर्फ जमाकर—पहले समुद्री जल को इतना ठण्डा किया जाता है कि वह बर्फ बन जाय फिर घनीभूत करके लवण-जल को अलग कर लिया जाता है। फिर नमक प्राप्त करने के लिए इस जल को वाष्प में परिवर्तित किया जाता है। (५) खनन द्वारा—चट्टानों से नमक खोदकर।

भारत में चट्टानों से सेंधा नमक हिमाचल प्रदेश की मण्डी की खान से प्राप्त किया जाता है।

गुजरात में मिथापुर में टाटा कैमिकल्स द्वारा चौगुने प्रभाव वाले वाष्पक यन्त्रों द्वारा सीमित मात्रा में अच्छे किस्म का नमक तैयार किया जाता है।

देश के अन्य भागों में लवण-जल के वाष्पीकरण से नमक बनाया जाता है।

मोटे तौर पर भारत के नमक का ७५% भाग समुद्री नमक के कारखानों द्वारा सौर-वाष्पीकरण के तरीके से ही तैयार किया जाता है।

उत्पादन क्षेत्र

सामुद्रिक नमक के स्रोत—पश्चिमी तट पर नमक बनाने के प्रमुख क्षेत्र कच्छ की खाड़ी, सौराष्ट्र से सूरत तथा बम्बई से मंगलौर तक के तटीय प्रदेश में हैं। इस क्षेत्र के अधिकांश कारखाने बम्बई नगर में ४८ किलोमीटर के भीतर स्थित हैं[1] और शेष केन्द्र उत्तर में सूरत से लगाकर दक्षिण में मंगलौर तक फैले हैं। इस तट पर

1 नमक के कारखाने ऐसे स्थानों पर स्थापित किये गये हैं जो समुद्र के ज्वार-भाटे के तल से नीचे हों। ऐसे स्थानों के चारों ओर एक पक्का मजबूत बाँध बना दिया जाता है। इस घेरे में बाहरी तथा भीतरी जल भण्डार होते हैं तथा नमक बनाने का बड़ा हौज होता है। ज्वार-भाटा के समय जब जल ऊँचा उठता है तो बाहरी जल भण्डार भर जाता है। उसका जल भीतरी भण्डार में जाता है और यहाँ से यह जल हौजों में भेजा जाता है और सूर्य के ताप में सुखाया जाता है। जब इस जल में से चूने के सल्फेट और कार्बोनेट नामक लवणों का अवक्षेपन हो चुकता है तो शेष नमकीन जल को कढ़ाइयों में भर कर उसमें से नमक निकाला जाता है। यहाँ नमक बनाने के हौज मिट्टी से लिपे रहते हैं अतः यहाँ का नमक कुछ मटमैला होता है।

नमक बनाने का कार्य जनवरी से जून तक होता है। कुल उत्पत्ति का केवल २५% ही इन राज्यों में खपता है, बाकी नमक मध्य प्रदेश और दक्षिण भारत के राज्यों को भेज दिया जाता है।

सौराष्ट्र तथा कच्छ के तटों से भी अधिक मात्रा में नमक प्राप्त किया जाता है। मुख्य उत्पादक केन्द्र सौराष्ट्र में मीठापुर, मोरवी में सजनपुर, जामनगर में बेदी, धारंगध्रा में कुडू और पोरबन्दर, जूनागढ़ में वेरई, चीक तथा वेरावल, जंजीरा में जाफराबाद, भावनगर तथा कच्छ में कांडला, जखबान, बहीगाम, बजाना, खारगोधा और खभात की खाड़ी के पूर्व में मंडप, भोयन्दर, ऊरल, धरसाना और दरबावा में स्थित हैं। यहाँ की भूमि में से खारी जल ५ मीटर से ६ मीटर तक नीचे और ३ मीटर चौड़े कुएँ खोदकर निकाला जाता है। यहाँ नमक नवम्बर से अप्रैल तक बनाया जाता है। केरल में १४ से भी अधिक स्थानों पर नमक बनाया जाता है। ये केन्द्र मुख्यत. कन्याकुमारी के निकट हैं।

धारंगध्रा, पोरबन्दर और द्वारका में क्षार प्राप्त करने तथा खारगोधा में मैग्नीशियम क्लोराइड प्राप्त करने के कारखाने हैं।

पूर्वी तट पर तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश में समुद्र के तटीय भागों में नमक तैयार किया जाता है। कुल उत्पत्ति का ६० प्रतिशत सरकारी कारखानों और शेष गैर-सरकारी कारखानों के द्वारा प्राप्त किया जाता है। सम्पूर्ण तट की २,५७५ किलोमीटर लम्बाई तक नमक बनाया जाता है।[1] इस प्रकार तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश में गंजाम से लगाकर तूतीकोरन तक नमक तैयार किया जाता है। इस तट पर नमक बनाने वाले केन्द्र नानपदा, पेनुगुडूरू, मद्रास, कडुडालोर, आदिरापटनम, तूतीकोरन और नागापट्टम हैं। भारतीय नमक का लगभग २५ प्रतिशत भाग यहाँ से प्राप्त होता है। कुल उत्पत्ति का ८५ प्रतिशत तो राज्य में ही व्यवहृत हो जाता है। शेष मध्य प्रदेश, उड़ीसा, कर्नाटक और पश्चिमी बंगाल को निर्यात कर दिया जाता है।

उड़ीसा में समुद्री जल से नमक का उत्पादन गंजाम तथा बालासोर जिलों के तटीय भागों में किया जाता है। चिल्का झील से भी नमक प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

पश्चिमी बंगाल के तटीय भागों में समुद्री नमक बनाने के प्रयास किये गये हैं किन्तु यह अस्वास्थ्यकर जलवायु, वर्षा की अधिकता, गंगा के ताजे जल के

[1] यहाँ नमक बनाने का ढंग वही है जो गुजरात में है। उत्तर के जिलों में—गंजाम के कृष्णा जिले तक—नमक जनवरी-फरवरी से लेकर जून-जुलाई के अन्त तक बनाया जाता है। बीच के जिलों में—कृष्णा जिले में चिंगलपुट तक—मार्च-अप्रैल से अगस्त-सितम्बर तक नमक तैयार किया जाता है किन्तु धुर दक्षिण में—चिंगलपुट से मालाबार तट के भागों तक—नमक मार्च अप्रैल से लगाकर अक्टूबर-नवम्बर तक तैयार किया जाता है।

सामुद्रिक खारी जल से सम्मिश्रण होते रहने तथा तट के निकट के जल में खारी-पन होने के कारण और कोयले आदि के लाने की कठिनाइयों के कारण यहाँ नमक बनाने का व्यवसाय पूर्ण रूप से विकसित नहीं होने पाया है। मिदनापुर के निकट सूर्यताप द्वारा नमकीन जल को सुखाकर नमक बनाने की काफी सम्भावनाएँ मौजूद हैं। यहाँ कोण्टाई तट पर नमक बनाया जाता है। बंगाल अपने उपभोग के लिए नमक *अदन, पोर्ट सईद और लालसागर के अन्य बन्दरगाहों तथा तमिलनाडु से* प्राप्त करता है।

खारी झीलों से प्राप्त नमक के क्षेत्र

झीलों तथा खारी जल से नमक कच्छ के तट से पश्चिमी राजस्थान तक फैली
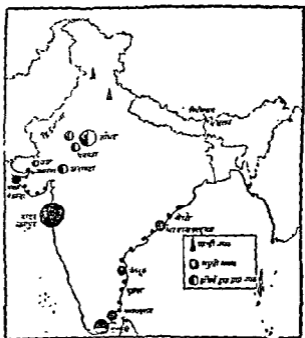
चित्र—१२·४

विस्तृत मरुभूमि में ही अधिक बनाया जाता है। राजस्थान के सांभर, डीडवाना और पचभद्रा नामक खारी झीलें हैं। राजस्थान की खारी भूमि तथा झीलों के नमक की उत्पत्ति के विषय में भूगर्भवेत्ताओं (श्री हॉलैण्ड तथा श्री क्रिस्त) का विचार है, कि अरब सागर की ओर से कच्छ के रण पर होती हुई जो पवनें ग्रीष्म ऋतु में

राजस्थान में चलती रहती रहती हैं उनके साथ कच्छ की खाडी से नमक के छोटे-छोटे कण चले आते हैं। राजस्थान तक पहुंचते-पहुंचते इन पवनों की चाल धीमी हो जाती है जिसके कारण ये नमक के कणों को आगे नहीं ले जा सकती और कण सतह पर गिर जाते हैं और इस भाग की छोटी-छोटी नदियों (मेंढ़ा, रूपनगर, खारी और खण्डेल) द्वारा बहाकर वर्षा ऋतु में सांभर जैसी झीलों में एकत्र कर दिया जाता है। यही कारण है कि यद्यपि सांभर झील छोटी-सी है किन्तु वर्षा ऋतु में इसका जल २३० वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में फैल जाता है। सांभर झील के तल की मिट्टी मे कम से कम ४ मीटर तक ५% के हिसाब से नमक का अंश है। इस झील के नमक का परिमाण डॉ० फाइस्ट द्वारा लगभग ५ करोड़ टन होने का कूता गया है। जब सांभर झील का जल मार्च-अप्रैल में सूख जाता है तो झील की मिट्टी के ऊपर नमक जम जाता है। झील में झपोग स्थान पर एक बांध बनाया गया है जिसमे पम्प द्वारा झील का जल पहुंचा दिया जाता है। इस बड़े हौज से नमकीन जल छोटे-छोटे हौजों और क्यारियों मे पहुँचाया जाता है। इन क्यारियों में धूप द्वारा वाष्पीकरण होता है। नवम्बर में ये क्यारियाँ नमकीन जल से भरी जाती हैं और अप्रैल-मई तक निर्धारित नमक को एकत्रित कर लिया जाता है। जो कटु नमक शेष रहता है उसे अलग इकट्ठा कर लेते हैं। इस कटु नमक में लगभग ६६% साधारण नमक, २५% सोडियम सल्फेट और ८% सोडियम कार्बोनेट होता है।

डॉ० डनोक्लीफ की गवेषणानुसार सांभर झील भारत मे नमक का सबसे बड़ा स्रोत है। सांभर का नमक राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली और मध्य प्रदेश में खपता है।

इस झील के अतिरिक्त राजस्थान में कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ पृथ्वी के नीचे बहने वाला नमकीन जल निकालकर उसे सुखाकर नमक बनाया जाता है। पचभद्रा मे ३१ मीटर लम्बे तथा ३½ मीटर गहरे और १५ से १८ मीटर चौड़े कुएँ बनाकर नमक बनाया जाता है। डीडवाना की झील से सोडियम सल्फेट प्राप्त किया जाता है। सांभर में नमक बनाने का कार्य हिन्दुस्तान नमक कम्पनी तथा पचभद्रा और डीडवाना मे राजस्थान सरकार द्वारा किया जाता है।

सेंधा नमक (Rock Salt)

यह नमक हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिलो में द्रांग और गूमा की खानों से निकाला जाता है किन्तु इसका रंग कुछ गहरा आसमानी-सा होता है और इसमे २५% अशुद्धि रहती है। गूमा के नमक का एक निक्षेप १५० फीट से भी अधिक मोटा है किन्तु इसमें १०–१५% सिलीका बालू मिली है, अतः यह मनुष्य के लिए उपयुक्त नहीं है किन्तु पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं। द्रांग में नमकीन जल के अनेक बड़े झरने हैं, यहाँ नमक के इन घोलो को वाष्पीकृत कर उत्तम श्रेणी का नमक प्राप्त किया जाता है। यहाँ ८० लाख टन के जमाव अनुमानित किये गये हैं। १९७१ में ३,८४५ हजार टन और १९७२ मे ४,२५२ हजार टन चट्टानी नमक प्राप्त हुआ।

उत्पादन एवं व्यापार

नमक के उत्पादन की मात्रा १९५१, १९५६, १९६१, १९६६ और १९७१ में क्रमशः २७१, ३३, ३५, ४५ और ४८ लाख टन थी।

भारत में नमक का अधिकतर उपयोग मानुषी और अमानुषी उपयोग में होता है : कुल का ५६ प्रतिशत; जबकि रासायनिक उद्योगों में केवल १२ प्रतिशत; निर्यात में १० प्रतिशत और विविध कार्यों में १२ प्रतिशत उपयोग होता है।

भारत से प्रतिवर्ष लगभग ३ लाख मीट्रिक टन नमक विदेशों को निर्यात किया जाता है। यह निर्यात मुख्यत. जापान, नेपाल, मलयेशिया, श्रीलंका, इण्डोनेशिया, पूर्वी अफ्रीका और बंगला देश को होता है। १९५०-५१ में ८६ लाख रुपये और १९७२-७३ में १२५ लाख रुपये के मूल्य का नमक भारत से निर्यात किया गया।

थोड़ी मात्रा में चट्टानी नमक पश्चिमी पाकिस्तान, अदन और मिस्र से आयात भी किया जाता है।

हरसौंठ या गोदंति
(GYPSUM)

यह एक खनिज पदार्थ की तहदार किस्म है जो अपने रवेले रूप में सेलेनाइट कहलाती है। यह खनिज विशेषतः ऊसर भूमि और शुष्क भागों में बहुत होती है। इसका उपयोग खेतों में खाद देने में तथा चूना मिलाकर प्लास्टर-ऑफ पेरिस, रंग, रोगन तथा रासायनिक पदार्थों में किया जाता है।

उत्पादन क्षेत्र

यह खनिज जो क्षेत्रों से प्राप्त होता है, भारत के कुल उत्पादन का लगभग ६० प्रतिशत अकेले राजस्थान में निकाला जाता है। यहाँ इसके प्रमुख उत्पादक जोधपुर जिले में नागौर, बाड़मेर जिले में मधुपुर तथा बीकानेर जिले में जमसर हैं। जोधपुर जिले में यह अधिकतर मगलोद, काराम, उत्तरलाई, ढाकोरिया, नुनानी, मिलमवासी, बादवासी और मनौना की खानों से तथा बीकानेर में जामसर, मियासर, हरकासर, पुगाल की खानों से निकाला जाता है। राजस्थान में इसके अनुमानित भण्डार ११३ करोड़ टन के हैं। राजस्थान का हरसौंठ बिहार के सिन्द्री कारखाने को भेज दिया जाता है।

दूसरा क्षेत्र तमिलनाडु में है। यहाँ तिरुचिरापल्ली, कोयम्बटूर और रामनाथापुरम् जिलों में हरसौंठ निकाला जाता है। यहाँ यह ५५ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में पाया जाता है। यहाँ १·५ करोड़ टन के भण्डार संचित हैं।

इन दोनों क्षेत्रों के अतिरिक्त हरसौंठ की प्राप्ति उत्तर प्रदेश (देहरादून, झांसी, हमीरपुर, गढ़वाल और टेहरी जिले), कश्मीर (पुर्री स्थान से), मध्य प्रदेश (रीवाँ जिला), हिमाचल प्रदेश (शिमला पहाड़ियाँ) तथा गुजरात (नवानगर,

भावनगर, पोरबन्दर और कच्छ क्षेत्र में उमारसर क्षेत्र में), आन्ध्र प्रदेश में मन्नूर और नेलोर जिले से की जाती है।

भारत में जिप्सम के अनुमानित भण्डार ११४ करोड़ टन के है।

उत्पादन एवं व्यापार

सेलखड़ी का उत्पादन १६५१, १६५६, १६६१ और १६६६ में क्रमशः २०७, ७०१, ८६५ और १,२६३ हजार टन था। १६७१ में उत्पादन १,०८८ हजार टन और १६२७२ में १,०७६ हजार टन था।

हीरा
(DIAMOND)

अत्यन्त प्राचीनकाल से ही भारत हीरों के लिए जगत प्रसिद्ध रहा है। यहाँ मध्यवर्ती प्रदेश से लगाकर दक्षिण में पेनार नदी के बीच का भाग हीरो के लिए प्रसिद्ध था। इस समय हीरकमय क्षेत्र तीन भागों मे विभाजित किये जाते हैं :

(१) मध्य भारतीय क्षेत्र उपज की दृष्टि से तीन क्षेत्रों मे सबसे अधिक मूल्यवान है। इस क्षेत्र के मुख्य उत्पादक मतना जिले मे भजगवाँ; पन्ना जिले में पन्ना और हीनोता तथा छतरपुर जिले मे अंगोर हैं। इसी क्षेत्र से कुल उत्पादन प्राप्त होता है। यह क्षेत्र लगभग ६७ किलोमीटर लम्बा और १६ किलोमीटर चौडा है। कोहनूर, महान मुगल, पिट, ओरलोफ, आदि प्रसिद्ध हीरे इसी क्षेत्र से प्राप्त हुए है।

(२) दक्षिणी क्षेत्र में हीरकमय प्रस्तर आन्ध्र प्रदेश के कडुप्पा, अनन्तपुर (वज्रकरूर), कर्नूल, कृष्णा, गुण्टूर एव गोदावरी जिलों मे फैला हुआ है। स्थान-स्थान पर खोदकर इनमे से हीरे निकाले जाते है। इससे उत्पन्न बजरी और मिट्टी भी हीरकमय होती है और इसी से इन जिलो की नदियो की घाटियों की मिट्टी और बजरी में बहुधा हीरे देखने में आते हैं।

(३) पूर्वी क्षेत्र महानदी की घाटी में है तथा इसमे मुख्य उत्पादन केन्द्र सम्बलपुर और चन्द्रपुर जिले मे (वैरागढ़) है। यद्यपि यहाँ नदी की बालू और बजरी अनेक स्थानों पर हीरकमय पायी गयी है फिर भी स्थानीय विन्ध्य शैल श्रेणी और कर्नूल श्रेणी के किसी स्तर पर हीरे नहीं पाये गये। इन स्थानों की बजरी को धोने से हीरा और अन्य बहुमूल्य पदार्थ यथाशक्ति प्राप्त होता है।

उत्पादन एवं व्यापार

१६६१ में उत्पादन १,३०६ कैरट का हुआ जिसका मूल्य ३·५७ लाख रुपया था। १६६६ मे उत्पादन २,०८३ कैरट, १६७१ में १६,३८३ और १६७२ में १६,६४४ कैरट था जिसका मूल्य क्रमशः १० लाख, ७४४ और ८४६ लाख रुपया था।

घीया पत्थर या सेलखड़ी
(STEATITE, SOAPSTONE OR POTSTONE)

यह टाल्क नामक खनिज की एक स्वच्छ किस्म है। टाल्क अभ्रक के समान परतदार तथा सफेद होता है किन्तु यह अभ्रक से बहुत नर्म और चिकना होता है

यह खनिज अधिकांशतः मैग्नेशिया, सिलीका और जल का सम्मिश्रण होता है और मैग्नेशियमदार परिवर्तित चट्टानों में पाया जाता है। इसका उपयोग बर्तन, प्याले बनाने तथा खुदाई के कार्य के लिए और मेजों के ऊपरी भाग, स्नानगृह और गैस के चूल्हे बनाने में होता है। कच्ची दालों में कीड़ों से बचाने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। मुँह पर लगाने के पाउडर बनाने में भी उत्तम प्रकार की सेलखड़ी का प्रयोग किया जाता है।

उत्पादन क्षेत्र

सेलखड़ी के मुख्य जमाव राजस्थान में जयपुर जिले में डोंगेथा, बिसगढ़ और मोरा-भण्डारी नामक स्थानों पर है जो दोसा स्टेशन से बाहर भेजी जाती है। अजमेर (ब्यावर) और अलवर जिलों (झीरी के निकट) और उदयपुर जिले में रिखबदेव और भीलवाड़ा जिले में मिलती है।

गुजरात में ईडर में देवमोरी के पास सेलखड़ी मिलती है। यहाँ के जमाव २० लाख टन के आँके गये है। यहाँ सेलखड़ी की तह १·६ किलोमीटर लम्बी और ६१ मीटर मोटी है।

मध्य प्रदेश में नर्मदा नदी की घाटी में गोदावरी, लालपुर और घरवारा में सेलखड़ी मिलती है। भेड़ाघाट और कपोड़ से भी यह प्राप्त होती है।

बिहार के सिंहभूम जिले में अच्छी सेलखड़ी मिलती है। अभी बिहार में टाल्क मैग्नेसाइट शिलाओं के ६० लाख टन के जमाव सिंहभूम जिले में पत्थर-पहाड़ में पाये गये हैं। यह शिलाएँ ३५० मीटर लम्बे और १८० मीटर चौड़े क्षेत्र में राची से लगा कर मिदनापुर तक फैली हैं।

तमिलनाडु राज्य में सेलखड़ी की प्राप्ति सलेम; कर्नाटक में बलारी तथा आंध्र में कर्नूल, कड्डप्पा, वारगल, अनन्तपुर और नैलोर जिले में होती है। उत्तर प्रदेश के हमीरपुर और झांसी जिलों में भी सेलखड़ी निकाली जाती है।

उत्पादन एवं व्यापार

१९६१ में उत्पादन ९२,८६६ टन और मूल्य २८ २३ लाख रुपया था। १९६६ में सेलखड़ी का उत्पादन 1,४७ ००० टन का हुआ जिसका मूल्य ४२ लाख रुपया था। १९७२ में इसका उत्पादन १,८५,००० टन और मूल्य ५७ लाख रुपया था।

४. अलोह-धातुएँ (NON-FERROUS MINERALS)

तांबा (COPPER)

प्रकृति में तांबा कई क्षेत्रों में अपने शुद्ध रूप में और कई क्षेत्रों में अन्य पदार्थों के साथ मिला पाया जाता है। यह अधिकतर आग्नेय और परिवर्तित शिलाओं

की नसों से प्राप्त होता है। कच्चे खनिज में धातु का अंश ३ से ६ प्रतिशत तक रहता है। इसका रंग लाल-भूरा होता है। तांबा बहुत ही लचीला और बिजली का उत्तम सुचालक होने के कारण कई प्रयोगों में लाया जाता है। सामान्यतः तांबे की कुल मात्रा का ४०% बिजली के यन्त्रों, १५% तारों और ४५% अन्य धातुओं के साथ मिलाकर रासायनिक कार्यों के लिए किया जाता है।

उत्पादन क्षेत्र

डॉ० वाल के अनुसार भारत में तांबा अनेक प्रकार की चट्टानों में नसों के रूप में मिलता है। दक्षिणी प्रायद्वीप में कड्डप्पा, बिजावर तथा अरावली युग की प्राचीन रवेदार चट्टानों में और उत्तरी भारत में परिवर्तित चट्टानों में बहुधा सल्फाइड के रूप में पाया जाता है।

भूगर्भिक दृष्टि से भारत में तांबे के तीन मुख्य क्षेत्र हैं: एक बिहार में, दूसरा आन्ध्र प्रदेश में और तीसरा राजस्थान में।

तांबे की नई खोजें उत्तर प्रदेश, राजस्थान और आन्ध्र प्रदेश में की गयी हैं। हिमालय की बाहरी श्रेणी के कुल्लू, कांगड़ा, नेपाल, भूटान और सिक्किम क्षेत्रों में भी तांबे के विस्तृत भण्डार हैं किन्तु यातायात की असुविधा के कारण तथा खपत के केन्द्रों से दूर होने से इनमें खान खोदने के उद्यम ने विशेष प्रगति नहीं की है। भारत में तांबे की अयस के भण्डार ३४·६ टन के अनुमानित किये गये हैं जिसमें औसत ०·८ प्रतिशत तांबा है।

बिहार की महत्वपूर्ण खानें सिंहभूम जिले में हैं। इनमें २ २६ करोड़ टन तांबा होने का अनुमान है। इस खनिज में ०·८% तांबा होता है। यहाँ तांबे का मुख्य क्षेत्र बिहार-उड़ीसा में लगभग १३० किलोमीटर लम्बी पेटी में है जो दुआरपरम से आरम्भ होकर डालभूम के सरायकेला, खरसांवा, आदि स्थानों को पार करती हुई राखा और मोसाबानी होती हुई दक्षिण-पूर्व दिशा में बिहार गया में समाप्त होती है। यहाँ की मुख्य खनिज सोनामाखी है। इसके साथ तांबा, लोहा और निकिल के गन्धकदार मिश्रण भी मिलते हैं। यहाँ खनिज परिवर्तित शिलाओं में अनियमित रूप से मिलती है। तांबे की इन नसों की औसत मोटाई २ से ३ सेण्टीमीटर तक है किन्तु कुछ विशेष नसें ६ मीटर तक मोटी हैं। अधिकतर खनिज के कण इस प्रकार बिखरे मिलते हैं कि उनका निकालना निरर्थक होता है। जहाँ तांबे की खानें निविष्ट हो गयी हैं (जैसे, माटीगरा और मोसाबानी में) वहाँ से खानें स्थापित करके निकाली जा रही हैं। इस क्षेत्र में तांबे की अधिक लाभदायक और प्रसिद्ध खान मोसाबानी, धोबानी और राखा हैं। यहाँ औसतन १२ से १८ सेण्टीमीटर मोटी तांबे की नसें हैं। यहाँ तांबा निकालने का कार्य सन् १९२४ से इण्डियन कॉपर कॉरपोरेशन कम्पनी कर रही है। इस कम्पनी की मुख्य खानें और कारखाना घाटशिला नामक स्थान के निकट हैं। यहाँ लगभग ७२१ मीटर की गहराई पर कार्य हो रहा है। यहाँ का वार्षिक उत्पादन लगभग ९,६०० टन का होता है। घाटशिला के निकट ही भौमण्डार

में कम्पनी का तांबे के खनिजों को शोधने के लिए कारखाना सन् १९३० में स्थापित किया गया जहाँ उपर्युक्त खानों में तांबा निकालकर रस्से के मार्ग द्वारा लाया जाता है। यहाँ तांबे के सकेन्द्रण, विद्रावक, शोधक और प्रेषण सयन्त्र हैं। यहाँ तांबे की चादरें बनायी जाती हैं।
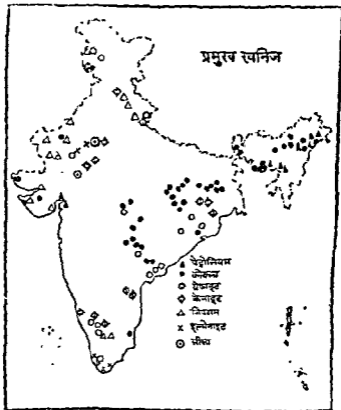
चित्र—१२'५

बिहार में सिंहभूम के अतिरिक्त हजारीबाग, सथाल परगना और मानभूम में भी कुछ तांबा मिलता है। किन्तु अभी तक इसका वैज्ञानिक ढंग से उपयोग नहीं हो पाया है।

सिक्किम की सबसे अच्छी खान रंगपो के निकट भोटांग में है जो निकटतम रेलवे लाइन से २५ किलोमीटर दूर है। भोटांग की खान में तांबे के खनिज की परत

३ से ४ मीटर तक मोटी है जिसमें से ३ से ४ प्रतिशत तक तांबा निकल सकता है। यहाँ से प्रतिदिन १०० टन तांबा, सोना, जस्ता और चाँदी का अयस निकालने का अनुमान है। इसके अतिरिक्त रोटोक, सिरबोंग, पिसनी, जुयुडुम इत्यादि स्थानों पर भी तांबा निकालने की आशा है। डिकू में १४८ मीटर लम्बी पट्टी में लगभग ३ लाख टन तांबा, जस्ता, चाँदी का अयस मिलने का अनुमान है जिसमें २.५-३% तांबा, १.५% जस्ता और प्रति टन ३ औंस चाँदी मिलेगी।

उत्तर प्रदेश में गढ़वाल जिले के धानपुर और पोखरी, अल्मोड़ा जिले में देवालयल और बागेश्वर और देहरादून जिले में काल्सी में भी तांबे की खानें हैं। परन्तु यहाँ पर्यवेक्षण कार्य न होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि इनसे कितना तांबा निकल सकता है। यहाँ का सम्पूर्ण क्षेत्र ६६ किलोमीटर के विस्तार में फैला है जो भागीरथी घाटी से लगाकर धानपुर तक चला गया है।

राजस्थान में खेतड़ी नामक क्षेत्र में लगभग दस शताब्दियों से कुछ तांबा निकाला जाता है। हाल ही के भूगर्भ पर्यवेक्षणों से प्रकट हुआ है कि प्राचीन काल से ही यहाँ तांबा निकाला जा रहा है जो कई स्थानों पर ६१ मीटर की गहराई तक प्राप्त है। अलवर जिले के दरीबा नामक स्थान में भी तांबा पाया जाता है। खेतड़ी में औसत किस्म के १ प्रतिशत के १० करोड़ टन तथा दरीबा में २ प्रतिशत किस्म के लगभग ५ लाख टन के भण्डारों का पता लगा है। जयपुर की सिंघाना और बबोई खानों से भी तांबा मिलता है। सब मिलाकर राजस्थान में लगभग ११ करोड़ टन के सुरक्षित भण्डारों का अनुमान है।

आन्ध्र प्रदेश में अग्नीगुण्टल और गनी में तांबा मिला है। इसमें तांबे का प्रतिशत ०.५ है। अग्नीगुण्डल में ३½ किलोमीटर लम्बा जस्ता और तांबे का संयुक्त भण्डार मिला है। नैलोर, गन्तूर और अनन्तपुर जिलों में भी कुछ तांबा मिलता है।

इन राज्यों के अतिरिक्त कुछ तांबा इन राज्यों में भी पाया जाता है।

जम्मू-कश्मीर में कश्मीर घाटी में हुपतनगर के निकट बनिहाल—रामसूत और डोडा—किश्तवार के कुछ भागों में और रियासी जिले में गैंरों में; हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा और पंजाब में पटियाला जिलों में; बंगाल में दार्जिलिंग और जलपाइगुड़ी जिलों में; मध्य प्रदेश में जबलपुर (सलीमाबाद), बालाघाट, होशंगाबाद, बस्तर, निमाड़ (नरसिंहपुर में) और सागर जिलों में, कर्नाटक में चित्तलदुर्ग और हसन जिले में और मनीपुर में कतवा क्षेत्र में।

देश में तांबे की आवश्यकता विद्युत उद्योग के अतिरिक्त और कई उद्योगों के लिए ३ लाख टन की अनुमानित की गयी है। इसकी प्राप्ति के लिए कई क्षेत्रों में (महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान) नयी खोजें की जा रही हैं।

उत्पादन एवं व्यापार

अभी भारत में तांबे का उत्पादन बहुत ही थोड़ा है। १९६६ में ३,८५,१९६

टन तांबे का अयस्क प्राप्त किया गया। १९७२ में यह मात्रा ८,९९,००० टन की थी, जिसका मूल्य ५.६ करोड़ रुपया था।

तांबे का आयात संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, जापान, पूर्वी अफ्रीका और रोडेशिया से किया जाता है। १९७२-७३ में लगभग ४६ करोड़ रुपये के मूल्य का तांबा आयात किया गया।

सीसा
(LEAD)

सीसा प्राय: चांदी और जस्ते के साथ मिला हुआ पाया जाता है। यह मोलिबडेनम, तांबा, सोना और सुरमे के साथ भी मिला हुआ पाया जाता है। सीसा तीन प्रकार की कच्ची धातुओं से प्राप्त होता है जिनमें धातु का प्रतिशत ६८ से ८६ तक होता है। सीसा प्राय: परतदार चट्टानों की नसों के रूप में पाया जाता है। लोहा के बाद सीसा का ही उपयोग अधिक होता है क्योंकि यह मुलायम और भारी धातु होती है जो ६२१° फा० ताप पर पिघलती है। इसे सरलता से दूसरी धातुओं के साथ मिलाया जा सकता है। यह बिजली का कुचालक है। अतः इसका सबसे अधिक उपयोग लोहा और इस्पात उद्योग में होता है।

उत्पादन क्षेत्र

देश में सीसा का उत्पादन बहुत ही कम होता है। यद्यपि बिहार के हजारीबाग जिले में, राजस्थान के उदयपुर और जयपुर जिलों में तथा मध्य प्रदेश के ग्वालियर, दतिया और दुर्ग जिलों में सीसे की खानें पायी जाती हैं तथापि व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक ढंग में चलने वाली खानें केवल राजस्थान में उदयपुर से ४० कि० मी० दूर जावर स्थान पर हैं। इसमें सीसा निकालने का कार्य मैसर्स मैटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लि० करते हैं। खान से सीसा और जस्ता दोनों मिला हुआ निकलता है जिसे बाद में साफ़ करके अलग-अलग कर लिया जाता है। कच्ची अयस में धातु का अंश २ से ४% तक पाया जाता है। यद्यपि जावर में मोछिया मगरा, बरोई मगरा और जावर माला पहाड़ियों में सीसा और जस्ता पाया जाता है किन्तु कार्य अभी केवल मोछिया मगरा में ही किया जा रहा है। मोछिया मगरा पहाड़ी ३ किलोमीटर से भी अधिक लम्बाई में पूर्व-पश्चिम में फैली है। इसकी चौड़ाई पूर्वी किनारे पर लगभग २ किलोमीटर और पश्चिम में १.६ किलोमीटर के लगभग है। यहाँ अयस्क राशि का ऊपरी भाग अधिक सघनित (compact) और समृद्ध है तथा नीचे की ओर चौड़ा और कम सकेंद्रित है। यहां मुख्य अयस्क स्थूल कणों के रूप में मिलती है—गैलेना, पायराइट और स्फैलेराइट अयस्क।

आन्ध्र प्रदेश के अग्निगुण्डल और उड़ीसा में सरगीपाली में भी सीसा मिला है।

यहाँ सबसे पहले खनिज का अन्वेषण १३८२-८७ में किया गया किन्तु पहली बार सन् १८७२ में उत्पादन मिला था। खान में सम्पूर्ण कार्य भूमिगत और आधुनिक

खनन यन्त्रों द्वारा किया जाता है। सीसा-जस्ता-चाँदी अयस्क को पहले कूटकर वर्गीकृत किया जाता है फिर इसे फ्लोटेशन सैल (Floatation Cells) में साफ किया जाता है। इससे स्फेलेराइट पृथक हो जाता है। शेष पदार्थ को हरिया के टुण्डू क्षेत्र में भेज दिया जाता है जहाँ चाँदी और सीसा प्राप्त करने के लिए इसका शोधन किया जाता है।

मोछिया मगरा में २ करोड टन के, बलारिया पहाड़ी में ३४ लाख टन के तथा तमिलनाडु के मामनदूर में ६ लाख टन के सुरक्षित भण्डार अनुमानित किये गये हैं।

उत्पादन एवं व्यापार

१९६७ में ३,६६५ टन और १९७२ में ४,५८१ टन अयस की प्राप्ति की गयी जिसका मूल्य २१ लाख रुपया और ५६ लाख रुपया था।

भारत में सीसा का आयात मुख्यतः संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, मैक्सिको, बर्मा, चीन, नीदरलैण्ड और जापान से होता है।

जस्ता
(ZINC)

जस्ता भी प्रकृति में शुद्ध रूप में नहीं मिलता। यह सीसा की भाँति परतदार चट्टानों की नसों में मिलता है। जस्ता अधिक मात्रा में जस्ते की सल्फाइड से प्राप्त होता है किन्तु यह अन्य कच्ची धातुओं से भी—कैलेमीन, जिंकाइट, विलेमाइट, हैमीमोरफाइट—प्राप्त होता है। जस्ता अधिकतर लोहे को मोर्चे से बचाने के लिए पालिश करने के काम में आता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग रंग-रोगन बनाने, बिजली के सैल बनाने, बैटरियाँ बनाने, मोटर के पुर्जे बनाने, दवाइयाँ, बॉयलर की तख्तियाँ, फोटो-एनग्रेविंग, आदि करने में होता है।

उत्पादन क्षेत्र

देश में जस्ता के साधन भी सीमित हैं। अब तक व्यापारिक आधार पर चलने वाली केवल एक खान है जो केवल राजस्थान में उदयपुर के निकट है। यहाँ जस्ता और सीसा मिला-जुला निकलता है और इसे भी मेटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया निकलता है। देश में इस समय जस्ता तैयार नहीं किया जाता और जावर से निकलने वाला जस्ता जापान को भेजा जाता है। वहाँ से इसका पुनः आयात किया जाता है।

उत्पादन एवं व्यापार

भारत में १९६७ में १०,०२६ टन और १९७२ में १७,०५५ टन जस्ता निकाला गया जिसका मूल्य १९७२ में १६८ लाख रुपये था। इसमें ५० से ५४% तक जस्ता धातु होती है। देश में जस्ता तैयार न होने के कारण हमारी सभी आवश्यकताएँ विदेशों से जस्ता मंगाकर पूरी की जाती हैं। जस्ता युगोस्लाविया, बेल्जियम, कांगो

गणतन्त्र, जापान, रूस, संयुक्त राज्य, रोडेशिया, मोजम्बीक, नीदरलैण्ड्स एवं पोलैण्ड से आयात किया जाता है।

बॉक्साइट
(BAUXITE)

बॉक्साइट धातु का महत्व इसलिए है कि इससे अल्यूमीनियम प्राप्त किया जाता है। बॉक्साइट मिट्टी के रंग की होती है और प्रायः लाल या पीले लोहे की उज्जगमय भस्म के साथ मिली हुई पायी जाती है। लोहे का अंश कम होने पर ही बॉक्साइट अल्यूमिनियम निकालने के उपयुक्त होती है वरना लोहे का अंश बहुत अधिक होने पर वह लेटेराइट के नाम से पुकारा जाता है। बॉक्साइट में धातु का अंश ५० से ६५ प्रतिशत तक होता है। बॉक्साइट का अधिकतर प्रयोग अल्यूमीनियम बनाने में होता है।

उत्पादन क्षेत्र

बॉक्साइट की खानें बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, गोआ, गुजरात, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और जम्मू-कश्मीर में पायी जाती हैं। तीन-चौथाई उत्पादन बिहार और मध्य प्रदेश में ही प्राप्त होता है। बॉक्साइट के कुल जमाव ३३.६ करोड़ टन के अनुमानित किये गये हैं जिनमें से ११.६ करोड़ टन ५१% धातु वाले हैं।

बिहार में बॉक्साइट की सबसे महत्वपूर्ण खानें रांची और पालामऊ जिलों में हैं। उच्चकोटि के खनिज में लगभग ५० प्रतिशत अल्यूमीनियम ऑक्साइड होता है। लोहरडगा पहाड़ में धातु का प्रतिशत ४८ से ६८ तक है। इस खनिज पदार्थ का अनुमान लगभग १ करोड़ टन है। यहाँ यह ६३० मीटर ऊँचे भागों में निकाला जाता है। यहाँ मुरी और लोहारडागा में इसे साफ करने के कारखाने हैं।

उड़ीसा में कालाहांडी और सम्बलपुर जिलों में बॉक्साइट की कुछ खानें हैं। समस्त राज्य में ४ लाख टन से भी कम उपलब्ध होने का अनुमान है। यहाँ बॉक्साइट ५ मीटर ऊँची और १३० से १५२ मीटर लम्बी पट्टी में मिलती है जिसमें धातु का प्रतिशत ६२.५ तक है। नये क्षेत्र कोरापुट जिले में मिले हैं।

मध्य प्रदेश में भारत में सबसे अधिक बॉक्साइट के निक्षेप हैं जिनमें अनुमानित भण्डार २०-३० करोड़ टन के माने गये हैं। यहाँ बाक्साइट तीन विशेष क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है :

(क) कटनी-निमाड़ क्षेत्र जहाँ बरगावान पहाड़ी में उत्तम श्रेणी का गुलाबी रंग का बॉक्साइट मिलता है। यह अयस्क पट्टी १४ मीटर मोटी है। इस पहाड़ी के समान्तर टिकरिया और टिकुरी पहाड़ियों की चोटियों पर भी यह मिलता है। यहाँ लगभग ३० खानों से यह निकाला जा रहा है।

(ख) अमरकटक-बालाघाट क्षेत्र के अन्तर्गत शहडोल, मण्डला, बिलासपुर, दुर्ग और बालाघाट जिलों की सीमा पर ४०० किलोमीटर की दूरी तक ६१४ मीटर

ऊँचे भागों में बाक्साइट मिलता है। इस क्षेत्र के दो प्रमुख उत्पादक अमरकंटक-चौरादार क्षेत्र तथा मवाई-बालाघाट क्षेत्र हैं।

(ग) उपरोरा-नैनापट-जशपुर क्षेत्र अरपा और हाथी नदियों की घाटियों में है। इस क्षेत्र में सरगुजा, रायगढ़, बिलासपुर जिलों में उत्तम श्रेणी का बॉक्साइट पाया जाता है।

भारतीय भूगर्भिक समीक्षा द्वारा अनुमानित बॉक्साइट के भण्डार २० से २५ करोड़ टन के हैं, इनमें २ से ३ करोड़ टन उत्तम श्रेणी का बॉक्साइट है।

गुजरात में बॉक्साइट की महत्वपूर्ण खानें सौराष्ट्र के हालार जिले में धागरवाड़ी में हैं। यद्यपि इन क्षेत्रों की विस्तार से छानबीन नहीं की गयी है तथापि अनुमान है कि यहाँ ८० लाख से १ करोड़ टन से अधिक बॉक्साइट उपलब्ध हो सकता है जिसमें धातु की मात्रा ५५ से ६० प्रतिशत तक है। यहाँ खेरा जिले के कपदवज और बम्बासडूँगरी, बड़ौदा, सूरत, राजपीपला, आदि जिलों में भी बॉक्साइट मिलता है। अच्छे प्रकार का बॉक्साइट सौराष्ट्र क्षेत्र के भावनगर, नवानगर, पोरबन्दर, जाफराबाद, बेतवा, महुवा और भाटिया के समीप मिलता है।

महाराष्ट्र में बाक्साइट पूना, उत्तरी सतारा, कोल्हापुर, थाना और रत्नागिरि जिलों में मिलता है। अनुमानित भण्डार की मात्रा ५ करोड़ टन है। यह ९०० मीटर की ऊँचाई से निकाला जाता है। यहाँ अयस्क में धातु की मात्रा ४६ तक होती है।

तमिलनाडु में सलेम जिले की शिवराय की पहाड़ियों में बॉक्साइट की महत्वपूर्ण खानें हैं। इनमें सब प्रकार के बॉक्साइट का अनुमान लगभग ६०-७० लाख टन है परन्तु अल्यूमीनियम बनाने के योग्य खनिज पदार्थ लगभग २१ लाख टन ही होगा। यहाँ बॉक्साइट ६ से १३ मीटर की मोटाई में मिलता है। इसमें धातु का अंश ४५ से ६० प्रतिशत होता है।

कर्नाटक में बाबाबूदन की पहाड़ियों में बाक्साइट की छोटी खानें हैं। इसके अतिरिक्त बेलगाँव क्षेत्र में भी कुछ खानें हैं जिनमें लगभग ७ लाख टन बाक्साइट का अनुमान है।

कश्मीर में पूँछ और रियासी क्षेत्रों की खानों में लगभग २० लाख टन बाक्साइट उपलब्ध होने का अनुमान है जिसमें धातु का प्रतिशत ७० तक है। परन्तु यह खनिज पदार्थ कास्टिक सोडा में आसानी से नहीं घुलता। इसलिए बेयर प्रणाली द्वारा इससे अल्यूमीनियम तैयार करना कठिन है। डॉ० वाडिया के अनुसार, जम्मू की कोटली तहसील में ०·३ से १·५ मीटर की मोटाई वाली पट्टी में बॉक्साइट पाया जाता है। यहाँ हजारों फीट बॉक्साइट धरातल के निकट ही पाये जाने का अनुमान है। इसका जमाव ६ से ८ लाख टन का माना जाता है।

उत्पादन एवं व्यापार -

१९५१ में ६८ हजार टन बॉक्साइट प्राप्त हुआ था। १९५५, १९६१ और

१९६६ में यह मात्रा क्रमशः ६२, ४७६ और ७४६ हजार टन की थी। १९७२ में इसका उत्पादन १,६६२ हजार टन था जिसका मूल्य २२६ लाख रुपये था।

भारत में अल्यूमीनियम की मांग पूरी करने के लिए बॉक्साइट का आयात कनाडा, स्विट्जरलैण्ड, यूगोस्लाविया, संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, प० जर्मनी, नार्वे, आस्ट्रेलिया, फ्रांस और इंगलैण्ड से किया जाता है।

सोना
(GOLD)

सोना कभी भी खानों में शुद्ध रूप में नहीं मिलता। इसमें अधिकतर चाँदी और अन्य धातुओं के अंश मिले रहते हैं। सोने की कच्ची धातु दो प्रकार से मिलती है—आग्नेय चट्टानों की नसों में और नदियों की बालू मिट्टी में। पहले प्रकार के सोने को पठारी सोना और दूसरे प्रकार को मैदानी सोना कहते हैं। पहले प्रकार का सोना आग्नेय चट्टानों की नसों में पाया जाता है। भारत के दक्षिणी पठार पर इसी प्रकार का सोना नदियों की काँप मिट्टी में मिला हुआ पाया जाता है।

उत्पादन क्षेत्र

भारत में सोने के उत्पादन का लगभग ९८ प्रतिशत सोना अकेले कर्नाटक राज्य की कोलार की खानों से मिलता है। यहाँ यह बिल्लौर पत्थर की खानों से प्राप्त होता है। बिल्लौर की धारियाँ अत्यन्त परिवर्तित शिलाओं को बेधती हुई दूर तक उत्तर-दक्षिण दिशा में चली गयी हैं। इनकी धारियों की मोटाई सभी जगह एक-सी नहीं है। यह कहीं मोटी और कहीं पतली होती हुई चली गयी हैं। इन धारियों में मुख्य धारी एक ही है जिस पर चार स्थानों पर कार्य हो रहा है। यह धारी लगभग ६ मीटर मोटी है किन्तु कहीं-कहीं यह ६ मीटर तक मोटी है और पृथ्वी तल पर ८ किलोमीटर से अधिक दूर तक दिखायी पड़ती है। यहाँ की सबसे गहरी खानें चैम्पीयन रीफ और ओरोगम रीफ हैं जिनमें ३,००० मीटर की गहराई पर कार्य हो रहा है। यहाँ १४७ किलोमीटर दूर शिवासमुद्रम से बिजली लायी जाती है। यहाँ चैम्पीयन रीफ, औरोगम रीफ, मैसूर गोल्ड माइनिंग और नन्दीदुर्ग गोल्ड माइनिंग कम्पनियाँ काम कर रही हैं। कर्नाटक में सोने के अनुमानित भण्डार ४५.६३६ किलोग्राम के हैं।

बंगलौर से ९७ किलोमीटर पश्चिम में बलारी की खानों से भी कुछ सोना प्राप्त किया जाता है। कर्नाटक के मस्गा हट्टी, धारवाड़ और सागली में; आंध्र के अनन्तपुर, चित्तूर और रामगिरि में भी सोना मिलता है। तमिलनाडु के मलेम तथा बिहार के लावा सिंहभूम, डालभूम और जशपुर में, उड़ीसा के गंगापुर, बमरा, सम्बलपुर और कोरापुट जिलों में भी सोने के विस्तृत भण्डारों का पता लगा है।

भारत के अन्य भागों में नदियों द्वारा लायी गयी काँप मिट्टी के साथ भी सोना मिला हुआ पाया जाता है। बिहार का सिंहभूम जिला, पंजाब का अम्बाला जिला,

उत्तर प्रदेश का बिजनौर जिला और असम में ब्रह्मपुत्र घाटी इस प्रकार के सोना प्राप्त करने के उल्लेखनीय क्षेत्र हैं। असम में स्वर्णसोरी, बिहार-उड़ीसा की स्वर्ण रेखा और उत्तर प्रदेश की सोना, रामगंगा और शारदा नदियों की बालू में सोना मिलता है किन्तु इस प्रकार प्राप्त किये सोने की मात्रा अधिक नहीं होती।

उत्पादन एवं व्यापार

विश्व के सोना उत्पादक देशों में भारत का स्थान प्रायः नगण्य-सा ही है। १९६१ में भारत ने ४,८९८ किलोग्राम सोना प्राप्त किया गया। १९६६ में यह मात्रा ३,७४० किलोग्राम थी और १९७२ में ३,२६० किलोग्राम। इन वर्षों में प्राप्त किये सोने का मूल्य क्रमशः ४·४६ और ७·५ करोड़ रुपया था। भारत की माँग विशेषतः ब्रिटेन, अरब, कुवैत, हांगकांग और बेल्जियम से आयात कर पूरी की जाती है।

चाँदी
(SILVER)

चाँदी प्रकृति में शुद्ध रूप में कम ही मिलती है। यह अधिकतर जस्ता, ताँबा, सीसा अथवा सोने के साथ मिली हुई पायी जाती है।

उत्पादन क्षेत्र

भारत में चाँदी का उत्पादन बहुत ही कम होता है। यहाँ चाँदी उत्पादन क्षेत्र कर्नाटक में कोलार-क्षेत्र और बिहार में मानभूम तथा राजस्थान में जावर क्षेत्र माने जाते हैं। पहले तमिलनाडु के अनन्तपुर जिले से भी काफी चाँदी प्राप्त की जाती थी किन्तु अब इसका उत्पादन समाप्तप्राय हो गया है।

भारत में चाँदी का उत्पादन कर्नाटक और राजस्थान में जावर की खानों से ही प्राप्त किया जाता है। चाँदी की अयस्क का शोधन बिहार में टुण्डू में किया जाता है। यहाँ सीसे और जस्ते के सकेन्द्रण में क्रमशः २५-३० औंस और ५-६ औंस चाँदी प्रति टन प्राप्त होती है।

उत्पादन एवं व्यापार

१९६१ में ५,६४१ किलोग्राम और १९६६ में १,२२० किलोग्राम चाँदी का उत्पादन हुआ। १९७२ में ४,४२७ किलोग्राम उत्पादन था। इसका मूल्य १९६६ में ४½ लाख तथा १९६२ में २·२ लाख रुपया था।

भारत में बेल्जियम, ग्रेट ब्रिटेन, इटली, पाकिस्तान और पश्चिमी जर्मनी से चाँदी का आयात किया जाता है।

इल्मेनाइट
(ILLEMENITE)

इल्मेनाइट अयस्क से टाइटेनियम प्राप्त की जाती है जिसका उपयोग कई प्रकार की मिश्र-धातुओं और धूमपटों में किया जाता है। यह एक मुख्य रिफैक्टरी पदार्थ है जिसका प्रयोग लोहा और इस्पात उद्योग में अधिक है।

उत्पादन क्षेत्र

विश्व में सबसे अधिक उत्पादन भारत के केरल राज्य में होता है। यह यहाँ तट के निकट फैली काली बालू मिट्टी में पाया जाता है। यह बालू पश्चिमी घाट के निकट निदाकारा से लगाकर कुमारी अन्तरीप होती हुई पूर्वी घाट की ओर तीपुरम तथा १६१ किलोमीटर की पट्टी में फैली है। यहाँ बालू ८ फीट मोटी तह में मिलती है। इसमें इल्मेनाइट का अंश ५० से ७० प्रतिशत तक होता है। डॉ० वाडिया के अनुसार भारत में इल्मेनाइट के जमाव लगभग १० करोड़ टन के हैं।

उत्पादन एवं व्यापार

१९६१ में ७०,००० टन तथा १९६२ में ४६,००० टन इल्मेनाइट का उत्पादन प्राप्त किया गया। अधिकांश इल्मेनाइट स्वीडेन, इंगलैण्ड, संयुक्त राज्य, जर्मनी, जापान और बेल्जियम को निर्यात किया जाता है।

इमारती पत्थर
(BUILDING STONES)

सभी प्रकार के पत्थरों से दृढ़ और सुन्दर इमारतें नहीं बन सकतीं। कई पत्थर तो लकड़ी से भी कम टिकाऊ होते हैं। इमारतें बनाने के लिए ग्रेनाइट, स्लेट, क्वार्ट्ज, सरपेन्टाइन, रवेदार चूने के पत्थर अथवा आग्नेय शिलाएँ बड़ी उत्तम रहती हैं। इन शिलाओं पर जल का प्रभाव धीरे-धीरे पड़ता है और इनमें जल प्रविष्ट भी बहुत कम होता है क्योंकि इनकी रन्ध्र-विशिष्टता बहुत कम है किन्तु ये शिलाएँ प्रायः पर्तहीन होती हैं और बड़ी कड़ी होती हैं जिससे इन्हें काँट-छाँटने में बड़ी मेहनत पड़ती है।[1] जलज चूने का पत्थर और संगमरमर हल्के, सुन्दर और बहुत नरम होने के कारण अधिक प्रयोग में आते हैं किन्तु अन्य पत्थरों की तुलना में ये कम टिकाऊ होते हैं।

बालू का पत्थर (Sandstone)

इमारती पत्थरों में सबसे अधिक प्रचलित बालू का पत्थर है। यह पत्थर न तो ग्रेनाइट जैसा अधिक कड़ा और न चूने जैसा अधिक नरम और शीघ्र क्षय होने वाला ही होता है। इसके अतिरिक्त बालू का पत्थर तहदार भी होता है अतः इसकी पतली-पतली पट्टियाँ आसानी से बनायी जा सकती हैं। सबसे उत्तम बलुआ पत्थर वह गिना जाता है जिसमें बालू या रेत के अतिरिक्त अन्य पदार्थ बहुत कम हों। इनके अतिरिक्त इमारतों की छतों के पाटने में खपरैल की जगह स्लेट भी काम आती है। जलज मिट्टी की पतली तह पृथ्वीतल के नीचे पहुँचकर दबाव द्वारा परिवर्तित होकर स्लेट बन जाती है।

1 नीस और ग्रेनाइट शिलाएँ दक्षिणी भारत में विस्तृत रूप में पायी जाती हैं— राजस्थान, बुन्देलखण्ड, मध्य प्रदेश, बिहार, आन्ध्र, कर्नाटक, तथा तमिलनाडु राज्यों में इन शिलाओं से मन्दिर, महल, दुर्ग आदि बनाने के लिए सुन्दर पत्थर प्राप्त होते हैं।

भारत मे भिन्न-भिन्न स्थानों मे जो पास मे सबसे उपयुक्त पत्थर होता है उसी का उपयोग इमारतों मे कर लिया जाता है। इस प्रकार तमिलनाडु और कर्नाटक में ग्रेनाइट और चरकोनाइट नामक स्थानीय आग्नेय शिलाएँ ही अधिकतर कार्य मे लायी जाती हैं। तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश मे इन शिलाओं के ७½ से ९ मीटर लम्बे और ४½ से ६ मीटर चौड़े स्तम्भ प्राप्त होते हैं। इनका उपयोग महाबलीपुरम के मन्दिर में विशेष रूप से किया गया है। भारत मे अन्य दक्षिणी और मध्य भाग में प्रथम कल्प से भी पूर्व के स्लेट और चूने के पत्थर तथा द्वितीय कल्प के अन्य समय के ज्वालामुखी बेसाल्ट नामक काले पत्थर की इमारतें बनायी जाती हैं। मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में प्रथम कल्प के आरम्भ मे बने हुए विंध्याचल पर्वत के बालू और चूने के पत्थरो का इमारतो मे बहुत प्रयोग होता है। इस पर्वत मे बालू के लाल पत्थर का बड़ा भारी जमाव है जो इमारतो के लिए अति उत्तम प्रमाणित हुआ है। मिर्जापुर, चुनार, कटनी, इन्दौर, ग्वालियर, बूँदी, इत्यादि अनेक स्थानो पर इस पत्थर की खानें हैं। पश्चिमी बंगाल और उसके पास के कोयले के क्षेत्रो में गोंडवाना काल के बालू के पत्थरो की ही इमारतें बनायी जाती हैं। गुजरात में जूनागढ और पोरबन्दर के चूने का पत्थर तथा धारंगध्रा का बालू का पत्थर ही अधिक प्रचलित है। उड़ीसा और मध्य प्रदेश में लैटेराइट नामक शिला भी इमारतों के काम मे आती है। राजस्थान में पश्चिमी भागों मे लाल इमारती पत्थर तथा दक्षिणी-पूर्वी भागो मे अरावली से प्राप्त पत्थर ही इमारतें बनाने में उपयुक्त होते हैं। चित्तौड़ जिले की मानपुरा, नीम्बाहेड़ा, आदि स्थानो की पट्टियाँ मकानो की छतें बनने में उपयुक्त हैं औरचौके फर्श पर जड़ने के लिए काम में आती हैं। इन शिलाओं के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश और पंजाब में ककड़ नामक चूने का पदार्थ भी इमारतो में काम आता है। कंकड़ प्राय: प्राचीन कछार में जल द्वारा लाया जाकर एकत्रित किये हुए चूने के कणों से बना है। खपरैल के लिए स्लेट हिमालय पर्वत की कागड़ा घाटी, अल्मोड़ा और गढ़वाल जिलो में तथा रेवाड़ी में भी पायी जाती है।

संगमरमर (Marble)

मारत में कई स्थानो पर उत्तम संगमरमर पत्थर भी प्राप्त होता है। निम्न स्थानो के संगमरमर तो जगत-प्रसिद्ध हैं।

राजस्थान में जोधपुर जिले के मकराना क्षेत्र और उदयपुर जिले के राजनगर क्षेत्र के श्वेत और सफेद, भूरे तथा हल्के गुलाबी तथा अन्य कई रंगो के संगमरमर पत्थर; तथा अजमेर, किशनगढ़, जयपुर (रायलो), अलवर (झीरा), सिरोही (आबू) और दान्ता इत्यादि क्षेत्रो के संगमरमर (जो हल्के गुलाबी रंग का होता है) और जैसलमेर में लाल-पीला छींटदार पत्थर, और डूंगरपुर का काला संगमूसा होता है।

मध्य प्रदेश के जबलपुर का श्वेत और बेतूल, सिऊनी, नृसिंहपुर, छिंदवाड़ा का रंगीन तथा गुजरात में बड़ौदा क्षेत्रो के मोतीपुरा स्थान का हरा, गुलाबी और

सफेद संगमरमर। ग्वालियर के बाघ नामक स्थान के चूने का लाल-पीला, छींटदार हरा पत्थर, । संगमरमर।

आन्ध्र प्रदेश में विशाखापट्टनम, तमिलनाडु में कोयम्बटूर और मदुराई, कर्नाटक में चित्तलद्रुग, उड़ीसा में कोरापुट तथा गंगापुर में अनेक रंगों वाले भूरे, सफेद, लाल संगमरमर प्राप्त होते हैं।

महाराष्ट्र में रेवाकाटा का काला संगमरमर, आन्ध्र प्रदेश के कर्नूल जिले का पीला, हरा, गहरा हरा, मटमैला संगमरमर तथा गतूर और कृष्णा जिलों का पीला-हरा संगमरमर बहुत ही प्रसिद्ध है।

चूना और सीमेंट का पत्थर (Limestone & Cement Stone)

साधारण चूने का सीमेण्ट बनाने के लिए मध्य प्रदेश और राजस्थान में चूने के परिवर्तित पत्थरों का तथा उत्तर प्रदेश में ककड़ों का भारी जमाव है। भारत में अनेक स्थानों पर चूने का पत्थर स्वय ही ऐसे रासायनिक संगठन का होता है कि उनमें मिट्टी बहुत कम मिलाने की आवश्यकता रह जाती है। उदाहरण के लिए, ग्वालियर की कम्पनी सीमेण्ट के लिए स्थानीय चूने के पत्थर के साथ केवल १ प्रतिशत ही मिट्टी मिलाती है। बूंदी की सीमेण्ट कम्पनी में तो मिट्टी की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के मिट्टीदार चूने के पत्थर को ही आपस में मिलाकर उपयुक्त रासायनिक मिश्रण कर लिया जाता है। विन्ध्य पर्वत में उत्तम श्रेणी के पत्थरों का बड़ा भारी जमाव प्रायः रेल मार्ग के पास ही पाया जाता है। इस कारण भारतीय सीमेण्ट के सब कारखाने प्रायः चूने की पत्थरों की खानों के पास ही खोले गये हैं। सीमेण्ट के लिए हरसौंठ राजस्थान से मंगवाई जाती है।

चूने का पत्थर इन राज्यों में निकाला जाता है :

आन्ध्र प्रदेश	आदिलाबाद, अनन्तपुर, गतूर, हैदराबाद, कर्नूल।
असम तथा मेघालय	गारो, खासी, मिकिर और जयंतिया पहाड़ियाँ।
पश्चिमी बंगाल	पुरुलिया, जलपाईगुड़ी।
बिहार	हजारीबाग, पालामऊ, राँची, शाहाबाद, सिंहभूम।
गुजरात	बड़ौदा, जामनगर, खेरा, सोरठा, झालावाड, नवानगर।
मध्य प्रदेश	मन्दसौर, रीवाँ, निमाड़, धार, झाबुआ, बिलासपुर, दुर्ग, जबलपुर, मुरैना, रायपुर, सतना।
महाराष्ट्र	यवतमाल, अमरावती, चाँदा।
उड़ीसा	सुन्दरगढ़, कोरापुट, राजगंगापुर, सम्बलपुर।
पंजाब	अम्बाला।
राजस्थान	बूँदी, कोटा, पाली सवाईमाधोपुर, सीकर, सिरोही।
उत्तर प्रदेश	चमोली, गढ़वाल, देहरादून, मिर्जापुर।

तमिलनाडु राज्य में दक्षिणी अर्काट, तंजौर, तिरुचिरापल्ली, मदुराई, सलेम,

कोयम्बटूर, रामानाथापुरम, तिरुनलवेली और रामेश्वर द्वीप में भी चूने के पत्थर की नयी खानों का पता लगाया गया है। इनमें कई लाख टन के जमाव होने का अनुमान है। रामानाथापुरम् जिले में सत्तूर और अरपूकोटाई तालुकों में ४३.६ लाख टन के जमाव और रामेश्वरम द्वीप में ५० लाख टन के जमाव अनुमानित किये गये हैं। दक्षिणी अरकाट में २० लाख टन के जमाव होने का अनुमान लगाया गया है।

कर्नाटक में शिमोगा, चित्तलदुर्ग, तुमकुर, मैसूर, बीजापुर, उत्तर किनारा जिले में।

कांच के लिए बालू (Glass Sand)

साधारण कांच बनाने के लिए उत्तम और आदर्श बालू वह माना गया है जिसमे १०० प्रतिशत सिलीका हो और जिसके सब कण बराबर तथा कोणदार आकार के हों। बालू में सिलीका के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ जितना ही कम होता है उतना ही बालू अधिक सफेद होता है और वह कांच के लिए उपयोगी होता है। बालू के सफेद जलज पत्थरों की स्फटिक शिलाओं को भी पीसकर कांच के उपयुक्त बालू बनाया जाता है किन्तु इसमें मेहनत और व्यय अधिक पड़ता है। भारत में कांच के लिए उपर्युक्त आदर्श बालू कहीं पर नहीं मिला है परन्तु साधारण कांच के बालू की यहाँ कमी नहीं है। राजमहल पहाड़ में मंगलहाट तथा पाथरघाटा नामक स्थानो पर गोंडवाना काल का उत्तम श्रेणी का सफेद बालू का पत्थर मिलता है जिसको पीस कर कांच के लिए बालू बनाया जाता है। विन्ध्याचल पर्वत के लोहगरा तथा बोरगढ़ नामक स्थानों पर बालू का परिवर्तित जलज पत्थर मिलता है जिससे उत्तम बालू प्राप्त होता है जिसका प्रयोग उत्तर प्रदेश के कई कांच के कारखानों मे हो रहा है।

उड़ीसा में मयूरभंज के पानीजिया तथा सौरी स्थानो मे; पश्चिमी बंगाल के बर्दवान जिले के तालाडांगा के समीप, बिहार के भागलपुर जिले में इस प्रकार के पत्थर मिलते हैं जिनको कांच बनाने के काम मे लाया जाता है। उत्तर प्रदेश मे वाराणसी के चकिया क्षेत्र, झांसी के मुड़ारी, वालाबेहट और इलाहाबाद तथा बांदा जिलो के शंकरगढ़, लोहगढ़, बोरगढ़ और धानद्रोल में स्फटिक को कूट कर कांच उद्योग के उपयुक्त बनाया जाता है।

राजस्थान में बूंदी जिले के बरोधिया; सवाई माधोपुर जिले और जयपुर के जाटवाडा मे कांच की बालू मिलती है।

गुजरात में बड़ोदा तथा ईडर मे, आंध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम, गुंटूर, हैदराबाद; केरल के तिरवांकुर, कर्नाटक के चिंगलपुट और बंगलोर जिले, पंजाब के होशियारपुर जिले, बिहार के सिंहभूम, रांची, मानभूम, हजारीबाग, संथाल परगना, तथा मुंगेर जिलों मे, उड़ीसा के सोनपुर, कटक और सम्बलपुर जिलों मे तथा कश्मीर मे जम्मू के निकट तावी नदी में कांच के उपयुक्त बालू प्राप्त होता है।

उपयोगी मिट्टियाँ (Clays)

मिट्टियाँ कई प्रकार की होती हैं। मिट्टी की उत्तमता इस बात मे है कि वह गीली होने पर मुलायम हो जाय ताकि इसको किसी भी रूप मे परिवर्तित किया

जा सके। भारत में मुख्यतः तीन प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती हैं : (१) अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टी, (२) चीनी मिट्टी, और (३) मुल्तानी मिट्टी।

(१) अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टियाँ (Fire Clays) वे मिट्टियाँ होती हैं जिसमें पोटाश अथवा सोडा का अंश बहुत कम होता है। भारत में अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टी की तह बंगाल की राजमहल पहाड़ी के पश्चिमी भाग में तथा गोंडवाना काल के कोयले की भिन्न-भिन्न तहों के बीच में बहुत मिलती है। इनके अतिरिक्त मध्य प्रदेश में जबलपुर तथा अन्य स्थानों पर भी यह मिट्टी पायी जाती है।

अग्नि-मिट्टियों के उत्पादक ये जिले हैं :

बिहार	धनबाद, हजारीबाग, पालामऊ, राँची, सिंहभूम।
गुजरात	सुरेन्द्रनगर, साबरकांठा, राजकोट।
मध्य प्रदेश	जबलपुर, मरसौर, पन्ना, शहडोल।
तमिलनाडु	दक्षिणी अर्काट, तिरचिरापल्ली।
कर्नाटक	तुमकुर, शिमोगा।
उड़ीसा	पुरी, सम्बलपुर, सुन्दरगढ़।
पश्चिमी बंगाल	वीरभूम, बर्दवान, पुरुलिया।

यह मिट्टी अधिकतर भारतीय कारखानों की भट्ठियों के लिए अग्नि-प्रतिरोधक ईंटें तथा बालू की ईंटें बनाने के काम आती है। रानीगंज में बर्न कम्पनी का कारखाना, कुमार धुबी में बर्ड कम्पनी का तथा कुल्टी में मार्टिन कम्पनी का कारखाना अग्नि-प्रतिरोधक ईंटों के लिए प्रसिद्ध है। मध्य प्रदेश में जबलपुर और कटनी के कारखाने भी ऐसी ईंटें तैयार करते हैं।

(२) चीनी मिट्टी (China Clay or Kaolin) सब मिट्टियों में मूल्यवान होती है। यह मिट्टी प्रायः ग्रेनाइट की फैल्स्पार (Felspar) नामक खनिज के क्षय से उत्पन्न होती है। पोटाश और सोडा मिट्टी में न होने से यह अग्नि-प्रतिरोधक भी होती है। इस प्रकार की मिट्टी भारत के कई भागों में पायी जाती है। सबसे उत्तम चीनी मिट्टी सिंहभूम जिले में तथा राजमहल पहाड़ी में मिलती है। इनमें से प्रथम स्थान की मिट्टी कपड़ों के कारखानों के लिए भी उत्तम प्रमाणित हुई है।

चीनी मिट्टी के प्रमुख उत्पादक जिले इस प्रकार हैं :

आन्ध्र प्रदेश	आदिलाबाद, अनन्तपुर, कड्डप्पा, कर्नूल।
बिहार	भागलपुर, मुँगेर, पालामऊ, राँची, सिंहभूम।
गुजरात	महसाना, साबरकांठा।
जम्मू-कश्मीर	ऊधमपुर।
केरल	कन्नानोर, क्विलोन, त्रिवेन्द्रम।

मध्य प्रदेश	ग्वालियर, जबलपुर।
तमिलनाडु	दक्षिणी अर्काट।
महाराष्ट्र	चन्द्रपुर।
कर्नाटक	बगलौर, हसन, शिमोगा।
उडीसा	गुड़गाँव।
राजस्थान	बीकानेर जयपुर।
पश्चिमी बगाल	वीरभूम, मिदनापुर, पुरुलिया।

(३) क्वार्ट्ज और सिलिका के मुख्य उत्पादक जिले ये हैं

आन्ध्र प्रदेश	हैदराबाद।
बिहार	धनबाद, गया, सिंहभूम, हजारीबाग।
गुजरात	पंचमहल।
केरल	अलैप्पी।
मध्य प्रदेश	मोरेना।
तमिलनाडु	तिरुचिरापल्ली।
कर्नाटक	बगलौर, गुलबर्गा, शिमोगा।
उडीसा	मयूरभज।
महाराष्ट्र	रत्नागिरि।
राजस्थान	अजमेर, बूँदी, जयपुर सवाई माधोपुर सिरोही।

डोलोमाइट का उत्पादन इन जिलों से प्राप्त होता है

बगाल	जलपाईगुड़ी।
बिहार	पालामऊ।
गुजरात	बड़ोदा।
मध्य प्रदेश	बिलासपुर, छिंदवाड़ा जबलपुर।
महाराष्ट्र	नागपुर।
कर्नाटक	शिमोगा, तुमकुर।
राजस्थान	अजमेर।
उड़ीसा	सुन्दरगढ़।

यह मिट्टी अधिकतर चीनी के बर्तन बनाने, कपड़ों मे भरने तथा सफेद बढ़िया कागज बनाने मे काम आती है। चीनी मिट्टी के उत्तम श्रेणी के पदार्थ (Ceramics and Potteries) बनाने के कारखाने ग्वालियर, जबलपुर, पोरबन्दर कलकत्ता, दिल्ली, मैसूर, आदि स्थानों में स्थित हैं।

(४) मुल्तानी मिट्टी (Fuller's Earth) भारत में बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, जबलपुर, हैदराबाद और मैसूर जिलों में बहुत मिलती है। इसका रंग सफेद, भूरा अथवा पीला होता है। इस मिट्टी के कण बहुत बारीक होते हैं अत उनमें चिकनाई और रग-कारक द्रव सोख लेने का गुण होता है। अत इसका उपयोग ऊन

से चिकनाई दूर करने तथा तेलों को स्वच्छ अथवा रंगहीन करने के लिए और कागज, साबुन और कपड़ों के कारखानों तथा सिर के बाल धोने के लिए किया जाता है।

डोलोमाइट (*Dolomite*)

भारत में डोलोमाइट कई राज्यों में पाया जाता है। प्रमुख उत्पादक क्षेत्र ये हैं :

उड़ीसा में उत्तम प्रकार का डोलोमाइट सुन्दरगढ़ जिले के बीरमित्रापुर और पानपोश नामक स्थानों में पाया जाता है। ये क्षेत्र मुकरा से लेकर सम्बलपुर तक १०० किलोमीटर लम्बे क्षेत्र में फैले हैं। बीरमित्रापुर के पूर्व में लगभग ६६१ मीटर लम्बी और १०० मीटर चौड़ी पट्टी पायी जाती है। पश्चिमी सुन्दरगढ़ में लिफ्रीपारा में १½ किलोमीटर लम्बी और ७० मीटर चौड़ी एक दूसरी पट्टी है। सम्बलपुर जिले में मुलई तथा पुटका नामक स्थानों पर और कोरापुट जिले में कोंड़ाजोदी तथा कोलब घाटी में भी यह पाया जाता है।

मध्य प्रदेश में यह कई स्थानों पर संगमरमर के साथ पाया जाता है। उत्तम प्रकार का तापरोधी डोलोमाइट दुर्ग जिले में कोरवा के उत्तर-पूर्व में तथा बिलासपुर जिले में अकलतरा और जयरामनगर के निकट बाराद्वार; महाराष्ट्र के चन्द्रपुर जिले के बरोरा क्षेत्र और बरार की वुन तहसील; मध्य प्रदेश में रीवां में जाथी और उमरिया के निकट भी यह पाया जाता है। दुर्ग जिले में भण्डारों की मात्रा २२½ करोड़ मीट्रिक टन अनुमानित की गयी है।

राजस्थान में यह संगमरमर युक्त पाया जाता है विशेषतः जयपुर, अलवर, किशनगढ़, बांसवाड़ा तथा डूंगरपुर जिलों में।

गुजरात में बड़ोदा के निकट माटीपुरा में; जम्बूघोडा के उत्तरी भाग में, छोटा उदयपुर के देवहाटी और बन्नार स्थानों में यह पाया जाता है।

बिहार में यह सिंहभूम जिले में चौबासा के निकट और पालामऊ (पुटादा) तथा शाहाबाद (बंजारी) जिले में पाया जाता है।

कर्नाटक में डोलोमाइट, तुमकुर, शिमोगा और चितलदुग जिलों में मिलता है।

आंध्र प्रदेश में इसका उत्पादन कड़प्पा, कर्नूल और अनन्तपुर जिलों में किया जाता है।

अन्य राज्यों के अन्तर्गत डोलोमाइट का उत्पादन तमिलनाडु में सलेम; उत्तर प्रदेश में देहरादून, टिहरी-गढ़वाल और नैनीताल जिले; हिमाचल प्रदेश में कुल्लू, व्यास घाटी और मण्डी जिलों में किया जाता है। भूटान से असम तक इसके अनेक भण्डार पाये जाते हैं।

13

शक्ति ससाधन
(SOURCES OF POWER)

शक्ति के साधनो की उपलब्धि औद्योगिक विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। भारत में शक्ति के अनेक साधन उपलब्ध हैं, यथा लकड़ी, कोयला, लिग्नाइट जल-शक्ति, यूरेनियम, थोरियम, पैट्रोलियम, प्राकृतिक गैसें आदि। इनमें से व्यापारिक दृष्टि से कोयला, पैट्रोलियम एव जलशक्ति ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

भारत में प्रयुक्त शक्ति के साधनों का प्रतिशत[1]

व्यापारिक ईंधन	कुल प्रयुक्त	शक्ति के भाग
कोयला	२२ ०	
पैट्रोलियम	१६ ०	४५ ०
जल विद्युत	४ ०	
पर व्यापारिक ईंधन		
जलाऊ लकड़ी	३६ ०	
गोबर	७ ०	५५ ०
अन्य वनस्पति व्यर्थ पदार्थ	१२ ०	

किसी क्षेत्र म किस उपलब्ध शक्ति का उपयोग किया जाये यह कई तथ्यो पर निर्भर करता है, जैसे स्थापित क्षमता की प्रति इकाई पूँजीगत लागत, उत्पन्न की गयी जलशक्ति या तापशक्ति की प्रति किलोवाट घण्टा लागत, परियोजना तैयार करने की अवधि और कोयला, पैट्रोलियम या जल की पर्याप्त मात्रा में प्राप्ति। अनुमानत विभिन्न स्रोतो से शक्ति उत्पन्न करने म इस प्रकार लागत आती है कोयला २५ पैसे, तेल २५ पैसे और जल विद्युत $\frac{1}{2}$ पैसे। परमाणु शक्ति उत्पन्न करने की लागत ३ से ४ पैसे आती है। अतएव जहाँ जैसा स्रोत मिल जाय वहाँ उसी का उपयोग किया जाता है। यह अग्र तालिका से स्पष्ट होगा

1 The Energy Survey of India Committee Report 1965

भारत में शक्ति विकास का प्रारूप

(i) कर्नाटक, केरल, पंजाब, जम्मू-कश्मीर ....मुख्यतः जलशक्ति
(ii) बिहार, प० बंगाल और गुजरात ....मुख्यतः कोयला शक्ति
(iii) राजस्थान, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, असम, मध्य प्रदेश, उड़ीसा ....कोयला और जल शक्ति दोनों का उपयोग

१. कोयला
(COAL)

भारत में सबसे पहले कोयला निकालने का प्रयास सन् १७७४ में रानीगंज में दो अंग्रेजों, (समर और हीटले द्वारा) किया गया किन्तु सन् १८४३ तक कोई विशेष सफलता नहीं मिली। सन् १८५५ में तत्कालीन ईस्ट इण्डियन रेलवे और सन् १८६५ में बाराकर क्षेत्र तक इसका विस्तार होने से कोयला खनन में सहायता मिली।

कोयले का उत्पादन (लाख टनों में)

वर्ष	उत्पादन	वर्ष	उत्पादन
१८६८	५	१९६३	६२०
१८८०	१०	१९६४	६७९
१८९०	२२	१९६५	७०३
१९००	६१	१९६६	६७९
१९३०	२३८	१९६७	६८७
१९४०	२५१	१९६८	७४६
१९५०	३२०	१९६९	७५४
१९५१	३४४	१९७०	७६७
१९५६	३९३	१९७१	६९०
१९६१	५६१	१९७२	७४८
१९६२	६१५		

पहली योजना में कोयले की मांग केवल १६० लाख टन की थी। द्वितीय योजना में कोयला का उत्पादन लक्ष्य ६०० लाख टन का रखा गया अर्थात् प्रथम योजनाकाल के उत्पादन से २२० लाख टन अधिक (१०० लाख टन निजी क्षेत्र में, १२० लाख टन सार्वजनिक क्षेत्र में)। किन्तु वास्तविक उत्पादन ५४० लाख टन का ही हुआ। तृतीय योजना में लक्ष्य ९३५ लाख टन का रखा गया अर्थात् द्वितीय योजनाकाल के उत्पादन से ३३५ लाख टन अधिक (१३५ लाख टन निजी क्षेत्र में और २०० लाख टन सार्वजनिक क्षेत्र में)। चतुर्थ योजनाकाल में कोयले का अनुमानित उत्पादन ७६६ लाख टन का था जबकि लक्ष्य ९३५ लाख टन का था। पाँचवीं योजना के अन्त तक यह उत्पादन १,३५० लाख टन हो जाने का अनुमान है।

कोयला निकालने मे भारत का स्थान विश्व में आठवाँ है। यहाँ प्रति व्यक्ति पीछे केवल १३६ किलोग्राम से भी कम कोयला निकाला जाता है जबकि सयुक्त राज्य अमरीका में २,५०० किलोग्राम तथा इगलैण्ड में ३२४ किलोग्राम कोयले का खनन किया जाता है।

कोयला उत्पादक क्षेत्र

भारत के कोयले का ९८'५ प्रतिशत गोडवाना काल की शिलाओ में दक्षिण के पठार पर *पाया जाता है। ये शिलाएँ अत्यन्त प्राचीन हैं और मुख्यत.* बलुआ पत्थर और शैल की बनी हैं। ये शिलाएँ नदियों के मीठे जल में जमा होकर बनी है। गोडवाना शिलाएँ दामोदर घाटी में अधिक विकसित हैं। इन्हें यहाँ **दामूदा मालाएँ** (Damuda Series) कहते हैं। रानीगज और झरिया में ये शिलाएँ तीन भागों में विभक्त हैं। इसमें सबसे ऊपर और सबसे नीचे के भागो में ही कोयले की तहें पायी जाती हैं। ये क्रमश रानीगज और बाराकर कहलाती हैं। इनके बीच में लौह-प्रस्तर होने से कोयला नही मिलता। रानीगज क्षेत्र में कोयला 'रानीगज' और झरिया में 'बाराकर' चट्टानो से कोयला मिलता है।

गोंडवाना कोयला क्षेत्र तीन पेटियो मे बँटा है :

(I) बगाल बिहार मे दामोदर और सोन नदी की घाटी।

(II) उड़ीसा : मध्य प्रदेश मे महानदी की घाटी।

(III) आन्ध्र प्रदेश : मध्य प्रदेश मे गोदावरी और वर्धा नदी की घाटी।

इन तीनों पेटियो मे लगभग ८० खदानें पायी जाती हैं जिनम सबसे प्रमुख निम्न हैं :

बगाल : रानीगंज।

बिहार . झरिया, बोकारो, उत्तरी और दक्षिणी करनपुरा, गिरिडीह।

उड़ीसा . औरगा, हुटार, डाल्टनगज, तलचर और सम्भलपुर।

मध्य प्रदेश : महोपाली, कोरबा, पचघाटी, मोहागपुर, सिगरौली, कनहान घाटी, उमरिया।

महाराष्ट्र : चान्दापुर, वरोरा, यवतमाल।

आन्ध्र प्रदेश : सिगरेणी, तास्ती, तन्दूर, कोटागूदम।

भारत की कुल उत्पत्ति का ७६ प्रतिशत कोयला बगाल, बिहार और उड़ीसा *राज्यों की खानों से, १६ प्रतिशत मध्य प्रदेश से ६ प्रतिशत आन्ध्र प्रदेश से प्राप्त होता* है। ये सभी क्षेत्र दामोदर नदी की घाटी में फैले हैं। गोडवाना काल के क्षेत्र मोटे तौर पर पश्चिमी बगाल, बिहार, उडीसा से लगाकर मध्य प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश तक फैले हैं। शेष १'५% कोयला तृतीय कल्प की शिलाओ मे प्राप्त होता है। इसे तृतीय कल्प का कोयला या टर्शरी कोयला कहते हैं। इसके मुख्य क्षेत्र असम में दिहींग नदी की घाटी में स्थित लखीमपुर के जिले में और राजस्थान में पलाना में हैं।

अस्तु, स्पष्ट है कि भारत के मुख्य कोयला क्षेत्र प्रायद्वीप में और दूसरे कम महत्त्व वाले क्षेत्र प्रायद्वीप के बाहर हैं। यह बात विचारणीय है कि भूगर्भिक दृष्टि से भारतीय कोयला यूरोप और अमरीका की अपेक्षा कम आयु वाला है। गोंडवाना युग का कोयला २० करोड़ वर्ष पुराना और टर्शरी युग का कोयला ५ करोड़ वर्ष पुराना है।

भारत में कोयला उत्पादन

(करोड़ टनों में)

	१९६८-६९	१९६९-७०	१९७०-७१	१९७१-७२
कोकिंग कोयला	१'७२	१·८१	१ ७८	१'६४
नोन-कोकिंग कोयला	५'४२	५'७६	५'५१	५ ४३
लिगनाइट	०'४०	०'४३	०'३४	० ३६
कुल योग	७'५४	८'००	७'६३	७'४६

कोयले की किस्में (Types of Coal)

रासायनिक सम्मिश्रण की दृष्टि से भारत में कई प्रकार का कोयला प्राप्त होता है :

(१) भूरा कोयला (*Lignite*) *जलने में अधिक धुआँ देता है।* इसमें कार्बन का अंश ४५ से ५५ प्रतिशत; जल का अंश ३० से ५५ प्रतिशत और वाष्पीय पदार्थ ३५ से ५० प्रतिशत तक होता है। इस प्रकार का कोयला राजस्थान में पलाना (बीकानेर समाप); तमिलनाडु के अर्काट जिले में (नेवेली में), असम में लखीमपुर में और कश्मीर के करेवों में मिलता है।

(२) बिटूमीनस कोयला (Bituminous Coal) गोंडवाना काल की कई शिलाओं में मिलता है। इसका रंग काला होता है और जलते समय इससे धुआँ भी कम उठता है। *कार्बन का अंश ७५ से ८० प्रतिशत, जल का अंश ५ प्रतिशत और वाष्पीय पदार्थ का अंश २० से ३० प्रतिशत होता है।*

(३) ऐंथ्रेसाइट कोयला (Anthracite Coal) सबसे उत्तम श्रेणी का होता है। इसमें जलते समय धुआँ नहीं निकलता तथा इसकी ज्वाला नीली और तेज प्रकाश वाली होती है और बड़ी गर्मी देती है। इस प्रकार का कोयला केवल कश्मीर राज्य में जम्मू के निकट ६८ किलोमीटर क्षेत्र में ०'३ से ६ मीटर मोटी तहों में रियासी जिले में मिलता है। *इसमें कार्बन की मात्रा ८० से ९५ प्रतिशत, जल का अंश २ से ५ प्रतिशत और वाष्पीय पदार्थ २१ से ४५ प्रतिशत तक होता है।*

उपयोग में लाने की दृष्टि से भारतीय कोयले को निम्न श्रेणियों में बाँटा जाता है :

(१) धातु शोधन के उपयुक्त कोक बनाने योग्य कोयला—इस प्रकार के कोयले से कोक बनाकर धातु-शोधन के उपयोग में लाया जाता है। ऐसा कोयला

झरिया, बोकारो, रानीगंज और गिरडीह में मिलता है। इस कोयले में फॉस्फोरस की मात्रा अधिक और राख की मात्रा कम होती है।

(२) उत्तम श्रेणी का भाप बनाने योग्य कोयला—रानीगंज, बोकारो, करनपुरा, तलचर, मध्य प्रदेश और सिंगरेणी क्षेत्रों से प्राप्त होता है।

(३) निम्न श्रेणी का भाप बनाने वाला कोयला—बिहार-उड़ीसा की खानों से प्राप्त होता है।

(४) भूरा टर्शरी कोयला जो मुख्यतः असम और राजस्थान से प्राप्त होता है।

(५) तमिलनाडु में पाया जाने वाला लिगनाइट कोयला।

(क) गोंडवाना कोयला क्षेत्र *(Gondwana Coalfeilds)*

गोंडवाना क्षेत्र के अन्तर्गत दामोदर घाटी के प्रमुख कोयला क्षेत्र निम्न हैं -

रानीगंज क्षेत्र (Raniganj Coalfield) दामोदर नदी की घाटी में सबसे महत्त्वपूर्ण है जो कलकत्ता से लगभग २४० किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में है। इसमें कोयला निकाला जाना १८१४ में आरम्भ किया गया। इसकी खानों का क्षेत्रफल १,५०० वर्ग किलोमीटर है। इसका अधिकांश भाग बर्दवान जिले में है किन्तु इसकी सीमाएँ बाकुड़ा, मानभूम और सथाल परगना तक चली गयी हैं। रानीगंज क्षेत्र में यद्यपि कोयला बाराकर और रानीगंज दोनों श्रेणियों की शिलाओं में पाया जाता है किन्तु यहाँ रानीगंज श्रेणी का कोयला ही अधिक मिलता है। रानीगंज श्रेणी में कई अच्छी-अच्छी कोयले की तहें हैं। यहाँ की कई परतें ६०० मीटर की गहराई पर मिलती हैं। रानीगंज क्षेत्र में ६ बड़ी-बड़ी परतें हैं जिनकी कुल मोटाई १६ मीटर के लगभग है। बाराकर श्रेणी के कोयले में जल और वाष्पीय पदार्थों का अंश रानीगंज श्रेणी के कोयलों से कम और ठोस कार्बन अधिक मात्रा में होता है। बाराकर श्रेणी की मुख्य तहें रामनगर, लायकडीह और बेगुनिया हैं। रानीगंज श्रेणी की तह में तिसारगढ़ तह (५ मीटर मोटी) और संक्टोरिया तह (३ मीटर मोटी) उत्तम कोयले के लिए प्रसिद्ध हैं। केवल इन दोनों तहों में ६१० मीटर की गहराई तक २३ करोड़ टन से अधिक प्रथम श्रेणी का कोक बनाने वाला कोयला कूता गया है। इसके अतिरिक्त २० करोड़ टन कोक न बनाने वाला किन्तु उत्तम कोयला और होगा। चूँकि दक्षिणी-पूर्वी प्रसार दामोदर के कछार से दब गये हैं, अतः कोयले की चट्टानें बर्दवान और कलकत्ता की ओर कहाँ तक फैली हैं इसका अनुमान पूर्णतः नहीं लगाया जा सका है। रानीगंज क्षेत्र में अनुमानतः कुल कोयला ६०० करोड़ टन ६०० मीटर की गहराई तक होगा। इसमें से ३३ करोड़ टन कोकिंग कोयला है। यह क्षेत्र भारत के कोयले का $\frac{1}{3}$ भाग उत्पन्न करता है। इस क्षेत्र को दक्षिणी-पूर्वी रेलमार्ग जोड़ता है। इस क्षेत्र का कोयला रेलों और जहाजों में ईंधन के रूप में काम में लाया जाता है। जहाँ तक रासायनिक गुणों का सम्बन्ध है,

रानीगंज के कोयले में ५२·६ प्रतिशत कार्बन, ३४·८ प्रतिशत उड़नशील तत्त्व, १२·६ प्रतिशत राख और ७·५ प्रतिशत नमी पायी जाती है।

झरिया क्षेत्र (Jheria Coalfield) रानीगंज क्षेत्र से ४८ मीटर पश्चिम की ओर है। इस क्षेत्र का पता सन् १८८५ में लगा था। यह क्षेत्र ३७ मीटर लम्बा (पूर्व पश्चिम में) और १६ मीटर चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल ४४० वर्ग किलोमीटर है। इस क्षेत्र का कोयला बाराकर और रानीगंज दोनों श्रेणियों की जलज शिलाओं से मिलता है। इसमें २८ कोयले की तहें हैं जिनकी कुल मोटाई ६६ मीटर के लगभग है। कुछ कोयले की परतें ६६० मीटर की गहराई पर भी मिलती हैं। झरिया क्षेत्र समस्त भारत का ५० प्रतिशत कोयला उत्पन्न करता है। यहाँ के अनुमानित भण्डार धात्विक किस्म के ८२८ करोड़ मीट्रिक टन के और कोक बनाने योग्य कोयले के २१५ करोड़ मीट्रिक टन के हैं। दक्षिणी-पूर्वी रेलवे इस क्षेत्र को कलकत्ता से जोड़ती है। इस क्षेत्र के कोयले का उपयोग आसनसोल, कलकत्ता जमशेदपुर और कुल्टी के कारखाने में किया जाता है। यहाँ के कोयले में ५६ प्रतिशत कार्बन, २६ प्रतिशत उड़नशील तत्त्व, १२ प्रतिशत राख और २ प्रतिशत नमी पायी जाती है।

गिरिडीह क्षेत्र (Giridih fields) क्षेत्र हजारीबाग जिले में है। इसका क्षेत्रफल केवल २८ वर्ग किलोमीटर है जिसमें कोयले वाली जलज शिलाएँ केवल १८ वर्ग किलोमीटर में ही मिलती हैं। इस कोयले की शिलाएँ बाराकर श्रेणी की हैं परन्तु यहाँ के कोयले की मुख्य विशेषता यह है कि इससे अति उत्तम प्रकार का स्टीम-कोक तैयार होता है।

बोकारो क्षेत्र (Bokaro fields) झरिया के पश्चिम में है और दो भागों में बँटा है—पूर्वी बोकारो और पश्चिमी बोकारो। दोनों का क्षेत्रफल मिलाकर ५५० वर्ग किलोमीटर है। यह क्षेत्र ६४ मीटर लम्बा और ११ मीटर चौड़ा है। यहाँ भी कोक बनाने योग्य उत्तम कोयला मिलता है। मुख्य तह करगाली है जो लगभग ६६ मीटर मोटी है। यहाँ १२ खानें हैं। कोयले का उपयोग रेल के इंजनों में किया जाता है।

करनपुरा क्षेत्र (*Karanpura fields*)—ऊपरी दामोदर की घाटी में बोकारो क्षेत्र से तीन किलोमीटर पश्चिमी में यह क्षेत्र वर्तमान है। इस क्षेत्र के दो भाग हैं, उत्तरी और दक्षिणी करनपुरा। इनका क्षेत्रफल १,१०० वर्ग किलोमीटर है। इस क्षेत्र की विशेषता यह है कि यहाँ कोयल की तहें अधिक मोटी पायी जाती हैं। उत्तरी और दक्षिणी करनपुरा में कोयले के भण्डार क्रमशः ४५० करोड़ टन और ११७ करोड़ टन के अनुमानित किये गये हैं। उत्तरी करनपुरा में २५ और दक्षिणी करनपुरा क्षेत्र में २० खानें हैं।

सोन घाटी के कोयला क्षेत्र—इस क्षेत्र के अन्तर्गत मध्य प्रदेश के उमरिया सोहागपुर, सिंगरौली, तातापानी, रामकोला और उड़ीसा के औरगा, हुटार, डाल्टनगंज के क्षेत्र हैं।

उमरिया का क्षेत्रफल १५ वर्ग किलोमीटर है। यहाँ के कोयले में राख और वाष्प का अंश अधिक होता है। सोहागपुर का क्षेत्रफल ३,००० वर्ग किलोमीटर है। यहाँ कोयले की तहें ३ से ५ मीटर मोटी हैं। यहाँ अनुमानित १२ करोड टन के जमाव हैं। सिंगरौली क्षेत्र रीवाँ जिले में है। इसका क्षेत्रफल २,२०० वर्ग किलोमीटर है। यहाँ कोयले की तहें २ से ५ मीटर लम्बी मोटी पायी जाती हैं। यहाँ के कोयले में नमी की मात्रा अधिक होती है। रामकोला-तातापानी क्षेत्र को छत्तीसगढ़ कोयला क्षेत्र भी कहते हैं। इसका पूर्वी भाग तातापानी और पश्चिमी भाग रामकोला है। इसका क्षेत्रफल २,००० वर्ग किमोमीटर है। किन्तु गोंडवाना युग की कोयलादार शिलाएँ केवल २५० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में ही पायी जाती हैं। यहाँ का कोयला अच्छा नहीं है। औरंगा क्षेत्र उड़ीसा में पालामऊ जिले में है। इसका क्षेत्रफल २५० वर्ग किलोमीटर है। यद्यपि यहाँ कई १२ मीटर मोटी तहें पायी जाती हैं किन्तु कोयला निम्न श्रेणी का है। हुटार क्षेत्र औरंगा क्षेत्र के पश्चिम में २० किलोमीटर दूर है। इसका क्षेत्रफल २०० वर्ग किलोमीटर है। यहाँ कोयल ४ मीटर मोटी तहों से प्राप्त किया जाता है। डाल्टनगंज क्षेत्र बिहार के पालामाऊ जिले में ८० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। इनमें .१५ सेण्टीमीटर से लगाकर १० मीटर मोटी पर्तें मिलती हैं। किन्तु सबसे मोटी पर्त १४ मीटर है जो राजहरा स्टेशन के निकट पड़ती है।

महानदी घाटी कोयला क्षेत्र—इस क्षेत्र के अन्तर्गत उड़ीसा के तलचर और संभलपुर क्षेत्र तथा मध्य प्रदेश के कोरबा, सनहट, झिलमिली-चिरमिरी, रायगढ़-हिंगिर तथा विश्रामपुर-लखनपुर क्षेत्र मुख्य हैं।

मध्य प्रदेश मे कोरबा क्षेत्र की खानें मन्द नदी के आरपार ५०० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मे फैली हैं। इसका उपयोग भिलाई के इस्पात कारखाने मे होता है। यहाँ अनुमानतः २१ करोड़ टन के जमाव हैं। कोरबा के पूर्व मे रायगढ़ की खानें ५०० वर्ग किलोमीटर भूमि मे फैली है। तलचर की खानें ब्राह्मणी नदी की घाटी में हैं।

गोदावरी-वर्धा घाटी क्षेत्र—इस क्षेत्र के अन्तर्गत महाराष्ट्र में चंद्रपुर (चाँदा), बल्लारपुर, बरोरा, यवत-माल, नागपुर, आदि जिलों के तथा आन्ध्र प्रदेश मे सिंगरेनी, सस्ती और तन्दूर के कोयला क्षेत्र आते हैं।

महाराष्ट्र के चंद्रपुर जिले में बलारपुर क्षेत्र मे कोयले की तहें १० से २० मीटर मोटी हैं। यहाँ ५ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मे लगभग ४ करोड़ मीट्रिक टन कोयले के जमाव हैं। यहाँ का कोयला वायु में पड़ा रहने पर चूर-चूर होने लगता है और स्वयं जल जाता है। चंद्रपुर जिले मे ही बरोरा क्षेत्र है जहाँ ३ मीटर से ७ मीटर मोटी तहें मिलती हैं। यहाँ लगभग १'२ करोड़ मीटर टन कोयले के जमाव हैं।

आंध्र प्रदेश के सिंगरेणी क्षेत्र में बाराकर श्रेणी की शिलाएं ५४ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हैं। इसमें कोयले की ७ तहें हैं जिनमें से ऊपरी दो मीटर मोटी पर्त में उच्च किस्म का कोयला मिलता है। यहाँ लगभग १६ करोड़ मीट्रिक टन कोयले के जमाव हैं। सस्ती क्षेत्र वर्धा नदी के पश्चिम में ५०० वर्ग किलोमीटर में फैला है। यहाँ १५ मीटर मोटी कोयले की पर्तें हैं। यह कोयला उत्तम श्रेणी का है। यहाँ लगभग २ करोड़ टन के भण्डार हैं। तन्दूर क्षेत्र गोदावरी और तन्दूर नदियों के बीच में २५० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है।

सतपुड़ा कोयला क्षेत्र इस क्षेत्र में मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के कुछ कोयला क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं। मोहपानी क्षेत्र नृसिंगपुर जिले में नर्मदा घाटी के दक्षिण में सतपुड़ा के उत्तरी ढाल के तले में स्थित है। यहाँ बाराकर श्रेणी की शिलाओं में ४ तहें हैं जिनमें से दो लगभग ६ और ७॥ मीटर मोटी हैं। यहाँ ४ करोड़ मीट्रिक टन कोयले के जमाव होने का अनुमान है।

कान्हन घाटी क्षेत्र छिंदवाड़ा जिले में कान्हन नदी की घाटी से पचघाटी तक फैला है। कोयले की तहें १॥ से ४ मीटर मोटी हैं। यहाँ कोयले के भण्डार लगभग ७ करोड़ टन के कूते गये हैं। पचघाटी क्षेत्र भी छिंदवाड़ा जिले में कान्हन घाटी के दक्षिण में है। यहाँ अनेक स्थानों पर कोयला मिलता है। अनुमानित भण्डार ११ करोड़ टन के हैं।

(ख) टर्शरी युग के कोयला क्षेत्र (*Cretaceous or Tertiary Coalfields*)

सम्पूर्ण भारत का १·५ प्रतिशत टर्शरी युग की चट्टानों से प्राप्त होता है। लिग्नाइट कोयले में पर्याप्त मात्रा में आर्द्रता पायी जाती है। उत्पन्न पदार्थों की मात्रा ३० से ५० प्रतिशत और स्थिर कार्बन ५० प्रतिशत तक होता है। इसके मुख्य क्षेत्र राजस्थान, असम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर और तमिलनाडु हैं। कुल मिलाकर देश में इस प्रकार के कोयले के २२६८ करोड़ टन के जमाव अनुमानित किये गये हैं।

राजस्थान में बीकानेर जिले में पलाना नामक क्षेत्र से कोयला निकाला जाता है जो बीकानेर के दक्षिण-पश्चिम में २० किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ केवल एक ही पर्त है जो २ मीटर मोटी है, परन्तु कहीं-कहीं यह १० मीटर मोटी है। यहाँ का कोयला लिग्नाइट श्रेणी का है। इसका उपयोग मुख्यतः उत्तरी रेलवे में होता है। पलाना से ३२ किलोमीटर पश्चिम में मढ़ में भी लिग्नाइट कोयला पाया जाता है। यहाँ के कोयले में कार्बन की मात्रा ५० प्रतिशत तक होती है तथा नमी अधिक होती है।

असम में कोयला पूर्वी नागा पर्वत के उत्तरी-पश्चिमी ढाल पर लखीमपुर तथा शिवसागर जिलों में पाया जाता है। यहाँ का सबसे बड़ा क्षेत्र माकूम है जो लगभग

८० किलोमीटर लम्बा नामदाग लीडो कोयला क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की तहों की मोटाई अधिकतर १५ मीटर है। डॉ० फाक्स के मतानुसार यहाँ ६०० मीटर की गहराई तक लगभग १२५ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में १०० करोड़ मीट्रिक टन कोयले के भण्डार सुरक्षित हैं। यहाँ का कोयला गैस बनाने के लिए उपयुक्त है किन्तु इसमें गंधक का अंश अधिक होता है। जयपुर क्षेत्र में (जो ४० किलोमीटर की लम्बाई में फैला है) २ करोड़ मीट्रिक टन कोयले के जमाव होने का अनुमान है। मेघालय में मिकर की पहाड़ियों में लौंगलोई, दिस्सोमा और नाम्बोर की घाटियों में हल्की श्रेणी का कोयला १ से २ मीटर मोटी तहों में पाया जाता है। गारो, खासी और जयन्तिया पहाड़ियों से कोयला मिलता है। गारो में डॉगरिंग और वेसांग क्षेत्र, खासी में रोंगासनोत्र और मावलांग तथा मेघालय की जयन्तिया से अनवी और लकाडोंग क्षेत्र में कोयला मिलता है। नजीरा, झांसी और बेशोप अन्य उल्लेखनीय क्षेत्र हैं। यहाँ के कोयले का उपयोग रेलों, स्टीमरों और चाय के कारखानों में किया जाता है।

कश्मीर में दक्षिणी-पश्चिमी भाग में कारेवां संरचनाओं के अन्तर्गत घटिया किस्म का गहरा कत्थई रंग का कोयला मिलता है। जम्मू में तीन भागों में कोयला प्राप्त किया जाता है (क) चिनाव नदी के पश्चिम में कालाकोट, महोगला, चकर और मेटका की खानों से; (ख) घनसाल-पत्थानकोट क्षेत्र, (ग) चिनाव के पूर्व में लद्दा क्षेत्र। अनुमान है कि उण्डवारा क्षेत्र में सम्भावित ३२० लाख टन और चील-गगा क्षेत्र में ४० लाख टन के जमाव हैं। इस कोयले का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है।

उत्तर प्रदेश की सीमा पर तराई के क्षेत्र कोहरगढ़ और खाजावली में भी उत्तम श्रेणी के जमाव मिले हैं। इनकी खुदाई की जा रही है।

दक्षिणी भारत में लिग्नाइट मिलने की सूचना सबसे पहले सन् १८८४ में डब्ल्यू किंग द्वारा दी गयी। पांडिचेरी और कड्डालोर के बीच तटीय मैदानों में कन्नानोर से उत्तर-पश्चिम में ८ किलोमीटर दूर बाहुर, बाहुर से ४ किलोमीटर उत्तर में अरंगनुर तथा कन्नानोर से लगभग ५ किलोमीटर उत्तर में किन्नियांकोविल स्थानों में कोयलों के स्तरों की मोटाई ११ मीटर, ८ मीटर और ११ मीटर है। इन क्षेत्रों में उत्तम प्रकार के लिग्नाइट में १६·२८ प्रतिशत आर्द्रता; २८·५५ प्रतिशत उत्पत्त पदार्थ; ३७·७२ प्रतिशत स्थिर कार्बन, ७·४५ प्रतिशत भस्म और ५,३१८ कैलोरी तापीय शक्ति है।

तमिलनाडु के दक्षिण अरकाट जिले में नैवेली नामक स्थान पर पातालीय जल के लिए ड्रिलिंग करते समय सन् १९३४ में लिग्नाइट का पता लगा था किन्तु खुदाई का कार्य १९५४ में ही आरम्भ किया गया। लिग्नाइट के भण्डार वृद्धाचलम और कड्डालोर तालुको में ६ से ८ किलोमीटर लम्बाई में फैले हैं। यहाँ

२६ वर्ग किलोमीटर में ३ से १५ मीटर मोटी तहें पायी गयी हैं। इनमें अनुमानतः ३२ से ५० करोड टन के भण्डार हैं। बाद के अनुमानों से ज्ञात हुआ है कि ये भण्डार २०३ करोड़ टन के हैं और २५० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हैं। तहों की मोटाई ३० मीटर तक है किन्तु धरातल से स्तरों की गहराई ५१ मीटर है।

नैवेली में इन भण्डारों से लिग्नाइट प्राप्त करने के लिए एक संयुक्त योजना (Integrated Project) बनायी गयी है। इसके अन्तर्गत ३५·६ लाख टन लिग्नाइट का खनन प्रतिवर्ष किया जायेगा तथा विधायन के पश्चात् लिग्नाइट को २५० मैगावाट विद्युत शक्ति उत्पादन के लिए उपयोग में लाया जायेगा। इसी योजना के अन्तर्गत नेत्रजन मय रासायनिक खादों का, जिसमें ७०,००० टन नेत्रजन प्रतिवर्ष काम में आयेगी तथा ७,२०,००० टन कच्चे लिग्नाइट की टिकियों का निर्माण और उनका कार्बनीकरण, ३,८०,००० टन कार्बनीकृत पदार्थ का उत्पादन किया जायेगा। ३५ लाख टन प्रतिवर्ष के वर्तमान लक्ष्य के अनुसार लिग्नाइट का उत्पादन १४ लाख टन उत्तम कोयले के बराबर होगा। खनन योग्य लिग्नाइट ५७ वर्ष में समाप्त होने का अनुमान है। ५ इकाइयों वाले ताप शक्तिगृह की कुल उत्पादन क्षमता २,५०,००० किलोवाट की होगी। लिग्नाइट से अन्य उप-प्राप्ति के रूप में ४२,००० टन चार मस्म (Char dust), ६,४०० टन मोटर स्प्रिट, ५१,२०० टन टार और १,०३२ टन फिनाइल प्रतिवर्ष कोयले की टिकियों के कार्बनीकरण से प्राप्त होंगे।

एक अन्य योजना के अन्तर्गत लिग्नाइट के समीप ही प्राप्त उत्तम चीनी मिट्टी में धोने का संयन्त्र स्थापित किया गया है जिसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ६,००० टन की है।

इस प्रकार लिग्नाइट योजना के अन्तर्गत इसके विभिन्न अवयव-इकाइयों द्वारा कच्चा लिग्नाइट निकाल कर अनेक प्रकार के प्रमुख उत्पादनों में परिवर्तन किया जा रहा है। कार्बनीकृत टिकियाँ धुआँरहित ईंधन के रूप में घरों में जलाने के लिए उपयोग में लायी जाती हैं। मार्च १९७१ तक यहाँ से २२६ लाख टन कोयला निकाला गया।

पश्चिमी तट में लिग्नाइट क्षेत्र बरकाला और त्रिवलोन तथा मालाबार से लगाकर दक्षिणी कनारा तक पाये गये हैं। यहाँ २०६ करोड़ टन लिग्नाइट के भण्डार अनुमानित किये गये हैं।

१९७१ में ३६·६ लाख टन और १९७२ में ३१६ लाख टन लिग्नाइट निकाला गया। १९७२-७३ में २८ करोड़ रुपये के मूल्य का कोयला निर्यात किया गया।

कोयले का उपयोग

भारतीय कोयले की सबसे बड़ी माँग देश के उद्योगों में हो है। किन्तु ठण्डे देशों की भाँति भारत में कोयला घरों को गरम करने आदि के लिए उपयोग में नहीं

लाया जाता। कुल उपभोग का ४६ प्रतिशत उद्योगों में (लोहा-इस्पात १६%, सीमेण्ट ५ प्रतिशत; ईंट ५ प्रतिशत, विद्युत ११ प्रतिशत, कपड़ा ३ प्रतिशत; जूट ०.५ प्रतिशत; कागज, रसायन और इन्जीनियरिंग प्रत्येक मे १ प्रतिशत) रेलों में ३० प्रतिशत तथा २४ प्रतिशत अन्य कार्यों में काम में आता है। लगभग ५ प्रतिशत कोयला निर्यात किया जाता है।

भारत से कोयले का निर्यात समीपवर्ती देशों को—विशेषत: वर्मा, श्रीलंका, बर्मा, पाकिस्तान, सिंगापुर, हांगकांग, जापान, अदन, मारीशस, पूर्वी अफ्रीका और मध्य पूर्व के देशों को होता है। १६५१ में १२ लाख मीट्रिक टन कोयले का निर्यात किया गया जिसका मूल्य ३.२ करोड़ रुपया था। १६६१ मे निर्यात की मात्रा १४ लाख टन और मूल्य ५.३ करोड़ रुपया था। १६७० मे १३ लाख टन कोयला निर्यात हुआ जिसका मूल्य ३.३ करोड़ रुपया था।

भारतीय कोयले की समस्याएं

(१) *प्रायः कोयले की खदानें भारत के दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्रों में स्थित हैं।* यद्यपि नयी खदानों का पता लगा है किन्तु अभी भी लगभग ६७% कोयला पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा और पूर्वी मध्य प्रदेश से ही प्राप्त किया जाता है। कुछ कोयले की खदानें गोदावरी की घाटी मे भी हैं किन्तु कृष्णा नदी के दक्षिण मे उल्लेखनीय *खदानों का अभाव है और न ही उस क्षेत्र मे जो दिल्ली से कुमारी अन्तरीप को* जोड़ने वाली काल्पनिक रेखा के पश्चिम में पड़ते हैं कोयला मिलता है। अतः पूर्वी औद्योगिक क्षेत्रों को छोड़कर शेष क्षेत्रों के लिए कोयला १,००० से १,५०० किलोमीटर दूरी से प्राप्त करना पड़ता है। बम्बई में १,४५० किलोमीटर, दिल्ली मे १,००० *किलोमीटर और मद्रास मे १,५०० किलोमीटर की दूरी से कोयला लाना पड़ता है।* इसमे काफी व्यय पड़ जाता है। फलतः कई क्षेत्रों में तेल अथवा जल-विद्युत का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त कोयले की खानें समुद्र तट से दूर होने के कारण कोयले का निर्यात व्यय अधिक पड़ जाता है।

(२) *भारत का अधिकांश कोयला निम्न श्रेणी का है जिसमे कार्बन का अंश* कम किन्तु राख, वाष्प और जलीय अंश अधिक होता है। अतः उद्योगों में व्यवहृत होने के लिए यह अधिक उपयुक्त नहीं है।

(प्रतिशत में)

कोयला	राख	जल	वाष्पीय अंश	स्थिर कार्बन
रानीगंज (दिशेरगढ़ तह)	६.८	२.५	३३.२	५४.२
झरिया (नं० १८)	११.६	१.८	२८.८	५६.३
गिरिडीह (करहरबाड़ी)	१०.३	०.६	२२.५	६६.०
असम	३.०	६.०	३४.०	५३.०
राजस्थान (पलाना)	३० से ५०		—	५०.०

(३) देश में ८०० से अधिक खानें हैं किन्तु उनमे से लगभग आधी खानो में २,५०० टन प्रतिमाह से कम का ही उत्पादन होता है। कोयला खदानो की उत्पादन

क्षमता बहुत ही कम है। अधिकांश खानें (३५%) तो इतनी छोटी हैं कि उनका उत्पादन प्रतिदिन का १ टन से भी कम होता है। अत: ये अनार्थिक हैं।

उत्पादन की मात्रा के आधार पर कोयले की खानों का वितरण इस प्रकार है।

मासिक उत्पादन (टनों में)	कोयला खानों की संख्या	खानों का प्रतिशत	उत्पादन का प्रतिशत
१,००० से कम	२५७	३१·०	१·०
१,००० से ५,०००	२५९	३१·३	११·०
५,००० से १०,०००	११२	१३·६	१३·७
१०,००० से २५,०००	१४५	१७·६	१९·०
२५,००० से अधिक	५३	६·५	३५·३
योग	८२६	१००·०	१००·०

(४) भारत के कोयला क्षेत्र मध्य-नदियों के प्रवाह क्षेत्रों से दूर हैं। अतः पश्चिमी देशों की भाँति हमारे यहाँ न तो नदियाँ ही और न नहरें ही कोयला ढोने के काम आती है। परिणामतः सारा कोयला मालगाड़ियों में ढोया जाता है जिससे व्यर्थ ही नष्ट हो जाने के कारण किराया भी काफी पड़ जाता है।

(५) भारत में कोयला निकालने के साधन बहुत ही पुराने हैं। अब भी कई खानों में श्रमिकों द्वारा ही कोयला खोदकर निकाला जाता है। इस विधि में कोयले का चूरा बहुत हो जाता है। भारत में कोयला काटने, कोयला लादने और ढोने की मशीनें बहुत ही कम हैं।

ज्यों-ज्यों खानें गहरी होती जाती हैं, उत्पादन व्यय बढ़ता जाता है, अत बहुत-सा कोयला स्तम्भों के रूप में छोड़ दिया जाता है। अन्य देशों की भाँति बालू पाटने (Sand-towing) की प्रथा पूरी तरह से यहाँ प्रचलित नहीं हो पायी है। इस प्रथा के अनुसार कोयला निकाली गयी जगह को बालू से भर दिया जाता है। इससे खानों के भीतर कोयले के स्तम्भ छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती और खान दबने और आग लगने या अन्य खतरों का भी भय कम हो जाता है।

भारत में कोयले की सुरक्षित राशि कम है। यदि खानों में वर्तमान गति से कोयला निकाला जाता रहा तो सारा कोयला २०० वर्षों में भी कम समय में समाप्त हो जायगा। अतः इसका उपयोग ताप-शक्ति के रूप में किया जाना आवश्यक है।

रानीगंज और झरिया खानों में अभ्रक के पेरिडोटाइट (Peridotite) कोयला और डोलोटाइट के स्तर मिलते हैं जिनमें लाखों टन अच्छा कोयला अध-जले कोयले में परिणत हो गया है।

कोयले के सुरक्षित भण्डार (Reserves of Coal)

भारत में कोयले के कितने भण्डार सुरक्षित हैं इसके सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कहना असम्भव है क्योंकि गोदावरी और महानदी के उत्तरी-पश्चिमी छोरों

के कोयला क्षेत्र पठार की गहरी पर्तों के नीचे दबे पड़े हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इस आवरण के नीचे कोयले की कितनी बड़ी राशि छिपी पड़ी है। इसी प्रकार झरिया, रानीगंज और पूर्वी छोर यथा नदी के कछार के नीचे दबे पड़े हैं। अतएव, भारत के सम्पूर्ण कोयला भण्डार का अनुमान लगाना कठिन है फिर भी भारत के भूगर्भ विशारदों द्वारा समय-समय पर जो अनुमान लगाये गये हैं उनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत में निम्न श्रेणी का कोयला तो काफी परिमाण में मौजूद है किन्तु धातु-शोधने योग्य उत्तम कोयले के भण्डार बहुत कम हैं।

कोयले के भण्डारों के बारे में अब तक अनेक अनुमान लगाये गये हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोक बनाने योग्य और कोक न बनाने योग्य कोयले के भण्डारों को पर्याप्त माना जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार परिलक्षित (Inferred Reserves), १२,००,००० लाख टन के और सिद्ध भण्डार (Proved Reserves) ४,५०,००० लाख टन के हैं। भण्डारों की सुरक्षित राशि का लगभग ४० प्रतिशत झरिया और रानीगंज की खदानों में भरा है।

अ-कोकिंग कोयले के निहित भण्डार ११,५०,००० लाख टन के माने गये हैं, किन्तु कोकिंग कोयले के भण्डारों के बारे में बड़ा विवाद है। आधुनिकतम अनुमान के अनुसार झरिया में कोकिंग कोयले के भण्डार (जहाँ सम्पूर्ण भण्डार ही निहित है) इस प्रकार हैं।

(लाख टनों में)

गहराई	सिद्ध	ज्ञापित	परिलक्षित	योग
६१ मीटर तक (२,०००′)	२५,१००	२५,०४०	७,८६०	५८,०००
६१ से १२२ मीटर तक (४,०००′)	११०	४,०६०	१८,२००	२२,३७०
योग	२५,२१०	२९,१००	२६,०६०	८०,३७०

संसिल फॉक्स के अनुसार भारत में निकालने योग्य कोयले की मात्रा लगभग २,००० करोड़ टन है। इसमें से ५०० करोड़ टन उत्तम श्रेणी का कोयला है। टर्शरी युग के कोयले की मात्रा इनके अनुसार ३०० करोड़ टन की है। राष्ट्रीय योजना समिति (१९४८) ने देश के सुरक्षित भण्डारों का ब्योरा इस प्रकार दिया है :

रानीगंज-झरिया क्षेत्र	२,९६५ करोड़ मीटर टन
गिरिडीह-देवघर क्षेत्र	२५ ,,
सोन घाटी क्षेत्र	१,००० ,,
महानदी घाटी क्षेत्र	५०० ,,
वर्धा घाटी क्षेत्र	१,८५० ,,
सतपुड़ा	१०० ,,
पूर्वी हिमालय क्षेत्र	१० ,,
भारत का योग	६,००० करोड़ मीटर टन

देश में ५६ कोयला-क्षेत्र हैं जिनमें ८२६ खदानें कार्य कर रही हैं। कोयले के सुरक्षित भण्डारों का अनुमान १९५० में ६,४८,७६० लाख टन का किया गया था। १९६० में यह ११,५५,६१० लाख टन और अब लगभग १,१६०,०४० लाख टन का अनुमानित किया गया है। मोटे तौर पर कोकिंग कोयले के भण्डार ८०,६५२ लाख टन और अर्द्ध-कोकिंग के १,०४,८० लाख टन के किये गये हैं। सबसे अधिक भण्डार झरिया में अनुमानित किये गये हैं।

प्रमुख कोयला क्षेत्रों में सुरक्षित राशि[1]

(दस लाख टनों में)

क्षेत्र	धातु-शोधन कोयला	कुल कोयला योग
झरिया	४६,०००'०	१,२६,८१३'५
पूर्वी बोकारो	४०,४७०'३	४४,०७०'३
पश्चिमी बोकारो	३५,१७०'६	३५,१७०'६
रामगढ़	१०,५७४'०	१०,५७४'०
गिरिडीह	७३२ ९	७३२'९
रानीगंज	८,९८०'०	१,९२,८६३'१
पच-कान्हन	६,०००'०	१८,३९७'०
असम	६,९००'०	—
योग	१०,५४,८२८'४	—

भारत के भूगर्भिक सर्वेक्षण द्वारा अप्रेल १९७२ में विभिन्न राज्यों में कोयले के संचित भण्डार इस प्रकार अनुमानित किये गये हैं :

(दस लाख टनों में)

राज्य	सिद्ध राशि	अर्थित राशि	परिलक्षित राशि	योग
प० बंगाल	४,०१८'३६	५,९९४'८९	९,५८५'६५	१९,६१८ ९०
बिहार	१० ५९०'२८	१६,११८'२३	८,५२१'६८	३५,२३०'१९
मध्य प्रदेश	४,२४६'५५	४,०६७'४९	७,१६८'४०	१५,४८२ ४४
उड़ीसा	८९५'४०	२,४१०'९६	१,८१० १८	५,११६'४८
महाराष्ट्र	४७७'८६	७९९'७३	१,३४४'०६	२,६११ ६५
आन्ध्र प्रदेश	९७७'९५	१,०७७'१८	—	२,०५५'१३
असम, मेघालय	१३९'००	२९०'६०	३९८'००	८२७'६०
भारत का योग	२१,३६५,४०	३०,७५९ ०८	२८,८२७'९१	८०,९५२'३९

1 *Yojna*, December 12, 1971, p 21

भारतीय कोयले की श्रेणी में सुधार के उपाय

भारत में धातु शोधन कोयले की राशि अपर्याप्त ही है किन्तु यदि उसे ठीक प्रकार से काम में लाया जाये और खानों में बालू भरकर उन्हें नष्ट होने से रोका जा सके तो कोयले की अवधि बढ़ सकती है। अतः आवश्यक है कि भारतीय कोयले के उपभोग और खनन में मितव्ययिता की जाये। इसके लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :

(१) रानीगंज, झरिया, गिरिडीह और करनपुरा क्षेत्रों का कोयला केवल धातु शोधन के लिए कोक बनाने में प्रयुक्त किया जाय और अन्य स्थानों का कोयला (जिसमें वाष्पीय अंश और गन्धक अधिक है) मुख्यतः रासायनिक उप-प्राप्ति उत्पन्न करने में ही काम में लाया जाय। (२) कोयले को खानों से निकालने के लिए अधिक आधुनिक ढंगों का प्रयोग किया जाय जिससे कोयला निकालते समय उसका कम से कम दुरुपयोग हो। (३) कोयले की धुलाई, विशुद्धीकरण एवं सवर्धन को प्रोत्साहन दिया जाय जिससे उसमें राख का अंश कम हो और पहले तथा दूसरे ग्रेड का धोया हुआ कोयला धातुशोधन के लिए उपयोग में लाया जा सके। (४) कोयला खनन के उपरान्त जो खानें खाली हो गयी हों उन्हें बालू मिट्टी से भर दिया जाय जिससे शेष कोयला सुगमता से निकाला जा सके। (५) बढ़िया कोयले का उत्पादन सीमित किया जाय। (६) कोयले के द्वारा शक्ति का एक कण भी यदि प्राप्त हो तो उसे प्राप्त कर लिया जाय। अतः कोयले से मुलायम कोक बनाने की रीति को बदलना चाहिए। अभी सॉफ्ट कोक के उत्पादन में बड़ा अपव्यय होता है। (७) भारतीय कोयले की खानों को पूर्ण रूप से व्यक्तिगत पूँजीपतियों के हाथों में न छोड़ा जाय क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य कोयला निकालने से धन कमाना है न कि देश की इस बहुमूल्य निधि को उचित रूप से उपयोग करना। (८) नये कोयले के क्षेत्रों का पता लगाया जाय तथा घरों में उत्तम श्रेणी के कोयले जलाने पर प्रतिबन्ध लगाया जाय। (९) रासायनिक दृष्टि से भारतीय कोयले का विश्लेषण कर यह ज्ञात करना कि कौन-सा कोयला किस काम में प्रयुक्त किया जा सकता है। (१०) यदि कोक योग्य कोयले का उत्पादन देश की माँग से अधिक हो तो उसे विदेशों को निर्यात कर विदेशी-मुद्रा अर्जित की जाने। (११) यातायात और उद्योगों में काम आने वाली शक्ति घटिया कोयले या उसके चूरे से ही बनायी जाय और अच्छे कोयले को बचाकर धातु शोधन के लिए रखा जाय। (१२) अधिक गहराई पर जहाँ कोयले का खनन अधिक कठिन हो, कोयले का वातिकरण (gasification) करके उसे प्राप्त किया जाये। १·५ मीटर से कम चौड़े स्तरों पर भी खनन कार्य किया जाये। (१३) कोयले का उपयोग पाउडर और टिकियों (Briquettes) के रूप में किया जाये। (१४) कोयले के बाजार में क्रय-विक्रय की प्रणालियाँ भी अधिक विकसित एवं सुसंगठित हों।

धोवनशालाएँ (*Washeries*)

कोक बनाने के उपयुक्त कोयले की कमी को पूरा करने के लिए उत्तम और निम्न श्रेणी के कोयले का मिश्रण कर उससे मिश्रित कोयला (Blended Coal) प्राप्त किया जाता है। इसी तरह अधिक राख वाले कोयले को धोकर उसकी अशुद्धियाँ दूर कर उसे उद्योगों में प्रयुक्त किया जाता है। धुलाई की इस क्रिया को वाशिंग कहते हैं। कोयला धोने के लिए टाटा आयरन कम्पनी ने दो सयन्त्र पश्चिमी बोकारो और जमदोबा कोयला खानों के निकट स्थापित किये हैं। इनमें क्रमशः ५ लाख टन और १० लाख टन कोयला प्रति वर्ष धोया जाता है। ये दोनों कारखाने टाटा को लगभग १५ लाख टन धुला कोयला प्रतिवर्ष देते हैं। सोदना के कारखानों से इण्डियन आयरन कम्पनी को २½ लाख टन धुला कोयला मिलता है। करगाली के कारखाने से भिलाई और रूरकेला को लगभग ३५ लाख टन धुला कोयला मिलता है। दुगड़ा में झरिया का कोयला (१२ लाख टन) धोकर भिलाई और रूरकेला को, भोजूडीह से टाटा कम्पनी को (१४ लाख टन) तथा पाथेरडीह से इण्डियन आयरन कम्पनी को (१३ लाख टन) धुला कोयला मिलता है। अब कथारा, सवांग, दुर्गापुर और गीडी मे चार नयी धोवनशालाएँ और स्थापित की गयी हैं, जिनकी कोयला धोने की वार्षिक क्षमता क्रमशः १५, ७·५, ८·५० और १८ लाख टन की होगी। पाचवीं योजना में सभी धोवनशालाओं की सम्मिलित शोधन क्षमता १०० लाख टन हो जाने की है।

२. खनिज तेल
(MINERAL OIL)

खनिज तेल की प्राप्ति केवल प्रस्तरीभूत चट्टानों में ही सम्भव होती है, और वह भी तब जब तेल निर्माण के लिए प्रयुक्त भूगर्भीय दशाएँ विद्यमान हों। आग्नेय एव परिवर्तित चट्टानों में तेल कभी नहीं मिलता। तेल उन प्राचीन प्रस्तरीभूत चट्टानो मे भी नहीं मिलता जो कैम्ब्रियन युग से भी पुरानी हैं। इस प्रकार देश के प्रायद्वीपीय भागों में जहाँ या तो प्राचीन रवेदार परिवर्तित चट्टानें अथवा आग्नेय चट्टानें मिलती हैं, तेल का प्राप्त होना असम्भव है। दूसरे, ये प्रस्तरीभूत चट्टानें जीवाश्महीन हैं अतः तेल की प्राप्ति की शेष सम्भावनाएँ भी नहीं रहतीं। इसी प्रकार दक्षिण और मध्य भारत का बहुत बड़ा भाग ज्वालामुखी चट्टानों का बना होने से तेल स्रोतों में दरिद्र है। बालू और चूने की प्रस्तरीभूत चट्टानों मे तेल उसी तरह विद्यमान रहता है, जैसे स्पंज मे जल, खनिज तेल, हाइड्रो-कार्बन यौगिकों का मिश्रण होता है। करोड़ों वर्षों की अवधि मे वनस्पति एवं जीवो के बड़ी मात्रा में कीचड़ मिट्टी, बालू आदि में दबे रहने पर उन पर गर्मी, दबाव, रसायन, जीवाणु और रेडियो सक्रियता आदि क्रियाओं के फलस्वरूप खनिज तेल की उत्पत्ति होती है।

तेल क्षेत्र (Oil Belts)

खनिज तेल के प्राप्त स्रोतों की दृष्टि से भारत की स्थिति अभी सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती क्योंकि यहां के तेल-स्रोत उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में असम की मोड़दार पर्वत श्रेणियों तक ही सीमित हैं जो असम से लगाकर बर्मा होता हुआ इण्डोनेशिया तक चला गया है। ये सब क्षेत्र अत्यन्त प्राचीन युग में टेथिस सागर की पूर्वी खाड़ी के अवशेषों में स्थित हैं। असम में ही वर्तमान में सबसे अधिक तेल उस क्षेत्र से प्राप्त किया जाता है जो असम के उत्तर-पूर्वी कोने में लगाकर खासी, जयन्तिया श्रेणियों में होते हुए रामरी और चेडूबा द्वीपों तक लगभग १,३०० किलोमीटर की लम्बाई में चला गया है।

तेल और प्राकृतिक गैस कमीशन (Oil & Natural Gas Commission) द्वारा किये गये पर्यवेक्षणों द्वारा पता लगा है कि भारत में लगभग १०·३६ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में तेल मिलने की पूरी सम्भावनाएँ हैं। यह क्षेत्र विभिन्न राज्यों में निम्न प्रकार वितरित माना गया है :

१. असम और मेघालय क्षेत्र (जिसमें असम तेल कम्पनी का क्षेत्र और त्रिपुरा, मनीपुर राज्य सम्मिलित हैं)	६०,०००	वर्ग किलोमीटर
२. पश्चिमी बंगाल क्षेत्र (जिसमें पश्चिमी बंगाल के समीपवर्ती क्षेत्र—सुन्दरवन और उड़ीसा के तटीय भाग सम्मिलित हैं)	६०,०००	,,
३. पश्चिमी हिमालय प्रदेश क्षेत्र (जिसमें पंजाब, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर सम्मिलित हैं)	१,००,०००	,,
४. राजस्थान क्षेत्र	६३,०००	,,
५. गुजरात में खम्भात की खाड़ी क्षेत्र	१,३६,०००	,,
६. गंगा की उपत्यका	२,८४,०००	,,
७. तमिलनाडु के तटीय क्षेत्र	३४,०००	,,
८. आन्ध्र प्रदेश के तटीय क्षेत्र	१६,०००	,,
९. केरल के तटीय क्षेत्र	१२,०००	,,
१०. अंडमान-नीकोबार तट	६,०००	,,

असम और मेघालय का तेल क्षेत्र

असम और मेघालय में कई क्षेत्रों में तेल पाया जाता है : विशेषतः यहां की खासी और जयन्तिया पहाड़ियों के दक्षिणी निचले भागों में और उत्तरी-पूर्वी असम की कोयले वाली प्रस्तरीभूत चट्टानों में लखीमपुर जिलों में। इस क्षेत्र में शैल-तैल (Shale Oil) निकाला जाता है। यह सामान्यतः ४०० से २,००० मीटर की गहराई से प्राप्त किया जाता है। प्रमुख तेल क्षेत्र उत्तरी-पूर्वी असम से लगाकर सुरमा नदी

की घाटी में होता हुआ खमरी और चंदूबा द्वीपों तक लगभग १,३०० किलोमीटर की लम्बाई में पाया गया है।

असम में सबसे पहले तेल सन् १८२५ में ब्रह्मपुत्र की घाटी में देखा गया। यह चट्टानों की दरारों से बहता हुआ पाया गया।

असम में तेल की सबसे पहली खोज सन् १८३७ में सेना के एक अधिकारी द्वारा की गयी। इसने तेल के कई झरने खोज निकाले। सन् १८६५ में एक सरकारी भूगर्भशास्त्री द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि डिहिंग नदी के दक्षिण में माकुम स्थान पर तेल की खोज के लिए परीक्षणात्मक छिद्र किये जायें किन्तु सफलता सन् १८६७ में मिली जबकि माकुम क्षेत्र में ३६ मीटर की गहराई पर तेल मिला तथा ३०० गैलन तेल एकत्रित किया गया। सन् १८६८ में ४ और ५ नम्बर के कुओं से प्रतिदिन क्रमशः १००-१२५ गैलन और ५५०-६५० गैलन तेल प्राप्त किया गया।
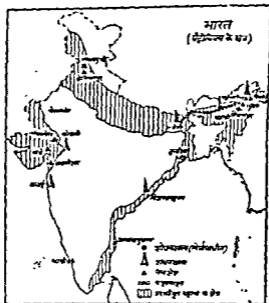
चित्र—१३१

सन् १८८२ में मारघरीटा में एक छोटी-सी शोधनशाला बनायी गयी। सन् १८९० में पहली बार डिगबोई नामक स्थान पर तेल मिला। सन् १९०० तक इसका उत्पादन केवल ४५·५ लाख लीटर से भी कम था। इस क्षेत्र से सन् १९२० में २२२·५ लाख लीटर, सन् १९३६ में २६६ लाख लीटर और सन् १९४४ में ३७४

लाख लीटर तेल प्राप्त किया गया। सब मिलाकर सन् १८८२ से १९५० तक इस क्षेत्र में ७०६ करोड़ लीटर तेल प्राप्त किया गया। सन् १८९८ तक यहाँ १५ और सन् १९२५ तक १२५ तेल कूप हो चुके थे। सन् १८९९ में यहाँ एक शोधनशाला स्थापित की गयी। आज भी इसी क्षेत्र से भारत का ६०% तेल प्राप्त किया जाता है। इसकी शोधनशाला में कच्चे तेल को साफ कर केरोसीन, पैट्रोल, गैसोलीन, ईथर, बेंजीन, मोबिल-आयल, पैराफीन, मोम और उपस्नेह तेल प्राप्त किया जाता है। यह शोधनशाला असम ऑयल कम्पनी के अधिकार में है। इस कम्पनी ने एक नया गैसोलीन सयन्त्र और मशीनों के काम में आने वाले तेल बनाने के लिए उचित व्यवस्था की है। सुरमा नदी की घाटी में पहली बार तेल सन् १९१७ में और मसीमपुर में १९१८ में निकाला गया जो बदरपुर से १६ किलोमीटर पूर्व की ओर स्थित है। ऊपरी असम में (माकूम-नामदग, जयपुर, तिरू-पहाड़ियाँ, बारसिला और निचुगार्ड में) सन् १९२० में तेल के कुएँ खोदे गये। प्रथम महायुद्ध के उपरान्त कोयले की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए तेल की खोजों पर विशेष ध्यान दिया गया। सन् १९३७ में दो बड़ी तेल कम्पनियों (बर्मा ऑयल कम्पनी और ब्रिटिश पैट्रोलियम कम्पनी) ने अंग्रेज सरकार के साथ समझौता कर भारतीय प्रायद्वीप की स्तरीभूत चट्टानों का भूभौतिक सर्वेक्षण किया।

सन् १९२५ में दिहिंग नदी के किनारे नहरकटिया में तेल मिलने का अनुमान लगाया गया किन्तु वास्तविक खुदाई सन् १९५३ में ही की जा सकी।

इस समय भारतीय तेल स्रोत में असम का स्थान सर्वोपरि है। यहाँ के मुख्य तेल क्षेत्र ये हैं :

डिगबोई क्षेत्र—नागा पहाड़ी क्षेत्र के लखीमपुर जिले की टीपम पहाड़ियों के पूर्वोत्तर में डिगबोई क्षेत्र स्थित है। यह क्षेत्र १३ किलोमीटर लम्बा और १ किलोमीटर चौड़ा है। यहाँ तेल २४ विभिन्न स्तरों में १,२०० मीटर की गहराई तक पाया जाता है। यह स्तरीभूत चट्टानें टीपम बलुहा पत्थर की हैं। यहाँ तेल क्षेत्र या तो मयूराकार हैं या विस्तृत। यहाँ लगभग ८०० तेल-कूप पाये जाते हैं, जिनकी प्रत्येक की उत्पादन क्षमता २०० टन प्रतिदिन की है। प्रमुख तेल-कूप बप्पापाग, हस्सापांग, डिगबोई और पानीटोला में हैं। यहाँ के तेल में एस्फाल्ट और मोम की मात्रा काफी है। तेल का बहाव बिन्दु ३०°C और आपेक्षिक घनत्व २४ है। इस तेल से डिगबोई की शोधनशाला में मोटर-स्प्रिट एवं कैरोसीन क्रमशः २३% और २२% निकाला जाता है। पैराफिन, मोम एवं मशीनों को चिकना करने वाला तेल भी प्राप्त किया जाता है। इस शोधनशाला की उत्पादन क्षमता ४.२ लाख मीट्रिक टन है। सन् १९५९ से यह क्षेत्र आयल इण्डिया कम्पनी के अधिकार में चला गया है।

नहरकटिया क्षेत्र—डिगबोई से ४० किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में दिहिंग नदी के किनारे नहरकटिया में ४,००० से ५,००० मीटर की गहराई तक कुएँ खोदे

गये हैं, जिनकी उत्पादन क्षमता लगभग २५ लाख टन की है। यहाँ के तेल का बहाव विन्दु ३६-३२°C और आपेक्षिक घनत्व ८६ है। इस क्षेत्र में अब तक ८४ से अधिक कुएँ खोदे जा चुके हैं जिनमें ६० से तेल प्राप्त हुआ है और ४ से गैस मिली है। इस क्षेत्र से प्रतिदिन ८ से १० लाख घन मीटर गैस प्राप्त होने का अनुमान है। इस क्षेत्र के कच्चे तेल को बिहार के बरौनी और असम के नूनमती की शोधनशालाओं में ले जाकर साफ किया जाता है।

हुगरीजन-मोरान क्षेत्र नहरकटिया से ४० किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में है। यहाँ २६ कूपों में से २२ में तेल अनुमानित किया गया है। यहाँ प्राकृतिक गैस भी पायी गयी है।

सुरमा नदी घाटी क्षेत्र के अन्तर्गत हल्की श्रेणी का तेल दक्षिण में बदरपुर और पथरिया में निकाला जाता है। यहाँ ६० तेल कूप हैं जिनका वार्षिक उत्पादन लगभग २०,००० टन का है। दूसरा क्षेत्र मसीमपुर में है जहाँ लगभग १,८०० मीटर की गहराई से तेल निकाला जा रहा है।

नये क्षेत्र—सन् १९६२ में स्थापित तेल और प्राकृतिक गैस आयोग और सन् १९५९ में स्थापित ऑयल इण्डिया ने ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में रुद्रसागर और लखवा नामक स्थानों पर तेल का पता लगाया है। ऑयल इण्डिया के अनुसार असम के रुद्रसागर, लखाना, मोरान और नहरकटिया में लगभग ५० करोड़ टन के तेल के भण्डार हैं। कच्चा तेल गौहाटी शोधनशाला में परिष्कृत किया जाता है।

गुजरात के तेल क्षेत्र

गुजरात दूसरा महत्त्वपूर्ण राज्य है जहाँ से तेल प्राप्त किया जाता है। यहाँ उत्तर की ओर खंभात और दक्षिण की ओर अंकलेश्वर के प्रधान क्षेत्र हैं।

खभात या लुनेज तेल क्षेत्र बड़ौदा से ६० किलोमीटर पश्चिम में वाडसर में स्थित है। यहाँ वेधन कार्य सन् १९५८ में आरम्भ किया गया। यहाँ के कुओं में रूसी वैज्ञानिकों के अनुमार, तेलमय स्तरों की मोटाई देखते हुए कम से कम ३ करोड़ टन तेल विद्यमान है और सरलता से ही १५ लाख टन तेल प्रतिवर्ष प्राप्त किया जा सकता है। तेल के अतिरिक्त इस क्षेत्र से प्रतिदिन ५ लाख घन मीटर प्राकृतिक गैस भी प्राप्त की जा सकती है।

अंकलेश्वर क्षेत्र का पता सन् १९५८ में लगा। यह बड़ौदा से ३० किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में है। यहाँ तेल और प्राकृतिक गैस समुद्र के धरातल से १,१८० से १,२१० मीटर की गहराई से प्राप्त किया जाता है। इसकी उत्पादन क्षमता ७,००० टन दैनिक की है। इस तेल में गैसोलीन और केरोसीन पर्याप्त मात्रा में हैं। अंकलेश्वर का कच्चा तेल ट्राम्बे की एस्सो और बर्मा शैल तथा गुजरात की कोयली शोधनशालाओं में परिष्कृत किया जाता है। अंकलेश्वर में प्रतिवर्ष १० लाख घन मीटर प्राकृतिक गैस का उत्पादन भी होने का अनुमान है।

गुजरात में अहमदाबाद और उसके निकट कलोल, नवगाम, कोसम्बा, सनद, ओल्पाद, कथाना, धोलका, महसाना, मोपासन और कड़ी नामक स्थानों पर भी तेल के स्रोतों का पता लगा है।

सौराष्ट्र में भावनगर से ४५ किलोमीटर दूर अरब सागर में अलियाबेट द्वीप में अभी नये तेल भण्डार का पता लगाया गया है।

गुजरात के सभी क्षेत्रों का दैनिक उत्पादन ६,००० मीटर टन का है और वार्षिक उत्पादन लगभग २२ लाख मीटर टन का।

गंगा की घाटी का क्षेत्र

गंगा की घाटी में ११,००० मीटर मोटी स्तरीभूत चट्टानों से पर्याप्त मात्रा में तेल मिलने की सम्भावनाएं की गयी है। रूसी भूगर्भशास्त्री निकोलाई कालिनन के मतानुसार गंगा की घाटी के मध्यवर्ती भाग में रूस की यूराल पर्वत माला और वोल्गा नदी के बीच के क्षेत्र से भी अधिक विशाल भण्डार है।

उत्तर प्रदेश में चन्दौसी, तिलहर, दावागज और देहरादून में वेधन किया जा रहा है। *ग्रेवीमीट्रिक सर्वे के अनुसार उत्तर प्रदेश और बिहार में ५,००० मीटर तक* तेल पाये जाने की सम्भावना है।

बिहार में रक्सौल और किसनगज क्षेत्रों में भी तेल मिलने की पूरी सम्भावनाएं हैं।

राजस्थान क्षेत्र

यद्यपि राजस्थान की स्तरीभूत चट्टानों में से तेल की उपस्थिति उतनी उत्साहवर्द्धक नहीं है तब भी प्राकृतिक गैस के एक बड़े भण्डार का अनुमान लगाया जा रहा है क्योंकि इसी प्रकार की गैस के भण्डार पश्चिमी पाकिस्तान में सुई, कोहकोट और मरी में मिले हैं। ऐसी ही भूगर्भिक अवस्थाएं जैसलमेर में भी पायी जाती हैं।

पंजाब क्षेत्र

इसके अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश, *जम्मू-कश्मीर में लगभग १ लाख वर्ग* किलोमीटर क्षेत्र में तेल प्राप्त होने के सकेत मिले हैं। पंजाब के होशियारपुर, लुधियाना और दासूआ क्षेत्रों में तेल के स्तर वर्तमान हैं। ज्वालामुखी, नूरपुर, धर्मशाला और बिलासपुर तथा जम्मू में भुसलगढ़ में भी तेल मिलने की सम्भावना है।

पश्चिमी बंगाल क्षेत्र में सुन्दरवन में इण्डोस्टैन वैक पैट्रोलियम कम्पनी द्वारा १० तेल कूपों के वेधन का कार्य आरम्भ किया गया किन्तु अच्छे स्रोतों का पता नहीं लग पाया।

अन्य क्षेत्र

तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग द्वारा कावेरी नदी की घाटी एवं तमिलनाडु की पाक की खाड़ी में किये गये सर्वेक्षण काफी उत्साहवर्द्धक हैं।

उडीसा के आठगढ, पुरी, बालासोर एव बारीपदा स्थानों में भी तेल की उपस्थिति की आशा की जाती है।

पश्चिमी तट पर केरल राज्य मे तथा अडमान-नीकोबार द्वीपों के तटीय क्षेत्र मे, कोरोमण्डल के तटीय भागों और कच्छ तथा खमात के निकट निरन्तर सर्वेक्षण किये जा रहे हैं।

तेल का उत्पादन, माँग एवं उपभोग

भारत का तेल का उत्पादन अभी भी देश की आवश्यकता से कम है। सन् १९६१ मे उत्पादन केवल ४०,००० टन था। किन्तु यह बढ़कर सन् १९६३ में १० लाख टन और मन् १९६७ मे ३० लाख टन हो गया। देश की आवश्यकता सन् १९६१ में ७५ लाख टन की और सन् १९६६ में १४० लाख टन की अनुमानित की गयी। सन् १९६८ में हमारी आवश्यकता १५८ लाख टन की थी जो सन् १९७१ मे बढ़कर २२० लाख टन हो गयी और सन् १९७५ मे ३२० लाख टन होने का अनुमान है। अतएव, इस बढ़ती हुई मांग की पूर्ति के लिए एक ओर नये क्षेत्रों का पता लगाया जा रहा है और दूसरी ओर तेल शोधनशालाओ की क्षमता को बढाने के प्रयास किये जा रहे हैं। इस बीच मे कच्चे तेल का उत्पादन मन् १९६७ के ५७ लाख टन से बढाकर सन् १९७१ मे ९४ लाख टन और सन् १९७४ मे ९७ लाख टन करने का प्रयत्न किया गया।

पैट्रोलियम का उपभोग

(लाख टनो मे)

वर्ष	उपभोग	वर्ष	अनुमानित उपभोग
१९६०	७७·८	१९६८	१५७ ३
१९६१	८३ ६	१९६९	१७४·४
१९६२	९२·८	१९७०	१९६·१
१९६३	१०३·५	१९७१	२१७·२
१९६४	११३·६	१९७२	२४३ ५
१९६५	१२२·८	१९७३	२७४·२
१९६६	१२९·७	१९७४	२९५·८
१९६७	१३९·७	१९७५	३१६ ६

विभिन्न प्रकार की वस्तुओ की माँग मे वृद्धि इस प्रकार अनुमानित की गयी है :

वस्तु	१९६२	१९७५
केरोसीन	२९%	१३ ८%
भारी वस्तुएँ	२४%	२०·०%
डीजल	२९%	२९·०%
हल्के तेल	१२%	२४·५%

तृतीय योजनाकाल में तेल का उत्पादन लक्ष्य ६० लाख मीट्रिक टन का रखा गया किन्तु १९६५-६६ में केवल ३५ लाख टन, १९६७-६८ में ५८'५ लाख टन, १९६८-६९ में ६०'६ लाख टन, १९६९-७० में ६७'० लाख टन और १९७०-७१ में ६८'१ लाख टन तेल उत्पन्न हुआ। चतुर्थ योजनाकाल में उत्पादन का लक्ष्य ९७ लाख टन रखा गया है।

तेल भण्डार (Oil Reserves)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय तेल क्षेत्रों को उन्नति की ओर विदेशी सरकार का ध्यान अत्यन्त उपेक्षापूर्ण था। काफी समय तक भारतीय तेल का समस्त भण्डार ५ लाख टन तक ही आँका जाता रहा किन्तु अब अन्तरराष्ट्रीय भूगार्भिक सम्मेलन द्वारा ६०० करोड़ टन तक आँका जा चुका है। इसमें से अनुमानत ५० करोड़ टन के जमाव असम में और ५० करोड़ टन के गुजरात में हैं, शेष भारत के अन्य भागों में। इन दोनों राज्यों में प्राकृतिक गैस के भण्डार क्रमश. १,१०,००० लाख घन मीटर और ३,२०,००० लाख घन मीटर के अनुमानित किये गये हैं।

भारत में तेल के नये क्षेत्रों और तेल भण्डारों के सर्वेक्षण करने हेतु तेल एव **प्राकृतिक गैस आयोग** (The Oil and Natural Gas Commission) की स्थापना सन् १९५६ में की गयी। तभी से इसने रूस, रूमानिया, जर्मनी, फ्रास, कनाडा और अमरीका के विशेषज्ञों की सहायता से देश के विभिन्न भागों में पायी जाने वाली १०'३६ लाख वर्ग किलोमीटर भूमि की स्तरीभूत चट्टानों वाले क्षेत्रों की जाँच-पड़ताल की है। इसका कार्यक्षेत्र पंजाब, राजस्थान, गुजरात, खम्भात की खाड़ी, कावेरी और नर्मदा की घाटी, उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्र और असम के नहरकटिया एवं मोरान क्षेत्रों तक विस्तृत है। सन् १९५९ में असम के तेल क्षेत्रों का विकास करने के लिए **आयल इण्डिया लिमिटेड** (Oil India Ltd) का गठन किया *गया है। इसने नहरकटिया, मोरान और हुगरीजन क्षेत्रों में तेल उत्पादन में वृद्धि* करने और प्राकृतिक गैस तथा नये क्षेत्रों के विकास और कच्चा पैट्रोलियम ढोने के लिए नूनमती और बरौनी के बीच नलों की व्यवस्था की है।

तेल शोधनशालाएँ (Oil Refineries)

प्रथम योजना के आरम्भ तक भारत की पैट्रोलियम सम्बन्धी सभी आवश्यकताएँ प्रायः आयात द्वारा ही पूरी की जाती थी। असम में डिगबोई की एकमात्र शोधनशाला से देश के माँग की केवल ५% मात्रा पूरी होती थी। इसकी उत्पादन क्षमता केवल ४ लाख टन की थी। अतः प्रथम योजनाकाल में दो नयी शोधनशालाएँ *स्थापित करने का निश्चय किया गया। ये दो शोधनशालाएँ बम्बई में ट्राम्बे में निर्मित* की गयीं। एक सन् १९५४ में न्यूयार्क की एस्सो कं० द्वारा और दूसरी सन् १९५५ में लन्दन की बर्मा शैल क० द्वारा। इनकी उत्पादन क्षमता क्रमश. २४ लाख टन और

२२ लाख टन की रखी गयी। दूसरी योजना में सन् १९५७ में विशाखापट्टनम में कॅल्टेक्स कं० द्वारा एक शोधनशाला और स्थापित की गयी जिसकी उत्पादन क्षमता ६½ लाख टन की थी। सन् १९७१ इन मे तीन शोधनशालाओ का उत्पादन ८४ लाख टन का था।

सन् १९५८ मे स्थापित इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन की एक सहायक इण्डियन रिफाइनरीज लि० के द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में गोहाटी के निकट नूनमती में एक शोधनशाला बनायी गयी। यह दो चरणों में समाप्त हुई। पहला चरण सन् १९६१ के अन्त तक समाप्त हुआ। इसके अन्तर्गत नहरकटिया का कच्चा तेल नूनमती तक पहुँचाने के लिए ४३५ किलोमीटर लम्बे और ½ मीटर व्यास के नल डाले गये। यह कार्य रूमानिया सरकार के सहयोग से पूरा किया गया। इसकी उत्पादन क्षमता ७·५ लाख टन की है। द्वितीय चरण सन् १९६५ के आरम्भ मे समाप्त हुआ। इसके अन्तर्गत नूनमती से बरौनी (बिहार) के बीच ७२५ किलोमीटर लम्बे मार्ग मे १ मीटर व्यास वाले नल डाले गये। इसकी उत्पादन क्षमता ३० लाख टन की है। यह चरण रूस सरकार के सहयोग से पूरा किया गया।

सन् १९७२ में नूनमती और बरौनी शोधनशालाओं का उत्पादन क्रमशः ८ लाख टन और २२ लाख टन का हुआ। सन् १९७५ तक इनकी क्षमता ११ लाख टन और ३४ लाख टन की हो जाने का अनुमान है।

दूसरी योजना मे ही बड़ोदा के निकट कोयली मे रूसी सरकार की सहायता से एक और शोधनशाला निर्मित की गयी जिसका प्रथम चरण सन् १९६५ में और दूसरा चरण सन् १९६६ में पूरा किया गया। इसकी उत्पादन क्षमता २० लाख टन की है। इसमें गुजरात में प्राप्त कच्चे तेल का शोधन किया जाता है। इसका निर्माण सार्वजनिक क्षेत्र मे इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन के तत्वावधान मे किया गया। सन् १९७५ तक इसकी क्षमता को बढ़ाकर ५५ लाख टन किया जा रहा है। सन् १९७१ में इसका उत्पादन ३७ लाख टन का हुआ।

सन् १९६३ में अमरीका की फिलिप पेट्रोलियम कं० और भारतीय कम्पनी के बीच किये गये एक समझौते के अन्तर्गत एक शोधनशाला कोचीन (अम्बालामुगुल) में सन् १९६६ में बनकर तैयार हुई। इसकी क्षमता २५ लाख टन की थी। सन् १९७४ में यह बढ़ाकर ३३ लाख टन कर दी गयी। यहाँ १९७२ में २३.५ लाख टन तेल साफ किया गया।

सन् १९६५ में भारत सरकार, मद्रास रिफायनरीज लिमिटेड और नेशनल इरानियन ऑयल कम्पनी के बीच किये गये समझौते के अनुसार मद्रास के निकट मनाली में स्थापित की गयी है। इसकी उत्पादन क्षमता २५ लाख टन की रखी गयी है। सन् १९७५ तक यह ३५ लाख टन हो जायेगी। १९७१ में २६.५ लाख टन तेल साफ किया गया।

सन् १९६७ में इस क्षेत्र में एक और समझौता भारत सरकार तथा फ्रांसीसी और रूमानिया फर्मों के साथ किया गया जिसके अन्तर्गत कलकत्ता के निकट एक और शोधनशाला हल्दिया में बनायी जा रही है जिसके १९७४ तक पूरा होने का अनुमान है। इसकी उत्पादन क्षमता २५ लाख टन की होगी।

इस प्रकार स्पष्ट होगा कि भारत में तेल शोधनशालाएँ निजी और सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं।

निजी क्षेत्र में एस्सो (ट्राम्बे), बर्मा शैल (ट्राम्बे), कैलटैक्स (विशाखापट्नम)। सार्वजनिक क्षेत्र में गौहाटी (नूनमती), बरौनी, कोयली, कोचीन, मद्रास, हल्दिया और बोनगाई गाँव।

बम्बई और विशाखापट्नम में विदेशों से प्राप्त किया गया तेल साफ किया जाता है। इनकी सम्मिलित शोधन क्षमता १९६७-६८ में १४१ लाख टन की थी। १९६८-६९ में यह १६२ लाख टन और १९७०-७१ में २०० लाख टन की थी। १९७१ में यह २२२ लाख टन, १९७३ में २७३ लाख टन और १९७५ में ३२० लाख टन हो जाने का अनुमान है।

शोधनशालाओं की क्षमता

(लाख टनों मे)

	१९७०	१९७१	१९७२	१९७३	१९७४	१९७५
१. निजी क्षेत्र	८१'०	८२'०	८२'०	८२ ०	८२'९	८२ ०
२. सार्वजनिक क्षेत्र	१२५ ५	१३७ ५	१५६'२	१६७ ५	१६७ ५	१६७'५
योग	२०६'५	२१९ ५	२३८ ५	२४९'५	२४९ ५	२४९'५

एक और नयी शोधनशाला असम में गौहाटी से १७० किलोमीटर पश्चिम में बोनगाई गाँव में बनायी जा रही है। यह १९७५ तक बनकर तैयार हो जायगी। इसमें १०० करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान है। यहाँ गंधक, हल्का डीजल तेल, नैफ्था, गैसोलिन, कैरोसीन तथा पोलीस्टर स्टैपल धागा और आर्थोजाईलीन धागा भी बनाया जायगा जिसका उपयोग निकट में ही स्थापित पैट्रो-रासायनिक उद्योग से प्राप्त प्लास्टिक की वस्तुएँ बनाने में होगा। इसकी शोधन क्षमता प्रति वर्ष १० लाख टन की होगी।

मथुरा में एक नयी शोधनशाला, जिसकी उत्पादन क्षमता ६० लाख टन प्रति वर्ष की होगी, स्थापित किये जाने का निश्चय किया गया है।

तेल का व्यापार

जैसा कि ऊपर कहा गया है तेल के उत्पादन में भारत की स्थिति बड़ी दयनीय है। १९५०-५१ में विदेशों से ५५ करोड़ रुपये के मूल्य का कच्चा तेल आयात किया गया। १९५५-५६ में आयात का मूल्य ५६ करोड़, १९६०-६१ में ७० करोड़, १९६५-६६ में ६१ करोड़, १९७०-७१ में १३६ करोड़, १९७१-७२ में ११५ करोड़ और १९७२-७३ में २०४ करोड़ रुपया था।

आयात का अधिकांश कच्चे तेल, डीजल, पैट्रोलियम, उपस्नेहक तेल के रूप मे होता है। मुख्य निर्यातक देश ईरान, बर्मा, इण्डोनेशिया, ईराक, सऊदी अरब, बहरीन द्वीप, संयुक्त राज्य अमरीका, रूस और रूमानिया हैं।

३. जलविद्युत शक्ति (HYDRO-ELECTRICITY)

भारत जैसे देश के लिए जलशक्ति का महत्त्व अधिक है क्योंकि :

(१) यहाँ कोयले की अधिकाश खानें पूर्वी क्षेत्रों मे ही हैं जहाँ से पश्चिमी और दक्षिणी क्षेत्रों में कोयला प्राप्त करने मे व्यय और समय दोनों ही अधिक लगते हैं।

(२) यहाँ उत्तम कोयले के भण्डार सीमित हैं। एक अनुमान के अनुसार ये केवल १०,६०० करोड़ टन के ही हैं तथा मुख्यत. पूर्वी और मध्य भारतीय क्षेत्र मे सन्निहित हैं। अत. इस अभाव को जलशक्ति के विकास से पूरा करना आवश्यक है।

(३) भारत मे पैट्रोलियम और प्राकृतिक गैस के भण्डार भी कम हैं। ये क्रमश: १४ करोड़ टन और ६,३६० करोड़ घन मीटर के अनुमानित किये गये हैं। अतः जल का उपयोग अवश्यम्भावी है।

(४) सतलज और गंगा के मैदान तथा पश्चिमी राजस्थान में कई स्थानों पर जल गहराई पर मिलता है तथा भूगर्भ में प्राचीनकाल की सरस्वती और हकारा नदियाँ विलुप्त हो गयी मानी जाती हैं। इनके जल को सिंचाई के लिए व्यवहृत किये जाने का प्रयास हो रहा है किन्तु नल-कूपों के लिए सस्ती जलशक्ति अत्यन्त आवश्यक होती है। अत: जलशक्ति का विकास अवश्यम्भावी है।

(५) अल्यूमीनियम, वायु से नेत्रजन प्राप्त करने, लकड़ी चीरने, कागज बनाने और इस्पात तैयार करने के लिए बड़ी मात्रा में सस्ती जलविद्युत शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक विकास की नीति के अन्तर्गत देश के विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों के विकेन्द्रीकरण को मूर्त रूप देने में जलशक्ति बड़ा प्रभाव डालती है। फलत. इसका विकास आवश्यक है।

(६) कई क्षेत्रों में कोयले के अभाव में रेलगाड़ियाँ पूरी तरह नहीं चल पातीं अत. ऐसे क्षेत्रों में जल-विद्युत का उपयोग (जैसे, कलकत्ता, कानपुर, बम्बई, हैदराबाद, बम्बई, मद्रास, आदि क्षेत्रों मे) करना उचित है। इससे रेलों की गति भी बढ़ेगी और उनके सचालन में व्यय कम होगा तथा कोयले की बचत की जाकर उद्योगों के लिए कई उप-उत्पादन (by-products) प्राप्त किये जा सकेंगे।

(७) ऊर्जा सर्वेक्षण समिति (Energy Survey Committee) के अनुसार शक्ति के सभी साधनों में जलविद्युत उत्पादन की लागत प्रति किलोवाट घण्टा केवल ३ पैसे आती है, जबकि ताप विद्युत (कोयले से) की लागत ६ से ७ पैसे और परमाणु ऊर्जा की लागत ९ पैसे प्रति किलोवाट घण्टा है। अतएव जलविद्युत शक्ति का विकास करना देश के हित में है।

(८) विद्युत बनाने के बाद जो पुच्छल जलराशि (tail water) अभी व्यर्थ में चली जाती है उसका समुचित उपयोग कर सिंचाई का क्षेत्रफल बढ़ाया जा सकता है। सौभाग्यवश भारत में जलशक्ति का अपार भण्डार भरा है, जिसके विकास की सम्भावनाएँ अधिक हैं। एक अनुमान के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत रूस के बाद भारत में ही सबसे अधिक जलविद्युत का उत्पादन किया जा सकता है। भारत के शक्ति आयोग (Energy Commission) के अनुसार देश की नदियों में बहने वाले जल में ४,११ लाख किलोवाट शक्ति निहित है।

ब्रह्मपुत्र ... १२५ लाख kw, पश्चिमी घाट की पश्चिमी नदियाँ ४३ लाख kw, दक्षिणी भारत की पूर्वी नदियाँ ८६ लाख kw, गंगा बेसीन ४८ लाख kw, मध्य भारतीय नदियाँ ४३ लाख kw, सिन्धु ६६ लाख kw।

इसमें से अभी बहुत ही कम शक्ति का उत्पादन (लगभग ६० लाख किलोवाट) किया जा रहा है। सम्भवतः शक्ति का अभी केवल १५% का ही उपयोग हो रहा है जबकि नार्वे जैसे छोटे देश में सम्भावित शक्ति का ५३%, स्विट्जरलैण्ड में ६७%, रूस में ३४%, कनाडा में ३५% और फ्रांस में ३२% उपयोग किया जा रहा है। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि देश में सम्भावित शक्ति का समुचित उपयोग किया जाये।

जलविद्युत शक्ति का विकास

भारत में पहला जलविद्युत शक्ति गृह सन् १८९८ में दार्जिलिंग में स्थापित किया गया जिसकी क्षमता २० किलोवाट की थी। इसके बाद १९०२ में कर्नाटक में कावेरी नदी के जलप्रपात शिवासमुद्रम पर ४,२०० किलोवाट शक्ति वाला शक्ति उत्पादक यन्त्र लगाया गया। सन् १९०६ में जम्मू-कश्मीर में झेलम नदी पर मोहरा नामक स्थान पर ४,५०० किलोवाट शक्ति का यन्त्र लगाया गया। सन् १९३० तक देश में जलविद्युत शक्ति की उत्पादन क्षमता २·८ लाख किलोवाट हो गयी थी। सन् १९५१ के बाद जलविद्युतशक्ति के विकास में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। सन् १९५०-५१ में सभी साधनों द्वारा उत्पादित क्षमता २३ लाख किलोवाट की थी। इसमें जलविद्युत शक्ति का भाग ५·६ लाख किलोवाट था। इस काल में हीराकुड, भाकड़ा, चम्बल और तुंगभद्रा योजनाओं को हाथ में लिया गया। द्वितीय योजना काल में कुल उत्पादन क्षमता बढ़कर ३४.२ लाख किलोवाट हो गयी। इसमें से ९४ लाख किलोवाट जलविद्युत शक्ति थी। इस काल में बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए मच्छकुण्ड, पेरियार, कुण्डा, सिलेरू, नैरीमंगलम, शोलायार, सबरीगिरि, शरबती, कोयना, रिहन्द, गाँधीसागर परियोजनाओं को कार्यान्वित किया गया। अतः तृतीय योजनाकाल में जलविद्युत शक्ति की उत्पादन क्षमता ४१·४ लाख किलोवाट हो गयी जबकि कुल शक्ति उत्पादन क्षमता १०१·७ लाख किलोवाट की थी। मार्च १९७१ में यह क्षमता क्रमशः ५९·० लाख किलोवाट और १४१·० लाख किलोवाट थी। कुल शक्ति उत्पादन में जलविद्युत का भाग १९५६ में ३५% से लगाकर

१९६६ मे ४३% और १९७१ में ४१% हो गया। चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल में शक्ति उत्पादन की कुल क्षमता १८९ लाख किलोवाट थी। इसमें से ७२·२ लाख किलोवाट जलविद्युत शक्ति थी, अर्थात् कुल का ४०%।

शक्ति की स्थापित क्षमता में वृद्धि[1] (लाख किलोवाट)

शक्ति के प्रकार	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९६९-७०	१९७२-७३
जल विद्युत	५·६	९·४	१९·२	४१·०	६१·४	६७·८
कोयला ताप शक्ति	१५·९	२२·७	३४·३	५६·५	९१·०	१०७·५
तेल ताप शक्ति	१·५	२·१	३·०	४·०	२·८	३·६
परमाणु शक्ति	—	—	—	—	—	—
योग	२३·०	३४·२	५६·५	१०१·२	१५५·२	१७८·९

प्रथम योजनाकाल में जलविद्युत शक्ति उत्पादन पर २६० करोड़ रुपया; द्वितीय योजना में ४६० करोड़ रुपया; तृतीय योजना में ९२५ करोड़ और चतुर्थ योजना में १,१५० करोड़ रुपये का व्यय रखा गया।

प्रति व्यक्ति पीछे जलविद्युत शक्ति का उत्पादन उपभोग १९५१ में २१ किलोवाट घण्टे से बढ़कर १९५६ में ३१ किलोवाट घण्टा; १९६०-६१ में ४४ किलोवाट घण्टा, १९६६ में ८५ किलोवाट और १९७१-७२ में १२० किलोवाट घण्टा हो गया।

विभिन्न राज्यों मे जलशक्ति की अनुमानित मात्रा एवं सम्भावित विकसित मात्रा

राज्य	जलशक्ति की सम्भावित मात्रा (लाख किलोवाट)	जलशक्ति की सम्भावित विकसित मात्रा (लाख किलोवाट)
आन्ध्र	३४·८	६ ५
असम	२५·७	०·४
बिहार	६·१	० ८
गुजरात	६·८	० १
जम्मू-कश्मीर	३५·९	१ ९
केरल	१५ ४	८ ६
मध्य प्रदेश	४५·८	१ ४
महाराष्ट्र	१९·१	७ २
कर्नाटक	३३·७	१० ०
उड़ीसा	२०·६	४ ७
पंजाब-हरियाणा	२ १	१६ ४
राजस्थान	१·५	
हिमाचल प्रदेश	२९ १	

1 *India*, 1974, p. 213.

तमिलनाडु	७ १	७ १
उत्तर प्रदेश	३७ ६	७ ७
पश्चिमी बगाल	० २	० २
मनीपुर	८ ७	०'७
अरुणाचल प्रदेश	६० ३	—
योग	४११ ५	७४'५

(*Source—Commerce Annual*, 1970, p 133)

जलशक्ति के क्षेत्र (Water Power Areas)

भारत में स्पष्टतः जलशक्ति के तीन क्षेत्र पाये जाते हैं

(१) सम्भावित जलविद्युत का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र हिमालय पर्वत के सहारे पश्चिमी कश्मीर से लगाकर पूर्व में असम के पहाड़ी क्षेत्रों तक फैला है। इसमें विद्युत उत्पादन के लिए अनुकूल अवस्थाएँ पायी जाती हैं। सम्पूर्ण क्षेत्र में हिमाच्छादित
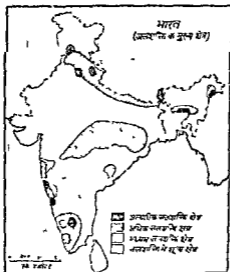
चित्र—१३ २

चोटियों से निकलकर बहने वाली मुख्य नदियों में वर्ष भर ही जल भरा रहता है तथा नदियों के मार्ग में कई प्रपात होने के कारण उपयुक्त स्थानों पर जल रोककर बाँध बनाये जा सकते हैं किन्तु इस प्रकार उत्पादित शक्ति अधिक दूर तक नहीं भेजी जा सकती।

(२) जल-विद्युत शक्ति का दूसरा विशाल क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप की पश्चिमी सीमा के सहारे महाराष्ट्र राज्य में होकर तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल तक फैला है।

(३) उपर्युक्त दोनों क्षेत्रों के मध्य में मध्य प्रदेश में तीसरा विस्तृत जल-विद्युत शक्ति का क्षेत्र है जो सतपुड़ा, विन्ध्याचल, महादेव और मैकाल की पहाड़ियों के सहारे-सहारे पश्चिम से पूर्व की ओर चला गया है। यह क्षेत्र अधिक धनी नहीं है।

पृष्ठ ५३२-३३ की तालिका से स्पष्ट होगा कि भविष्य में जम्मू-कश्मीर, असम, केरल, कर्नाटक, अरुणाचल प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में जलविद्युत शक्ति के विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं।

आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और महाराष्ट्र में जल और कोयला दोनों ही मिलते हैं अतः शक्ति का विकास इन दोनों स्रोतों के पूर्ण समन्वय द्वारा ही किया जाना चाहिए।

पश्चिम बंगाल और दक्षिणी बिहार में कोयले की ताप शक्ति का अधिकतम उपयोग होना वाञ्छनीय है।

हरियाणा, पंजाब और तमिलनाडु में जल-शक्ति के विकास की सम्भावनाएँ कम हैं, अतः इन्हें अपने पड़ोसी राज्यों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा।

गुजरात और राजस्थान कोयला और जलशक्ति दोनों में ही दरिद्र हैं, अतः इनमें परमाणु शक्ति का विकास किया जाना चाहिए।

भारत में जलशक्ति के भण्डार

सन् १९२१ में मेयर्स द्वारा भारतीय जलशक्ति का अनुमान लगाया गया था। इसके अनुसार सम्पूर्ण देश में ३५ लाख से लगाकर ८० लाख किलोवाट शक्ति की सम्भावनाएँ मौजूद थीं किन्तु यह अनुमान बाद की खोजों से गलत सिद्ध हुए हैं। १९५३ में केन्द्रीय जल और शक्ति आयोग ने एक देशव्यापी सर्वेक्षण कर बताया कि देश की विभिन्न नदियों में बहने वाले जल से ४·११२ करोड़ किलोवाट शक्ति ६०% भारांश पर उत्पन्न की जा सकती है अर्थात् २,१६,००० करोड़ किलोवाट घण्टा शक्ति उत्पन्न हो सकती है जबकि अभी तक इस जलराशि का बहुत ही थोड़ा उपयोग हो पाया है।

६०% भारांश पर भारतीय नदियों में जल-शक्ति की सम्भावित मात्रा

नदी क्रम	परियोजनाएँ जो आरम्भ की जा सकती हैं (संख्या)	सम्भावित क्षमता (००० किलोवाट)	वार्षिक शक्ति का उत्पादन (००० किलोवाट घण्टा)
१. सिन्धु	३७	६,५८२	३४,५००
२. गंगा	५८	४,८२८	२१,०००

३. ब्रह्मपुत्र	४१	३१,४८६	६५,६००
४. मध्य भारतीय नदियाँ	३६	४,२८७	२३,५००
५. पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ	३४	४,३४५	२२,८००
६. पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ	६१	८,६३६	४५,३००
योग (नेपाल, सिक्किम सहित)	२६०	५,०३५	२,६४,०००
योग (इन्हें छोड़कर)		४१,१५५	२,१६,०००

दक्षिणी भारत में जल-विद्युत शक्ति

महाराष्ट्र की टाटा जल-विद्युत शक्ति परियोजना

यह भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण जल-विद्युत परियोजना है जो पश्चिमी घाट में विकसित की गयी है। इन घाटों पर अत्यधिक वर्षा होती है। इस जल को संग्रहित कर शक्ति उत्पन्न करने के लिए टाटा जल-विद्युत कम्पनी की इकाई स्थापित की गयी। सन् १९१५ में भोरघाट के ऊपर बाँध बनाकर लोनावाला, वलह्वान और शिरवता नामक तीन झीलें तैयार की गयीं। वर्षा का जल इन झीलों में इकट्ठा किया जाता है और नहरों द्वारा लोनावाला झील तक लाया जाता है। यहाँ से जल नलों द्वारा ५१० मीटर की ऊँचाई से खोपोली शक्तिगृह के पास गिराया जाता है। इससे ७२,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है। यह शक्ति ११३ किलोमीटर दूर बम्बई की मिलों को भेजी जाती है।

इसी परियोजना के विकास के उपरान्त भी महाराष्ट्र में विद्युत की माँग इतनी अधिक थी कि टाटा कम्पनी उसे पूरा नहीं कर सकती थी। इसलिए टाटा कम्पनी ने सन् १९२२ में आन्ध्र घाटी जल-विद्युत परियोजना आरम्भ की जिसके अनुसार लोनावाला के उत्तर में ठोकरवाड़ी के समीप आन्ध्र नदी पर आधा किलोमीटर लम्बा और ५८ मीटर ऊँचा बाँध बनाकर नदी का जल रोका गया। यहाँ से २,६५१ मीटर लम्बी सुरंग द्वारा जल भीवपुरी के शक्तिगृह को ले जाकर ५६३ मीटर की ऊँचाई से गिराया जाता है। इस शक्तिगृह की उत्पादन क्षमता ७२,००० किलोवाट है। यहाँ की विद्युत बम्बई नगर, उसके उद्योगों, पोताश्रय और मध्य रेलवे के उपयोग में आती है। वास्तव में, आन्ध्र घाटी परियोजना पहली योजना का विस्तार-मात्र ही है।

तीसरी इकाई टाटा विद्युत कम्पनी द्वारा सन् १९२७ में स्थापित की गयी।

इसके अन्तर्गत नीलामूला नदी को मुलसी नामक स्थान पर एक बड़ा बांध बनाकर रोक दिया है। इस झील से ५३३ मीटर की ऊँचाई से जल भीरा के शक्तिगृह पर गिराया जाता है और उससे बिजली उत्पन्न की जाकर बम्बई की मिलों तथा पश्चिमी और मध्य रेलवे को दी जाती है। भीरा शक्तिगृह की उत्पादन क्षमता १३२ हजार किलोवाट है। यह शक्तिगृह बम्बई से १२० किलोमीटर दूर है।

चित्र—१३·३

पिछले तीन योजनाकाल में कोयना, वैतरणी और पूर्णा जलविद्युत परियोजनाएँ तथा अकोला, चोला, खापरखेड़ा एवं बल्लारशाह तापशक्ति गृहों का विकास किया गया है।

इन शक्तिगृहों की बिजली बम्बई नगर, निकटवर्ती स्थानों (थाना, कल्याण और पूना) को जाती है। इस सम्मिलित योजना से महाराष्ट्र के लगभग २,००० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को बिजली प्राप्त होती है। इन शक्तिगृहों को चोला वाष्प शक्तिगृह (क्षमता १३६ हजार किलोवाट), कोयना शक्तिगृह (५.४ लाख किलोवाट) और ट्राम्बे वाष्प शक्तिगृह (क्षमता ३१३ हजार किलोवाट) से जोड़कर जल एवं ताप विद्युत संगठन क्रम (Hydro Thermal Grid) बनाया गया है।

तमिलनाडु में जलविद्युत विकसित करने के उत्तम क्षेत्र नीलगिरि और पालनी की पहाड़ियों के मध्य में हैं। इस राज्य में तीन महत्त्वपूर्ण योजनाएँ विकसित की गयी हैं :

(१) पायकारा परियोजना (Paykara Project) के अन्तर्गत पायकारा नदी के आर-पार प्रमुख प्रपातों के ऊपर की ओर १९३२ में एक बाँध बनाया गया। इसके जल को ९४५ मीटर की ऊँचाई से गिराकर विद्युत उत्पन्न की जाती है। पायकारा की सहायक मुकुर्ती नदी पर भी सन् १९३८ में एक बाँध बनाकर अतिरिक्त जल संग्रहित करने की व्यवस्था की गयी। पूरे विकसित रूप में इस योजना की अनुमानित उत्पादन क्षमता १ लाख किलोवाट होगी। अभी इसकी क्षमता ७० ००० किलोवाट ही है। विद्युत शक्ति पहले कोयम्बटूर जाती है और फिर वहाँ से उदुमलपेट, इरोड, मदुराई, तिरुपुर, सम्बाती, तिरुचिरापल्ली, विरुधनगर और कोयलपट्टी को जाती है। इरोड और मदुराई की लाइनों को मैटूर और पापानासम प्रणालियों से जोड़ दिया गया है। पायकारा योजना के अन्तर्गत उत्पादित बिजली

तमिल प्रदेश के छोटे-छोटे गाँवों और नगरों को दी जाती है। इस योजना से कोयम्बटूर जिले का औद्योगिक विकास बहुत हो गया है। कोयम्बटूर के निकट मदुकराई में सीमेण्ट तथा नीलगिरि की चाय की फैक्ट्रियों, कृषि कार्यों और साधारण घरेलू कार्यों में इस शक्ति का उपयोग किया जाता है।

(२) मेटूर परियोजना (Mettur Project) के अन्तर्गत १९३७ में कावेरी नदी पर मेटूर प्रपात पर स्टेनले नामक ४३ मीटर ऊँचा एक बाँध बनाया गया जो २,२६,८०० लाख घनमीटर जल रोक लेता है। इस बाँध का अधिकांश सिंचाई के काम आता है। शेष को बिजली उत्पन्न करने में प्रयोग करते हैं। इससे जो विद्युत-शक्ति उत्पन्न होती है, उसकी मात्रा में मेटूर बाँध के जल की सतह के अनुसार घटा-बढ़ी होती रहती है। अतः जल की कमी के समय मेटूर बाँध को अन्य स्थानों की बिजली की आवश्यकता पड़ जाती है। इस समस्या को पायकारा और मेटूर की लाइन से मिलाकर हल कर लिया गया है। मेटूर बाँध से उत्पन्न की गयी बिजली उत्तर में सिंगारपेट और दक्षिण में इरोड को दी जाती है। इरोड पर मेटूर की विद्युत को पायकारा विद्युत के तारों से मिला दिया गया है। उत्तर में विद्युत लाइनें बैलोर, तिरुपुर, अम्बर, तिरुवन्नमलय, विल्लुपुरम तक फैली हुई हैं और दक्षिण में तिरुचिरापल्ली, तंजोर, नागापट्टम, चित्तूर, अरकोनम, कांजीवरम, चिंगलपुट, आदि स्थानों तक जाती हैं। मेटूर प्रणाली को मद्रास तापीय गृह से सिंगारपेट और मद्रास के बीच एक लाइन से जोड़ दिया गया है। इस प्रकार दक्षिणी भारत में इन शक्तिगृहों से विद्युत ले जाने वाली लाइनों को जोड़कर एक बड़ा जाल-सा बिछा दिया गया है। मेटूर योजना से तिरुचिरापल्ली, सलेम और मेटूर के उद्योगों, डालमियापुरम के सीमेण्ट के कारखाने और नागापट्टम के लोहे के रोलिंग मिल्स को शक्ति मिलती है। इस योजना की क्षमता ८०,००० किलोवाट से बढ़ाकर २ लाख कर दी गयी है।

(३) पापानासम परियोजना (Papanasam Project) तिरुनलवेली जिले में उस स्थान पर बनायी गयी है जहाँ पश्चिमी घाट के नीचे ताम्रपर्णी नदी १०० मीटर की ऊँचाई से पापानासम प्रपात पर गिरती है। इस प्रपात से १० मीटर ऊपर एक ४३ मीटर ऊँचा बाँध बनाकर १,४४० लाख घन मीटर जल रोका गया है। यहाँ से बिजली तूतीकोरिन, कोयम्बटूर और मदुराई को भेजी गयी है और मदुराई पर इसे पायकारा योजना से जोड़ दिया गया है। इसकी उत्पादन क्षमता २८,००० किलोवाट है। यह योजना सन् १९३८ में बनायी गयी थी।

उपर्युक्त तीनों योजनाएँ एक विद्युत शक्ति ग्रिड (Electric Grid System) के रूप में सम्बन्धित हैं। दक्षिण में यह ग्रिड पूर्ण रूप से व्यवस्थित है और तिरूर से तिरुनलवेली तक तथा चिंगलपुट से मालाबार तक के १२ जिलों के अधिकांश भागों को घेरे हुए है। इन जिलों के लगभग ४० नगरों और ११८ गाँवों को बिजली मिलती है। इन तीनों शक्तिगृहों की सम्मिलित उत्पादन क्षमता १ लाख किलोवाट है। इस ग्रिड से कपड़ों की मिलों, सीमेंट के कारखानों, रासायनिक पदार्थ एवं चाय की फैक्ट्रियों को बिजली मिलती है।

पिछली तीन योजनाओं में मोयार (३६,००० किलोवाट), कुण्डा जल विद्युत योजना (१,४५,००० किलोवाट), पेरियार विस्तार कार्य (४,२५,००० किलोवाट), परम्बिकुलम जल विद्युत योजना (१,८५,००० किलोवाट), मद्रास ताप शक्तिगृह (३०,००० किलोवाट) और नैवेली लिग्नाइट शक्तिगृह (२,५०,००० किलोवाट) योजनाएँ समाप्त की गयी हैं।

केरल राज्य में पल्लीवासल प्रमुख परियोजना है। यह सन् १९४० में विकसित की गयी। इसके अनुसार मदिरपूझा नदी का जल ऊँचाई से गिराकर मुनार पर शक्तिगृह बनाया गया है। इसकी उत्पादन क्षमता ५०,००० किलोवाट है। इसके अतिरिक्त तमिलनाडु की पापानासम व्यवस्था से भी ३,००० किलोवाट विद्युत मिल जाती है। इसके लिए कुन्दरा और शेनकोट को इकहरी लाइन से जोड़ दिया गया है।

पिछली तीन योजनाओं में सेंगुलम जल विद्युत योजना (४८,००० किलोवाट), पोरिंगलकुथ् (३२,००० किलोवाट), नेरयामंगलम (४५,००० किलोवाट), पनियार (३०,००० किलोवाट), शोलयार (५४,००० किलोवाट), सबरीगिरि (३ लाख किलोवाट), इदिक्की (५·२० लाख किलोवाट) और कुटियाड़ी जलविद्युत योजनाओं को पूरा किया गया। इस राज्य में ७०% से अधिक शक्ति *औद्योगिक कार्यों* में (अल्यूमीनियम, चाय, मिट्टी के बर्तन, कपड़े, कागज, प्लाईवुड, तेल और लकड़ी की मिलों तथा इंजीनियरिंग कारखानों में) और शेष घरेलू और *कृषि सम्बन्धी कार्यों* में व्यवहृत होती है। यह विद्युत तिरूचूर, अलवाये, कोट्टायाम, अलप्पी क्विलोन, तिरुवनन्तपुरम और शैनाकोडल नगरों को दी जाती है।

कर्नाटक में शिवासमुद्रम परियोजना के *अन्तर्गत कावेरी नदी* पर शिवासमुद्रम जलप्रपात के समीप *शक्तिगृह* स्थापित किया गया है। भारत में सबसे पहले सन् १९०२ में जल विद्युत कर्नाटक राज्य में ही उत्पन्न की गयी। शिवासमुद्रम में उत्पन्न की गयी विद्युत १४८ किलोमीटर दूर कोलार की *सोने की खानों* को दी जाती है। इसके अतिरिक्त शक्ति बंगलौर और मैसूर की ऊनी और रेशमी कपड़े की मिलों और अन्य २२५ नगरों और गाँवों को दी गयी है। शक्ति की माँग अधिक होने के कारण नदी के ऊपर की ओर कृष्णराज-

चित्र—१३४

सागर बाँध बनाकर कावेरी नदी के जल को रोक दिया गया है और इस प्रकार दोनों की सम्मिलित उत्पादन क्षमता ८२,००० किलोवाट हो गयी है।

कावेरी की सहायक नदी शिम्सा के प्रपात पर एक शक्तिगृह सन् १६४० में बनाया गया। इससे १७,२०० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है।

महात्मा गांधी (या जोग-प्रपात) परियोजना के अन्तर्गत सन् १९४८ में शिरावती नदी के जोग (गिरस्सप्पा) प्रपात का उपयोग किया गया है। यहाँ का बाँध प्रपात से लगभग ५ किलोमीटर ऊपर और शक्तिगृह प्रपात से ३ किलोमीटर नीचे है। इस योजना से ४८,७०० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती थी किन्तु अब इसकी उत्पादन क्षमता १,२०,००० किलोवाट हो गयी है। शिम्सा, शिवासमुद्रम और जोग-प्रपात की विद्युत भद्रावती पर आकर मिल जाती है। उपर्युक्त तीनों योजनाओं को जोड़कर कर्नाटक में जोग-कर्नाटक विद्युत-क्रम (Jog-Karnatak Electric Grid) का निर्माण किया गया है। इससे कर्नाटक राज्य के विभिन्न स्थानों को बिजली दी जाती है।

उत्तरी भारत में जल-विद्युत शक्ति

कश्मीर राज्य में झेलम नदी का जल बारामूला के निकट १० मीटर की ऊँचाई से गिराया जाता है। इसका शक्तिगृह श्रीनगर से ५५ किलोमीटर उत्तर को ओर मोहरा स्थान पर है। यहाँ लगभग २०,००० किलोवाट शक्ति प्राप्त होती है। यहाँ से बिजली की लाइनें बारामूला और श्रीनगर तक जाती हैं। यह बिजली झेलम नदी में नाव चलाने, श्रीनगर में रोशनी करने और रेशम के कारखाने चलाने में प्रयोग होती है। वूलर झील के निकटवर्ती दलदली भूमि के पानी को बहाकर कृषि योग्य भूमि प्राप्त करने में इस शक्ति का उपयोग किया जाता है।

सिन्धु घाटी विद्युत परियोजना के अन्तर्गत झेलम की एक सहायक नदी सिन्धु में मेहराल स्थान पर एक शक्तिगृह स्थापित किया गया है जिससे ६,००० किलोवाट जल-विद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है। यह शक्ति श्रीनगर को दी जाती है।

पिछली योजना में चेनानी (१५,००० किलोवाट), झेलम (१·१ लाख किलो-वाट) और सलल (६०,००० किलोवाट) जल-विद्युत योजनाओं को पूरा किया गया है।

उत्तरप्रदेश में ऊपरी गंगा की नहर से विद्युत उत्पन्न करने की योजना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऊपरी गंगा की नहर पर हरद्वार से अलीगढ़ तक १३ झरने हैं। इनमें से इस समय ११ झरनों पर शक्तिगृह बनाये गये हैं। सन् १६३१ में सबसे पहला शक्तिगृह बहादुराबाद में स्थापित किया गया। इनसे ४,४०० किलोवाट शक्ति प्राप्त होती है। शक्ति उत्पादन के लिए बहादुराबाद और सलेमपुर झरनों का उपयोग किया गया है। अन्य शक्तिगृह पथरी (सहारनपुर : २ लाख कि०), मुहम्मदपुर (मुजफ्फरनगर : ३,००० किलोवाट), गाजियाबाद (२,३०० किलोवाट), नीरगजनी

(मुजफ्फरनगर: ४,००० कि०) चित्तौड़ा (मुजफ्फरनगर : ३,००० कि०), सालवा (मुजफ्फरनगर : ४,००० कि०), पासरा (बुलन्दशहर . ६,००० कि०) और सुमेरा (अलीगढ़ : २,००० कि०) में है। इन शक्तिगृहों और कोयला से विद्युत पैदा करने वाले शक्तिगृहों (चन्दौसी : ८,६०० कि० और हरदुआगंज १'१ लाख कि०) को एक सूत्र में संगठित कर दिया गया है।
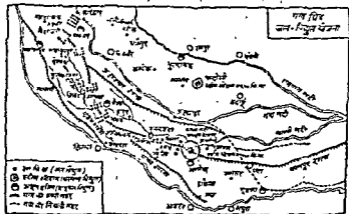
चित्र—१३५

इस विद्युत क्रम में उत्तर प्रदेश के १४ पश्चिमी जिलों (सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, एटा, अलीगढ़, आगरा, बिजनौर, मथुरा, मुरादाबाद, बरेली, बदायूं, इटावा और मैनपुरी) को दी जाती है जिससे ६१ नगरों को प्रकाश मिलता है। इसका उपयोग सिंचाई और कुटीर उद्योगों के लिए भी किया जाता है। इस क्रम से मेरठ और रुहेलखण्ड डिवीजनों में लगभग २,५०० नलकूप भी चलाये जाते हैं। यह शक्ति उत्तर प्रदेश के लगभग ४,००० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की सेवा करती है। इसकी लाइनें ८,००० किलोमीटर लम्बी हैं।

पिछली तीन योजनाओं में उत्तर प्रदेश में रिहन्द जल विद्युत योजना (३ लाख कि०), माताटीला (३०,००० कि०), यमुना (४ २४ लाख कि०), रामगंगा जल-विद्युत योजनाएँ (१'६५ लाख कि०), कानपुर ताप शक्तिगृह (१ लाख कि०) और हरदुआगंज ताप शक्तिगृह (२'१ लाख कि०) पूरे किये गये।

हिमाचल प्रदेश में मण्डी जल-विद्युत परियोजना प्रमुख है। यह तीन चरणों में समाप्त होगी। अभी तक प्रथम चरण समाप्त हुआ है।

प्रथम चरण के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश में व्यास की सहायक नदी उहल पर एक बाँध बनाकर जल प्रवाह के मार्ग को मोड़ा गया है। इस जल को एक ३ मीटर चौड़ी और लगभग ४,३३१ मीटर लम्बी सुरंग में निकालकर ६१० मीटर की ऊँचाई

से गिराया जाता है। जोगेन्द्रनगर के निकट इससे जलशक्ति उत्पादित की जाती है। इस शक्तिगृह से ५०,००० किलोवाट शक्ति प्राप्त की जा रही है। इसका उपयोग घरेलू कार्यों और उद्योग-धन्धों के लिए किया जाता है। कांगड़ा, पठानकोट, धारीवाल, अमृतसर, मोगा, जालन्धर, लुधियाना, शिमला, अम्बाला, आदि नगरों को यही विद्युत मिलती है। पाकिस्तान में मुगलपुरा की रेलवे-वर्कशाप को भी यहाँ से बिजली दी जाती है।

द्वितीय चरण में ऊहल नदी पर बाँध बनाकर एक कृत्रिम प्रपात बनाया जायगा। इससे ६०,००० किलोवाट शक्ति का उत्पादन होगा।

तृतीय चरण में ऊहल नदी पर स्थित थलान नामक स्थान पर संग्रहीत जल को एक नहर द्वारा ले जाकर ३६५ मीटर की ऊँचाई से गिराकर विद्युत शक्ति उत्पन्न की जायेगी।

प्रमुख नदी योजनाएँ (Important River Projects)

केरल राज्य की एक मुख्य परियोजना इडीकी है। इसका विकास ६८ करोड़ रुपये की लागत से पेरियार श्रेणियों में एर्नाकुलम से लगभग १६० किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में किया गया है। इसके अन्तर्गत पेरियार नदी की शाखा चेरूथोनी नदी पर एक १३६ मीटर ऊँचा बांध और इडीकी खड्ड के निकट १७१ मीटर ऊँचा बाँध बनाया जायेगा। ये दोनों आपस में जोड़े जायेंगे। शक्तिगृह में तीन शक्ति उत्पादक इकाइयाँ होंगी जिनकी प्रत्येक की क्षमता १३० मेगावाट की होगी। यह परियोजना १९७१-७२ तक समाप्त की जायेगी।

कर्नाटक में शरावती योजना भारत की सबसे बड़ी जल विद्युत योजना है। इसके पूरे होने पर दस लाख किलोवाट से भी अधिक बिजली पैदा होगी जिससे कर्नाटक, महाराष्ट्र, आन्ध्र, तमिलनाडु और केरल के कुछ हिस्से लाभान्वित होंगे। इस योजना के प्रथम चरण में जोग से कुछ मील दूर शिरावती नदी पर लिंगनामक्की स्थान पर एक जलाशय और पत्थर का बाँध बनाया गया है। इस बाँध की लम्बाई २,१६१ मीटर है और यह नींव से लगभग ६१ मीटर ऊँचा है। इस जलाशय में ५ अरब घन मीटर जल इकट्ठा किया जा सकता है। दूसरा इससे छोटा जलाशय तालकलेल नदी का भी कुछ जल संचित किया जायेगा। इस जलाशय तक जल ले जाने के लिए ४,३२५ मीटर लम्बी नहर और ६१० मीटर और ६४७ मीटर लम्बी दो सुरंगें निकाली जायेंगी। इसमें से प्रति सेकण्ड १७४ घन मीटर और २४५½ घन मीटर की गति से जल बह सकेगा। विद्युत उत्पादक यन्त्र को चलाने के लिए जलाशय से १,३१० मीटर लम्बे दस बड़े-बड़े नलों से सीधे ३,११५ मीटर नीचे जल की मोटी धारें गिराई जायेंगी। नीचे ये यन्त्र लगाये जायेंगे। प्रत्येक यन्त्र की क्षमता ८,६१,००० किलोवाट विद्युत पैदा करने की होगी। बाँध के पास जो शक्तिगृह होगा, उसमें ४० हजार किलोवाट बिजली पैदा की जायेगी। जोग के वर्तमान शक्तिगृह में, १,२०,००० किलोवाट बिजली तैयार करने की क्षमता है। इस प्रकार इस योजना

में कुल मिलाकर १० लाख किलोवाट से अधिक बिजली तैयार की जा सकेगी। इस प्रकार यह देश की सबसे बड़ी जलविद्युत योजनाओं मे होगी। अनुमान है कि इस योजना पर १०५ करोड़ रुपये खर्च होंगे। भारत मे सबसे सस्ती बिजली यहाँ पैदा होगी।

उड़ीसा मे बालीमेला बांध परियोजना आन्ध्र प्रदेश और उड़ीसा की सम्मिलित योजना है जिस पर लगभग ५० करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान है। बाँध मे रोके गये जल को विद्युत उत्पादन के लिए काम में लाया जायेगा जिसकी प्रत्येक की क्षमता ६० मेगावाट की होगी। यह परियोजना चतुर्थ योजना मे समाप्त होगी।

जल शक्ति उपभोग की विशेषताएँ

भारत मे जल विद्युत शक्ति के सम्बन्ध मे कुछ महत्वपूर्ण तथ्य ये हैं :

(१) कुल स्थापित शक्ति की क्षमता का लगभग ८८ प्रतिशत (अर्थात् १४० लाख किलोवाट) दक्षिण भारत, गुजरात-महाराष्ट्र, बिहार-बंगाल क्षेत्र, उत्तर प्रदेश और पंजाब क्षेत्र तथा मध्यवर्ती क्षेत्र (आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और उड़ीसा) मे पाया जाता है, शेष क्षमता देश के विभिन्न भागो मे बिखरी हुई पायी जाती है।

(२) जल विद्युत शक्ति का उपभोग उद्योगो और नलकूपो तथा खेती के लिए प्रति व्यक्ति पीछे सबसे अधिक पंजाब मे किया जाता है। इसके उपरान्त क्रमशः पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक, उड़ीसा और केरल का स्थान आता है। इसके विपरीत घरो मे प्रति व्यक्ति उपभोग की दृष्टि से कश्मीर सबसे महत्वपूर्ण राज्य है। पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, गुजरात तथा पंजाब का स्थान बाद मे आता है।

(३) भारत मे जल विद्युत शक्ति का उपभोग अभी तो बड़े नगरो और औद्योगिक केन्द्रों तक ही सीमित है। बम्बई, मद्रास, नागपुर, दिल्ली, कलकत्ता, अहमदाबाद, आदि ७ बड़े नगरों में कुल विद्युत शक्ति के उत्पादन का ५४ प्रतिशत किया जाता है। अब गाँवों मे भी विद्युत शक्ति का उपभोग बढ़ रहा है। १९५१ में केवल ४,३६७ गाँवों को बिजली मिलती थी। १९५६ मे ११,२२६ गाँव, १९६१ मे २७,१९२ गाँव तथा १९७१ में १,०७,६३२ गाँव इस सुविधा का उपयोग करने लगे।[1]

(४) शक्ति के कुल उपयोग का ४७ प्रतिशत औद्योगिक कार्यों के लिए, ९ प्रतिशत घरेलू कामों मे, ५ प्रतिशत व्यावसायिक कार्यों मे, ८ प्रतिशत सिंचाई के लिए और शेष खेती, रेलगाड़ियाँ चलाने, सड़कों पर रोशनी करने तथा सार्वजनिक जल प्रदायक कार्यों में किया जाता है।

(५) अन्य देशों की तुलना मे भारत मे प्रति व्यक्ति पीछे १११ किलोवाट घण्टा से भी कम शक्ति का उपभोग होता है, जबकि संयुक्त राज्य में यह मात्रा

[1] *India*, 1974, p. 252.

भारत में शक्ति उत्पादन का वितरण

क्षेत्र	कोयले की सचित राशि (लाख मीट्रिक टनों में)	लिग्नाइट की सचित राशि (लाख मीट्रिक टन)	६०% योग	जल विद्युत शक्ति भारांश पर (मेगावाट) अविकसित	तेल के भण्डार (लाख टन)	प्राकृतिक गैस के भण्डार (लाख घन मीटर)
१. दक्षिणी	५,५१५·५०	२,०३२·००	८,०९७·०	३,२२०·५ (३६·८०%)		
२. पश्चिमी	२२,८८७·००	११·१०	७,१६८·०	९४१·५ (१३·१२%)		
३. उत्तरी		२०·३०	१०,७३१·०	२,४५०·७ (२८%)	१४०·००	६३,६००
४. पूर्वी	७४,२२७·५०	—	२,६६३ ७	५७४ ० (३१·३०%)		
५. उत्तरी-पूर्वी	३,६२९·६०	—	१२,४६४·४	३७·५ (०·३०%)		
योग	१,०६,२५९·६०	२,०६३·४०	४१,१५५·५	७,२२४·२ (१७·६०%)	१४०·००	६३,६००

६,३४५ Kwh, कनाडा में ७,६०७ Kwh, रूस में १,००० Kwh, जापान में २,१७१ Kwh, इंगलैण्ड में २,७०२ Kwh, स्वीडेन में ६,४८४ Kwh और पश्चिमी जर्मनी में ३,०४० Kwh है।

(६) अधिकांश बड़े नगर जल विद्युत उत्पादन केन्द्रों से काफी दूर पड़ते हैं, अतः शक्ति ले जाने के लिए ऊँचे वोल्टेज वाली तार की लाइनें डाली गयी। मध्य दूरी के स्थानों के लिए ६६,००० से १,१०,१०० वोल्ट और अधिक दूरी के लिए १,३२,००० से २२,००,००० वोल्ट की लाइनें कार्य कर रही हैं। अधिक वोल्टेज वाली लाइनों को विभिन्न राज्यों के शक्तिगृहों से जोड़कर स्थापित क्षमता का समुचित विकास किया गया है तथा शक्ति पहुँचाने के व्यय में कमी की गयी है। शक्ति प्रदाय *की दृष्टि से सम्पूर्ण देश को सन् १९६४ से निम्न खण्ड में विभाजित किया गया है :*

(१) पश्चिमी क्षेत्र के अन्तर्गत गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गोआ, डामन-ड्यू, दादरा और नगर हवेली सम्मिलित किये गये हैं।

(२) दक्षिणी क्षेत्र में आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल और पाण्डीचेरी हैं।

(३) पूर्वी क्षेत्र में पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, बिहार और दामोदर घाटी व्यवस्था सम्मिलित है।

(४) उत्तर-पूर्वी क्षेत्र जिसमें असम, मेघालय, मिजोराम, अरुणाचल, मनीपुर, त्रिपुरा और नागालैण्ड सम्मिलित किये गये हैं।

(५) उत्तरी क्षेत्र में जम्मू-कश्मीर, हिमालय प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश सम्मिलित हैं।

४. परमाणु शक्ति
(NUCLEAR POWER)

भारत में परमाणु शक्ति उत्पन्न करने की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव की जाने लगी है क्योंकि (१) भारत में उत्तम प्रकार के कोयले के कार्यशील भण्डार इस शताब्दी के अन्त तक समाप्त होने का अंदेशा है। (२) भारत में जलशक्ति के अनुमानित स्रोत ४११ लाख किलोवाट के हैं जो सम्भवतः सन् १९९६ तक समाप्त हो सकते हैं। (३) विकासोन्मुख उद्योगों के लिए पर्याप्त मात्रा में सस्ती चालकशक्ति अपेक्षित है *जबकि वर्तमान कोयला और जलशक्ति के स्रोत और भी अधिक मंहगे पड़ने लगेंगे।* (४) भारत में परमाणु खनिज (यूरेनियम, बेरीलियम, ग्रेफाइट, थोरियम, आदि) पर्याप्त मात्रा में विभिन्न भागों में मिलते हैं जिनसे शक्ति उत्पादित की जा सकती है। (५) परमाणु शक्ति के लिए गुरुजल (Heavy water) की आवश्यकता होती है। यह भाखड़ा-नांगल योजना से प्राप्त किया जा सकता है। अतः भारत में इस शक्ति उत्पादन के लिए *आन्ध्र प्रदेश, केरल, महाराष्ट्र, राजस्थान एवं तमिलनाडु उपयुक्त क्षेत्र माने जा सकते हैं।*

भारत में पहला परमाणु रिएक्टर अप्सरा (Apsara) ४ अगस्त, १९५६ को कार्य करने लगा। दूसरा रिएक्टर कनाडा-भारत रिएक्टर जून १९५६ से कार्यान्वित हुआ है। इसकी क्षमता ४० मेगावाट शक्ति की है।

एक अन्य परमाणु शक्तिगृह ३,८०,००० किलोवाट क्षमता का तारापुर में स्थापित किया गया है। इसमें २ रिएक्टर हैं, जो प्रत्येक २०० मेगावाट शक्ति का उत्पादन करते हैं।

राजस्थान में राणा प्रताप सागर बाँध के निकट एक रिएक्टर ४०० मेगावाट शक्ति का बनाया गया है जिसमें यूरेनियम और हल्के जल का उपयोग किया जाता है।

एक परमाणु केन्द्र मद्रास के निकट कलपाकम में भी स्थापित किया जा रहा है जिसकी दो इकाइयों की क्षमता ४७० मेगावाट की होगी।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में लाभ देने वाली प्रमुख जल विद्युत परियोजनाएँ

राज्य एवं योजना	मिलने वाली शक्ति (मेगावाट में)
पंजाब, हरियाणा, राजस्थान	
ब्यास	१९५·०
ऊपरी बारी दोआब जल-विद्युत	४५·०
जवाहर सागर	९९·०
जम्मू-कश्मीर	
चैनानी	२३·०
सम्बल, प्रथम चरण	२२·०
उत्तर प्रदेश	
जमुना प्रथम चरण	२८·०
,, द्वितीय चरण	२४०·०
ओबरा	९९·०
रामगंगा	१२०·०
यमुना, चतुर्थ चरण	१०·०
हिमाचल प्रदेश	
नोगली	२·०
बस्सी	४५·०
गिरी बाटा	६०·०
महाराष्ट्र	
वैतरणी	६०·०
कोयना, द्वितीय चरण	३२०·०
भाटागर और वीर	२५·०

कर्नाटक	
शिरावती, द्वितीय चरण	१७८·२
शिरावती, तृतीय चरण	१७८·२
केरल	
कुट्टियाडी	७५·०
इडीकी	२६०·०
तमिलनाडु	
परम्बिकुलम	१५५·०
कोड़यार	१००·०
कुडा	११०·०
बिहार	
कोसी	२०·०
स्वर्ण रेखा	६५·०
पश्चिमी-बंगाल	
जलधका	९·०
रणजीत	२·०
उड़ीसा	
बालीमेला	३६०·०
असम	
उमियान, द्वितीय चरण	१८·०
नागालैण्ड	
दुजुआ	१५
सम्पूर्ण योग	९,०१,९·४

14

प्रमुख निर्माण उद्योग
(MAJOR MANUFACTURING INDUSTRIES)

लोहा और इस्पात उद्योग एक आधारभूत उद्योग है जिसके उत्पादन अन्य सभी वस्तुओं के निर्माण में आवश्यक होते हैं। इसी उद्योग से किसी देश के औद्योगिक विकास की नींव पड़ती है।

इस्पात लोहे तथा कार्बन का मिश्रण होता है। विभिन्न कोटि की शक्ति और किस्म वाला इस्पात तैयार करने के लिए मैंगनीज, सिलिकन, क्रोमियम और वैनेडियम धातुएँ मिलायी जाती हैं। लोहा अपनी प्राकृतिक दशा में ऑक्साइड के रूप में पाया जाता है। उसमें मिट्टी, गन्धक, फॉसफोरस तथा अन्य खनिज पदार्थ भी मिले होते हैं। इसलिए लोहे को इन प्राकृतिक मिश्रणों से अलग करके उसमें कार्बन आदि मिला देने से इस्पात तैयार हो जाता है। प्राचीन काल में लोहे को अन्य मिलावटों से अलग करने के लिए लकड़ी के कोयले से लोहा खनिज गलाया जाता था परन्तु इस प्रकार अधिक मात्रा में लोहा तैयार नहीं होता था। १८वीं शताब्दी के मध्य में यह अनुभव किया गया कि किसी अन्य प्रकार के ऐसे ईंधन का उपयोग किया जाय जो प्रचुर परिमाण में तथा सस्ता प्राप्त हो। यह ईंधन पत्थर का कोयला था। परन्तु सभी प्रकार के कोयले में आवश्यक शक्ति तथा रासायनिक गुण नहीं होते है। इसलिए कोयले से पहले कोक तैयार किया जाता है जिसमें शक्ति और गुण दोनों ही होते हैं। जब लोहा कोक के साथ जलाया जाता है तो कोक का कार्बन खनिज की ऑक्सीजन से मिलकर कार्बन मोनोऑक्साइड बन जाता है जो गैस का रूप धारण करके वायु में उड़ जाता है। गन्धक, फॉस्फोरस, मिट्टी, आदि को अन्य मिलावटें चूना, मैंगनीज मिलाकर दूर करदी जाती हैं। यह चूना और डोलोमाइट आदि के साथ मिलकर नीचे सलछट के रूप में जम जाता है।

इस्पात तैयार करने का संयन्त्र

इस्पात तैयार करने के सयन्त्र के चार विभाग होते हैं :

(१) कोक भट्टी (Coke Oven) में पत्थर का कोयला फूंककर कोक बनाया जाता है।

(२) लपट वाली भट्टी (Blast Furnace) लौह अयस्क को गलाकर लोहा बनाया जाता है।

(३) इस्पात गलाने के संयन्त्र (Steel Melting Plant) में कार्बन तथा अन्य धातुएँ मिलाकर इस्पात बनाया जाता है।

(४) ढलाई मिल (Rolling Mill) इस्पात को ढालकर पटरियाँ, गरियें, चादरें, आदि बनायी जाती हैं।

इस्पात संयन्त्र में जो अन्य यन्त्र होते हैं उनमें ये प्रमुख होते हैं : विद्युत उत्पादन के लिए शक्तिगृह, लपट वाली भट्टी में तेजी के साथ वायु धौंकने का संयन्त्र, मुख्य इस्पात संयन्त्र की मरम्मत करने के लिए ढाँचा तथा मशीनों का कारखाना, शुद्ध जल पहुँचाने तथा ठण्डा करने की व्यवस्था, परीक्षण और प्रयोग करने के लिए प्रयोगशालाएँ, कच्चे माल तथा अन्य सामान भरने के गोदाम और प्रशासन, बिक्री, आदि से सम्बन्धित कार्यालय।

उद्योग का विकास और वर्तमान स्थिति

भारत में लोहा पिघलाने, ढालने तथा इस्पात तैयार करने का कार्य अत्यन्त प्राचीन काल से किया जा रहा है। अगारिया जाति यह कार्य करती थी। किन्तु पश्चिमी देशों में आधुनिक ढंग के कारखानों के स्थापित हो जाने के कारण भारतीय कुटीर उद्योग को बड़ा धक्का पहुँचा और भारत निर्यातक से आयातक देश बन गया। १८वीं और १९वीं शताब्दी में दक्षिणी भारत में १७७९ और १८३० में अर्काट जिले में दो अंग्रेजों द्वारा (मोटले-फरकूहर तथा जोशिया हीथ) असफल प्रयत्न किये गये। सन् १८७४ में पश्चिम बंगाल में झरिया कोयला क्षेत्र, कुल्टी में बाराकर लौह कम्पनी की स्थापना की गयी। सन् १८८९ में यह कारखाना बंगाल लोहा और इस्पात कम्पनी के अधिकार में चला गया। सन् १९०० में इसका उत्पादन ३५,५६० टन का था। इसके बाद सन् १९०७ में बिहार में साकची नामक स्थान पर भारत के प्रसिद्ध व्यवसायी श्री जमशेदजी टाटा द्वारा टाटा लोहा इस्पात कम्पनी की स्थापना की गयी जिसमें ढले लोहे का उत्पादन पहली बार १९११ में तथा इस्पात का उत्पादन सन् १९१३ में किया गया। सन् १९०८ में एक और कारखाना बंगाल में भारतीय लोहा इस्पात कम्पनी के नाम से आसनसोल के निकट हीरापुर में स्थापित किया गया। सन् १९३६ में कुल्टी और हीरापुर के दोनों कारखाने भारतीय लोहा और इस्पात कम्पनी (Indian Iron and Steel Company) के नाम से मिला दिये गये। सन् १९३७ में बर्नपुर में स्टील कारपोरेशन ऑफ बंगाल की स्थापना की गयी और इसे भी उपर्युक्त कम्पनी में सन् १९५३ में मिला दिया गया। भारतीय लोहा और इस्पात कम्पनी के अन्तर्गत तीन मुख्य इकाइयाँ (कुल्टी, हीरापुर तथा बर्नपुर के कारखाने) हैं। सन् १९२३ में दक्षिण भारत में मैसूर सरकार द्वारा मैसूर लोहा और इस्पात का कारखाना (Mysore Iron and Steel Works) की स्थापना की गयी। अप्रैल १९६२ से इस कारखाने का प्रबन्ध मैसूर आयरन एण्ड स्टील लिमिटेड (Mysore

Iron and Steel Ltd.) कम्पनी के हाथ मे चला गया। इन सब कारखानों का इस्पात का उत्पादन सन् १६३६ में ८ लाख टन से कुछ अधिक और ढले लोहे का १८ लाख टन का था। द्वितीय महायुद्ध काल मे इस उद्योग की बडी प्रगति हुई। सन् १६५० मे ढले लोहे का उत्पादन १५ लाख टन और इस्पात का १० लाख टन हुआ था।

प्रथम योजनाकाल के आरम्भ में भारत में तीन मुख्य कारखाने थे जिनमें जमशेदपुर और बर्नपुर-कुल्टी के कारखाने निजी क्षेत्र मे और भद्रावती का कारखाना सरकारी क्षेत्र मे थे।

प्रथम योजनाकाल मे प्रमुख कम्पनियों ने आधुनीकरण एवं विस्तार के लिए योजनाएँ बनायी। इस अवधि मे उद्योग की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के प्रयासों में काफी सफलता मिली। टाटा की क्षमता ७·५ लाख टन इस्पात से बढ़कर ६·३ लाख टन हो गयी; इण्डियन आयरन की ४ से ७ लाख टन हो गयी और सम्पूर्ण उद्योग की उत्पादन क्षमता का लक्ष्य ढला लोहा १७ लाख टन और इस्पात १५ लाख टन तैयार करने का रखा गया। इस योजना में इनका वास्तविक उत्पादन क्रमशः १६ लाख टन और १२·८ लाख टन का हुआ।

द्वितीय योजनाकाल मे इस्पात के उत्पादन को बढ़ाने का दो सूत्री कार्यक्रम रखा गया। प्रथम, तीनो प्रमुख कम्पनियों की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि करना और दूसरे, सार्वजनिक क्षेत्र मे तीन नयी इकाइयाँ स्थापित कर इस्पात की बढ़ती हुई माँग को पूरा करना।

टाटा कम्पनी को अपना उत्पादन बढ़ाकर २० लाख टन लोहे के पिण्ड (१५ लाख टन तैयार इस्पात) करना था; इण्डियन आयरन को अपना उत्पादन बढ़ाकर १० लाख टन पिंड (८ लाख टन तैयार इस्पात) करना था और मैसूर आयरन को अपना उत्पादन बढ़ा कर १ लाख टन पिंड (७७,००० टन तैयार इस्पात) करना था। योजनाकाल में ये लक्ष्य प्रायः पूरे किये गये।

सार्वजनिक क्षेत्र मे तीन नयी इकाइयों के विकास के लिए हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड कम्पनी की स्थापना की गयी जिसकी अधिकृत पूँजी ६०० करोड रुपया है। इस कम्पनी के अन्तर्गत राउरकेला, भिलाई, और दुर्गापुर मे तीन इकाइयाँ स्थापित करना था जिनकी प्रत्येक की उत्पादन क्षमता १० लाख टन की रखी गयी। द्वितीय योजनाकाल में इस्पात का उत्पादन लक्ष्य ६० लाख टन निश्चित किया गया था। ये इकाइयाँ राउरकेला मे जर्मनी की दो फर्मों (Krupp और Demag) की सहायता से; भिलाई मे रूस की सहायता से और दुर्गापुर में ब्रिटेन के सहयोग से स्थापित की गयीं। किन्तु लक्ष्यों की पूर्ति नहीं हो सकी।

तृतीय योजनाकाल में इस्पात का उत्पादन १०० लाख टन पिंड (७२ लाख टन तैयार इस्पात) का रखा गया। इसके लिए राउरकेला की उत्पादन क्षमता १८

लाख टन पिण्ड (१२ लाख टन तैयार इस्पात); भिलाई की २५ लाख टन की और दुर्गापुर की १६ लाख टन पिण्ड (१२ लाख टन तैयार इस्पात) की रखी गयी। ये लक्ष्य इस योजनाकाल में केवल भिलाई के ही पूरे हो सके। निजी क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने के प्रयास सफल हुए। किन्तु बोकारो का नया कारखाना, जिसकी उत्पादन क्षमता ४० लाख टन पिण्ड की थी, स्थापित नहीं किया जा सका।

उत्पादन और उपभोग

नीचे की तालिका में ढला लोहा और इस्पात का उत्पादन बताया गया है :

(लाख टन)

वर्ष	ढला लोहा (Pig Iron)	तैयार इस्पात (Finished Steel)
१९५०	१५·६६	१०·००
१९५६	१८·०७	१३·३८
१९६१	४९·८०	२८·१०
१९६६	७०·४१	४४·९१
१९६७	६८·६७	४१·६३
१९६८	७०·७४	४६·७६
१९६९	७३·२९	४७·००
१९७०	७३·०१	४६·४०
१९७१	६९·९	६१·४०
१९७२	६८·०	६४·१०

चतुर्थ योजनाकाल में ढले लोहे और इस्पात का उत्पादन १८ लाख टन और २४ लाख टन का अनुमानित किया गया था। पाँचवीं योजना में यह लक्ष्य २५ लाख टन और ६४ लाख टन के रखे गये हैं। पाँचवीं योजना में घरेलू उपयोग के लिए लगभग १०० लाख टन इस्पात की आवश्यकता होगी, जिसमें से लगभग ८८ लाख टन देश के बड़े कारखानों (भिलाई, बोकारो, विशाखापट्नम, सलेम और दुर्गापुर) से प्राप्त किया जायेगा, शेष आयात किया जायेगा।

आवश्यकता की पूर्ति के लिए रूस, जापान, पश्चिमी जर्मनी, इंगलैण्ड और संयुक्त राज्य से इस्पात का आयात भी किया जाता है। १९५०-५१ में २० करोड़ रुपये के मूल्य का, १९६०-६१ में १२३ करोड़ रुपये के मूल्य का तथा १९७२-७३ में २१७ करोड़ रुपये का इस्पात आयात किया गया।

भारत से अब इस्पात और ढले लोहे का निर्यात भी किया जाता है। १९६९-६९ में ७४ करोड़ रुपये और १९७२-७३ में ८० करोड़ रुपये के मूल्य का लोहा और इस्पात निर्यात किया गया।

भारत में इस्पात का प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग सन् १९५५ में केवल ९ किलोग्राम था जो सन् १९६८ में १४ किलोग्राम और १९७२ में १७ किलोग्राम हो गया।

बेल्जियम में ४०६ किलोग्राम; संयुक्त राज्य में ६८५ किलोग्राम; पश्चिमी जर्मनी में ५७६ किलोग्राम; जापान में ४६४ किलोग्राम, इंगलैण्ड में ४२२ किलोग्राम तथा रूस में ४१८ किलोग्राम का उपभोग होता है। (*Economic Times*, April 1971)

उद्योग का स्थापन (Localisation of Industry)

इस उद्योग के लिए लोहा अयस्क और कोयले को परिष्कृत करने के लिए कई प्रकार के कच्चे माल की आवश्यकता बड़ी मात्रा में होती है। ये सब पदार्थ तौल में भारी किन्तु मूल्य में सस्ते होते हैं, अतः उन्हें अधिक दूर ले जाने में वाहन व्यय बहुत बढ़ जाता है। इसलिए भारत में इस उद्योग का स्थान कच्चे माल की उप-

चित्र—१४'१
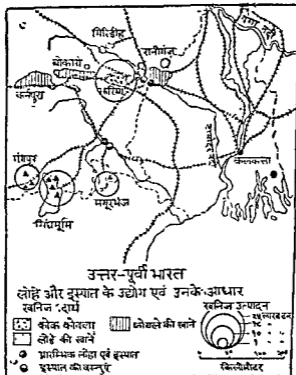
लब्धता द्वारा ही निर्धारित हुआ है न कि बाजार की माँग द्वारा। टैरिफ बोर्ड के अनुमानानुसार १ टन परिष्कृत इस्पात के लिए २ टन कच्ची धातु, १½ टन कोकिंग कोयला और १½ टन अन्य कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार १ टन

टन) लोहा बनाने के लिए १½ टन कच्ची धातु और १¾ टन कोकिंग कोयला चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कई पदार्थ (Flux) धातु शोधन के लिए आवश्यक हैं। ये सभी वजन में भारी होते हैं अतः भारत का लोहा और इस्पात उद्योग मुख्यतः पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में ही केन्द्रित है। इसकी स्थापना में कई भौगोलिक और आर्थिक कारण उत्तरदायी हैं :

(१) पश्चिमी बंगाल और बिहार के रानीगंज और झरिया क्षेत्र में पाया जाने वाला कोयला कोकिंग कोयला तैयार करने के उपयुक्त है। कोक बनाने योग्य कोयले के झरिया में (१,२२० मीटर की गहराई तक) ८०,३७० लाख टन के संचय पाये जाने का अनुमान है। इसमें से आधे से अधिक ६१० मीटर की गहराई पर स्थित हैं। यदि कोयले के धोने और उससे निकालने में सुधार किया जा सके तो ६१० मीटर की गहराई से १८,१०० लाख टन और धातुशोधन कोयला प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यहाँ ४०० करोड़ टन कोक न बनाने योग्य कोयले के भण्डार भी हैं जिनसे यदि नवीन विधियों द्वारा कोयला प्राप्त किया जाय तो यह १०० करोड़ टन कच्चे लोहे को गलाने के लिए पर्याप्त हो सकता है। (२) बिहार और उड़ीसा की लोहे की पट्टी में मिलने वाली हैमेटाइट अयस सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस अयस के क्षेत्र मयूरभंज क्षेत्र के पश्चिम में गुरुमहिसानी पहाड़ियों से लेकर केंदुझर और बोनाई क्षेत्रों में होती हुई बिहार में सिंहभूम जिले में कोल्हान के उप-विभागों तक फैले हुए हैं। यहाँ कच्ची धातु में ६४ प्रतिशत लोहा होता है। यहाँ लोहे के २६० करोड़ टन के उत्तम भण्डार पाये जाने का अनुमान है। (३) इस क्षेत्र में मध्य प्रदेश से लेकर पश्चिमी बंगाल तक काफी परिमाण में चूने के पत्थर की खानें और डोलोमाइट पाया जाता है। (४) मैंगनीज, सिलीकन, क्रोमाइट और अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टियाँ भी इसी क्षेत्र में मिलती हैं जिनका उपयोग क्रमशः धातु को परिष्कृत करने और इस्पात की भट्टियों में पुताई करने में होता है। (५) मैंगेनेसाइट, टंगस्टन, वैनेडियम, आदि भी निकट ही मिलते हैं। अतएव, सामूहिक रूप से कहा जा सकता है कि कच्चे माल की पूर्ति की दृष्टि से झरिया के कोयला क्षेत्रों के बीच का भाग इस उद्योग की स्थापना के लिए सर्वथा अनुकूल है।

विभिन्न संयन्त्रों का उत्पादन इस प्रकार है :

(लाख टनों में)

संयन्त्र	क्षमता	उत्पादन १९७०–७१	उत्पादन १९७१–७२	उत्पादन १९७२–७३
भिलाई	२५.०	१९.५	१९.४	२१.०८
रूरकेला	१८.०	८.२	१०.४	११.७७
दुर्गापुर	१६.०	७.०	६.३	७.२३
योग	५९.०	३४.७	३६.१	४०.०८

टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० २०'०	१७'१	१७'१	१६'६०
इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० १०'०	६'३	६'२	४'३१
कुल योग ८६'०	५६'५	५८'०	६१ ३१

इस्पात ढोकों का उत्पादन

(लाख टनों में)

उत्पादक	१९६५–६६	१९६९–७०	१९७०–७१	१९७१–७२
TISCO	१६'७०	१७'०८	१७'१५	१७ ०८
IISCO	६'७०	७'००	६'२७	६'१७
MISW	०'६६	१'३६	०'६१	१'३१
भिलाई	१३'७१	१८'७६	१६'४०	१६'५३
रूरकेला	१०'६५	११'०३	१०'३८	८'३३
दुर्गापुर	१०'००	८'१८	६'३४	७'००
गौण उत्पादक	०'७२	०'६२	०'६४	४'८०
योग	६५'२६	६४'३३	६१ ३८	६४'१३

निर्मित इस्पात का उत्पादन

(लाख टनों में)

TISCO	१०'८४	१०'०२	९'८३	१० ०२
IISCO	६'२३	४'६०	६'६४	४ ४६
MISW	०'४६	०'४०	० २४	०'४४
भिलाई	७'२६	११'३४	१२'१५	१०'३०
रूरकेला	७'१७	७'५८	५'६३	५ ६१
दुर्गापुर	५'१०	३'६५	३'३७	३'३७
अन्य	८'०	१२'५६	१२'११	१४'३६
योग	४५'०६	५०'४८	४८ २७	४८'५६

लोहा और इस्पात तैयार करने वाली निम्न इकाइयाँ हैं :

(१) टाटा लोहा और इस्पात का कारखाना (TISCO) भारत में सबसे बड़ा कारखाना है जहाँ भारत का दो-तिहाई इस्पात बनता है। यह कोयले की अपेक्षा लोहे की खानों के अधिक निकट है। यह कारखाना साकची नामक स्थान पर १६०७ में जमशेदजी टाटा द्वारा स्थापित किया गया था। यह स्थान बिहार के सिंहभूम जिले में है जिसके उत्तर में स्वर्णरेखा और पश्चिम में खोरकाई नदी बहती है। इन्हीं दोनों

नदियों की लगभग ५ किलोमीटर चौड़ी घाटी में यह कारखाना स्थित है। उद्योग के यहाँ स्थापित किये जाने के मुख्य कारण निम्न हैं :

(१) इस कारखाने के लिए लोहा पार्श्ववर्ती गुरुमहिसानी की पहाड़ियों से प्राप्त होता है जो यहाँ से केवल लगभग १०० किलोमीटर दूर है। कुल लोहे की आवश्यकता का लगभग ५० प्रतिशत अकेले नोआमण्डी से आता है, शेष गुरुमहिसानी, बादाम पहाड़ और सुलेपात से। (२) कोयला झरिया की खानों से मिलता है जो केवल १६० किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। (३) चूना ३२० किलोमीटर की
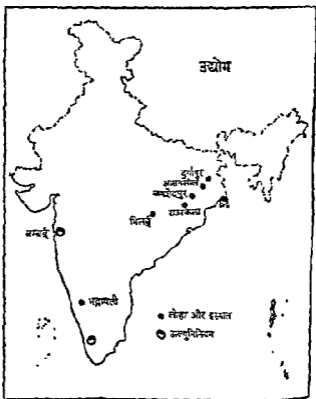
चित्र—१४२

दूरी से आता है विशेषकर त्रिरुचिरापल्ली, हाथीबारी, बिसरा, कटनी और बाराद्वार से। पानपोश की डोलोमाइट की खानें यहाँ से ४६० किलोमीटर दूर हैं तथा

मैंगनीज और अन्य रासायनिक पदार्थ निकट ही प्राप्त हो जाते हैं। यहाँ के मैंगनीज में ४० से ५०% धातु होती है। ६५ से ६८% वाली क्वार्टजाइट चट्टानें भी यहाँ मिलती हैं। ४० से ५०% क्रोमाइट वाली चट्टानें सिंहभूम जिले से मिलती हैं। टंगस्टन मिदनापुर और जोधपुर से प्राप्त किया जाता है। डाइटैनियम दक्षिणी भारत से और अग्नि मिट्टी बेलपहाड़ से लायी जाती है। (४) लोहे और इस्पात के लिए मीठे और स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है। दोनों नदियाँ छोटी होने कारण गर्मी में सूख जाती हैं। इस कारण इनका जल एक बड़े हौज में एकत्रित कर लिया जाता है। स्वर्ण रेखा नदी की बालू मिट्टी मोल्ड ढालने के लिए उपयुक्त है। (५) जमशेदपुर का कारखाना दक्षिणी-पूर्वी रेलमार्ग द्वारा कलकत्ता तथा बम्बई से जुड़ा है जहाँ निर्मित माल सुविधापूर्वक भेजा जा सकता है। कलकत्ता के निकट अनेक इन्जीनियरिंग उद्योग स्थित हैं जहाँ विभिन्न प्रकार के लोहे की खपत होती है। (६) यहाँ श्रमिक न केवल संथाली लोग हैं वरन् बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के लोग भी हैं।

चित्र—१४·३

यहाँ सलाखें, गर्डर, रेल के डिब्बे, पहिये और पटरियाँ, चादरें, स्लीपर, फिशप्लेट बनाये जाते हैं। टाटा के इस कारखाने के निकट अन्य उद्योग भी केन्द्रित

हो गये हैं, जैसे टिनप्लेट, कास्ट लोहे की पटरियाँ, जमशेदपुर इन्जीनियरिंग और मशीन कम्पनी, टाटानगर फाउण्डरी, कृषि के औजार उत्पन्न करने वाली एग्रीको कम्पनी और रेलवे इंजिन।

प्रतिवर्ष इस कारखाने में बिक्री योग्य १५ लाख टन इस्पात तैयार किया जाता है। इस कारखाने की क्षमता अन्तिम रूप से ४० लाख टन की जाने का निश्चय किया गया है।

(२) भारतीय लोहा और इस्पात का कारखाना (IISCO) १८७४ में स्थापित किया गया। यहाँ भारत में सबसे अधिक लोहे की ढलाई का काम होता है। यह कारखाना कुल्टी में लोहे और कोयले के क्षेत्र के समीप ही दामोदर नदी की शाखा बाराकर नदी पर स्थापित किया गया है जो कलकत्ता से २२५ किलोमीटर उत्तर-पश्चिम की ओर है। *पूर्व की ओर सबसे बड़ी आयरन फाउण्ड्री यहीं है।* हीरापुर (बर्नपुर) में (जो कुल्टी से १४ किलोमीटर दूर है) लोहे की ढली हुई वस्तुएँ बनायी जाती हैं। यहाँ केवल गला हुआ लोहा ही बनाया जाता है। यह दोनों कारखाने एक ही प्रबन्ध में हैं। इस कारखाने को लोहा गुआ, केंदुरझर, मयूरभंज और कोल्हान की खानों से और कोयला रामनगर की खानों से मिलता है। झरिया, क्षेत्र की *जितपुर और नूनोदिह खानों से भी कोयला प्राप्त किया जाता है।* चूने का पत्थर गंगापुर के निकट विसरा नामक स्थान तथा पूर्वी रेलवे पर स्थित पारापाट और बाराद्वार से आता है। यहाँ जल की पूर्ति दामोदर नदी को रोक कर बनाये हौज से प्राप्त की जाती है। कलकत्ता और हुगली के औद्योगिक क्षेत्र यहाँ से २०० किलोमीटर दूर हैं। इसकी फाउण्ड्री में ५ विभिन्न खण्ड हैं जिनकी उत्पादन शक्ति ७०,००० टन की है।

इस कारखाने में ढलाई का लोहा, नल और रेलवे स्लीपर बनाये जाते हैं। यहाँ प्रतिवर्ष लगभग १३ लाख टन इस्पात बनाया जाता है।

इस कारखाने की उत्पादन क्षमता द्वितीय योजनाकाल में ७ लाख टन से बढ़कर तृतीय योजनाकाल में १० लाख टन हो गयी थी। १४ जुलाई, १९७२ से इस *पर भारत सरकार का नियन्त्रण हो गया है।* इसकी क्षमता अब बढ़ाकर २३ लाख टन की जा रही है।

(३) मैसूर लोहा और इस्पात लिमिटेड (*MIS Ltd*) कम्पनी की स्थापना १९२३ में कर्नाटक राज्य में भद्रावती नामक स्थान पर की गयी। भद्रा नदी की घाटी १३ किलोमीटर चौड़ी है अतः कारखाने के लिए उपयुक्त भूमि उपलब्ध है। यह बिरूर-शिमोगा रेलवे लाइन पर है। अतः यातायात की सुविधा है। इसके समीप ही शिमोगा में वन पाये जाते हैं जिनकी लकड़ी के कोयले से लोहा गलाया जाता है। यहाँ के *लिए कच्चा लोहा बाबाबूदन की पहाड़ियों में स्थित कमानगुंडी की खानों से* (जो भद्रावती से केवल ४२ किलोमीटर दूर है) आता है। चूने का पत्थर भांडीगुडा की खानों से (जो भद्रावती से २१ किलोमीटर पूर्व में है) आता है। इस कारखाने में

लकड़ी से एल्कोहल तथा शिवासमुद्रम प्रपात से शक्ति प्राप्त कर लोहा गलाया जाता है और इस्पात बनाया जाता है।

इस कारखाने की उत्पादन क्षमता १९७१ में १ लाख मीट्रिक टन की थी जो भविष्य में २ लाख मीट्रिक टन हो जाने का अनुमान है। यहाँ ७७,००० टन विशिष्ट किस्म का और मिश्रित इस्पात बनाने के कार्यक्रम भी हैं।

इस कारखाने का वार्षिक उत्पादन ८८·८ हजार टन इस्पात का है। १ अप्रैल, १९६२ में यह कम्पनी कर्नाटक सरकार तथा भारत सरकार के संयुक्त स्वामित्व में समामेलित की गयी।
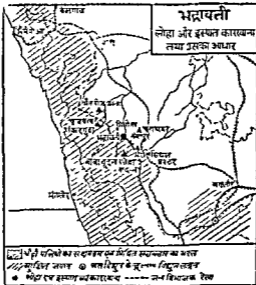
चित्र—१४४

(४) रूरकेला का कारखाना कलकत्ता से ४३१ किलोमीटर दूर बम्बई-कलकत्ता रेलमार्ग पर रूरकेला में (उड़ीसा) है। इस कारखाने को ये सुविधाएँ प्राप्त हैं: (१) यहाँ से पश्चिम की ओर शाख तथा कोइल नदियाँ ब्राह्मणी नदी में मिलती हैं, अतः जल की पर्याप्त सुविधा है। (२) रूरकेला से केवल ८० किलोमीटर दूर बोनाई में वालदीह स्थान पर अच्छी किस्म के लोहे की बड़ी-बड़ी खानें हैं। यहाँ लगभग ७० करोड़ टन धातु के जमाव होने का अनुमान है। ७२ किलोमीटर दूर बरसुआ में नयी खानों का विकास किया जा रहा है। (३) चूने का पत्थर बिरमित्रापुर में तथा मैंगनीज निकटवर्ती क्षेत्रों में ही उपलब्ध है। इस क्षेत्र में चूने के पत्थर के जमाव लगभग २६ लाख टन के अनुमानित किये गये हैं। (४) उत्तम कोयला २४० किलोमीटर

दूर स्थित बोकारो से तथा ३२० किलोमीटर दूर झरिया से प्राप्त किया जाता है। घटिया कोयले के लिए कोरबा क्षेत्र ११० किलोमीटर दूर है। (५) हीराकुड विद्युत गृह से रूरकेला १६० किलोमीटर ही दूर है जहाँ से विद्युत मिल सकती है। (६) टाटानगर की खान से डोलोमाइट प्राप्त हो जाता है।

इस कारखाने में २ लपट वाली भट्टियाँ, ४ खुली भट्टियाँ, तीन परिवर्तन तथा स्लूमिंग और स्लैबिंग मिल, प्लेट मिल, आदि कार्य कर रहे हैं। यहाँ अधिकतर चपटे आकार की वस्तुएँ, अलग-अलग मोटाई की प्लेटें, चादरें, पत्तियाँ, टीन की चादरें, आदि बनायी जाती हैं। इसका उपयोग जहाज अथवा रेल के डिब्बे बनाने के लिए किया जाता है। बिजली के झाने हुए पाइपों का उत्पादन करने के लिए एक पाइप संयन्त्र यहाँ स्थापित किया गया है।

इन वस्तुओं के अतिरिक्त यहाँ के कारखाने में हल्का तेल, प्रागविक तेल (Carbolic oil), नैफ्थलीन तेल, वॉश आयल, ऐंथ्रेसीन तेल, पिच, आदि तैयार करने की व्यवस्था भी की गयी है। हल्के तेल से बैंजोल, टूलोल तथा ऐथेटी तेल बनाये जायेंगे। नेत्रजन तथा नेत्रजन उर्वरक बनाने के लिए एक ६ लाख टन क्षमता वाला संयन्त्र स्थापित किया गया है।

इस कारखाने की उत्पादन क्षमता १९६६ में १२ लाख मीट्रिक टन की थी जो १९७० में बढ़कर १८ लाख मीट्रिक टन हो गयी। अब यह ३५ लाख मीट्रिक टन की हो जाने का अनुमान है।

(५) भिलाई का कारखाना मध्य प्रदेश में भिलाई नामक स्थान पर रायपुर से २१ किलोमीटर पश्चिम में दुर्ग-रायपुर रेलमार्ग पर बनाया गया है। इसके लिए यहाँ निम्न सुविधाएँ पायी जाती हैं : (१) इस कारखाने के लिए कच्चा लोहा ३२ किलोमीटर दूर धाली-राजहरा पहाड़ियों से प्राप्त होता है। इसमें धातु का अंश ६५ प्रतिशत तक है। लौह अयस हाहालदी, कोंडापूखा, चारगांव और रावघाट में भी मिलता है। दुर्ग यहाँ से ८३ किलोमीटर पड़ता है। चन्द्रपुर और बस्तर जिलों में १६५ टन के भण्डार सुरक्षित हैं। (२) यहाँ के लिए उत्तम किस्म का कोकिंग कोयला २२५ किलोमीटर दूर से प्राप्त होता है। यहाँ से ६·६ करोड़ टन कोयला मिलने का अनुमान है। इसके अतिरिक्त झरिया और कोरबा का कोयला ६५ ३५ के अनुपात में मिलाकर धातु शोधन के उपयुक्त बनाया जाता है। कोरबा की खानें १०० किलोमीटर दूरी पर हैं। इसमें कार्बन का प्रतिशत ७६ और राख का अंश २१ ८ प्रतिशत है। कोरबा ताप शक्तिगृह से ८०,००० किलोवाट बिजली भी उपलब्ध है। (३) इस कारखाने के लिए प्रतिदिन लगभग १३·५ करोड़ गैलन शुद्ध जल की आवश्यकता होती है। यह जल प्राप्ति तदुला नहर से होती है। गोंदी योजना भी इसमें सहायक है। (४) चूना दुर्ग, रायपुर और बिलासपुर जिलों से प्राप्त होता है जहाँ लगभग १५,००० वर्गमील में कई खानें फैली हैं। (५) डोलोमाइट भानेवर, कसादी,

पारसोदा, खरिया, रामतोला और हरदी (बिलासपुर जिले में) तथा माटपारा और पाटपार (रायपुर) से प्राप्त होता है।

इस कारखाने में तीन ओवन-भट्टियाँ, तीन लपटवाली भट्टियाँ, ६ खुली भट्टियाँ और ४ रोलिंग मिल कार्य कर रहे हैं। यहाँ रेलें, छड़ें, शहतीर, स्लीपर, कतरनें, आदि तैयार की जाती हैं।

यहाँ अमोनिया सल्फेट, बेंजोल, टूलोल, जिलोन, सोलवेंट, नैफ्था, कारबोलिक एसिड, नैफ्थलीन तेल, ऐंथ्रासीन तेल, ऐंथ्रासीन, नैफ्थलीन, निराल, आदि भी तैयार करने की व्यवस्था है।

इस कारखाने की उत्पादन क्षमता १९६१ में १० लाख मीट्रिक टन की थी जो १९७१ में २५ लाख मीट्रिक टन हो गयी। १९७४-७५ तक इसकी क्षमता ४० लाख मीट्रिक टन होने का अनुमान था।

(६) दुर्गापुर इस्पात का कारखाना बंगाल में दुर्गापुर में स्थापित किया गया है। इस कारखाने को ये सुविधाएँ प्राप्त हैं : (१) इसके लिए कोयला रानीगंज की खानों तथा बिहार से (७२ किलोमीटर दूरी से) प्राप्त होता है। दामोदर योजना के शक्तिगृह से जलविद्युत शक्ति भी मिलती है। (२) दुर्गापुर बाँध की नहरों से इस्पात ठण्डा करने के लिए शुद्ध जल मिलता है। (३) लौह अयस्क २४० किलोमीटर दूर गुआ की खानों से प्राप्त किया जाता है। (४) चूने का पत्थर बिरमित्रापुर तथा हाथीबाड़ी क्षेत्र से मँगवाया जाता है। (५) घनी जनसंख्या वाले क्षेत्र में स्थित के कारण पर्याप्त मजदूर मिलने की सुविधा तथा कलकत्ता जैसे बड़े बाजार का सामीप्य इसे प्राप्त है।

यहाँ के कारखाने में अधिकतर पहिये, टायर, धुरियाँ, रेल की पटरियाँ, छड़ें, कतरनें, बिलेट, आदि तैयार किये जाते हैं। यहाँ ३६ लाख टन कच्चा लोहा भी तैयार किया जाता है। पहिये और धुरी बनाने का संयन्त्र भी स्थापित किया जा चुका है।

इसकी क्षमता १६ लाख टन इस्पात के पिंडों की है जो १९७४-७५ में बढ़कर ३५ लाख टन हो जायेगी।

यहाँ अमोनियम सल्फेट, बेंजीन, टूलोन, जिलोन, सालवेंट नैफ्था, नैफ्थलीन और कोलतार बनाने की भी व्यवस्था है।

(७) बोकारो का इस्पात का कारखाना—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत एक नया कारखाना बोकारो में स्थापित किया गया है। यह कारखाना रूस के सहयोग से बना है। इसके लिए ३३५ करोड़ रुपये की पूँजी वाली कम्पनी बोकारो स्टील लिमिटेड की स्थापना की गयी है। यह दो चरणों में पूरा बनकर तैयार होगा। अन्ततः इसकी उत्पादन क्षमता आरम्भ में ४० लाख टन पिण्ड की होगी जिसे बाद में ५५ लाख टन बढ़ाया जा सकेगा। प्रथम चरण में यह क्षमता १७ लाख टन इस्पात के ढाँचे और ८·८ लाख टन ढले लोहे की होगी। पहला चरण १९७४

में और द्वितीय चरण १९७५-७६ में समाप्त हो जाने की आशा है। प्रथम चरण पर ७६० करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। इसकी स्थापना के पीछे ये कारण हैं: (१) यहाँ जो इस्पात तैयार किया जायेगा वह कम मूल्यों पर ही बनाया जा सकेगा। (२) यह जमशेदपुर तथा झरिया के कोयला क्षेत्रों के भी निकट पड़ता है अतः इसकी स्थापना से सम्पूर्ण इस्पात-कोयला क्षेत्र में एक समन्वयता होकर औद्योगिक क्षेत्र पूर्ण संगठित हो सकेगा। (३) सिंद्री के कारखाने के निकट होने के कारण यहाँ बनाया जाने वाला कोक रासायनिक खाद बनाने के लिए प्राप्त हो सकेगा।

बोकारो की स्थिति औद्योगिक कारखाने के बीच में बड़ी महत्त्वपूर्ण है जहाँ डिब्बे, इन्जिन, माइकिलें, गाड़ियाँ तथा अनेक तरह का इस्पात का सामान बनाया जायेगा। पहले चार उद्योगों के लिए कई उद्योगों की आवश्यकता पड़ती है जिनमें इस्पात से वस्तुएँ बनायी जा सकें। बोकारो से ४० किलोमीटर की दूरी पर मुरी में अल्यूमीनियम साफ करने का कारखाना, तन्दू में (१६ किलोमीटर की दूरी पर) सीसा, जस्ता, आदि साफ करने का कारखाना तथा गुलमरी में टिन की चादरें बनाने तथा अन्य केन्द्रों में काँच और अग्नि प्रतिरोधक ईंटों के बनाने का उपयोग और दामोदर नदी के निकट गोमिया में विस्फोटक पदार्थ बनाने का उद्योग केन्द्रित है। इस दृष्टि से बोकारो का चुनाव बड़ा अच्छा कहा जा सकता है।

(८) **विजयनगर इस्पात कारखाना**—लोहे और इस्पात का नया कारखाना कर्नाटक के बलारी जिले में हास्पेट के निकट तोरनगल्ल में स्थापित किया जा रहा है जो पूर्णतः भारतीय तकनीकियों द्वारा ही बनाया जायेगा। इसमें लगभग ६०० करोड़ रुपये लगेंगे और यह सन् १९७९ तक बनकर पूरा होगा। इसकी उत्पादन क्षमता आरम्भ में ३० लाख टन की होगी जो अन्ततः दुगुनी की जायेगी। इसका नाम **विजयनगर इस्पात कारखाना** होगा। इसके लिए कोकिंग कोयला मध्य प्रदेश की कान्हन घाटी, बिहार, और आन्ध्र प्रदेश के सिंगरेनी से लाया जायेगा। कर्नाटक में लगभग २०० करोड़ टन के उत्तम लोहे के जमाव इसके लिए उपयुक्त हैं। तुंगभद्रा बाँध से (जो यहाँ से केवल ३२ किलोमीटर दूर है) कारखाने के लिए पर्याप्त मात्रा में जल प्राप्त होगा। २०० किलोमीटर दूरी से अच्छी किस्म का चूने का पत्थर और डोलोमाइट प्राप्त होगा। १३० से १५० मेगावाट शक्ति कर्नाटक विद्युत मण्डल से प्राप्त की जायेगी। इस कारखाने से कर्नाटक राज्य का औद्योगीकरण और भी तीव्र गति से हो सकेगा। इस कारखाने में नर्म इस्पात (*Mild steel*) तैयार किया जायेगा। इसमें उत्पादन १९७८-७९ तक आरम्भ होगा।

(९) *विशाखापट्टनम इस्पात का कारखाना*—आन्ध्र प्रदेश में एक कारखाना विशाखापट्टनम के बन्दरगाह पर बनाया जा रहा है। यह दामोदर नदी घाटी के कोयला क्षेत्रों के निकट पड़ता है। मध्य प्रदेश की बैलाडीला लोहे की खानों से लौह अयस्क तथा मध्य प्रदेश से ही डोलोमाइट, चूने का पत्थर, अग्नि प्रतिरोधक मिट्टियाँ एवं अन्य आवश्यक खनिज प्राप्त किये जा सकेंगे। बन्दरगाह की दृष्टि से विदेशों से

कोकिंग कोयला एवं अन्य कच्चा माल आयात किया जा सकेगा । इस कारखाने में भी नर्म इस्पात तैयार किया जायेगा । इसकी उत्पादन क्षमता ३० लाख की होगी ।

(१०) सलेम का इस्पात कारखाना—तमिलनाडु के सलेम जिले में विशेष प्रकार का इस्पात बनाने हेतु नया कारखाना सलेम में स्थापित किया जा रहा है । सलेम में मैग्नेटाइट किस्म का लोहा तथा अपार मात्रा में चूने का पत्थर और मैग्नेसाइट उपलब्ध है । नैवेली में प्राप्त लिग्नाइट कोयले का उपयोग लोहे को शुद्ध करने में किया जायेगा । इसकी उत्पादन क्षमता १६ लाख टन की होगी । इसमें उत्पादन सन् १९७९ से आरम्भ होगा । इस कारखाने में ७०,००० टन जंगरहित इस्पात, ७५,००० टन सिलीकन इस्पात, ३०,००० टन विशेष प्रकार का इस्पात एवं २०,००० टन नर्म इस्पात बनाया जायेगा ।

एल्यूमीनियम उद्योग
(ALLUMINIUM INDUSTRY)

बॉक्साइट धातु से अल्यूमीनियम बनाया जाता है । बॉक्साइट की कच्ची धातु को शुद्ध करके ही सफेद रंग का रवेदार पदार्थ अल्यूमीना प्राप्त किया जाता है । इसे क्रायोलाइट के घोल में बिजली की भट्टियों में लगाकर अल्यूमीनियम धातु प्राप्त की जाती है । इसके लिए बॉक्साइट और कोयले का साथ-साथ पाया जाना आवश्यक है अन्यथा अल्यूमीना के कारखाने कोयले की खानों के समीप स्थापित किये जाते हैं तथा अल्यूमीनियम के कारखाने बिजली उत्पादन के केन्द्रों के निकट । सामान्यतः एक टन अल्यूमीनियम बनाने के लिए विद्युतशक्ति २० से २४ हजार किलोवाट, ५ टन बॉक्साइट, ½ टन चूना, ½ टन पैट्रोलियम कोक, ¼ टन कास्टिक सोडा, ½ टन पिच की आवश्यकता पड़ती है ।

भारत में अल्यूमीनियम उद्योग का विकास द्वितीय महायुद्ध काल में हुआ था।

[illegible]

(टनों में)

	संस्थापित क्षमता (१९६७)	चतुर्थ योजना के अन्त में
हिन्दुस्तान अल्यूमीनियम कॉरपोरेशन	७२,०००	१,२०,०००
इण्डियन अल्यूमीनियम क०	४०,०००	१,४०,०००
मद्रास अल्यूमीनियम क०	१२,५००	२५,०००
अल्यूमीनियम कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया	६,०००	—
योग	१,३१,५००	४,५०,०००

इण्डियन अल्यूमीनियम क० एक नया स्मैल्टर ३०,००० टन क्षमता वाला बेलगाम में और स्थापित कर रही है। अनुमान है कि १९७३-७४ तक अल्यूमीनियम की माँग २,३०,००० टन तक हो जायेगी। १९७८-७९ में अल्यूमीनियम की माँग ३·९ लाख टन हो जाने का अनुमान है। इसकी पूर्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में कोयना (महाराष्ट्र) में ५०,००० टन क्षमता का और कोरबा (मध्य प्रदेश) में १ लाख टन क्षमता का कारखाना स्थापित किया गया है।

भारत में अल्यूमीनियम का उत्पादन इस प्रकार रहा है :

(उत्पादन हजार टनों में)

वर्ष	उत्पादन
१९५१	३·५६
१९५६	६·५०
१९६१	१८·६९
१९६६	७४·०२
१९७१	१८०·००
१९७३-७४ (अनुमानित)	२१५·००
१९७८-७९ (लक्ष्य)	४३०·००

भारत अभी अल्यूमीनियम में स्वावलम्बी नहीं है अतः यह धातु आयात करनी पड़ती है। अल्यूमीना जापान, संयुक्त राज्य अमरीका और जर्मनी से आयात की जाती है, जबकि अल्यूमीनियम की छड़ें कनाडा, संयुक्त राज्य, रूस, नार्वे, फ्रांस और यूगोस्लाविया से तथा अल्यूमीनियम के सीकचे, चक्के, कनाडा, संयुक्त राज्य, ब्रिटेन और यूगोस्लोवाकिया से आयात किये जाते हैं।

१९७२-७३ में २७७ लाख रुपये मूल्य का अल्यूमीनियम आयात किया गया। १९६०-६१ में यह आयात ६६७ लाख रुपये का था।

उद्योग का स्थानीयकरण

अल्यूमीना और अल्यूमीनियम तैयार करने वाले कारखाने मुख्यतः बिहार और उत्तर प्रदेश में हैं।

(१) इण्डियन अल्यूमीनियम क० पूर्णरूप से स्वावलम्बी है क्योंकि यहाँ बॉक्साइट से अल्यूमीना, अल्यूमीना से अल्यूमीनियम धातु और उसकी चादरें आदि बनाने का कार्य सभी किये जाते हैं। बॉक्साइट की प्राप्ति बिहार के लोहारडागा की खानों से की जाती है। मुरी स्थान में उससे शुद्ध धातु (अल्यूमीना) तैयार किया जाता है। बॉक्साइट की खानें यहाँ से ३२ किलोमीटर दूर पड़ती हैं। ये रेल मार्गों द्वारा जुड़ी हैं। दामोदर घाटी से मुरी को कोयला मिल जाता है। मुरी से अल्यूमीना अल्वाये (केरल) को भेजा जाता है जो यहाँ से लगभग २,४०० किलोमीटर दूर है किन्तु यहाँ पल्लीवासल योजना से सस्ती जल विद्युत-शक्ति मिल जाती है। यहाँ अल्यूमीनियम के पिण्ड तैयार

किये जाते हैं। ये पिण्ड अल्वाये से २,४०० किलोमीटर दूर बेलूर (पश्चिमी बंगाल) में भेजे जाते हैं जहाँ इसकी चादरें तैयार की जाती हैं।

इसी कम्पनी की एक इकाई हीराकुड क्षेत्र में खोली गयी है जिसमें मुरी से अल्यूमीना मँगाकर अल्यूमीनियम तैयार किया जाता है। इसे हीराकुड योजना से शक्ति मिलती है। इसकी क्षमता १·४० लाख टन की की जा रही है।

(२) अल्यूमीनियम कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया का कारखाना आसनसोल के निकट जे० के० नगर में है। यहाँ अल्यूमीना, अल्यूमीनियम के पिण्ड और उसकी चादरें बनाने का कार्य एक ही स्थान पर किया जाता है। बॉक्साइट लोहारडांगा से प्राप्त होता है। कोयले की खानें इसकी अपनी हैं।

(३) हिन्दुस्तान अल्यूमीनियम कॉरपोरेशन का कारखाना उत्तर प्रदेश में सोन नदी की घाटी में मिर्जापुर के निकट रेणुकोट में है। यह बॉक्साइट बिहार से प्राप्त करता है। चूने का पत्थर विन्ध्याचल क्षेत्र से और सस्ती विद्युत शक्ति रिहन्द बाँध से मिलती है। इसकी उत्पादन क्षमता १·२० लाख टन की जा रही है।

(४) मद्रास अल्यूमीनियम कम्पनी का कारखाना सलेम में है जहाँ शिवराय की पहाड़ियों में बॉक्साइट और चूने का पत्थर तथा मैटूर बाँध से शक्ति प्राप्त होती है। इसकी क्षमता २५ हजार टन की होगी।

इन्जीनियरिंग उद्योग
(ENGINEERING INDUSTRIES)

इंजीनियरिंग उद्योग के अन्तर्गत सब प्रकार की धातुओं का निर्माण किया जाता है जैसे लोहा, इस्पात, अल्यूमीनियम, ताँबा, मिश्रित धातुएँ, आदि। भारी इंजीनियरिंग उपकरण भी धातुओं के बने होते हैं किन्तु वह वजन और आकार में भारी होते हैं। बड़े-बड़े उपकरणों के निर्माण के लिए बड़ी मशीनों की आवश्यकता होती है जिनमें विपुल धनराशि लगती है। इनके लिए विशेष तकनीकी ज्ञान और अनुभव, परिवहन की पूर्ण सुविधाएँ, रेल किराये में सोहार्द्रपूर्ण उदार नीति का पालन तथा सस्ती विद्युत या ताप शक्ति की व्यवस्था का होना आवश्यक है। इन्जीनियरी उद्योग के लिए बड़ी मात्रा में उपकरणादि विदेशों से आयात करने पड़ते हैं। १९५०-५१ में ६१·४२ करोड़ रुपये; १९६०-६१ में १३०·०५ करोड़ रुपये, और १९७१-७२ में २५७ करोड़ रुपये के मूल्य की मशीनें आयात की गयीं। आयात मुख्यतः जापान, कनाडा, पश्चिम जर्मनी, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमरीका, इटली और रूस से किया जाता है।

सन् १९४७ के बाद से ही इन्जीनियरी उद्योग में प्रगति की गयी है और अब मशीनी औजार, रेल के डिब्बे, बिजली की मोटरें, ट्रान्सफॉर्मर, चीनी मिल और कोयला काटने की मशीनें, मोटर कारें, ट्रैक्टर, स्कूटर, बाइसकिलें, गीयर, फावड़े, बुलडोजर्स, आदि वस्तुओं का उत्पादन बढ़ रहा है।

तृतीय योजना में इस्पाती ट्यूब, तार, विद्युत तार, तार के रस्से, विभिन्न प्रकार की लोहे और इस्पात की ढलाई और गढ़ाई तथा जोड़कर बनाये जाने वाले ढाँचे, डेरी मशीनें, कागज तथा छपाई की मशीनें, आदि बनाने के लक्ष्यों की पूर्ति की गयी।

यह स्मरणीय तथ्य है कि पहली योजना के आरम्भ में केवल ५ करोड़ के मूल्य की मशीनें भारत में बनायी जाती थीं। दूसरी योजना में इनका उत्पादन १०० करोड़ से भी अधिक बढ़ गया। तृतीय योजना की समाप्ति पर लगभग ८०० करोड़ रुपये की मशीनें प्रतिवर्ष बनने लगीं। चतुर्थ योजना के अन्त तक १,६००-२,७०० करोड़ रुपये के मूल्य की मशीनें बनने लगीं। पांचवीं योजना के अन्त तक २,००० करोड़ रुपयों की मशीनें बनने लगेंगी।

मशीनी औजारों के उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ उनका निर्यात भी बढ़ने लगा है। १९५०-५१ में केवल ५८ लाख रुपये का निर्यात किया गया। १९६०-६१ में लगभग ३ करोड़ रुपये का, १९६६-६७ में ११ करोड़ के मूल्य का और १९७२-७३ में २१ करोड़ रुपये के मूल्य का निर्यात किया गया। यह निर्यात मुख्यतः *अफगानिस्तान, बर्मा, मलयेशिया, ईरान, केनिया, पाकिस्तान, सिंगापुर, ब्रिटेन, ओमान* और पश्चिमी जर्मनी को किया जाता है।

निर्माण कला सम्बन्धी उद्योगों में कई प्रकार के उद्योग सम्मिलित हैं। इसके अन्तर्गत स्ट्रक्चरल इन्जीनियरिंग (जिसके अन्तर्गत पुल आदि बनाना, तेल के कुएँ, डेरिक्स, आदि दूसरे इस्पात के कामों का निर्माण करना आता है), औद्योगिक प्लान्ट और मशीनरी के निर्माण का उद्योग, इन्जिन बनाने का उद्योग, मोटर, आदि बनाने का उद्योग; हवाई जहाज बनाने का उद्योग, मशीन टूल्स (जिसके अन्तर्गत वे तमाम यान्त्रिक उपकरण आ जाते हैं जो लकड़ी या धातु के काटने, पालिश करने या उन पर काम करने के लिए आवश्यक होते हैं), हल्की निर्माण कला के उद्योग (साइकिल, सिलाई की मशीनें, लालटेन बनाने के उद्योग), बिजली के सामान सम्बन्धी उद्योग (*पंखे, बत्तियाँ, मोटर्स, तार, सूखी बैटरियाँ, प्लग, ट्रान्सफार्मर्स, आदि*), *औजार सम्बन्धी* उद्योग; विद्युत की मशीनें, रेडियो और टेलीफोन के सामान बनाने के उद्योगों का समावेश किया जाता है।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व मशीनी औजार बनाने वाली कोई फैक्ट्री भारत में नहीं थी। अत: स्विस सरकार के सहयोग से हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड की स्थापना बंगलौर के निकट *जलाहाली में सन् १९५३ में की गयी। इसकी अन्य इका*-इयाँ बंगलौर, पिंजौर (हरियाणा), कालामासेरी (केरल) और हैदराबाद में हैं। इन सभी इकाइयों में छोटे और मध्यम श्रेणी के औजार बनाये जाते हैं।

राँची के निकट हटिया में Heavy Engineering Corporation के नाम से भारी मशीनें बनाने का कारखाना स्थापित है। इसी प्रकार का एक अन्य कार-

खाना दुर्गापुर में भी है, जहाँ कोयला खनन की मशीनें बनायी जाती हैं। भोपाल में बिजली के भारी यन्त्र बनाने के लिए *Heavy Electricals* और हरद्वार के निकट रानीपुर में भी इसकी एक इकाई स्थापित की गयी है।

पश्चिमी बंगाल में रूपनारायणपुर में टेलीफोन और समुद्री तार (Hindustan Cables Factory) और कलकत्ता स्थित National Instruments फैक्ट्री में अनेक प्रकार के वैज्ञानिक एवं सूक्ष्म औजार तथा बंगलौर में टेलीफोन बनाये जाते हैं।

भारत में मशीनरी उद्योग की क्षमता और उत्पादन इस प्रकार है:

(करोड़ रुपयों में)

मशीनरी	इकाई	क्षमता	उत्पादन लक्ष्य	
			१९७३-७४ (अनुमानित)	१९७८-७९ (लक्ष्य)
सूती उद्योग	११	४५	३५	५६
चीनी उद्योग	१७	२१	२०	४०
सीमेण्ट उद्योग	६	२३	५	२८
कागज उद्योग	१४	५	१३'५	
जूट उद्योग	४	५	४'०	
मशीन टूल	३०	६१	६५	१'३७

इसके उत्पादन के कारखाने मुख्यतः पश्चिमी बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, हिमाचल तथा प्रदेश में हैं।

विभिन्न प्रकार की मशीनें बनाने के मुख्य केन्द्र बम्बई, कलकत्ता, बंगलौर, ग्वालियर, सतारा, पिंजौर, जलाहाली, हैदराबाद, अम्बरनाथ, कानपुर, कालामासेरी (केरल), सनतनगर (आन्ध्र), आदि में हैं।

मशीन-टूल्स उद्योग (Machine Tool Industry)

लोहा और इस्पात के पिण्ड कई अन्य उद्योगों के लिए कच्चे माल का काम देते हैं। इनसे जो अन्य वस्तुएँ बनायी जाती हैं उन उपकरणों को ही मशीन-टूल्स कहते हैं। इनके द्वारा अनेक प्रकार की नयी मशीनें बनायी जाती हैं। मशीन टूल्स एक प्रकार का शक्तिचालित यन्त्र होता है जो धातु को काटकर एक विशिष्ट रूप देने के कार्य में प्रयुक्त होता है।

मशीन टूल्स दो प्रकार के होते हैं: (१) विशेष प्रयोजन के लिए काम में आने वाले, जैसे मोटरगाड़ी के एक्सिल बनाने वाली मशीन जो एक घण्टे में १५० एक्सिल तैयार करती है। (२) साधारण प्रयोजन वाली मशीनें विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ (मिलिंग और प्लानिंग मशीनें) बनाने के काम में आती हैं।

औद्योगिक मशीन निर्माण उद्योग

१. वस्त्र बनाने की मशीनें

द्वितीय महायुद्ध के संकटपूर्ण दिनों तथा स्वाधीनता प्राप्ति के बाद तेजी से हो रहे देश के औद्योगीकरण ने भारत में मशीनें बनाने के उद्योग को जन्म दिया है। सुव्यवस्थित ढंग से उद्योग का आरम्भ सन् १९४६ में हुआ जब कलकत्ता की एक फर्म

चित्र—१४५

ने वस्त्र-मिलों के लिए स्पिनिंग-फ्रेम (Spinning Frame) बनाने आरम्भ किये। इसके अतिरिक्त इसके महत्त्वपूर्ण पुर्जे, तकुए, रिंग, फ्लेटेड बार, आदि बनाये जाने लगे। इस समय वस्त्र उद्योग की मशीनें बनाने वाली ११ इकाइयाँ मुख्य हैं।

(१) नेशनल मशीनरी मैन्यूफैक्चरर्स, बम्बई। (२) टैक्समैको, कलकत्ता। (३) टैक्स-टूल्ज, कोयम्बटूर। (४) लक्ष्मी रतन इन्जीनियरिंग वर्क्स, बम्बई। (५) मशीनरी मैन्यूफैक्चरर्स कॉरपोरेशन, कलकत्ता। (६) टेक्समैको, ग्वालियर। (७) दी मैसूर मशीनरी मैन्यूफैक्चरर्स, बंगलौर। (८) कपूर इन्जीनियरिंग लि०, सतारा। (९) वसन्त इण्डस्ट्रियल एण्ड इन्जीनियरिंग वर्क्स, बम्बई। (१०) कैलिको इण्डस्ट्रियल इन्जीनियर्स, बम्बई। (११) मानिकलाल मैन्यूफैक्चरिंग क०, बम्बई।

उपर्युक्त कारखानो में कताई, धुनाई, बुनाई तथा सफाई के लिए मशीनें बनायी जाती है।

२. जूट उद्योग की मशीनरी (Jute Mill Machinery)

जूट मिलों की मशीनें बनाने का कार्य कलकत्ता में ब्रिटानिया इन्जीनियरिंग वर्क्स तथा टैक्सटाइल मशीनरी कॉरपोरेशन द्वारा किया जा रहा है। एक तीसरी कम्पनी 'लिगन जूट मशीनरी क०' के नाम से और स्थापित की गयी है। इनकी उत्पादन क्षमता: क्रमश: २४०, ३०० और १२० की है। ३२ इकाइयाँ यह मशीनें तैयार कर रही हैं।

३. चीनी उद्योग की मशीनें (Sugar Mill Machinery)

चीनी उद्योग के लिए गन्ना पेरने तथा रस को साफ करने, वाष्पीकरण और केन्द्रीयकरण करने के लिए मशीनों की आवश्यकता होती है। इनका उत्पादन (१) पश्चिमी बंगाल में बैरी ब्रादर्स, चौबीस परगना, (२) सरन इन्जीनियरिंग कम्पनी, मरहोरा; (३) रिचार्डसन एण्ड क्रूडास, बम्बई; (४) आर्थर बटलर एण्ड कम्पनी, मुजफ्फरपुर; (५) वालचन्द इण्डस्ट्रीज, वालचन्दनगर; (६) टैक्सटाइल मशीनरी कॉरपोरेशन, बेलघरिया, (७) विन्नी इंजीनियरिंग वर्क्स, मद्रास, (८) कं० मी० पी० लि० मद्रास; (९) बकाऊ वाल्फ न्यू इंजीनियरिंग वर्क्स, पिम्परी, (१०) त्रिवेणी इंजीनियरिंग वर्क्स, नैनी; (११) इण्डियन शुगर एण्ड जनरल इंजीनियरिंग कोरपोरेशन, यमुनानगर; (१२) पोर्ट इन्जीनियरिंग वर्क्स, कलकत्ता द्वारा किया जा रहा है।

४. चाय उद्योग की मशीनें (Tea Industry Machinery)

मैसर्स ब्रिटानिया इन्जीनियरिंग वर्क्स, कलकत्ता, मैसर्स मार्शल एण्ड सन्स, मैन्सबटो की सहायता से चाय की पत्ती तैयार करने की मशीनें और चाय उद्योग की अनेक मशीनें बना रहा है।

५. अन्य उद्योगों की मशीनें

भारत में उपर्युक्त मशीनों के अतिरिक्त तेल पेरने, चावल कूटने, आटा पीसने, सीमेंट, रसायन, औषधि तैयार करने की मशीनें भी तैयार की जाती हैं।

इन मशीनों के बनाने के मुख्य केन्द्र कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली, बटाला, नाहन, बम्बई, गाजियाबाद तथा अमृतसर है।

जलयान निर्माण उद्योग
(SHIP BUILDING INDUSTRY)

आधुनिक ढंग का जलयान बनाने का पहला कारखाना सिंधिया नेवीगेशन कम्पनी द्वारा १९४१ में विशाखापट्टनम में स्थापित किया गया किन्तु सन् १९५२ में आर्थिक कठिनाइयों के कारण इसका प्रशासन केन्द्रीय सरकार के हाथ में चला गया। अब हिन्दुस्तान शिपयार्ड कम्पनी इसे चला रही है।

सन् १९६० में गार्डन रीच वर्कशॉप (कलकत्ता) और मैंजगाँव डॉक (बम्बई) को केन्द्रीय सरकार ने सुरक्षा की दृष्टि से अपने हाथ में ले लिया है। गार्डन रीच वर्कशॉप में देश के भीतरी और तटीय मार्गों में व्यवहृत नावें या छोटे जहाज (Inland Transport Vessels and Coasters, Harbour Crafts) और मझगाँव डॉक में नाविक जहाज, माल ढोने वाली नावें (naval ships, barges, small cargo ships) बनायी जाती हैं। यहाँ अभी कुछ ही समय पहले Frigate किस्म का जहाज बनाया गया है।

हिन्दुस्तान शिपयार्ड में ४ बर्थ हैं जहाँ १२,५०० dwt. भार वाले मालवाहक जहाज बनाये जाते हैं और १ छोटा बर्थ है जहाँ छोटी नावें बनाई जाती हैं। इसकी क्षमता १२,५०० dwt. भार वाले जहाज बनाने की है। इसकी स्थापना से लगाकर १९७२ तक ५५ जहाज बनकर तैयार हो चुके हैं। इस शिपयार्ड में बनाये गये जहाज यद्यपि आधुनिकतम हैं किन्तु यन्त्र आदि सब बहुत ही पुराने हैं। अतः अब आधुनिकीकरण किया जा रहा है, जिसके अनुसार प्रतिवर्ष ६ जहाज बनाये जा सकेंगे जिनका टन भार ८०,००० होगा। यहाँ २५,०००-३०,००० टन भार तक के जहाजों की मरम्मत भी की जाती है।

गार्डन रीच वर्कशॉप हुगली नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित है। यहाँ ५ स्लिप-वे (Slip-way) और २ शुष्क डॉक हैं। यहाँ अब M. A. N. किस्म के सामुद्रिक इन्जिन और तत्सम्बन्धी उपकरण बनाये जाने की योजना है। यहाँ अब १५,०००-२५,००० टन भार वाले सामुद्रिक जहाज भी बनाये जाने लगे हैं।

गोआ शिपयार्ड लि० के अन्तर्गत लांच और टग प्रवृति नावें बनाई जाती हैं तथा जहाजों की मरम्मत भी की जाती है।

मझगाँव डॉक बम्बई के पोताश्रय में है, जहाँ २ शुष्क डॉक और ३ बर्थ हैं। यहाँ भारतीय नौसेना के फ्रिगेट किस्म के जहाज बनाये जाते हैं।

विशाखापट्टनम में इस कारखाने के विकास में ये कारण उत्तरदायी हैं

(१) यह बन्दरगाह पूर्वी तट पर कलकत्ता और मद्रास के केन्द्रवर्ती भाग में स्थित है अतः दोनों ओर से आने-जाने की सुविधा है। (२) इसका बन्दरगाह प्राकृतिक और गहरा है अतः बड़े-बड़े जहाजों के ठहरने की सुविधा है। (३) पश्चिमी बंगाल और बिहार के लोहे तथा कोयले के क्षेत्र बहुत ही निकट हैं। विशाखापट्टनम दक्षिणी-पूर्वी रेलमार्ग द्वारा टाटानगर से जुड़ा है (जो केवल ८८५ किलोमीटर दूर है)

अतः इस्पात मिलने की सुविधा है। (४) जहाज बनाने के उपयुक्त कठोर लकड़ी बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर के वनो से प्राप्त हो जाती है। छोटा नागपुर की लकड़ी जहाज निर्माण मे डैक, कमरे, आदि बनाने के काम आती है। (५) कुशल और दक्ष श्रमिक पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु से आ जाते हैं।

बन्दरगाह मे जलपोत सुरक्षित रखने के १८५ मीटर लम्बे बर्थ, साधारण उपयोग के लिए एक छोटे बर्थ, १२५ टन क्षमता वाले हैमर से युक्त विशाल क्रेनो तथा बहुत बड़े-बड़े पूरक कारखानो से युक्त इस शिपयार्ड मे जलपोत निर्माण करने की क्षमता १५,००० लाख टन की है।

देश की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए एक शिपयार्ड बनाने का आयोजन किया गया। इसके लिए सन् १६६७ मे ब्रिटेन से एक प्रतिनिधि मण्डल भारत बुलाया गया। इस मण्डल के अनुसार जलयान निर्माण के लिए वही स्थान उपयुक्त हो सकता है जहाँ निम्न सुविधाएँ मिल सकती हों :

(क) जहाजी कारखानों में बनने वाले बड़े-बड़े जहाजो को उतारने के लिए जल की गहराई और ज्वार-भाटे का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए।

(ख) उत्तम जलमार्ग से यह कारखाना जुड़ा हो।

(ग) तूफान से सुरक्षित और पर्याप्त लम्बा-चौड़ा स्थान हो जहाँ भविष्य मे विकास के लिए पर्याप्त स्थान मिल सके।

(घ) किसी बड़े बन्दरगाह या औद्योगिक केन्द्र के निकट हो।

(ङ) बिजली, जल, सड़क और रेल मार्गों की सुविधा हो।

इस मण्डल के अनुसार भारतीय तट पर कोई ऐसा आदर्श स्थान नहीं है जो पूर्णरूप से सभी सुविधाओ वाला हो किन्तु फिर भी अर्नाकुलम, मझगाँव, कांडला, ट्राम्बे और न्हावशेवा का विचार किया जा सकता है।

एक दूसरा शिपयार्ड कोचीन मे और स्थापित किया जा रहा है जिस पर ४५ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। इसकी जहाज बनाने की क्षमता आरम्भ मे ६६,००० GRT प्रतिवर्ष की होगी जो अन्तत: ८५,००० ग्रॉस टन की होगी।

मोटरगाड़ी उद्योग
(AUTOMOBILE INDUSTRY)

सन् १६२८ से ही कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विभिन्न भागों को एकत्रित करके मोटरगाड़ी तैयार करने का उद्योग शुरू किया गया है। इस समय देश में

१३ कारखाने हैं, यथा ५ बम्बई में, ३ मद्रास में, १ जमशेदपुर में और ४ कलकत्ता में।[1]

कलकत्ता केन्द्र में जून १९४४ में हिन्दुस्तान मोटर कम्पनी ने कार्य आरम्भ किया था। इस कम्पनी के पास पूरी मोटर और ट्रक तैयार करने की मशीनें हैं।
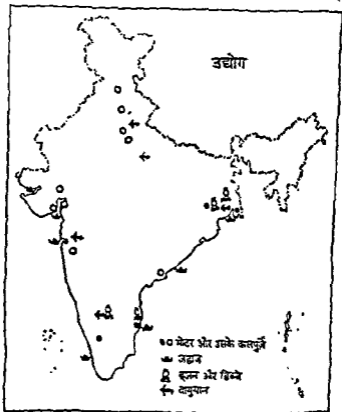
चित्र—१४६

केवल इन गाड़ियों का शरीर नहीं बन सकता है। ग्रेट ब्रिटेन की मोरिस कम्पनी तथा संयुक्त राज्य की स्टूडीबेकर कम्पनी के साथ मिलकर हिन्दुस्तान और स्टूडीबेकर

[1] महाराष्ट्र में : (१) जनरल मोटर्स लि०; (२) फोर्ड मोटर कम्पनी, (३) प्रीमियर आटोमोबाइल लि०, (४) महेन्द्र एण्ड महेन्द्र लि०; (५) रूट्स ग्रुप।
मद्रास में : (१) एडीसन एण्ड कम्पनी; (२) स्टैण्डर्ड मोटर कम्पनी, (३) अशोक मोटर्स।
कलकत्ता में : (१) पेनिन्सुला मोटर कॉरपोरेशन, (२) फ्रैंच मोटर कम्पनी (३) हिन्दुस्तान मोटर्स, (४) देवास मैरेज एण्ड इन्जीनियरिंग वर्क्स।

गाड़ियाँ भारत में तैयार करने की योजना है। कलकत्ता में उत्तरपाड़ा नामक स्थान पर इस प्रकार के एकत्रीकरण का विस्तृत कारखाना बनाया गया है।

बम्बई में भी सन् १९४४ में ही कार्य आरम्भ हुआ था। यहाँ की मुख्य कम्पनी प्रीमियर ऑटोमोबाइल कम्पनी है। इसका सम्पर्क संयुक्त राज्य की चैस्लर ग्रुप से है। यहाँ मोटर-कारें और ट्रकें बनायी जाती हैं।

बर्नपुर और जमशेदपुर में इस उद्योग के लिए विशेष सुविधाएँ हैं। ये दोनों ही स्थान लौह-क्षेत्रों के मध्य में स्थित हैं। यहाँ आयात की हुई मशीनों एवं मोटरों के कल-पुर्जों को आसानी से लाया जा सकता है। चूँकि इन केन्द्रों में इन्जीनियरिंग उद्योग पहले से ही स्थापित है इसलिए कुशल श्रमिक प्राप्त करने में कठिनाई नहीं पड़ती।

वास्तव में, मोटर उद्योग निर्माण और एकत्रीकरण दोनों रीतियों का सम्मिश्रण है। विश्व के किसी एक मोटर कारखाने में सभी आवश्यक कल-पुर्जे नहीं बनाये जाते। अतः भारत को भी मोटर गाड़ियों के सभी कल-पुर्जे निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है। भारत में कुछ भागों को बनाया जाता है और अन्य कल-पुर्जों की आवश्यकता आयात द्वारा पूरी की जाती है।

नीचे की तालिका में बताया गया है कि भिन्न-भिन्न कम्पनियाँ किस प्रकार की गाड़ियाँ तैयार करती हैं :

फर्म का नाम	गाड़ियाँ	ट्रक और यात्री ढोने वाली
(१) हिन्दुस्तान मोटर्स, कलकत्ता	हिन्दुस्तान १४, स्टूडीबेकर; मार्क II एम्बैसेडर मौरिस माइनर	स्टूडीबेकर
(२) प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स लि०, बम्बई	डॉज, डिसोटा, प्लाईमाउथ, फिएट ११००	डॉज, डिसोटा, फॉरगो
(३) स्टैण्डर्ड मोटर प्रोडक्शन इण्डिया लि०, मद्रास	स्टैण्डर्ड वैनगार्ड स्टैण्डर्ड ८	—
(४) अशोक लेलैंड लि०, मद्रास	—	लेलैंड (डीजल)
(५) टाटा मर्सीडीज बैंज लि०, जमशेदपुर		मर्सीडीज बैंज (डीजल)
(६) महेन्द्र एण्ड महेन्द्र कं० लि०, बम्बई	विलीज जीप	

विभिन्न प्रकार की मोटर गाड़ियों का उत्पादन इस प्रकार है :

(००० में)

	१९५०-५१	५५-५६	६०-६१	६५-६६	७०-७१	७१-७२
व्यापारिक गाड़ियाँ	८·६	९·९	२८·४	२५·३	४१·२	३९.५
कारें	७·९	१५·४	२६·६	३५·४	४६·७	५१.८
योग	१६.५	२५·३	५५·०	६०·७	८७·९	९१·३

१९७८-७९ में इन गाड़ियों का उत्पादन लक्ष्य ११० हजार का रखा गया है।

भारत में बनने वाली मोटर गाड़ियाँ काफी महँगी पड़ती हैं। इनका एकमात्र कारण उन पर लगाये गये ऊँचे कर हैं। टैरिफ आयोग के अनुसार ये कर ४० से ५०% तक होते हैं। अतः मोटर गाड़ियों के मूल्य भी बढ़े होते हैं।

साइकिल उद्योग
(CYCLE INDUSTRY)

भारत में साइकिल उद्योग सन् १९३८ में आरम्भ हुआ जबकि मैसर्स इण्डिया मैन्युफैक्चरिंग क०, कलकत्ता की स्थापना साइकिल के पुर्जे बनाने के लिए हुई। उसके दो वर्ष बाद दो कम्पनियाँ हिन्दुस्तान बाइसिकिल मैन्युफैक्चरिंग एण्ड इण्डस्ट्रियल कॉरपोरेशन, पटना और हिन्द साइकिल लि०, बम्बई, सम्पूर्ण साइकिल बनाने के लिए स्थापित हुईं। द्वितीय महायुद्ध काल में यह उद्योग अधिक उन्नति नहीं कर सका किन्तु सन् १९४७ के बाद इसने विशेष प्रगति की है जबकि तीन नये कारखाने स्थापित किये गये : (१) टी० आई० साइकिल ऑफ इण्डिया, मद्रास, (२) सेन-रेले इण्डस्ट्रीज ऑफ इण्डिया, आसनसोल, और (३) एटलस साइकिल इण्डस्ट्रीज कम्पनी, सोनीपत। तीसरी पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में देश के विशाल उद्योग क्षेत्र में कुल ११,१७,५०० बाइसिकलों की उत्पादन क्षमता वाले २१ कारखाने थे - पंजाब-हरियाणा में ५, उत्तर प्रदेश में ६, पश्चिमी बंगाल और दिल्ली में ३-३ तथा महाराष्ट्र, बिहार, तमिलनाडु और असम में एक-एक। इनके अतिरिक्त ११२ छोटी इकाइयाँ हैं। २७ बड़ी और ४६० छोटी इकाइयाँ साइकिलों के कल-पुर्जे बनाती हैं। ये कारखाने पश्चिमी बंगाल (७), दिल्ली (५), पंजाब (४), महाराष्ट्र (३), उत्तर प्रदेश (३), गुजरात (२), केरल (१), तमिलनाडु (२) में स्थित हैं।

भारत की प्रमुख साइकिल बनाने वाली कम्पनियाँ ये हैं :

कम्पनी	स्थान	साइकिल
सेन रेले इण्डस्ट्रीज ऑफ इण्डिया	आसनसोल	सेन रेले
टी० आई० साइकिल ऑफ इण्डिया लि०	मद्रास	अम्बट्टुर
एटलस साइकिल क० लि०	सोनीपत	ईस्टर्न स्टार
हिन्दुस्तान बाईसिकिल मैन्यूफैक्चरिंग एण्ड इण्डस्ट्रियल कॉरपोरेशन	पटना	

हिन्द साइकिल्स लि०	बम्बई	हिन्द साइकिल
वियरवेल साइकिल क०	फरीदाबाद	वियरवेल
पर्ल साइकिल इण्डस्ट्रीज	दिल्ली	रायल सुप्रीम
आर० मल्ना एण्ड सन्स	दिल्ली	फारवर्ड
ए वन साइकिल कं०	लुधियाना	ए वन
मैटल गुड्स मैन्यूफैक्चरिंग कं०	वाराणसी	एशिया
रामपुर इन्जीनियरिंग क०	रामपुर	हंसा
पापुलर साइकिल मैन्यूफैक्चरिंग कं०	आगरा	जयहिन्द

साइकिलें तैयार करने के प्रमुख केन्द्र ये हैं :

हरियाणा	सोनीपत, राजपुरा, फरीदाबाद
पंजाब	लुधियाना
पश्चिमी बंगाल	कलकत्ता, आसनसोल
बिहार	पटना
महाराष्ट्र	बम्बई
मध्य प्रदेश	ग्वालियर
तमिलनाडु	अम्बट्टूर
दिल्ली	दिल्ली, नजफगढ़
उत्तर प्रदेश	कानपुर, लखनऊ, वाराणसी, आगरा, रामपुर

साइकिलों का उत्पादन १९५०-५१ में ९९,००० था जो १९६०-६१ में १०·७ लाख; १९६५-६६ में १५·७४ लाख और १९७१-७२ में १७·९६ लाख हो गया। १९७८-७९ में लक्ष्य ३५ लाख का रखा गया है। दिसम्बर १९७३ से हिन्द साइकिल का स्वामित्व केन्द्रीय सरकार के हाथ में आ गया है।

भारत से साइकिलों का निर्यात अफगानिस्तान, मिस्र, पाकिस्तान, ईरान, श्रीलंका, बर्मा, नाइजीरिया, थाइलैण्ड, पूर्वी अफ्रीका, तुर्की, आदि देशों को किया जाता है।

रेल के इन्जिन बनाने का उद्योग
(LOCOMOTIVES)

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रेलों का विकास आरम्भ होने के बाद जी० आई० पी० रेलवे ने जमालपुर और बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे ने अजमेर में वर्कशाप स्थापित कर रेल के इन्जन बनाने का कार्य आरम्भ किया। बहुत शीघ्र ही इस कार्य में सफलता मिली। इसके फलस्वरूप सन् १८९५ और सन् १९२१ के वर्षों में जमालपुर के कारखाने में २१४ बड़ी लाइन के इन्जिन और १०३ बॉयलर बनाये गये। इसी प्रकार सन् १८९६ और सन् १९४० के बीच अजमेर के कारखाने में ४४६ इन्जिन तथा २४६ बॉयलर तैयार किये गये किन्तु विदेशी सरकार के इस उद्योग को प्रोत्साहन न देने की नीति के फलस्वरूप यहाँ कार्य बन्द कर दिया गया।

जब प्रथम महायुद्ध के समय इन्जनों का आयात कठिन हो गया तो तत्कालीन सरकार ने भारत में ही इन्जिनों का बनाना आवश्यक समझकर एक घोषणा सन् १९२१ में की। अतएव शीघ्र ही सन् १९२१ में सिंहभूम में इन्जिन बनाने के लिए पेनिन्सुलर लोकोमोटिव कम्पनी (Peninsular Locomotive Co.) की स्थापना की गयी। इसका लक्ष्य २०० इन्जिन प्रति वर्ष बनाने का रखा गया किन्तु पुनः सरकार से संरक्षण न मिलने के कारण यह कारखाना सरकार को बेच दिया गया। सरकार ने यह कारखाना ईस्ट इण्डियन रेलवे को दे दिया। यहाँ निचले ढाँचों का उत्पादन आरम्भ किया गया किन्तु शीघ्र ही कारखाना आर्डर न मिलने से बन्द करना पड़ा। द्वितीय महायुद्ध में सुरक्षा विभाग ने सैनिक गाड़ियों के उत्पादन के लिए यह कारखाना ले लिया। युद्ध की समाप्ति पर यह कारखाना टाटा कम्पनी को बेच दिया गया जिसने सन् १९४५ में टाटा इन्जीनियरिंग एण्ड लोकोमोटिव कम्पनी के नाम से नया कारखाना आरम्भ किया। इस कम्पनी का लक्ष्य प्रति वर्ष १०० इन्जिन और १०० बॉयलर तैयार करने का रखा गया।

युद्ध की समाप्ति पर मिहीजाम नामक स्थान पर सन् १९४८ में एक और कारखाना आरम्भ किया गया। आरम्भ में इस कारखाने का लक्ष्य प्रतिवर्ष १२० औसत आकार के इन्जिन और ५० बॉयलर तैयार करने का रखा गया किन्तु अब यह लक्ष्य क्रमशः २०० इन्जिन और १०० बॉयलर बनाने का है। इस कारखाने का नाम चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स है। यहाँ सन् १९५० से ही W. G. इन्जिन तैयार किये जा रहे हैं जो भारी किस्म के होते हैं और बड़ी लाइनों पर माल ले जाने वाली गाड़ियों में प्रयुक्त किये जाते हैं। ये इन्जिन ७८ फीट लम्बे होते हैं तथा खाली इन्जिन का वजन १२८ टन और जल तथा कोयले सहित १७२ टन होता है। यह ३५ मील प्रति घण्टा की चाल से १,२७० अश्वशक्ति घर्षण शक्ति पैदा कर सकता है। यह समतल भू-भागों में २,१०० टन भार तथा चढ़ाई पर ६०० टन भार खींच सकता है। इस इन्जिन में ५,३०० से अधिक पुर्जे होते हैं। अब इनमें से ४,४०० से अधिक पुर्जे यहीं बनाये जाते हैं। शेष विदेशों से आयात किये जाते हैं। आरम्भ में प्रति इन्जन ७·५ लाख रुपये की लागत का बना। किन्तु अब यह लागत ४ लाख रुपये तक हो आती है। मार्च १९५० से १९७२ तक चितरंजन के कारखाने से २,३५१ बड़ी लाइन के इन्जिन प्राप्त हो चुके हैं। अब यहाँ कोयले से चलने वाले इन्जिनों का बनाया जाना बन्द कर दिया गया है। इस कारखाने में विद्युत रेल इन्जिन भी सन् १९६१ से बनाये जाने लगे हैं। १९६१ से १९७२ तक ऐसे ३१४ AC और ३० DC इन्जिन बन चुके हैं।

चितरंजन में इस कार्य के लिए निम्न सुविधाएँ उपलब्ध हैं :

(१) यह पश्चिमी बंगाल के कोयला क्षेत्र से केवल १६ किलोमीटर पर स्थित है। (२) दामोदर घाटी योजना से जल और जल-विद्युत शक्ति भी सुगमतापूर्वक प्राप्त

१६४२ में भारत सरकार ने सुरक्षा के निमित्त इस कम्पनी को वालचन्द हीराचन्द से खरीद लिया और अब व्यवस्था सम्बन्धी सारा काम भारत सरकार के ही हाथ मे है। अब इस कम्पनी का नाम हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड है। इस कम्पनी ने सन् १६४१ मे पहला हवाई जहाज बनाकर तैयार किया और अब इसकी अच्छी प्रगति हो रही है। इस कारखाने मे डी० हैवीलैण्ड, वैम्पायर जेट, लड़ाकू विमान, ट्रेनर्स और सुपरसोनिक वायुयानो का निर्माण होता है। इस कारखाने मे बडी लाइन के रेल के डिब्बो, जो समस्त धातु के बने होते हैं, का उत्पादन भी होता है। अब तक यहाँ २५० डिब्बे बनाये जा चुके हैं। यहाँ अब तक २०० पुष्पक विमान भी बनाये जा चुके हैं।

बंगलौर मे इस कारखाने की स्थापना के कई कारण हैं: (१) हवाई जहाज के लिए अल्यूमीनियम की आवश्यकता होती है जो पास ही केरल मे अलवाये के कारखाने से प्राप्त हो जाता है। (२) इस्पात कर्नाटक राज्य के भद्रावती लोहे के कारखाने से मिल जाता है। (३) दक्षिणी कर्नाटक में जल विद्युत शक्ति की उन्नति होने के कारण कारखाने के लिए शक्ति भी आसानी से उपलब्ध हो जाती है। (४) भारतीय वैज्ञानिक संस्था भी बंगलौर में है जिससे टेक्नीकल सहयोग भी प्राप्त होता है।

वायुसेना के संरक्षण मे एयरक्राफ्ट निर्माण डिपो कानपुर मे खोला गया है जिसमें AVRO-७४८ वायुयान बनाये जाने लगे हैं। इस वायुयान की पहली उड़ान नवम्बर १६६१ मे दिल्ली में हुई। द्वितीय AVRO-७४८ वायुयान १० मार्च, १६६३ को बनकर तैयार हुआ।

सार्वजनिक क्षेत्र मे सुरक्षा विभाग के अन्तर्गत तीन MIG फैक्ट्रियाँ और स्थापित की जा रही हैं: नासिक, कोरापुट और हैदराबाद में।

रासायनिक उद्योग
(CHEMICAL INDUSTRIES)

रासायनिक उद्योग के अन्तर्गत वे उद्योग आते हैं जो अन्य उद्योगों के लिए आधारभूत रासायनिक पदार्थ बनाते हैं, इसके अतिरिक्त वे उद्योग भी आते हैं जिनमे रासायनिक क्रियाओ द्वारा पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं। इस दृष्टि से इन उद्योगो के अन्तर्गत कई प्रकार की वस्तुएँ बनाना—जैसे रंग और रोगन, कृत्रिम रबड़, कृत्रिम रेशे, प्लास्टिक, दवाइयाँ, कृत्रिम तेल, आदि सम्मिलित की जाती हैं।

भारी रासायनिक पदार्थ वे रासायनिक तत्व होते हैं, जिनका प्रयोग मुख्यत औद्योगिक और उसी से सम्बन्धित उद्योगों मे किया जाता है। साधारणत इनका औद्योगिक उपयोग ही अधिक होता है। ये वस्त्र, कागज, साबुन, काँच, चमड़ा, रंग, वारनिश, प्लास्टिक, मोटर स्प्रिट, इत्यादि उद्योगों मे कच्चे माल के रूप मे काम मे लाये जाते हैं।

रासायनिक उद्योग दो प्रकार के होते हैं :

(१) भारी रासायनिक पदार्थों (Heavy Chemicals) के अन्तर्गत गन्धक का तेजाब, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, शोरे का तेजाब, विभिन्न प्रकार के सल्फेट, कास्टिक सोडा, सोडा एश, एमोनिया, ब्लीचिंग पाउडर, क्लोरीन, पोटेशियम क्लोरेट और रासायनिक खादें (अमोनियम सल्फेट, पोटेशियम नाइट्रेट, सुपरफॉस्फेट, शोरा) आदि का उत्पादन सम्मिलित किया जाता है।

(२) कीमती और हल्के रासायनिक पदार्थों (Fine Chemicals) के अन्तर्गत फोटोग्राफी में काम आने वाले रसायन, दवाइयाँ, रंग और रोगन, आदि सम्मिलित किये जाते हैं।

इस उद्योग की निम्न विशेषताएँ हैं :

(१) इन वस्तुओं को तैयार करने के लिए साधारणतः कारखाने छोटे-छोटे होते हैं।

(२) आधारभूत रासायनिक पदार्थों (सोडा एश, गंधक का तेजाब, कास्टिक सोडा) का मूल्य बहुत अधिक पड़ता है।

(३) रसायन-उद्योग अभी बड़ी पिछड़ी हुई अवस्था में है। अन्य रसायन की तो बात ही नहीं, गंधक का अम्ल और सोडा एश जैसी वस्तुओं का उत्पादन भी देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता।

(४) रासायनिक पदार्थों की पूर्ति के लिए हम विदेशी आयातों पर निर्भर हैं। इन आयातों के लिए हमें प्रथम महायुद्ध के बाद ही से अधिकाधिक द्रव्य विदेशियों को देना पड़ता है। १९६०-६१ में आयातों का यह मूल्य ३९·३४ करोड़ रुपया और १९७२-७३ में ७७·३ करोड़ रुपया था।

(५) रसायन उद्योगों के निर्माण के लिए आवश्यक कच्चे माल की कमी है।

(६) इस समय सोडा एश, कास्टिक सोडा और कैलशियम कार्बाइड तैयार करने वाले उद्योग तट-कर संरक्षण पाकर अपना विकास कर रहे हैं।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारी रासायनिक उद्योगों की स्थापना हुए अधिक दिन नहीं हुए थे। गन्धक के तेजाब और उससे बनने वाली वस्तुएँ ही (फिटकरी, नीलाथोथा, फैरस-सल्फेट, इत्यादि इनी-गिनी वस्तुएँ ही) तैयार की जाती थी। किन्तु युद्धकाल में विदेशों से रासायनिक पदार्थों के न मिलने के कारण यहाँ सोडा एश विद्युत प्रणाली से तैयार किया गया। कास्टिक सोडा, क्लोरीन, बाइक्रोमेट, कैलशियम क्लोराइड, सोडियम साइनाइड, ग्लिसरीन, आदि पहली बार बनाये जाने आरम्भ हुए। इसके पश्चात् तो रासायनिक पदार्थों के उत्पादन की वृद्धि होती गयी। सुनियोजित प्रयत्नों और संरक्षण के लिए किये गये उपायों के फलस्वरूप पिछले कुछ वर्षों से देश में ब्रोमीन, कैलशियम कार्बाइड, कार्बन डाइसल्फाइड, डी० डी० टी०, बेंजीन हैक्साक्लोराइड, टाइटेनियम, डाइऑक्साइड, अमोनियम क्लोराइड, विशेष लवण, रंग, प्लास्टिक, आदि बनाये जा रहे हैं।

विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों का उत्पादन इस प्रकार है :

(००० टनों में)

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९७०-७१	१९७१-७२	१९७२-७३(लक्ष्य)
गंधक का तेजाब	१०१	१६७	३६८	६६२	१,२१०	९७५	३,२००
कास्टिक सोडा	१२	३६	१०१	२१८	३६२	३८५	७८५
सोडा एश	४५	८२	१५२	३३१	४५२	४८६	७८०
तरल क्लोरीन	—	—	३४	५१	१४७	—	—
ब्लीचिंग पाउडर	—	—	७	७	१४	—	—

गंधक का तेजाब तीन स्रोतों से प्राप्त किया जाता है : पेट्रोलियम शोधक कारखानों से, बिहार में अमझोर की पाइराइट की खानों से और जिप्सम से। तेजाब बनाने के कारखाने मद्रास, सिंद्री, कलकत्ता, नागपुर, सिकन्दराबाद, बर्नपुर, दुर्गापुर, अहमदाबाद, अमृतसर, तिरुवनन्तपुरम, दिल्ली, जमशेदपुर, आसनसोल, अलवाये, बेलगुला भी इसके केन्द्र हैं। ६० कारखाने इस समय काम कर रहे हैं। टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी, बंगाल कैमिकल्स एण्ड फार्मास्युटिकल्स और पैरी प्रमुख उत्पादक हैं।

कास्टिक सोडा तैयार करने के कारखाने टाटानगर, डालमियानगर, मैट्टूर, दिल्ली, रिश्रा, अहमदाबाद, बम्बई, पोरबन्दर, मण्डी और हैदराबाद में हैं। तुतुकुडी, कल्याण, बृजराजनगर और मीठापुर में भी कास्टिक सोडा तैयार किया जाता है। यह रासायनिक विधि एवं विद्युत विधि दोनों से ही बनाया जाता है। इसको बनाने वाली प्रमुख कम्पनियाँ कैलिको मिल्स, टाटा कैमिकल्स और रोहतास इण्डस्ट्रीज हैं। उद्योग में लगी कुल इकाइयाँ २५ हैं।

सोडा एश तैयार करने के लिए चूने का पत्थर तथा सोडियम क्लोराइड काम में लाया जाता है। इसके कारखाने धारंगध्रा, पोरबन्दर और डालमियानगर में हैं। इसके प्रमुख उत्पादक धरंगध्रा कैमीकल्स, टाटा कैमीकल्स और साहू कैमीकल्स कम्पनियाँ हैं।

रासायनिक खाद
(CHEMICAL FERTILIZERS)

भारत में रासायनिक खाद के उद्योग का विकास द्वितीय महायुद्ध के बाद ही हुआ है। सन् १९३६ में कर्नाटक के बेलगुला स्थान पर मैसूर केमीकल्स एण्ड फर्टीलाइजर्स के नाम से एक खाद का कारखाना खोला गया जिसमें प्रतिवर्ष ६,००० टन अमोनियम सल्फेट बनाया जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत में रासायनिक खाद बनाने का कोई अलग कारखाना नहीं था। केवल कोक ओवन (Coke Oven) के प्लाण्ट से सहकारी उत्पादन के रूप में प्रतिवर्ष लगभग २५,००० टन अमोनियम

सल्फेट बनता था। सन् १६४७ में भारत में रासायनिक खाद का एक और कारखाना फर्टीलाइजर्स एण्ड केमीकल्स लि० के नाम से ट्रावनकोर में अलवाये नामक स्थान पर खोला गया जहाँ प्रति वर्ष ५०,००० टन अमोनियम सल्फेट तथा ३६,००० टन सुपर-फॉस्फेट बनाया जाने लगा। इस क्षेत्र में कोयला नहीं मिलता, अतः अमोनियम गैस बनाने के लिए यहाँ गैस-जैनरेटर की भट्टियों में लकड़ी का ईंधन प्रयोग में, आता है।

चित्र—१४७

द्वितीय महायुद्ध के बाद रासायनिक खाद उद्योग ने बड़ी उन्नति की है।

सिन्द्री का कारखाना बिहार में धनबाद से २४ किलोमीटर की दूरी पर स्थित सिन्द्री में २८ करोड़ रुपये की लागत से स्थापित किया गया। इस कारखाने

को बनाने में ५-६ वर्ष की अवधि लगी और नवम्बर सन् १६५१ से यहाँ अमोनियम सल्फेट की खाद का उत्पादन आरम्भ हो गया। यह एशिया का सबसे बड़ा खाद बनाने वाला कारखाना है और इसे विश्व में नवीनतम प्लाण्टों से युक्त एक आधुनिक कारखाना माना जाता है। १६ जनवरी, १६५२ को इसे फर्टीलाइजर्स एण्ड कैमिकल्स लिमिटेड कम्पनी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। यह कारखाना मुख्यतः ५ भागों में विभक्त है—(१) पावर प्लाण्ट, (२) गैस प्लाण्ट, (३) अमोनिया प्लाण्ट, (४) सल्फेट प्लाण्ट, और (५) नया बना हुआ कोक ओवन प्लाण्ट।

सिन्द्री में अर्द्ध जल गैस जिप्सम पद्धति अमोनियम सल्फेट बनाने के लिए प्रयोग में लायी जाती है। इस प्रणाली में पहले अमोनिया नाइट्रोजन को और हाइड्रोजन की सिन्थेसिस से बनायी जाती है। इस अमोनिया को फिर अमोनिया कॉरबोनेट में कार्बन डाईऑक्साइड के रिएक्शन से परिवर्तित किया जाता है। इसके बाद पीसे हुए जिप्सम को अमोनियम कॉरब्रोनेट से मिलाकर अमोनिया सल्फेट बनाते हैं और चाक स्लज नामक अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त करते हैं जो सीमेण्ट बनाने के लिए उपयोगी होता है।

पावर प्लाण्ट जो ८०,००० किलोवाट शक्ति का है, फैक्ट्री को बिजली तथा प्रोसेस स्टीम देता है।

गैस प्लाण्ट गैस मिक्सचर बनाता है, जो सफाई के बाद अमोनियम सिन्थेसिस बनाने के काम आता है। यहाँ प्रतिदिन ४४० लाख क्यूबिक फुट गैस बनती है।

अमोनिया सिंथेसिस-प्लाण्ट में गैस प्लाण्ट की परिवर्तित गैस कार्बन डाई ऑक्साइड से मुक्त हो जाती है और नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के बने हुए मिक्सचर को केटेलिस्ट के साथ सिन्थेसाइज किया जाता है। यह प्लाण्ट प्रतिदिन २७० टन अमोनिया बनाता है।

सल्फेट प्लाण्ट में जिप्सम और अमोनियम कॉरबोनेट के घोल को मिलाया जाता है और कुछ कैमिकल प्रोसेसों के बाद अमोनियम सल्फेट बनता है, जिसे क्रिस्टल (दाना) का रूप दिया जाता है और कैलशियम कॉरबोनेट स्लज को अलग कर दिया जाता है जिसका प्रयोग सीमेण्ट बनाने के लिए किया जाता है।

कोक की आवश्यकता पूर्ति के लिए बनाया गया नया कोक ओवन प्लाण्ट प्रतिदिन ६०० टन कोक का उत्पादन करता है और इससे बहुत से अतिरिक्त उत्पादन भी प्राप्त होते हैं। इस कारखाने में १६६६-७० २८ लाख टन अमोनियम सल्फेट, दुहरा नमक ४२,७०० टन और १५,७०० टन यूरिया तैयार किया गया।

कोक के अतिरिक्त यहाँ के अन्य उत्पादन कोलतार, मोटर बेंजोल, बेंजीन, नैफ्था, टूलीन और जॅलीन हैं।

फर्टिलाइजर्स प्रोजेक्ट कमेटी की सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने नामल प्रोजेक्ट बनाया है जिसकी उत्पादन क्षमता ७२,००० टन अमोनिया नाइट्रेट

प्रतिवर्ष है। यहाँ गुरुजल भी बनाया जाता है। यहाँ ३·२ लाख टन कैलशियम अमोनियम नाइट्रेट तथा १४-१५ टन गुरुजल बनाया जाता है।

रूरकेला फर्टीलाइजर प्रोजेक्ट रूरकेला में बनाया गया है जहाँ १·२ लाख टन कैलशियम अमोनियम नाइट्रेट तैयार किया जाता है। इसकी क्षमता ६ लाख टन की है।

नेवेली योजना मद्रास में बनायी गयी है इसकी वार्षिक क्षमता ७०,००० टन सल्फेट, नाइट्रेट और यूरिया खाद बनाने की है।

ट्राम्बे खाद संयन्त्र, जिसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ९० हजार टन नाइट्रोजन की और ३१,००० टन यूरिया के रूप में फॉस्फेट बनाने की है, बम्बई में बर्मा शैल तेल शोधक कारखाने द्वारा स्थापित किया गया है।

एक अन्य खाद संयन्त्र असम में नामरूप में स्थापित किया गया है। यहाँ यूरिया और नाइट्रोफॉस्फेट तैयार किया जाता है। इनमें नहरकटिया क्षेत्रों से उपलब्ध गैसों का प्रयोग किया जाता है। इसकी उत्पादन क्षमता ४५,००० की है।

उत्तर प्रदेश में गोरखपुर में ८० हजार टन की क्षमता वाला एक बड़ा खाद संयन्त्र स्थापित किया गया है। इसमें पैट्रोलियम नेफ्था का प्रयोग किया जाता है। यह सामग्री बरौनी में स्थापित किये जाने वाले तेल शोधक कारखाने से उपलब्ध की जाती है।

इस समय देश में अमोनियम सल्फेट बनाने वाली ६ फैक्ट्रियाँ कार्य कर रही हैं, जिनकी उत्पादन क्षमता ५८५ हजार टन है। ये फैक्ट्रियाँ सिन्द्री, दुर्गापुर, बर्नपुर, जमशेदपुर, भिलाई, अलवाये, बसजोरा, डिगबोई और हनुमानगढ़ में हैं।

नामरूप, गोरखपुर, दुर्गापुर, कोचीन, मद्रास, अलवाये, विशाखापट्टनम, वाराणसी, बड़ौदा, कानपुर, कोटा, तथा एन्नोर में नये कारखाने और खोले गये हैं जिनका कुल उत्पादन १५ लाख टन का है।

सरकारी क्षेत्र में २३ लाख टन नेत्रजन तैयार करने की क्षमता वाली १५ अन्य फैक्ट्रियाँ बन चुकी हैं। ये फैक्ट्रियाँ दुर्गापुर, कोचीन, बरौनी, नामरूप (विस्तार), तलचर, रामागुडम, हल्दिया, ट्राम्बे (विस्तार), कोचीन, गोरखपुर (विस्तार) तथा निजी क्षेत्र में गोआ, कोटा, मंगलोर, तूतीकोरिन में हैं।

फर्टीलाइजर कॉरपोरेशन आफ इण्डिया के अन्तर्गत सरकारी क्षेत्र में ५ इकाइयाँ कार्य कर रही हैं : सिन्द्री, नागल, ट्राम्बे, गोरखपुर और नामरूप। इनके अतिरिक्त ९ इकाइयाँ निर्माणधीन हैं : गोरखपुर, बरौनी, नामरूप (विस्तार), रामागुडम, तलचर, ट्राम्बे (विस्तार), सिन्द्री (विस्तार), हल्दिया और गोरखपुर (विस्तार)।

अमोनियम सल्फेट के अतिरिक्त, सुपरफॉस्फेट बनाने के २४ कारखाने हैं। मुख्य कारखाने दिल्ली, कलकत्ता, बेलमपल्ली, बड़ौदा, अहमदाबाद, अम्बरनाथ, कर्नाटक, रानीपेट, गुडानुट और उन्नाव में हैं।

प्रमुख रासायनिक खादों का उत्पादन इस प्रकार है :

वर्ष	नेत्रजन (टनों में)	फास्फेट (टनों में)
१९५०-५१	९,०००	९,०००
१९५४-५५	८०,०००	१२,०००
१९६५-६६	२,३७,८८९	१,१८,७७९
१९६६-६७	३,०८,९९३	१,४५,६७८
१९६७-६८	३,८६,९६६	१,९८,५९९
१९६८-६९	५,५०,०००	२,१०,०००
१९६९-७०	७,१५,६००	२,२१,५००
१९७०-७१	९,३०,०००	२,२९,०००
१९७१-७२	९,५२,०००	२,७८,०००
१९७३-७४	११,९२,०००	३,५०,०००
१९७८-७९ (लक्ष्य)	४०,००,०००	१२,५०,०००

रंगलेप वार्निश उद्योग
(PAINTS VARNISH INDUSTRY)

रंगलेप उद्योग भारत का एक प्रतिष्ठित उद्योग है। इस समय देश में ७५ बड़े कारखाने रंगलेप, इनेमल और वार्निश तैयार कर रहे हैं। रंगलेप उत्पादन के लिए जिन मूलभूत वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनमें से अनेक भारत में प्रचुर परिमाण में पायी जाती हैं। इनमें खड़िया मिट्टी, चीनी मिट्टी, चमड़ा, राल, अलसी का तेल, अण्डी का तेल, ग्लीसरीन, सफेद स्प्रिट, तारपीन, आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त रंग भी देश में ही आसानी से मिल जाते हैं। रंगलेपों में होने वाले अनेक सुधार तो वस्तुतः अच्छे माल के ही स्वाभाविक फल होते हैं। इस उद्योग को आधुनिक ढंग पर विकसित करने के लिए यह आवश्यक है कि अनेक नये कच्चे माल विदेशों से मँगाये जायें। पिछले कुछ वर्षों में ऐसे कच्चे माल का आयात बहुत बढ़ा है। इस समय प्रतिवर्ष लगभग ३ से ४ करोड़ रुपये का माल मँगवाया जा रहा है।

प्रयोग की दृष्टि से तैयार रंगलेपों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है : (१) घरों, सार्वजनिक इमारतों, कारखानों, फेंसों, पुलों, बांधों, आदि के लिए काम आने वाले, (२) परिवहन के साधनों (रेल के डिब्बों, ट्रामों, मोटरकारों, बसों तथा व्यावसायिक गाड़ियों) के लिए काम आने वाले, और (३) सामान्य औद्योगिक कामों में प्रयुक्त होने वाले (मशीनों, पंखों, फर्नीचर, आदि के लिए रोगन और वस्त्र तथा बिजली उद्योगों के लिए वार्निशें)।

प्लास्टिक उद्योग
(PLASTIC INDUSTRY)

वर्तमान समय में पश्चिमी देशों के आर्थिक जीवन में प्लास्टिक का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इससे जो वस्तुएँ बनायी जाती हैं वे बहुत ही सस्ती, हल्की,

टिकाऊ और जंग न लगने वाली होती हैं। प्लास्टिक से बनायी जाने वाली चीजें विशेषतः ऐसी होती हैं जो घरेलू प्रयोग, बिजली के उद्योगों तथा अन्य प्रकार के उद्योगों में काम आती हैं। ये वस्तुएँ रेडियो की खोलियाँ, मशीनी खिलौने ब्रुश, ग्रामोफोन के रिकार्ड, प्लास्टिक की चद्दरें, बटुए, थैले, किताबों की जिल्दें तथा सादा और खुरदरा चमड़ा जैसा दिखायी देने वाला प्लास्टिक, मोटरों, हवाई जहाजों, नकली दाँतों, सिगरेट की रकाबियाँ, वार्निश, मीनाकारी, स्वच्छता के उपकरण, आदि हैं।

प्लास्टिक मुख्यतः दो प्रकार से बनाया जाता है : (१) साँचों में दबाकर, अथवा (२) उसमें तरल पदार्थ डालकर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाने में होता है। पहली रीति के अनुसार इस्पात के गरम साँचों में प्लास्टिक बनाने वाले कच्चे माल को रखा जाता है। इन साँचों को ऊँचे तापक्रम पर गरम किया जाता है और इन पर प्रति वर्ग इंच १ से ८ हजार पौण्ड का दबाव डाला जाता है। दूसरे तरीके में साँचों में तरल प्लास्टिक डालकर उसको खूब गरम किया जाता है और प्रति वर्ग इंच पर १० से ३० हजार पौण्ड का दबाव डाला जाता है।

इस उद्योग के लिए सेलूलोज तीन प्रकार से प्राप्त किया जाता है : (१) लकड़ी, कपास, गन्ने अथवा मक्की के डण्ठलों से; इस प्रकार प्राप्त किये गये सेलूलोज को शोरे के तेजाब से मिलाकर नाइट्रोसेलूलोज प्राप्त किया जाता है, (२) सेलूलोज सोयाफली, दूध, सूखा हुआ रक्त, आदि से भी प्राप्त किया जाता है, और (३) आजकल कारबोलिक एसिड, फिनौल और फोरमेलडीहाइड नामक वस्तुओं से भी प्लास्टिक बनाया जाता है। इन वस्तुओं के अतिरिक्त प्लास्टिक बनाने में कई प्रकार के रंग और चिकने तेल की भी आवश्यकता होती है।

भारत में इसका उत्पादन द्वितीय महायुद्ध के बाद आरम्भ हुआ है। यहाँ इस समय साँचों में दबाकर अथवा उनमें तरल प्लास्टिक डालकर उपयोग की कई वस्तुएँ बनाई जाती हैं। भारत में १२० सुव्यवस्थित कारखाने हैं, जबकि सन् १९३९ में केवल ५ कारखाने थे। १९७० में इन कारखानों से १० करोड़ रुपये से अधिक की वस्तुओं का उत्पादन हुआ। देश में अमृतसर, कानपुर, कोयम्बटूर और हैदराबाद में प्लास्टिक की वस्तुएँ बनायी जाती हैं किन्तु बम्बई और कलकत्ता तो इसके गढ़ ही हैं।

प्लास्टिक उद्योग के मुख्य कच्चे माल के रूप में जिन कृत्रिम रालों और ढलाई के चूरे का प्रयोग होता है—यूरिया, फारमेलडीहाइड पोलिस्टाइरीन, पोलीथीन और सेलुलोज एसीटेट, बुटाइरेट, सैलूलाइट, एक्राइलिक, नायलोन, मोनोफिल और स्टारीन बुटाडीन—ये लगभग ५,००० टन के विदेशों से मँगाये जाते हैं।

काँच का उद्योग
(GLASS INDUSTRY)

उद्योग का विकास और वर्तमान स्थिति

भारत में काँच का उद्योग बहुत पुराने समय से चला आ रहा है। १७वीं

और १८वीं शताब्दी में कांच की वस्तुएँ बेलगाँव, मैसूर और कानपुर के निकट बनायी जाती थीं। आधुनिक ढंग के उद्योगों को १९वीं शताब्दी से प्रारम्भिक वर्षों तक चलाने के असफल प्रयास किये गये किन्तु वास्तविक विकास सन् १९१४ के बाद ही आरम्भ हुआ है। सन् १९३९ में कांच के कारखानों की संख्या ८० थी और उनकी क्षमता ६० लाख वर्ग गज कांच की चद्दर और ४३ हजार टन अन्य सामान की थी। सन् १९५१ में यह संख्या बढ़कर १०९ हो गयी। १९५६ में १३१ कांच बनाने की फैक्ट्रियाँ थीं जिनकी उत्पादन क्षमता ३·२४ लाख टन की थी। इसके अतिरिक्त २३,००० टन क्षमता वाली ३२ फैक्ट्रियाँ बन्द पड़ी थी। १९६१ में इनकी संख्या १४८ थी और उत्पादन क्षमता ४४ लाख टन। इनमें से ५१ फैक्ट्रियाँ (६१,००० टन क्षमता की) बन्द पड़ी थी। १९६५-६६ में कुल १०९ कारखाने थे जिनकी उत्पादन क्षमता २·४१ लाख टन की थी।

द्वितीय योजनाकाल से अनेक नयी किस्म के कांच और उसका सामान देश में बनाया जाने लगा है। कांच का ऊन, सुरक्षा कांच, रंगीन कांच की चादरें, कांच के नगीने, तंग मुंह वाले थर्मस फ्लास्क, पेय पदार्थों के लिए सजावटी बोतलें, पेन्सिलीन शीशियाँ, कांच के रेशे, कांच की पिचकारियाँ, कृत्रिम पत्थर, आदि।

देश में विभिन्न प्रकार के कांच की वस्तुओं के कारखानों की १९७१-७२ में उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन क्रमशः ४०० लाख टन और २·२५ लाख टन था।

अभी भी देश में कांच की वस्तुओं का आयात हो रहा है। सन् १९६१ में १३१ करोड़ रुपये, सन् १९६६ में १५० करोड़ रुपये के और सन् १९७२ में १६२ करोड़ रुपये के मूल्य का कांच का सामान आयात किया गया।

आयात के अन्तर्गत वैज्ञानिक कांच का सामान, कांच की नलियाँ और सलाखें तथा कांच की चद्दरें होती हैं। चेकोस्लोवाकिया, पश्चिम जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैण्ड्स, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका और जापान से कांच का सामान आयात किया जाता है।

सन् १९६१ में २७ करोड़ रुपये तथा १९७२-७३ में ३१ करोड़ के मूल्य का सामान निर्यात किया गया। निर्यात मुख्यतः बोतलें, कांच का मेजी सामान, घर, होटल, आदि के उपयोगार्थ सामान, नकली मोती, रेशेदार कांच, कांच दर्पण, वैज्ञानिक कांच का सामान होता है। प्रमुख आयातकर्ता पाकिस्तान, श्रीलंका, अफगानिस्तान, कुवैत, मलयेशिया, इण्डोनेशिया, ईराक, ईरान, सऊदी अरब, ओमान और बर्मा हैं।

इस उद्योग में लगभग ३०,००० श्रमिक कार्य करते हैं। कारखानों का उत्पादन १६ से १८ करोड़ रुपयों के मूल्य का होता है।

उद्योग का संगठन

भारत में कांच का सामान बनाने का उद्योग दो भागों में विभक्त है।

(१) प्रथम प्रकार के कारखाने वे हैं जो कुटीर उद्योग के रूप में काम करते हैं, और (२) दूसरे प्रकार के वे कारखाने हैं जो आधुनिक फैक्टरियो के रूप मे काम करते हैं।

(१) प्रथम प्रकार के कुटीर धन्धे के रूप मे कॉच के सामान बनाने के उद्योग के मुख्य केन्द्र फिरोजाबाद और दक्षिण में बेलगाँव है। फिरोजाबाद में १०० से भी ऊपर छोटी-छोटी फैक्टरियाँ हैं जो कॉच की रेशमी तथा साधारण चूड़ियाँ बनाती हैं। उत्तर प्रदेश मे कॉच का कुटीर उद्योग एटा, फतहपुर, शिकोहाबाद, हाथरस, आदि स्थानो मे भी चलाया जाता है। इनसे भारत की चूड़ियों की माँग की ¾ पूर्ति हो जाती है किन्तु चैकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया, जापान, बेल्जियम, इटली और संयुक्त राज्य अमरीका से आयात की गयी चूड़ियों से इन्हे प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है। फिरोजाबाद में चूड़ियाँ बनाने के उद्योग मे लगभग ५०,००० लोगो को व्यवसाय मिलता है तथा यहाँ का उत्पादन ४०,००० टन है जिसका मूल्य ५ करोड़ रुपये है। कर्नाटक में बेलगाँव मे कुटीर उद्योग विकसित है।

(२) भारत मे कॉच बनाने की आधुनिक फैक्ट्रियाँ विशेषकर उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब, मध्य प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु और उड़ीसा मे केन्द्रित हैं।

उद्योग का स्थानीयकरण

कॉच बनाने के लिए जिन वस्तुओं का उपयोग किया जाता है उनमे बालू मिट्टी के अतिरिक्त अनेक प्रकार के रासायनिक पदार्थ और शक्ति के लिए कोयला काम में लाया जाता है। इनमे से बालू मिट्टी काफी भारी होती है किन्तु कॉच स्थानान्तरण करने मे बड़ा कमजोर होता है अत स्वभावतः ही इसका उद्योग माँग के क्षेत्रों के निकट ही स्थापित किया जाता है। अन्य वस्तुएँ वहीं मँगाली जाती हैं। देश मे कॉच बनाने योग्य बालू मिट्टी पर्याप्त मात्रा मे मिलता है किन्तु सोडियम सल्फेट, बेरिम ऑक्साइड, पोटेशियम कार्बोनेट, शोरा, सोडा एश, लवणपिंड, सुहागा, सीसा, सुरमा, संखिया, आदि कम मात्रा मे मिलते हैं।

यह उद्योग अधिकतर गंगा की ऊपरी घाटी मे ही केन्द्रित है। इसके निम्न कारण हैं :

(१) उत्तम कॉच बनाने के लिए बालू की स्वच्छ और सिलीका की अधिकाधिक मात्रा (९९% तक) होना आवश्यक है। इस दृष्टि से सबसे अच्छा बालू उत्तर प्रदेश में विन्ध्याचल पर्वत के मंगलघाट और पाथरघाट मे बालू के परिवर्तित जलज पत्थर को पीसकर प्राप्त किया जाता है। इन स्थानो के अतिरिक्त, बरार, पूना, जबलपुर, इलाहाबाद, होशियारपुर, जयपुर, बीकानेर, बूँदी, बड़ौदा, आदि जिलो मे भी उत्तम श्रेणी की बालू अथवा बालू के पत्थर पाये जाते हैं जिनका प्रयोग इन कारखानों मे किया जाता है।

(२) बालू को २,५००° फा० से ३,०००° फा० के ताप पर पिघलाना पड़ता है अतः अच्छे किस्म के कोयले या विद्युत शक्ति की आवश्यकता होती है। इन कारखानों के लिए कोयला बिहार की खानो से प्राप्त किया जाता है। यह बात ध्यान देने

योग्य है कि यहाँ के कारखाने बालू प्राप्ति की दृष्टि से उचित दूरी पर है किन्तु कोयला इन्हें कुछ दूर से मँगाना पड़ता है।

(३) उत्तर प्रदेश के कारखानों को सबसे बड़ा लाभ कुशल मजदूरों का पर्याप्त मात्रा में मिल जाना है। आगरा के निकट कुछ मुस्लिम जातियाँ (शीशागर) मिलती हैं जो पीढ़ियों से काँच का सामान तैयार करती आ रही हैं। ये कुशल मजदूर आधुनिक ढंग के काँच बनाने के काम में भी बहुत जल्दी सिद्धहस्त हो जाते हैं।
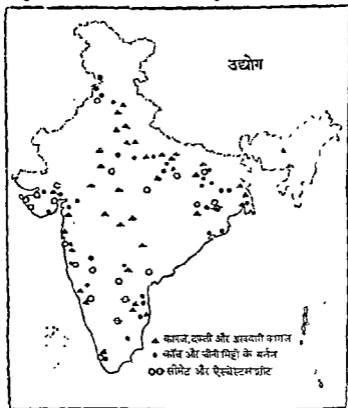
चित्र—१४·८

(४) इस भाग में रेल-मार्गों का जाल-सा बिछा है जिससे सब सामान इकट्ठा करने में सुविधा रहती है और तैयार माल के लिए जनसंख्या की अधिकता के कारण बाजार भी विस्तृत है। काँच शीघ्र टूट जाने वाला पदार्थ है अतः इसके कारखाने खपत वाले स्थानों के निकट स्थापित किये जाते हैं।

(५) काँच बनाने में प्रयोगित दूसरे मुख्य पदार्थ सोडा-मिट्टी, सोडा सल्फेट और शोरा हैं। भारत के अनेक तेजाब के कारखानों में सोडा सल्फेट उप-प्राप्ति के रूप में रह जाता है। राजपूताना की नमकीन झीलों में भी सोडा के कार्बोनेट और सल्फेट दोनों मिलते हैं। मध्य प्रदेश के बुल्डाना जिले की लोनार झील से सोडा कार्बोनेट प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त भारत के कई शुष्क भागों में कहीं-कहीं भूमि पर रेह नामक पदार्थ एकत्रित हो जाता है। यह भी काँच बनाने के प्रयोग में लिया जाता है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बंगाल और बिहार के अनेक स्थानों की मिट्टी में शोरा भी मिलता है जिससे काँच के लिए क्षार प्राप्त होता है। यही वस्तुएँ उत्तर प्रदेश के कारखानों में प्रयुक्त की जाती हैं।

(६) चूने की प्राप्ति अरावली, विन्ध्याचल, गारो और खासी पहाड़ियों से की जाती है।

पश्चिमी बंगाल में काँच के १४ कारखाने हैं। इनके लिए राजमहल की पहाड़ियों में मंगलघाट और पाथरघाट नामक स्थानों पर गोंडवाना काल का उत्तम श्रेणी का सफेद बालू का पत्थर पीसकर काँच के लिए उपयुक्त बालू प्राप्त किया जाता है। कोयले की दृष्टि से बंगाल के काँच के कारखानों की स्थिति बहुत ही अनुकूल है, परन्तु अधिकांश बालू उन्हें उत्तर प्रदेश से मँगवानी पड़ती है। बंगाल के काँच के कारखानों को एक लाभ यह है कि ये बंगाल के उन औद्योगिक केन्द्रों के पास ही स्थित हैं जहाँ रासायनिक पदार्थ तैयार किये जाते हैं। यहाँ अधिकतर वैज्ञानिक प्रयोगशाला की वस्तुएँ, लैम्प, सजावट की वस्तुएँ, लालटेनों के हिस्से, बोतलें, शीशे के ट्यूब, फ्लास्क, ट्यूब, ग्लास, शीशे की प्लेटें, आदि बनायी जाती हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र बेलघरिया, बेलगछिया, बेलूर, सीतारामपुर, रिशरा, दमदम, रानीगंज, हावड़ा, आसनसोल और कलकत्ता हैं।

उत्तर प्रदेश में २८ काँच के कारखाने हैं। भारत का लगभग ६०% काँच का सामान इसी राज्य से प्राप्त होता है। यहाँ इस उद्योग के लिए ये सुविधाएँ पायी जाती हैं: (१) उत्तर प्रदेश में लोहगढ़ा, पन्हाई, आदि स्थानों में काँच बनाने योग्य बालू मिल जाती है; (२) चूने का पत्थर विन्ध्याचल पर्वत से मिल जाता है, (३) फिरोजाबाद के कारीगर इस कार्य में निपुण हैं, (४) अधिक जनसंख्या होने के कारण यातायात के साधनों का पर्याप्त उपयोग हो जाता है। अतएव यहाँ इस उद्योग के मुख्य केन्द्र नैनी, बहजोई, रामनगर, सासनी, शिकोहाबाद, इटावा, फिरोजाबाद, जौनपुर, हिरनगऊ, गाजियाबाद, कोरवपुर तथा बालावाली हैं। उत्तर प्रदेश में काँच की चादरें, काँच की दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, लैम्प, बल्ब, चिमनियाँ, वैज्ञानिक प्रयोगशाला की वस्तुएँ बनायी जाती हैं।

महाराष्ट्र राज्य में २२ कारखाने हैं। इन कारखानों में प्लास्टिक टैस्ट-ट्यूब, फ्लास्क, बोतलें, शीशा, आदि बनाये जाते हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र बम्बई, पूना, नागपुर, सतारा और कोल्हापुर हैं।

तमिलनाडु में ६ कारखाने हैं। यह अधिकतर काँच के बर्तन, चिमनियाँ, काँच की चादरें तथा वैज्ञानिक प्रयोगशाला की वस्तुएँ बनायी जाती हैं। सलेम, मद्रास और कोयम्बटूर प्रमुख केन्द्र हैं।

इन राज्यों के अतिरिक्त काँच के अन्य केन्द्र इस प्रकार हैं :

राजस्थान ....धौलपुर	आन्ध्र प्रदेश ....हैदराबाद
पंजाब ....अमृतसर	कर्नाटक ....बंगलोर
दिल्ली ....शाहदरा	मध्य प्रदेश .... जबलपुर
गुजरात ....बड़ौदा, भड़ौंच, मोरबी	उड़ीसा ....बारगल, कटक
केरल ....अलवाये	बिहार ....कान्द्रा, भवानीनगर, अम्बौना, मुरकुण्डा, पटना, कहलगाँव
हरियाणा .... अम्बाला, फरीदाबाद	असम ....गौहाटी

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में काँच बनाने के पदार्थ पर्याप्त मात्रा में वर्तमान हैं और यहाँ काँच की खपत भी काफी है किन्तु दुर्भाग्यवश भारत के अधिकांश कारखाने ऐसे स्थानों पर बने हैं जहाँ काँच के लिए कच्चे पदार्थ (बालू और शोरा) तथा कोयला बहुत दूर से मँगाने पड़ते हैं। इस कारण ये पदार्थ बहुत महँगे पड़ते हैं। काँच का उद्योग कच्चे माल की निकटता में स्थापित होने वाला उद्योग है। काँच-उद्योग की सलाहकारिणी-परिषद ने सुझाया है कि काँच के कारखानों की स्थापना पर कच्चे माल की निकटता से बाजारों की निकटता का अधिक प्रभाव होना चाहिए क्योंकि काँच शीघ्र टूट जाने वाला पदार्थ है। काँच का कारखाना स्थापित करने का सबसे उत्तम स्थान पश्चिमी बंगाल या बिहार के कोयले के क्षेत्रों के पास है।

सीमेण्ट उद्योग
(CEMENT INDUSTRY)

उद्योग का विकास

भारत में सवंठित ढंग से पहली बार सीमेण्ट तैयार करने का श्रेय मद्रास को है जहाँ १९०४ में समुद्री सीपियों से सीमेण्ट बनाने का प्रयास किया गया किन्तु यह पूर्णतः सफल न हो सका। वास्तविक विकास १९१२-१३ की अवधि में ही हुआ जबकि मध्य प्रदेश में कटनी (ए०सी०सी० द्वारा), राजस्थान में लाखेरी-बूँदी (किलिक निक्सन क० द्वारा) और गुजरात में पोरबन्दर (टाटा सन्स द्वारा) में तीन नयी फैक्ट्रियाँ स्थापित की गयीं। इनमें उत्पादन सन् १९१४ में आरम्भ हुआ। अनेक कठिनाइयों को पार कर यह उद्योग निरन्तर गति से बढ़ा है। इसकी प्रगति का मुख्य श्रेय भारतीय सीमेण्ट उत्पादक संघ (१९२६), कंक्रीट एसोसिएशन ऑफ इण्डिया (१९२७) और सीमेण्ट मार्केटिंग कम्पनी (१९३०) को है।

सन् १९५१ में सीमेण्ट तैयार करने वाली २१ फैक्ट्रियाँ थीं जिनकी उत्पादन क्षमता ३·२८ लाख टन की थी। यह संख्या सन् १९५६ में क्रमश: २७ और ४९·३ लाख टन हो गयी। इस अवधि में सीमेण्ट का वास्तविक उत्पादन ३१·९ लाख टन

से बढ़कर ४६·२ लाख टन हो गया। द्वितीय योजनाकाल में फैक्ट्रियों की संख्या बढ़ कर ३४ हो गयी तथा इनकी कुल उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन क्रमशः ६२ लाख टन और ७८ लाख टन थी। १९६१-६२ में सीमेण्ट की उत्पादन क्षमता ९५ लाख टन और उत्पादन ८३ लाख टन का हुआ। इनकी उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन १९७२ में क्रमशः १९८ लाख टन और १६० लाख टन था। १९७२ में ५३ फैक्ट्रियाँ काम कर रही थीं। भारत में सीमेण्ट की माँग १९७४ में २१२ लाख टन से बढ़कर १९७६ में २५६ लाख टन, १९७८ में ३०६ लाख टन तथा १९७९ में ३३६ लाख टन हो जाने का अनुमान है। अतः उद्योग की उत्पादन क्षमता ३०० लाख टन और उत्पादन २५० लाख टन करने का आयोजन पाँचवी योजना में रखा गया है। इसके लिए सीमेण्ट कॉरपोरेशन के अन्तर्गत ६ नई फैक्ट्रियाँ स्थापित की जायेंगी। स्थापित उत्पादन क्षमता का विभिन्न वर्गों में वितरण इस प्रकार हैं :

कम्पनी	क्षमता (लाख टनों में)	प्रतिशत
१. ए.सी.सी.	६९·०	३५·०
२. सार्वजनिक क्षेत्र :	२३·१	११·७
राज्य सरकारें	१९·१	—
केन्द्रीय सरकार	४·०	—
३. साहू जैन	१८·७	९·५
४. बिरला	१८·३	९·३
५. डालमिया	११·७	६·०
६. अन्य	५६·४	२८·५
योग	१९७·५	१००·०

भारत में अब सजावटी जल-सह सीमेण्ट, लेप सीमेण्ट जलरोधी यौगिक और विभिन्न रंगों का रंगीन पोर्टलैण्ड सीमेण्ट भी बनने लगा है। कोट्टायम तथा पोरबन्दर के कारखानों में सफेद सीमेण्ट भी बनाया जाता है।

भारतीय सीमेण्ट उद्योग की प्रगति

(लाख टनों में)

वर्ष	कारखानों की संख्या	उत्पादन क्षमता	उत्पादन
१९५०-५१	२२	३३·३	२७·३
१९५५-५६	२८	५०·२	४०·७
१९६०-६१	३४	९३·०	७९·७
१९६५-६६	३८	११६·०	१०८·२
१९७०-७१	—	१७३·०	१४०·०
१९७१-७२	५	१९४·०	१५०·०
१९७२-७३	५६	१९८·०	१६०·०

उत्पादन बढ़ते जाने पर भी भारत में सीमेण्ट का प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग २५ किलोग्राम है, जो विश्व के अन्य देशों की तुलना में बहुत ही कम है। स्विट्जरलैण्ड ७१५ किलोग्राम; पश्चिमी जर्मन ५८८ किलोग्राम; बेल्जियम ४६३ किलोग्राम; फ्रांस ४५७ किलोग्राम; कनाडा ३६८ किलोग्राम, जापान ४२८ किलोग्राम, संयुक्त राज्य अमरीका ३४२ किलोग्राम और इंग्लैण्ड ३०५ किलोग्राम। (*Commerce Annual*, 1968, p. 144)

सन् १९५६ के पूर्व सीमेण्ट का आयात भी होता था। १९६१-६२ में ब्रिटेन, स्वीडेन, संयुक्त राज्य अमरीका, पश्चिमी जर्मनी तथा पश्चिमी पाकिस्तान से ४·८ लाख रुपये के सीमेण्ट का आयात किया गया। आयात अब प्रायः नहीं के बराबर है। राजकीय व्यापार निगम द्वारा सीमेण्ट का निर्यात ही अधिक किया जाता है। १९७२-७३ में २½ करोड़ रुपये का सीमेण्ट निर्यात किया गया। निर्यात मुख्यतः पाकिस्तान, कम्बोडिया, मस्कत, अफगानिस्तान, ईरान, श्रीलंका, वियतनाम तथा फारस की खाड़ी के देशों को होता है।

उद्योग का स्थानीयकरण

सीमेण्ट उद्योग में भारी वस्तुओं का उपयोग अधिक होता है। अनुमानतः १ टन सीमेण्ट तैयार करने में १.६ टन चूने का पत्थर, ०·३८ जिप्सम और ३·८ टन कोयले की आवश्यकता होती है। इनमें से चूने का पत्थर और कोयला भारी होने के साथ-साथ सस्ते भी होते हैं अतः उन्हें ढोने में व्यय भी अधिक होता है। इस कारण अधिकांश कारखाने इन पदार्थों के निकट ही स्थापित होते हैं।

भारतीय सीमेण्ट के उद्योग को प्रकृति की ओर से बड़ा लाभ प्राप्त है। उत्तम प्रकार के चूने का पत्थर भारत में कई भागों में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है किन्तु अधिकतर विन्ध्याचल का चूने का पत्थर ही काम आता है क्योंकि यहाँ के पत्थर में चिकनी मिट्टी की मात्रा पर्याप्त होती है। विन्ध्याचल के अतिरिक्त मेघालय की जयन्तियाँ पहाड़ियों, बिहार के चम्पारन जिले, आन्ध्र के गन्टूर एवं उत्तर प्रदेश के देहरादून और मसूरी जिलों में यह विशेष रूप से पाया जाता है। सामान्यतः चूने के पत्थर की खानें रेलवे लाइनों के निकट ही होती हैं अतः सीमेण्ट के कारखाने इन खानों के पास ही स्थापित हो गये हैं। शायद ही कोई फैक्ट्री खानों से ५० किलोमीटर दूरी से अधिक होगी। ग्वालियर की सीमेण्ट फैक्ट्री चूने का पत्थर रेल द्वारा केवल २१ किलोमीटर की दूरी से और पोरबन्दर की फैक्ट्री ५० किलोमीटर की दूरी से मँगाती है। कटनी के सीमेण्ट के कारखाने की पूर्ति उसके पास के ही चूने के पत्थरों से होती है, वैसे बढ़िया पत्थर ३२ किलोमीटर की दूरी से मँगाया जाता है। बिहार में जालपा और डालमियानगर की फैक्ट्रियाँ चूने का पत्थर रोहतास की पहाड़ियों से प्राप्त करती हैं। दूसरे अधिकांश कारखाने चूने का पत्थर अपेक्षाकृत बहुत ही कम दूरी से मँगाते हैं।

[1] पोर्टलैण्ड सीमेण्ट में ये पदार्थ पाये जाते हैं. चूना ६४.५%, बारीक बालू २०·७%, एल्यूमीना ५·२% और आयरन ऑक्साइड २.९%।

अब सीमेण्ट बनाने के लिए चूने के पत्थर के स्थान पर धमन भट्टी का कचरा (Blast furnace waste) और पोरसेलानिक मसाले का भी प्रयोग किया जाता है। धमन भट्टी का कचरा लोहा और इस्पात के कारखानों से मिल जाता है। दूसरी योजना तक १८,००० टन वार्षिक कचरा सीमेण्ट बनाने की क्षमता स्थापित हो गयी थी। बिहार में १, पश्चिमी बंगाल और मध्य प्रदेश में भी १-१ तथा उड़ीसा में ३ नये कारखाने स्थापित किये गये हैं जिनसे कचरा सीमेण्ट की उत्पादन क्षमता बढ़कर १२ लाख टन हो गयी है।

सीमेण्ट बनाने के लिए दूसरा मुख्य पदार्थ कोयला है। कोयले की दृष्टि से अधिकतर कारखाने असुविधा में रहते हैं। कोयला मुख्यत: पश्चिमी बंगाल और बिहार के क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। सीमेण्ट की भट्टियों में उच्चकोटि का कोयला ही काम में आता है जिनमें कम से कम राख का अंश हो अतः वे कारखाने जो बिहार अथवा मध्य प्रदेश में कोयले की खानों से दूर हैं शक्ति उत्पन्न करने के लिए निम्न श्रेणी का कोयला प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु फिर भी कम से कम आधा कोयला उन्हें पश्चिमी बंगाल और बिहार के क्षेत्रों से मँगाना पड़ता है। तमिलनाडु के कारखानों को छोड़कर सभी जगहों पर यही कोयला काम में लाया जाता है। अब विद्युत शक्ति का भी प्रयोग किया जाने लगा है।

जिप्सम भी सीमेण्ट बनाने में काम आती है। यह जोधपुर और बीकानेर समागों से प्राप्त की जाती है किन्तु कारखानों तक लाने में काफी व्यय हो जाता है। सौराष्ट्र के कारखाने जिप्सम की पूर्ति जामनगर से करते हैं। बूँदी के कारखाने में तो जोधपुर से ही जिप्सम मँगाकर काम में लिया जाता है।

जहाँ तक बाजारों का प्रश्न है देश के भीतरी भागों के नगरों को यह लाभ है कि उन्हें सीमेण्ट के कारखानों को कम भाड़ा देकर ही सीमेण्ट मिल जाता है और उन्हें बाहर से आयात हुए सीमेण्ट पर अधिक व्यय नहीं करना पड़ता, किन्तु सीमेण्ट के मुख्य बाजार बन्दरगाहों पर ही स्थित हैं। इस विचार से भारत की अधिकांश सीमेण्ट की फैक्ट्रियाँ असुविधा में रहती हैं। कटनी का कारखाना बम्बई और कलकत्ता से क्रमशः १,०७६ किलोमीटर और १,०६५ किलोमीटर दूर है। सोन घाटी के सीमेण्ट के कारखाने कलकत्ता से ५६५ किलोमीटर दूर हैं। बूँदी बम्बई से ६७६ किलोमीटर दूर है। सौराष्ट्र की फैक्ट्रियाँ बम्बई से ४१८ किलोमीटर दूर हैं।

सभी परिस्थितियों को देखते हुए मध्य प्रदेश और बिहार सीमेण्ट उद्योग के लिए अनुकूल क्षेत्र हैं। यहाँ चूने का पत्थर और कोयला उचित दूरी पर ही मिल जाते हैं और बंगाल-बिहार के औद्योगिक क्षेत्रों के बाजार भी यहाँ से अधिक दूर नहीं पड़ते। कोसी, महानदी और दामोदर नदियों की घाटियों में विकसित तीनों बहुमुखी योजनाएँ भी निकट हैं। उनसे शक्ति उपलब्ध होती है।

15

प्रमुख निर्माण उद्योग (क्रमशः)
(MAJOR MANUFACTURING INDUSTRIES)

कागज उद्योग
(PAPER INDUSTRY)

उद्योग का विकास और वर्तमान स्थिति

भारत में कागज बनाने का कार्य अत्यन्त प्राचीनकाल से कुटीर उद्योग के रूप में किया जाता है। इसके मुख्य केन्द्र कालपी, मथुरा, आरवल, सांगानेर, आदि थे। आधुनिक ढंग का प्रयास सन् १७१६ में डॉ० विलियम कोर द्वारा मद्रास में ट्रंकुवार नामक स्थान पर किया गया किन्तु इसमें सफलता नहीं मिली। सन् १८७० में हुगली के किनारे बाली में भी एक मिल स्थापित किया गया किन्तु इसमें भी सफलता नहीं हुई। किन्तु उद्योग का वास्तविक विकास तब ही हुआ जब लखनऊ में अपर इण्डिया पेपर मिल्स सन् १८७६ में और टीटागढ़ में टीटागढ़ पेपर मिल्स सन् १८८१ में खुले। इसके बाद धीरे-धीरे नये कारखाने खुलते गये। सन् १९०० में देश में ७ कारखाने थे जिनका उत्पादन केवल १९,००० टन का था। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध कालों में इस उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला। सन् १९२४ में ६ मिल थे जिनका उत्पादन ३३,००० टन था। सन् १९३७ में यह संख्या क्रमशः १० और ४८,५०० टन हो गयी। सन् १९५१ में कागज की १८ मिलें थीं जिनकी उत्पादन क्षमता १·५८ लाख टन थी और उत्पादन १·०६ लाख टन का था। सन् १९५६ में २० कारखाने थे जिनकी उत्पादन क्षमता २·१ लाख टन और वास्तविक उत्पादन १·८ लाख टन का था। द्वितीय योजनाकाल में ९ नये कारखाने और स्थापित किये गये जिनके फलस्वरूप कारखानों की संख्या २९ हो गयी (इसमें से १ बन्द था) तथा उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन क्रमशः ४·१ लाख टन और ३·४ लाख टन थी। स्ट्राबोर्ड की क्षमता ७७,४०० टन और उत्पादन ४४,५०० की थी। स्ट्राबोर्ड बनाने वाले २६ कारखाने थे। शिक्षा में प्रगति होने के साथ-साथ कागज के लिए माँग भी बढ़ती जा रही है। अतः तृतीय योजना के अन्तर्गत कागज आदि की उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन बढ़ाने के लिए

१८ नये कारखाने स्थापित किये गये तथा १८ वर्तमान कारखानों का विस्तार किया गया। इसके अतिरिक्त तीन छोटी इकाइयों का विस्तार करने तथा ८३ नयी छोटी इकाइयों स्थापित की गयीं। ये इकाइयाँ असम में जयपुर; गौहाटी, सामाखवाय और पश्चिम बंगाल में कलकत्ता, कल्याणी, बांसबरिया, २४ परगना, अलीपुर और सिघी में स्थापित की गयी। १९७१-७२ में कागज और गत्ते की ५९ मिलें थीं जिनको उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन ९,२४,००० टन तथा ८,०३,००० टन थी। इसके अतिरिक्त १ अखबारी कागज की मिल है, जिसकी उत्पादन क्षमता ७५ हजार टन की है। २ लुग्दी बनाने की मिलें भी हैं जिनकी उत्पादन क्षमता ८७ हजार टन की है।

नीचे की तालिका मे कागज उद्योग का विकास बताया गया है :

	कागज की मिलें	उत्पादन क्षमता (००० टनों मे)	वास्तविक उत्पादन
१९५०-५१	१८	१५८	११६
१९५५-५६	२०	२१०	१९०
१९६०-६१	२९	४१०	३५०
१९६५-६६	—	६८०	५६०
१९६६-६७	५७	७११	५८०
१९६७-६८	६०	७३०	६६०
१९६८-६९	६०	७५०	६५८
१९६९-७०	५७	७६८	७२४

१९७१-७२ मे कागज का उत्पादन ८०३ लाख टन का था। १९७३-७४ में यह ८'३० लाख टन का हुआ है तथा १९७८-७९ मे १२ लाख टन हो जाने का अनुमान है।

भारत में अनेक प्रकार का कागज तैयार किया जाता है। उत्पादन की दृष्टि से भारत में लिखने तथा छापने का कागज, वस्तुएँ लपेटने का कागज, विशेष किस्म का कागज और गत्ता कागज बनाया जाता है। द्वितीय योजनाकाल में अनेक नये प्रकार के कागज भी बनाये जाने लगे हैं, जैसे आर्ट-पेपर, टिश्यू पेपर, क्रोमो पेपर, बैंक तथा बोर्ड पेपर, कार्टरिज-पेपर, चमकीला कागज, टेलीप्रिन्टर कागज तथा लिथो और आफसेट-कागज, अधिक चमक वाले पोस्टर कागज, कारतूस कागज, कम्प्यूटर मशीनों मे काम आने वाले कागज, सिगरेट का कागज, बैंक पेपर, इन्सुलेटिंग पेपर, आदि।

सामान्यतः कागज दो प्रकार का होता है -

सांस्कृतिक कागज (Cultural Paper) लिखने और छपाई का कागज जो छोटे-रेशे वाले पदार्थों से बनाया जाता है, जैसे कठोर लकड़ी, बांस, खोई तथा कृषि उपज के व्यर्थ पदार्थ।

औद्योगिक कागज और गत्ता (Industrial Paper and Paper Boards) के अन्तर्गत क्राफ्ट पेपर जिसका प्रयोग शक्कर, सीमेण्ट, आटा, रासायनिक पदार्थों को पैक करने वाले बोरों के बनाने में काम में लाया जाता है। यह लम्बे रेशे वाली लकड़ियों से बनाया जाता है।

भारत में कागज का उपभोग निरन्तर गति से बढ़ रहा है। इसके लिए आन्तरिक उत्पादन के अतिरिक्त कागज का आयात भी किया जाता है। यह आयात नार्वे, स्वीडेन, जापान, हॉलैण्ड और पश्चिमी जर्मनी से होता है। १९६०-६१ में १२ करोड़ रुपये और १९७२-७३ में ३१ करोड़ रुपये का कागज और गत्ता आयात किया गया। इसी वर्ष लगभग ४ करोड़ रुपये के मूल्य का कागज निर्यात किया गया। छपाई और लिखाई के कागज की माँग में वृद्धि हो रही है किन्तु उपलब्ध मात्रा अपर्याप्त है अतः मिलों के उत्पादन को २ लाख टन बढ़ाया जा रहा है।

भारत में अभी विदेशों की तुलना में प्रति व्यक्ति पीछे कागज का उपभोग बहुत कम है केवल ३ पौंड; जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में यह मात्रा ५३० पौंड, इंगलैण्ड में २६५ पौंड, जर्मनी में २२५ पौंड, जापान में १७६ पौंड तथा रूस में ३६ पौंड है। इस निम्न उपभोग का मुख्य कारण जनता का अशिक्षित होना है।

अखबारी कागज उद्योग

अखबारी कागज बनाने का पहला कारखाना सन् १९४७ के आरम्भ में निजी क्षेत्र में राष्ट्रीय अखबारी कागज मिल के नाम से मध्य प्रदेश में नेपानगर में स्थापित किया गया। यह सन् १९४८ में मध्य प्रदेश सरकार के नियन्त्रण में आ गया। सन् १९५८ में इसका पुनर्गठन किया गया। इसकी अधिकृत पूँजी ६ करोड़ रुपये की है। पहली बार उत्पादन सन् १९५५ में आरम्भ किया गया। इसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ७५,००० टन की है। १९५५-५६ में यहाँ ३,४५५ टन, १९६०-६१ में २३,३९८ टन, १९६६-६७ में २६,११५ टन और १९७३-७४ में ४३,००० टन अखबारी कागज तैयार किया गया। १९७८-७९ में इसकी उत्पादन क्षमता १·५१ लाख टन हो जाने का अनुमान है।

अखबारी कागज की उत्पादन क्षमता का विस्तार करने में प्रमुख कठिनाई पर्याप्त मात्रा में सस्ता कच्चा माल न मिलना है। औद्योगिक विकास द्वारा गन्ने की छोई और हिमालय की कोमल लकड़ियों के प्रयोग से यह कमी दूर की जा सकती है। अब दो नयी इकाइयाँ शक्करनगर में स्थापित की गयी हैं।

सन् १९७४ में अखबारी कागज की कमी का अनुमान २·५ लाख टन का लगाया गया है, इसमें से देश में केवल ५०,००० टन नेपानगर से प्राप्त होगा, शेष १.५ लाख टन आयात करना होगा। आयात की मात्रा इस प्रकार होगी . संयुक्त राज्य

और कनाडा ७०,००० टन; रूस ५०,००० टन, बंगला देश १०,००० टन; १०,००० टन पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया तथा जर्मनी से और १०,००० टन नार्वे तथा स्वीडेन से।

सार्वजनिक क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा पेपर कॉरपोरेशन की स्थापना की गयी है। इसके अन्तर्गत ३ नये मिल स्थापित किये जा रहे हैं। २५ करोड़ रुपये की लागत से नागालैण्ड में लुग्दी बनाने का कारखाना, जिसकी उत्पादन क्षमता ३०,००० टन वार्षिक की होगी, १९७६ में उत्पादन आरम्भ करेगा। दूसरा कारखाना नौगाँव (असम) में होगा जिसकी उत्पादन क्षमता ८०,००० टन की होगी और ५२ करोड़ की लागत लगेगी। इसमें उत्पादन १९७७-७८ में आरम्भ किया जा सकेगा। तीसरा कारखाना कचर (असम) में कागज और लुग्दी बनाने का होगा। इसकी लागत भी ५२ करोड़ रुपये की होगी और उत्पादन क्षमता ८०,००० टन। इसमें भी उत्पादन १९७७-७८ में आरम्भ होगा।

उद्योग का स्थानीयकरण

कागज का उद्योग कच्चे माल की प्राप्ति के स्थानों के निकट स्थापित होने वाला उद्योग है क्योंकि कागज बनाने के लिए भारी पदार्थों—बाँस, लकड़ी, घास, कोयला, आदि की आवश्यकता होती है। अतः जिन भागों में ये पदार्थ निकट ही प्राप्त हो जाते हैं वहीं इस उद्योग का केन्द्रीयकरण हो गया है। जिन कारखानों में चिथड़े, रद्दी कागज, इत्यादि से कागज बनाया जाता है वे कारखाने बाजारों के निकट स्थापित किये जाते हैं।

भारत में नर्म लकड़ी के वन अधिकांशतः हिमालय पर्वत पर पाये जाते हैं जिनमें लकड़ी काटने और यातायात की कठिनाइयों के कारण इस लकड़ी से रासायनिक लुग्दी बनाने के काम में कठिनाई पड़ती है।

कई मिलों में सबाई, भाबर, मूँज, हाथी घास, आदि का प्रयोग कागज बनाने में किया जाता है। उत्तम प्रकार का कागज बनाने के लिए सबाई घास का उपयोग किया जाता है। यह घास विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और हरियाणा में पैदा होती है। बाँस से भी लुग्दी बनायी जाती है। बाँस का उत्पादन महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु, त्रिपुरा, अरुणाचल, प्रदेश, मध्य प्रदेश, असम, कर्नाटक, बंगाल, उड़ीसा और बिहार में होता है। बाँस से लुग्दी बनाने में सबसे बड़ा लाभ यह है कि बाँस को दुबारा काटना चार वर्ष के बाद ही सम्भव हो जाता है जबकि कई लकड़ियाँ तो ऐसी हैं जो कि ६० वर्ष बाद ही दुबारा काटी जा सकती हैं। औसत रूप में एक टन कागज बनाने के लिए लगभग २.३८ टन बाँस की आवश्यकता होती है। सबाई घास की अपेक्षा बाँस से तैयार हुई लुग्दी मात्रा में अधिक और दाम में सस्ती पड़ती है किन्तु बाँस का कागज सबाई घास के कागज की अपेक्षा मामूली और खुरदरा होता है। १५,००० टन वार्षिक क्षमता वाला लुग्दी का कारखाना सूरत में स्थापित किया गया है। १०० टन लुग्दी प्रतिदिन बनाने वाले दो और कारखाने केरल और कर्नाटक में स्थापित किये गये हैं।

हाथी घास का उपयोग भी कागज बनाने में किया जाता है। यह असम और तराई में पैदा होती है। इसका कागज बाँस से अच्छा होता है और सस्ता भी पड़ता है।

हिमालय पर मिलने वाले स्प्रूस, देवदार और चीड़ के मुलायम वृक्षों से उत्तम प्रकार का कागज तैयार किया जाता है, किन्तु परिवहन की कठिनाई के कारण इसका अधिक उपयोग नहीं हो पाता।

अखबारी कागज के उत्पादन मे सलाई की लकड़ी का प्रयोग किया जा रहा है। यूकेलिप्टस, वाटल, शहतूत, आदि की लकड़ी की जाँच-पड़ताल की गयी है और उसे कागज बनाने के उपयुक्त पाया गया है। यूकेलिप्टस की एक किस्म ब्लूगम (Blue Gum) के वृक्ष २,००० एकड़ में और वाटल के वृक्ष तमिलनाडु में २,४०० एकड़ में हैं। ब्लूगम का वृक्ष १५ वर्षों में वयस्क हो जाता है उससे प्रति एकड़ ५० टन लकड़ी प्राप्त होती है जबकि वाटल का वृक्ष १० वर्ष में ही वयस्क हो जाता है किन्तु इससे २० टन प्रति एकड़ ही लकड़ी प्राप्त होती है। शहतूत का वृक्ष ७ से १० वर्षों में तैयार हो जाता है।

कागज और लुग्दी बनाने के लिए गन्ने की छोई (Bagasse) का प्रयोग किया जा सकता है। अनुमानतः शक्कर के कारखानों से प्रति वर्ष ३० लाख टन छोई मिल सकती है, किन्तु इसमें लगभग ५ लाख टन का ही उपयोग कागज बनाने में किया जाता है शेष जलाने के काम मे आ जाता है। मामूली कागज तैयार करने के लिए कपड़े के गूदड़ सन, पटुआ, पटसन का शेषांश, रद्दी कागज, चिथड़े, आदि का भी प्रयोग किया जाता है। इन सभी वस्तुओं को पीसकर और उबालकर रासायनिक पदार्थों द्वारा कागज की लुग्दी के योग्य मुलायम बना लिया जाता है। इस लुग्दी को जल में मिलाकर बहुत पतले बने हुए तारों के परदों के बीच से बहाया जाता है। जब जल बह जाता है तो कागज की एक पतली तह रह जाती है। यह गीला कागज एक मशीन मे डालकर सुखाया जाता है। जब वह तैयार हो जाता है तब आवश्यकतानुसार इसे काट लिया जाता है।

कच्चे माल के अतिरिक्त इस उद्योग के लिए कई रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है जिनमे मुख्य ये हैं : कास्टिक सोडा, राल, चूना, क्लोरीन, चट्टानी नमक, गन्धक, फिटकरी, विशेष प्रकार की मिट्टी, ब्लीचिंग पाउडर, अमोनियम सल्फेट और सोडा एश। इनमें से केवल गन्धक और कास्टिक सोडा विदेशों से आयात किये जाते हैं, शेष यहीं से प्राप्त होते हैं।

इस उद्योग के प्रमुख क्षेत्र ये हैं।

बंगाल में कागज उद्योग अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक केन्द्रित है क्योंकि (१) यहाँ के मिलों को असम से बाँस मिलने की सुविधा है। इसी से लुग्दी बनायी जाती है। सवाई घास मुख्यतः मध्य प्रदेश और बिहार मे प्राप्त करली जाती है। (२) कोयला रानीगंज और झरिया क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है (३) रासायनिक

पदार्थ कलकत्ता के औद्योगिक क्षेत्र से प्राप्त किये जाते हैं। (४) घनी जनसंख्या, छापेखाने तथा दफ्तरों की अधिकता से इस क्षेत्र में कागज की मांग भी अधिक है। (५) घनी जनसंख्या के कारण श्रमिक भी आसानी से मिल जाते हैं। इन्हीं अनुकूल परिस्थितियों के कारण, कागज के उद्योग के मुख्य केन्द्र पश्चिम बंगाल में हैं। यहाँ ६ मिलें हैं। उद्योग के मुख्य केन्द्र टीटागढ़, रानीगंज, नैहाटी, त्रिवेणी, कलकत्ता, काकिनाडा और चन्द्रहाटी हैं।

उत्तर प्रदेश में लखनऊ का मिल सबाई घास पूर्वी क्षेत्रों से तथा सहारनपुर का मिल पश्चिमी क्षेत्रों से प्राप्त करते हैं। कोयला बिहार, तथा उड़ीसा की खानों से प्राप्त किया जाता है तथा घनी जनसंख्या के कारण मजदूर भी पर्याप्त मिल जाते हैं। यहाँ दो मिलें हैं। दफ्ती कागज बनाने के पाँच कारखाने मेरठ, सहारनपुर, पिपराइच, पिलखुआ और नैनी में हैं।

उड़ीसा के सबलपुर जिले में बृजराजनगर, रायगढ, बरम्पा तथा चौद्वार बाँस उत्पन्न करने वाले क्षेत्र में स्थित है और यह रायपुर की कोयले की खानों के निकट भी पड़ता है। बिहार के डालमियानगर के मिल की स्थिति भी कच्चे माल और कोयले की दृष्टि से बड़ी अच्छी है। दक्षिणी भागों से बाँस तथा पूर्वी भागों से सबाई घास मिल जाती है। यहाँ कागज की ५ मिलें हैं: बरौनी, समस्तीपुर, पटना, संथाल परगना।

कर्नाटक और केरल राज्यों के कागज के मिल बाँस के जंगलों के निकट हैं। जल-विद्युत शक्ति और बाजार के दृष्टिकोण से भी इनकी स्थिति अच्छी है। कर्नाटक में कागज के कारखाने इन स्थानों में हैं: भद्रावती, दांदेली, ननजोंनगोंड एथेनी, गीरजपुडी, हरीहर, बंगलौर, कृष्णराजसागर, बेलगुला। केरल में ३ मिलें हैं। मुख्य केन्द्र पुनालूर कोजीकोड, तथा वेल्लयुरम हैं।

महाराष्ट्र और गुजरात में क्रमशः १४ और ६ मिलें हैं। इन मिलों की स्थिति कोयला और कच्चे माल दोनों ही दृष्टि से विशेष लाभदायक नहीं है। यहाँ लकड़ी की लुग्दी विदेशों से मँगवायी जाती है। बाँस कनारा और सूरत जिलों से प्राप्त किया जाता है। महाराष्ट्र के मुख्य केन्द्र पूना, खोपोला, बम्बई बल्लारपुर, चन्द्रपुर, ओगेलवाडी, कराड, गोरेगाँव, नदुरबार, पिंपरी, भिवंडी, वासरलगाव, नागपुर, तुमसुर और राहा तथा गुजरात के मुख्य केन्द्र बिलीमोरिया, राजकोट, बरजोद, अहमदाबाद, हवेली, पाडी (सूरत), भड़ौंच, बड़ौदा और कोण्डीविटा हैं।

हरियाणा में कागज की ३ मिलें फरीदाबाद, जगाधरी तथा यमुनानगर में, आँध्र प्रदेश में ४ मिलें राजमहेन्द्री, सिरपुर, तिरुपति, कागजनगर में तथा मध्य प्रदेश में २ मिलें भोपाल और नेपानगर में हैं। नेपानगर में अखबारी कागज बनाने का कारखाना है।

हाथ कागज उद्योग

भारत के अनेक भागों में अभी भी फटे-पुराने चिथड़े, रद्दी कागज, जंगली छालें, जूट रस्सियाँ, मूँज, जूट की डंडियों आदि से कागजियों द्वारा लघु उद्योग के रूप में कागज बनाया जाता है। स्टेंसिल, उच्च स्तर के कागज, टिश्यू, दीवार पर लगाने का कलात्मक कागज, सजावटी कागज, ड्राइंग कागज, अलबम तथा दस्तावेजों के कागज, हवाई डाक का कागज, फिल्टर पेपर, आदि का उत्पादन कुटीर इकाइयों में किया जा रहा है। १९५३ में केवल २० इकाइयाँ थीं, जो १९६८ में १२० हो गयीं तथा कागज का उत्पादन और मूल्य इस अवधि में २०० टन तथा ४ लाख रुपये से बढ़कर २,००० टन तथा ३० लाख रुपये हो गया। इस कागज के निर्यात से लगभग ६ लाख रुपये मिलते हैं और कुटीर उद्योग में ५,००० व्यक्तियों को रोजगार मिलता है।

दियासलाई उद्योग
(MATCH INDUSTRY)

उद्योग का विकास और वर्तमान स्थिति

भारत में दियासलाई का उद्योग कुटीर उद्योग और कारखाना उद्योग दोनों ही प्रकार का है। इस उद्योग का विकास भारत में सन् १९२२ के बाद से ही हुआ है जबकि दियासलाई पर लगने वाले आयात कर को दुगुना कर दिया गया था। इसके पूर्व अपनी आवश्यकतानुसार दियासलाइयाँ विदेशों से मुख्यतः स्वीडेन और नार्वे से आयात की जाती थीं। सन् १९२२ में आयात कर लग जाने से देश में ही विदेशी पूँजी से (मुख्यतः स्वीडिश) इस उद्योग में प्रगति होने लगी। स्वीडेन निवासियों ने वेस्टर्न इण्डिया मैच कम्पनी के नाम से भारत में कई कारखाने खोले। ये कारखाने क्रमशः बरेली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, धुबरी, आदि स्थानों में स्थापित किये गये। स्वीडेन के इन कारखानों से देश की ८० प्रतिशत माँग की पूर्ति होती है। सन् १९२८ में इस उद्योग को सरकार की ओर से संरक्षण दिया गया। तभी से उद्योग की नींव सुदृढ़ हो गयी है।

सन् १९५६ में दियासलाई बनाने वाली फैक्ट्रियों की संख्या २३४ थी और यह संख्या बढ़कर १९६१ में क्रमशः ४३९ हो गयी। वास्तविक उत्पादन १९५६ में ३४१ लाख बक्स (६० तीलियों वाले) से बढ़कर १९६१ में ४३४ लाख बक्स और १९७१-७२ में ४८० करोड़ डिब्बियों का उत्पादन किया गया।

उद्योग का स्थानीयकरण

दियासलाई बनाने का उद्योग मुख्यतः पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु में केन्द्रित है। इन राज्यों में अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं। दियासलाई बनाने के लिए निम्न बातों की आवश्यकता पड़ती है :

(१) कच्चे माल के अन्तर्गत मुलायम लकड़ी की आवश्यकता होती है जो शीघ्र आग पकड़ सके तथा जिसके पतले-पतले पर्त बनाये जा सकें। इस कार्य के लिए धूप, मरकट, सेमल, सुन्दरी, सिलाई, आदि लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है। सुन्दरी बंगाल में, सेमल भावर और तराई में, आम के वृक्ष महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में, पपीता अण्डमान में। धूप, दीडू, बकोता, आदि लकड़ियाँ अण्डमान से प्राप्त की जाती हैं।

(२) दियासलाई बनाने के लिए पोटेशियम क्लोरेट, पोटाश और पैराफीन रसायनों की भी आवश्यकता लकड़ी पर बिन्दु बनाने और फॉस्फोरस की मिश्रण, घर्षण पृष्ठ आदि के लिए पड़ती है। ये सब प्रायः बाहर से मँगवाये जाते हैं।

(३) देश की घनी जनसंख्या होने से न केवल उद्योगों के लिए सस्ते और पर्याप्त श्रमिक मिल जाते हैं बल्कि दियासलाई की माँग भी अधिक रहती है।

दियासलाई के कारखाने मुख्यतः महाराष्ट्र, तमिलनाडु और पश्चिमी बंगाल में स्थित हैं। पश्चिमी बंगाल इनमें सबसे मुख्य है क्योंकि : (i) यहाँ सुन्दरवन से धेनेवा नामक लकड़ियाँ वर्ष के अधिकांश समय में मिलती रहती हैं अतः अधिक समय तक लकड़ी इकट्ठा करके रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उत्तम जलमार्गों के कारण लकड़ी के यातायात में कम व्यय पड़ता है। स्वीडेन से ऐस्पेन तथा नीकोबार और अण्डमान से धूप, पपीता, आदि की लकड़ियाँ भी कलकत्ता बन्दरगाह द्वारा सुविधा-पूर्वक मँगवाई जा सकती हैं। (ii) पोटेशियम क्लोरेट, फास्फोरस, आदि रासायनिक पदार्थ कलकत्ता से प्राप्त हो जाते हैं। (iii) कोयला झरिया की खानों से मिल जाता है। (iv) बिहार, तथा उड़ीसा राज्यों से सस्ते मजदूर मिल जाते हैं।

यहाँ के मुख्य केन्द्र २४ परगना में हैं। कलकत्ता में अधिक दियासलाइयाँ बनायी जाती हैं।

गुजरात-महाराष्ट्र में कारखानों के लिए लकड़ियाँ पंचमहल के निकटवर्ती वन क्षेत्रों से मिल जाती हैं। यहाँ सेमल, सलाई और आम की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। स्वीडन से ऐस्पेन लकड़ी भी आयात की जाती है। गुजरात के मुख्य केन्द्र अहमदाबाद और पेटलाद तथा महाराष्ट्र के थाना, पूना, बम्बई और चंद्रपुर हैं।

तमिलनाडु में अधिकांश कारखाने रामानाथापुरम जिले में हैं। यहाँ मुख्य केन्द्र तिरुवनन्तपुरम, चिंगलपुट, रामानाथापुरम, तिरुनलवेली और मद्रास हैं।

दियासलाई बनाने के अन्य कारखाने उत्तर प्रदेश में मेरठ, इलाहाबाद, वाराणसी और बरेली; कर्नाटक में शिमोगा; केरल में तिरुवनन्तपुरम; आंध्र प्रदेश में हैदराबाद और वारंगल, असम में धुबरी; राजस्थान में कोटा और मध्य प्रदेश में बिलासपुर में हैं।

सूती वस्त्र उद्योग
(COTTON TEXTILE INDUSTRY)

उद्योग का विकास और वर्तमान स्थिति

सूती वस्त्र उद्योग भारत में एक प्राचीन उद्योग रहा है। आज से ५,००० वर्ष पूर्व भी भारत मे उत्तम कपड़ा बुना जाता था। सिन्धु की घाटी में ईसा से ३,००० वर्ष पूर्व के हड़प्पा और मोहनजोदड़ो स्थानों की खोज ने इस बात को प्रमाणित किया है। मिस्र में ईसा से २,००० वर्ष पूर्व पिरामिडों में मृत शरीर भारतीय मलमल मे लिपटे हुए पाये जाते हैं। प्राचीन रोम मे भारतीय मलमल और छींट के वस्त्र पहनने मे रोमन महिलाएँ गौरव समझती थीं। ढाका की मलमल से यूनानी भी परिचित थे जिसे गंगा के देश वाली (Gangetica) कहते थे। वास्तव में, ढाका की मलमल को इतना पसन्द किया जाता था कि इसे विदेशियों ने अनेक नाम दे रखे थे। उदाहरणार्थ, प्रवाहित-जल (Running Water), वायुवितान (Woven Air) तथा सांध्य सीकर (Evening Dew)। आश्चर्य तो यह है कि यह सारा उद्योग उस समय हाथकरघों द्वारा ही होता था। यह उद्योग १८वीं शताब्दी तक चलता रहा, किन्तु यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति से इसको बड़ा धक्का पहुँचा। मशीन युग ने इस उद्योग को और भी जर्जर बना दिया। भारत मे रेलों का विकास तथा पूर्व-पश्चिम के बीच स्वेज मार्ग का खुलना भारत के इस उद्योग के लिए अन्तिम आघात था। इन कारणों से भारत का गौरवशाली उद्योग अतीत के गर्भ में विलीन हो गया। इस सम्बन्ध में बुकानन ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं - "भारत के लिए सूती उद्योग अतीत का गौरव, भूत और वर्तमान का संकट और सदैव की आशा रहा है।"

आधुनिक ढंग का कारखाना पहले सन् १८१८ में कलकत्ता मे खोला गया किन्तु यह प्रयास असफल रहा। सन् १८५१ में बम्बई में भी एक मिल खोला गया। सन् १८५४ में पहला भारतीय मिल कवासजी डावर द्वारा स्थापित किया गया। इसके पश्चात् सन् १८६१ तक १२ और मिल खुल चुके थे। १८६१-६५ में अमरीकन गृहयुद्ध के कारण भारत से जब रुई का निर्यात इंगलैण्ड को होने लगा तो इस व्यापार में काफी लाभ हुआ। इसी लाभ से अनेक नयी मिलें खोली गयीं। सन् १९०० में १९३ मिल खुल चुके थे जिनमें १½ लाख श्रमिक काम करते थे। सन् १९०५ में स्वदेशी आन्दोलन और सन् १९१४ से महायुद्ध आरम्भ हो जाने से इस उद्योग को बड़ा प्रोत्साहन मिला। इस समय देश में २७२ मिलें थीं जिनमे १½ लाख श्रमिक कार्य करते थे। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व ३७९ मिलें थीं जिनमें १ करोड़ तकुए तथा २ लाख करघे लगे तथा जिनके उत्पादन से देश की माँग का लगभग ६४ प्रतिशत पूरा होता था। शेष २७ प्रतिशत हाथ करघों से और ९ प्रतिशत आयात द्वारा। द्वितीय महायुद्ध काल में विदेशों से कपड़े का आयात कम हो जाने से उद्योग

को फिर बड़ा प्रोत्साहन मिला। सन् १९४५ में ४१७ मिल हो गये जिनमें १०२ करोड़ तकुए तथा २ लाख करघे थे। इनमें लगभग ३ लाख श्रमिक कार्य कर रहे थे। इनका उत्पादन १६८ करोड़ पौंड सूत और ४८७ करोड़ गज कपड़े का था। सन् १९४७ में विभाजन के फलस्वरूप देश के १५ कारखाने और रुई उत्पादक ७३ प्रतिशत क्षेत्र पाकिस्तान को चले जाने के फलस्वरूप ४०२ मिलें भारत में रह गयीं तथा कपास की कमी होने से कपड़े का उत्पादन भी केवल ४१६ करोड़ गज ही रह गया। इस कमी को पूरा करने के लिए योजना में निश्चित लक्ष्य निर्धारित किये गये। सन् १९५१ में भारत में ४५३ मिलें थी जिनमें ११ लाख तकुए और २ लाख करघे लगे थे तथा ७३ लाख के लगभग श्रमिक कार्य कर रहे थे। सन् १९५६ में १२१ कताई करने वाले तथा २९१ कताई और बुनाई दोनों ही करने वाले कुल मिलाकर ४१२ मिल थे जिनमें १२०·५ लाख तकुए और २०३ लाख करघे लगे थे। सन् १९७१ में ६७० मिल थे जिनमें से ३७९ कताई और २९१ कताई और बुनाई दोनों करने वाले थे। इनमें लगे तकुओं और करघों की संख्या क्रमशः १८१ लाख और २ लाख थी। इन मिलों में १० लाख श्रमिक कार्य कर रहे थे।

अगले पृष्ठ की तालिका में सूती वस्त्र उद्योग का विकास बताया गया है।

मिलों में सूती कपड़े का उत्पादन कुछ सीमा तक तो उपलब्ध मशीनों के अनुसार और कुछ सीमा तक देश में उपलब्ध रुई के अनुरूप होता है। देश को रुई का अधिकांश भाग मोटे और उत्तम श्रेणी के कपड़े के उत्पादन के लिए बहुत ही उपयुक्त है। भारतीय मिलें जो सूत तैयार करती हैं वह बहुत मोटा है। अधिकांश सूत ३० नम्बर से कम का होता है। ३० नम्बर से ऊपर का सूत तो बहुत ही कम उत्पन्न होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में अच्छी और लम्बे रेशे वाली कपास का उपयोग कम किया जाता है। केवल बम्बई और अहमदाबाद की मिलों में जो ४० नम्बर से भी अधिक का बारीक सूत काता जाता है वह संयुक्त राष्ट्र अमरीका; मिस्र तथा पाकिस्तान से आयात की गयी कपास से तैयार किया जाता है। अब ऊँचे नम्बर का सूत भी भारतीय मिलों में तैयार किया जाने लगा है। इससे महीन कपड़े का निर्माण किया जाता है। अधिकांशतः हमारे यहाँ कपास मोटे रेशे वाली होने के कारण केवल मोटा और मध्यम श्रेणी का कपड़ा ही अधिक बनाया जाता है।

मोटे तौर पर देश के कुल सूत के उत्पादन का ४१% ३० नम्बर से ऊपर का तथा कुछ वस्त्रों का २९% उत्तम किस्म का होता है। बम्बई और अहमदाबाद दोनों मिलकर देश के कुल उत्पादन का ६०% उत्तम कपड़ा और ९७% अति उत्तम तथा ८०% ३० नम्बर से ऊपर का सूत बनाते हैं। शेष उत्पादन दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास और मैसूर से प्राप्त होता है। दिल्ली, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में मुख्यतः मोटा कपड़ा बनाया जाता है। मध्य प्रदेश में ३० नम्बर से कम के सूत का उत्पादन

सूती वस्त्र उद्योग का विकास एवं प्रगति

वर्ष	मिलों की संख्या	तकुए (०००)	करघे (०००)	मिल क्षेत्र	हाथ करघा और शक्ति करघे का उत्पादन (१० लाख मीटरों में)	योग	सूत का उत्पादन (१० लाख किलोग्राम)	प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग (मीटर)
१९११	—	६,०११	८६	—	—	१२१	२८३	—
१९२१	—	७,२७८	१३६	—	—	१,३१५	३१२	—
१९३१	—	९,०७८	१७५	—	—	२,४५६	४२१	—
१९४१	—	१०,०२६	२००	—	—	३,४४५	४२१	—
१९४७	—	१०,३५१	२०३	—	—	३,५०९	६०३	—
१९५१	३७८	१०,९९९	१९५	३,७२७	१,०१३	४,७४०	५९१	१०·९९
१९५६	४१२	१२,०५१	१०३	४,८५२	१,६६३	६,५१५	७५८	१४·७१
१९६०	४७९	१३,५५०	२००	४,६१६	२,०१३	६,६२९	८००	१३·८०
१९६१	४७९	१३,६६३	१९९	४,७०१	२,३७२	७,०७३	८६२	१४·७४
१९६६	५७५	१६,११८	२०९	४,२३९	३,०९७	७,३३६	९०१	१३·७८
१९६७	६०९	१६,६६६	२०७	४,०९७	३,१७९	७,२७६	८९६	१३·३७
१९६८	६३५	१७,०८५	२०८	४,३६६	३,२५३	७,६१९	९६१	१३·८
१९६९	६४७	१७,४५०	२०८	४,१६८	३,६०७	७,७७५	९५३	१३·४
१९७०	६५६	१७,६७०	२०८	४,२५०	३,५६१	७,८११	९५५	१४·१
१९७१	६७०	१८,००४	२०८	३,९५७	३,३९९	७,३५६	८८१	१५·२
१९७२	६८३	१८,३३८	२०६	४,०५५	३,५४१	७,५९६	९०२	१४·१

१००%; उत्तर प्रदेश में ६५% और दिल्ली मे ८८% होता है। पिछले वर्षों में भारतीय मिलों के उत्पादन के स्वरूप मे परिवर्तन हुआ है। मोटे और मध्यम श्रेणी के कपड़े का उत्पादन क्रमशः घटने लगा है और उत्तम श्रेणी के कपड़े में वृद्धि हुई है क्योंकि छोटे रेशे वाली कपास का उत्पादन घटने लगा है। अधिकतर मिलो में अमरीकी कपास काम में लायी जाने लगी है और उपभोक्ताओं की रुचि मोटे कपड़ों की अपेक्षा महीन, ब्लीच और मरसराइज्ड तथा छपे कपड़े की ओर उन्मुख होने लगी है।

मारतीय मिलों में लट्ठा, छींटें, साड़ियाँ, पोपलिन, क्रेप, ट्विल, धोतियाँ, चादरें, मलमल, वायल, डोरिया, कमीज-पैण्ट और कोट के उपयुक्त कपड़े, ड्रिल, खाकी, सैटीन, गैवरडीन, कार्डूराय तथा दोमूती कपड़ा बनाया जाता है।

१९५०-५१ में भारतीय मिलों में ५३ करोड़ किलोग्राम सूत और ३४० करोड़ मीटर कपड़ा बनाया गया। १९७०-७१ में यह मात्रा क्रमशः ९६ करोड़ किलोग्राम और ४१६ करोड़ मीटर थी। १९७१-७२ में ९० करोड़ किलोग्राम सूत और ४० करोड़ मीटर कपड़ा बनाया गया। १९७३-७४ में ७८० करोड़ कपड़ा तैयार किया गया। १९७८-७९ में १,००० करोड़ मीटर कपड़ा बनाये जाने का अनुमान है। इसके लिए ५८ करोड़ किलोग्राम सूत की अतिरिक्त आवश्यकता है।

भारत के कपड़े की खरीद अरब गणराज्य, सूडान, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका, इथोपिया, अदन, इगलैण्ड, बर्मा तथा मलयेशिया में कम हो रही है। इन देशों में जापान का कपड़ा अधिक खपने लगा है। भारत से निर्यात मे कमी होने का मुख्य कारण यहाँ उत्पादन व्यय का अधिक होना, आयात सम्बन्धी कठोर नियन्त्रण तथा कई देशों में आर्थिक विकास के फलस्वरूप उनकी मुद्रा के निर्यात पर नियन्त्रण होना है। फिर भी भारत से कपड़ों का निर्यात मुख्यतः अदन, बर्मा, सूडान, केनिया, तजानिया आस्ट्रेलिया, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान, श्रीलंका, सिंगापुर, आदि देशों को होता है। जो कपड़ा इन देशों को निर्यात होता है उसमें लट्ठा, चादरें, कमीज का कपड़ा, मलमल, वायल, छींट, कोट का कपड़ा, खादी तथा धुला और बिना धुला मोटा कपड़ा होता है।

सूती कपड़े के निर्यात की कुछ महत्वपूर्ण बातें यह हैं. (१) भारत का अधिकांश निर्यात दक्षिणी पूर्वी अफ्रीका, ईराक, ईरान, श्रीलंका, अदन, बर्मा, सीरिया, थाईलैण्ड और अरब देशों को होता है। (२) हमारे कुल निर्यात का ९०-९२% भाग मोटा और मध्यम श्रेणी का कपड़ा होता है जिसे आयातक देश पुनर्निर्यात के लिए मॅगवाते हैं। (३) निर्यात का बहुत कम भाग रंगा या छपा और अन्य प्रकार से भेजा जाता है। १९६०-६१ में ५८ करोड़ रुपये का कपड़ा निर्यात किया गया; १९७०-७१ में यह निर्यात ९७ करोड़, १९७१-७२ में ९७ करोड़ और १९७२-७३ में १२९ करोड़ रुपये का हुआ।

उद्योग का स्थानीयकरण

सूती वस्त्र उद्योग का स्थानीयकरण विशेषतः कच्चे माल, ईंधन, रसायन,

यन्त्र, मजदूर और कपड़े की माँग पर निर्भर है। इन कारणों में से किसी एक की प्रचुरता इस उद्योग के लिए पर्याप्त है। स्थापन की दृष्टि से रुई को शुद्ध रेशा माना जाता है क्योंकि निर्माण क्रिया में रुई के भार में अधिक अन्तर नहीं पड़ता। अतः यह आवश्यक नहीं कि सूती कपड़े के मिल रुई पैदा करने वाले क्षेत्रों के पास ही स्थापित किए जायें। यह उद्योग बाजार की समीपता से प्रभावित होता है न कि कच्चे माल की निकटता से।

यह उद्योग अधिकतर वहीं स्थापित किया गया है जहाँ श्रमिकों अथवा विस्तृत बाजार की सुविधा है। अतः इस उद्योग का महत्वपूर्ण क्षेत्र गुजरात एवं महाराष्ट्र राज्य हैं जहाँ देश के लगभग ५३% करघे और तकुए पाये जाते हैं। गुजरात, महाराष्ट्र, बम्बई और अहमदाबाद की मिलों से समस्त देशों के उत्पादन का प्रायः आधा सूत और दो-तिहाई वस्त्र मिलते हैं। इस उद्योग के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं :

(i) महाराष्ट्र और गुजरात,
(ii) मालवा का पठार (मध्य प्रदेश),
(iii) खानदेश और बरार (तापी तथा पूर्णा नदियों की घाटी में),
(iv) बम्बई-दक्कन (भीमा और कृष्णा नदियों के मध्यवर्ती भाग में),
(v) दक्षिणी तमिलनाडु,
(vi) पंजाब और हरियाणा में (सतलज नदी के निकटवर्ती भागों में),
(vii) गंगा की ऊपरी घाटी (दिल्ली से कानपुर तक का क्षेत्र),
(viii) पश्चिमी बंगाल (हुगली के निकटवर्ती क्षेत्र में)।

महाराष्ट्र-गुजरात राज्य सूती कपड़े के उद्योग में अग्रणी हैं। इसके निम्नांकित कारण हैं :

(१) सारा रुई पैदा करने वाला प्रदेश बम्बई बन्दरगाह का पृष्ठदेश है। इसीलिए सारी रुई विदेशी निर्यात के लिए बम्बई को आती है और बम्बई की मिलों के लिए रुई को माँग करने की आवश्यकता नहीं होती। लम्बे रेशे वाली रुई मिस्र और संयुक्त राज्य अमरीका से मँगवाने की भी सुविधा है। (२) बम्बई यूरोप का सबसे निकट का बन्दरगाह है इसलिए मिलों के लिए आवश्यक मशीनें और अन्य सामान इंगलैण्ड, जर्मनी, अमरीका, आदि देशों से मंगवाने की सुविधा प्राप्त है। (३) बम्बई समुद्र के किनारे स्थित है और नम मानसूनी पवनों के प्रवाह क्षेत्र में है इसलिए यहाँ की मिलों से सूत का धागा पतला और लम्बा आता है और बार-बार नहीं टूटता है। (४) बम्बई की मिलों को पहले पश्चिमी बंगाल के कोयले की खानों पर निर्भर रहना पड़ता था किन्तु अब पश्चिमी घाट पर स्थित टाटा जल-विद्युत योजना से सस्ती विद्युत शक्ति प्राप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त सामुद्रिक मार्ग द्वारा दक्षिणी अफ्रीका और इंगलैण्ड से भी कोयला मँगाया जा सकता है। (५) बम्बई देश का प्रधान व्यापारिक केन्द्र है। इसलिए अपने पृष्ठ देश द्वारा रेलों से जुड़ा है।

अतः तैयार माल भीतरी मार्गों को सुविधापूर्वक भेजा जा सकता है। (६) बम्बई में पूंजीपतियों का जमाव अधिक है। अतः नयी मिलों के लिए पूंजी काफी मात्रा में मिल जाती है। (७) बम्बई की मिलों में काम करने के लिए मजदूर कोंकन, सतारा, शोलापुर और रत्नागिरि जिलों तथा दक्कन, राजस्थान और उत्तर प्रदेश से आते हैं। (८) बम्बई के प्रमुख पारसी और भाटिया व्यापारियों ने विदेशी व्यापार में बहुत धन अर्जित किया था। विशेषतः चीन के साथ होने वाले कपास और अफीम के व्यापार में। अमरीकी गृहयुद्ध के कारण विदेशों को निर्यात की जाने वाली कपास की मात्रा बढ़ गयी
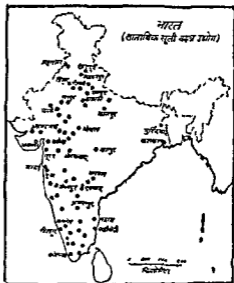
चित्र—१५'१

इसमें उन्हें काफी लाभ हुआ। इसी धन का उपयोग बम्बई में सूती कपड़े की मिलें खोलने में किया गया। (६) बम्बई के अधिकांश व्यापारियों को कपास के व्यापार का पूरा अनुभव था तथा उनका सम्बन्ध विदेशी कम्पनियों से होने के कारण इस उद्योग का भी अनुभव हो गया। इसके लिए पर्याप्त मात्रा में तान्त्रिक सहायता अंग्रेजी मशीन बनाने वाली फर्मों से मिल गयी।

इस प्रकार आरम्भ से ही बम्बई सूती वस्त्रों का प्रमुख केन्द्र हो गया है। मिलों की अधिकता तथा उत्पादन की विभिन्नता के कारण इसे सूती वस्त्रों की राजधानी (Cottonopolis) कहा जाने लगा है। बम्बई नगर और द्वीप में ६२ मिलें हैं। शेष महाराष्ट्र में ३७ मिलें हैं।

महाराष्ट्र में बम्बई के अतिरिक्त बरसी, अकोला, अमरावती, वर्धा, शोलापुर, पूना, हुबली, सतारा, कोल्हापुर, जलगाँव, सागली, बिलीमोरिया, नागपुर, आमलनेर, आदि नगरों में मिलें हैं।

महाराष्ट्र की मिलों में भीतरी क्षेत्रों की मिलों से स्पर्द्धा होने के कारण अब

अब बढ़िया कपड़ा ही अधिक बनने लगा है। इन मिलों में लट्ठा, मलमल, वायल, विभिन्न प्रकार की छींटें, चद्दर, 'टी क्लाथ', कमीजों के टुकड़े, धोतियाँ, आदि तथा कई प्रकार के रंगीन कपड़े बनाये जाते हैं।

गुजरात में कुल ११४ मिलें हैं जिसमें से ७२ मिलें अकेले अहमदाबाद में हैं। सबसे पहले अहमदाबाद में सन् १८५६ में कपड़े की मिलें स्थापित की गयीं। यहाँ इस उद्योग के लिए निम्न सुविधाएँ प्राप्त हैं :

(१) यहाँ साहसी व्यापारियों और सेठों की कमी नहीं है जिससे उद्योग के लिए पर्याप्त पूँजी मिल जाती है। (२) यह सौराष्ट्र और गुजरात के कपास उत्पादन केन्द्रों के मध्य में स्थित है अतः धौलेरा और भड़ौंच नामक उत्तम कपास बहुत मिल जाती है। (३) सौराष्ट्र तथा गुजरात के बन्दरगाहों द्वारा विदेशों से मशीनें आदि सुगमतापूर्वक मँगायी जा सकती हैं। (४) यहाँ बहुत प्राचीन काल से ही घरेलू धन्धे के रूप में कताई और बुनाई का उद्योग होता रहा है। अतः मिलों के लिए चतुर मजदूर मिलने की सुविधा है। (५) तैयार माल पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र में आसानी से भेजा जा सकता है। यहाँ के कपड़े की माँग दिल्ली, कानपुर और अमृतसर तक है। इन कारणों से अहमदाबाद भारत में सूती कपड़े बनाने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे पूर्व का बोस्टन कहते हैं।

अहमदाबाद में भी उत्तम और महीन कपड़ा अधिक बनाया जाता है विशेषतः छोटे रूमाल, धोतियाँ, शटिंग, कोटिंग, मलमल, वायल, आदि। कपड़े की किस्म के अनुसार अहमदाबाद में लकाशायर की मिलों की तरह 'मिस्री कपड़े' और बम्बई में 'अमरीकी कपड़े' अधिक बनाये जाते हैं।

धीरे-धीरे अहमदाबाद के अतिरिक्त नये मिल गुजरात में राजकोट, मोरवी, वीरमगाँव, कलोल, नवसारी, भावनगर, अजार, सिद्धपुर, नाडियाड, सूरत, भड़ौंच और बड़ौदा में स्थापित किये गये।

बीसवीं शताब्दी में महाराष्ट्र और गुजरात के बाहर भी अनेक नये मिल स्थापित किये। इसमें निम्न कारण सहायक हुए हैं .

(१) देश के भीतरी भागों में यातायात के साधनों का विकास हुआ जिससे इस उद्योग को भीतरी भागों में निकटवर्ती क्षेत्रों से कच्चा माल प्राप्त होने लगा। फलतः नागपुर, इन्दौर, कोयम्बटूर, बंगलौर, शोलापुर, आदि स्थानों में इस उद्योग का विकास हुआ। यह सभी केन्द्र कच्चे माल और तैयार माल की पूर्ति की दृष्टि से बड़ी लाभदायक स्थिति में हैं। (२) भीतरी भागों में पूँजी तथा व्यवस्था सम्बन्धी सुविधाएँ भी उपलब्ध हो गयीं। (३) भीतरी भागों में कई स्थानों पर विशेषकर रामानाथपुरम, तिरुनलवैली, सलेम, तिरुचिरापल्ली, पुदुट्टा, मदुराई, उज्जैन, हाथरस, ब्यावर, आगरा, भड़ौंच, आदि स्थानों पर मजदूरी अधिक मँहगी नहीं है।

पश्चिमी बंगाल में कलकत्ता के आसपास ४८ किलोमीटर की परिधि में २४

परगना, हावड़ा और हुगली जिलों में हुगली के किनारे पर सूती कपड़े की ४२ मिलें हैं। इस स्थापन के कारण ये हैं : (१) कलकत्ता बन्दरगाह समीप होने के कारण विदेशों से मशीनें और रुई आसानी से इन मिलों के लिए आ जाती हैं। (२) रानीगंज और झरिया की खानों से कोयला प्राप्त हो जाता है। रेलमार्गों और जल मार्गों का जाल-सा बिछा होने के कारण तैयार माल आसपास के स्थानों को भेजा जा सकता है विशेषतः असम, मनीपुर, त्रिपुरा, बिहार और उड़ीसा को। (३) कलकत्ता में पूँजी और अन्य व्यापारिक सुविधाएँ भी प्राप्त हो जाती हैं। (४) श्रमिक विशेषकर बिहार, उत्तर प्रदेश एवं असम से आ जाते हैं। (५) घनी जनसंख्या वाले प्रदेश के केन्द्र में होने से यहाँ कपड़े की माँग अधिक है। (६) यहाँ की जलवायु उद्योग के अनुकूल है तथा वर्ष भर ही सूती कपड़ा पहनने का मौसम रहता है।

इन्हीं सब कारणों से यहाँ सूती वस्त्रों के व्यवसाय की उन्नति हो पायी है। इसके मुख्य केन्द्र सोदपुर, पनिहाटी, सीरामपुर, गोरीग्राम, शिवपुर, पाल्टा, फुलेश्वर, सिलुआ, रिश्रा, बेलघरीया, सल्कीया, घुसेरी, आदि हैं। इन मिलों में भूरा और ब्लीच किया हुआ कई प्रकार का कपड़ा बनता है। पश्चिमी बंगाल में इस उद्योग की और भी उन्नति होने की आशा है क्योंकि निकटवर्ती प्रदेशों में सूती कपड़े की मिलों का अभाव है तथा कलकत्ता विश्व का सबसे बड़ा सूती कपड़े का बाजार है।

बंगाल के उद्योग की असुविधाएँ ये हैं : (१) यहाँ कच्चे माल की बहुत कमी है, अतः कपास काफी दूर से मँगवानी पड़ती है। (२) यहाँ के आरम्भिक पूँजीपतियों और व्यवसायियों ने जूट उद्योग के विकास की ओर ही अधिक ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त चाय, कोयला और यातायात के उद्योग में ही अधिक धन लगाया।

उत्तर प्रदेश का स्थान सूती वस्त्र उद्योग में चौथा है। यहाँ १९वीं शताब्दी के अन्त में उद्योग का विकास हुआ। उत्तर प्रदेश में यद्यपि मुरादाबाद, वाराणसी, आगरा, बरेली, अलीगढ़, मोदीनगर, हाथरस, सहारनपुर, रामपुर, इटावा, आदि स्थानों में सूती कपड़े की मिलें पायी जाती हैं किन्तु कानपुर इस उद्योग का प्रमुख केन्द्र है। सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में मिलों की संख्या ३१ है। इसे उत्तरी भारत का मानचेस्टर कहते हैं। इसके कारण ये हैं :

(१) यह गंगा की घाटी के कपास के क्षेत्र की सीमा पर है जहाँ से यहाँ कपास आती है। यह कपास छोटे रेशे वाली होती है अतः यहाँ मोटा कपड़ा ही अधिक बनाया जाता है। (२) यह नगर न केवल उत्तर प्रदेश के नगरों से ही मिला है वरन् अमृतसर, दिल्ली और कलकत्ता से भी उत्तम रेलों और सड़कों द्वारा जुड़ा है। अतः मिलों को मशीनें और रासायनिक पदार्थ सरलता से प्राप्त हो सकते हैं। (३) यह रानीगंज, झरिया और डाल्टनगंज की कोयले की खानों के निकट है। (४) उत्तर प्रदेश की अधिक जनसंख्या और कृषकों की अधिकता के कारण कपड़े की

माँग अधिक रहती है। (४) घनी जनसंख्या के कारण मजदूर सस्ते और अधिक परिमाण में मिल जाते हैं।

तमिलनाडु में सूती कपड़े की मिलों का आधिक्य है। इसका मुख्य कारण पायकारा योजना से सस्ती जल-विद्युत शक्ति और कपास का अधिक परिमाण में मिलना है। श्रमिक भी बहुत मिल जाते हैं। दक्षिणी भारत के मिल समस्त देश का १६% सूत बनाते हैं। तमिलनाडु में १४० सूती कपड़े की मिलें हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र मदुराई, कोयम्बटूर, सलेम, मद्रास, पेराम्बूर, तिरुनलवेली, तिरुचिरापल्ली, गुडियातम, तिरुपोंडू, रामानाथापुरम, तूतीकोरन, तजौर, काकीनाडा और ऐलोरा हैं। पाण्डिचेरी में ५ मिलें हैं।

आन्ध्र में सूती कपड़े की १६ मिलें हैं। मुख्य केन्द्र पूर्वी गोदावरी, गन्टूर, हैदराबाद, वारंगल, ताडेपल्ली और सिकन्दराबाद हैं।

केरल में १८ मिलें हैं। इस उद्योग के मुख्य केन्द्र त्रिवेन्द्रम (त्रिवेन्द्रम), क्विलोन, अलप्पानगर, अलवाये, चलापुरम, कानानोर, अलप्पी और पापिनीसेरी हैं।

कर्नाटक में २२ मिलें हैं। मुख्य केन्द्र बंगलौर, मैसूर, गुलबर्गा, बलारी, बेलगांव, देवनगरी और चित्तदुर्ग हैं।

मध्य प्रदेश की नर्मदा और पूर्णा नदियों की घाटी में कपास खूब उत्पन्न होता है तथा पिछड़ी जातियों की अधिकता से मजदूर भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं। वरोरा की खानों से कोयला मिल जाता है तथा चम्बल योजना से सस्ती जल-विद्युत। सूती कपड़े की मिलें रतलाम, रायपुर, इन्दौर, ग्वालियर, देवास, निमाड़, राजनन्दगांव, सतना, भोपाल, उज्जैन, बुड़नेरा, बुरहानपुर, जबलपुर और पुलगांव में हैं। यहाँ २६ मिलें हैं।

राजस्थान में यह उद्योग पाली, ब्यावर, विजयनगर, किशनगढ़, श्रीगंगानगर, भवानीमण्डी, भीलवाड़ा, उदयपुर, जयपुर और कोटा में केन्द्रित है। यहाँ कोयला बिहार की खानों से मँगवाया जाता है। चम्बल एवं भाखड़ा योजना से विद्युत-शक्ति प्राप्त की जाती है। कपास की प्राप्ति स्थानीय ही होती है। कपड़े की माँग भी यहाँ बड़े क्षेत्र की है। राजस्थान में १८ मिलें हैं।

हरियाणा-पंजाब में ११, उड़ीसा में ६, बिहार में ३, दिल्ली में ७ मिलें हैं। पंजाब-हरियाणा के मुख्य केन्द्र भिवानी, लुधियाना, अमृतसर तथा फगवाड़ा हैं। बिहार में पटना, गया, भागलपुर और मढ़ौरा मुख्य केन्द्र हैं।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि यद्यपि सूती वस्त्र उद्योग देश के विभिन्न भागों में केन्द्रित है किन्तु अभी भी कुल मिलों में से १३४ मिलें बम्बई और अहमदाबाद में तथा महाराष्ट्र और गुजरात दोनों में मिलाकर २१३ मिलें हैं। बम्बई और अहमदाबाद की मिलों में कुल देश के ३८% तकुए, ५२% करघे और ६०% श्रमिक लगे हैं।

यह उद्योग सबसे अधिक उस त्रिकोणाकार क्षेत्र में केन्द्रित है जो बम्बई, नागपुर, शोलापुर, इन्दौर और अहमदाबाद के कपास-उत्पादक क्षेत्रों को मिलाता है। इसी क्षेत्र से देश के वस्त्र के उत्पादन का ७५% प्राप्त होता है। इसके विपरीत सादिया, गोरखपुर जगदलपुर को मिलाने वाले क्षेत्र में केन्द्रीयकरण सबसे कम है।

उद्योग की विशेषताएँ

भारत के सूती वस्त्र उद्योग की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

(१) यह संगठित उद्योगों में सबसे बड़ा उद्योग है। इसके उत्पादन का वार्षिक मूल्य ७८० करोड़ रुपये से भी अधिक का होता है (जिसमें से ५२० करोड़ रुपये का कपड़ा और २६० करोड़ रुपये का सूत होता है)। (२) राष्ट्रीय आय में इस उद्योग का योगदान १०० करोड़ रुपये से अधिक का है। (३) इस उद्योग में लगभग १० लाख श्रमिक रोजगार पाते हैं (अर्थात् सभी उद्योगों में लगे श्रमिकों का २०%) जिन्हें पारिश्रमिक के रूप में २०० करोड़ रुपये मिलते हैं तथा २५ लाख श्रमिक हाथकरघा उद्योग और शक्तिचालित करघों में लगे हैं। (४) कपास का वार्षिक औसत उपभोग १० लाख गांठों का होता है। (५) इस उद्योग में मशीन उद्योग, मिल-स्टोर, रासायनिक पदार्थ, आदि उद्योगों का निर्मित माल औसतन ८० से,१०० करोड़ के मूल्य का खपता है। (६) इसके निर्यात से लगभग ५० से ६० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। (७) इस उद्योग की सबसे बड़ी आवश्यकता उद्योग के आधुनिकीकरण तथा मशीनों और यन्त्रों के नवीनीकरण तथा उत्पादन के विभिन्नीकरण करने की है जिससे भारतीय कपड़ा विदेशी बाजारों में अन्य देशों से प्रतिस्पर्द्धा कर सके।

उद्योग की समस्याएँ

(१) कपास का अभाव—भारतीय मिलों में विभाजन के उपरान्त और उसके पहले भी उत्तम किस्म की रुई का अभाव रहता था। कपास के बारे में दूसरी मुख्य बात उसका प्रति हैक्टेअर उत्पादन कम होना है। अतः खाद, उत्तम बीज और सिंचाई की सुविधाओं के विकास द्वारा उत्पादन बढ़ाया जाना चाहिए। पिछले कुछ समय से देश के विभिन्न भागों में ही लम्बे रेशे वाली कपास का उत्पादन बढ़ाया जा रहा है। इस समय पंजाब में L. L. ५४, दक्षिणी पूर्वी पंजाब में H. १४, महाराष्ट्र में १७०; C. २, खानदेश में Virnar १९७-३; अमरेली में C J. ७३; भड़ौंच में दिग्विजय; धारवाड़ में 'लक्ष्मी' और 'जलधर', तमिलनाडु में M. C. V. 1, तथा M. C. V. २; मध्य प्रदेश में H. ४२०, १३A; ५६A; कर्नाटक में M. A. ५; तथा आन्ध्र में गारोली किस्म की लम्बे रेशे वाली रुई सफलता प्राप्त कर सकी है।

छोटे रेशे वाली कपास के अन्तर्गत क्षेत्रफल ३०% से घटकर अब २०% हो गया है जबकि लम्बे रेशे वाली कपास का क्षेत्र २८% से बढ़कर ४१% हो गया

है। आवश्यकतानुसार अब भी लम्बी रेशे वाली कपास संयुक्त अरब गणराज्य, पाकिस्तान, सूडान, संयुक्त राज्य, आदि देशों से मँगवाई जाती है जिसका वार्षिक मूल्य ५० से ६० करोड़ रुपये तक होता है।

(२) भारतीय मिलों की उत्पादन शक्ति कम है और कपड़े का उत्पादन व्यय बढ़ जाता है। फलतः अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में भारतीय कपड़े को प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है। भारत में कपड़ा उत्पादन व्यय में श्रम का भाग २६·६% पड़ता है, जबकि इंग्लैण्ड और बेल्जियम में यह २४% तथा जापान में केवल १६% है। अतः कपड़े का उत्पादन मूल्य कम करने के लिए उद्योग का नवीनीकरण तथा आधुनिकीकरण करना आवश्यक है। इस कार्य के लिए १,००० करोड़ रुपये की आवश्यकता मानी गयी है। १९५१ से १९७२ के बीच इस मद पर केवल ५५० करोड़ रुपये खर्च किये गये। पुराने करघों के स्थान पर स्वचालित और आधुनिक ढंग के करघे लगाये जा रहे हैं। भारत में केवल ३६,००० करघे स्वचालित हैं अर्थात् कुल करघों का केवल १७·७%।

(३) अनार्थिक इकाइयाँ—भारत में अनेक मिलें अनार्थिक हैं। सूती वस्त्र उद्योग के *कार्यकारिणी संगठन के अनुसार वर्तमान स्थिति में वही मिल एक आर्थिक* इकाई माना जा सकता है जिसमें १२,००० तकुए और ३०० करघे हों। अनुकूलतम आकार की इकाई में २५,००० तकुए तथा ६०० करघे होने चाहिए। इस दृष्टि से भारत के १५० मिल *अनार्थिक* हैं। पूँजी के अभाव, कुप्रबन्ध और कच्चे माल के अभाव में ये मिल अनार्थिक हैं। जून १९७१ तक ६८४ मिलों में से १०३ मिलें बीमार घोषित की गयीं जिनका प्रबन्ध सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। इन मिलों में कुल करघों का २२·३%; तकुओं का १७·३% तथा श्रमिकों का १६·६% लगा था। अतः इन मिलों का *पुनर्गठन करके इनका पुनर्निर्माण करना चाहिए।*

(४) घिसी-पिटी मशीनें—जोशी समिति (१९५८) के *अनुसार* उद्योग की अधिकांश मशीनें ४० वर्ष से भी पुरानी हैं। बम्बई की मिलों की ६०% मशीनें २५ वर्ष पुरानी हैं। ऐसी मशीनों से न केवल उत्पादन व्यय बढ़ता है वरन् कपड़े की किस्म भी बिगड़ जाती है और श्रमिकों पर कार्य-भार अधिक पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि मिलों में *नयी मशीनें लगायी जायें।*

(५) विदेशी प्रतिस्पर्द्धा—विदेशों में भारतीय कपड़े को आधुनिकीकरण किये देशों की मिलों से कड़ी प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है जिसके फलस्वरूप भारत से कपड़े का निर्यात कम होने लगा है। विदेशी बाजारों में भारतीय कपड़ों की प्रतियोगिता बढ़ाने के लिए ये सुझाव हैं : (१) वस्त्र बनाने की मशीनों का आधुनिकीकरण तथा घिसी-पिटी मशीनों का बदलाव किया जाय। (२) बढ़िया किस्म के तथा छपे हुए और परिष्कृत कपड़ों के लिए निरन्तर अभियान चलाया जाय। (३) कच्ची रुई, मुखे रंग तथा विभिन्न प्रकार की कपड़ा मशीनों के आयात सम्बन्धी निर्भरता समाप्त की

जाय। (४) देश में ही लम्बे रेशे वाली रुई का उत्पादन उत्तरोत्तर बढ़ाया जाय। (५) संगठित और विकेन्द्रित क्षेत्रों में समीकरण भण्डारों की स्थापना की जाय। (६) उत्पादन के लागत ढांचे का युक्तियुक्तकरण तथा सुधार किया जाये। (७) मिल उद्योग और हाथकरघा उद्योग में अभी जो प्रतिस्पर्द्धा चल रही है उसे बन्द कर दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जाये।

जूट वस्त्र उद्योग
(JUTE INDUSTRY)

जूट को सोने का रेशा (Golden Fibre) कहकर पुकारा जाता है। कपास की भाँति जूट से भी खुरदरा और मोटे किस्म का कपड़ा तैयार करने में भारत प्राचीन काल से ही मुख्य देश रहा है। इससे टाट, बोरों और पर्दों का कपड़ा तैयार किया जाता था। अब इसके उत्पादन में आश्चर्यजनक विविधता आ गयी है। रंग-बिरंगे पर्दे, दरियाँ, फर्शी, बिछावन, सोफों के कपड़े, वाटरप्रूफ कपड़ों के अतिरिक्त प्लास्टिक, फर्नीचर, कम्बल, बिजली-निरोधक सामान और ऊन या कपास के साथ मिलाकर कपड़े तैयार करने में भी इसका व्यापक उपयोग होने लगा है। टाट की गाँठें पैक करने, अनाज को गोदाम में रखने या जहाजों पर लादकर विदेशों में भेजने के लिए भी बोरों और टाट का अधिक उपयोग होता है।

उद्योग का विकास और वर्तमान स्थिति

१९वीं शताब्दी के आरम्भिक काल में यह उद्योग कुटीर प्रणाली पर ही किया जाता था। उस समय भी जूट की वस्तुओं का निर्यात भारत से किया जाता था। भारत के जूट का उपयोग सन् १८३२ में डण्डी के कारखाने में किया जाने लगा था, किन्तु सन् १८५५ तक भी भारत में यह उद्योग कुटीर रूप में ही किया जाता था। सन् १८५५ में भारत में स्कॉटलैण्ड निवासी जार्ज ऑकलैण्ड द्वारा डण्डी से कुछ मशीनें और तान्त्रिक श्रम आदि की सहायता से कलकत्ता के निकट हुगली के किनारे रिश्रा नामक स्थान पर एक मिल स्थापित किया गया। इसकी उत्पादन क्षमता केवल ८ टन प्रतिदिन की थी। सन् १८५९ में बुनाई के लिए शक्तिचालित करघों का उपयोग किया जाने लगा। इसमें थैले, जूट के बोरे, टाट, बैडमिंटन जाल, आदि बनाये जाने लगे। सन् १८८२ तक २२ कारखाने स्थापित किये जा चुके थे जिनमें ४,७४६ करघे थे तथा २७ हजार श्रमिक कार्य कर रहे थे। ये सभी मिल सिराजगंज जिले से कच्चा जूट प्राप्त करते थे। सन् १९१४ में युद्ध के फलस्वरूप कारखानों की संख्या और उनका उत्पादन बड़ी तीव्र गति से बढ़ा। सन् १९१४ में ६४ कारखाने थे जिनमें २ लाख श्रमिक कार्य कर रहे थे। सन् १९२९ में कारखानों की संख्या ९५ और श्रमिकों की संख्या ३ लाख से अधिक हो गयी तथा करघों की संख्या ३६,०५० से बढ़कर ४०४,७७ हो गयी।

द्वितीय महायुद्धकाल में एक बार फिर उद्योग को बड़ा प्रोत्साहन मिला और मिलों की संख्या १०६ तथा करघों की ६६,००० हो गयी। सन् १९६१ में ११२ मिल

यातायात की सुविधा प्राप्त है। ये कच्चे जूट को मिलों तक पहुँचा देती हैं। जूट पहुँचाने के लिए श्रीरामपुर तक जहाज चलाये जाते हैं। (३) कारखानों के लिए कोयला रानीगंज और आसनसोल क्षेत्र से उपलब्ध हो जाता है जो यहाँ से केवल १३२ किलोमीटर दूर पड़ते हैं। (४) इस क्षेत्र में मिल-उद्योग से पहले ही जूट का कुटीर-उद्योग चालू था क्योंकि इसमें स्कॉटिश और अंग्रेजों द्वारा पूँजी लगायी गयी थी। इससे उत्साहित होकर यहाँ जूट उद्योग का विकास किया गया। (५) जूट

चित्र—१५·२

अधिकतर विदेशी व्यापार के लिए ही था। हुगली नदी और कलकत्ता का बन्दरगाह निर्यात के लिए सुविधाजनक थे। मशीनों और अन्य आवश्यक रसायन विदेशों से आयात किये जा सकते हैं। (६) कलकत्ता एक औद्योगिक केन्द्र है जहाँ विविध प्रकार के कारखाने पाये जाते हैं। अतः इनके लिए श्रमिक बिहार, उड़ीसा, असम, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु से भी आते हैं। अतः इस समय भी ६०% मजदूर इन्हीं राज्यों से यहाँ आते हैं। (७) यहाँ की नम और नरम जलवायु उद्योग के लिए उपयुक्त है। (८) कलकत्ता नगर में अनेक बैंक, बीमा कम्पनियाँ, आदि होने से क्रय-विक्रय की सुविधा रहती है।

इन्हीं कारणों से भारत में जूट का उद्योग हुगली नदी के उत्तरी किनारे, कलकत्ता से ५६ किलोमीटर ऊपर और त्रिवेणी से ४० किलोमीटर नीचे उलूबेरिया तक ६७ किलोमीटर लम्बी और ३½ किलोमीटर चौड़ी पट्टी में स्थापित हो गया

है। इस क्षेत्र में उद्योग की ६०% उत्पादन क्षमता पायी जाती है। इसमें भी सबसे अधिक केन्द्रीयकरण २४ किलोमीटर लम्बी पट्टी में ही पाया जाता है जो रिश्रा से नैहाटी तक फैली है। यहाँ के मुख्य केन्द्र बाली, बगरपाड़ा, रिश्रा, टीटागढ़, श्रीरामपुर, बजबज, शिवपुर, सल्किया, हावड़ा, श्यामनगर, बसबरिया, सिलुआ, बाटानगर, सियालदा, बेलूर, उत्तरपाड़ा, कचनपाड़ा, उलूबेरिया, काकिनाडा, बिरलापुर, नैहाटी, हुगलीनगर, जगतदल और बारकपुर हैं।

गंगा-सिन्धु के मैदान में ऊपरी भागों में जूट का उद्योग इसलिए उन्नति नहीं कर सका कि जलवायु की अनुकूलता और बन्दरगाहों के सामीप्य की दृष्टि से वे भाग अत्यन्त अनुपयुक्त हैं। किन्तु अब बिहार और उत्तर प्रदेश में कुछ मिलें स्थापित हो चुकी हैं क्योंकि खेती की उपज विशेषकर शक्कर भरने के लिए बोरों की यहाँ माँग अधिक है तथा यहाँ अन्य रेशे वाले पदार्थ भी पैदा किये जाते हैं फिर भी जूट के उत्पादन के अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में इन मिलों का कोई महत्त्व नहीं है।

उत्तर प्रदेश में तीन मिलें हैं। यह सहजहनवाँ और कानपुर में हैं। बिहार में कटिहार, दरभंगा और पूर्णिया में जूट की तीन मिलें हैं। आन्ध्र प्रदेश में भी नॉली-मारसा, चित्तवलसाह, गन्टूर और पूर्वी गोदावरी जिले में ४ मिलें हैं और मध्य प्रदेश में रायगढ़ में भी जूट मिलें हैं किन्तु पृष्ठभूमि के अभाव में ये उतनी उन्नत नहीं हो सकीं जितनी कि बंगाल की मिलें।

उद्योग की विशेषताएँ

जूट उद्योग की कुछ मुख्य विशेषताएँ ये हैं :

(१) यह भारत का सबसे प्रमुख विदेशी-विनिमय प्राप्त करने वाला उद्योग है। (२) जूट के बोरे और टाट बड़े मजबूत और टिकाऊ होते हैं। इनका उपयोग बार-बार किया जा सकता है तथा ये सस्ते होती हैं और इनमें कृषि पदार्थ भर कर अन्यत्र सरलता से भेजा जा सकता है। (३) चतुर नियन्त्रण, कुशल सचालन और सगठन की दृष्टि से यह सबसे अद्वितीय उद्योग है। (४) विश्व में सबसे अधिक केन्द्रीयकरण इसका भारत में पश्चिमी बंगाल में ही हुआ है। यहाँ विश्व के कुल जूट के करघों का ५६ प्रतिशत पाया जाता है। (५) इस उद्योग में लगभग ३ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिलता है तथा ६२ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है।

उद्योग की समस्याएँ

कई देशों में बोरे आदि बनाने के लिए कई नयी किस्म के रेशों का प्रयोग और प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है तथा कई देशों में आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, इससे उद्योग को काफी धक्का पहुँचा है। क्यूबा, इक्वेडोर और हॉलैण्ड में पाट की वस्तुओं के आयात पर रोक लगा दी गयी। जर्मनी, रूमानिया और

लिथूनिया मे पाट के सामान का आयात सरकारी आज्ञानुसार ही किया जा सकता था। जर्मनी ने ऊन और कोयला भरने के लिए पाट के थैलों का प्रयोग बन्द कर दिया। इटली में पाट के साथ अन्य देशी रेशे काम में लेने का प्रयत्न होने लगा। इन सब कारणों से बहुत से विदेशी राष्ट्रों में पाट की माँग कम होने लगी। माँग की यह कमी तीन रूपों में प्रकट हुई है : (१) आस्ट्रेलिया, कनाडा और अर्जेण्टाइना में अनाज को भण्डारों से वैसे ही जहाजों में लादने की प्रणाली ने बोरों की माँग कम कर दी। (२) बहुत से देशों में (युद्ध के कारण जब भारतीय माल मँगवाने की असुविधा हो गयी तो) पाट के बोरों के स्थान पर कागज, कपड़े, सन और पटुये के थैले काम में लाये जाने लगे, विशेषकर आस्ट्रेलिया, कनाडा, स्वीडेन, संयुक्त राज्य अमरीका और दक्षिणी अफ्रीका संघ में। (३) न्यूजीलैण्ड में टिनैक्स नामक रेशों से बने थैलों में ऊन भरा जाने लगा। रूस और अर्जेण्टाइना में अलसी के रेशों का प्रयोग बढ़ा। अफ्रीका में सिसल, मैक्सिको में हैनेक्वीन, कोलम्बिया में फिक, ब्राजील में कॅरोओ, स्पेन में एस्पार्टो घास, इटली में जूलीटस, जावा में रासेल, न्यूजीलैण्ड में टैनेक्स नामक पौधों के रेशों से बोरे बनाये गये हैं। जूट के अन्य प्रतिस्पर्द्धी मनीला हैम्प, बो-स्ट्रिंग हैम्प, नौक, बिम्ली जूट और बम्बई हैम्प हैं। किन्तु अभी तक भारत के जूट के बने बोरों से किसी भी अन्य प्रकार के बोरे लाभदायक सिद्ध नहीं हुए हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि जूट सस्ता होता है और इसके बने बोरों को बार-बार प्रयोग में लाया जा सकता है अथवा पुराने बोरों को बेचकर भी धन प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त किसी भी मौसम तथा किसी भी प्रकार इन्हें उठाया-रखा जा सकता है। अतएव इन्हीं गुणों के कारण अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में जूट के स्थान पर अन्य पदार्थों का स्थानापन्न किया जाना लाभदायक नहीं हो पाया है। (४) भारत में जूट का मूल्य अधिक होने तथा कच्चे जूट की पर्याप्ति मात्रा में प्राप्ति नहीं होने से जूट के माल का उत्पादन व्यय बढ़ जाता है। अभी भी देश में लगभग २०-२५ लाख गाँठों की कमी रहती है। यह कमी थाईलैण्ड और बंगला देश से कच्चा जूट आयात कर पूरी की जाती है। (५) जूट मिलों की पूरी क्षमता का उपयोग नहीं किया जा रहा है यह अनुपयुक्त क्षमता ६ से २२ प्रतिशत तक आँकी गयी है।

इसके अतिरिक्त पाट के रेशे के उपभोग की अनेक सम्भावनाएँ हैं। खोज से इसके नये उपयोग मालूम किये जा सकते हैं। भारतीय केन्द्रीय जूट समिति ने पाट के अनेक नये उपयोग ढूँढ निकाले हैं :

(i) भवन निर्माण एवं सजावट के कार्यों में—ताप निरोधक, प्लास्टिक की मेजों, कुर्सियों, कालीन, पर्दे, सोफा, आदि पर बिछाने के कपड़े, कम्बल, दीवारों पर टाँगने की वस्तुएँ, आदि।

(ii) यातायात—मोटर-गाड़ियों की गद्दी का कपड़ा, जल निरोधक ढक्कन, जीन, रस्सी, डोरी, डाड़ियों का कपड़ा।

(iii) उद्योग—बिजली प्रवाह निरोधक, प्लास्टिक को सुदृढ़ बनाने के लिए।

(iv) वस्त्र—चिकने एवं मुलायम धुले हुए रेशों को ऊन एवं सूत के साथ मिलाकर।

देश में जूट की माँग अधिक होने तथा उत्पादन कम होने से जूट की खेती बढ़ाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। ये प्रयत्न उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और केरल राज्य में सफल हुए हैं। जूट उत्पादक विभिन्न राज्यों की हलचलों का एकीकरण हेतु भारत सरकार ने एक केन्द्रीय देख-रेख संगठन स्थापित किया है। यह संगठन प्रति हैक्टेअर अधिक उपज करने, फसल की किस्म को सुधारने का ध्यान रखता है। इसके लिए यह अच्छे बीज, उर्वरक, खेती की अच्छी प्रणालियों, पौधों की रक्षा, डण्ठल सड़ाने के लिए अधिक तालाबों की व्यवस्था करने पर भी ध्यान देता है।

भारत सरकार ने इस उद्योग की उन्नति के लिए जूट जाँच आयोग की स्थापना की थी। इस आयोग ने ये सुझाव दिये हैं: (१) भविष्य में पाट की खेती बढ़ाने की अपेक्षा उसकी किस्म को सुधारने पर अधिक ध्यान दिया जाय। (२) नयी मिलों को खोलने की आज्ञा प्रदान न की जाय, क्योंकि इस समय जो मिलें हैं उनके पास ही पूरा काम नहीं है, अतः लक्ष्य यह होना चाहिए कि वर्तमान मिलें पूरा काम करें। (३) पटसन की बिक्री के बारे में बम्बई की East Indian Cotton Association की भाँति ही पटसन के लिए भी एक व्यापारिक संस्था स्थापित की जाय। (४) कलकत्ता में जूट के गोदामों का उचित उपयोग, काम के घण्टे घटाकर सप्ताह में ४५ घण्टे करने, विविध प्रकार का माल बनाने तथा उद्योग के विकास और उन्नति के लिए अपने साधनों पर निर्भर रहना, लाभांश कम रखना, आदि अन्य सुझाव दिये गये। (५) मशीनों को समय-समय पर बदला जाय तथा व्यय को घटाया जाय।

इस समय इस उद्योग के आधुनीकरण की जो योजना कार्यान्वित की जा रही है उसके फलस्वरूप पुराने ढंग के लपेटने वाले उपकरणों के स्थान पर अधिकांशतः अधिक शक्ति वाली नयी मशीनें लग जायेंगी और उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए और अधिक प्रौद्योगिक उपकरण लगाये जायेंगे। बुनाई की विधियों का आधुनीकरण करने के लिए या तो विद्यमान चौड़े करघों की कॉप चेन्जर्स और वार्प-स्टाप-मोशन जो अर्द्ध-स्वचालित चक्रकार करघों द्वारा उनका स्थान लिया जायेगा अथवा स्वचालित शटल-रहित करघों द्वारा उनका स्थान लिया जायगा। जूट के नये बाजारों और उसके उपयोग के नये क्षेत्रों का पता लगाया जायगा।

रेशमी वस्त्र उद्योग
(SILK TEXTILE INDUSTRY)

रेशमी उद्योग की प्राथमिक अवस्था रेशम के कीड़े को पालने की तथा दूसरी अवस्था रेशमी वस्त्रों के उत्पादन की है। रेशम के कीड़े पालने के उद्योग की दो

धाराएँ हैं : (१) कुटीर उद्योग पर कोयों (Cocoons) का उत्पादन करना, और (२) कच्चे रेशम का उत्पादन कारखानों में करना।
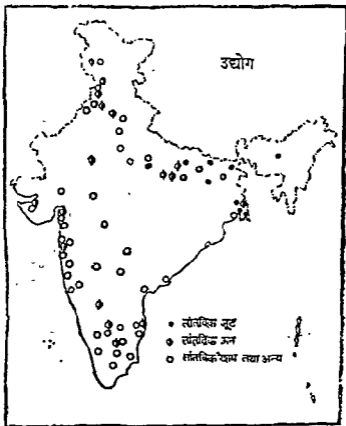
चित्र—१५·२

शहतूत के वृक्ष लगाने और रेशम के कीड़े पालने का कार्य दोनों साथ-साथ किये जाते हैं। भारत में रेशम के कीड़ों की चार जातियाँ पायी जाती हैं : शहतूत, टसर, एरी और मूंगा। देश का तीन-चौथाई शहतूती रेशम कर्नाटक से प्राप्त होता है, और शेष बंगाल, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, असम और हिमाचल प्रदेश से। गैर-शहतूती रेशम असम, बिहार, मध्य प्रदेश और उड़ीसा से प्राप्त किया जाता है। तमिलनाडु, कर्नाटक, जम्मू-कश्मीर, बंगाल, आदि राज्यों

के वृक्ष लगाये गये हैं। शहतूती रेशम का उत्पादन १९७२ में १८ लाख किलोग्राम का था जबकि गैर-शहतूती रेशम का ६ लाख किलोग्राम।

रेशम तैयार करने तथा उससे कपड़े बनाने का कार्य करने वाले १९३ कारखाने हैं जिनमें १,४०,९९६ तकुए लगे हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त कुटीर इकाइयों के अन्तर्गत भी यह उद्योग अधिक किया जाता है। रेशमी कपड़े का उद्योग कलापूर्ण एवं सुरुचिपूर्ण कपड़े तैयार करता है। मावा, ड्रिल, साटिन, क्रेप, जार्जेट, सलाइयों पर बुना हुआ कपड़ा, पैराशूट के हिस्से, टेलीफोनों और बेतार-रिसीवरों के बिजली विरोधक कॉयल, बोल्ड लगाने की कारों के टायर तो यह उद्योग तैयार करता ही है किन्तु इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के रेशमी अंगौछे, साड़ियाँ, दुपट्टे, वस्त्र, पर्दे, लुंगियाँ, बिछाने की चादरें और मेजपोश मुख्य रूप से तैयार किये जाते हैं।

भारत में रेशमी कपड़े कुटीर उद्योग के अन्तर्गत १७वीं-१८वीं शताब्दी से बनाये जा रहे हैं किन्तु आधुनिक मिल उद्योग का विकास २०वीं शताब्दी से ही आरम्भ होता है। कई कारणों से इस उद्योग की प्रगति धीमी रही है : (१) इसके उत्पादन में कलात्मक दृष्टि का अधिक महत्त्व है जो आधुनिक ढंग के कारखानों में सम्भव नहीं हो सकती। (२) कुशल मजदूर और उपयुक्त मशीनरी का भारत में अभाव रहा है। (३) अलग-अलग राज्यों में रेशमी वस्त्रों की माँग भी एक-सी नहीं है क्योंकि जगह-जगह की पोशाक और रुचि में भी बहुत अन्तर है। रेशमी वस्त्र विशेषकर दक्षिण भारत और उत्तर के धार्मिक केन्द्रों में ही अधिक व्यवहृत किये जाते हैं। इस उद्योग के मार्ग में कठिनाइयाँ आयी हैं। विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी; स्वर्णमान के परित्याग के बाद मुद्रा के मूल्यों में ह्रास; चीन, जापान, इटली, फ्रांस, आदि देशों के माल की प्रतिस्पर्द्धा तथा विभिन्न देशों की सरकारों द्वारा अपने-अपने देश के रेशम उद्योग को मिलने वाली सहायता के कारण भारत के रेशम उद्योग को पर्याप्त हानि हुई है।

उद्योग का स्थानीयकरण

आधुनिक ढंग के कारखाने मुख्यतः जम्मू-कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक और गुजरात में केन्द्रित हैं जहाँ कच्चा रेशम का उत्पादन और जनसंख्या की माँग अधिक है।

जम्मू-कश्मीर में १० कारखाने हैं। श्रीनगर में रेशम का सबसे बड़ा कारखाना है जो बिजली की शक्ति द्वारा कार्य करता है। रेशम के कीड़े पालने और रेशम की कुकड़ी बनाने के काम में चतुर तथा कुशल मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है और यहाँ इन कार्यों को करने वाले कुशल मजदूर मिल जाते हैं। यहाँ की सरकार भी इस उद्योग के विकास में बड़ी रुचि रखती है। यहाँ उत्तम प्रकार की रेशमी साड़ियाँ तथा सूट के कपड़े बनाये जाते हैं। ऊधमपुर, जम्मू, अनन्तनाग, बारामूला और रासली उद्योग के मुख्य केन्द्र हैं।

रेशम बुनने के अन्य मुख्य केन्द्र पंजाब में अमृतसर, जालन्धर तथा लुधियाना; उत्तर प्रदेश मे मिर्जापुर, वाराणसी, प्रतापगढ़, शाहजहांपुर; पश्चिमी बंगाल मे बांकुड़ा, मुर्शिदाबाद, विष्णुपुर, हावड़ा, पनीहाट्टी, सोनामुखी, चोबीस परगना और बरहामपुर; तमिलनाडु मे सलेम, तंजोर, तिरुचिरापल्ली, कोयम्बटूर और पाडिचेरी; महाराष्ट्र मे नागपुर, पूना, सागली, अम्बरनाथ, भण्डारा, चन्द्रपुर, हुबली, शोलापुर; गुजरात मे अहमदाबाद, सूरत, भावनगर, पोरबन्दर; बिहार में भागलपुर, गया, पटना, कर्नाटक मे बगलौर, बेलगांव, कोलार, कर्नाटक तथा चन्नापटना और आन्ध्र प्रदेश में चित्तूर, करीमनगर, वारगल, विशाखापट्टनम और अनन्तपुर हैं।

उद्योग की समस्याएँ

रेशम के उद्योग की कुछ समस्याएँ बड़ी विषम है। रेशम के उद्योग का विकास पूर्ण रूप से हो सके इसके लिए रेशम-कमेटी ने कई बातो मे सुधार करने के आदेश दिये हैं : यथा (१) शहतूत की खेती की उन्नति (क्योंकि रेशम का कीड़ा उसी पर रेंगता है)। (२) बढ़िया बीज की जो रोग-मुक्त हो, पर्याप्त मात्रा मे उपलब्धता। (३) रेशम के कीड़ो की बीमारियों का नियन्त्रण। (४) रेशम के कीड़े पालने, बीज तैयार करने, संगठन और बिक्री का प्रबन्ध। (५) रेशम कातने के उद्योग का विकास और उप-प्राप्ति का पूरा-पूरा उपयोग और उपर्युक्त सब मामलो मे विभिन्न राज्यो मे सहयोग।

इन सब दिशाओ में आवश्यक सुधार करने के लिए सन् १९४९ मे एक केन्द्रीय रेशम बोर्ड (Central Silk Board) की स्थापना की गयी। यह बोर्ड शहतूत, रेशम के कीड़े पालने तथा कच्चे रेशम के अटेरन में सुधार करने वाली योजनाओ के क्रियान्वयन हेतु रेशम के कीड़े पालने वाले विभिन्न राज्यो को वित्तीय और तकनीकी सहायता जुटाता है तथा रेशम के कीड़े पालने सम्बन्धी क्रिया-विधियों के अनुसन्धान के काम को विशिष्ट क्षेत्रों मे बढ़ावा देता है। रेशम के कीड़े पालने के गवेषणा केन्द्र बरहामपुर, चन्नापटना और कन्नावों (तमिलनाडु) में तथा रेशम के कीड़े की पुरानी फसलों को सुरक्षित रखने और नयी फसलें तैयार करने के लिए श्रीनगर मे केन्द्रीय रेशम अण्डा केन्द्र की स्थापना की गयी है। निर्यात के पूर्व रेशम को प्रमापीकरण करने के केन्द्र वाराणसी, बगलौर, नयी दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में चालू किये गये हैं।

भारत में रेशमी कपड़े मुख्यतः ब्लाऊज के कपड़े, पोशाक की सामग्री, बड़े स्माल, कलात्मक डिजाइनो वाले जरीदार वस्त्र, रोमन महिलाओं द्वारा ओढ़ा जाने वाला चोगा, आदि निर्यात किये जाते हैं। १९५५ में २३.९० लाख रुपये, १९६६ में १० लाख रुपये और १९७१ में १३ लाख रुपये के वस्त्र निर्यात किये गये।

रेशमी वस्त्रों का सबसे बड़ा ग्राहक श्रीलका है। उसके बाद सिंगापुर, हागकाग, मलयेशिया, पूर्वी अफ्रीका, संयुक्त राज्य अमरीका और पश्चिमी यूरोपीय देश हैं।

टैरिफ बोर्ड के अनुसार रेशम के उद्योग की उन्नति के लिए निम्न कार्य करने चाहिए :

(१) रेशम सम्बन्धी खोज के लिए पर्याप्त सुविधा और साधन की व्यवस्था; (२) विदेशी रेशम के कीड़ों के लिए एक केन्द्रीय बीज स्टेशन की स्थापना; (३) रेशम के कीड़ों के रोगों का कानून द्वारा नियन्त्रण; (४) रोगमुक्त बीजों का धीरे-धीरे अनिवार्य उपयोग, (५) चर्खे द्वारा रेशम की रील तैयार करने के काम में सुधार; (६) विदेशों में विशेषज्ञों द्वारा शिक्षा की व्यवस्था; (७) रेशम के उद्योग के लिए आवश्यक मशीनरी तथा दूसरा सामान प्राप्त करने में सरकार द्वारा सहायता आदि।

रेयन उद्योग
(RAYON INDUSTRY)

सन् १९३९ के पूर्व इस उद्योग से भारतीय प्रायः अपरिचित थे किन्तु जब सूती वस्त्र उद्योग को सरक्षण देने के निमित्त सरकार ने रेयन के वस्त्र पर आयात-कर बढ़ा दिया तभी से इस उद्योग का वास्तविक विकास बढ़ा है।

छलनी प्रणाली से रेयन तैयार करने का पहला कारखाना ट्रावनकोर रेयन लि०, रेयनपुरम (केरल) सन् १९५० में और दूसरा कारखाना नेशनल रेयन कॉरपोरेशन लि०, कल्याण (महाराष्ट्र) में चालू हुआ। नकली रुई तैयार करने का कारखाना सन् १९५३ में और कताई प्रणाली से रेयन बनाने का कारखाना सन् १९५४ में चालू हुआ। यह कारखाना सिर सिल्क लि०, सिरपुर (आन्ध्र) में है। चौथा कारखाना सन् १९५४ में ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी के नाम से नागदा में खोला गया। इसके बाद द्वितीय योजनाकाल में बम्बई में सेन्चुरी रेयन मिल, कानपुर में जे० के० कॉरपोरेशन तथा कलकत्ता में केशोराम कॉटन मिल्स की स्थापना की गयी।

प्रथम योजनाकाल में रेयन के केवल तीन मिल थे जिनकी उत्पादन क्षमता २·२ करोड़ पौण्ड रेयन के सूत की थी। १९६१ के अन्त में सब मिलाकर ६ इकाइयाँ थीं जिनकी कुल उत्पादन क्षमता ५ २ करोड़ पौण्ड की हो गयी। सन् १९७२ में १० इकाइयाँ कार्य कर रही थीं। इस उद्योग में ५० करोड़ रुपये की पूँजी लगी है और लगभग ३ लाख मजदूर काम करते हैं। इसमें ४५,००० शक्तिचालित करघे और ७४,००० हस्तचालित करघे कार्य कर रहे हैं।

छलनी प्रणाली की रेयन कारखानों में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख कच्चे माल हैं—लुग्दी, कास्टिक सोडा और गंधक। एक पौण्ड रेयन बनाने के लिए १ १५ पौण्ड लुग्दी, १ पौण्ड कास्टिक सोडा और ०·६ पौण्ड गंधक की आवश्यकता होती है। इस समय भारत रेयन बनाने के लिए इन सभी कच्चे मालों का आयात कर रहा है।

इस समय विस्कोस-धागा तैयार करने वाली इकाइयाँ ये हैं :

इण्डियन रेयन्स	वेरावल (गुजरात)
साउथ इण्डिया विस्कोस लि०	मेतुपलायम (तमिलनाडु)
नेशनल रेयन्स (कॉरपोरेशन)	कल्याण (महाराष्ट्र)
बड़ौदा रेयन्स	बड़ौदा
सैन्चुरी रेयन्स	बम्बई
जे० के० रेयन्स	कानपुर
ट्रावनकोर रेयन्स	रेयनपुरम (केरल)
दिल्ली क्लाथ मिल्स	दिल्ली

रेयन से मोजे, साड़ियाँ, शटिंग, चद्दरें, बनियान, टाइयाँ, तथा पैराशूट का कपड़ा बनाया जाता है। सौन्दर्य, मजबूती तथा सस्तेपन के कारण यह अब बहुत लोकप्रिय हो गया है।

ऊनी वस्त्र उद्योग
(WOOLLEN TEXTILE INDUSTRY)

ऊनी वस्त्र उद्योग के अन्तर्गत चार क्षेत्र शामिल किये जाते हैं : (१) सगठित मिल क्षेत्र, (२) कुटीर क्षेत्र, (३) मोजे और बनियान बनाने वाली इकाइयाँ (Hosiery units), तथा (४) कुटीर उद्योग पर चलने वाले कारखाने।

सगठित मिल क्षेत्र

भारत में सबसे पहली ऊन की मिल सन् १८७० में कानपुर में स्थापित की गयी जहाँ कच्चे माल और विस्तृत बाजार दोनों ही की सुविधा थी। दूसरी मिल सन् १८८३ में धारीवाल में खोली गयी और फिर बम्बई में सन् १८८२ में तथा बगलौर में १८८६ में अन्य ऊनी मिलें स्थापित हुईं। प्रथम महायुद्ध के बाद में ही ऊनी मिलों की सख्या में वृद्धि हुई। सन् १९३९ में ऊनी कपड़े की केवल १५ मिलें भारत में थीं। किन्तु द्वितीय महायुद्ध काल में यह सख्या बढ़कर २४ हो गयी। इनके अतिरिक्त ५० छोटे-छोटे कारखाने भी थे। इस उद्योग का वास्तविक विकास १९४७ और १९६१ के बीच ही हुआ है। सन् १९७० में कुल १०२ मिलें थीं। ये मिलें गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब-हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बगाल, काश्मीर और कर्नाटक में हैं। देश की प्रमुख ऊनी मिलें निम्नांकित हैं :

रेमण्ड वूलन, श्री दिनेश, श्री दिग्विजय, बगाल नेशनल टैक्सटाइल्स, मोडेला वूलन, भारत वूलन।

मिल उद्योग में सूत कातने और कपड़ा बुनने की इकाई सम्मिलित की जाती है। इसमें ९७ करोड़ रुपये से ऊपर की पूँजी विनियोजित है तथा लगभग १ लाख

श्रमिकों को रोजगार मिलता है। कपड़े और सूत के उत्पादन का मूल्य लगभग ८० करोड़ रुपये का होता है। यह उद्योग तीन उद्देश्यों की पूर्ति करता है, सैनिक आवश्यकताएँ, विदेशों को निर्यात और देश में उपयोग की। १९५७ से १९७० के बीच तकुओं की संख्या १,९६,२३६ से बढ़कर २,३६,६०८ और शक्तिचालित करघों की संख्या २,५०० से बढ़कर ३,२०० हो गयी।

इन मिलों में विभिन्न प्रकार के सूत का उत्पादन ११६·० लाख किलोग्राम से बढ़कर १६५ लाख किलोग्राम हो गया। भारत में ४ करोड़ भेड़ों से लगभग ३०० लाख किलोग्राम ऊन मिल जाता है। यह मोटे कपड़े, गलीचे और कम्बल बनाने के लिए उपयुक्त होता है। भारत में मिलों द्वारा तैयार किये गये सूत का उपयोग कपड़ा बनाने के लिए किया जाता है। १९५५-५६ में ऊनी कपड़े का उत्पादन १३३ लाख मीटर था। १९६५-६६ में यह ६२ लाख मीटर और १९७१-७२ में १३६ लाख मीटर हुआ।

उत्पादन

ऊनी वस्त्र उद्योग की प्रमुख क्रियाएँ ये हैं: (i) कच्ची ऊन की छटाई, (ii) धुलाई तथा सफाई, (iii) कताई और बुनाई। ऊन के लच्छे बनाने के लिए कच्ची ऊन की सफाई अपेक्षित होती है जिससे इन लच्छों का उपयोग ऊनी वस्त्र उद्योग के वर्स्टेड कताई अनुभाग द्वारा किया जा सके। कताई के दो तरीके होते हैं: उच्च कताई तथा घटिया कताई।

कताई के मिलों में काम आने वाले ऊन को निम्न प्रकार से बाँटा जाता है:

(१) साधारण भारतीय ऊन (मोटी ऊन) जो कालीन और गलीचे बनाने के काम आती है। उम्दा ऊन ट्वीड, रग, सर्ज, सूत और ओवरकोट का कपड़ा बनाने में प्रयुक्त की जाती है।

(२) पहाड़ी ऊन हल्के प्रकार के होजरी के सामान तथा फौज के लिए कम्बल, ओवर कोटिंग तथा हल्के शाल बनाने में काम आती है।

(३) बोगली ऊन वर्स्टेड, ट्वीड और मध्य प्रकार के होजियरी सूत बनाने में।

(४) मेरीनो ऊन फ्लैनेल, गैबरडीन, बैडफोर्ड तथा उत्तम ऊनी कपड़े बनाने में।

भारत में ऊन से तीन प्रकार का सूत बनाया जाता है। वर्स्टेड सूत (worsted yarn) जिसका उपयोग उत्तम किस्म के कपड़े, होजियरी की वस्तुएँ तथा शाल बुनने में किया जाता है। ऊनी सूत (woollen yarn) जिसका उपयोग मध्यम श्रेणी की वस्तुएँ, गलीचे, कम्बल, ट्वीड तथा कोट-पेंट के कपड़े बुनने में होता है। शाडी सूत (*shoddy yarn*) जो मुख्यतः कम्बल बनाने में काम में लाया जाता है।

भारत में ऊनी कपड़े की माँग अधिक होने से कपड़ा आदि विदेशों से आयात किया जाता है। भारत से गलीचे, कालीन तथा ऊनी कपड़े का निर्यात मुख्यतः आस्ट्रेलिया, कनाडा, इंगलैण्ड, संयुक्त राज्य अमरीका को होता है। विदेशों से होजियरी ऊनी और वरस्टेड कपड़े, शाल तथा लोइयाँ आयात भी की जाती हैं।

उद्योग का स्थानीयकरण

कच्चे माल की पूर्ति और तैयार माल के बाजारों के दृष्टिकोण से पंजाब, हरियाणा, कश्मीर तथा महाराष्ट्र की स्थिति बहुत अनुकूल है। इन्हीं क्षेत्रों में ऊनी उद्योगों के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र स्थापित हो गये हैं। उत्तर प्रदेश में कानपुर में लाल इमली मिल्स और पंजाब में धारीवाल में न्यू इजरटन मिल्स हैं। यहाँ ऊनी मिलों के स्थापन होने का मुख्य कारण आस-पास के गाँवों में ऊन का बहुतायत से मिलना है। बम्बई में ऊनी मिलों का होना अपवादस्वरूप है। देश के भीतरी मिलों की आवश्यकता पूरी करने के लिए जो ऊन विदेशों (इटली, इंगलैण्ड, आस्ट्रेलिया) से आती है वह बम्बई के बन्दरगाह पर उतारी जाती है। बम्बई में यही ऊन काम में ली जाती है। बम्बई के दो बड़े मिलों में (बम्बई वूलन मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी तथा रेमण्ड वूलन मिल्स) क्रमशः १० प्रतिशत और १५ प्रतिशत मजदूर काम करते हैं। बंगलौर, बड़ौदा, श्रीनगर, अमृतसर और मिर्जापुर में भी ऊन के कारखाने हैं।

शक्ति की दृष्टि से कानपुर और मिर्जापुर दो ही ऐसे मिल हैं जिन्हें बिहार से कोयला मिल सकता है। अन्यथा शेष महाराष्ट्र, पंजाब, कर्नाटक तथा कश्मीर के मिलों को पूर्णतः विद्युत शक्ति पर ही निर्भर रहना पड़ता है। भारतीय ऊन की मिलों को एक कठिनाई का और सामना करना पड़ता है और वह यह है कि गरम कपड़ों की माँग देश में केवल शीत ऋतु में ही होती है। अतः वर्ष के शेष भाग में मजदूरों को मिलों में काम नहीं मिल सकता। कुछ मिल तो सरकारी ठेकों पर निर्भर रहते हैं जिससे वे पूरे वर्ष कुछ कार्य करते ही रहते हैं।

ऊनी होजियरी उद्योग

इस उद्योग से सम्बन्धित लगभग ६०० छोटी इकाइयाँ हैं जिनमें से ८०० के लगभग पंजाब और हरियाणा में केन्द्रित हैं और शेष उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, दिल्ली और महाराष्ट्र में। इनमें स्वेटर, मफलर, ऊनी बनियान, मोजे, सर्ज, शाल-दुशाले, आदि बनाये जाते हैं।

ऊनी कालीन और नमदा उद्योग (Woollen Carpets and Felt Industry)

ऊनी कालीनों और नमदों का उद्योग देश का एक महत्त्वपूर्ण हस्त-शिल्प उद्योग है जिसके अन्तर्गत सादे, नमूनेदार, नक्काशीदार तथा बेलबूटेदार ऊनी कालीन और फर्शी बिछावन तैयार किये जाते हैं। इनके कुल उत्पादनों का ६० प्रतिशत निर्यात किया जाता है। इस समय इनको तैयार करने वाले २४० कारखाने हैं जिनमें १,९०० श्रमिक कार्य करते हैं।

ऊनी कालीन बनाने वाले प्रमुख केन्द्र ये हैं :

उत्तर प्रदेश	:	मिर्जापुर, भदोही, गाजीपुर, धमरिया, शाहजहाँपुर, आगरा।
राजस्थान	:	जयपुर, ब्यावर, गोविन्दगढ़, बीकानेर।
जम्मू-कश्मीर	:	श्रीनगर।
आंध्र प्रदेश	:	एलरू, वारंगल।
हरियाणा	:	अमृतसर, पानीपत।
बिहार	:	ओबरा, दाऊदनगर।
मध्य प्रदेश	:	ग्वालियर।
कर्नाटक	:	बंगलौर, कर्नाटक, बेलारी।

इस उद्योग में देशी और विदेशी कच्ची ऊन तथा हाथ-कते और मिल-कते दोनों ही प्रकार के ऊनी सूत का प्रयोग किया जाता है।

भारतीय कालीनों का सबसे बड़ा ग्राहक ब्रिटेन है। अन्य देशों की स्थिति क्रम से इस प्रकार है : संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, पश्चिमी जर्मनी, डेनमार्क, न्यूजीलैण्ड, नार्वे, स्विट्जरलैण्ड और रूस।

१९५६-५७ में १५ करोड़ रुपये के मूल्य का ऊनी माल निर्यात किया गया किन्तु उत्पादन में कमी होने से १९६४-६५ में १० करोड़ रुपये के मूल्य का ही रह गया। १९७२-७३ में ३३ करोड़ रुपये के मूल्य का ऊनी माल निर्यात किया गया।

देश में इस उद्योग के लिए उत्तम किस्म की कच्ची ऊन प्राप्त करने के लिए वर्णसंकर भेड़ों का विकास किया जा रहा है। उदाहरणार्थ :

(i) हिमालय क्षेत्र के पशुपालन अनुसन्धान केन्द्र में मेरीनो भेड़ की वर्णसंकर नस्ल तैयार की गयी है जिससे १·६ से १·८ किलोग्राम ऊन प्राप्त होता है जबकि देशी भेड़ से केवल ०·७ किलोग्राम ही। (ii) हिसार में बीकानेरी भेड़ों की नस्ल तैयार की गयी है। (iii) दक्षिण के प्रायद्वीप पर एक २ वर्ष की मेरीनो भेड़ों और देशी भेड़ों का मेल कराकर नयी नस्ल प्राप्त की गयी है जिससे प्रति भेड़ से १·५ किलोग्राम ऊन प्राप्त होता है जबकि देशी भेड़ से केवल ०·३ किलोग्राम। (iv) नीलगिरि में रोमानी मार्श भेड़ों से देशी भेड़ों का मेल कराकर वर्णसंकर जाति से १·३६ किलोग्राम ऊन प्राप्त किया गया है जबकि देशी भेड़ का उत्पादन केवल ०·४५ किलोग्राम ही है। (v) इसी प्रकार बढ़िया किस्म की बकरियों की नस्ल भी तैयार की जा रही है जिससे बढ़िया ऊन प्राप्त हो सके।

शक्कर उद्योग
(SUGAR INDUSTRY)

उद्योग का विकास एवं वर्तमान स्थिति

आधुनिक ढंग से शक्कर बनाने का उद्योग बीसवीं शताब्दी से ही उन्नत हो पाया है। इसके पूर्व सन् १८४१-४२ में उत्तरी बिहार में डच लोगों द्वारा तथा सन् १८६१

में अंग्रेजों द्वारा शक्कर फैक्टरियाँ स्थापित करने के प्रयास किये गये थे किन्तु वे असफल रहे। सन् १६०३ से इस उद्योग का वास्तविक विकास आरम्भ होता है। यद्यपि भारत गन्ने का आदि स्थान रहा है किन्तु फिर भी १६३१ के पूर्व तक शक्कर का आयात बड़ी मात्रा में विदेशों से किया जाता रहा। सन् १६३२ में जब इस उद्योग को संरक्षण दिया गया तभी से शक्कर के उत्पादन में प्रगति होने लगी। सन् १६३१ में केवल ३१ फैक्ट्रियाँ कार्य कर रही थीं जिनका उत्पादन १ ५८ लाख टन का था। संरक्षण के चार वर्षों के बाद मिलों की संख्या बढ़कर १३५ हो गयी है और शक्कर का उत्पादन ६·१६ लाख टन। इसके बाद से उद्योग का विकास भली-भाँति हुआ है। संरक्षण सन् १६५० में पूर्ण रूप से उठा लिया गया था। सन् १६५१ में भारत में शक्कर के १३८ कारखाने थे जिनकी उत्पादन क्षमता १५ लाख टन थी। इस वर्ष ११ लाख टन शक्कर तैयार की गयी। सन् १६५६ में कारखानों की संख्या १४३ हो गयी तथा उनकी उत्पादन क्षमता २१·४ लाख टन और वास्तविक उत्पादन १८·६२ लाख टन का था। सन् १६६१ में कारखानों की संख्या १७५ थी। इनमें से १४ कारखाने बन्द पड़े थे। उत्पादन की क्षमता २२½ लाख टन की थी जबकि वास्तविक उत्पादन ३०·२६ लाख टन का किया गया। १६६५-६६ में कुल २०० मिलें थीं जिनकी उत्पादन क्षमता ३५ लाख टन की थी किन्तु वास्तविक उत्पादन ३१·४ लाख टन का। १६७२-७३ में २२८ मिल थे जिनकी उत्पादन क्षमता ३५·६ लाख टन थी किन्तु उत्पादन ३७·७३ लाख टन का हुआ। १६७३-७४ में अनुमानित उत्पादन ४३ लाख टन का था। यह १६७८-७६ में बढ़कर ५७ लाख टन हो जाने का अनुमान है।

उद्योग का स्थानीयकरण

समस्त देश के लगभग ६५% कारखाने उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों में स्थित हैं जिनसे कुल उत्पादन का लगभग दो-तिहाई प्राप्त होता है। गंगा की मध्यवर्ती घाटी में ही इस उद्योग का विशेष रूप से केन्द्रीयकरण होने के निम्नांकित कारण हैं :

(१) गंगा नदी की घाटी की उर्वरा शक्ति अधिक है जिसमें लायी हुई मिट्टी में गन्ने के उत्पादन में बहुत कम व्यय होता है। भूमि अधिक उपजाऊ होने के कारण मुख्य गन्ने की मेखला में गन्ना बिना सिंचाई के पैदा किया जाता है। पश्चिमी भागों में नलकूपों द्वारा सिंचाई की सुविधा प्राप्त है।

(२) चूँकि गन्ना तोल में घट जाने वाला पदार्थ है (गन्ने में ६ से १२% शक्कर निकलती है। खेत काटने के २४ घण्टे के अन्दर ही यदि गन्ने को पेरा जाय तो अधिक शक्कर मिलती है) अतः इस प्रदेश के अधिकांश कारखाने ऐसे ही स्थानों में स्थित हैं जहाँ गन्ना शीघ्र ही प्राप्त हो सकता है।

(३) शक्कर बनाने के लिए गन्ना पेरने के बाद जो खोई (bagasse) बच रहती है उसी को भट्टों में जलाकर शक्ति उत्पन्न करते हैं। उत्तरी भारत में इस खोई

के अतिरिक्त बहुत से कारखानों को (जो तराई प्रदेश के निकट हैं) लकड़ी भी जलाने के लिए आसानी से मिल जाती है अतः कोयले के क्षेत्रों से दूर होने पर भी इनको शक्ति सम्बन्धी समस्याएं अधिक कठिनाई नहीं देतीं।

(४) शक्कर के कारखानों में श्रम की आवश्यकता को नहरों अथवा मजदूरों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

चित्र—१५·४
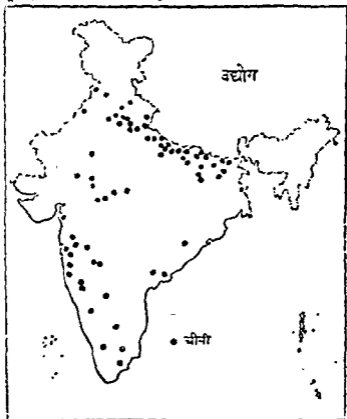
(५) शक्कर उद्योग में कुशल श्रमिकों की आवश्यकता बहुत कम होती है। अकुशल श्रमिक गाँवों में सस्ती मजदूरी पर सब जगह यथेष्ट संख्या में मिल जाते हैं।

(६) उपभोग के लिए विस्तृत बाजार भी पास ही हैं, अतः कारखानों से उपभोग के केन्द्रों तक शक्कर पहुँचाने में अधिक व्यय नहीं होता।

(७) उत्तर भारत में बड़े-बड़े चौरस मैदान हैं जिनमे गन्ने की फसलो के चक के चक बना दिये जाते हैं। यह बात आधुनिक बड़े-बड़े शक्कर के मिलो की माँग पूरी करने के लिए बहुत आवश्यक है जबकि दक्षिणी भारत मे जहाँ कि टूटे हुए पठार हैं (बम्बई-दक्कन के कुछ मिलों की जागीरों को छोड़कर) गन्ने की फसलो के घने चक कहीं नहीं पाये जाते। महाराष्ट्र और तमिलनाडु लगभग ६५% और ६७% तथा कर्नाटक और आन्ध्र मे १००% गन्ना सिंचाई द्वारा पैदा किया जाता है। इन क्षेत्रो में सिंचाई के साधन भी अत्यन्त सीमित हैं इसलिए यहाँ गन्ने के बड़े-बड़े चक नहीं बनाये जा सकते।

शक्कर के उत्पादन मे उत्तर प्रदेश का स्थान प्रथम है। यहाँ शक्कर की ७१ मिलें हैं। उत्तर प्रदेश में उपयुक्त भौगोलिक दशाओं के कारण ही शक्कर की मिलो का केन्द्रीयकरण हुआ है। यहाँ शक्कर की मिलो के दो विशिष्ट क्षेत्र है

(१) तराई क्षेत्र के अन्तर्गत गोरखपुर तथा रुहेलखण्ड कमिश्नरी के ऊपरी जिले आते हैं। इस क्षेत्र मे मुख्य केन्द्र इस प्रकार हैं :

जिला	केन्द्र
देवरिया	भटनी, बैतालपुर, गौरीबाजार, देवरिया, कैप्टेनगज, लक्ष्मीगज, *पडरौना, रामकोला, छितौनी, प्रतापपुर, खड्डा।*
गोरखपुर	सरदारनगर, पिपराइच, घुघली, आनन्दनगर, सिसवा बाजार।
बस्ती	बस्ती, वाल्टरगज, खलीलाबाद, मुन्दरवा।
गोंडा	नवाबगज, तुलसीपुर, बलरामपुर।
बाराबकी	बाराबकी, बरहावल।
जौनपुर	शाहगंज।
सीतापुर	हरगांव; महोली, बिसवाँ।
हरदोई	हरदोई।
बिजनौर	बिजनौर, धामपुर, स्योहारा।

(२) गंगा और यमुना के दोआब क्षेत्र के अन्तर्गत मेरठ कमिश्नरी के दक्षिणी-पश्चिमी जिले आते हैं। इस क्षेत्र के मुख्य शक्कर के केन्द्र ये हैं।

जिला	केन्द्र
सहारनपुर	सहारनपुर, लकसर, देवबन्द।
मुजफ्फरनगर	मनसूरपुर, खतौली, शामली।
मेरठ	मेरठ, दौराला, मुहीउद्दीनपुर, मोदीनगर, सिंभावली।
नैनीताल	किच्छा, काशीपुर।
मुरादाबाद	अमरोहा, मुरादाबाद।
बुलन्दशहर	बुलन्दशहर।
फैजाबाद	मोतीनगर।
एटा	नेवली।

कानपुर	कानपुर ।
पीलीभीत	पीलीभीत ।
बरेली	बरेली, बहेड़ी ।
इलाहाबाद	झूँसी-नैनी ।

बिहार राज्य का स्थान शक्कर के उत्पादन में दूसरा है। यहाँ शक्कर की २७ मिलें हैं। यह उद्योग विशेषतः उत्तरी बिहार में केन्द्रित है जहाँ सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, आदि जिलों में शक्कर की अनेक मिलें हैं। अब कुछ मिलें दक्षिणी बिहार में भी खोली गयी हैं; विशेषतः बिहटा, बक्सर, जामी और डालमियानगर में। इस प्रकार यहाँ निम्न जिलों में शक्कर की मिलें पायी जाती हैं :

जिला	केन्द्र
सारन	गोतलपुर, मरहोरा, महाराजगंज, पचरुखी, सिवान, सिधौलिया, सासामुसा, गोपालगंज, हथवा ।
चम्पारन	बड़ा चकिया, मोतीहारी, सुगौली, मझौलिया, चनपतिया, लौरिया, नरकटियागंज, हरिनगर, नारायणपुर ।
मुजफ्फरपुर	मोतीपुर, रीगा ।
दरभंगा	सकरी, लोहट, तारसराय, हसनपुर रोड ।
गया	गुरारू, वारसलीगंज ।
शाहाबाद	विक्रमगंज, डालमियानगर, बक्सर ।
पटना	बिहटा ।

महाराष्ट्र में मुख्यतः मनमाड़, पूना, नासिक, अहमदनगर, मिराजा, शोलापुर और कोल्हापुर जिलों में शक्कर बनाने की ३४ मिलें हैं। मुख्य केन्द्र मालेगनगर, श्रीपुर, हरगाँव, तिलकनगर, बेलवाड़ी, मस्करवाड़ी, लक्ष्मीवाड़ी, चगदेवनगर, रावलगाँव, कोल्हापुर, कित्तूर, उगर-खुर्द और ढोला है।

पश्चिमी बंगाल में चीनी की मिलें मुर्शिदाबाद जिले में बेलडांगा, नादिया जिले में प्लासी और चौबीस परगना में हावड़ा और बशीरघाट हैं।

तमिलनाडु में शक्कर की १५ मिलें हैं जो उत्तरी और दक्षिणी अरकाट, मदुराई, कोयम्बटूर और तिरुचिरापल्ली जिले में हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र क्रमशः नेलपट्टी, नेल्लीकुपम, पोराटूर और पुगालूर हैं।

आन्ध्र प्रदेश में १६ शक्कर की मिलें हैं जो मुख्यतः उत्तरी सरकार प्रदेश में स्थित हैं। यहाँ के मुख्य क्षेत्र बेजवाड़ा, हास्पेट, कोदे, सामलकोट, पीथापुरम, हैदराबाद, सीतानगरम्, बोबीली तथा अनाकापाले हैं।

मध्य प्रदेश में चीनी की मिलें सिहोर, डाबरा, जावरा, पालन्दा, सारंगपुर, महीदपुर, कोटरकोरा, आदि स्थानों में हैं।

पंजाब-हरियाणा में हमीरा, फगवाड़ा, अमृतसर, धुरी, भोगपुर, जगाधरी, रोपड़ और रोहतक में शक्कर की ८ मिलें हैं।

कुछ मिलें उड़ीसा (२), राजस्थान (२), केरल (३) तथा कर्नाटक (६) राज्यों में भी हैं।

पिछले कुछ समय से शक्कर के उद्योग का स्थापन दक्षिणी भारत में तमिलनाडु और आन्ध्र में भी होने लगा है। शेष विश्व के प्रतिकूल भारत ८० से ६० प्रतिशत गन्ना अर्द्ध-उष्णकटिबन्ध से प्राप्त करता है जहाँ सर्दी की ऋतु में तापमान कम रहने के कारण पतले किस्म का गन्ना पैदा होता है किन्तु दक्षिणी भारत पूर्णतः अयनवृत्तीय क्षेत्र में स्थित होने के कारण इसे उत्तरी भारत की अपेक्षा कुछ विशेष लाभ प्राप्त हैं; जैसे :

(१) अयनवृत्तीय क्षेत्र के गन्ने में अर्द्ध-उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र के गन्ने की अपेक्षा अधिक मिठास और रस की मात्रा प्राप्त होती है। साधारणतः यहाँ १० टन गन्ने से १ टन शक्कर बन जाती है। दक्षिणी भारत के कई क्षेत्रों में तो ६ टन गन्ने की आवश्यकता पड़ती है। (२) गन्ने से शक्कर बनाने का मौसम भी जलवायु सम्बन्धी कारणों से उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत में कुछ लम्बा होता है। उत्तरी भारत में औसत कार्यशील समय उत्तर प्रदेश में १४३ दिन और बिहार में १२७ दिन का है जबकि दक्षिणी भारत में तमिलनाडु में १७६ दिन, कर्नाटक में १३३ दिन और महाराष्ट्र में १४२ दिन का है। अतः दक्षिणी भारत में ऊपरी खर्चों का औसत भी घट जाता है तथा सहायक उद्योग स्थापित होने में भी सहायक होते हैं। (३) दक्षिणी भारत में चीनी के कारखाने गन्ना स्वयं पैदा करते हैं अतः आवश्यकतानुसार गन्ना प्राप्त किया जा सकता है। बहुत-से कारखाने चीनी के मौसम के बाद मूँगफली का तेल निकालने लगते हैं।

किन्तु दक्षिणी भारत के चीनी उद्योग ने अधिक विकास नहीं किया है क्योंकि (१) यहाँ गन्ने के छोटे-छोटे खेत होने से सिंचाई में बड़ी असुविधा रहती है। (२) इसके अतिरिक्त जिन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं वहाँ किसान के सम्मुख गन्ने के अतिरिक्त अन्य व्यापारिक फसलें मूँगफली, तम्बाकू, कपास, मिर्चें और केले हैं जो आपस में प्रतिस्पर्द्धा करती हैं। (३) अयनवृत्तीय क्षेत्र में गन्ना पैदा करने के खर्च और स्थानों की अपेक्षा अधिक हैं। महाराष्ट्र में सिंचाई व्यवस्था कठिन होने से यह खर्चा उत्तरी भारत से भी अधिक पड़ता है।

पश्चिमी बंगाल में शक्कर उद्योग के विकास के लिए उपयुक्त सम्भावनाएँ हैं। यह उत्तर प्रदेश और बिहार की अपेक्षा अच्छी स्थिति में हैं क्योंकि : (१) पश्चिमी बंगाल की जलवायु उत्तर प्रदेश और बिहार की अपेक्षा गन्ने के लिए अधिक अनुकूल है। (२) यहाँ गन्ने की प्रति एकड़ उपज अधिक है जबकि उत्तर प्रदेश और बिहार में गन्ने की प्रति एकड़ उपज १५ या १६ टन और पश्चिमी बंगाल में ३० से ४० टन है। (३) शक्ति के लिए कोयला मिल जाता है। रेलों द्वारा कोयला मिलों तक आसानी से लाया जा सकता है। (४) स्थानीय बाजार चीनी के उद्योगपतियों और उपभोक्ताओं दोनों के लिए लाभदायक है।

किन्तु पश्चिमी बंगाल के कई जिलों में गन्ने की प्रतिस्पर्द्धा में चावल, जूट, नील, आदि की पैदावार ने गन्ने के क्षेत्रों को काफी हानि पहुँचाई है। इसके अतिरिक्त बंगाल की मिलों को बाहरी स्पर्द्धा का भी सामना करना पड़ता है क्योंकि कलकत्ता के बन्दरगाहों द्वारा विदेशों से चीनी आयात की जा सकती है।

भारत की शक्कर के उत्पादन को तीन विभागों में बाँटा जा सकता है :

(१) आधुनिक शक्कर बनाने वाली मिलें जो मशीनों से गन्ना पेर कर दानेदार शक्कर बनाती हैं; (२) आधुनिक फैक्ट्रियाँ जो गुड़ से शक्कर बनाती हैं; और (३) शक्कर बनाने का पुराना तरीका जिसको खाँडसारी (Khandsari) शक्कर कहा जाता है। इन सबसे प्रथम प्रकार का शक्कर बनाने का तरीका उत्तम और सस्ता है। हमारे देश में अधिकांश शक्कर इसी तरीके द्वारा बनायी जाती है। पिछले कुछ वर्षों से भारतीय शक्कर के कारखानों और खाँडसारी से इतनी अधिक शक्कर उत्पन्न होने लगी है कि वह भारत की मांग से अधिक होती है अतः भारत अब शक्कर के मामले में आत्मनिर्भर हो गया है। मिलों में पेरे गये गन्ने के ५५ प्रतिशत से गुड़ और खाँडसारी शक्कर बनायी जाती है तथा २५ प्रतिशत से दानेदार शक्कर।

सहकारी क्षेत्र में शक्कर उद्योग

शक्कर उद्योग की एक प्रमुख विशेषता यह है कि १९५५-५६ से ही सहकारी क्षेत्र में मिलों की स्थापना की गयी है। १९६०-६१ में ३० मिलें स्थापित की गयी थी। १९६७-६८ में ५७ मिल थे जिनका उत्पादन ७ लाख टन था था।

१९६९-७० में शक्कर तैयार करने वाली कुल मिलें २१० थी जिनमें से ७१ सहकारी क्षेत्र में थीं। इनकी उत्पादन क्षमता १२ लाख टन की थी। ये मिलें मुख्यतः महाराष्ट्र (२३), गुजरात (५), केरल (२), तमिलनाडु (१२), आंध्र प्रदेश (६), हरियाणा (१), पंजाब (६), कर्नाटक (६), उड़ीसा (१) और पांडिचेरी (१) हैं। इनके मुख्य केन्द्र निम्न हैं :

महाराष्ट्र	सांगली, वराना, पचगंगा, अहमदनगर
आन्ध्र	कृष्णा, अकापाली
हरियाणा	पानीपत
गुजरात	कोडीनार
असम	बरुआबामुगाँव

इन मिलों ने अब गन्ने की छोई से कागज और दफ्ती, अलकोहल और मोम बनाने का कार्य भी आरम्भ किया है।

शक्कर उद्योग की कठिनाइयाँ

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि यद्यपि यह उद्योग सन् १९३१ में स्थापित हुआ था किन्तु वर्तमान में इसकी स्थिति अच्छी नहीं है। गन्ने के मूल्य किसानों की दृष्टि से सस्ते हैं अतः गन्ने के अन्तर्गत बोयी जाने वाली भूमि में कमी

आ रही है। यह कमी ३० से ३६% तक पायी गयी है। गन्ने की अपेक्षा कपास, मिर्च, और अन्य फसलें पैदा की जाने लगी हैं। उपभोग के लिए शक्कर की उपलब्ध मात्रा में कमी आ गयी है, समस्त लागत का १७ प्रतिशत भाग करों का होता है। इस उद्योग की प्रमुख कठिनाइयां ये हैं :

(१) भारत में प्रति हैक्टेअर गन्ने का उत्पादन बहुत ही कम है। हवाई और जावा में यह उत्पादन ५६ से ७२ टन का है, भारत में केवल १५ टन का है अतएव उत्तम किस्म के गन्ने के उत्पादन क्षेत्र को बढ़ाना आवश्यक है।

(२) भारतीय गन्ने में शक्कर की मात्रा भी कम होती है। औसतन प्रति हैक्टेअर २ टन शक्कर मिलती है जबकि हवाई और क्यूबा में यह मात्रा ८ और ७ टन की है। भारत के गन्ने में केवल १०% तक शक्कर की मात्रा होती है जबकि क्यूबा में १२% और आस्ट्रेलिया में १४%। अतः सुधरी किस्म का गन्ना बोना आवश्यक है।

(३) शक्कर का उत्पादन व्यय अधिक है। इसमें ६०% गन्ने का मूल्य और ११% कर भार होता है। प्रति हैक्टेअर कम उपज और गन्ने में शक्कर का प्रतिशत कम होने से यह लागत और भी अधिक हो जाती है। अतः लागत को कम करने के लिए छोई और शीरे से उप-प्राप्तियां (कागज, गत्ता, उर्वरक, अलकोहल) लेनी चाहिए।

(४) अधिकांश मिलों में उत्पादन यन्त्र बहुत ही पुराने हैं जिनका पुनर्स्थापन करना आवश्यक है। अभी नवीकरण के लिए अनुमानतः १०० करोड़ रुपये की आवश्यकता है।

(५) भारत की अनेक मिलें अनार्थिक हैं। आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होने के लिए एक मिल में लगभग १,२५० टन गन्ना प्रतिदिन पेरा जाना चाहिए। अनेक मिलों में यह मात्रा बहुत ही कम है, कुछ ही मिल २,००० से २,५०० टन गन्ना प्रति दिन पेर पाते हैं।

(६) न केवल मिलों का आकार अनार्थिक है वरन् उनकी उत्पादन क्षमता का भी पूरा उपयोग नहीं किया जाता। अधिकांश मिलें वर्ष में केवल ५-६ महीने ही चलती हैं और शेष समय में बन्द पड़ी रहती हैं अतः ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक है कि इन्हें नियमित रूप से गन्ना मिलता रहे तथा बाकी समय में तेल निकालने का कार्य इन्हीं यन्त्रों से लिया जाये।

(७) उद्योग का केन्द्रीयकरण कुछ ही राज्यों में हुआ है (जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, आदि) जबकि अन्य राज्यों में शक्कर उपभोग की मात्रा के अनुपात में मिलें नहीं हैं। २ करोड़ जनसंख्या वाले राजस्थान में केवल ३ मिलें हैं।

(८) विदेशी मुद्रा की प्राप्ति के लिए शक्कर का निर्यात १९६०-६१ से किया जाने लगा है किन्तु शक्कर का अन्तरराष्ट्रीय मूल्य भारत की अपेक्षा कम है। लागत अधिक होने से भारतीय शक्कर महँगी पड़ती है अतः सरकार द्वारा अनुदान

देकर देशी मूल्य और अन्तरराष्ट्रीय मूल्य के अन्तर की पूर्ति करनी पड़ती है। इससे देश को हानि उठानी पड़ रही है। देश की आवश्यकता के उपरान्त केवल २ लाख टन शक्कर तक निर्यात की जा सकती है, किन्तु निर्यात की मात्रा १९६६-६७ को छोड़कर प्रति वर्ष बढ़ती ही रही है।

१९६०-६१ में ५६,००० टन शक्कर निर्यात की गयी जबकि १९७२-७३ में ३·८० लाख टन का निर्यात किया गया।

वनस्पति घी उद्योग
(VEGETABLE OIL INDUSTRY)

वनस्पति घी तैयार करने का पहला कारखाना सन् १९३० में खोला गया। इसका उत्पादन २९८ टन का था। इसके पूर्व इसका आयात यूरोपीय देशों से किया जाता था। १९२८ में २३,८०० टन वनस्पति घी का आयात किया गया। देश में यह उद्योग स्थापित हो जाने से आयात पर शुल्क-कर लगा दिया गया जिससे इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला। द्वितीय महायुद्ध काल में सैनिक और असैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस उद्योग का प्रयत्न सराहनीय रहा और वनस्पति घी का उत्पादन सन् १९३९ में ५२,००० टन से बढ़कर सन् १९४६ में १,३५,००० टन हो गया। सन् १९४४ में सरकार ने उद्योग पर नियन्त्रण रखने हेतु वैधानिक कार्यवाही की जिसके अन्तर्गत वनस्पति घी उत्पादन नियन्त्रक की नियुक्ति की गयी और वनस्पति घी नियन्त्रण आदेश लागू किया गया। इसके द्वारा उत्पादन की किस्म को प्रतिमानित किया गया और नये कारखानों को स्थापित होने के पूर्व आज्ञापत्र लेना आवश्यक कर दिया गया। युद्ध के उपरान्त ५९ कारखानों को नये लाइसेंस दिये गये जिनकी उत्पादन क्षमता ४ लाख टन की थी। सन् १९५१ में ४८ कारखाने स्थापित हो चुके थे जिनकी उत्पादन क्षमता ३·३३ लाख टन तथा वास्तविक उत्पादन ०·७२ लाख टन का था। १९५५-५६ में कारखानों की संख्या ५८ हो गयी और उनकी उत्पादन क्षमता ४,४५,१०० टन। १९६६-६७ में कारखानों की संख्या घटकर ४२ हो गयी किन्तु उनकी उत्पादन क्षमता ५ लाख टन थी। १९५०-५१ में १·७ लाख टन उत्पादन हुआ था। १९६६-६७ में यह ३·६ लाख टन और १९७२-७३ में ५·० लाख टन का हुआ।

वनस्पति घी बनाने में विशेषतः मूँगफली, बिनौले और तिल के तेल का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त ब्लीचिंग मिट्टी, कास्टिक सोडा, निकल-कैटेलिस्ट, कृत्रिम विटामिन-ए की आवश्यकता होती है। ये सब भारत में मिल जाते हैं।

वनस्पति घी के कारखाने मद्रास, हॉसपेट, हैदराबाद, पालनपुर, आमलनेर, बड़ौदा, भीलवाड़ा, जयपुर, कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई बेलघरिया, कानपुर, गाजियाबाद, सिकन्दराबाद, कालीकट, रायेल, देवनगर, आदि स्थानों में हैं। मद्रास की Goverment Hydrogenation Factory सरकार के नियन्त्रण में है। उसकी क्षमता ३,००० टन की है।

भारत से वनस्पति घी का निर्यात मुख्यतः हिन्द महासागर के तटीय देशों को होता है। इन देशों में इसका उपयोग खाना पकाने में किया जाता है।

16

परिवहन के साधन
(MEANS OF TRANSPORT)

भारत में उन सभी परिवहन के साधनों का प्रयोग होता है जिनका किसी भी अन्य देश में होता है। देश के आन्तरिक परिवहन-पथ इस प्रकार हैं: कुल का ८५% सड़कें, ८% रेलें, ५% वायु-पथ और २% जलमार्ग हैं।

स्थल परिवहन
(LAND TRANSPORT)

सड़कें
(ROADS)

आदिकाल से ही भारत में परिवहन-पथों में सड़कों का महत्त्व अधिक रहा है। यह परिवहन के अन्य सभी साधनों का आधार-स्तम्भ है। यह रेल, जहाज एवं विमान का पूरक है। सड़क परिवहन के सर्वोपरि गुण उसकी लचक, सेवा का व्यापक क्षेत्र, माल की सुरक्षा, समय की बचत और बहुमुखी एवं सस्ती सेवा का होना है।

सड़कों के प्रकार (Types of Roads)

१९४३ की नागपुर सड़क योजना के अनुसार भारतीय सड़कों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है :

(१) राष्ट्रीय राजमार्ग (National Highways) समस्त देश को न केवल आर्थिक दृष्टि से ही बल्कि सैनिक दृष्टि से भी एक सूत्र में बाँध देते हैं। इन सड़कों द्वारा राज्य की राजधानियाँ, बड़े-बड़े औद्योगिक और व्यापारिक नगर तथा मुख्य-मुख्य बन्दरगाह आपस में एक-दूसरे से मिला दिये गये हैं। भारत को बर्मा, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान और तिब्बत से भी ये सड़कें मिलाती हैं। इन सड़कों की कुल लम्बाई २४,००० किलोमीटर है। ये अधिकतर पक्की (Surfaced) हैं। १९८०-८१ के अन्त तक इन सड़कों की लम्बाई ५१,२०० किलोमीटर होगी।

(२) राजकीय राजमार्ग (State Highways) राज्यों की प्रमुख सड़कें होती हैं जिनका महत्त्व व्यापार और उद्योग की दृष्टि से बहुत अधिक है। ये सड़कें राष्ट्रीय सड़कों द्वारा अथवा निकटवर्ती राज्यों की सड़कों से मिली हुई हैं। राज्य सरका

पर इन सड़कों के निर्माण और उनको ठीक दशा में रखने का दायित्व होता है। इस समय इन सड़कों की लम्बाई लगभग ५६,००० किलोमीटर है जिसे बढ़ाकर १९८०-८१ तक १,१२,००० किलोमीटर किया जायेगा।

(३) स्थानीय या जिले की सड़कें (Local or District Roads) जिले के विभिन्न भागों को आपस में जोड़ती हैं। बड़ी सड़कों तथा रेलों से भी उनका सम्बन्ध होता है। इनको बनाने का दायित्व जिला बोर्डों का होता है। इसमें से अधिकांश सड़कें कच्ची हैं जो वर्षा के दिनों में सर्वथा अनुपयुक्त हो जाती हैं। सड़कों की लम्बाई लगभग १,५२,३२० किलोमीटर है जो १९८०-८१ तक २,४०,००० किलोमीटर कर दी जायेगी।

(४) गाँव की सड़कें (Village Roads) विभिन्न गाँवों को आपस में एक दूसरे से मिलाती हैं। इनका सम्बन्ध निकटवर्ती जिले और राज्यों की सड़कों से भी होता है। प्रायः ये पगडण्डियाँ मात्र होती हैं जो अधिकतर ग्रामवासियों के सहयोग से ही निर्मित की जाती हैं। इनकी लम्बाई २,८८,४०० किलोमीटर है। १९८०-८१ में यह ३,६०,००० किलोमीटर होने की सम्भावना है।

नागपुर सड़क योजना के अनुसार देश में ६'४ लाख किलोमीटर लम्बी सड़कें बनाने का निश्चय किया गया था किन्तु विभाजन के उपरान्त इस योजना में आर्थिक साधनों, सड़क निर्माण सामग्री तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी के कारण संशोधन करना पड़ा। संशोधित योजना के अनुसार भारत में ५'२ लाख किलोमीटर लम्बी सड़कें बनाने का निश्चय किया गया। इसी को आधार मानकर योजनाकाल में काम किया गया है। अब तक जो प्रगति हुई है वह नीचे की तालिका में बतायी गयी है।

सड़कों का विकास[1]

(लम्बाई किलोमीटर में)

वर्ष	कच्ची	पक्की	योग
१९४७	२,४२,३७१	१,४५,८५५	३,८८,२२६
१९५१	२,४२,९२३	१,५७,०१९	२,९९,९४२
१९५६	३,१५,३२१	१,८३,०२३	४,९८,३४४
१९६१	४,७३,३३०	२,३५,७९०	७,०९,१२०
१९६६	५,५२,०००	२,८३,०००	८,३५,०००
१९६८-६९	७,७८,०००	३,९३,०००	११,७१,०००
१९६९-७०	७,८९,०००	४,००,०००	११,८९,०००
१९७०-७१	८,८०,०००	४,०७,०००	१२,८७,०००

[1] *India*, 1971, पृ. 282.

सोज, धनबाद, सासाराम, वाराणसी, इलाहाबाद, कानपुर, अलीगढ़, दिल्ली, करनाल, अम्बाला, लुधियाना, जलधर होती हुई अमृतसर तक जाती है। आगे यह लाहौर, वजीराबाद होती हुई पेशावर तक चली जाती है। इसका एक भाग जलंधर से श्रीनगर तक जाता है।

(२) **कलकत्ता-मद्रास रोड** कलकत्ता से खड़गपुर, सम्बलपुर, विजयनगरम्, विजयवाड़ा और गन्तूर होती हुई मद्रास तक गयी है।

(३) **बम्बई-आगरा रोड** बम्बई से नासिक, धुलिया, इन्दौर और ग्वालियर होती हुई आगरा तक जाती है। इसको ग्राण्ड ट्रंक रोड से मिलाने के लिए आगरा से अलीगढ़ तक सड़क बनी है।

(४) **ग्रेट दक्कन रोड** मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) से जबलपुर, नागपुर होती हुई हैदराबाद तक और उससे आगे गुण्टी होती हुई बंगलौर तक गयी है। नागपुर से छोटी-छोटी सड़कों द्वारा इसको दक्षिणी भारत की अन्य सड़कों से जो बम्बई-कलकत्ता को जाती हैं, मिला दिया गया है। इसी प्रकार मिर्जापुर से एक छोटी सड़क द्वारा इसे मार्धोसिंह के समीप ग्रांड ट्रंक रोड से मिलाया गया है।

(५) **बम्बई-कलकत्ता रोड** कलकत्ता से खड़गपुर, सम्बलपुर, रायपुर, नागपुर, धुलिया होती हुई आमलनेर स्थान पर बम्बई-आगरा रोड से मिल जाती है। नागपुर पर यह सड़क ग्रेट दक्कन रोड से मिलती है।

(६) **मद्रास-बम्बई रोड** दक्कन में बंगलौर, बेलगांव तथा पूना होती हुई बम्बई गयी है।

(७) **पठानकोट-जम्मू रोड** पठानकोट से जम्मू तक जाती है। वहाँ से इसका सम्बन्ध श्रीनगर जाने वाली सड़क से है। यह सड़क देश विभाजन के बाद कश्मीर से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बनायी गयी है।

(८) **गौहाटी-चेरापूँजी रोड** भी विभाजन के बाद ही गौहाटी से शिलाग होती हुई चेरापूँजी तक के लिए गयी है।

उपर्युक्त सड़कों के अतिरिक्त अन्य सड़कें निम्न हैं :

(१) पूर्णिया-दार्जिलिंग रोड। (२) बरेली-नैनीताल-अल्मोड़ा रोड। (३) हिन्दुस्तान-तिब्बत रोड जो अम्बाला-कालका-शिमला को जाती है। (४) पठानकोट-कुल्लू रोड। (५) मनीपुर-कोहिमा-इम्फाल-सिल्चर रोड। (६) देहरादून-मसूरी रोड। (७) पठानकोट-डलहौजी रोड। (८) मद्रास-कोजीकोड रोड। (९) मद्रास-ट्रावनकोर रोड। (१०) वाराणसी से रीवाँ, जबलपुर, नागपुर, हैदराबाद, कर्नूल, बंगलौर होती हुई कुमारी अन्तरीप जाने वाली सड़क। (११) दिल्ली, अलवर, जयपुर, अजमेर, आबू, पालनपुर, उदीसा होती हुई अहमदाबाद-बम्बई को जाने वाली सड़क। (१२) दिल्ली, जयपुर, अजमेर, ब्यावर, उदयपुर डूंगरपुर, अहमदाबाद, सड़क। (१३) दिल्ली-लखनऊ-गोरखपुर-मुजफ्फरपुर सड़क। (१४) जबलपुर-भोपाल-बीकानेर सड़क। (१५) आगरा-जयपुर-बीकानेर सड़क। (१६) शोलापुर-चितलद्रुग

इन सड़कों के अतिरिक्त कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, गोआ राज्यों की सरकारों ने भी तटीय मार्गों में सड़कों का निर्माण किया है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल और असम होती हुई एक १,६०० किलोमीटर लम्बी बरेली-अमीनगाँव सड़क का भी निर्माण किया गया है।

इन सड़कों के अतिरिक्त कुछ महत्त्वपूर्ण पहाड़ी सड़क मार्ग भी हैं जिनके द्वारा भारत का नेपाल, तिब्बत और बर्मा से सम्बन्ध है। एक मार्ग कश्मीर में लेह

चित्र—१६·१

से तिब्बत और चीन को जाता है। यह कराकोरम दर्रे में होकर निकलता है। दार्जिलिंग, नैनीताल और बेलिहा से भी तिब्बत को मार्ग जाते हैं। दूसरा मार्ग उत्तरी-पूर्वी असम में लीडो से बर्मा होता हुआ चीन में चूँगकिंग को जाता है। इन दोनों मार्गों पर यात्रा के लिए टट्टू, यार्क, खच्चर और पहाड़ी बैलों का ही उपयोग किया जा सकता है। ये मार्ग पक्के होने पर भी ऊँचे-नीचे और पर्वतीय क्षेत्रों में से निकलने

के कारण मोटरगाड़ियों द्वारा व्यवहृत नहीं किये जा सकते। तीसरा मार्ग भारत और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच अमृतसर से पेशावर जाता है। कश्मीर और भारत के बीच जवाहर सुरंग होकर पक्की सड़क पठानकोट को श्रीनगर से मिलाती है। मनाली से लेह जाने वाली सड़क ४,२७० मीटर ऊँचे मार्गों से होकर जाती है। इससे चण्डीगढ़ और लद्दाख के बीच की दूरी काफी कम हो जाती है।

सड़कों का भौगोलिक वितरण

यह आश्चर्यजनक बात है कि देश की कुल सड़कों का आधे से अधिक भाग दक्षिण के पठार पर है क्योंकि यहाँ सड़कें बनाने के लिए कड़ी चट्टानें पायी जाती हैं तथा धरातल पहाड़ी होने के कारण सड़कें उत्तरी भारत की अपेक्षा कठोर और सुदृढ़ होती हैं। अतः दक्षिणी भारत में पक्की सड़कें ही अधिक पायी जाती हैं जबकि उत्तरी भारत में पत्थरों की कमी होने से अधिकांशतः सड़कें कच्ची हैं। राजस्थान, मालवा के पठार और असम के पहाड़ी भागों में रेतीले मरुस्थल असमान धरातल अथवा वर्षा अधिक होने के कारण सड़कें बनाना बड़ा व्ययसाध्य हो जाता है। इसलिए सड़कों का अभाव पाया जाता है। गंगा के मैदानों में अच्छी सड़कों की कमी है क्योंकि लगभग प्रतिवर्ष नदियों की बाढ़ आ जाने के कारण सड़कें टूटती रहती है। यहाँ अधिकतर कच्ची सड़कें पायी जाती हैं।

बहुत-सी सड़कें बाढ़ के समय नष्ट हो जाती हैं। अतएव इन सड़कों पर वर्षा ऋतु में यात्रा करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। कभी-कभी तो नदियों पर पुल न होने के कारण गन्तव्य स्थान तक पहुँचने के लिए काफी लम्बा चक्कर लगाकर जाना पड़ता है। वर्षा ऋतु में सड़कों पर भारी बोझ ले जाना दुष्कर हो जाता है। अस्तु, अधिकांशतः कुली आदि के सिर पर रखकर ही सामान इधर से उधर ले जाया जाता है। सड़कों में कई जगह गड्ढे पड़े हैं जिनसे भी आने-जाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। गाँव की अधिकांश सड़कों द्वारा वर्षा ऋतु में आना-जाना नहीं हो सकता अतः वर्ष के इन दिनों में ग्रामों का सम्बन्ध नगरों से टूट-सा जाता है और इन पगडण्डियों पर केवल मनुष्य ही आ-जा सकते हैं।

सड़क यातायात

भारतीय आर्थिक जीवन में सड़कों का महत्त्व बहुत अधिक है।

भारतीय सड़कों पर अगणित पैदल यात्री, एक करोड़ पशु-वाहन, ३.२ लाख ट्रकें, ८६,००० सार्वजनिक सेवाएँ, ६.८ लाख व्यक्तिगत मोटर कारें तथा २ लाख के लगभग अन्य मोटरगाड़ियाँ चलती हैं। अकेली बैलगाड़ियाँ वर्ष भर में उतना ही माल ढोती हैं जितना कि रेलें। १९६५-६६ में भारत में सड़क परिवहन द्वारा वार्षिक यातायात का परिमाण ८,५०० करोड़ यात्री किलोमीटर और मोटर-ट्रेलों का ३,५०० करोड़ टन किलोमीटर आँका गया है। १९७०-७१ तक ६५० करोड़ टन किलोमीटर और १९७५-७६ तक १२,५०० करोड़ टन किलोमीटर माल ढोये जाने का अनुमान

है। भारतीय सड़कों एवं सड़क-परिवहन में लगभग १,८०० करोड़ रुपये की पूँजी लगी हुई है, जो भारतीय रेलों में लगी हुई पूँजी के समान ही है। पाँचवीं योजना के अन्तर्गत ट्रकों की संख्या ५,७५,००० तथा बसों की संख्या १,५०,००० की जायेगी।

बीस-वर्षीय सड़क विकास योजना

द्वितीय योजना के अन्त तक भारत में लगभग २३,८०८ किलोमीटर लम्बे राष्ट्रीय मार्ग, ५६,००० किलोमीटर लम्बी प्रान्तीय सड़कें, १,५२,३२० किलोमीटर लम्बी जिले की सड़कें और २,६८,४०० किलोमीटर ग्रामीण सड़कें आँकी गयी थीं जो यह प्रदर्शित करती हैं कि जहाँ राष्ट्रीय और प्रान्तीय सड़कों के क्षेत्र में हम नागपुर योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं वहाँ जिले और गाँवों की सड़कों के लक्ष्य आगे बढ़े हैं। अतः विभिन्न राज्य सरकारों के इंजीनियरों की एक समिति ने १९६० में एक २० वर्षीय (१९६०-१९८०) योजना निर्धारित की है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय सड़कों में १३२%; प्रान्तीय सड़कों में १००%, जिले की सड़कों में ८०% और गाँवों की सड़कों में ४३% की वृद्धि के लक्ष्य अपनाये गये हैं। सड़कों के विकास में उनके प्रतिरक्षात्मक महत्त्व के अतिरिक्त देश के विकसित और अविकसित कृषि और अन्य क्षेत्रों, प्रशासन कार्यालयों, तीर्थ स्थानों, पर्यटन क्षेत्रों, स्वास्थ्यप्रद प्रदेशों, विश्वविद्यालयों, सांस्कृतिक संस्थाओं, महत्त्वपूर्ण औद्योगिक एवं वाणिज्य केन्द्रों, बड़े रेल जंक्शनों तथा बन्दरगाहों का विशेष ध्यान रखा गया है।

बीस-वर्षीय योजना में इस प्रकार से प्राथमिकता रखी गयी है।

(i) समस्त मुख्य सड़कों पर जहाँ-जहाँ पुल छूटे हैं उन्हें तैयार किया जाय और सड़कों को डामर से पक्का बनाया जाय।

(ii) नगरों की निकटवर्ती सड़कों को न केवल चौड़ा बनाया जाय वरन् उन पर एकतरफा यातायात की सुविधा प्रदान की जाये।

इस योजना में ५,२०० करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है। इसकी समाप्ति पर कुल सड़कों की लम्बाई १०,५१,२०० किलोमीटर हो जायेगी तथा प्रति १०० वर्ग किलोमीटर पीछे सड़कों की लम्बाई ३२ किलोमीटर होगी जो अभी केवल १·३ किलोमीटर ही है। इस योजना के अन्तर्गत लक्ष्य यह रखा गया है कि :

(१) उन्नत और विकसित कृषि क्षेत्र का कोई गाँव पक्की सड़क से ६ किलोमीटर और अन्य सड़क से २.५ किलोमीटर से दूर न हो।

(२) अर्द्ध-विकसित क्षेत्र का प्रत्येक गाँव पक्की सड़क से १२ किलोमीटर तथा अन्य सड़क से ५ किलोमीटर से दूर न हो।

(३) अविकसित एवं कृषिविहीन क्षेत्र का प्रत्येक गाँव पक्की सड़क से १९ किलोमीटर और अन्य सड़क से ८ किलोमीटर से अधिक दूर न हो।

इस प्रकार स्पष्ट होगा कि इस दीर्घ अवधि योजना के अन्तर्गत प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण केन्द्रों को पक्की सड़कों से मिलाया जा सकेगा।

(४) मैदान मे २,००० जनसख्या वाले प्रत्येक नगर, अर्द्ध-पर्वतीय क्षेत्र में १,००० जनसंख्या वाले हर कस्बे को और पर्वतीय क्षेत्रों मे ५०० जनसख्या वाली बस्तियों को पक्की सड़को द्वारा मिलाया जायेगा।

(५) जिले की सभी शासन इकाइयो को आपस मे और जिला बोर्ड के केन्द्र से पक्की सड़कों द्वारा जोड़ा जायेगा।

पाँचवीं योजना के अन्तर्गत सड़क यातायात का विकास निम्न प्रकार से किया जायेगा : (१) प्रमुख औद्योगिक केन्द्रो, खनिज और विकास योजनाओं सम्बन्धी परियोजनाओ के बीच वाले क्षेत्रो मे सड़कों का निर्माण करना। (२) १,५०० या उससे अधिक जनसख्या वाले गाँवों को जोड़ने वाली सड़कें बनाना। (३) पहाड़ी क्षेत्रों तथा तटीय भागो मे विकास के लिए सड़को का निर्माण करना। (४) बड़े नगरो, राजधानियों और उनके निकटवर्ती भागों मे सड़क का विकास करना। (५) पटना के निकट गंगा पर तथा कलकत्ता के निकट हुगली पर दूसरा पुल बनाना।

सड़क परिवहन की समस्याएँ

भारत जैसे विशाल देश में अभी भी सड़को का विकास आवश्यकताओ के अनुरूप नहीं हुआ है। सड़कों के तीव्रगति के विकास मे निम्न कारण बाधक रहे हैं :

(१) भारत की अधिकांश सड़कें न केवल कच्ची हैं वरन् उन पर ७०% पर पूरे वर्ष मोटरें नहीं चलाई जा सकतीं। वर्षा ऋतु मे मंडियो और गाँवों के बीच सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है।

(२) सड़क परिवहन पर कर की दर ऊँची है।

(३) सड़कों पर चलने वाली मोटरगाड़ियों की संख्या न केवल कम है वरन् उनकी भार या यात्री ढोने की कुशलता न्यूनतम है।

(४) सड़क परिवहन सम्बन्धी नियमन सभी राज्यों में सरल और एकरूप नहीं है।

सड़कों के विकास की आवश्यकता

सड़को के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है। कृषि और ग्रामीण परिवहन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सड़क परिवहन के विकास पर अधिक ध्यान देना चाहिए। सड़कों का विकास करना निम्न तथ्यो के कारण और भी आवश्यक हो जाता है :

(१) अधिक सेवा—एक सड़क रेलमार्ग से तिगुनी ट्रैफिक के लिए उपयुक्त मानी गयी है क्योंकि एक लाइन पर एक समय में एक ही गाड़ी निकल सकती है जबकि सड़क पर निरन्तर मोटरें चलती रहती हैं।

(२) एक बढ़िया दो पटरी वाली सड़क बनाने में अनुमानतः ३½ लाख रुपया प्रति १½ किलोमीटर व्यय होता है जबकि चौड़े गेज वाली १½ किलोमीटर लम्बी लाइन पर १० लाख से अधिक व्यय होता है।

(३) रेलों की औसत दैनिक गति ८० किलोमीटर है जबकि मोटरों की गति इससे ३ से ६ गुनी अधिक होती है। अत: सड़क मार्गों पर लगायी पूँजी पर रेल मार्गों पर लगायी पूँजी की अपेक्षा अधिक और तीव्रगति से लाभ होता है।

(४) समान मात्रा में सामान ढोने पर मोटर व्यवसाय में रेलों की तुलना में सात गुना अधिक रोजगार मिलता है।

(५) देश के ५ लाख गाँव दूर-दूर बिखरे हैं अतः उनका मण्डियों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सड़कों का विकास आवश्यक है।

रेल मार्ग
(RAILWAYS)

भारत के रेल मार्गों को बनाने के मुख्य उद्देश्य ये रहे हैं :

(१) अधिकांश रेल मार्ग उन क्षेत्रों में बनाये गये हैं जो बहुत उपजाऊ और घने बसे हैं, क्योंकि ऐसे ही क्षेत्रों से रेलों को मुसाफिर और माल ढोने को मिलता है। फलतः रेल मार्गों का विस्तार गंगा की घाटी में अधिक हुआ है।

(२) रेल मार्ग प्रसिद्ध बन्दरगाहों को औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्रों से जोड़ते हैं और विदेशों से आयातित माल को भीतरी भागों में वितरण करने में सहयोग देते हैं तथा कृषि क्षेत्रों के उत्पादन को कारखानों तक पहुँचाते हैं।

(३) ये अकाल अथवा दैवी आपत्ति के समय अकाल-पीड़ित और बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों को अन्न और अन्य आवश्यक सामग्री पहुँचाने में योग देते हैं।

भारत में रेल मार्गों का विकास १६वीं शताब्दी से हुआ है। सर्वप्रथम सन् १८४५ में लॉर्ड डलहौजी के राज्यकाल में तीन रेल मार्गों को स्वीकृति दी गयी। पहला रेल मार्ग ईस्ट इण्डियन रेलवे था जो कलकत्ता से रानीगंज तक १८३ किलोमीटर लम्बा था। यह सन् १८४५ में बनाया गया। दूसरा रेल मार्ग सन् १८५३ में ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे द्वारा बम्बई से थाना के बीच ३४ किलोमीटर लम्बा बनाया गया। सन् १८५४ में कलकत्ता और पडुआ के बीच ६३ किलोमीटर लम्बा रेल मार्ग बनाया गया। सन् १८७० में भारत में रेल मार्गों की लम्बाई ६,८४० किलोमीटर थी। सन् १८८० में यह सन् १३,६८० किलोमीटर, सन् १६०० में ३६,८४३ किलोमीटर, सन् १६४० में ६६,२०० किलोमीटर, सन् १६६० में ५६,६६३ किलोमीटर, सन् १६६१ में ५७,०८६ किलोमीटर और सन् १६६६ में ५८,३६६ किलोमीटर हो गयी। सन् १६७३ में कुल रेल मार्ग ६१,००० किलोमीटर लम्बे थे। इसमें से ५०% बड़ी लाइन, ४३% छोटी लाइन और ७% सकरी लाइन है।

देश में बड़ी (Broad), छोटी (metre) और सकरी (narrow) तीनों प्रकार की लाइनें हैं। यह वितरण इस प्रकार है :

बड़ी लाइन	(१·६७६ मीटर)	२९,२१९·८४ किलोमीटर
छोटी लाइन	(१·००० मीटर)	२५,७२६·८० ,,
संकरी लाइन	(०·७६२ मीटर)	४,१०६·०४ ,,

उत्तरी भारत में रेल मार्गों का वितरण

देश में रेल मार्गों की लम्बाई का लगभग आधा भाग सतलज और गंगा के मैदान में स्थित है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि इस मैदान में भारत की अधिकांश जनसंख्या बसी है। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ है और यहीं भारत के बड़े-बड़े नगर बसे हैं। भूमि का धरातल समान होने के कारण रेल मार्ग बनाने की सुविधाएँ भी यहाँ अधिक पायी जाती हैं। देश के विभाजन के पूर्व यहाँ की सबसे लम्बी रेलवे लाइन (N.W. Ry) १२,६४० किलोमीटर थी। देश की सबसे अधिक सामान ढोने वाली रेलवे (E I. Ry.) जिसकी आय प्रति वर्ष २७ करोड़ रुपये थी, इसी मैदान में है। भारत की सबसे अधिक लाभ देने वाली रेलवे (शाहदरा-लाइट रेलवे), जिससे १०% लाभ प्रति वर्ष होता था, इसी मैदान में है।

इस मैदान के रेल मार्गों की पहली विशेषता यह है कि मीलों तक उनका मार्ग सीधा है, धरातल सपाट होने के कारण उन्हें अधिक इधर-उधर मुड़ने की आवश्यकता नहीं। यद्यपि धरातल समतल होने से रेल मार्ग बनाने में सुविधा होती है किन्तु यहाँ की घनी वर्षा और हिमालय से आने वाली नदियों द्वारा रेल मार्गों को बहुधा हानि पहुँचती है। बाढ़ के समय कहीं-कहीं रेलवे लाइनें कट जाती हैं अथवा उनके पुल टूट जाते हैं। इसके अतिरिक्त रेल मार्गों के किनारे डालने के लिए पत्थर की गिट्टी बहुत दूर से इस मैदान में मँगवानी पड़ती है।

इन रेल मार्गों की दूसरी विशेषता यह है कि इनकी शाखाएँ बहुत अधिक हैं। सम्भवतः रेल मार्गों की इतनी संख्या अन्यत्र नहीं मिलती। शाखाएँ विशेषतः कोयला-क्षेत्रों में अधिक पायी जाती है जहाँ कोयला ढोने के लिए रेलों की आवश्यकता पड़ती है।

तीसरी विशेषता यह है कि इस मैदान के रेल मार्गों का अन्त कलकत्ता में होता है। वहाँ समुद्री व्यापार का सम्बन्ध इन रेल मार्गों द्वारा ढोये गये स्थलीय व्यापार से होता है। इस मैदान के उत्तर की ओर अथवा पश्चिम में कोई ऐसा एक केन्द्र नहीं है जहाँ सभी रेल मार्गों का अन्त होता हो जैसा कि कलकत्ता में देखा जाता है। मैदान के उत्तर में हिमालय पर्वत है जिसमें रेल मार्गों का प्रवेश नहीं हुआ है। यद्यपि दार्जिलिंग, शिमला, कांगड़ा, आदि स्थानों में पहाड़ों को पार कर रेल की छोटी-छोटी लाइनें पहुँचती हैं।

दक्षिण भारत में रेल मार्गों का वितरण

दक्षिण के पठार पर जो रेल मार्ग पाये जाते हैं वे प्रायः टेढ़े-मेढ़े हैं। इसका मुख्य कारण पठार के धरातल का ऊँचा-नीचा होना और टूटी-फूटी पहाड़ियों का अधिक होना है। इनसे बचने के लिए तथा भूमि के अधिक ढाल से दूर रहने के उद्देश्य से रेल मार्ग बहुधा टेढ़े-मेढ़े बनाना ही आवश्यक हो जाता है। पठार में कहीं-कहीं रेल मार्गों को इतने अधिक खड़े ढाल पर चलाना पड़ता है कि वहाँ रेलगाड़ी में एक इंजन पीछे ठेलने के लिए लगाना आवश्यक है। इस प्रकार के ढाल मध्य प्रदेश में होशंगाबाद और महाराष्ट्र में इगतपुरी में देखने को मिलते हैं। पठार में कहीं-कहीं रेल मार्गों को निकालने के लिए पहाड़ों में सुरगें भी बनानी पड़ती हैं, विशेषतः ऐसे मार्गों में जहाँ घूमकर पहाड़ के दूसरी ओर रेलें नहीं जा सकतीं। पठार में चलने वाले सभी रेल मार्गों में कहीं न कहीं सुरगें बनी हैं। अतः रेल मार्गों का बनाना न केवल दुसाध्य ही होता है वरन् खर्च भी अधिक होता है। पश्चिमी घाट में थालघाट, भोरघाट, पालघाट, आदि सुरगें और राजस्थान के उदयपुर तथा जोधपुर रेलमार्गों के बीच अरावली श्रेणियों में गोरमघाट में सुरगें बनानी पड़ी हैं। वास्को और लोंडा जकशन के बीच १८ और पूना तथा बम्बई के बीच २६ छोटी-बड़ी सुरगें हैं।

भारत के रेल मार्ग के मानचित्र को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ कई क्षेत्रों में रेल मार्गों का प्रायः अभाव है यथा पश्चिमी राजस्थान के थार की मरुभूमि, बिहार के छोटा नागपुर, उड़ीसा के पहाड़ी भाग तथा असम राज्य में। यहाँ भूमि बड़ी ऊँची-नीची अथवा बालू मिट्टी वाली है तथा जनसंख्या थोड़ी होने से रेलों की आवश्यकता भी कम ही है। पर्वतीय क्षेत्रों में भी रेल मार्गों का अभाव पाया जाता है।

अब देश के कई भागों में विशेषतः औद्योगिक क्षेत्रों में परिवहन की सुविधा देने के लिए नये रेल मार्ग बनाये गये हैं, जैसे (१) रूरकेला और रांची (हटिया) के बीच; (२) पुरी और रांची के बीच; (३) रांची और चन्द्रपुरा के बीच; (४) बरौनी और बिहार के उत्तरी भागों के बीच; (५) असम को जोड़ने के लिए रेल मार्ग (Assam Link Railway), (६) छोटा नागपुर क्षेत्र, दामोदर घाटी क्षेत्र, आदि में खनिजों का विकास करने हेतु रेल मार्गों का विस्तार किया गया है। (७) पठानकोट से जम्मू-तवी तक रेल मार्ग सन् १९७२ में बनाया गया।

भारतीय रेलों की प्रशासनिक व्यवस्था

भारत में रेल प्रणाली का संचालन केन्द्रीय सरकार के आधीन है। इसके द्वारा भारत में होने वाले व्यापार में बड़ी सहायता मिलती है। ये देश के ८० प्रतिशत माल

और ७० प्रतिशत यात्रियों को ढोती हैं। भारतीय रेल व्यवस्था के अन्तर्गत ११,१०० इंजिन, ३५ ८०० सवारी गाड़ी के डिब्बे तथा ३,८४,००० मालगाड़ी के डिब्बे हैं। रेल द्वारा सन् १६७१ में १,००७ करोड़ रुपये से अधिक की आय हुई। सन् १६७२ में प्रतिदिन औसतन ६७ लाख व्यक्तियों और लगभग ५॥ लाख टन माल ने ७,०६८ स्टेशनों से १०,७०० रेलों में यात्रा की। भारतीय रेलों में ४,०६६ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है तथा लगभग १४ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिलता है। अतएव भारत के यातायात में रेलों का बड़ा योगदान है।

भारतीय रेलों का विकास[1]

वर्ष	मार्ग (किलोमीटर)	Running Track (Km.)	यात्री ले जाये गये (लाख)	माल ढोया गया (लाख टन)
१९५०-५१	५४,८४५	६०,५६७	१३,०७८	९३०
१९५५-५६	५५,६०२	६१,७३८	१२,९७४	१,१७१
१९६०-६१	५६,९६२	६४,३१९	१६,१३९	१,५७६
१९६५-६६	५९,०६१	६६,०३८	२१,२००	२,०४१
१९६८-६९	५९,५५३	७०,६९१	२२,१३०	२,०४०
१९६९-७०	५९,६८४	७१,२५१	२३,३८०	२,०७९
१९७०-७१	५९,७९०	७१,६६९	२४,३१०	१,९६५
१९७१-७२	६०,०६७	७३,२२५	२५,३५६[1]	१,९७८

१९४६ तक भारतीय रेल व्यवस्था के अन्तर्गत (६ सरकारी और ३८ देशी राज्यों की रेलवे प्रणालियाँ) थीं। सरकारी रेल मार्ग ये थे :

(१) ईस्ट इण्डिया रेलवे (East India Railway), (२) बंगाल-नागपुर रेलवे (Bengal-Nagpur Railway), (३) अवध तिरहुत रेलवे (Oudh Trihoot Railway), (४) असम रेलवे (Assam Railway), (५) साउथ इण्डियन रेलवे (South Indian Railway), (६) मद्रास, साउथ मराठा रेलवे (M. S. M. Railway), (७) बम्बई, बड़ौदा, सैण्ट्रल इण्डिया रेलवे (B. B and C. I Railway), (८) ग्रेट इण्डियन पेनिनसुलर रेलवे (G. I P. Railway), (९) पूर्वी पंजाब रेलवे (East Panjab Railway)।

प्रमुख देशी राज्यों के रेल मार्ग ये थे : (१) बीकानेर रेलवे, (२) कच्छ स्टेट रेलवे, (३) धौलपुर स्टेट रेलवे, (४) जयपुर स्टेट रेलवे, (५) जोधपुर स्टेट रेलवे, (६) मैसूर स्टेट रेलवे, (७) निजाम स्टेट रेलवे, (८) सौराष्ट्र रेलवे, (९) सिन्धिया स्टेट रेलवे, (१०) उदयपुर-चित्तौड़ रेलवे, (११) बंजवाड़ा रेलवे, (१२) दार्जिलिंग हिमालयन रेलवे।

[1] *India, 1974, p. 284*

भारत के ९ रेल खण्ड (Railway Zones)

रेल-क्षेत्र	निर्माण तिथि	कार्यालय	लम्बाई (किलोमीटर में)	बड़ी लाइन	छोटी लाइन	तंग लाइन	विद्युत मार्गों की लम्बाई
उत्तरी	१४ अप्रेल, १९५२	दिल्ली	१०,५६१	६,८९९	३,४३२	२६०	३५१
उत्तरी-पूर्वी	१४ अप्रेल, १९५२	गोरखपुर	४,९६५	५२	४,६१३	—	—
उत्तरी-पूर्वी सीमान्त	१५ जनवरी, १९५८	मालीगाव(असम)	३,६३१	६४५	२,८९९	८७	—
पूर्वी	१ अगस्त, १९५५	कलकत्ता	४,१४३	४,०१३	—	१३१	१,२०२
दक्षिणी-पूर्वी	१ अगस्त, १९५५	कलकत्ता	६,८०२	५,३२३	—	१,४७९	—
पश्चिमी	५ नवम्बर, १९५१	बम्बई (चर्चगेट)	१०,०४२	२,७६१	६,०७९	१,२०१	६०
मध्यवर्ती	५ नवम्बर, १९५१	बम्बई वि. टर्मीनस	५,७२२	४,५६३	३८३	७९६	२९८
दक्षिणी	१४ अप्रेल, १९५१	मद्रास	७,४४४	२,३३४	४,९५७	१५३	१६६
दक्षिणी-मध्य	२ अक्टूबर, १९६६	सिकन्दराबाद	६,१५६	२,६०६	३,१८३	३७०	—

आर्थिक और प्रशासनिक दृष्टि से इन छोटे बड़े रेल मार्गों को सन् १९५० में आठ क्षेत्रों में बाँटा गया। सन् १९६६ में एक और क्षेत्र बढ़ा दिया गया। अस्तु, इस समय देश के रेल मार्गों को ९ क्षेत्रों (Zones) में विभक्त किया गया है।

यद्यपि सारे रेल मार्ग सरकारी क्षेत्र में ही हैं फिर भी ४१४ किलोमीटर लम्बे मार्ग गैर-सरकारी क्षेत्र में हैं। गैर-सरकारी क्षेत्र के रेल मार्ग ये हैं :

आरा-सासाराम लाइट रेल मार्ग	१०४·८ किलोमीटर
देहरी-रोहतास ,,	६६·७ ,, ,,
फतवा-इस्लामपुर ,,	४३·५ ,, ,,
हावड़ा-आमटा ,,	७०·३ ,, ,,
हावड़ा-शीखला ,,	२७·२ ,, ,,
शाहदरा-सहारनपुर ,,	१४८·८ ,, ,,

ये सभी तंग लाइनें हैं, केवल हावड़ा-शीखला मार्ग लाइट-लाइन (०·६१०) मीटर है।

(१) उत्तरी रेल मार्ग (Northern Railway)—पश्चिम में पाकिस्तान की सीमा से लगाकर पूर्व में मुगलसराय तक विस्तृत है। यह पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरी-पूर्वी राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश राज्यों में फैला हुआ है। इस रेल मार्ग के अन्तर्गत पूर्वी पंजाब रेलवे, जोधपुर रेलवे, बीकानेर रेलवे और ईस्ट इण्डियन रेलवे का पश्चिमी भाग मिला है। इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में है।

इस मार्ग का सैनिक महत्त्व अधिक है क्योंकि इसी मार्ग से कश्मीर जाते हैं। घने जनसंख्या वाले क्षेत्र से निकलने के कारण इस रेल मार्ग पर यात्रियों की भीड़ भी अधिक रहती है।

कपास, तिलहन, गन्ना, अनाज, चीनी, चमड़ा, खेती की अन्य वस्तुएँ इस रेल मार्ग द्वारा ढोयी जाती हैं। इसके पृष्ठ-देश में कागज, कपड़ा, काँच, चीनी, आदि के कारखाने पाये जाते हैं। इसके मुख्य नगर दिल्ली, आगरा, कानपुर, मेरठ, अमृतसर, पठानकोट, बीकानेर, जोधपुर, वाराणसी, आदि हैं।

इसकी मुख्य शाखाएँ ये हैं : (१) दिल्ली से अटारी। (२) दिल्ली से रोहतक-भटिंडा होती हुई फिरोजपुर तक। (३) दिल्ली से अम्बाला होकर कालका तक और फिर कालका से शिमला तक। (४) दिल्ली से खुरजा, अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद और मुगलसराय होती हुई वाराणसी तक। (५) सहारनपुर से लखनऊ और प्रयाग होकर वाराणसी तक। (६) मुगलसराय, वाराणसी, लखनऊ, बरेली, मुरादाबाद, नजीबाबाद, हरद्वार होती हुई देहरादून तक। (७) दिल्ली-रेवाड़ी-हिसार-रतनगढ़ जोधपुर-पाकिस्तान की सीमा तक। (८) जोधपुर-बीकानेर-भटिंडा।

(२) उत्तरी-पूर्वी रेल मार्ग (North-Eastern Railway)—उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग, उत्तरी बिहार, पश्चिमी बंगाल तथा असम के उत्तरी भाग में फैला है।

अवध-तिरहुत, असम रेल मार्ग तथा बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे के कुछ भाग (आगरा, कानपुर, काठगोदाम ब्रांच) को मिलाकर इसकी रचना की गयी है। इसका प्रधान कार्यालय गोरखपुर में है। इस मार्ग का प्रदेश खेती के दृष्टिकोण से विशेष उन्नत है। गन्ना, चाय, तम्बाकू, जूट, चमड़ा और चावल का व्यापार इसी के द्वारा होता है। इस रेल मार्ग का मोटर योग्य सड़कों तथा गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों से भी सचालन सम्पर्क रहता है। कटिहार, मोनपुर, गोरखपुर, बरौनी, बरेली, मथुरा, हाजीपुर इस रेल मार्ग पर प्रमुख नगर हैं।

यह सम्पूर्ण रेलमार्ग कानपुर, लखनऊ और वाराणसी में उत्तरी रेल मार्ग से मिल जाता है। इस क्षेत्र में उत्तर प्रदेश से असम तक यात्रा की जा सकती है। बिहार की सीमा पर स्थित नेपाल इसी रेल मार्ग के साथ जोड़ा गया है। इस क्षेत्र में वाराणसी, प्रयाग, मथुरा, आदि तीर्थस्थान हैं। इसी क्षेत्र में असम के तेलकूप बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। कानपुर में चमड़े का काम होता है। यह चमड़ा इसी रेल द्वारा बाहर से कानपुर पहुँचाया जाता है।

इसकी प्रमुख शाखाएँ ये हैं : (१) गोरखपुर से अमीनगाँव (असम) तक। (२) गोरखपुर, लखनऊ होती हुई कानपुर तक। लखनऊ से बरेली तक। (३) गोरखपुर से वाराणसी तक। (४) मनीपुर रोड से गौहाटी और तिनसुकिया तक। (५) इलाहाबाद से वाराणसी होती हुई गोरखपुर तक। (६) बरेली से सीतापुर, गोंडा, गोरखपुर, छपरा, हाजीपुर, झाँसी और कटिहार तक। (७) वृन्दावन, हाथरस, कासगंज, बरेली और काठगोदाम।

(३) पूर्वोत्तर सीमान्त रेलवे (North East Frontier Railway) उत्तरी-पूर्वी रेलमार्ग का ही पूर्वी भाग है। इसका प्रधान कार्यालय मालीगाँव (गौहाटी) में है। यह रेल मार्ग समस्त असम, पश्चिमी बंगाल और बिहार के कुछ भागों से होकर निकलता है। इसके द्वारा पैट्रोलियम, चाय, कोयला, लकड़ी, जूट, आदि ढोया जाता है। इस रेल मार्ग का सैनिक महत्त्व अधिक है क्योंकि इसी के द्वारा पूर्वी सीमान्त को सैनिक भेजे जाते हैं।

यह रेल मार्ग उत्तरी-पूर्वी रेल मार्ग से कटिहार और मुरलीगंज में, पूर्वी रेलवे मार्ग से मनिहारघाट में और बंगला देश की पूर्वी बंगाल रेलवे से राधिकापुर, सिंहबाद, हल्दीबारी, चन्द्रबन्धा और करीमगंज स्टेशनों पर मिलता है।

(४) पूर्वी रेल मार्ग (Eastern Railway) मुगलसराय और हुगली के बीच गंगा के पूर्वी मैदान में चलता है। पश्चिमी बंगाल तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग इसी की शाखाओं द्वारा सम्बन्धित हैं। ईस्ट इण्डियन रेलवे के पूर्वी भाग (दीनापुर, धनबाद, हावड़ा, आसनसोल और सियालदाह) तथा बंगाल-नागपुर रेलवे को मिलाकर यह रेल मार्ग बनाया गया है। इसका प्रधान कार्यालय कलकत्ता में है। इस पर सबसे अधिक यात्री यात्रा करते हैं और सबसे अधिक माल ढोया जाता है। इस मार्ग से ले जाये जाने वाले माल में कोयला, लोहा, मैंगनीज, पटसन, अभ्रक, सीमेण्ट,

चावल, आदि वस्तुओं का महत्व अधिक है। पूर्वी रेल मार्ग पश्चिमी बंगाल और बिहार के जूट उत्पादन क्षेत्रों में, पश्चिमी बंगाल और बिहार की कोयले की खानों तथा कच्चा लोहा और अभ्रक की खानों, सिंद्री की खाद रसायनशाला तथा चित्तरंजन स्थित इन्जिन के कारखानों को सहायता प्रदान करता है। इस रेल मार्ग में कई तीर्थस्थान तथा यात्रियों के लिए दर्शनीय स्थान पड़ते हैं। वास्तव में पूर्वी गंगा के मैदान में इस रेल मार्ग के द्वारा
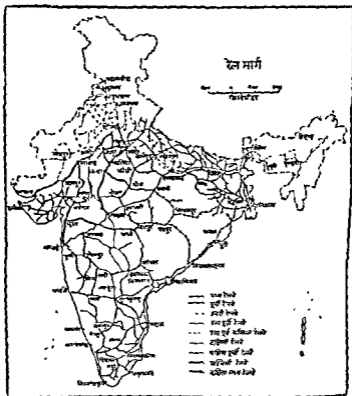
चित्र—१६·२

विविध आर्थिक लाभ होते हैं। इस आर्थिक क्रियाशीलता का कारण यह है कि कलकत्ता बन्दरगाह है और इस प्रदेश में उद्योग धन्धों का केन्द्रीयकरण भी विशेष है। इसका कार्यालय कलकत्ता में है।

इसकी मुख्य शाखाएँ ये हैं : (१) हावड़ा से बर्दवान, आसनसोल, गया और डेहरी-ओन-सोन होती हुई मुगलसराय तक। (२) हावड़ा से आसनसोल, पटना होती हुई मुगलसराय तक। (३) हावड़ा से बरहरवा, साहिबगंज, भागलपुर और जमालपुर

होकर किऊल तक। (४) कलकत्ता से मुर्शिदाबाद होते हुए लालगोलाघाट। (५) गोमो-डाल्टनगंज-डेहरी-ऑन-सोन तक।

(५) दक्षिणी-पूर्वी रेल मार्ग (South-Eastern Railway) बंगाल-नागपुर रेलमार्ग को अलग करके बनाया गया है। इसका कार्यालय कलकत्ता में है। यह पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश की सेवा करता है। इसके द्वारा आन्ध्र प्रदेश और बिहार तथा विशाखापट्टनम और कलकत्ता बन्दरगाह जुड़े हैं। इसके पृष्ठ-देश में अभ्रक, कोयला, तांबा, मैंगनीज, चूना, बॉक्साइट, आदि मिलता है। इसी रेल मार्ग पर हीराकुड योजना, विशाखापट्टनम में जहाज-निर्माणशाला तथा तेल शोधनशाला और बर्नपुर, रूरकेला, आसनसोल, भिलाई तथा टाटानगर के इस्पात के कारखाने स्थित हैं।

इसकी प्रमुख शाखाएं ये हैं: (१) हावड़ा से नागपुर तक। टाटानगर, राउरकेला, बिलासपुर, रायपुर, भिलाई, और गोंडिया इस मार्ग पर केन्द्रित हैं। इस शाखा के मार्ग में पड़ने वाले क्षेत्र खनिज पदार्थ में धनी हैं तथा औद्योगिक विकास में आगे बढ़े हुए हैं। इसके द्वारा कोयला, मैंगनीज, लोहा, आदि का आवागमन होता है। टाटानगर जैसा प्रमुख केन्द्र भी इसी मार्ग पर स्थित है। टाटानगर को बोनाई, केंदुझर और सिंहभूम की लोहे एवं मैंगनीज की खानों से सम्बन्धित करने के लिए कई छोटी-छोटी उपशाखाओं का निर्माण हो गया है। (२) हावड़ा से बालासोर, कटक, बरहामपुर और विजयनगरम होकर वाल्टेयर से मद्रास तक। (३) रायपुर से वाल्टेयर तक।

(६) पश्चिमी रेल मार्ग (Western Railway) राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में से निकलता है। इस मार्ग को बम्बई, बड़ोदा, सेंट्रल, इण्डिया रेलवे, सौराष्ट्र रेलवे, राजस्थान रेलवे और जयपुर रेलवे को मिलाकर बनाया गया है। इस मार्ग के द्वारा कपास और सूती कपड़े, अनाज, नमक, तिलहन और अभ्रक का व्यापार बहुत अधिक होता है। बम्बई, अहमदाबाद, सूरत, भड़ौंच, अजमेर और बड़ोदा के औद्योगिक केन्द्र इसी मार्ग पर पड़ते हैं। इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है।

पश्चिमी रेल मार्ग अहमदाबाद, इन्दौर, राजकोट, भावनगर, आदि की सूती कपड़े की मिलों, लाखेरी, सेवालिया, द्वारका और पोरबन्दर के सीमेण्ट के कारखानों, मीठापुर के रासायनिक कारखानों, अजमेर के रेल के कारखाने, आदि की सेवा करती है। इस रेल मार्ग को भारत के सांभर, सरगोधा, कुण्डा, आदि नमक के प्राचीनतम क्षेत्रों के यातायात एजेन्सी के रूप में काम करने का सौभाग्य विरासत में मिला है। पश्चिमी तट के दूसरे बड़े बन्दरगाह कांडला की उन्नति में और उदयपुर की जस्त की फैक्ट्री को माल पहुंचाने में भी यह रेल मार्ग सहायक है। इस रेल मार्ग पर दर्शकों के लिए आम्बेर, मांडू, फतेहपुर-सीकरी, आगरा और उदयपुर मुख्य स्थान हैं। पवित्र तीर्थस्थानों के यात्रियों की आवश्यकताओं का अपना महत्त्व है। द्वारका, सोमनाथ, अजमेर, पालीताना, , नाथद्वारा, मथुरा, उज्जैन,

ओंकारेश्वर, आदि वे पवित्र स्थान हैं जो देश भर के हजारों यात्रियों को आकर्षित करते हैं।

इसकी प्रमुख शाखाएँ ये हैं : (१) बम्बई से सूरत, बड़ोदा, रतलाम, नागदा, कोटा, सवाई-माधोपुर, बयाना होकर दिल्ली तक। (२) बयाना से आगरा तक। (३) बम्बई से सूरत और बड़ौदा होकर अहमदाबाद तक। (४) अहमदाबाद से आबूरोड, अजमेर, फुलेरा, रेवाड़ी होती हुई दिल्ली तक। (५) अजमेर से चित्तौड़, इन्दौर होती हुई खण्डवा तक। (६) मारवाड़ जंक्शन से उदयपुर और वहाँ से हिम्मतनगर तक। (७) पोरबन्दर से डाहाला, राजकोट से वेरावल, वाढवा से भुज और सुरेन्द्रनगर से ओखा तक।

(७) मध्यवर्ती रेल मार्ग (Central Railway) मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश के उत्तरी-पश्चिमी भाग से होकर जाता है। जी० आई० पी० रेलवे और सिन्धिया रेलवे को मिलाकर यह रेल मार्ग बनाया गया है। इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है। उत्तरी रेलवे से यह आगरा तथा इलाहाबाद में और दक्षिण रेलवे से विजयवाड़ा तथा रायचूर में और पश्चिमी रेलवे से बम्बई, कोटा और उज्जैन में मिलता है।

इस मार्ग से महाराष्ट्र, पश्चिमी आन्ध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश को विशेष लाभ पहुँचता है। कपास, मैंगनीज, तांबा, अल्यूमीनियम, लोहा, सीमेण्ट, पत्थर कोयला, सन्तरे तथा लकड़ी इसी मार्ग द्वारा ढोये जाते हैं।

इसकी प्रमुख शाखाएँ ये हैं : (१) बम्बई से भुसावल, खण्डवा, इटारसी, भोपाल, झांसी, ग्वालियर, आगरा, मथुरा होकर दिल्ली तक। (२) बम्बई से रायचूर तथा बंगलौर तक। (३) दिल्ली से विजयवाड़ा तक, इटारसी, नागपुर, वर्धा और काजीपेट होती हुई मद्रास तक।

(८) दक्षिणी रेल मार्ग (The Southern Railway) कर्नाटक रेलवे, मद्रास और साउथ मरहट्टा रेलवे तथा साउथ इण्डिया रेलवे को मिलाकर बनाया गया है। इसमें छोटी एवं बड़ी, दोनों ही प्रकार की लाइनें मिली हुई हैं। इसका प्रधान कार्यालय मद्रास में है। मद्रास, कर्नाटक, केरल, दक्षिणी महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश के कुछ भाग इसके मार्ग में पड़ते हैं।

कई शाखाएँ और उपशाखाएँ मद्रास, कोचीन, तूतीकोरन, अलप्पी, क्विलोन और कोजीकोड को मिलती हैं। खाद्यान्न, कपास, तिलहन, नमक, चीनी, तम्बाकू, रबड़, गर्म मसाले, लकड़ी, खाल और चमड़ा इस मार्ग से ढोयी जाने वाली विभिन्न वस्तुएँ हैं।

इस मार्ग की प्रमुख शाखाएँ ये हैं : (१) मद्रास से वाल्टेयर तक। (२) कड्डप्पा से मद्रास होकर रायपुर तक। (३) मद्रास से बंगलौर तक। (४) जलारपत से मंगलौर तक। (५) पूना से हरद्वार तक (६) गुन्टकल से विजयवाड़ा होकर

मसलीपट्टम तक। (७) मद्रास से धनुषकोटि, तन्जोर और तिरुचिरापल्ली तक। (८) मद्रास से तिरुचिरापल्ली, विरुधनगर, मदुराई और क्विलोन होती हुई त्रिवन्द्रम तक। (९) विरुधनगर से तूतीकोरन तक।

(९) दक्षिण मध्य रेल मार्ग (South-Central Railway) दक्षिणी रेल मार्ग के विजयवाड़ा और हुबली खण्डों को और मध्य रेल मार्गों के सिकन्दराबाद और शोलापुर खण्ड के भागों को मिलाकर बनाया गया है। इसका प्रधान कार्यालय सिकन्दराबाद में है। यह रेल मार्ग आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक और गोआ राज्यों को मिलाता है। यह रेल मार्ग पूर्वी तट से पश्चिमी तट तक फैला है।

विद्युतचालित रेल मार्ग

भारत में सन् १९७१-७२ में लगभग ३,९५२ किलोमीटर लम्बे मार्ग पर विद्युत गाड़ियाँ दौड़ती थीं। १९५०-५१ में केवल ३८८ किलोमीटर लम्बे मार्ग पर। विद्युत मार्ग इस प्रकार हैं।[1]

पूर्वी रेल मार्ग :	(i) हावड़ा, मुगलसराय और दयोरापल्ली तारकेश्वर शाखा	(८५५ कि० मी०)
	(ii) हुगली के पूर्वी किनारे पर कलकत्ता के उपनगरीय क्षेत्र (सियालदाह खण्ड)	(३४५ कि० मी०)
द० पूर्वी रेल मार्ग :	(i) हावड़ा-रूरकेला तथा आसनसोल-सीनी-डोंगापोसी मार्ग सहित	(८४६ कि० मी०)
	(ii) रूरकेला-दुर्ग	(४५४ कि० मी०)
	(iii) बिलासपुर-दुर्ग	(११३ कि० मी०)
उत्तरी रेल मार्ग :	(i) मुगलसराय-कानपुर	(३५१ कि० मी०)
मध्य रेल मार्ग :	(i) बम्बई-इगतपुरी-पूना	(२९८ कि० मी०)
	(ii) इगतपुरी-भुसावल	(३११ कि० मी०)
पश्चिमी रेल मार्ग :	(i) चर्चगेट-बोरीविली-विरार	(६० कि० मी०)
दक्षिणी रेल मार्ग :	मद्रास-विलुपुरम	(१६३ कि० मी०)

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में उत्तरी रेल मार्ग पर ५१४ किलोमीटर, दक्षिणी-पूर्वी रेल मार्ग पर ९९२ किलोमीटर, पश्चिमी रेल मार्ग पर ४४२ किलोमीटर, दक्षिणी रेल मार्ग पर १४१ किलोमीटर और दक्षिण मध्य रेल मार्ग पर ३४३ किलोमीटर मार्ग पर विद्युत गाड़ियाँ चलाई जा रही थीं।

प्रथम चार योजनाओं में ६००० किलोमीटर लम्बे नये रेल मार्ग बनाये गये, ७,००० किलोमीटर लम्बे मार्ग को दुहरा किया गया तथा ४,००० किलोमीटर मार्ग पर विद्युतगाड़ियाँ चलायी गयीं। १९५०-५१ और १९७२-७३ के बीच ६,५०० इंजिन, २६,००० सवारी गाड़ी के डिब्बे तथा ३½ लाख मालगाड़ी के डिब्बे बनाये गये।

[1] Bhagirath, July 1971, pp. 75-76.

पांचवीं योजना के अन्तर्गत रेल यातायात में (१) उन दोहरी लाइनों पर जहां व्यापार का भार अधिक पड़ता है, विद्युतीकरण करना। (२) रेल मार्ग को दोहरा करना। (३) नये रेल मार्ग बिछाना। (४) ३,००० लाख टन व्यापार को ढोने के लिए रेलों में समुचित व्यवस्था करना। (५) १,८०० किलोमीटर लम्बे मार्ग पर विद्युत गाड़ियाँ चलाना।

जल परिवहन
(WATER TRANRSPORT)

भारत में जल यातायात को दो मार्गों में बांटा जा सकता है : (१) भीतरी जलमार्ग, और (२) सामुद्रिक जलमार्ग।

भीतरी जल मार्ग
(INLAND WATER-WAYS)

आन्तरिक जल यातायात का सबसे अधिक महत्त्व उत्तरी-पूर्वी भारत के असम, पश्चिमी बंगाल और बिहार राज्यों में है। भारत में आन्तरिक जल यातायात १४,००० किलोमीटर लम्बे मार्गों पर होता है। इसमें से ८,५०० किलोमीटर असम और उत्तरी-पूर्वी प्रदेश में तथा ५,००० किलोमीटर अन्य राज्यों में है। असम और कलकत्ता के बीच २५ लाख टन से भी अधिक का व्यापार होता है। इसमें से लगभग आधा नदियों द्वारा ढोया जाता है। दक्षिण में केरल और गोवा राज्यों में भी जल-मार्गों का महत्त्व है। यहां के जल-मार्ग राज्य के भीतरी मार्गों को छोटे बन्दरगाहों और कोचीन के बन्दरगाहों से जोड़ते हैं। उड़ीसा के तटीय मार्गों और डेल्टा प्रदेश में भी नदियों और नहरों द्वारा ही अधिक आवागमन होता है। कुछ सीमा तक आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु राज्य में भी इनका महत्त्व है।

नहरें (Canals)

भारत की अनेक नहरें जल मार्गों का कार्य देती हैं। लगभग २४,१४० किलोमीटर लम्बी नहरों में नावें चलाई जाती हैं।

(१) पंजाब की सरहिन्द नहर में हिमालय पर्वत की लकड़ियाँ बहाकर लायी जाती हैं।

(२) गंगा की नहरों में ५४१ किलोमीटर तक नावें चलती हैं।

(३) गोआ में पाया जाने वाला लोहा नावों में भरकर नहरों द्वारा निर्यात के लिए मारमूगाओ बन्दरगाह तक पहुँचाया जाता है।

(४) केरल के पश्चिमी तट पर पश्चिमी तटीय नहर द्वारा जल यातायात की सुविधाएँ मिलती हैं। यह नहर तट के सहारे ४८० किलोमीटर तक फैली है। इसमें देशी नावें (Valloms) चलायी जाती हैं। केवल कोचीन और क्विलोन बन्दरगाहों के बीच में शक्तिचालित नावें चलती हैं। इस नहर द्वारा लगभग १६ लाख यात्री और २० लाख टन माल प्रतिवर्ष ढोया जाता है। नारियल, खाद्यान्न,

रबड़, लकड़ियाँ एवं उत्पादित पक्का माल सभी नहरों द्वारा लाया-ले-जाया जाता है। इस नहर का सम्बन्ध तट पर अनूपों से है जिससे सीधा यातायात उपलब्ध हो जाता है; अलप्पी, क्विलोन, तिरुवन्तपुरम और इर्नाकुलम बन्दरगाहों को इस नहर से विशेष रूप से लाभ मिलता है। उड़ीसा में नालदादा और केन्द्रपाड़ा की नहरों द्वारा भीतरी क्षेत्रों का लोहा ढोकर प्रदीप बन्दरगाह तक पहुँचाया जाता है।

(५) बिहार उड़ीसा की नहरें ८५० किलोमीटर लम्बी हैं।

(६) बंगाल का पश्चिमी भाग तो नहरों की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।
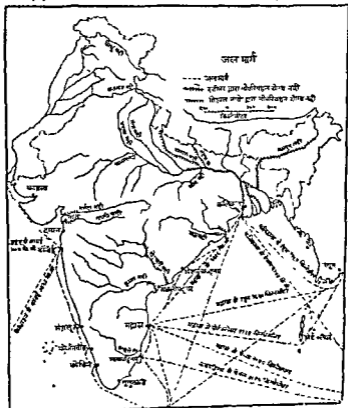
चित्र—१६·३

भारत के विभिन्न भागों से निर्यात के लिए जो माल कलकत्ता से आता है उसका लगभग ३५% जल मार्गों द्वारा ही लाया जाता है। इसमें भी ४३% तो अकेले

असम से ही नदियों और नहरों द्वारा आता है। कलकत्ता के जल मार्गों द्वारा किया जाने वाला व्यापार प्रति वर्ष लगभग ४५ लाख टन होता है जिनमें ३४% स्टीमरों द्वारा और ६६% देशी नावों द्वारा ढोया जाता है। असम की ६३% चाय और ६०% जूट की उपज जल मार्गों द्वारा ही कलकत्ता पहुँचती है। यात्री भी नावों द्वारा अधिक आते-जाते हैं। हिजली, सरकूलर, पूर्वी नहर और मिदनापुर नहरों द्वारा पश्चिमी जिलों की पैदावारें कलकत्ता तथा अन्य व्यापारिक मण्डियों को पहुँचायी जाती हैं।

(७) दामोदर घाटी निगम के अन्तर्गत बनायी गयी नहर दुर्गापुर और कुन्ती नदी के बीच ३ किलोमीटर तक नावें खेई जाती हैं।

(८) दक्षिण भारत में बकिंघम नहर कोरोमण्डल तट पर दक्षिण की ओर ४४० किलोमीटर तक चली जाती है और मद्रास को कृष्णा के डेल्टा से जोड़ती है।

(६) गोदावरी में दोलेश्वरम तक (८०० किलोमीटर तक) तथा कृष्णा नहर में ६४४ किलोमीटर तक नावें चलती हैं।

(१०) आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा और गोदावरी डेल्टा की नहरें काकीनाडा और मसुलीपट्टम बन्दरगाहों के बीच उत्तम जल मार्ग प्रस्तुत करती हैं।

(११) कर्नूल-कडूप्पा नहर भी ३०६ किलोमीटर तक नावें चलने योग्य है। दक्षिणी भारत में नदियों के डेल्टा की कपास, चावल, आदि इन्हीं नहरों द्वारा ढोया जाता है। केरल के तटीय भागों में भी आवागमन के लिए नहरों का अधिक उपयोग किया जाता है।

नदी परिवहन (River Transport)

सम्पूर्ण भारत में जल-मार्गों की लम्बाई ६५,६८३ किलोमीटर है जिसमें से ४१,४८३ किलोमीटर लम्बी नाव्य नदियाँ और २४,१४० किलोमीटर लम्बी नहरें हैं। भारत में साल भर जारी रह सकने वाले जल मार्गों पर स्टीमर और बड़ी-बड़ी देशी नावें चलती हैं। उत्तरी भारत में नदियों में ३,२२० किलोमीटर तक जहाज चलते हैं। जल मार्गों की दृष्टि से पश्चिमी बंगाल, असम, तमिलनाडु तथा बिहार राज्य महत्वपूर्ण हैं। भारत में जलमार्गों की लम्बाई उत्तर-प्रदेश में १,२०० किलोमीटर, बिहार में १,१५१ किलोमीटर, पश्चिमी बंगाल में १,२४० किलोमीटर, असम में ६,५१० किलोमीटर, उड़ीसा में ४६६ किलोमीटर और तमिलनाडु में २,७३६ किलोमीटर है। भारत के परिवहन मन्त्रालय के अनुसार शक्तिचलित नावें चलाने योग्य जल मार्गों की लम्बाई ६,७०६ किलोमीटर है। इसमें से २,३७५ किलोमीटर देशी नावों के योग्य है। गंगा और ब्रह्मपुत्र में धुआँकशों का यातायात ६२.५० करोड़ टन प्रतिवर्ष का बताया गया है। गंगा यातायात सर्वेक्षण (१६६०) के अनुसार बिहार में गंगा से प्रतिवर्ष ५५.७१ लाख टन माल और ८०,००० यात्री आते-जाते हैं।

गंगा नदी पर इलाहाबाद और राजमहल के बीच में तथा घाघरा नदी पर

दौराली और इसकी सहायक के संगम के बीच में लगभग २ लाख टन माल ढोने की क्षमता अनुमानित की गयी है।

दक्षिणी भारत में गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के निचले भागों में ही नावें चल सकती हैं। इनका शेष भाग पठारी है। गंगा नदी के मुहाने से ८०५ किलोमीटर ऊपर (जहाँ लगातार रूप से नदी ६ मीटर गहरी है) कानपुर तक स्टीमर चला करते हैं। छोटी-छोटी नावें तो हरद्वार तक जा सकती हैं किन्तु रेलो के बन जाने से गंगा का महत्त्व कम हो गया है। सन् १८५४ तक इलाहाबाद से ६४४ किलोमीटर और ऊपर गढ़मुक्तेश्वर तक स्टीमर चले जाते थे। किन्तु अब केवल बक्सर तक ही नदी पर नावें चलायी जा सकती हैं।

यमुना नदी में प्रयाग से राजापुर तक साल भर नावें चलती हैं।

ब्रह्मपुत्र नदी के मुहाने से डिब्रूगढ़ तक १,३८४ किलोमीटर तक नावें चलती हैं किन्तु इस नदी में नावें चलाने में कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। नदी के मार्ग में प्रायः नये-नये द्वीप बनते रहते हैं जिनमें नावों को खेने में बड़ी अड़चन पड़ती है तथा वर्षा ऋतु में जल की तेजी के कारण नावों के उलट जाने का डर रहता है। हुगली नदी में भी नावियां तक जहाज पहुंच सकते हैं। छोटी नहरें बड़ी नदियों को जोड़ती हैं, इसलिए कलकत्ता से असम तक स्टीमर चलते हैं। अधिकांश जूट, चाय, लकड़ी और चावल नावों से ही बड़े शहरों में पहुँचाया जाता है।

यद्यपि भारत में नदियाँ बहुत हैं किन्तु फिर भी आन्तरिक आवागमन के लिए उनका पूर्ण उपयोग नहीं होता। इसका मुख्य कारण भूमि की रचना तथा अब तक विदेशी सरकार का ध्यान केवल रेल मार्गों की उन्नति करना ही रहा है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित मुख्य कारण हैं :

(१) भारत की अधिकांश नदियों में वर्षा के दिनों में बाढ़ आ जाती है। इस समय नदी की धारा तेज होती है अतः उसमें नावें खेना बड़ा ही कठिन होता है।

(२) गर्मी के दिनों में अधिकांश नदियाँ सूखी रहती हैं। जो कुछ थोड़ा बहुत जल नदियों में मिलता है वह शीत और ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में यहाँ की विशाल नहर व्यवस्था को जल देने के लिए उपयोग में आ जाता है। सिंचाई के लिए जल को इस तरह उपयोग कर देने से नदियों में ग्रीष्म ऋतु में जल नहीं रहता।

(३) दक्षिण की नदियाँ पठारी भूमि पर बहने के कारण नावें चलाने के योग्य ही नहीं हैं क्योंकि इनके मार्गों में प्रपात पड़ते हैं।

(४) कभी-कभी नदियाँ अपने मार्ग भी बदला करती हैं इस कारण भी उनका उपयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे एक किनारे की ओर पतली धारा के रूप में बहने लगती हैं। अधिकतर नदियों के किनारे पर बहुत दूर तक मोटी मिट्टी जमती रहती है। इस कारण नदी के किनारे तक लदी हुई गाड़ियों का आना कठिन हो जाता है।

(५) प्रायः सभी नदियाँ छिछले तथा बालूमय डेल्टाओं में गिरती हैं अतः समुद्री किनारों से देश के भीतरी भागों में जहाज नहीं जा सकते।

आन्तरिक जल-परिवहन विकास की आवश्यकता और उसकी सम्भावनाएँ

देश की विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था के लिए आन्तरिक जल मार्गों से प्राप्त होने वाले लाभ इस प्रकार हैं :

(१) उत्तर-पूर्वी भारत में प्रति वर्ष बाढ़ें आती हैं जिससे अनेक बार कई महीनों के लिए सड़क यातायात बन्द हो जाता है, ऐसे समय जल यातायात लाभदायक हो सकते हैं।

(२) लम्बी यात्रा के लिए तथा अधिक परिमाण में जाने वाले माल के लिए जल परिवहन रेल और सड़क दोनों से सस्ता पड़ता है[1] कलकत्ता से असम को मशीनें, भारी यन्त्र एवं अन्य भारी उपकरण जल-मार्गों से ही भेजे जा सकते हैं। इसी प्रकार असम से कलकत्ता को चाय, जूट तथा चावल लाया जा सकता है।

(३) यद्यपि नावों और धुआँकशों की चाल प्रति मील मोटर और रेल दोनों से कम होती है किन्तु एक साथ अधिक परिमाण में जाने वाले माल को नदी से भेजने में समय की बचत होती है। क्योंकि बहुत-सा माल एक साथ बिना मार्ग में रुके निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाता है।[2]

(४) रेलें और सड़कें वर्तमान यातायात वृद्धि के अनुरूप नहीं बढ़ायी जा सकतीं क्योंकि उनके लिए पर्याप्त पूँजी उपलब्ध नहीं है जबकि जलमार्ग प्राकृतिक हैं जिनके परिवहन योग्य बनाने के लिए अपेक्षाकृत बहुत कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। १·६ किलोमीटर रेलमार्ग भारत में ६ से १० लाख रुपये की पूँजी से बनता है, १·६ किलोमीटर साधारण सड़क १५,००० रुपय की पूँजी से (राष्ट्रीय राजपथ ३ से ४ लाख रुपये से बनता है) किन्तु नदी मार्ग के लिए कोई पूँजी आवश्यक नहीं क्योंकि यह प्रकृति की देन है।

(५) युद्ध के समय अथवा अन्य राष्ट्रीय संकट के दिनों में जल परिवहन के लिए उतना भय नहीं जितना रेल अथवा सड़क के लिए। अतः आन्तरिक जल परिवहन का विकास राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से करना वाञ्छनीय है।

[1] जल परिवहन कम्पनियाँ कलकत्ता से डिब्रूगढ़ (१,१५० मील) और कलकत्ता से पटना (६२० मील) तक बेड़ों (flotilla) द्वारा माल ले जाती हैं और प्रत्येक बेड़े में १।। बड़ी गाड़ी और ४ पतली गाड़ी के बराबर माल लादा जा सकता है। माल की ढुलाई १½ आना प्रति टन मील पड़ती है, जबकि मोटर ठेले की ढुलाई ३ से ६ आना प्रति टन मील और रेल की १½ से ३½ आना प्रति टन मील है।

—*Report of the Inland Water Transport Committee*, 1959

[2] असम से कलकत्ता तक चाय की पेटियाँ जल मार्ग से ७ दिन में पहुँचती हैं जबकि रेल मार्ग से वे १५ से २० दिन में।

भारत को प्रकृति-दत्त इतने अमूल्य जल परिवहन के आन्तरिक साधन मिले हैं, जिनका अनुमान साधारणतः लगाना सरल नहीं है। अधिकांश भारतीय नदियाँ सदावाहिनी हैं जो सदा हिम से मुक्त रहती हैं। ये अधिकतर समतल भूमि पर होकर बहती हैं अतएव हमें उतने जलावरोधों (Locks) की भी आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी अन्य देशों में। यह सौभाग्य ही है कि उत्तरी भारत में गंगा और उसकी सहायक नदियाँ मिलकर एक विस्तृत जल मार्ग बनाती हैं। इसी प्रकार मेघना, ब्रह्मपुत्र एवं बंगाल, बिहार, असम और उड़ीसा की अनेक छोटी-छोटी नदियाँ भी उपयोगी हैं। दक्षिणी भारत में महानदी, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा, तापी, आदि नदियों की अब तक उपेक्षा की जाती रही है। इनका पूर्ण विकास आवश्यक है।

केन्द्रीय जल-शक्ति, सिंचाई और नौका सचालन आयोग (CWINC) भारत में जल परिवहन के विकास में प्रयत्नशील है। इसका कार्य वर्तमान जल-मार्गों को सुधारना, नये जलमार्गों की स्थापना करना और उनको नावें चल सकने के योग्य बनाना है। नदी यातायात के मार्ग में एक बड़ी कठिनाई यह है कि सिंचाई की नहरों के कारण जल की कमी आ जाती है। इसका उपाय यह है कि जल सचय (water conservation) की उचित व्यवस्था की जाये। यह व्यवस्था बड़ी खर्चीली होती है और केवल जल-यातायात के लिए इतना खर्च करना सम्भव नहीं हो सकता। नदियों की बहुमुखी योजनाओं (सिंचाई, बिजली, बाढ़ नियन्त्रण, यातायात, आदि) के बनने पर ही यह जल व्यवस्था सम्भव है। इसीलिए भारत सरकार ने नदियों की बहुमुखी योजना की नीति को स्वीकार किया है। इससे जल यातायात की कठिनाई दूर हो जायगी।

१६४६ की यातायात सर्वेक्षण समिति ने आन्तरिक जलमार्गों की उन्नति के लिए निम्न सुझाव दिये हैं :

(१) कलकत्ता-बन्दरगाह पर आयात किये हुए खाद्यान्न का जो भाग उत्तर प्रदेश और बिहार के लिए नियत किया जाये उसका २५% जल मार्गों से ले जाया जाये। (२) कोयले और खनिज तेल के यातायात का एक बड़ा रेलों से हटाकर जल मार्गों के लिए सुरक्षित कर दिया जाये। (३) जल मार्गों के क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिए जिससे उन्हें पर्याप्त यातायात उपलब्ध हो सके।

केन्द्रीय जलशक्ति, सिंचाई तथा नौका सचालन आयोग ने भारत के विभिन्न भागों में जल मार्गों की उन्नति करने की निम्न योजनाएँ बनायी हैं :

(१) बंगाल में दामोदर घाटी योजना के अन्तर्गत रानीगंज की कोयले की खानों को एक नहर द्वारा हुगली नदी से मिलाया गया है। गंगा बैरेज प्रोजेक्ट के अन्तर्गत भी एक नहर बनाने की योजना है जो भागीरथी नदी से जंगीपुर के पास मिलेगी। गंगा और भागीरथी के बीच जल मार्ग, तिस्ता नदी योजना के अन्तर्गत उत्तरी तथा पूर्वी पश्चिमी बंगाल और कलकत्ता के बीच के जल मार्गों का पुनर्निर्माण किया जायगा। इस योजना के अनुसार गंगा नदी पर राजमहल स्थान पर एक बाँध

बनाया जायेगा। इसकी सहायता से गंगा नदी के जल को नहर द्वारा भागीरथी नदी की तलहटी में डाल दिया जायेगा। यह योजना कई उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनायी जा रही है : (i) बंगाल-बिहार की सीमा पर गंगा नदी के आर-पार एक बाँध बना कर भागीरथी तथा पश्चिमी बंगाल की अन्य नदियों में अधिक जल की व्यवस्था की जायेगी। (ii) कलकत्ता और गंगा के बीच का जल मार्ग नाव्य बनाया जायेगा। (iii) हुगली नदी में अधिक जल आ जाने से उसमें नावें चलाई जा सकेंगी। इस योजना के पूरे होने पर भागीरथी में साल भर जल भरा रहेगा, हुगली नदी के जल का आवागमन जारी रहेगा और कलकत्ता से बिहार और उत्तर प्रदेश तक सीधा जल मार्ग बन जायेगा तथा वर्तमान मार्ग ८०० किलोमीटर से छोटा हो जायगा।

(२) असम की दीहींग, डिब्रू, धनसीरी, तथा कलाग नदियों का पुनरुत्थान करना।

(३) बिहार में गण्डक और कोसी तथा उनकी सहायक नदियों का पुनर्निर्माण करना तथा सोन घाटी योजना के अन्तर्गत सोन नदी को २४० किलोमीटर तक यातायात के योग्य बनाना।

(४) बेतवा और चम्बल नदियों की बाढ़ के जल को रोककर ऐसी व्यवस्था करना जिसके फलस्वरूप शीत ऋतु में भी यातायात के लिए पर्याप्त जल की मात्रा उपलब्ध हो सके।

(५) महानदी योजना के अन्तर्गत हीराकुड बाँध के पूरा हो जाने पर महानदी का ४८३ किलोमीटर का टुकड़ा जल यातायात के योग्य हो सकेगा।

(६) उड़ीसा की तटीय नहरों को आगे बढ़ाकर आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु की नहरों को जोड़ दिया जाय जिससे असम से तमिलनाडु तक जल यातायात का सीधा सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

(७) कलकत्ता से कटक और मद्रास होकर कोचीन तक जल मार्ग का विकास करना जिससे असम से पश्चिमी तट तक सीधा सम्पर्क बन सके।

(८) पश्चिमी तट और पूर्वी तट के बीच सीधा जल मार्ग स्थापित करने के लिए नर्मदा नदी को सोन की सहायक जोहिला से जोड़ा जायेगा। इसी प्रकार नर्मदा की सहायक करम नदी को चम्बल से, नर्मदा तथा यमुना नदी को केन और हीरन नदियों से तथा गोदावरी को नर्मदा से मिलाया जायेगा।

(९) मध्य प्रदेश में नर्मदा और ताप्ती नदियों को यातायात के योग्य बनाया जाये।

(१०) ककड़ापार योजना के अन्तर्गत सूरत के निकट समुद्र से ककड़ापार बाँध तक और ८० किलोमीटर ऊपर तक नावें चलाने की सुविधा मिल सकेगी।

(११) घाघरा नदी को गंगा के संगम से बहरामघाट तक नाव्य बनाने की भी योजना है। केन्द्रीय जल और विद्युत आयोग (१९५६) ने एक वृहद योजना बनायी है जो ३० वर्षों के उपरान्त कार्यान्वित कर दी जायेगी।

प्रथम योजनाकाल मे पश्चिम बगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और असम की राज्य सरकारो के सहयोग से गगा-ब्रह्मपुत्र बोर्ड की स्थापना की गयी जिसका मुख्य कार्य जलमार्गों का विकास करना है। इस बोर्ड के तत्त्वावधान में १५१ किलोमीटर की दूरी तक छपरा और बुरहज के बीच मे देशी नावें चलायी जाती हैं। पटना और बक्सर के बीच १५० किलोमीटर तक साप्ताहिक सेवा और पटना तथा राजमहल के बीच ३२६ किलोमीटर की दूरी तक स्टीम बार्जेस चलाये जाते हैं।

द्वितीय योजनाकाल में पांडु बन्दरगाह का निर्माण, पश्चिमी तटीय नहर को बाडगरा से माही तक बढ़ाने तथा बकिंघम नहर को अधिक गहरा करने का कार्य किया गया।

तृतीय योजनाकाल मे बकिंघम नहर, पश्चिमी तटीय नहर, उड़ीसा की तालदन्डा और केन्द्रपारा की नहरो का विकास किया गया तथा प्रदीप और पांडु बन्दरगाहों की व्यापारिक क्षमता को बढ़ाया गया। ब्रह्मपुत्र और सुन्दरवन के बीच चलाने के लिए ड्रैजर और नावें खरीदें गये तथा गोहाटी के निकटवर्ती क्षेत्र का सुधार किया गया।

फरक्का अवरोधक बाँध (Farakka Barrage)

इस बाँध के अन्तर्गत एक २,२१० मीटर लम्बा बाँध बनाया जा रहा है। यह २५ मीटर ऊँचा होगा। इसके द्वारा गगा नदी के ऊपरी सिरे पर जल को एक ३८·५ किलोमीटर लम्बी सहायक नहर बनाकर भागीरथी नदी मे डाला जायेगा। यहाँ से यह ४५,००० क्यूमेक की मात्रा मे हुगली नदी को पहुँचेगा। इससे हुगली नदी साल भर जल से भरी रहेगी तथा कलकत्ता के बन्दरगाह मे जमने वाली रेत समुद्र तक पहुँचती रहेगी। १० मीटर गहराई वाले जहाज कलकत्ता के बन्दरगाह तक पहुँच सकेंगे। इस बाँध पर अनुमानतः १६० करोड रुपया खर्च हुआ है और यह १६७२ तक बनकर समाप्त हो गया है।

गंगा-कावेरी संगम योजना

देश की जलराशि का अधिकाधिक उपयोग करने हेतु गगा-कावेरी सगम की एक भव्य योजना विचाराधीन है, जिसके अनुसार गगा नदी को कावेरी नहर से सम्बद्ध किया जायेगा। वर्षा काल मे गगा में असीम जल रहता है। इस अतिरिक्त जल के २० से ४० हजार क्यूसेक जल नहर शृंखलाओं के माध्यम से कावेरी तक पहुँचा कर उसका उपयोग किया जा सकता है। पहले इस जल का उपयोग राजस्थान की मरुभूमि और मैसूर के पठार को उपजाऊ बनाने मे किया जायेगा। गगा के जल को कावेरी से भी आगे धुर दक्षिण मे ताम्रपर्णी नदी तक ले जाया जा सकेगा।

योजना के अनुसार पटना और सोन नदी के बीच गगा पर एक अवरोधक (बैराज) बनाया जायेगा जिसमे गगा के जल को ऊँचा उठाकर दर्धा और मोरहर में डाला जा सके। इसके लिए सभी नदियों पर समुद्र तल से ८,३०० मीटर ऊँचाई पर बैराज बनाने पड़ेंगे। इसके बाद यह नहर मोरहर नदी और उत्तर कोयल नदी के

बीच ऊँचे भू-भाग को पार करेगी। फिर यह नहर रिहन्द नदी बेसीन में प्रवेश करेगी। रिहन्द और उसकी सहायक नदियों पर बाँध बनाने पड़ेंगे, जिनसे यह नहर रिहन्द और महानदी के बेसिन को अलग करने वाले भू-भाग को पार कर सके।

इसके बाद यह नहर नर्मदा और महानदी को अलग करने वाले ऊँचे भू-भाग से होकर निकलेगी। नर्मदा बेसिन को पार करते समय गंगा के कुछ जल को राजस्थान के उपयोग के लिए नर्मदा में छोड़ा जा सकेगा।

नर्मदा बेसिन को पार करने के बाद यह नहर नर्मदा और वैनगंगा नदी को अलग करने वाले भू-भाग में प्रवेश करेगी। इस भू-भाग को पार करने के बाद यह नहर वैनगंगा बेसिन से हो कर जायेगी और फिर पेंच नदी को पार कर वैनगंगा और ताप्ती को अलग करने वाले भू-भाग में प्रवेश करेगी। फिर यह नहर पैनगंगा बेसिन से होती हुई पैनगंगा और गोदावरी के बेसिनों को अलग करने वाले भू-भाग को पार करेगी, फिर सम्भव है कि इस नहर को पोचमपाड बाँध के निकट गोदावरी की एक शाखा में गिराया जाय। यहाँ से फिर इस जल को नहर द्वारा पूना की ओर ले जाने का विचार है, जिससे इसे जायकवाडी बाँध के निकट गोदावरी में गिराया जा सके।

यह सम्भव है कि पोचमपाड जलाशय से (जिसकी ऊँचाई समुद्र तल से १,०६१ फीट है) इस नहर को कृष्णा नदी के श्रीशैलम जलाशय की ओर मोड़ा जाये (जिसकी ऊँचाई समुद्र तल से ८८५ फीट है)। इसे जोड़ने के लिए लगभग २७० मील लम्बी नहर बनानी पड़ेगी।

श्रीशैलम जलाशय से करीब ३०० फीट की ऊँचाई तक 'उठाना' पड़े जिसमें इसे चित्रावती नदी तक नहर में ले जाया जा सके। गंगा के जल का पूरा-पूरा उपयोग करने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि चित्रावती नदी के साथ-साथ कुछ स्थानों पर बैराज बनाये जायें जिसमें इस जल को लगभग २,३०० फीट की ऊँचाई तक उठाया जा सके। इससे कर्नाटक और तमिलनाडु के क्षेत्रों में अभी जल का जो अभाव है उसकी पूर्ति की जा सकती है। इससे पलार, पेनार, आदि नदियों के सूखाग्रस्त क्षेत्रों को भी लाभ पहुँचेगा। चित्रावती से इस नहर को भूमि की प्राकृतिक ढलान के साथ कावेरी नदी पर बने मेट्टूर जलाशय में गिराया जा सकता है, जिसकी ऊँचाई समुद्र तल से ७६६ फीट है। यहाँ इससे गिरने का उपयोग विद्युत शक्ति के उत्पादन के लिए किया जा सकता है। इसके बाद भी यह सम्भव है कि इस गंगा जल को कावेरी नदी से और दक्षिण ले जाकर भारत की अन्तिम महत्त्वपूर्ण नदी ताम्रपर्णी में गिराया जाये।

राजस्थान की मरुभूमि और मैसूर के पठार की सिंचाई की सम्भावनाओं को देखते हुए तथा इतनी दूरी तय करने में जो जल सूखेगा उसे ध्यान में रखते हुए, ऐसा लगता है कि गंगा-कावेरी नहर तीस लाख एकड़ भूमि की सिंचाई कर सकेगी।

सामुद्रिक जलमार्ग
(OVERSEAS WATERWAYS)

भारत के प्रधान सामुद्रिक मार्ग इन ७ प्रधान बन्दरगाहों से आरम्भ होते हैं : कांडला, बम्बई, मारमोगोओ, कोचीन, मद्रास, विशाखापट्नम तथा कलकत्ता। भारत हिन्द महासागर के सिरे पर स्थित है जिसमें होकर पूर्व से पश्चिम को व्यापारिक मार्ग निकलते हैं। यहाँ पूर्व और दक्षिण-पूर्व को सामुद्रिक मार्ग चीन, जापान, इण्डोनेशिया, मलयेशिया और आस्ट्रेलिया को; दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में संयुक्त राज्य अमरीका, यूरोप तथा अफ्रीका और दक्षिण में श्रीलंका को जाते हैं। इस प्रकार भारत पश्चिमी कलाकौशल प्रधान देशों को पूर्वी खेतिहर देशों से मिलाने के लिए एक कड़ी का काम करता है।

भारत के बन्दरगाहों पर मिलने वाले प्रधान जल मार्ग निम्न हैं .

(क) स्वेज जल मार्ग (Suez Route) के खुल जाने से भारत और यूरोप के बीच का व्यापार बहुत बढ़ गया है। इस मार्ग द्वारा भारत यूरोप को कच्चा माल और खाद्य पदार्थ भेजता है तथा बदले में तैयार माल और मशीनें मँगवाता है।

(ख) उत्तमाशा अन्तरीप जल मार्ग (Cape of Good Hope Route) भारत को दक्षिणी अफ्रीका और पश्चिमी अफ्रीका से जोड़ता है। कभी-कभी दक्षिणी अमरीका जाने वाले जहाज भी इसी मार्ग से जाते हैं। भारत इस मार्ग से अपने यहाँ रुई, कोयला, शक्कर, आदि मँगवाता है।
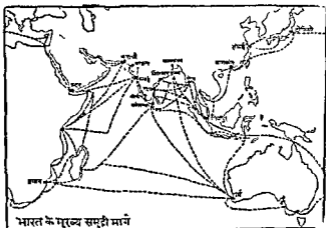
चित्र—१६'४

(ग) सिंगापुर जल-मार्ग (Singapore Route) इसका आवागमन की दृष्टि से स्वेज जलमार्ग के बाद दूसरा स्थान है। यह मार्ग भारत को चीन और

जापान से जोड़ता है। इस मार्ग द्वारा भारत, कनाडा और न्यूजीलैण्ड के बीच भी व्यापार होता है। भारत में इस मार्ग से सूती-रेशमी कपड़ा, लोहा और इस्पात का सामान, मशीनें, चीनी के बर्तन, खिलौने, रासायनिक पदार्थ, कागज, आदि आते हैं और बदले में रुई, लोहा, मैंगनीज, जूट, लाख, अभ्रक, आदि निर्यात होते हैं।

(घ) सुदूर पूर्व का जल मार्ग (For Eastern or Australian Route) भी महत्वपूर्ण है। यह मार्ग भारत को आस्ट्रेलिया से जोड़ता है। इस मार्ग से भारत में गेहूँ, कच्ची ऊन, घोड़े फल, आदि वस्तुओं का आयात होता है और बदले में जूट, चाय, अलसी, आदि निर्यात होते हैं।

इन मार्गों पर अधिकतर अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जापानी और इटेलियन कम्पनियों के जहाज चलते हैं। भारतीय कम्पनियों के जहाजों की संख्या बहुत ही कम है।

भारत के सामुद्रिक मार्ग विशेषतः कलकत्ता, विशाखापट्टनम, मद्रास, कोचीन, कांधला एवं बम्बई के बन्दरगाहों से ही आरम्भ होते हैं। नीचे की तालिका में इन बन्दरगाहों से आरम्भ होने वाले प्रमुख समुद्री मार्गों को बताया गया है :

कलकत्ता

कलकत्ता—सिंगापुर—न्यूजीलैण्ड।
कलकत्ता—कोलम्बो—पर्थ—एडीलेड।
कलकत्ता—कोलम्बो—अदन—पोर्ट सईद।
कलकत्ता—सिंगापुर—हांगकांग—टोकियो।
कलकत्ता—विशाखापट्टनम—मद्रास।
कलकत्ता—रंगून।
कलकत्ता—सिंगापुर—बटाविया।

विशाखापट्टनम

विशाखापट्टनम—रंगून।
विशाखापट्टनम—मद्रास—कोलम्बो।
विशाखापट्टनम—कोलम्बो—अदन—पोर्ट सईद।
विशाखापट्टनम—कलकत्ता।

मद्रास

मद्रास—कोलम्बो—मॉरीशस।
मद्रास—कोलम्बो—अदन—पोर्ट सईद।
मद्रास—रंगून—सिंगापुर।
मद्रास—कलकत्ता।
मद्रास—बम्बई।

कोचीन

कोचीन—बम्बई—करांची।
कोचीन—बम्बई—अदन—पोर्ट सईद।
कोचीन—कोलम्बो—कलकत्ता—पर्थ।
कोचीन—कोलम्बो—कलकत्ता।

बम्बई

बम्बई—कोलम्बो—पर्थ—एडीलेड।
बम्बई—मोम्बासा—डरबन—केपटाउन।
बम्बई—कोलम्बो—सिंगापुर।
बम्बई—करांची—अदन।
बम्बई—पोर्ट सईद।
बम्बई—कोलम्बो—मद्रास।

सामुद्रिक यातायात का विकास

सितम्बर १९३९ में जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तो भारत सरकार को यह अनुभव हुआ कि भारतीय जहाजी बेड़े की कितनी आवश्यकता है। इस काल में बहुत से भारतीय जहाज सरकार ने युद्ध कार्य के लिए अपने अधिकार में ले लिये जिससे देश की रक्षा की जा सके। कई जहाज शत्रुओं द्वारा नष्ट भी कर दिये गये। युद्ध के पश्चात् भारतीय जहाजों की संख्या केवल ६३ थी जिनका टन भार १,३१,७४८ टन था। इसमें ६ जहाज तो अकेले सिंधिया कम्पनी के ही थे। सम्पूर्ण जहाजों के भार का यह ६१% था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त पोतचालन विकास के लिए निम्न कार्यक्रम अपनाये गये हैं:

भारत में जहाजों का निर्माण करना—भारत में जहाज बनाने का सर्वप्रथम कारखाना सन् १९४७ में विशाखापट्टनम में बनकर तैयार हुआ। सन् १९४८ में इस कारखाने में प्रतिवर्ष दो जहाज बनने लगे किन्तु सन् १९४९ में जब सिंधिया कम्पनी ने इस कारखाने को चलाने में असमर्थता प्रकट की तो १ मार्च, १९५२ में भारत सरकार के आधीन ही 'हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि०' नामक कम्पनी की स्थापना की गयी। यहाँ अभी ३ से ४ जहाज बनते हैं किन्तु अन्तत ६ जहाज बनाये जाने सकेंगे जिनका भार प्रत्येक का १२,५०० टन से १४,५०० टन होगा। दूसरा कारखाना कोचीन में बन रहा है जहाँ ६६,००० टन के जहाज बनाये जायेंगे। इसे बाद में बढ़ाकर ८५,००० टन का किया जा सकेगा।

तटीय व्यापार में बड़े-बड़े जहाजों को सामुद्रिक व्यापार में संलग्न करना—सन् १९७२ में भारत के तटीय व्यापार में लगे ६२ जहाज थे जो २·१७ लाख टन शक्ति के थे। इन जहाजों को विदेशी व्यापार के लिए उपयोग में लाने और उनके स्थान पर छोटे-छोटे जहाज बनाने की नीति का अनुसरण किया गया है।

पाल से चलने वाले जलयानों का उपयोग—भारत के समुद्रतटीय व्यापार में अनेक पाल से चलने वाले जलयान भी भाग लेते हैं। सन् १९४८ में नियुक्त की गयी जलपोत समिति (Sailing Vessels Committee) की जाँच के अनुसार भारत में लगभग ८०,००० पाल से चलने वाले जलयान हैं जिनके द्वारा प्रतिवर्ष लगभग १२ लाख टन माल समुद्र तट पर लाया और ले जाया जाता है। इनकी माल ले जाने की क्षमता लगभग २,५०,००० टन है। इनके द्वारा समुद्रतटीय व्यापार का १/४ व्यापार होता है किन्तु इन जलयानों की दशा बड़ी दयनीय है।

व्यापारिक नीति समिति की जिन्होंने रिपोर्ट में दी गयी विभिन्न सिफारिशों पर विचार कर भारत सरकार ने एक बड़ी व्यापारिक योजना बनायी जिसमें दो राष्ट्रीय जहाजी निगमों (Shipping Corporations) की स्थापना की व्यवस्था की गयी। प्रत्येक निगम के जिम्मे विभिन्न क्षेत्रों के जहाज संचालन का कार्य था। प्रथम निगम पश्चिमी जहाजी निगम (Western Shipping Corporation) भारत और फारस की खाड़ी, भारत और लाल सागर के बीच, मिस्र के बन्दरगाहों और भारत-पोलैण्ड और भारत-रूस मार्ग के बीच व्यापार संचालन करता था। द्वितीय निगम भारत-पूर्वी अफ्रीका, भारत-आस्ट्रेलिया, भारत-मलयेशिया और भारत-इण्डोनेशिया के बीच व्यापार करता था। इसका नाम पूर्वी जहाजी निगम (Eastern Shipping Corporation) था। अक्टूबर १९६१ में भारत सरकार द्वारा संचालित इन दोनों निगमों को (Western Shipping Corporation और Eastern Shipping Corporation) मिलाकर एक नये निगम की स्थापना की गयी है जिसका नाम भारतीय जहाजी निगम (Shipping Corporation of India) रखा गया है। इस निगम के पास ७५ जहाज हैं जिनका भार ११.६३ लाख GRT है।

इस निगम के जहाज माल ढोने के लिए निम्न मार्गों पर चल रहे हैं :

(१) भारत-आस्ट्रेलिया,
(२) भारत-जापान,
(३) भारत-काला सागर,
(४) भारत-पोलैण्ड,
(५) भारत—फारस की खाड़ी,
(६) भारत-सुदूरपूर्व जापान,
(७) पश्चिमी तट-पाकिस्तान-जापान,
(८) भारत-पाकिस्तान-इंगलैण्ड-यूरोप महाद्वीप।
(९) भारत—संयुक्त राज्य
(१०) पूर्वी तट-पूर्वी कनाडा-महान झीलें
(११) भारत-मारीशस।

यात्री मार्ग इस प्रकार हैं

(१) बम्बई-पूर्वी अफ्रीका,
(२) तमिलनाडु-मलयेशिया-सिंगापुर,
(३) भारत-अण्डमान,
(४) पश्चिमी तट-पश्चिमी पाकिस्तान
(५) रामेश्वरम्-तलाईमनार (लंका)

टैंकर जहाज तेल कम्पनियों का शुद्ध तेल तटीय मार्गों से ढोने के काम में आते हैं।

इस निगम की एक सहायक कं० मुगल लाइन्स है, जिसके पास ४ यात्री तथा माल ढोने के जहाज हैं, जिनका टन भार ३७,१८० GRT है। ये हज यात्रियों को ले जाते हैं।

सन् १९४७ में भारत में केवल २·०० लाख टन भार की जहाजी शक्ति थी। १९५०-५१ में भारत की कुल जहाजी शक्ति ३·९१ लाख टन की थी। यह बढ़कर १९५५-५६ में ४·८० लाख टन और १९६०-६१ में ९·०५ लाख टन हो गयी। १९६५-६६ में भारत की कुल जहाजी शक्ति १५·४० लाख टन की थी। १९७२-७३ में यह २६·५५ लाख टन हो गयी। तटीय व्यापार में लगे ५९ जहाजों का टन भार २·१७ लाख GRT और विदेशी व्यापार में लगे २०१ जहाजों का टन भार २३·०३ लाख GRT था।

सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में ३३ कम्पनियाँ कार्य कर रही हैं। इनमें कुछ मुख्य कम्पनियों की जहाजी शक्ति इस प्रकार है :

सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कं०	४ १३ लाख GRT
जयन्ती शिपिंग क०[1]	२·९५ ,,
इण्डियन स्टीमशिप क०	१ ४२ ,,
ग्रेट ईस्टर्न शिपिंग कं०	२·३१ ,,
रत्नाकर शिपिंग क०	० ६५ ,,
द० भारत शिपिंग क०	१ २२ ,,
डैम्पो स्टीमशिप कं०	०·४५ ,,
एपीजे लाइन्स	०·४५ ,,

भारतीय जहाजों का योग विदेशी व्यापार में १९६८-६९ में ९६ लाख टन का था। १९६९-६० में १०७ लाख टन, १९७०-७१ में १०४ लाख टन और १९७१-७२ में ६० लाख टन।

यद्यपि भारत का विश्व के व्यापारिक राष्ट्रों में ११वाँ स्थान है, किन्तु भारतीय पोतचालन विश्व के सामुद्रिक राष्ट्रों में १९वें स्थान पर है। संयुक्त राज्य का व्यापार विश्व के व्यापार का १६·४% है, किन्तु उसका जहाजी बेड़ा विश्व के १९·१% के बराबर है। इसी प्रकार ब्रिटेन, लाइबेरिया, नार्वे, जापान, इटली, यूनान, आदि देशों के ये प्रतिशत क्रमशः १० एवं १६·३, ०·०३ एवं ८ ७, १·० एवं ७ ६, ३·४ एवं ५·३; ३·० एवं ४; ०·४ एवं ३·५ हैं। भारत का व्यापार विश्व व्यापार का १·५२% है किन्तु जहाजी बेड़ा केवल ०·६६% ही है। अतएव, इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि भारतीय पोतचालन को उन्नत बनाया जाये।

[1] अक्टूबर १९७० से यह सरकार के आधीन है।

वायु परिवहन
(AIR TRANSPORT)

भारत में सर्वप्रथम हवाई उड़ान सन् १६११ में आरम्भ हुई। इस समय कुछ स्थानों में केवल प्रदर्शन की दृष्टि से हवाई उड़ानों की व्यवस्था की गयी थी। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से वायु परिवहन का हमारे देश में वास्तविक विकास आरम्भ हुआ। इस समय भारत सरकार ने कुछ जहाज उतरने के स्थानों (Landing Grounds) की व्यवस्था की। तब से लगातार वायु परिवहन में विकास होता रहा है। भारतीय वायु परिवहन का इतिहास ६३ वर्ष पुराना है।
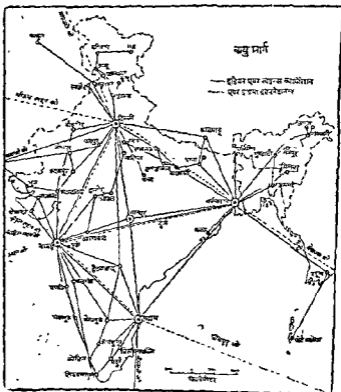
चित्र—१६५

१६७२-७३ में भारतीय वायुयानों ने कुल ७३२ करोड़ किलोमीटर की उड़ानें कीं, २६ लाख यात्री ढोये और १२५ लाख किलोग्राम डाक ढोयी।

भारत के वायुयान सम्बन्धी समझौते कई देशों से हुए जिनमें मुख्य निम्न हैं :

अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, श्रीलंका, अरब गणराज्य, फ्रांस, इटली, जापान, लेबनान, हंगरी, मलयेशिया, इण्डोनेशिया, नीदरलैण्ड्स, पाकिस्तान, फिलीपाइन, स्विट्जरलैण्ड, स्वीडेन, थाईलैण्ड, ईराक, बेल्जियम, सिंगापुर, संयुक्त राज्य अमरीका, इंगलैण्ड, रूस, ईरान, फेडरल ऑफ जर्मनी, चैकोस्लोवाकिया।

सन् १९५३ से भारत में वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा सभी कम्पनियों को दो नवनिर्मित निगमों के अन्तर्गत कर दिया गया।

इण्डियन एयरलाइन्स निगम (Indian Airlines Corporation)—देश के भीतरी भागों तथा समीपवर्ती देशों के साथ (पाकिस्तान, बर्मा, नेपाल, अफगानिस्तान और श्रीलंका) वायुमार्गों की व्यवस्था करता है। इस निगम के पास ७ डकोटा, ७ बोइंग, १६ H-S-748, ९ फोकर फ्रेंडशिप, ७ के वेरेवेलेस, ६ विस्काउण्ट हैं जो देश के प्रमुख केन्द्रों को ३१,७८२ किलोमीटर मार्गों पर सम्बन्धित करते हैं। इण्डियन एयरलाइन्स कॉर्पोरेशन के विमानों ने १९७२-७३ में २० करोड़ टन किलोमीटर की उड़ानें की और २८ लाख यात्री ढोये।

एयर इण्डिया (Air India) निगम विदेशों के लिए वायुमार्गों की व्यवस्था करता है। इस निगम के पास ९ बोइंग विमान हैं। यह निगम ३७,७६० किलोमीटर लम्बे वायुमार्गों द्वारा विश्व के २७ देशों से भारत का सम्बन्ध स्थापित करता है। १९७२-७३ में इस निगम के विमानों ने लगभग २५ करोड़ टन किलोमीटर की उड़ानें कीं। उन्होंने ४ ७ लाख यात्री ढोये।

घरेलू अनुसूचित वायु सेवाओं की प्रगति (मासिक औसत)

वर्ष	उड़ान (घण्टों में)	उड़ान (हु० किलोमीटर)	यात्री ले जाये गये (हु० में)
१९५१	७·२५	१,८२८	३५
१९६१	८·६३	२,३१७	६२
१९७१	७·५०	२,७८४	१७१
१९७२	—	४,५१६	२२३
अन्तर्राष्ट्रीय अनुसूचित वायु सेवाओं की प्रगति (मासिक औसत)			
१९५१	२·७२	७८६	६
१९६१	२·९१	१,३८२	१९
१९७१	३·३०	२,१६१	४१
१९७२	—	२,०४८	५०

हवाई अड्डे (Aerodromes)

भारतीय नागरिक उड्डयन विभाग के अन्तर्गत ८४ हवाई अड्डे हैं। विमानों द्वारा उड़ान लेने अथवा उतरने की सुविधाओं को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय हवाई अड्डों को निम्न चार श्रेणियों में बाँटा गया :

(१) अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व के हवाई अड्डे ४ हैं जो सान्ताक्रुज (बम्बई), दमदम (कलकत्ता), सेंट थामस (मद्रास), तथा पालम (दिल्ली) में हैं। यहाँ विदेश जाने वाले विदेशी वायुयान भी ठहर सकते हैं।

(२) द्वितीय श्रेणी के हवाई अड्डे ८ हैं। यहाँ छोटे-बड़े सभी वायुयान उतर-चढ़ सकते हैं। अगरतला, अहमदाबाद, बेगमपेठ (हैदराबाद), दिल्ली (सफदरजंग), गौहाटी, मद्रास (सेंट थामस माऊंट), नागपुर और तिरुचिरापल्ली ऐसे ही अड्डे हैं।

(३) मध्यम श्रेणी वाले हवाई अड्डे ३८ हैं। ये क्रमशः इलाहाबाद, अमृतसर, औरंगाबाद, बागडोगरा (पश्चिमी बंगाल), वाराणसी, बलूरघाट, रायपुर, जुहू (बम्बई), भुंटेर (कुल्लू), बड़ौदा, बेलगांव, बैरकपुर, भावनगर, भोपाल, भुज, कोयम्बटूर, भुवनेश्वर, गया, इन्दौर, जयपुर, जूनागढ़, चण्डीगढ़, विजयवाड़ा, कूचबिहार, गोरखपुर, अमावसी (लखनऊ), मदुराई, बाजपे (मंगलोर), मोहनबाड़ी, लीलाबारी (असम), पटना, पोरबन्दर, राजकोट, तेजपुर (असम), पानीघाट, पन्तनगर, कमालपुर, खोवाई, त्रिवेन्द्रम, राँची, सांगी, तुतीकोरिन, उदयपुर, विशाखापट्टनम, कुंभीरग्राम और कैलाश शहर में हैं।

(४) निम्न श्रेणी के हवाई अड्डे ३१ हैं। ये अकोला, बेहाला, खजुराहो, बिलासपुर, चकुलिया (बिहार), कड्डप्पा (आंध्र), डानाकोदा (तमिलनाडु), झांसी, झरसगुडा (उड़ीसा), जबलपुर, कानपुर, खण्डवा, कोल्हापुर, कोटा, जोगबानी, ललितपुर, मैसूर, मुजफ्फरपुर, सतना, पालनपुर (दीसा), पन्नागढ़, रायपुर, राजमहेन्द्री, रामानाथापुरम, सहारनपुर, शैला (असम), शोलापुर, रक्सूल, पन्ना, पजबूर, बैलोर, वारंगल, काड़ला, माल्दा और हल्दवानी में हैं।

अहमदाबाद, पटना, बम्बई (सान्ताक्रुज), कलकत्ता, (दमदम), दिल्ली (पालम), दिल्ली (सफदरजंग), मद्रास (सेंट थॉमस,), तिरुचिरापल्ली वाराणसी, भुज, जोधपुर, पोर्ट ब्लेअर और अमृतसर को सीमा शुल्कीय हवाई अड्डे बनाये गये हैं।

भारत के प्रमुख वायुमार्ग

वायुमार्गों का प्रथम क्षेत्र भारत के तटीय भागों में दोनों ही ओर है (i) कोलम्बो से मद्रास, विशाखापट्टनम और भुवनेश्वर होते हुए पूर्व तटीय भागों के सहारे कलकत्ता तक। (ii) पश्चिमी तटीय भागों के सहारे त्रिवेन्द्रम से कालीकट, मंगलौर, पणजि, बम्बई, जामनगर, राजकोट होता हुआ भुज को।

दूसरा क्षेत्र भीलरी मार्गों में है। वायुमार्ग इस क्षेत्र में मद्रास को बम्बई तथा बंगलौर, हैदराबाद और पूना से बम्बई और कलकत्ता को वाराणसी, प्रयाग, लखनऊ और नागपुर से जोड़ते हैं।

तीसरा प्रमुख वायुमार्ग दिल्ली को श्रीनगर, अहमदाबाद, बम्बई, भोपाल, नागपुर, हैदराबाद, मद्रास में जोड़ता है।

चौथा वायुमार्ग कलकत्ता को इम्फाल, अगरतला, गौहाटी, और मोहनबाड़ी से जोड़ता है।

भारत के आन्तरिक भागों में वायुमार्गों का संचालन इण्डियन एयरलाइन्स कॉर्पोरेशन के *हाथ में है। इसके वायुयान कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, मद्रास, आदि नगरों* से भारत के प्रमुख नगरों, व्यावसायिक केन्द्रों, राज्यों की राजधानियों और सीमावर्ती देशों को जाते हैं।

सुभीते की दृष्टि से भारत के आन्तरिक वायु मार्गों को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है :

बम्बई से वायुमार्ग बेलगाँव-बंगलौर, कोयम्बटूर-हैदराबाद, बंगलौर-बम्बई-अहमदाबाद; राजकोट-जामनगर-कांडला, जामनगर-राजकोट-भुज-कांडला, पोरबन्दर-राजकोट; केशोद-राजकोट को जाते हैं।

कलकत्ता से वायुमार्ग रंगून-पोर्ट ब्लेयर, चिटगाँव-ढाका, बागडोगरा-पोर्ट ब्लेयर, *गौहाटी-तेजपुर-जोरहाट-मोहनबाड़ी, गौहाटी-मोहनबाड़ी, अगरतला-गौहाटी-*इम्फाल; अगरतला-सिल्चर-इम्फाल; रांची-जमशेदपुर, अगरतला-कमालपुर-कैलाशहर *को जाते हैं।*

मद्रास से वायुमार्ग बंगलौर-कोयम्बटूर-कोचीन-त्रिवेन्द्रम-मदुराई-तिरुचिरापल्ली को जाते हैं।

दिल्ली से वायुमार्ग अमृतसर, चण्डीगढ़-पठानकोट-जम्मू-श्रीनगर, काठमाण्डू-पटना; लखनऊ-वाराणसी-पटना-कलकत्ता, इलाहाबाद-वाराणसी-कलकत्ता, आगरा-वाराणसी-कलकत्ता, ग्वालियर-भोपाल-इन्दौर-बम्बई, दिल्ली-आगरा-जयपुर-जोधपुर-उदयपुर-अहमदाबाद-बम्बई को जाते हैं।

एयर इण्डिया के वायुमार्ग

कलकत्ता से दिल्ली–बम्बई–काहिरा–रोम–डसलडर्फ–जिनेवा–पेरिस–लन्दन जाते हैं।

बम्बई से कराची, अदन और नैरोबी को।

विदेशी कम्पनियों के वायुमार्ग

भारत में होकर जाने वाले मुख्य विदेशी कम्पनियों के वायुमार्ग इस प्रकार हैं।

(१) इंगलैंड की ब्रिटिश ओवरसीज कॉरपोरेशन (BOAC) के वायुयान लन्दन से आरम्भ होकर विभिन्न देशों को होते हुए भारत में आते हैं। ये मार्ग इस प्रकार हैं :

लन्दन से बम्बई होकर (i) फ्रैंकफर्ट-काहिरा-बगदाद-बम्बई; (ii) ज्यूरिच-काहिरा-बहरीन-बम्बई-कोलम्बो-सिंगापुर-हांगकांग; (iii) रोम-इस्तम्बूल-तेहरान-बम्बई-कोलम्बो-कुआलालम्पुर-सिंगापुर-डार्विन-सिडनी।

लन्दन से कलकत्ता होकर (i) ज्यूरिच-बेरुत-करांची-कलकत्ता-सिंगापुर-जकार्ता-डार्विन-सिडनी, (ii) फ्रैंकफर्ट-रोम-करांची-कलकत्ता-डार्विन-सिडनी; (iii) ज्यूरिच-इस्तम्बूल-तेहरान-करांची-कलकत्ता-सिंगापुर-जकार्ता-डार्विन-सिडनी; (iv) डसलडर्फ-काहिरा-करांची-कलकत्ता-रगून-हांगकांग; (v) रोम-बेरुत-करांची-कलकत्ता-हांगकांग-टोकियो; (vi) ज्यूरिच-काहिरा-करांची-कलकत्ता-बैंकाक-सिंगापुर-डार्विन-सिडनी।

लन्दन से दिल्ली होकर (i) फ्रैंकफर्ट-बेरुत-तेहरान-दिल्ली-रंगून-सिंगापुर-जकार्ता-डार्विन-सिडनी; (ii) ज्यूरिच-इस्तम्बूल-तेहरान-दिल्ली-बैंकाक-कुआलालम्पुर-सिंगापुर; (iii) रोम-तेहरान-दिल्ली-बैंकाक-हांगकांग-टोकियो, (iv) फ्रैंकफर्ट-बेरुत-करांची-दिल्ली-बैंकाक-हांगकांग-टोकियो।

(२) एयर सिलोन लि० (Air Ceylon Ltd) के वायुयान कोलम्बो से जाफना-मद्रास; जाफना-तिरुचिरापल्ली और कोचीन-बम्बई होते हुए करांची जाते हैं जहां से वे लन्दन चले जाते हैं।

(३) एयर फ्रांस (Air France) के वायुयान पेरिस से आरम्भ होकर फ्रैंकफर्ट-रोम-एथेंस-इस्तम्बूल-काहिरा-तेलअवीव-तेहरान-करांची-दिल्ली-कलकत्ता और रंगून होते हुए मनीला जाते हैं।

(४) रॉयल डच एयरलाइन्स (K.L.M Royal Dutch Airlines) के वायुयान एमस्टरडम से आरम्भ होकर (i) काहिरा-बसरा-करांची-कलकत्ता, (ii) ज्यूरिच-रोम-बेरुत-करांची-दिल्ली, (iii) कलकत्ता-बैंकाक-मनीला-टोकियो जाते हैं।

(५) पान अमरीकन वर्ल्ड एयरवेज (Pan American World Airways) के वायुयान न्यूयार्क से ब्रुसेल्स-इस्तम्बूल-दमिश्क-करांची-दिल्ली-कलकत्ता होते हुए बैंकाक-हवाई-मनीला-टोकियो-होनोलूलू और सैनफ्रान्सिस्को को जाते हैं।

(६) ट्रान्स वर्ल्ड एयरलाइन्स (TWA) के वायुयान न्यूयार्क से सैनन-पेरिस-जिनोवा-रोम-एथेंस-काहिरा-बसरा-बम्बई को जाते हैं।

(७) क्वेंटास ऐम्पायर एयरवेज (Qantas Empire Airways) के वायुयान (i) सिडनी-डार्विन-सुराबिया-सिंगापुर-रंगून-कलकत्ता-करांची होते हुए बेहरीन-बसरा-काहिरा-मारसलीज और साउथैम्पटन को तथा (ii) सिडनी-डार्विन-सिंगापुर, रंगून-कलकत्ता-काहिरा-रोम-लन्दन को जाते हैं।

(८) स्कैन्डेनेवियन एयरवेज (Secandanavian Airways) के वायुयान-स्टाकहोम से आरम्भ होकर कोपनहेगन-डसलडर्फ-ज्यूरिच-वियना-रोम-एथेंस-काहिरा-तेहरान-करांची होते हुए कलकत्ता आते हैं और वहाँ से टोकियो और मनीला को जाते हैं।

अन्य विदेशी वायु सेवाएँ ये है :

मिडिल ईस्ट एयरलाइन्स—बेरूत-कुवैत-बहरीन-करांची-बम्बई।

ईस्ट अफ्रीकन एयरवेज—नैरोबी-अदन-करांची-बम्बई।

ऐलीटैलिया—रोम-तेहरान-करांची-बम्बई।

जेकोस्लोवाक एयरलाइन्स—प्रेग-काहिरा-बम्बई-रंगून-जकार्ता।

17

सामुद्रिक बन्दरगाह
(SEA PORTS)

भारत की तट रेखा लगभग ५,६८६ किलोमीटर लम्बी है किन्तु यह कम कटी-फटी है तथा सपाट है। अतः इसके तट पर प्रधान या बड़े बन्दरगाह बहुत कम हैं। इसके अतिरिक्त किनारे के निकट जल बहुत छिछला है और किनारे अधिकतर चपटे और बालूमय हैं। नदियों के। मुहानों पर बालू मिट्टी इकट्ठी होती रहती है इसलिए बन्दरगाह तक जहाज नहीं पहुँच सकते। पश्चिमी समुद्र तट पर बम्बई, कोचीन और गोआ बन्दरगाहों को छोड़कर कोई अच्छा बन्दरगाह नहीं है। प्रायः सभी बन्दरगाह (इनको छोड़कर) मानसून के दिनों में व्यापार के लिए बन्द रहते हैं। इसके कई कारण हैं : (१) नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी के कारण ताप्ती और नर्मदा का मुहाना बहुत ही कम गहरा है। (२) इसके अतिरिक्त मई से अगस्त तक पश्चिमी तट पर मानसून पवनों का प्रकोप अधिक रहता है। अतः बम्बई और मार-मुगोआ को छोड़कर अन्य बन्दरगाहों का उपयोग नहीं हो पाता। दक्षिणी भारत के बन्दरगाहों के पोताश्रयों में विशाल जहाजों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त सुरक्षित स्थान नहीं है। (३) समस्त पश्चिमी भाग थोड़ी बहुत कटानों के अतिरिक्त प्रायः सपाट और पथरीला है।

भारत में पूर्वी तट पर यद्यपि नदियों के डेल्टा अधिक हैं किन्तु इन नदियों द्वारा लायी हुई मिट्टी से समुद्र तट पटता रहता है। कलकत्ता के बन्दरगाह पर भी यही कठिनाई रहती है। कभी-कभी घण्टों तक जहाजों को ज्वार-भाटे की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इस भाग में कलकत्ता का बन्दरगाह ही प्राकृतिक है। मद्रास और विशाखापट्टनम कृत्रिम बन्दरगाह हैं। समुद्र जल की गहराई पर्याप्त रखने के लिए निरन्तर झामों (dregers) का प्रयोग करना पड़ता है।

भारत का लगभग ९०% व्यापार इन बन्दरगाहों द्वारा ही होता है क्योंकि उत्तर की ओर से सीमान्त प्रदेश पहाड़ी, अनुपजाऊ और बहुत ही कम बसे हुए भाग हैं।

भारत में तीन प्रकार के बन्दरगाह पाये जाते हैं, बड़े (Major), छोटे (Minor) और मध्यम (Intermediate) बन्दरगाह। प्रधान (या बड़े) बन्दरगाह

केन्द्रीय सरकार तथा गौण (या छोटे) बन्दरगाह राजकीय सरकार द्वारा प्रशासित किये जाते हैं। बम्बई, कलकत्ता, गोआ और मद्रास का प्रबन्ध बन्दरगाह अधिकारियों द्वारा किया जाता है। ये अधिकारी केन्द्रीय सरकार की देख-रेख में कार्य करते हैं। पारादीप, कोचीन, विशाखापट्टनम और कांडला का प्रबन्ध स्थानीय प्रशासकों के हाथ में है। इन दोनों प्रकार के बन्दरगाहों में मुख्य अन्तर निम्न बातों में होता है

(१) पोताश्रय सुरक्षित होता है।

(२) आवागमन के साधन सुविस्तृत होते हैं।

(३) जहाजों के ठहरने के लिए जेटी, डॉक और लंगर स्थानों का सुप्रबन्ध होता है।

(४) स्थानान्तर के लिए पर्याप्त सुविधाएँ होती हैं।

(५) रेलों और सड़कों द्वारा पृष्ठदेश के दूरस्थ स्थानों से भी यातायात का सम्बन्ध होता है।

(६) सुरक्षा और सैनिक दृष्टिकोण से बड़ा बन्दरगाह उपयुक्त रहता है।

(७) व्यापार और यातायात की अधिकता के कारण साल भर लगातार जहाजों की माँग रहती है।

मँझले और छोटे बन्दरगाहों पर राज्य सरकारों का नियन्त्रण रहता है।

यातायात की दृष्टि से भारत में १० लाख टन वार्षिक से अधिक यातायात सम्हालने वाले बन्दरगाह को बड़ा, १ लाख टन वाले को मँझला और १,५०० से १ लाख टन वाले को छोटा तथा १,५०० टन से कम वाले को उप-बन्दरगाह कहा जाता है।

भारत में ८ बड़े (Major) बन्दरगाह हैं कांडला, बम्बई, कोचीन, पारादीप, मारमुगोआ, मद्रास, विशाखापट्टनम और कलकत्ता। इन्हीं बन्दरगाहों द्वारा भारत के विदेशी व्यापार का लगभग ६०% से भी अधिक होता है। १९७१-७२ में इन बड़े बन्दरगाहों द्वारा होने वाले व्यापार की मात्रा ५६२ लाख टन थी, जिसमें से ३०० लाख टन आयात और २६२ लाख टन निर्यात व्यापार था। अब मंगलौर और तूतीकोरिन को भी बड़े बन्दरगाहों में बदला जा रहा है। इन बड़े बन्दरगाहों के अतिरिक्त भारत में लगभग २२५ छोटे या गौण बन्दरगाह भी हैं। किन्तु इनमें से केवल १५० ही कार्यशील हैं। इनमें से ३० मँझले (Intermediate) बन्दरगाह तथा १२० छोटे (Minor) बन्दरगाह हैं। गौण बन्दरगाहों की व्यापार क्षमता १०० लाख टन है। प्रमुख बन्दरगाह इस प्रकार हैं :

पश्चिमी समुद्र तट के बन्दरगाह

विभिन्न तटीय राज्यों के प्रमुख एवं गौण बन्दरगाह निम्न प्रकार हैं :

गुजरात : लखपत, मांडवी, कांडला, नवलखी, बेदी, माधवपुर, ओखा, द्वारका, मिलानी, पोरबन्दर, नवीबन्दर, कोडीनार, भावनगर, बलसर, सूरत, वेरावल, सोमनाथ, आदि।

महाराष्ट्र : दहानू, माहिम, बम्बई, अलीबाग, श्रीवर्द्धन, जयगढ़, रत्नागिरि, देवगढ़, मालवन, वेंगुर्ला, रावस, चौक्वाली।
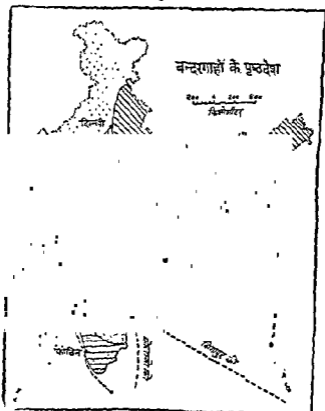
चित्र—१७१

गोआ : पनिम, मारमुगोआ, कलाकोनी।

कर्नाटक : होनावर, कुण्डापुर, मंगलौर, भटकल, करवार, बेपुर, माल्पे।

केरल : तेलीचेरी, कोजीकोड, कोचीन, एलप्पी, क्विलोन तिरुवनन्तपुरम, कासरगोड, कन्नानोर, पोन्नानी।

पूर्वी तट के बन्दरगाह

इस तट के विभिन्न राज्यों के बन्दरगाह ये हैं

तमिलनाडु : कन्याकुमारी, तूतीकोरिन, धनुषकोटि, रामेश्वरम, टोंडी, नागापट्टिनम, पोर्टो नोवो, कड्डालोर, महाबलीपुरम, मद्रास।

आंध्र प्रदेश : मुट्टुकुर, अस्तूर, मछलीपट्टनम, कोकीनाडा, विशाखापट्टनम, वाल्टेयर, विमलीपट्टनम, कलिंगपट्टनम श्रीकाकुलम ।

उड़ीसा : गोपालपुर, छत्रपुर, गंजाम, पुरी, प्रदीप ।

पश्चिमी बंगाल : दीग्घा, कलकत्ता, गंगासागर, हल्दिया ।

इन बन्दरगाहों में सामुद्रिक व्यापार के केन्द्रित होने के कई कारण हैं। भौगोलिक स्थिति के अतिरिक्त ऐतिहासिक प्राचीनता ने भी इनके व्यापारिक विकास में सहायता दी है। बम्बई, मद्रास और कलकत्ता काफी समय से शासन के केन्द्र रहे हैं। फलतः वहाँ जनसंख्या का घनत्व बढ़ा और साथ-साथ व्यापारिक और औद्योगिक कार्यों का भी विकास हुआ। इसके अतिरिक्त १९वीं शताब्दी के अन्त में रेलों का निर्माण इन्हीं बन्दरगाहों से आरम्भ किया गया। इस प्रकार राजनीतिक और यातायात के केन्द्रों से बढ़कर ये प्रमुख बन्दरगाह बन गये।

प्रमुख बड़े बन्दरगाह

कलकत्ता—यह हुगली नदी के बायें किनारे पर स्थित है। नदी के किनारे से यह १२६ किमी० दूर उत्तर की ओर है। यह भारत का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण दक्षिण एशिया का प्रमुख बन्दरगाह है। यह सतलज-गंगा-ब्रह्मपुत्र घाटी का मुख्य सामुद्रिक द्वार है। इसका पृष्ठदेश धनी है। इसके पृष्ठदेश में असम, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा और मध्य प्रदेश सम्मिलित हैं। इन सभी मार्गों से यह पूर्वी, उत्तरी-पूर्वी, मध्य और पूर्वी सीमान्त रेलमार्गों, नदियों और नहरों द्वारा जुड़ा है। अतः इस घाटी की पैदावार सहज में ही कलकत्ता लायी जा सकती है और विदेशों से प्राप्त माल को भिन्न-भिन्न भागों में पहुँचाया जा सकता है।

हुगली नदी में कलकत्ता से समुद्र तक अनेक मोड़ हैं तथा कई स्थानों पर नदी में बालू भर जाने से जल की गहराई बहुत कम हो गयी है। इसमें बड़े जहाज नहीं निकल पाते। हुगली नदी में इन स्थानों में बालू पड़ गयी है : पचपरिया, सकराल, मनीखोली, पीर सिरांग, पुजाली, मोयापुर, रोयापुर, फुल्टा, जेम्स, पूर्वी-घाट, कुकराहाटी, बलारी, ऑकलैण्ड बार, गंगासागर और मिडिलटन। इनमें से सबसे अधिक महत्त्व गंगासागर का है। इस स्थान पर केवल ७ से ९ मीटर तक जल गहरा रहता है। अतः बन्दरगाह में जहाज आने के पूर्व इस बात की परीक्षा करली जाती है कि यहाँ जल इतना ही गहरा है। यदि किसी कारणवश जहाज छोड़ने के बाद गंगासागर में जल कम हो जाता है तो जहाजों को हुगली नदी के गहरे जल में खड़ा रहना पड़ता है।

हुगली नदी में निरन्तर मिट्टी भरते रहने के कारण ६४ किलोमीटर दूर खुली खाड़ी में डायमण्ड पोताश्रय का निर्माण किया गया है जहाँ जल की पर्याप्त गहराई के कारण ९,००० टन से अधिक भार वाले जहाज पहुँच जाते हैं और पहुँचकर वह विश्राम करते हैं। ज्वार के समय ये जहाज खिदिरपुर

तक जाते हैं जो कलकत्ता का मुख्य पोताश्रय है। इस प्रकार जहाजों का आवागमन भीतर तक प्रायः ज्वार-भाटे की ऊँचाई पर आश्रित करता है। हुगली के मुहाने से कलकत्ता तक जहाजों के आने में लगभग ८ घण्टे का समय लगता है। हुगली तट पर उत्तर में सिरामपुर से लेकर दक्षिण में बजबज तक यह बन्दरगाह स्थित है जहाँ अनेक जेटियाँ, गोदाम एवं व्यावसायिक केन्द्र स्थित हैं। पोताश्रय की सुविधाएँ बढ़ाना सबसे बड़ी समस्या है। सन् १९५४ में एक नयी योजना बनायी गयी जिसके अनुसार डायमण्ड पोताश्रय एवं खिदिरपुर के बीच एक ४८ किलोमीटर लम्बी सीधी जहाजी नहर बनाने पर विचार हुआ था। परन्तु इस योजना से व्यय अधिक होने और निकटवर्ती गाँवों की विशेष हानि होने से यह योजना समाप्त कर दी गयी और अब हुगली को ही अधिक गहरा बनाने के प्रयत्न हो रहे हैं।

खिदिरपुर सबसे अधिक महत्वपूर्ण पोताश्रय है जहाँ दो डॉक हैं। पहला डॉक ७६२ मीटर लम्बा और १८३ मीटर चौड़ा है। इसके निकट जल ६ मीटर गहरा रहता है। दूसरा डॉक १,३७१ मीटर लम्बा तथा १२२ मीटर चौड़ा है। यहाँ भी जल की गहराई ६ मीटर है। यहाँ मशीनों से सामान उतारने की सुविधा है। लगभग २८ बर्थ हैं जिनमें ६ बर्थ कोयला आदि चढ़ाने के लिए बने हैं। किंग जार्ज डॉक दूसरा महत्वपूर्ण डॉक है जो २१३ मीटर लम्बा तथा २७ मीटर चौड़ा है। यहाँ सामान उतारने-चढ़ाने के ४ बर्थ हैं और पैट्रोल एकत्रित करने के लिए एक बर्थ है। पूरे बन्दरगाह में ५ शुष्क डॉक हैं जिनमें से ३ खिदिरपुर और २ किंग जार्ज में स्थित हैं। बजबज में पैट्रोलियम के गोदाम की व्यवस्था है। अन्य स्थानों पर भी अनेक गोदाम बने हुए हैं।

इसके पृष्ठदेश में अधिक जनसंख्या पायी जाती है। कलकत्ता वायुमार्गों का भी बड़ा केन्द्र है अतः देश-विदेश के विभिन्न भागों से वायुमार्गों द्वारा जुड़ा है।

इसका पृष्ठ-देश बड़ा धनी है तथा इसमें यातायात के साधन भली-भाँति विकसित हैं। कलकत्ता के पृष्ठदेश में हुगली और रानीगंज के औद्योगिक क्षेत्र से जूट का निर्मित माल, कागज, चमड़े का सामान, रसायन, खाद, सीमेण्ट आदि; बंगाल, बिहार, उड़ीसा से कोयला, लोहा, अभ्रक, मैंगनीज, आदि खनिज और गंगा तथा ब्रह्मपुत्र के मैदानों से गन्ना, चावल, चाय, लकड़ियाँ, तिलहन, खाल और कच्चा जूट प्राप्त किये जाते हैं।

कलकत्ता भारत का औद्योगिक केन्द्र भी है। इसके पृष्ठ-देश में जूट, कागज, चमड़े, चावल साफ करने, सूती कपड़े, दियासलाई, रेशम, चीनी और लोहे के कारखाने हैं। यहाँ कारखानों की अधिकता होने का मुख्य कारण पृष्ठदेश में घनी जनसंख्या सस्ते मजदूर, पर्याप्त जल और कच्चा माल तथा रानीगंज और झरिया के कोयले की खानों का निकट होना है।

कलकत्ता के निर्यात की प्रमुख वस्तुएँ जूट और जूट का तैयार माल, रबर,

चाय, शक्कर, लोहे का सामान, तिलहन, चमड़ा, लाख, अभ्रक, सनई, मैंगनीज और कोयला हैं। आयात की मुख्य वस्तुएँ ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्र, मशीनें, शक्कर, मोटरकारें, काँच का सामान, शराब, नमक, कागज, पैट्रोलियम, रबड़, रासायनिक पदार्थ, चावल और गेहूँ हैं।

कलकत्ता के बन्दरगाह से प्राय. भारी वस्तुओं का व्यापार होता है जो अधिक मूल्यवान नहीं होते। यहाँ बम्बई की अपेक्षा यात्री जहाज कम आते हैं।

१९७१-७२ में इस बन्दरगाह में ६६ लाख टन भार के १,२४४ जहाज आये और ७३ लाख टन का व्यापार किया गया (आयात ४८ लाख टन, निर्यात २५ लाख टन)।

मद्रास—पूर्वी तट पर यह भारत का प्रमुख बन्दरगाह है। यद्यपि प्राकृतिक दृष्टि से यह बन्दरगाह के उपयुक्त नहीं है किन्तु कृत्रिम रूप से इसका विकास किया गया है। विस्तृत खुले समुद्र में जहाजों को लहरों से बड़ी हानि होती थी तथा तट के निकट बालू मिट्टी भी जमती रहती थी। इन असुविधाओं को दूर करने के लिए ६० मीटर की गहराई की नींव पर तट से ३ किलोमीटर दूर दो कंक्रीट की दीवारें बनाकर लगभग २०० एकड़ समुद्र के जल को रोका गया है। बन्दरगाह का मुख्य द्वार १२० मीटर लम्बा है। जहाँ साधारण जल की गहराई १० मीटर तक रहती है, किन्तु ज्वार आने पर यह १२ मीटर तक हो जाती है। इस सुरक्षित पोताश्रय में वर्षा और तूफान के समय जहाज सरलता से खड़े रहते हैं। बड़े जहाज भी साधारणत ८ मीटर गहरे मार्गों तक आते हैं। इस पोताश्रय में एक साथ १६ जहाज ठहर सकते हैं। किन्तु अक्टूबर-नवम्बर में जब बंगाल की खाड़ी में तूफान आते हैं तो इनके द्वारा समुद्र का जल लहर के रूप में ऊँचा उठ जाता है और हानि की सम्भावना रहती है, अत जहाजों को ऐसे समय पोताश्रय छोड़ना अनिवार्य हो जाता है।

मद्रास का पृष्ठदेश दक्षिण के प्रायद्वीप के पूर्वी और दक्षिणी राज्यों तक विस्तृत है। इसमें दक्षिणी आन्ध्र प्रदेश, सम्पूर्ण तमिलनाडु और कर्नाटक का पूर्वी भाग सम्मिलित है। किन्तु बम्बई और कलकत्ता की भाँति न तो यह इतना उपजाऊ और समृद्ध ही है और न ही इतना घना बसा है। इसके अतिरिक्त इस भाग में विदेशी व्यापार की वस्तुएँ (जिनकी माँग यूरोपीय देशों में होती है) अधिक मात्रा में पैदा नहीं होतीं। कोरोमण्डल और मालाबार तट पर स्थित अनेक छोटे बन्दरगाह इससे व्यापार में प्रतिस्पर्द्धा भी करते हैं। तमिलनाडु का पृष्ठदेश सड़कों और रेलमार्गों द्वारा अन्य राज्यों से जुड़ा है और मद्रास नगर स्वयं एक औद्योगिक नगर है जहाँ सूती वस्त्र उद्योग, सीमेण्ट, सिगरेट, रेशमी वस्त्र, चमड़ा, आदि उद्योग स्थापित हैं।

मद्रास बन्दरगाह से विदेशों को सूती और रेशमी कपड़े, चमड़ा, कहवा, हड्डी का खाद, रबड़, तम्बाकू, तिलहन, हल्दी, अभ्रक, मूँगफली का तेल, मैंगनीज, मछली,

प्याज, आदि वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं। आयात व्यापार में कोयला, कोक, अनाज, मोटरें, रंग, पैट्रोलियम, कागज, चीनी, दवाइयाँ, धातुएँ, मशीनें और रासायनिक पदार्थ मुख्य हैं।

१९७१-७२ में यहाँ १,६१६ जहाज आये जिनका टन भार ६० लाख टन का था। कुल व्यापार ६८ टन का हुआ (आयात ४१ लाख टन; निर्यात २७ लाख टन)।

विशाखापट्टनम—यह बन्दरगाह कोरोमण्डल तट पर कलकत्ता से ८०० किलोमीटर दक्षिण में तथा मद्रास से ४२५ किलोमीटर उत्तर में आन्ध्र प्रदेश में स्थित है। इसका पृष्ठदेश तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, पूर्वी मध्य प्रदेश और उड़ीसा तक फैला है। इन राज्यों के निर्यात के लिए यही बन्दरगाह उत्तम है। इसमें कलकत्ता की अपेक्षा पहुंचने में कम समय लगता है और व्यय भी कम पड़ता है। अतएव यह व्यापार में कलकत्ता से स्पर्द्धा करने लगा है। इसका सम्बन्ध पूर्वी रेलमार्ग द्वारा मध्य प्रदेश से है। यहाँ जहाज बनाने तथा तेल साफ करने की शोधनशाला भी है।

सन् १९३३ में यह बन्दरगाह सबसे पहले बड़े पैमाने पर व्यापार के लिए खोला गया था। यहाँ जल की गहराई प्रायः ९ मीटर से कम नहीं है। यहाँ ४ मुख्य बर्थ हैं जिनमें से प्रत्येक १५२ मीटर लम्बा है और हर प्रकार की सुविधाओं से परिपूर्ण है जिनमें दो बर्थ विशेष रूप से लोहा एवं मैंगनीज के व्यापार के लिए सुरक्षित हैं और इनसे प्रतिदिन लगभग ३,००० मीट्रिक टन माल का व्यापार होता है। लगभग ६१ मीटर लम्बी बर्थ तेल के व्यापार के लिए बनायी गयी है क्योंकि यहाँ कालटेक्स की तेल कम्पनी का तेल साफ करने का कारखाना है। एक शुष्क डाक ११० मीटर लम्बा और १८ मीटर चौड़ा है जिसके समीप तक प्राय छोटे जहाज आते हैं। क्योंकि यहाँ जल की गहराई केवल ४ मीटर है। यहाँ का पोताश्रय प्राकृतिक है। इसमें १५० मीटर लम्बे जहाज ठहर सकते हैं।

यहाँ के मुख्य निर्यात लकड़ियाँ, कोयला, चमड़ा और खालें, हर्र-बहेड़ा, मूंगफली, लाख, सनी और मैंगनीज हैं। आयात व्यापार में सूती कपड़ा लोहा और इस्पात का सामान तथा मशीनें मुख्य हैं।

१९७१-७२ में इस बन्दरगाह में ७६ लाख टन भार वाले ६४० जहाज आये। इनका कुल व्यापार ८६ लाख टन का था (आयात २८ लाख टन, निर्यात ५८ लाख टन)।

बम्बई—यह भारत का ही नहीं विश्व का भी एक प्रमुख बन्दरगाह है जो सालसट द्वीप पर स्थित है। यह पश्चिमी तट पर एक प्राकृतिक कटाव में स्थित है जहाँ मानसूनी काल के तूफानों से जहाज सुरक्षित खड़े रह सकते हैं। इसका पोताश्रय प्राकृतिक और सुरक्षित है। इस बन्दरगाह के विकास में कई कारण सहायक रहे हैं यूरोप से अन्य भारतीय बन्दरगाहों की अपेक्षा अधिक निकटता, स्वेज नहर मार्ग तथा

उत्तमआशा अन्तरीप मार्ग पर इसकी स्थिति, प्राकृतिक एव विस्तृत पोताश्रय, साल भर खुला रहना, अपने पृष्ठदेश से रेलमार्गों, सड़को तथा वायुमार्गों से जुड़ा होना और पश्चिमी घाटो पर जलविद्युत शक्ति के विकास के कारण यह एक प्रमुख औद्योगिक नगर है।

समुद्र के निकट जहाजो के ठहरने के लिए २३ किलोमीटर लम्बी, १० किलोमीटर चौड़ी तथा ७ मीटर गहरी एक खाड़ी-सी बन गयी है। इसी में जहाज आकर ठहरते हैं। जिस स्थान पर बम्बई का बन्दरगाह बना है वहाँ जल की गहराई ११ मीटर है। इतनी गहराई में वे सभी जहाज आकर ठहर सकते हैं जो स्वेज नहर में से होकर निकल सकते हैं क्योंकि स्वेज नहर की गहराई भी इतनी ही है। यह बन्दरगाह यूरोप तथा सयुक्त राज्य अमरीका के निकट पड़ता है। अत कलकत्ता या मद्रास की अपेक्षा यहाँ व्यापार अधिक होता है।

बम्बई बन्दरगाह के तीन मुख्य डॉक हैं। प्रिंस डॉक मे १२, विक्टोरिया डॉक मे १३ और एलेक्जेण्ड्रा डॉक में १७ बर्थ हैं। यहाँ २ शुष्क डॉक भी बनाये गये हैं। बड़े समुद्री डॉकों के अतिरिक्त यहाँ कुछ बन्दरगाह भी बनाये गये हैं जिनमें नावों से आने वाला सामान एव यात्री लोग आकर उतरते-चढ़ते हैं। तटीय व्यापार की दृष्टि से इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। एलेक्जेण्ड्रा डॉक के पश्चिम मे ४५७ मीटर लम्बा लाडं प्लेटफॉर्म दर्शनीय है। बन्दरगाह के निकट ही पैट्रोलियम का गोदाम भी स्थित है। एक नया गोदाम बूचर द्वीप के पास बनाया गया है। विशाल गोदामो का होना बम्बई बन्दरगाह की विशेषता है। अनाज रखने का भी एक विशाल गोदाम बनाया गया है। यहाँ का कपास का गोदाम जो ४,३२,५०० वर्ग गज क्षेत्र मे विस्तृत है और जिसमे १७८ अग्नि-सुरक्षित कमरे हैं, ससार के प्रसिद्ध एव विशाल गोदामों में है। इसी प्रकार मैंगनीज, कोयला, तारकोल, लकड़ी, आदि के भी गोदाम हैं। इन सभी गोदामो में अग्नि-सुरक्षा; आवागमन, अस्पताल, जलपानगृह, आदि की सुविधाएँ भी हैं।

यद्यपि पश्चिमी घाट पश्चिमी तट को देश के भीतरी भागो से अलग करता है किन्तु बम्बई के ठीक पीछे थालघाट और भोरघाट दर्रे हैं जो बम्बई को उत्तरी भारत, गुजरात, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र से पश्चिमी और मध्यवर्ती रेलवे द्वारा जोड़ते है। इसका पृष्ठदेश दक्षिण मे तमिलनाडु के पश्चिमी भाग से लेकर उत्तर मे काश्मीर, पजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र तक फैला है। यह पृष्ठदेश खेती की पैदावार के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। यद्यपि बम्बई के निकटवर्ती भाग मे ३२२ किलोमीटर तक न तो कोयला है और न जल मार्गों की सुविधा है फिर भी प्राकृतिक पोताश्रय होने के कारण यहाँ व्यापार बहुत अधिक होता है।

इस बन्दरगाह से अलसी, मूँगफली, चमड़े का सामान, तिलहन, मछली, ऊन,

ऊनी और सूती कपड़े, चमड़ा और खालें, मैंगनीज, अभ्रक, आदि वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं और विदेशों से सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र, मशीनें, नमक, कोयला, कागज, रंग, फल, रसायनिक पदार्थ, मिट्टी का तेल और लोहे का सामान आयात किया जाता है।

इस बन्दरगाह में १९७१-७२ में १८३ लाख टन भार वाले २,४९३ जहाज आये। इसका कुल व्यापार १६२ लाख टन हुआ (आयात १२६ लाख टन; निर्यात ३६ लाख टन)।

कोचीन—यह केरल राज्य और मालाबार तट का प्रमुख बन्दरगाह है जो बम्बई से लगभग ९३० किलोमीटर दक्षिण में है। यह एक प्राकृतिक बन्दरगाह है जो समुद्र के समान्तर एक विशाल अनूप के मुहाने पर स्थित है। पोताश्रय से सम्बन्धित जलधारा १४० मीटर लम्बी और ७ किलोमीटर चौड़ी है। अतः बड़े जहाज सरलता से सुरक्षित खड़े हो सकते हैं। सुदूरपूर्व आस्ट्रेलिया और यूरोप के जलमार्ग यहाँ से जाते हैं।

कोचीन के पृष्ठदेश में पश्चिमी घाट के दक्षिणी भाग, नीलगिरि और इलायची की पहाड़ियाँ और केरल कर्नाटक, तथा दक्षिणी तमिलनाडु के अन्य भाग हैं। दक्षिण भारत के शेष भागों से यह रेलमार्गों और सड़कों द्वारा जुड़ा है। इसके पृष्ठ-देश में सुपारी, चाय, कहवा, नारियल, गर्म मसाले, रबड़, अधिक पैदा होता है।

यहाँ से निर्यात होने वाली वस्तुओं में नारियल की जटा, रस्से, सूत, चटाइयाँ, खोपरा, गिरी, नारियल का तेल, चाय, कहवा, रबड़, काजू, गर्म मसाले, इलायची, आदि हैं। आयात के अन्तर्गत चावल, गेहूँ, कोयला, पैट्रोलियम, कपड़ा और लोहे का सामान मुख्य हैं।

इस बन्दरगाह के निकट एक जहाज निर्माणशाला स्थापित की गयी है। यहाँ एक तेल शोधनशाला भी है।

इस बन्दरगाह में १९७१-७२ में ७८ लाख टन भार वाले १,०३९ जहाज आये। बन्दरगाह का कुल व्यापार ४७ लाख टन का था (आयात ३५ लाख टन, निर्यात १२ लाख टन)।

कांधला—इस बन्दरगाह का निर्माण १९३० में कच्छ राज्य के लिए किया गया था। तब यहाँ एक जेटी थी जिसमें साधारण आकार का केवल एक जहाज ठहर सकता था किन्तु विभाजन के फलस्वरूप जब कराँची का बन्दरगाह पाकिस्तान के अधिकार में चला गया तो इस बात की आवश्यकता अनुभव की गयी कि पश्चिमी तट पर एक ऐसे बन्दरगाह का विकास किया जाये जो गुजरात के उत्तरी भाग, राजस्थान, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और जम्मू-कश्मीर राज्यों के लिए मुख्य व्यापार द्वार का काम दे सके तथा बम्बई के व्यापार भार को घटाया जा सके। इस हेतु १९४९ में कांधला बन्दरगाह की योजना कार्यान्वित की गयी।

यह बन्दरगाह एक समुद्री कटान पर स्थित है और भुज से ४८ किलोमीटर दूर तथा कच्छ की खाड़ी के पूर्वी सिरे पर स्थित है। इसमें जल की औसत गहराई ९ मीटर है अत: जहाज सुविधा से ठहर सकते हैं। इसका पोताश्रय प्राकृतिक और सुरक्षित है। यहाँ ४ घाट इतने गहरे और बड़े हैं कि जिनमें किसी भी आकार के और ९ मीटर गहरी तली वाले जहाज खड़े हो सकते हैं। बन्दरगाह में १५ बिजली की क्रेनें लगी हैं। इसके अतिरिक्त ७ साधारण क्रेनें भी हैं जो माल लादने-उतारने में सहायक हैं। चलती-फिरती क्रेनें, फार्क-लिफ्ट, स्वचालित ट्रक और कोयला-लोहा भरने के यन्त्र लगे होने से इस बन्दरगाह को सभी आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हैं। यहाँ गोदामों की भी अच्छी व्यवस्था है। यहाँ चार बड़े शैड हैं जिनमें माल सुरक्षित रखा जाता है। जहाजों को सहायता और मार्ग-दर्शन के लिए आधुनिक यन्त्र लगे हैं। बन्दरगाह में तैरती बत्तियाँ भी हैं। यहाँ १,६०० किलोमीटर दूरी तक के समाचार प्राप्त करने और भेजने वाला यन्त्र और ४८ किलोमीटर तक की सूचना देने वाला रडार यन्त्र भी लगाया गया है। एक तेल का गोदाम भी है जिसमें १६,००० मीट्रिक टन तेल रखा जा सकता है। एक तैरते हुए डॉक और ज्वार-भाटा के समय प्रयुक्त होने के लिए भी डॉक बनाये गये हैं।

कांधला का पृष्ठदेश काफी विस्तृत है। इसमें सम्पूर्ण गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली और पश्चिमी मध्य प्रदेश के कुछ भाग सम्मिलित किये जाते हैं। यह पृष्ठ-देश मछली, सीमेण्ट बनाने के कच्चे माल, जिप्सम, लिग्नाइट, नमक, बॉक्साइट, आदि स्रोतों में धनी है। सूती वस्त्र, चमड़ा सीमेण्ट, दवाइयाँ, आदि बनाने के अनेक कारखाने भी हैं।

बन्दरगाह के पूर्ण विकास के लिए एक रेलमार्ग १९५२ में बनाया गया जो छोटी लाइन द्वारा दीसा से और बड़ी लाइन द्वारा भुज से जुड़ा है। इस प्रदेश का जल लोहा गलाने वाला है अतः इस मार्ग पर डीजल-इंजिन ही चलाये जाते हैं। अब इसे अहमदाबाद और जोधपुर से भी मिला दिया गया है।

इस बन्दरगाह से लकड़ियाँ, अभ्रक, लोहा, चमड़ा, खालें, अन्न, सेलखड़ी, अनाज, कपड़ा, कपास, नमक, सीमेण्ट, हड्डी का चूरा, आदि का निर्यात किया जाता है। आयात में लोहे का सामान, मशीनें, गन्धक, अनाज, पैट्रोलियम, खाद, रसायन, कपास, आदि वस्तुएँ अधिक होती हैं।

कांधला की समृद्धि के लिए यहाँ मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाया गया है। यह क्षेत्र चारों ओर तारों से घिरा है। अन्य बन्दरगाहों की भाँति यहाँ लाकर भरे, छोटे और तैयार किये जाने वाले माल पर चुंगी नहीं लगती। आयात किये जाने वाले माल पर भी आयात-शुल्क नहीं लगता।

इस बन्दरगाह मे १९६९-७० में २३ लाख टन भार वाले २६७ जहाज आये। इसका कुल व्यापार २१ लाख टन का हुआ (आयात १८ लाख टन; निर्यात ३ लाख टन)।

मारमुगोवा कोकन तट पर स्थित है। इसका व्यापार क्षेत्र महाराष्ट्र, आन्ध्र-प्रदेश और कर्नाटक तक फैला हुआ है। यहाँ से मैंगनीज, कच्चा लोहा, मछलियाँ, मूंगफली, कपास और नारियल विदेशों को भेजी जाती हैं। १९७१-७२ में इस बन्दरगाह में ८४ लाख टन भार वाले ६२५ जहाज आये। कुल व्यापार की मात्रा ११७ लाख टन थी (आयात ४ लाख टन, निर्यात ११३ लाख टन)।

अन्य छोटे बन्दरगाह

प्रदीप या पाराद्वीप (Paradeep) बन्दरगाह का विकास उड़ीसा के तट पर (बंगाल की खाड़ी में) सभी मौसमों में व्यापार करने के लिए किया गया है। यहाँ ६०,००० टन वाले जहाज ठहर सकते हैं। इस बन्दरगाह के ४ वर्ग मील क्षेत्र में भवन आदि का निर्माण किया गया है। सम्पूर्ण क्षेत्र पहले दलदली था किन्तु अब इन दलदलों को सुखाकर लैगून हारबर, जहाजों के मुड़ने के लिए स्थान, खनिज तथा सामान के लिए दो बर्थ, लैगून तक पहुँचने के लिए एक जलधारा तथा खनिज चढ़ाने के लिए जैटी का निर्माण किया गया है। जलतोड़ दीवार सागर की ओर से लैगून हारबर में आने वाले जहाजों को तूफानों से संरक्षण देती है। इस द्वार से होकर ही जहाज जलधारा में जा पाता है। पोताश्रय १५ मीटर गहरा है। समुद्र की लहरों से बचाव के लिए जहाज मुड़ने के स्थान के दोनों किनारों पर ग्रेनाइट के पत्थर जड़े गये हैं।

प्रदीप बन्दरगाह को एक ओर तोमका और दूसरी ओर दाईतारी की लोहे की खानों से जोड़ने के लिए १४५ किलोमीटर लम्बा राजमार्ग बनाया गया है। इसे केंदुझार जिले में होता हुआ बिहार की सीमा पर स्थित भारत की सबसे बड़ी लोहे की खानों (जादा और बारबिल) तक बढ़ाया जायगा। इस बन्दरगाह का विकास मुख्यतः उड़ीसा से जापान को कच्चा लोहा निर्यात करने के लिए किया गया है। यहाँ प्रथम चरण में एक समय में दो जहाज ठहर सकते हैं किन्तु बाद में अधिक जहाजों की सुविधा के लिए बर्थ क्षेत्र को विस्तृत किया जायेगा। १९७१-७२ में ७७ जहाज इस बन्दरगाह में आये। कुल व्यापार लगभग १६ लाख टन का हुआ।

भावनगर खम्भात की खाड़ी के ऊपर पश्चिम की ओर स्थित है। बन्दरगाह में माल को सुरक्षित रखने के लिए सभी सुविधाएँ हैं और बन्दरगाह रेलमार्ग द्वारा भिन्न-भिन्न बन्दरगाहों से सम्बन्धित है। जहाज बन्दरगाह से लगभग १२ किलोमीटर दूरी पर ठहरते हैं और माल नावों द्वारा बन्दरगाह पर लाया जाता है। बन्दरगाह

में मिट्टी जमने के कारण सन् १६३७ में इसे गहरा बनाया गया जिसमें अब दो जहाज एक साथ ठहर सकते हैं।

बेदी बन्दर कच्छ की खाड़ी में स्थित है। इस बन्दरगाह का समुद्र तट जहाजों के लिए बहुत उपयुक्त है। वर्ष के सब मौसमों में यह खुला रहता है चूंकि किनारे के निकट जल कम गहरा है अतः बड़े जहाज किनारे से ३ से ५ किलोमीटर दूर खड़े रहते हैं।

ओखा गुजरात का मुख्य बन्दरगाह है। यह सौराष्ट्र की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर स्थित है। इस कारण जितने भी जहाज समुद्र तट पर आते हैं इसकी पहुँच के भीतर हैं। इस बन्दरगाह में केवल एक दोष है। इसका मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा और चक्करदार है। अतः उसमें खतरा रहता है। इसके अतिरिक्त यह जनसंख्या बाहुल्य प्रदेशों से भी बहुत दूर है। यहाँ से तिलहन, नमक तथा सीमेण्ट निर्यात किया जाता है तथा विदेशों से कोयला, पैट्रोलियम, रासायनिक पदार्थ और मशीनें आयात की जाती हैं।

मण्डवी भी कच्छ का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है जो कच्छ की खाड़ी में स्थित है। जहाज बन्दरगाह से एक मील दूर ठहरते हैं। यह बन्दरगाह वर्ष भर खुला रहता है।

पोरबन्दर गुजरात का महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह है पूर्वी अफ्रीका से इसका अधिकतर व्यापार होता है। वर्षा के दिनों में बन्दरगाह बन्द रहता है क्योंकि यह बिलकुल खुला है। यहाँ से नमक और सीमेण्ट का निर्यात और कोयला, खजूर तथा मशीनों का आयात होता है।

कोजीकोड कोचीन से १४४ किलोमीटर उत्तर में है। मानसून के आरम्भ में यह बन्द रहता है। यहाँ समुद्र छिछला है। इस कारण जहाजों को बन्दरगाह से ५ किलोमीटर दूर समुद्र में खड़ा होना पड़ता है। यहाँ से नारियल की रस्सी, खोपरा, कहवा, चाय, सोंठ, मूँगफली तथा मछली की खाद निर्यात की जाती है। मुख्य आयात अनाज, मिट्टी का तेल, मशीनें और सूती वस्त्र हैं।

हल्दिया (Haldia) बन्दरगाह हुगली नदी की इस्चुरी पर एक बड़े बन्दरगाह के रूप में विकसित किया गया है। यहाँ एक करोड़ टन का व्यापार हो सकता है। इसमें से ४० लाख टन कोयला, २० से ३० लाख टन लोह-अयस्क का व्यापार होगा। तेल की जेटी में ३० लाख टन मिट्टी का तेल एकत्रित किया जा सकेगा। इस बन्दरगाह में ६ बर्थ—२ कोयला के, १ लोह-अयस्क, १ तेल भण्डार और २ अन्य होंगे। इस बन्दरगाह का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि यहाँ बहुत बड़े जहाज (30 ft. draught) आकर रुक सकेंगे। इतने बड़े जहाज कलकत्ता में हुगली के मुहाने पर जमते रहने से नहीं आ [illegible] हैं।

हल्दिया बन्दरगाह के निकट तेल शोधनशाला, लोहे और इस्पात की मिलें, रेल के डिब्बे बनाने की फैक्ट्री, खाद के कारखानों, आदि के विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं। यहाँ १५० करोड़ रुपये की लागत का पैट्रो-कैमीकल उद्योग तथा ३० करोड़ रुपये की लागत की एक तेल शोधनशाला एवं अनेक तकनीकी संस्थाएँ भी स्थापित की जायेंगी। हल्दिया को देश के अन्य भागों से जोड़ने के लिए मार्ग बिछाये जा रहे हैं। इस बन्दरगाह का विकास वास्तव में कलकत्ता के सहायक बन्दरगाह के रूप में किया जा रहा है। यहाँ भारी मात्रा में कोयला और लोहा कलकत्ता के निकटवर्ती भागों में रोशनी करने तथा बड़े गहरे जहाजों के बनाने के लिए लाया जा सकेगा। बन्दरगाह के निकटवर्ती क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाया जायेगा। व्यापार को और अधिक बढ़ाने के लिए निर्यात से सम्बन्धित उद्योगों की स्थापना की जायेगी।

18

देशी और विदेशी व्यापार
(HOME AND FOREIGN TRADE)

भारत के व्यापार को चार भागो मे विभाजित किया जाता है :

(१) आन्तरिक व्यापार, (३) तटीय व्यापार,
(२) सीमाप्रान्तीय व्यापार, (४) पुनः निर्यात व्यापार।

आन्तरिक व्यापार
(INTERNAL TRADE)

भारत जैसे विशाल देश के लिए आन्तरिक व्यापार का महत्त्व बहुत अधिक है। यह व्यापार विदेशी व्यापार का १५ गुना मे भी अधिक होता है। राष्ट्रीय आयोजन समिति के अनुसार १६४७ मे भारत का आन्तरिक व्यापार ७ से ८ हजार करोड़ रुपये तक होता था।

समस्त भारत को आन्तरिक व्यापार की सुविधा से ३६ भागो मे बाँटा गया है तथा आन्तरिक व्यापार की वस्तुएँ इन श्रेणियों मे विभाजित की गयी हैं : कोयला और कोक, कच्ची रुई, सूती वस्त्र, दाल, अनाज और आटा, कच्चा चमड़ा, जूट, जूट के बोरे और टाट, लोहे और इस्पात का सामान, तिलहन और शक्कर।

आन्तरिक व्यापार देश के विभिन्न भागो से रेलो और नदियो द्वारा देश के प्रमुख बन्दरगाहो तथा विभिन्न राज्यों के बीच भी होता है। प्रथम प्रकार के व्यापार के अन्तर्गत देश को कृषि-जन्य एवं उद्योगों की निर्मित वस्तुएँ निर्यात के लिए बन्दरगाहों को लायी जाती हैं और विदेशों से आयात माल बन्दरगाहों द्वारा देश के भीतरी भागो में वितरित किया जाता है। यह व्यापार कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, मारमुगोआ, विशाखापट्टनम, कोजीकोड, कांडला और कोचीन बन्दरगाहो से होता है।

दूसरे प्रकार का व्यापार देश के विभिन्न राज्यो के बीच मे होता है। इस व्यापार मे पश्चिमी बगाल, बिहार, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश अपने यहाँ से वस्तुओ का निर्यात अधिक करते हैं और उत्तर प्रदेश, राजस्थान, *तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली तथा कर्नाटक राज्य अपनी*

आवश्यकता की पूर्ति के लिए अन्य राज्यों से आयात करते हैं। रेलों और नदियों द्वारा होने वाले इस व्यापार की मात्रा लगभग १४० करोड़ टन की अनुमानित की गयी है।

रेल और नदियां में आने-जाने वाली वस्तुओं में मुख्य वस्तुएँ कोयला (२८%), लोहा-इस्पात (५.३%), सीमेण्ट (६%), गेहूँ (४%), चावल (४%), चीनी और गुड़ (३.६%), नमक (२.५%), मिट्टी का तेल (२.३%), खनिज लोहा (३.६%), तिलहन (२%), चना और दालें (४.१%) और लकड़ी (२.६%) इत्यादि हैं जो सब मिलाकर इस व्यापार के लगभग (६२%) के लिए उत्तरदायी हैं। पश्चिमी बंगाल से कोयला, जूट और लोहे का समान, मशीनें, दवाइयाँ, सूती कपड़े, कागज; बिहार से कोयला, लोहा और इस्पात का सामान, शक्कर, तिलहन; उड़ीसा से जूट, चावल, तिलहन, कोयला, उत्तर प्रदेश से चीनी, गुड़, सूती और ऊनी वस्त्र, कागज, काँच का सामान; पंजाब-हरियाणा से चना, कृषि की मशीनें, होजियरी का सामान, वैज्ञानिक उपकरण, गेहूँ, रुई, चावल; असम से मिट्टी का तेल, जूट, चाय, तमिलनाडु से तिलहन, सूती कपड़े, चीनी, मैंगनीज, अभ्रक; राजस्थान से नमक, कपड़ा, खालें, अभ्रक, घीया पत्थर, पशु, घी, अनाज, तिलहन, इमारती पत्थर; मध्य प्रदेश से रुई, सूती कपड़े, गेहूँ, सन्तरे, तिलहन; महाराष्ट्र और गुजरात से ऊनी, सूती और रेशमी कपड़े, रसायन, सीमेण्ट, काँच, कागज और विविध प्रकार की वस्तुएँ; कर्नाटक से ऊनी और रेशमी कपड़े और चीनी, आदि अन्य राज्यों को निर्यात की जाती हैं।

सीमाप्रान्तीय व्यापार
(OVERLAND TRADE)

भारत की स्थलीय सीमा १५,२६० किलोमीटर है जो उसके उत्तर, उत्तर-पश्चिम और पूर्वी भाग में फैली है। केवल उत्तर-पश्चिम को ही व्यापारिक मार्ग उपलब्ध हैं, शेष और ऊँची गगनचुम्बी चोटियाँ, घने जंगल और गहरी घाटियाँ हैं। भारत का सीमाप्रान्तीय व्यापार मुख्यतः उसके पड़ोसी देशों (अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बंगला देश, रूस, चीन, ईरान, ईराक, नेपाल, भूटान और मध्य एशिया के देश) से होता है। इन सभी देशों में प्राकृतिक साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, किन्तु उत्पादन कम होने और देश गरीब होने से न तो अधिक वस्तुएं खरीदी ही जाती हैं और न अधिक बेची ही जाती हैं। अतएव, समुद्री व्यापार की तुलना में सीमाप्रान्तीय व्यापार प्रायः नगण्य-सा है।

सीमाप्रान्तीय व्यापार की मुख्य निर्यात की वस्तुएँ भारत से विदेशी और देशी सूती वस्त्र, रंग, मशीनें, कटलरी, मिट्टी का तेल, शक्कर, तम्बाकू, चमड़े का सामान, चावल, गेहूँ, चाय, नमक, दालें और रेशमी वस्त्र हैं। इन देशों से मुख्य आयात में अनाज, ऊन, कच्चा रेशम, जूट, तम्बाकू, चमड़ा और खालें, तिलहन, पशु, सुहागा, सूखे फल, आदि प्राप्त किये जाते हैं।

अफगानिस्तान से भारत को फल और तरकारियाँ, खालें, दवाइयाँ, हींग, तिलहन, अनाज, ऊन, आदि वस्तुएँ आती हैं तथा भारत से चाय, चमड़ा और चमड़े का सामान, सूती-रेशमी वस्त्र, शक्कर, मसाले, जूते, दवाइयाँ, साबुन, आदि वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं। १९७२-७३ में अफगानिस्तान से १६ करोड़ रुपये का आयात और भारत से १२·५ करोड़ रुपये का निर्यात हुआ।

भारत से बंगला देश को सूती वस्त्र, जूट का सामान, गुड़, लोहा और इस्पात, कोयला, सीमेण्ट, सूत, मशीनें, दवाइयाँ, वनस्पति तेल, नमक, मसाले, आदि निर्यात किये जाते हैं और बंगला देश भारत को जूट, मछलियाँ, चमड़ा और खाले, अखबारी कागज, लकड़ियाँ, आदि वस्तुएँ निर्यात करता है।

तटीय व्यापार
(COASTAL TRADE)

देश की तट रेखा के अनुपात में भारत के तट पर बन्दरगाहों का अभाव है तथा हमारा तटीय व्यापार भी उतना अधिक उन्नत नहीं है। यह तटीय व्यापार दो प्रकार का होता है : **देशी तटीय व्यापार** (Internal Trade) जो एक ही राज्य के दो या दो से अधिक बन्दरगाहों के बीच होता है। **विदेशी तटीय व्यापार** (External Trade) जो दो विभिन्न राज्यों के बन्दरगाहों के बीच होता है।

तटीय व्यापार की दृष्टि से भारतीय तट को १२ भागों में बाँटा गया है : (१) पश्चिमी बंगाल; (२) उड़ीसा, (३) आन्ध्र प्रदेश, (४) तमिलनाडु; (५) पाण्डिचेरी, (६) केरल; (७) कर्नाटक, (८) गोआ; (९) महाराष्ट्र; (१०) गुजरात, (११) अण्डमान और नीकोबार द्वीप, (१२) लकद्वीप, मीनीकॉय और अमीनीदीवी द्वीप। एक ही तटवर्ती क्षेत्र में उपस्थित बन्दरगाहों के बीच के व्यापार को **भीतरी व्यापार** कहा जाता है जबकि एक तटवर्ती क्षेत्र से दूसरे तटवर्ती क्षेत्र के व्यापार को **बाहरी व्यापार** कहते हैं। इन्हीं परिस्थितियों के अनुसार तटवर्ती व्यापार में आयात और निर्यात होता है। १९६०-६१ में तटवर्ती व्यापार का कुल मूल्य ४३९.३४ करोड़ रुपया था, इसमें से २१६·५० करोड़ रुपये का आयात तथा २२२·८४ करोड़ रुपये का निर्यात था। १९७०-७१ में ये मूल्य इस प्रकार थे : ३४७.८० करोड़ रुपया, १७३·९० करोड़ रुपया और १७३·९० करोड़ रुपया था।

समुद्र-तटीय व्यापार में भाग लेने वाली मुख्य वस्तुएँ लोहा अयस्क, सूत और सूती वस्त्र, जूट का माल, मसाले, वनस्पति तेल, रबड़, सीमेण्ट, रुई, कोयला, चाय, चीनी, रासायनिक पदार्थ, लोहा-इस्पात, खोपरा, तम्बाकू, नमक, जटा और सुतली, साबुन, खनिज धातुएँ, मछलियाँ, इमारती लकड़ियाँ, पत्थर, कागज, आदि हैं। ये वस्तुएँ समुद्र-तटीय व्यापार के ७२% के लिए उत्तरदायी हैं।

पुनः निर्यात व्यापार
(ENTREPOT TRADE)

भारत के विदेशी व्यापार की एक विशेषता यह है कि भारत विदेशों से कई

प्रकार की वस्तुएँ आयात करता है जिन्हें वह उन पड़ोसी देशों को निर्यात कर देता है जिनके अपने समुद्र तट नहीं हैं। इस प्रकार के व्यापार को पुनः निर्यात व्यापार कहते हैं।

पुनः निर्यात व्यापार करने के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है :

(१) देश की स्थिति मध्यवर्ती होनी चाहिए जिससे सीमावर्ती पड़ोसी देशों को विदेशों से आयात किया गया माल सुगमतापूर्वक भेजा जा सके। इस दृष्टि से भारत की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। हिन्द महासागर के सिरे पर स्थित होने से वह दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के देशों से पुनः निर्यात व्यापार करने की स्थित में है।

(२) विदेशों से आयात माल को पुनः वितरण करने के लिए देश का जहाजी बेड़ा विकसित होना चाहिए। दुर्भाग्यवश भारतीय जहाजी बेड़ा इंग्लैण्ड और हालैण्ड जैसे छोटे देशों की तुलना में भी बहुत पिछड़ा हुआ है।

(३) पुनः निर्यात करने वाले देश की पृष्ठ-भूमि भी धनी होनी चाहिए तथा जनसंख्या भी अधिक जिससे वस्तुओं के निर्यात में सुविधा हो।

भारत का पुनः निर्यात व्यापार मुख्यतः, भूटान, नेपाल, अफगानिस्तान, ईरान, ईराक और मध्य एशिया के देशों से ही अधिक किया जाता है। पूर्वी देशों से आये माल को भारत के बन्दरगाहों द्वारा जर्मनी, इंग्लैण्ड, अमरीका, श्रीलंका, सूडान, आदि देशों को पुनः निर्यात कर दिया जाता है।

तिब्बत, अफगानिस्तान, इण्डोनेशिया, आदि देशों से आयात कच्चा रेशम, चाय, मसाला, फल, खालें, समूर, आदि वस्तुएँ भारतीय बन्दरगाहों द्वारा पश्चिमी देशों को पुनः निर्यात की जाती हैं।

इसी प्रकार पश्चिमी देशों और अमरीका से सूती-ऊनी वस्त्र, दवाइयाँ, यन्त्र, मशीनें, आदि आयात कर हिन्द महासागर के तटवर्ती देशों को पुनः निर्यात की जाती हैं।

विदेशी व्यापार
(FOREIGN TRADE)

यद्यपि भारत में विश्व की लगभग १/६ जनसंख्या निवास करती है किन्तु विश्व व्यापार में भारत का भाग बहुत ही नगण्य है। १९४८ में विश्व के निर्यात व्यापार में भारत का भाग २·४५% था। १९६१ में यह १·१७% और १९७१ में ०·६६% ही रह गया। आयात व्यापार में इन वर्षों में भारत का भाग इस प्रकार रहा है : २·४५%, १·८३% और ०·८४%।

भारत के विदेशी व्यापार की विशेषताएँ (Features of India's Foreign Trade)

भारत में विदेशी व्यापार की अनेक विशेषताएँ हैं जिनमें निम्नांकित मुख्य हैं।

(१) अधिकांश भारतीय व्यापार (लगभग ९०% तक) समुद्री मार्गों द्वारा ही होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत के पड़ोसी देश (अफगानिस्तान,

तिब्बत, मध्य एशिया, आदि) पिछड़े हुए तथा निर्धन हैं। इन देशों का व्यापार अधिक नहीं होता। ये भारत से न तो अधिक खरीदते हैं और न अधिक बेचते ही हैं। इन देशो का धरातल ऊबड़-खाबड़ है। हिमालय पर्वत के कारण भारत और इन देशों के बीच के मार्गों की सुविधा नहीं है। अस्तु, हमारा व्यापार समुद्री बन्दरगाहों द्वारा ही अधिक होता है।

(२) भारत के निर्यात व्यापार मे इगलैण्ड, सयुक्त राज्य अमरीका, जापान और रूस का भाग प्रमुख है। १९७२-७३ मे इनका भाग क्रमशः ९%, १४% का ११% तथा १६% था।

आयात व्यापार मे भी सयुक्त राज्य अमरीका और इगलैण्ड का भाग क्रमशः १२ ७ और १२·०% था। पश्चिमी जर्मनी का ९%, जापान का ९ ६% और रूस का ६% था।

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि भारत के निर्यात व्यापार का लगभग ५०% इगलैण्ड, सयुक्त राज्य अमरीका, रूस और जापान देशों को जाता है। आस्ट्रेलिया, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी, श्रीलंका, अरब गणराज्य और बर्मा सहित ये दस देश कुल निर्यात व्यापार का दो-तिहाई प्राप्त करते हैं।

भारत के निर्यात व्यापार की दिशा (प्रतिशत मे)

देश	१९५१-५२	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९७०-७१	१९७१-७२	१९७२-७३
इगलैण्ड	२५·९	२७·९	२६·१	१८·१	११ १	१० ५	८ ८
सयुक्त राज्य अमरीका	१८·१	१४ ६	१५·५	१८ ३	१३·५	१६·४	१४·१
कनाडा	२·२	२·३	२·७	२·६	१·८	२·५	१·४
पश्चिमी जर्मनी	१·३	२·५	३·०	२·३	२ १	२·३	३·२
इटली	१·१	१·६	१ ४	१·१	०·९	१·५	२·५
फ्रास	१·६	१·२	१·३	१·४	१·२	१·५	२·४
रूस	०·९	०·६	४·४	११·५	१३·६	१३·०	१५·५
मिस्र	०·९	१·६	२·०	३·४	३·७	१·४	१·६
पाकिस्तान	६·२	१·४	१·६	०·६	—	—	—
आस्ट्रेलिया	६·५	४ २	३·४	२·२	१·६	१·७	१·३
बर्मा	२·७	२·१	१·०	०·४	०·५	०·७	०·२
जापान	२·०	५·१	५·३	७·१	१३·३	११·३	११·१
अन्य देश	३०·६	३५·०	३२·२	३१·१	३६·३	३७·१	३७·९
योग	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०	१०० ०	१००·०	१०० ०

यद्यपि भारत के निर्यात व्यापार का अधिकांश उपर्युक्त चार देशो द्वारा किया जाता है किन्तु अब भारत का विदेशी व्यापार काफी विविध देशों के साथ होने

लगा है। आर्थिक नियन्त्रणों तथा भुगतान के ढंगों के आधार पर निर्यात व्यापार निम्न ६ प्रदेशों के साथ किया जाता है :

(i) यूरोपीय स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र (European Free Trade Area) के अन्तर्गत इंगलैण्ड, नार्वे, स्वीडेन, स्विट्ज़रलैण्ड, डेनमार्क, आस्ट्रिया और पुर्तगाल से हमारा व्यापार होता है। इन देशों में व्यापार पर कोई वाह्य नियन्त्रण नहीं लगाये गये हैं। १९६०-६१ मे इन देशो का कुल आयात व्यापार २४७'५ करोड़ और
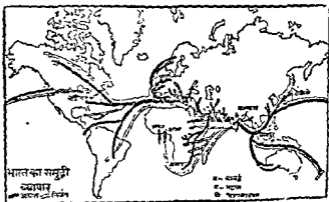
चित्र—१८'१

निर्यात व्यापार १७८'४ करोड़ रुपयों का था। १९७२-७३ मे यह व्यापार क्रमशः २७१'३२ और २२५'३७ करोड़ रुपये का था।

(ii) यूरोपीय साझा बाजार (European Common Market), जिसमे पश्चिमी जर्मनी, नीदरलैण्ड्स, बेल्जियम, लक्समबर्ग, फ्रास और इटली सम्मिलित हैं, के देशो ने मिलकर एक ऐसी व्यापार योजना बनायी है जिसके कारण इन देशो में भारत की कृषि वस्तुएँ, जूट और सूती कपडे के व्यापार को धक्का लगा है। इसके अतिरिक्त भारत को अपने विदेशी व्यापार के रूप और प्रकार में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने पड़े हैं। साझा बाजार मे पहुँचने वाले भारतीय माल को ऊँचे तट-कर सहने पडते हैं। भारत मे आयात किये जाने वाले माल पर कोटा-पद्धति के अनुरूप नियन्त्रण लगाया गया है। इन सब असुविधाओं के उपरान्त भी भारत के माल की खपत इन देशो मे होती है। १९६०-६१ मे इन देशों का कुल आयात व्यापार १९५'६ करोड रुपये और निर्यात व्यापार ४१'८ करोड़ रुपये का था। १९७२-७३ मे यह व्यापार ३१७'५ और २२२'६ करोड रुपये का था।

(iii) इकाफे प्रदेश (Ecafe Region) के अन्तर्गत पाकिस्तान, बंगला देश बर्मा, सिंगापुर, फिलीपीन, श्रीलका, लाओस, उत्तरी और दक्षिणी कोरिया, ताइवान, चीन, गणतन्त्र, ईरान, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, हागकाग, नेपाल,

दक्षिणी और उत्तरी वियतनाम, मलयेशिया, इण्डोनेशिया, जापान और अफगानिस्तान देशों के साथ भारत का निर्यात व्यापार होता है। १९६०-६१ में आयात और निर्यात व्यापार का मूल्य १७९·४ और १४२·७ करोड़ था। १९७२-७३ में यह २८५·७ और ४६६·१ करोड़ रुपये का था।

(iv) रुपये में भुगतान पाने वाले देशों के अन्तर्गत पूर्वी यूरोपीय देश (बल्गेरिया, चैकोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी, हंगरी, पोलैण्ड, रूमानिया और युगोस्लाविया) और रूस प्रमुख हैं। १९६०-६१ में इन देशों से ४४·३ करोड़ रुपये का आयात और ४१·६ करोड़ रुपये का निर्यात हुआ था। १९७२-७३ में यह २१७·८ और ४६६·७ करोड़ रुपये का था।

(v) अफ्रीकी क्षेत्र में केनिया, इथियोपिया, युगाण्डा, मालागासी, घाना, मोरक्को, सोमालिया, तंजानिया, सूडान, अरब गणराज्य और नाइजीरिया प्रमुख हैं। इन देशों को इन्जीनियरिंग सामान, वनस्पति, सूती और रेशमी वस्त्र, कालीन, गलीचे, दवाइयाँ और रसायन निर्यात किये जाते हैं। इनसे कपास, खाद्यान्न, कहवा, दालें, आदि आयात की जाती हैं। १९७२-७३ में अफ्रीका से १६३·६ करोड़ का आयात और १०१·१ करोड़ रुपये के मूल्य का निर्यात व्यापार हुआ।

(vi) अमरीकी देशों में कनाडा और संयुक्त राज्य प्रमुख हैं।

(३) अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में भारत से सूती वस्त्र, जूट का सामान, चाय, चमड़े की वस्तुएँ, तम्बाकू, मसाले, कच्चा चमड़ा और खालें, वनस्पति तेल और खलियाँ, कहवा, अभ्रक, मैंगनीज और लौह अयस्क, नारियल और उसके रेशे से बनी वस्तुएँ, आदि जाती हैं। ये वस्तुएँ व्यापार की दृष्टि से परम्परागत निर्यात (Traditional Exports) कहे जाते हैं।

इनमें से कुछ वस्तुओं के निर्यात में प्रतिशत भाग की दृष्टि से कुछ गिरावट हुई है किन्तु मूल्य की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं पड़ा है।

मोटे तौर पर कुल निर्यात व्यापार में चाय, जूट की वस्तुएँ और सूती वस्त्रों का भाग क्रमशः ८%, १३% और ९% तथा लौह अयस्क का ६% भाग रहता है।

(४) निर्यात व्यापार की एक प्रमुख विशेषता नयी-नयी वस्तुओं का निर्यात होना है। १९७२-७३ में १५० करोड़ रुपये से अधिक का इन्जीनियरिंग का सामान निर्यात किया गया। १९६०-६१ में निर्यात का मूल्य केवल १०६ करोड़ रुपया था।

(५) भारत के आयात व्यापार का काफी भाग सरकारी खातों में आये हुए आयातों से बनता है। युद्ध-पूर्व काल में ऐसे आयात या तो थे ही नहीं अथवा नगण्य थे, किन्तु युद्धकालीन और युद्धोत्तर काल में इनकी वृद्धि का मुख्य कारण अनाज का आयात, सरकारी प्रायोजनाओं के अन्तर्गत पूँजीगत माल-सामान का अधिक आयात और यातायात उपकरणों सम्बन्धी सामान का आयात होना है।

राजकीय व्यापार निगम और खनिज तथा धातु व्यापार निगम की स्थापना के उपरान्त अब सरकारी क्षेत्र में साइकिलें, सीने की मशीनें, रबड़, सीमेण्ट, प्लास्टिक की वस्तुएँ, लोहा और मैंगनीज अयस्क, रबड़ के जूते, हस्तकला की वस्तुएँ, इस्पात

का फर्नीचर, रेजर, ब्लेड, डीजल इंजन, फिल्म प्रोजेक्टर्स, ऊनी-मोजे, बनियान, आदि का व्यापार होने लगा है।

(६) भारत के आयात व्यापार में अधिकांशतः खाद्यान्न, औद्योगिक यन्त्र एवं उपकरण, पैट्रोलियम एवं उसके उत्पाद, लोहा और इस्पात तथा अलौह धातुओं की प्रमुखता रहती है। अन्य आयातित वस्तुओं में कपास, विद्युत मशीनें, यातायात उपकरण, रासायनिक पदार्थ, सूत, जूट, आदि मुख्य हैं।

आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप औद्योगिक विकास हुआ है अतः अब निर्यात व्यापार में कच्चे माल का भाग कम हो रहा है, विशेषतः रुई, जूट, रबड़, सन, आदि वस्तुओं का। औद्योगिक विकास के निमित्त विदेशों से मशीनें, पूँजीगत वस्तुएँ, यान्त्रिक उपकरण, विद्युत एवं यातायात उपकरण अधिकाधिक मात्रा में आयात किये जाने लगे हैं।

आयात व्यापार का लगभग ६०% इंगलैण्ड, संयुक्त राज्य अमरीका और पश्चिमी जर्मनी से होता है। शेष रूस, इटली, जापान, कनाडा, मिस्र, आस्ट्रेलिया, केनिया, आदि देशों से।

भारत के आयात व्यापार की दिशा (प्रतिशत में)

देश	१९५१–५२	१९५५–५६	१९६०–६१	१९६५–६६	१९७०–७१	१९७१–७२	१९७२–७३
इंगलैण्ड	१७·६	२५·४	१९·०	१०७	७·८	१२·०	१२·७
संयुक्त राज्य अमरीका	३०·४	१३·२	२८·७	३८·०	२७·७	२३·०	१२·७
कनाडा	२·०	१·०	१·८	२·२	७·२	६·२	५·९
पश्चिमी जर्मनी	३·०	८·९	१०·७	९·७	६ ६	६·९	९·०
इटली	१.९	२·४	२·३	१·४	१·८	१·४	२·०
फ्रांस	१·२	२·३	१·९	१·३	१ ३	२·०	२·१
रूस	०·१	०·९	१·४	५·९	६·५	४·५	६·०
मिस्र	४·२	३·४	१·४	१·४	२·४	१·८	१·६
पाकिस्तान	९·०	४·०	१·२	० ४	—	—	—
आस्ट्रेलिया	१·८	२·०	१·६	१·७	२·२	१ ६	१·८
जापान	२·६	४ ९	५·३	५ ६	५ १	८ ९	९ ६
बर्मा	२·४	१·४	१·२	०·७	० ६	०·३	०·१
अन्य देश	२२·८	३० २	२३·४	२१ ०	३० ८	३१·४	३६·५
योग	१००·०	१०० ०	१००·०	१०० ०	१००·०	१००·०	१००·०

(७) भारत के व्यापार का सन्तुलन द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त निरन्तर विपक्ष में रहता आया है क्योंकि निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक किया जाता है। १९५१-५२ में यह अनुमानतः २२० करोड़ रुपये का था। १९६०-६१ में यह ४८०

३१

करोड़ रुपये तथा १९६५-६६ में ६०३ करोड़ रुपये था किन्तु १९६९-७० में यह केवल १६९ करोड़ रुपये ही था। १९७०-७१ में यह ९९ करोड़ रुपये का रहा। १९७१-७२ में यह २०४ करोड़ रुपये का था। १९७२-७३ में यह १८४ करोड़ रुपये से भारत के पक्ष में रहा।

भारत के आयात व्यापार की दिशा

(करोड़ रुपयों में)

देश	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९७०-७१	१९७२-७३
इंगलैण्ड	१३५·७	१२७·४	२१७·१	१५०·१	१२६·०३	२२५·५
संयुक्त राज्य	१२०·२	८९·३	३२७·५	५३४·८	४४६·१७	२२४·६
कनाडा	२१·६	६·८	१९·९	३०·५	११७·३१	१०५·१
प० जर्मनी	१०·६	६०·३	१२२·५	१३७·२	१०६·८८	१६०·७
इटली	१६·३	१६·५	२६·६	१९·९	२८·८६	३५·६
फ्रांस	११·१	१२·५	२१·१	१८·०	३१·३	३६·९
रूस	०·२	६·२	१५·९	८३·२	१४०·६८	१०५·७
अरब गणराज्य	३३·७	२३·१	१६·४	२०·०	३९·८४	२८·९
पाकिस्तान	४३·९	२७·१	१४·०	५·६	—	—
जापान	१०·१	३३·४	६०·८	७९·३	८३·३०	१७०·२
बर्मा	१८·८	९·६	१३·७	९·७	९·६	१·९
योग	६५०·२	६७८·८	१,१३९·७	१,४१०·१	१,६२३·९१	१,७७६·८

भारत के निर्यात व्यापार की दिशा

(करोड़ रुपयों में)

देश	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९७०-७१	१९७२-७३
इंगलैण्ड	१३९·८	१६६·२	१७२·५	१४५·७	१७०·४	१७२·५
संयुक्त राज्य	११५·४	८७·१	१०२·५	१४७·८	२०७·३	२७५·७
कनाडा	१३·८	१४·०	१७·६	२०·३	२७·९	२८·२
प० जर्मनी	१०·९	१४·९	१९·९	१८·२	३२·३	६२·३
इटली	१५·०	९·६	९·३	८·५	१४·०	४८·९
फ्रांस	९·०	७·१	८·८	११·२	१८·०	४५·९
रूस	१·३	३·३	२८·८	९३·०	२०९·९	३०४·८
अरब गणराज्य	५·९	९·६	१३·४	२७·०	५६·४	२१·७
पाकिस्तान	३०·६	८·४	१०·३	४·४	—	—
जापान	१०·३	३०·२	३५·३	५७·१	२०३·५	२१७·२
बर्मा	२२·४	१२·५	६·६	३·६	१०·८	४·४
योग	६००·६	५९९·३	६६०·२	८०५·६	१,५३५·२	१,९६०·९

प्रमुख निर्यात
(MAJOR EXPORTS)

भारत का आयात-निर्यात व्यापार तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है :

प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत खाद्य, पेय और तम्बाकू (Food, Drink and Tobacco) सम्मिलित किये जाते हैं। इस श्रेणी में मुख्य वस्तुएँ अनाज, दालें, दुग्ध-पदार्थ, अण्डे, आटा, मछली, फल, तरकारी, चाय, तम्बाकू, कहवा और मसाले हैं।

दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत मुख्यतः कच्चा और अर्द्ध-निर्मित माल (Raw materials and unmanufactured goods) होता है जैसे, खनिज पदार्थ, कच्चा चमड़ा और खालें, खाद, कोयला और कोक, तिलहन, गोंद, लाख, चपड़ा, राल, नारियल, रबड़, कपास, जूट, कच्चा ऊन, इमारती लकड़ी, रेशम, कागज की लुग्दी, आदि।

तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत मुख्यत निर्मित माल (wholly or mainly manufactured) होता है, जैसे, सूत और सूती कपड़े, ऊनी और रेशमी कपड़े, लोहे और इस्पात की वस्तुएँ, रसायन, शक्कर, सीमेण्ट, दवाइयाँ, विभिन्न प्रकार की मशीनें एवं यांत्रिक उपकरण, टाट, बोरियाँ, नारियल की जटा से बनी वस्तुएँ, काँच और चीनी मिट्टी का सामान, कागज, कमाया हुआ चमड़ा और खालें, धातुएँ एवं यातायात उपकरण।

प्रमुख वस्तुओं का निर्यात (प्रतिशत में)

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९७०-७१	१९७१-७२	१९७२-७३
जूट का सामान	१८'९	१९'८	२०'५	२२ ७	१४'६	१६ ५	१२ ७
सूती वस्त्र एवं सूत	२३ ०	११'५	९'४	७'७	६ ३	५'९	६'४
कपास	२'९	६'६	१'७	१'५	१'१	१'१	१'३
मैंगनीज अयस	१'३	१'८	२ १	१'४	०'९	०'७	० ४
चाय	१३'४	१८'३	१८.७	१४'३	९'७	९'७	७ ५
लोह अयस्क	—	१'१	२'६	५'२	७'६	६'५	५ ६
चमड़े का सामान	४'३	३'९	३'८	३'५	४ ७	५'६	८'९
वनस्पति तेल	४'२	५'८	१'३	०'५	० ५	०'५	१ २
काजू	१'४	२'१	२'९	३'५	३ ४	३'८	३'५
कच्चा तम्बाकू	२'३	१'८	२'२	२ ४	२ ०	२ १	३'१
गोंद, राल, लाख	२'३	२'२	१'३	०'९	० ७	०'७	० ६
काली मिर्च	३'४	०'८	१'३	१'४	१ ०	०'९	०'७
कहवा	०.३	० ३	१ १	१ ६	१ ६	१ ४	१'७

शक्कर	—	०·२	०·४	१·४	१·८	१·९	०·७
खली	—	०.९	२·२	४·३	३·६	३·५	३·८
कोयला	०·६	०·७	०·५	०·३	०·३	०·१	०·१
मशीनें	—	०·२	०·५	१·०	२·९	२·७	२·८
कुल निर्यात (अन्य सहित)	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०

प्रमुख निर्यात (Major Exports)

(१) जूट के तैयार माल का भारत के निर्यातों में सबसे अधिक महत्त्व है क्योंकि इसी के द्वारा विदेशी मुद्रा का लगभग २५% प्राप्त होता है और डालर-मुद्रा का ६२% से अधिक। किन्तु पिछले कुछ समय से जूट के सामान के महँगे होने के कारण विश्व के अन्य भागों में प्रतिस्पर्धा पैदा किये जाने लगे हैं। अतः जूट की निर्मित वस्तुओं के निर्यात में कुछ कमी होने लगी है। जूट के सामान में बोरे, टाट, मोटे कालीन, फर्शपोश, गलीचे, रस्सी, तिरपाल, आदि निर्यात किये जाते हैं। भारतीय जूट के सामान के मुख्य खरीदार संयुक्त राज्य अमरीका (५९%), इंगलैण्ड (४·३%), अर्जेण्टाइना (४·१%), आस्ट्रेलिया (५·७%), कनाडा (४·६%), रूस (१२%), अरब गणराज्य (४·३%), आदि मुख्य हैं। १९७२-७३ में २५० करोड़ रुपये के मूल्य की जूट की वस्तुएँ निर्यात की गयीं।

(२) चाय का अधिकांश निर्यात इंगलैंड (५९%), संयुक्त राज्य अमरीका (४%), रूस (१२%), कनाडा (३%), ईरान (१%), अरब गणराज्य (६%), आयरलैण्ड (२%), नीदरलैण्ड्स (२%), सूडान और पश्चिमी जर्मनी को होता है। इनमें इंगलैंड भारतीय चाय का सबसे बड़ा खरीदार है। १९७०-७१ में १४१ करोड़ रुपये और १९७२-७३ में १४७ करोड़ रुपये के मूल्य की चाय निर्यात की गयी।

(३) कच्चे और कमाये हुए चमड़े की माँग मुख्यतः इंगलैण्ड (४५%), जर्मनी (१०%), फ्रांस (७%) और संयुक्त राज्य अमरीका (९%) में होती है। अन्य खरीदार इटली, जापान, बेल्जियम और यूगोस्लाविया हैं। १९७०-७१ में चमड़े का निर्यात ४ करोड़ रुपये और १९७२-७३ में ९ करोड़ रुपये के मूल्य का हुआ।

(४) तम्बाकू का अधिकांश भाग बीड़ी, सिगरेट, चुरुट, आदि के रूप में देश में ही खप जाता है। शेष तम्बाकू ब्रिटेन, जापान, पाकिस्तान, अदन, चीन, आस्ट्रेलिया, आदि देशों को निर्यात की जाती है। तम्बाकू के अतिरिक्त बीड़ी, सिगरेट और चुरुट का निर्यात पाकिस्तान, श्रीलंका, सिंगापुर और मलयेशिया को किया जाता है। १९७०-७१ में सभी प्रकार की तम्बाकू का निर्यात ३३ करोड़ रुपये और सन् १९७२-७३ में ६४ करोड़ रुपये के मूल्य का था।

प्रमुख वस्तुओं का निर्यात व्यापार

(करोड़ रुपयों में)

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९७०-७१	१९७२-७३
चाय	८०·४२	१०९·१४	१२३·६०	१२४·८४	१४५·११	१४७·२९
जूट का तैयार माल	११३·८१	११८·२५	१३५·१५	१८२·८५	१८४·८८	२४९·९६
सूती वस्त्र	१०७·१७	४८·२७	५३·७७	४७·२०	९७·४७	१२५·५९
कपास	४ ९४	२२·६९	८·६७	९·४७	१६·४१	२१·५८
मैंगनीज अयस्क	९·०१	१०·७२	१४·०३	१०·७९	१३·९८	८·६७
लौह अयस्क	०·२३	६·२७	१७·०३	३६·३७	११७·२८	१०९·७९
चमड़ा और चमड़े का सामान	२५·९५	२२·९८	२४·९७	२८·४५	७१·५९	१७४·७१
चमड़ा और खालें	९·२६	६·३९	९·४६	९·५५	३·७७	८·७०
वनस्पति घी	२१·२१	३४·३५	८·५४	४·०९	७·०३	२४·६३
फल, सब्जियाँ, आदि	१२·७६	१५·२९	२५·९८	९४·५१	१९·३७	८३·८७
तम्बाकू	१८·४६	११·८३	१५·७४	२१·१५	३१·४०	६३·८७
गोंद, बिरोजा, लाख	१३ १२	१३·००	८·६१	७·२८	१५·२४	११·३९

गरम मसाले	२५·४५	१०·६७	१६·६१	२३·११	३८·८१	२६·१३
अभ्रक	१०·००	८·३७	१०·१५	११·२५	१५ ५६	१६·६१
कहवा	१·३५	१·५०	७·२२	१२·६४	२५·१०	३३·९३
शक्कर	०·३८	०·९६	२·४२	१०·४७	२७·६	१३·२६
रुई	०·०३	५ ३०	१४ ३०	३४ ६५	५२·४२	७४ ७७
मछलियाँ	२·४६	३·७६	४·६२	६ ७७	३१·३	५४·७५
जूते	०·७८	१·५३	३·०८	५·१६	११·४	१२·५७
दवाइयाँ	१·७४	२·१०	०·६८	२·६४	८·४६	१०·३४
कागज,गत्ता	०·३३	०·९२	०·६३	१·२०	५·४१	४·१७
धातुओं की वस्तुएँ	३·१५	२·७०	११·८७	१८·०४	१३० ७१	८०·३२
कोयला, कोक	३·५७	४·३१	३·३३	२·८७	४·०१	३·१६
चमड़ा रंगने का पदार्थ	२·८७	१·४५	१ ४९	१ २०	७·२६	९·२७
मशीनें	०·५४	१ १६	२ ९९	७·९७	४४·१६	५४·६६
यातायात उपकरण	०·२७	०·३३	०·६९	२ ४९	३०·९५	३१·९९
निर्यात का योग	६००·६४	६०·२२	६७९·६९	८०५·६६	१,५३५·१६	१,९६०·८९

(५) तिलहन—भारत से विभिन्न प्रकार के तिलहन और तेलों का निर्यात किया जाता है।

मूँगफली का निर्यात फ्रांस, संयुक्त राज्य अमरीका, पाकिस्तान, ईराक, कनाडा, इटली, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया, जर्मनी और हंगरी को होता है। अलसी इटली, फ्रांस, हालैण्ड, बेल्जियम और इंगलैण्ड को निर्यात की जाती है। तिल का तेल इंगलैण्ड, सऊदी अरब, श्रीलंका, मारीशस, फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम और इटली को, रेंडी और रेंडी का तेल संयुक्त राज्य अमरीका, इटली, जर्मनी, स्पेन, कनाडा और बेल्जियम को निर्यात किया जाता है। इन तेलों के अतिरिक्त विभिन्न तिलहनों की खली भी इन देशों को निर्यात की जाती है।

(६) सूती वस्त्र—भारत से मोटा और उत्तम दोनों ही प्रकार का कपड़ा निर्यात किया जाता है। मोटा कपड़ा मुख्यतः हिन्द महासागर के तटीय देशों को निर्यात किया जाता है जिनमें ईरान, ईराक, सऊदी अरब, पूर्वी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, द० अफ्रीका, श्रीलंका, पाकिस्तान, बर्मा, थाईलैण्ड, मिस्र, टर्की, चीन, सिंगापुर, मलयेशिया और इण्डोनेशिया मुख्य हैं। १९७०-७१ में ६७ करोड़ रुपये और १९७२-७३ में १२६ करोड़ रुपये के मूल्य का कपड़ा निर्यात किया गया।

(७) लाख के मुख्य खरीदार इंगलैण्ड, संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, आदि हैं। १९७०-७१ और १९७२-७३ में क्रमशः ७ करोड़ और ६ करोड़ रुपये के मूल्य की लाख निर्यात की गयी।

(८) मसाले—भारत से काली और लाल मिर्च, लौंग, इलायची, सुपारी, हल्दी, अदरक, आदि मसालों का निर्यात प्राचीन समय से हो रहा है। इनका निर्यात संयुक्त राज्य अमरीका, स्वीडेन, सऊदी अरब, ब्रिटेन, पाकिस्तान, श्रीलंका, रूस, इटली, चीन, डेनमार्क, इंगलैण्ड और कनाडा को होता है। १९७०-७१ में ३९ करोड़ रुपये और १९७२-७३ में २९ करोड़ रुपये के मसाले निर्यात किये गये।

(९) धातु निर्मित वस्तुओं के निर्यात के अन्तर्गत प्रमुख वस्तुएँ ये हैं बिजली के पंखे, बल्ब, लोहे एवं ताँबे के तार, बैटरियाँ, धातु की चादरों से बने बर्तन (जैसे—बाल्टियाँ, ताँबे, पीतल, एल्यूमीनियम और तामचीनी के बर्तन), सिलाई की मशीनें, रेजर ब्लेड, जल ठण्डा करने, कागज बनाने, प्लास्टिक की ढलाई करने छपाई करने, जूता सीने, चीनी और चाय बनाने की मशीनें, मोटरगाड़ियाँ और उनके पुर्जे, ताले, कुंडे साँकलें और चटकनियाँ, लोहे और इस्पात का फर्नीचर, अल्मारियाँ और पेटियाँ, खेती के औजार, डीजल इंजन, ढले हुए पाइप, पम्प, छाता तथा छाता बनाने के काम आने वाली वस्तुएँ, लोहे से ढालकर बनायी गयी चीजें, गैस बत्तियाँ और रंगमान आदि।

भारत के अन्य निर्यात ये हैं :

वस्तुएँ	प्राप्तकर्ता
सूखे फल (काजू, अखरोट)	कनाडा, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, रूस।
फल और तरकारियाँ	आस्ट्रेलिया, पाकिस्तान, बर्मा, श्रीलंका मलयेशिया, सिंगापुर
अभ्रक	ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, बेल्जियम फ्रांस, जापान।
मैंगनीज अयस्क	इटली, फ्रांस, नार्वे, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, स्वीडेन, इटली और संयुक्त राज्य अमरीका।
ऊन	ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, संयुक्त राज्य।
कोयला	पाकिस्तान, श्रीलंका, बर्मा, चीन, सिंगापुर, जापान।
कहवा	जर्मनी, नीदरलैण्ड्स, इटली, बेल्जियम, ब्रिटेन।
नारियल और उसकी जटा की वस्तुएँ	ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, नीदरलैण्ड्स, आस्ट्रेलिया।
रासायनिक पदार्थ	ब्रिटेन, जापान, संयुक्त राज्य अमरीका।
ऊनी-कम्बल, आदि	ब्रिटेन, कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका, जर्मनी, नीदरलैण्ड्स, आस्ट्रेलिया।

देश के निर्यात व्यापार का मूल्य इस प्रकार है :

वर्ष	मूल्य
१९५०-५१	६००'६४ करोड़ रुपये
१९५५-५६	६९०'२२ ,,
१९६०-६१	६७९'६६ ,,
१९६५-६६	८०५'६० ,,
१९६६-६७	१,१५६'५८ ,,
१९६७-६८	१,१९२'८२ ,,
१९६८-६९	१,३५७'८७ ,,
१९६९-७०	१,४१३'२८ ,,
१९७०-७१	१,५३५'१६ ,,
१९७१-७२	१,६०८'२३ ,,
१९७२-७३	१,९१०'९६ ,,

प्रमुख वस्तुओं का आयात

(प्रतिशत में)

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९७०-७१	१९७१-७२	१९७२-७३
लोहा और इस्पात	३·१	८·३	१०·८	६·६	९·०	१३·१	१२·२
अलौह धातुएं	४ ३	३·६	४·१	४·९	७·३	५·६	५·७
धातुओं का सामान	०·८	२ ८	२·०	१·३	०·६	०·७	१·०
सामान्य मशीनें	१०·४	१३·५	१७·८	२३·७	१५·८	१४·८	१६·०
विद्युत मशीनें	३·७	५·५	५·०	६·२	४·३	५·६	७·०
पैट्रोलियम	८·५	८·२	६·१	४·९	४·१	४·७	४·९
कपास	१५·५	८·४	७·२	३·३	८·३	१०·७	११·५
रासायनिक पदार्थ	१·५	३·१	३·५	२·५	६·०	६·३	५·१
अनाज	१५.३	२·६	१५·९	२२·९	१३·०	७·२	४·६
रंगने का सामान	२·२	२·७	१·२	०·५	०·६	० ५	०·५
कागज-गत्ता	१ ५	२·३	१·१	०·९	१·५	१·९	१·७
अखबारी कागज	०·८	१·०	०·५	०·४	१·१	१·५	१·२
जूट	४·२	२·८	०·७	०·४	०·१	—	०·१
ऊन	०·९	१·३	०·८	०·४	०·९	०·७	०·७
कृत्रिम रेशम	२·३	२·३	१·०	०·४	०·३	०·३	०·२
खोपरा	०·२	१·२	१·०	०·४	०·२	०·१	—
परिहन का सामान	६·३	६·४	६·४	५·०	४·१	१·७	४·९
कुल आयात (अन्य सहित)	१००·०	१००·०	१०० ०	१००·०	१००·०	१००·०	१·०००

प्रमुख आयात (Major Imports)

(१) मशीनें—भारत में युद्धोपरान्त आर्थिक विकास योजनाओं के फलस्वरूप मशीनों का आयात बढ़ रहा है जो इस बात का द्योतक है कि देश में औद्योगिक योजनाएँ तीव्र गति से कार्यान्वित की जा रही हैं। इन मशीनों में बिजली की मशीनों का आयात सबसे अधिक होता है। कपड़ा बुनने की मशीनें, कृषि की मशीनें (अर्क निकालने, तेल पेरने, कागज बनाना, धान कूटने, भूसा साफ करने, आटा पीसने, लकड़ी चीरने, चारा दबाने), कपड़ा सीने, भूमि को समान करने वाले ट्रैक्टर, बुल-डोजर, शीत भण्डार, चमड़ा कमाने की मशीनें, चाय एवं शक्कर तैयार करने की मशीनें, हल, वायु-संपीडक, स्क्रू और कब्जे, खनिज उद्योग की मशीनें तथा अन्य प्रकार की मशीनें विदेशों (मुख्यतः ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, पश्चिमी जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस, जापान, जैकोस्लोवाकिया और कनाडा) से मँगवायी जाती हैं। १९७२-७३ में ५५ करोड़ रुपये की सभी प्रकार की मशीनें विदेशों से आयात की गयी जिनमें ४६% ब्रिटेन, २१% पश्चिमी जर्मनी, १४% संयुक्त राज्य अमरीका और शेष अन्य देशों से आयीं।

(२) कपास और रद्दी रुई (Raw and Waste Cotton)—भारत में अधिकांशतः छोटे रेशे वाली कपास उत्पन्न होती है अतः उत्तम श्रेणी का कपड़ा बनाने के लिए लम्बे रेशे वाली कपास और विभिन्न प्रकार के कपड़ों के लिए रद्दी रुई विदेशों से मँगवानी पड़ती है। इसके दो कारण हैं: देश का बँटवारा और देश में खाद्यान्नों के अभाव में अत्यधिक मात्रा में कपास के अन्तर्गत क्षेत्रों पर खाद्यान्नों का उत्पादन किया जाना। फलतः देश में कपास का आयात मिस्र, संयुक्त राज्य अमरीका, तञ्जानिया, केनिया, सूडान, पीरू, पाकिस्तान, आदि देशों से होता है।

(३) धातुएँ और लोहे तथा इस्पात का सामान (Metals and Steel Goods)—विदेशों से आने वाले माल में लोहे और इस्पात की बनी वस्तुओं तथा धातुओं का स्थान दूसरा है। एल्युमीनियम, पीतल, ताँबा, काँसा, सीसा, जस्ता, टीन, आदि धातुएँ विदेशों से अधिक मात्रा में आयात की जाती हैं क्योंकि इनके उत्पादन में देश प्रायः दरिद्र ही है। अल्युमीनियम ब्रिटेन, कनाडा और स्विट्ज़रलैण्ड से, ताँबा ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, स्वीडेन, बेल्जियम, कांगो गणतन्त्र और मोजम्बीक से; सीसा आस्ट्रेलिया और बर्मा से; टीन सिंगापुर, बर्मा, मलयेशिया और ब्रिटेन से, जस्ता उत्तरी रोडेशिया, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम और जापान से मँगाया जाता है। १९७२-७३ में इन वस्तुओं का आयात मूल्य १०२ करोड़ रुपया था।

लोहा (मुख्यतः कच्चा लोहा, लोहे के एंगल, टी छड़ें, चटखनियाँ, आदि) और इस्पात और इस्पात का सामान (स्प्रिंग, टी छड़ें, आदि) और लोहे एवं इस्पात का सामान (लंगर, काँटेदार तार, नल, चादरें, पेंच, कीलें, चटखनियाँ, रम्पाद के तार, आदि) विशेषतः ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, बेल्जियम, रूस, संयुक्त राज्य अमरीका,

स्वीडेन, नार्वे, इटली और चेकोस्लोवाकिया से मँगवाया जाता है। १९७२-७३ में लोहे और इस्पात की वस्तुओं का आयात मूल्य २१७ करोड़ रुपया था।

(४) खनिज तेल (Mineral Oil)—भारत में खनिज तेल के स्रोतों का बड़ा अभाव है। इस तेल के अन्तर्गत मिट्टी का तेल (Kerosene), जलाने का तेल (Fuel oil), उपस्नेह तेल (Lubricating oil) और पैट्रोलियम, आते हैं। द्वितीय युद्धकाल से ही खनिज तेलों की माँग में वृद्धि हो जाने से आयात में वृद्धि हुई है। फलतः १९७२-७३ में २०१ करोड़ रुपये का मिट्टी का तेल तथा २३ करोड़ रुपये की मिट्टी के तेल से सम्बन्धित वस्तुओं का आयात किया गया।

मिट्टी का तेल मुख्यतः ईराक, बहरीन द्वीप, सऊदी अरब, बर्मा, ईरान, बोर्नियो, संयुक्त राज्य अमरीका और सिंगापुर से आयात किया जाता है।

पैट्रोलियम बहरीन द्वीप, फ्रांस, इटली, अरब, सिंगापुर, संयुक्त राज्य अमरीका, ईरान और सुमात्रा से मँगवाया जाता है।

जलाने का तेल ब्रिटेन, बहरीन द्वीप, सिंगापुर, सऊदी अरब और संयुक्त राज्य अमरीका से मँगवाया जाता है।

(५) खाद्यान्न (Foodgrains)—विभाजन के परिणामस्वरूप तथा निरन्तर अनुपयुक्त मौसम के कारण देश में खाद्यान्नों का उत्पादन कम होता जा रहा है जबकि देश में जनसंख्या में वृद्धि होती रही है। अतः खाद्यान्नों का अभाव पूरा करने के लिए विदेशों से अनाज आयात किया जाता है। १९७२-७३ में ८१ करोड़ रुपये के मूल्य के खाद्यान्न विदेशों से आयात किये गये। खाद्यान्नों का आयात इस प्रकार होता है :

गेहूँ : कनाडा, आस्ट्रेलिया, रूस अर्जेण्टाइना, संयुक्त राज्य अमरीका से।

चावल : बर्मा, थाईलैण्ड, जावा, मिस्र, पाकिस्तान, श्रीलंका, इण्डोनेशिया से।

जौ : ईराक, आस्ट्रेलिया और अर्जेण्टाइना से।

दालें : बर्मा, ईराक, सूडान, पाकिस्तान, और केनिया से।

ज्वार-बाजरा : पूर्वी अफ्रीका, और संयुक्त राज्य अमरीका से।

(६) रासायनिक पदार्थों (Chemicals) के आयात में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। रासायनिक पदार्थों के अन्तर्गत अमोनियम सल्फेट, नाइट्रेट ऑफ सोडा, सुपरफॉस्फेट, एसेटिक एसिड, नाइट्रिक एसिड, बोरिक और टारटरिक एसिड, सोडा एश, ब्लीचिंग पाउडर, गन्धक, अमोनियम क्लोराइड, आदि वस्तुएं सम्मिलित की जाती हैं। इनके आयात का मुख्य कारण देश में उद्योग की उन्नति होना है। रासायनिक पदार्थ संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन, इटली, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, जापान, बेल्जियम, आदि से मंगवाये जाते हैं। १९७२-७३ में ८९ करोड़ रुपये के रासायनिक पदार्थ आयात किये गये।

दवाइयों का आयात मुख्यतः ब्रिटेन, स्विट्जरलैण्ड, कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका से होता है। १९७२-७३ में २३ करोड़ रुपये के मूल्य की दवाइयाँ आयात की गयीं।

(७) कागज, दफ्ती तथा स्टेशनरी (Paper, Paste-board and Stationery)—देश में शिक्षा में प्रगति होने के साथ-साथ कागज तथा लेखन-सामग्री का आयात बढ़ रहा है। लिखने का कागज, अखबारी कागज, दफ्ती कागज, किताबें छापने का सफेद कागज, स्याही-सोख, कार्डबोर्ड तथा पेस्टबोर्ड बड़ी मात्रा में नार्वे, स्वीडेन, कनाडा, जर्मनी, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रिया, फिनलैण्ड और इंगलैण्ड से आयात किया जाता है। अन्य लेखन-सामग्री ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमरीका, आदि देशों से मँगवायी जाती है। १९७२-७३ में ३१ करोड़ रुपये का कागज और गत्ता आयात किया गया।

आयात की अन्य वस्तुएँ इस प्रकार हैं

वस्तुएँ	प्रमुख निर्यातक
बिजली का सामान (पंखे, टेलीफोन, तार, लैम्प, चिमनियाँ)	ब्रिटेन, जापान, नीदरलैण्ड, संयुक्त राज्य अमरीका संयुक्त राज्य अमरीका, स्विट्जरलैण्ड, पश्चिमी जर्मनी।
काँच का सामान	बेल्जियम, जर्मनी, फ्रांस, हॉलैण्ड, ब्रिटेन, इटली।
सूत और सूती वस्त्र	ब्रिटेन, जापान, इटली, स्विट्जरलैण्ड।
ऊनी वस्त्र	ब्रिटेन, जापान, इटली, बेल्जियम।
मोटरें, बाइसिकलें	ब्रिटेन, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमरीका, इटली, कनाडा, जर्मनी।
रबड़ का सामान	जर्मनी, इंगलैण्ड, जापान, संयुक्त राज्य अमरीका।
जूट	पाकिस्तान।
रेशमी वस्त्र	फ्रांस, जापान, इटली, ब्रिटेन।

पिछले कुछ वर्षों में आयात व्यापार का मूल्य इस प्रकार रहा है :

वर्ष	मूल्य
१९५०-५१	६५०·११ करोड़ रुपया
१९५५-५६	६७८·८४ ,,
१९६०-६१	१,१३९·९९ ,,
१९६५-६६	१,४१०·१३ ,,
१९६६-६७	१,०४८·९२ ,,
१९६७-६८	२,००७·६१ ,,
१९६८-६९	१,९०८·६३ ,,
१९६९-७०	१,५८२·१० ,,
१९७०-७१	१,६३४·२८ ,,
१९७१-७२	१,८१२·२० ,,
१९७२-७३	१,७७६·०८ ,,

प्रमुख वस्तुओं का आयात व्यापार (करोड़ रुपये में)

वस्तुएँ	१९५०–५१	१९५५–५६	१९६०–६१	१९६५–६६	१९७०–७१	१९७२–७३
खाद्यान्न	९९·५६	१७·६८	१८१·३८	३२२·००	२१३·०१	८०·७८
गेहूँ	५३·५०	११·९२	१५३·२०	२६४·७४	१७३·३७	४८·१६
चावल	२४·५१	४·०१	२२·७४	४१·८९	२९·८२	१०·७१
रंगने का सामान	१४·६१	१८·२९	१३·३८	६·५८	९·२५	९·११
कागज की लुग्दी	०·४१	२·३४	५·११	५·६१	१२·२७	९·९२
दवाइयाँ	१०·८१	१५·११	१०·५०	८·७४	२४·४८	२२·९४
अखबारी कागज	५·३७	७·६६	५·९५	६·१८	१८·७३	२०·५२
कपास	१००·७७	५७·३३	८१·७४	४६·२०	९८·८३	९०·८८
जूट	२७·४१	१९·३२	७·५४	९·१६	०·१४	१·१३
ऊन	५·६२	१·४२	१·३६	४·२९	१६·०७	११·७०
रसायन	९·४३	२१·२६	३९·३४	३५·८६	६७·९९	—
फल, सब्जियाँ	१९·३७	१९·०३	२०·३८	२२·७१	—	—
लोहा-इस्पात	१९·९९	५६·५८	१२२·५४	९७·९४	१४७·०९	२१७·१४
अलौह धातुएँ	२८·२८	२४·२६	४७·३१	६८·७५	११९·०३	१०१·६२
ताँबा	८·५०	९·५१	२१·९३	३१·३७	५१·१८	४८·६५
अल्यूमीनियम	२·९०	४·७७	७·६४	६·२९	९·३२	२·७७
सीसा	२·२२	२·०८	२·४७	५·७३	७·६३	१०·३५
जस्ता	६·५६	४·१५	९·१९	१२·८४	१७·७३	२०·९६
टिन	४·०६	३·५८	३·९१	७·१८	४·८६	६·८५
मशीनें	९१·४२	१३०·०५	२६०·५९	४२१·६०	३५६·९३	४०८·९७
विद्युत मशीनें	२३·७६	३७·५५	५७·२२	८७·८०	९९·३०	१२३·९९
यातायात उपकरण	४०·९६	६२·५०	७२·३९	७०·५५	५८·२६	८७·११
कुल आयात का योग	६५०·२१	६७८·८४	१,१२९·९६	१,४१०·१३	१,६३४·२०	१,७७६·०८

भारत की व्यापार नीति

भारत सरकार की व्यापार नीति के उद्देश्य निम्न हैं :

(१) घरेलू बाजार में वस्तुओं का वितरण उचित मूल्य पर करना;

(२) निर्यात क्षेत्र में वृद्धि कर वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाना और इसके लिए निर्यातक वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना करना;

(३) आयात किये गये माल तथा कच्चे सामान की पूर्ति के लिए देश में ही उत्पादन बढ़ाना।

१९७०-७१ की आयात नीति के अन्तर्गत तीन उद्देश्यों की पूर्ति का ध्येय रखा गया था : (क) औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देना, (ख) आयात को कम कर विदेशी मुद्रा की बचत करना, तथा (ग) निर्यात को संवर्द्धन करना।

निर्यातों का नियन्त्रण निर्यात नियन्त्रण आदेश के अन्तर्गत किया जाता है। इस आदेश के अनुसार निर्यात वस्तुओं को तीन भागों मे विभाजित किया जा सकता है : (क) वे वस्तुएँ जो सामान्यतः निर्यात नहीं की जा सकतीं, जैसे आटा, गेहूँ, जंगली-जीव, धातुएं, खनिजें, तिलहन तथा कुछ किस्म की मोटरगाड़ियाँ; (ख) वे वस्तुएँ जो किन्हीं शर्तों के पूरा करने पर ही अथवा एक निश्चित मात्रा तक ही निर्यात करने की अनुमति दी जा सकती है; जैसे कोक और कोयला, कपास, सूती वस्त्र, चमड़ा और खालें, कुछ धातुएँ, खनिजें, खली, ऊन, प्याज, आलू, आदि, (ग) अन्य प्रकार की वस्तुएं जिनका उल्लेख आदेश मे नहीं है।

निर्यात संवर्द्धन के उपाय

निर्यात व्यापार को बढ़ाने के लिए निम्न उपाय किये गये हैं :

(१) किस्म नियन्त्रण योजना—विदेशी मुद्रा की आवश्यक प्राप्ति करने तथा विदेशी बाजारों मे भारतीय वस्तुओं की साख बनाये रखने के लिए कृषि उत्पादन में कच्चा ऊन, तम्बाकू, काजू, खालें तथा चमड़ा, बकरी के बाल, काली मिर्च, इलायची, लाल मिर्च, गरम मसाले, चन्दन का तेल, खजूर का तेल, नीबू, घास का तेल, हर्र-बहेड़ा, जूट का सामान, मछली और मछली-उत्पादन, वनस्पति तेल, तेल सहित खली, अरण्डी, मूंगफली और अलसी का तेल, दालें, प्याज, इन्जीनियरी और रासायनिक प्रकार की पत्तियाँ, आलू, अदरक, हल्दी, अखरोट, तेन्दू की पत्तियाँ, केले का चूर्ण और सुखाये हुए केले, सूअर, भेड़ और बकरी का डिब्बा बन्द मांस, सूअर का ठण्डा किया हुआ मांस, समुद्री केकड़ों का बन्द किया हुआ मांस, आदि वस्तुओं का लदान से पूर्व निरीक्षण योजना की गयी।

खाद्य पदार्थों के अन्तर्गत इन वस्तुओं का किस्म नियन्त्रण अनिवार्य माना गया : आटा, खमीर बनाने का चूर्ण, तरल ग्लूकोज, अंगूर की चटनी, आटे से बनी विशिष्ट मिठाई, नाश्ते के खाद्य पदार्थ (Wheat cakes, Pearl barley, Barley powder), बिस्कुट और मिष्ठान, सूखे दूध का चूर्ण।

हस्त शिल्पों के अन्तर्गत इन वस्तुओं का विशेष निर्यात किया जाता है: गलीचे, कपड़े, मोटा ऊनी वस्त्र, कांसे-पीतल, का सजावटी सामान, लकड़ी पर नक्काशी किया हुआ सामान, हाथी दांत, दरी, मोजे तथा रेशमी वस्त्र, छपा हुआ सूती और रेशमी वस्त्र।

(२) निर्यात संवर्द्धन परिषदें—निर्यात व्यापार बढ़ाने के लिए संवर्द्धन परिषदों की स्थापना की गयी है। इस समय १९ परिषदें कार्य कर रही हैं। काजू, लाख, मसाले, चमड़ा, तम्बाकू, मछली, सूती वस्त्र, रेशम तथा रेयन, खेल के सामान, चमड़ा और चमड़े का तैयार माल, प्लास्टिक और लिनोलियम, अभ्रक, रासायनिक पदार्थ तथा सह-उत्पादन, भारी इन्जीनियरिंग पदार्थ, भेषजीय पदार्थ, साबुन, इंजीनियरी का सामान, फलों के उत्पादन और डिब्बों से सम्बन्धित वस्तुएं तथा रत्न और आभूषण की परिषदें।

(३) अन्य उपाय—(क) विदेश मार्ग निर्देशन तथा प्रभावशाली संवर्द्धनात्मक सेवाएँ प्राप्त करने के लिए विशिष्ट संस्थान स्थापित करने के द्वारा संगठनात्मक उपाय करना।

(ख) आयात और निर्यात वस्तुओं पर उत्पादन की चुंगी की वापसी करना, कुछ वस्तुओं पर निर्यात कर हटाना अथवा कम करना, निर्यात की वस्तुएं बनाने के लिए कच्चे माल की व्यवस्था करना तथा अन्य देशों के उत्पादकों के साथ विदेशी बाजारों में होने वाली प्रतियोगिता में आने वाली कठिनाइयों में तथा अभाव को दूर करने में निर्यातकों को सरकार द्वारा सहायता देना।

(ग) ऋण-सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था करना, रेलों द्वारा माल के वहन में प्राथमिकता देना तथा रेल और जहाजी भाड़ों में कमी करना।

(घ) विदेशी बाजारों में भारतीय उत्पादनों के लिए सद्भावना बनाने हेतु व्यापार शिष्ट मण्डल भेजना तथा व्यापार शिष्ट मण्डलों को भारत लाने का निमन्त्रण देना, विदेशी प्रदर्शनियों में भाग लेना तथा विदेशी बाजारों में एकमात्र भारतीय उत्पादनों की प्रदर्शनियाँ करना।

(ङ) साम्यवादी तथा गैर-साम्यवादी देशों के साथ कुछ व्यापार करार तथा व्यवस्थाओं पर बातचीत करना।

(च) उन वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाने के प्रयास किये गये हैं जिनकी निर्यात सम्भावनाएं अधिक हैं (१) सूती वस्त्रों का उत्पादन बढ़ाने के लिए स्वचालित करघों की स्थापना की गयी है जिससे उत्पादित वस्त्र के १२½% भाग को निर्यात के लिए निश्चित किया गया है। (२) जूट मिल उद्योग के काम की पूर्ण क्षमता फिर से स्थापित कर दी गयी है तथा जूट की कीमतें स्थिर रखने के लिए एक समीकरण भण्डार योजना चालू की गयी है। (३) मैंगनीज के निर्यात पर चुंगी तथा रेल भाड़े में कमी; और लोहे का निर्यात राजकीय व्यापार निगम द्वारा किये जाने की छूट।

(४) जूतों के निर्यात के लिए गोदाम तथा रेल सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था। (५) मछली पकड़ने के लिए यान्त्रिक नावों की उपलब्धि करना, तथा (६) निर्यात वस्तुओं पर किस्म नियन्त्रण लगाने, परीक्षण अनुसन्धानशालाएं खोलने का कार्यक्रम चालू किया गया है।

(४) व्यापारिक समझौते—भारत की व्यापार नीति बहु-पक्षीय करारों से सम्बद्ध है किन्तु राज्य-व्यापार वाले कुछ देशों के साथ द्वि-पक्षीय करार भी किये गये हैं। इन करारों के मुख्य उद्देश्य ये हैं : (१) उन साधारण वस्तुओं की पूर्ति का निश्चित रूप से प्रबन्ध करना जो सामान्य व्यापार-एजेन्सियों द्वारा प्राप्त नहीं हैं। (२) विदेशी व्यापार में भुगतान का सन्तुलन बनाये रखना। (३) भारतीय माल के निर्यात को प्रोत्साहन देना, तथा (४) अन्य देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने एवं निर्यात व्यापार को और अधिक दृढ़ बनाना है।

अब तक ३५ देशों से व्यापारिक करार किये जा चुके हैं। इनमें कुछ प्रमुख देश ये हैं : अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, अर्जेण्टाइना, बलगेरिया, बर्मा, श्रीलंका, ब्राजील, यूनान, चिली, फ्रांस, युगाण्डा, चैकोस्लोवाकिया, अरब गणराज्य, फिनलैण्ड, पूर्वी जर्मनी, पश्चिमी जर्मनी, हंगरी, ईरान, इण्डोनेशिया, इटली, नार्वे, जोर्डन, मैक्सिको, इराक, मोरक्को, पाकिस्तान, पोलैण्ड, रूमानिया, स्वीडेन, स्विट्जरलैण्ड, जापान, बेल्जियम, रूस, इथोपिया, उत्तरी वियतनाम, यूगोस्लाविया, ट्यूनीशिया, सूडान और तंजानिया।

(५) निर्यात जोखिम बीमा निगम (Export Risk Insurance Corporation) की स्थापना केन्द्रीय सरकार द्वारा इसलिए की गयी है कि वह देश से निर्यात किये जाने वाले माल की उन सम्भावित हानियों का बीमा करे जो व्यापारिक एवं राजनीतिक कारणों से होती हैं और जिन पर निर्यातकों का कोई वश नहीं होता है तथा जिनका बीमा अन्य कम्पनियाँ नहीं करतीं। यह निगम 'न हानि न लाभ' नीति के अनुसार केवल देश का निर्यात व्यापार बढ़ाने में निर्यातकों की सहायता करता है।

(६) राज्य व्यापार निगम (State Trading Corporation) की स्थापना १९५६ में इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की गयी . (१) निगम को सौंपी गयी वस्तुओं में 'राज्य व्यापार' वाले तथा अन्य देशों से व्यापार करना। (२) निर्यात की परम्परागत वस्तुओं के लिए नयी मण्डियों की खोज करना और व्यापार बढ़ाने तथा उसमें विभिन्नता लाने के लिए उनका क्षेत्र विस्तृत करना। (३) जिन वस्तुओं की पूर्ति कम मात्रा में है, सरकार के आदेशों पर उनका आयात करना तथा आन्तरिक सन्तुलित वितरण द्वारा मूल्यों में स्थिरता लाना। (४) सरकार द्वारा अपनायी गयी आयात-निर्यात तथा आन्तरिक वितरण की विशेष व्यवस्था को कार्यान्वित करना।

निर्यात के क्षेत्र में निगम के कार्य निम्नलिखित हैं :

(१) जहाँ खुले रूप से माल भेजने की व्यवस्था है तथा दीर्घकालीन करार लाभप्रद है वहाँ निर्यात बढ़ाना। (२) परम्परागत तथा अपरम्परागत वस्तुओं के निर्यात के लिए नयी मण्डियों में प्रविष्ट होकर व्यापार विकसित करना। (३) 'राज्य व्यापार' वाले देशों से हुए व्यापारिक करारों को कार्यान्वित करना। (४) उन वस्तुओं के निर्यात का प्रबन्ध करना जिनकी बिक्री करना कठिन है और जिनके लिए विशेष परिकल्पना अपेक्षित है। (५) स्थानीय उत्पादकों की आवश्यकता पूर्ति और निर्यात क्रम बनाए रखने के लिए कम मूल्यों पर आवश्यक कच्चा माल प्राप्त करना। (६) कुछ विशेष वस्तुओं; जैसे जूते, तम्बाकू, दालों, ऊनी-सूती कपड़े, आदि के निर्यात में निजी व्यापार का अनुसरण करना। जहाँ विदेशी व्यापारी निगम से सीधा व्यापार करना चाहते हैं अथवा नयी मण्डियाँ खोजनी पड़ती हैं अथवा साधारण मार्गों द्वारा पर्याप्त व्यापार नहीं होता, वहाँ यह निगम सीधे व्यापार सम्बन्ध स्थापित करता है। (७) खनिज पदार्थों के निर्यात के लिए निगम को दी गयी वस्तुओं में से खनिज लोहा, मैंगनीज, समुद्री नमक मुख्य हैं। (८) कुछ वस्तुओं का स्थानीय मूल्य अधिक है—जैसी फेरो-मैंगनीज, चीनी, बाईक्रोमेट्स और मेनीग्रोक-नोजन, आदि—अतः इनका निर्यात अधिक मात्रा में नहीं होता और निगम को इनके निर्यात में हानि उठानी पड़ती है। अतः इस हानि को पूरा करने के लिए सुपारी, नारियल, आदि के निर्यात का काम भी निगम को सौंपा गया है। (९) नयी वस्तुओं, जिनका निर्यात पहले नहीं होता था अब उनका निर्यात भी निगम द्वारा किया जाने लगा है। सूती और ऊनी कपड़े, जूते, हस्तकला और इंजीनियरी की वस्तुएँ, सीमेण्ट, मशीन टूल्स, मशीनें, मनुष्य के बालों की टोपियाँ, उत्तम प्रकार का चावल, केला, दालें, मछलियाँ, ताजा फल, रासायनिक पदार्थ, रेल के डिब्बे, हाथकर्घे का कपड़ा, आदि अब रूस, हंगरी, बल्गेरिया, पोलैण्ड और जर्मनी को भेजी जाने लगी हैं।

आयात के क्षेत्र में निगम के मुख्य कार्य ये हैं :

(१) देश के आन्तरिक बाजार को स्थिरता प्रदान करना, मूल्यों में अधिक परिवर्तनों को रोकना और उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुएँ देना। सोडियम सल्फेट, स्प्रेन, कागज और लुग्दी का वितरण निगम ही करता है। (२) देश के औद्योगिक विकास के लिए आरम्भ से ही इन्जीनियरी माल का आयात कर रहा है। इसके अन्तर्गत मशीनों के कल-पुर्जे, छपाई और खानों में प्रयुक्त होने वाली मशीनें, डीजल के इंजन और लौह और अलौह धातुएँ मुख्य हैं। अधिकतर आयात का प्रबन्ध पूर्वी यूरोपीय देशों से रुपये में भुगतान के आधार पर किया जाता है। (३) विभिन्न प्रकार के रसायनों, उर्वरकों, भेषज, सोडियम सल्फेट, पारा, कपूर, रंग, कपड़ा उद्योग के रसायन, मोम और पोलिस्टरीन, आदि—जिनकी उद्योग-धन्धों में कच्चे माल के रूप में आवश्यकता पड़ती है—का आयात निगम द्वारा ही किया जाता है।

१६६६-६७ में निगम के द्वारा केवल ९.२ करोड़ रुपये का व्यापार किया गया। १६६६-७० में व्यापार का मूल्य १७० करोड़ रुपया था।

(ii) खनिज और धातु व्यापार निगम की स्थापना सन् १६६३ में की गयी। इसका उद्देश्य खनिज अयस्कों का निर्यात और धातुओं के आयात की व्यवस्था करना और विदेशों में खनिजों के नये बाजारों का निर्माण करना है। इस निगम द्वारा लोहा अयस्क, कोयला, फैरो-मैंगनीज, बॉक्साइट, आदि का निर्यात तथा तांबा, जस्ता, सीसा, टिन, रांगा, पीतल, प्लेटीनम, आदि धातुओं का आयात किया जाता है। १६६४-६५ में ६८ करोड़ और १६६६-७० में १०६ करोड़ रुपये का व्यापार इस निगम द्वारा किया गया।

(iii) **व्यापार बोर्ड** (Trade Board) भारतीय व्यापार को नया रूप देने तथा व्यापार सम्बन्धी कार्यों में सरकार को सलाह देने, निर्यात व्यापार तथा उद्योग की सम्भावनाओं की समीक्षा करने के लिए सन् १६६२ में इस बोर्ड की स्थापना की गयी। इसके कार्य ये हैं : (१) वस्तु-वार तथा देश-वार आधार पर निर्यात का विस्तृत सर्वेक्षण करना, (२) व्यापार को उचित, नैतिक और सुचारु प्रथाओं का विकास करना, (३) विभिन्न वस्तुओं के निर्यात सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करना, (४) बाजार-अनुसन्धान, बाजार सर्वेक्षण, वस्तु-अनुसन्धान, क्षेत्र-सर्वेक्षण और उत्पादन-सर्वेक्षण करना, (५) निर्यात-आयात का सम्वर्द्धन तथा विकास करना। (६) निर्यात के वाणिज्यिक प्रचार की समीक्षा करना, (७) प्रदर्शनियों, व्यापार-मेलों, व्यापार-केन्द्रों तथा प्रदर्शन-कक्षों के कार्यक्रम की समीक्षा करना; और (८) अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में कर्मचारियों को प्रशिक्षित करना।

कुछ प्रमुख देशों से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध
(TRADE RELATIONS WITH CERTAIN IMPORTANT COUNTRIES)

इंगलैण्ड—भारत और इंगलैण्ड के बीच व्यापार पिछले कुछ समय से घट रहा है। भारत से चाय, जूट, चमड़ा और खालें, तिलहन, कपास, ऊन, धातुएँ और अयस्क (मैंगनीज, लोहा), अभ्रक, आदि निर्यात किये जाते हैं। आयात के अन्तर्गत मशीनें, लोहा और इस्पात, यन्त्र, उपकरण, शराब, मोटरकारें, रबड़ की वस्तुएँ, कागज, गत्ता, आदि प्रमुख वस्तुएं हैं। १६७२-७३ में आयात का मूल्य २०४ करोड़ रुपया और निर्यात का मूल्य १७३ करोड़ रुपया था।

रूस—भारत और रूस के बीच आर्थिक सहयोग होने से अब दोनों देशों में व्यापार बढ़ रहा है। निर्यात की मुख्य वस्तुएँ चाय, कहवा, तम्बाकू, जूते, काजू, खली प्रमुख हैं। पूँजीगत वस्तुएँ, कृषि के यान्त्रिक उपकरण, रसायन, आदि आयात की मुख्य वस्तुएँ हैं। १६७२-७३ में आयात और निर्यात का मूल्य क्रमशः ४० और ३०५ करोड़ रुपया था।

पाकिस्तान—भारत और पाकिस्तान के बीच व्यापार केवल व्यापारिक समझौतों के अन्तर्गत होता है। पाकिस्तान को भारत से सूती कपड़ा, जूट का सामान, लोहा,

इस्पात, मशीनें, शक्कर, सीमेण्ट, कागज, दवाइयाँ, रासायनिक पदार्थ, आदि निर्यात होते हैं। पाकिस्तान से बादाम, जूट, लकड़ी, पान, मछलियाँ, सुपारी, सेंधा नमक, फल और सब्जियाँ आती हैं। १९७२-७३ में आयात और निर्यात बिल्कुल नहीं हुआ।

बर्मा—भारत से बर्मा को मुख्यतः सूती कपड़े, जूट का सामान, लोहा-इस्पात, चाय, कहवा, शक्कर, कृषि उत्पादन, इन्जीनियरिंग एवं विद्युत सामान, दवाइयाँ रसायन तथा हस्तकला की वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं। बर्मा से चावल, फलियाँ, दालें, लकड़ी, पैट्रोलियम, रबड़ तथा बहुमूल्य रत्न आयात किये जाते हैं। १९७२-७३ में आयात और निर्यात का मूल्य क्रमशः ७ और ११ करोड़ रुपया था।

श्रीलंका—इस देश से भी भारत का व्यापार व्यापारिक समझौते के अन्तर्गत किया जाता है। मुख्य आयात खोपरा, नारियल का तेल, तम्बाकू, रबड़, रत्न, आदि हैं। भारत से दालें, चावल, मछली, कोयला, सूती कपड़े, मिर्चें, फल, सब्जियाँ, खली और खाद निर्यात किये जाते हैं। १९७२-७३ में आयात-निर्यात का मूल्य क्रमशः ३ और २५ करोड़ रुपया था।

जापान—जापान के साथ भारत का व्यापार १९५८ के समझौते के अनुसार होता है। जापान से भारत को कच्चा रेशम, कृत्रिम रेशमी कपड़े, सूती कपड़े, लोहा, इस्पात, मशीनें, दवाइयाँ, जहाज, रेलों के उपकरण, रंग, प्लास्टिक एवं रबड़ की वस्तुएँ तथा अखबारी कागज आते हैं। भारत से होने वाले निर्यात में कपास, कच्चा लोहा, पिग आयरन, मैंगनीज, अभ्रक, तम्बाकू, शक्कर, चमड़ा और खालें, कोयला, चमड़ा रंगने के पदार्थ, आदि मुख्य हैं। १९७२-७३ में ६४ करोड़ रुपये का आयात और ३५ करोड़ रुपये का निर्यात व्यापार हुआ।

पश्चिमी जर्मनी—यूरोपीय साझा बाजार के देशों में पश्चिमी जर्मनी का हमारे व्यापार में विशेष स्थान है। भारत से निर्यात के अन्तर्गत चमड़ा, खालें, जूट के बोरे और अन्य सामान, कहवा, चाय, अभ्रक, मैंगनीज, लाख, गरम मसाले, इलायची, हड्डियाँ, ऊन, कच्चा लोहा और काजू भेजे जाते हैं। आयात में लोहा-इस्पात का सामान, ताँबा, पीतल, मशीनी उपकरण, काँच का सामान, रंग, रसायन, विद्युत उपकरण, शराब, वैज्ञानिक यन्त्र, आदि मुख्य वस्तुएँ हैं। १९७२-७३ में १२६ करोड़ रुपये का आयात और ६२ करोड़ रुपये का निर्यात व्यापार हुआ।

संयुक्त राज्य अमरीका—इस देश से हमारा व्यापार निरन्तर बढ़ रहा है। भारत से जूट का सामान, काजू, चाय, चमड़ा और खालें, खाल के गलीचे, ऊन, अभ्रक, मैंगनीज, सिलाई की मशीनें, पंखे, हस्तकला की वस्तुएँ, जूते, चूड़ियाँ, आदि निर्यात किये जाते हैं। आयात में रेलों के उपकरण, खाद्यान्न, जहाज, कागज, रसायन, लोहे और इस्पात का सामान, पैट्रोलियम, पैट्रोलियम की वस्तुएँ, लम्बे रेशे वाली कपास, इन्जिन, धातुएँ, आदि मुख्य वस्तुएँ हैं। १९७२-७३ में आयात का मूल्य २५६ करोड़ रुपये और निर्यात का २५८ करोड़ रुपये था।

पैकोस्लोवाकिया—इस देश से भी व्यापार समझौते के अन्तर्गत व्यापार किया जाता है। निर्यात में सूती कपड़ा, जूट का सामान, नारियल की जटा की वस्तुएँ, वनस्पति तेल, चाय, कहवा, तम्बाकू, चमड़ा, खालें, अभ्रक, लाख, मैंगनीज, कच्चा लोहा, रसायन, हाथकरघे का कपड़ा, प्लास्टिक का सामान, इन्जीनियरिंग सामान, खली, काजू, पुस्तकें, आदि मुख्य हैं। आयात के अन्तर्गत लोहे और इस्पात का समान, मिश्रित इस्पात, लिखने का कागज, अखबारी कागज, विभिन्न प्रकार की मशीनें, मशीनी औजार, पूँजीगत वस्तुएँ, रंग, रसायन, ट्रैक्टर, कृषि के यन्त्र, टायर, ट्यूब, आदि मुख्य वस्तुएँ हैं। १९७२-७३ में आयात का मूल्य १५.५ करोड़ और निर्यात का मूल्य ४६ करोड़ रुपया था।

अफ्रीकी देश—भारत का विदेशी व्यापार अफ्रीका के स्वतन्त्र देशों से होने लगा है—कैमरून, मध्य अफ्रीकी गणतन्त्र, चाड, दहोमी, गैबन, गिनी, आइवरी तट, माली, नाइजर, सेनेगाल, सियरा लियोन, सोमालिया, टोगो, ऊपरी वोल्टा, आदि देश। केनिया, सूडान, अरब गणराज्य, इथोपिया, कांगो, युगाण्डा, ट्यूनिशिया, मोरक्को आदि देशों से भारत का व्यापार होता है। इन देशों से कपास, खाद्यान्न, दालें, रबड़, कहवा कोको, फास्फेट, नमक, जस्ता, ताँबा और सीसा आयात होते हैं। निर्यात के अन्तर्गत सूत, गरम मसाले, सूती कपड़े, जूट का सामान, चाय, तम्बाकू, जूते, इन्जीनियरिंग का सामान, शक्कर आदि वस्तुएँ हैं। सभी अफ्रीकी देशों से किये गये आयात और निर्यात व्यापार का मूल्य १९७२-७३ में क्रमशः १६४ करोड़ और १०१ करोड़ रुपया था।

पश्चिमी एशिया के प्रदेश—भारत से ईरान, ईराक, सऊदी अरब, जोर्डन, इजरायल, कुवैत, अफगानिस्तान, आदि देशों से व्यापार होता है। इन देशों से आयात के अन्तर्गत खजूर, पैट्रोलियम, सूखे और ताजे फल, चमड़ा, खालें, आदि मुख्य वस्तुएँ हैं; निर्यात में चाय, शक्कर, सीमेण्ट, लोहे का सामान, मशीनें, सूती-ऊनी कपड़े, रसायन और दवाइयाँ मुख्य हैं।

दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देश—इन देशों के अन्तर्गत भारत व्यापार मलयेशिया, सिंगापुर, हांगकांग, इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड, आदि देशों से होता है। इन देशों के आयात व्यापार में लकड़ियाँ, रबड़, खोपरा, टिन, चावल, पैट्रोलियम होता है। भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं में मुख्यत रुई, अभ्रक, सूती-ऊनी कपड़े, सिलाई की मशीनें, साइकिलें, लोहे का सामान, बिजली का सामान, टाइप, पुस्तकें, काँच का सामान, आदि है।

दक्षिणी अमरीकी क्षेत्र—इसके अन्तर्गत भारत को व्यापार चिली, अर्जेण्टाइना, ब्राजील, आदि देशों से होता है। आयात में सोना, चाँदी, शोरा, ताँबा, गेहूँ कहवा, जवाहरात, आदि मुख्य हैं। निर्यात व्यापार में मसाले, लाख, चाय, अभ्रक, रसायन, सूती कपड़े, मशीनें, आदि मुख्य हैं। १९७२-७३ में इन देशों से २३ करोड़ रुपये का आयात और ४ करोड़ रुपये का निर्यात किया गया।

19

मानव शक्ति के संसाधन
(MAN POWER RESOURCES)

किसी देश में उत्पत्ति के साधनों में जनसंख्या का महत्त्व अधिक होता है। प्राकृतिक साधनों का उपयोग और देश की आर्थिक एवं व्यापारिक उन्नति वहाँ पाये जाने वाले जनसंख्या के वितरण, उसके घनत्व एवं लोगों के स्वभाव पर निर्भर करती है। अतः जनसंख्या के क्षेत्रीय वितरण को जानना आवश्यक है।

भारत का क्षेत्रफल विश्व का लगभग २% है किन्तु यहाँ विश्व की १५% जनसंख्या पायी जाती है। घने बसे देशों में भारत का स्थान चीन के बाद दूसरा है। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या ४३,९०,७२,५८२ और सन् १९७१ की जनगणना के अनुसार ५४,७९,४९,८०९ थी। इसमें २८,३६,३६,६१४ पुरुष और २६,४०,१३,१९५ स्त्रियाँ थीं।

अन्य देशों की भाँति जनसंख्या का प्रतिवर्ग मील घनत्व देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग है। सम्पूर्ण देश का घनत्व ३७२ व्यक्ति प्रति वर्ग मील अथवा १७८ प्रति वर्ग किलोमीटर है। यह जापान, जावा और इंग्लैण्ड जैसे देशों की तुलना में अवश्य ही कम है। इन देशों का घनत्व क्रमशः २८०, ४५० और २२९ मनुष्य प्रति वर्ग किलोमीटर है। इसके विपरीत, कुछ देशों में जनसंख्या का घनत्व भारत से भी कम है। कनाडा में जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर २, संयुक्त राज्य में २२, रूस में ११, चीन में ७६, फ्रांस में ९३, पश्चिम जर्मनी में २४० और पाकिस्तान में १२१ है। भारत में जनसंख्या का घनत्व गत चार दशाब्दियों में लगभग ९०% बढ़ गया है जिसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति पीछे कृषि योग्य भूमि की उपलब्धि की मात्रा ०.७० एकड़ रह गयी है। यह घनत्व प्रति शताब्दी में बढ़ा है। १९२१ में यह प्रति वर्ग किलोमीटर ७६ व्यक्तियों का था। १९३१ में यह ८३, १९४१ में १००, १९५१ में ११३, १९६१ में १३८ और १९७१ में १५७ हो गया।[1]

भारत की घनी जनसंख्या वाले क्षेत्रों में पंजाब, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, बिहार और पश्चिमी बंगाल के मैदानी भागों का औसत घनत्व ५०० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से कहीं भी कम नहीं है। कहीं-कहीं नदियों के समीप यह औसत १,००० से भी अधिक

1 *India*, 1974, p. 8.

१९६७ की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या का वितरण[1]

राज्य	क्षेत्रफल (वर्ग किलोमीटर)	जनसंख्या (००० में)	घनत्व प्रतिवर्ग किलोमीटर	स्त्रियों का अनुपात प्रति १,००० पुरुषों पीछे	वृद्धि (प्रतिशत में) १९६१-७१
आंध्र प्रदेश	२,७६,८१४	४३,५०२	१५७	९७७	२०.९०
असम	७८,५२३	१४,६२५	१८६	८९७	३४ ७१
बिहार	१,७३,८७६	५६,३५३	३२४	९५४	२१ ३१
गुजरात	१,९५,९८४	२६,६९७	१३६	९३४	२९.३९
हरियाणा	४४,२२२	१०,०३६	२२७	८६७	३२ ३३
हिमाचल प्रदेश	५५,६७३	३,४६०	६२	९५८	२३.०४
जम्मू-कश्मीर	२,२२,२३६	४,६१६	—	८७८	२९ ६५
केरल	३८,८६४	२१,३४७	५४९	१,०१६	२६.२९
मध्य प्रदेश	४,४२,८४१	४१,६५४	९४	९४१	२८.६७
महाराष्ट्र	३,०७,७६२	५०,४१२	१६४	९३०	२७ ४५
कर्नाटक	१,९१,७७३	२९,२९९	१५३	९५७	२४.२२
नागालैण्ड	१६,५२७	५१६	३१	८७१	३९.८८
उड़ीसा	१,५५,७८२	२१,९४४	१४१	९८८	२५.०५
पंजाब	५०,३६२	१३,५५१	२६९	८६५	२१.७०
राजस्थान	३,४२,२१४	२५,७६५	७५	९११	२७ ८३
तमिलनाडु	१,३०,०६९	४१,१९९	३१७	९७८	२२.३०
उत्तर प्रदेश	२,९४,४१३	८८,३४१	३००	८७९	१९ ७९
प० बंगाल	८७,८५३	४४,३१२	५०४	८९१	२६ ८७
मनीपुर	२२,३५६	१,०७२	४८	९८०	३७ ५३
त्रिपुरा	१०,४७७	१,५५६	१४९	९४३	३६.२८
मेघालय	२२,४८९	१,०१२	४५	९४२	३१.५०
केन्द्र द्वारा प्रशासित राज्य					
अंडमान-नीकोबार द्वीप	८,२९३	११५	१४	६४४	८१.१७
चंडीगढ़	११४	२५७	२,२५७	७४९	१,१४.५९
दादरा-नागर हवेली	४९१	७४	१५१	१,००७	२७ ९६
दिल्ली	१,४८५	४,०६६	२,७३८	८०१	५२.९३
गोआ, दामन-ड्यू	३,८१३	८५८	२२५	९८९	३६.८८
लक्षद्वीप	३२	३२	९९४	९७८	३१.९५
अरुणाचल प्रदेश	८३,५७८	४६८	६	८६१	३८.९१
पांडीचेरी	४८०	४७१	९८३	९८९	२७.८१
मिजोराम	२१,०८७	३३२	१६	—	—
भारत	३,२००	५४७,९५०	१७८	९३०	२४ ८०

[1] *India*, 1974, p. 8

है। उत्तर में पंजाब के महेन्द्रगढ़ जिले से लेकर दक्षिण में तमिलनाडु राज्य के नीलगिरि और पूर्व में सन्थाल परगना (बिहार) से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक मध्यवर्ती पठारी भाग का औसत ५०० व्यक्तियों तक सीमित है। इस खण्ड से अहमदाबाद, खेड़ा, बड़ौदा और सूरत (गुजरात में), बम्बई और शोलापुर (महाराष्ट्र में), हैदराबाद, गन्टूर, कृष्णा, पश्चिमी गोदावरी और श्रीकाकुलम (आन्ध्र प्रदेश में) और बंगलौर (कर्नाटक) के भाग उपर्युक्त क्षेत्र में सम्मिलित नहीं किये जाने चाहिए क्योंकि इनका घनत्व ५०० व्यक्ति प्रति वर्गमील से अधिक है। इस भाग में कुछ स्थान ऐसे भी हैं जिनका घनत्व २०० व्यक्ति प्रति वर्गमील से भी कम है। इनमें पश्चिमी मरुस्थल और कच्छ प्रायद्वीप का दलदली भाग, मध्य प्रदेश का पहाड़ी वन प्रदेश तथा दक्षिणी-पूर्वी पठारी भाग सम्मिलित हैं।

जनसंख्या के वितरण मानचित्र को देखने से एक बात स्पष्ट होती है कि जहाँ एक ओर राजस्थान की शुष्क पेटी, असम की पहाड़ियों और दक्षिण के पठार पर अधिकांश भागों में जनसंख्या का समूहीकरण कम है, वहाँ दूसरी ओर नदियों की घाटियों समुद्रतटीय मैदानों अथवा खनिज पदार्थ प्राप्ति के क्षेत्रों और औद्योगिक केन्द्रों में आवश्यकता से अधिक जमाव पाया जाता है। ऐसे क्षेत्र जिनका औसत घनत्व प्रति वर्गमील ३७३ के समान या उससे ऊपर है वे गुजरात के तट से सम्पूर्ण पूर्वी तट होते हुए पश्चिम बंगाल तक फैले हैं। जहाँ कहीं बीच में पहाड़ी भाग आ गये हैं वहीं यह औसत कम टूट-सा गया है। तटीय प्रदेशों में छोटे उपजाऊ कछारी मैदानों का घनत्व अधिक है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उत्तम खेतिहर भूमि और घनी जनसंख्या में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। भारत की ७०% जनसंख्या कृषि पर निर्भर है अतः कृषि प्रधान क्षेत्र औसत से भी अधिक घने बसे हैं। न केवल दक्षिणी भारत के तटीय भागों और नदी-घाटियों में ही वरन् उत्तरी भारत में सम्पूर्ण गंगा का मैदान घने बसे भागों में से है। केवल पीलीभीत और खेरी जिलों को छोड़कर सर्वोच्च औसत ४५० से ऊपर है। कई भागों में तो यह १,००० तक तथा उससे भी अधिक पहुँच गया है। बलिया में १,१२०, मेरठ में १,१७०; सारन में १,३४३; पटना में ६६१ और कलकत्ता में ७५,०३८। असम का औसत घनत्व केवल २५२ है, किन्तु ब्रह्मपुत्र की घाटी में लखीमपुर का घनत्व ३१७ तक है। पश्चिम की ओर सतलज-यमुना दोआबों में यह घनत्व और भी बढ़ जाता है—अमृतसर में ७८८; मथुरा में ७३०; इटावा में ७०६।

जनसंख्या के वितरण पर स्पष्ट ही भौगोलिक प्रभाव देखा जाता है। घनी जनसंख्या भारत के उन्हीं भागों में पायी जाती है जहाँ उपजाऊ कछारी मैदान हैं, जहाँ सिंचाई की सुविधा है अथवा जहाँ अच्छी वर्षा होती है। इसके विपरीत, न्यूनतम जनसंख्या शुष्क अथवा पहाड़ी भागों में पायी जाती है, जैसे बीकानेर में ४२ जैसलमेर में ६ और सिकर और उत्तरी कछार पहाड़ियों में ४८ व्यक्ति ही प्रति वर्ग मील में रहते हैं। कुछ जिलों में जनसंख्या ६०० के ऊपर पायी जाती है। इनका

अध्ययन बड़ा ही रुचिकर है दिल्ली, लखनऊ और अमृतसर जिले अपने समीपीय जिलों की अपेक्षा बहुत ही घने बसे हैं। यही बात हुगली, हावड़ा, २४ परगना जिलों के लिए भी सही है। मेरठ और जालन्धर सामान्यतः घने बसे हुए भाग में हैं। उत्तर प्रदेश में वाराणसी और बिहार में सारन दरभगा, पटना जिलों का औसत १,००० से ऊपर है। यहां वर्षा का औसत ४० इञ्च से ऊपर है तथा वर्षा विश्वसनीय और निश्चित है। खादर की उपजाऊ भूमि में चावल पैदा होता है। सिंचाई द्वारा रबी की फसल (गेहूं और जौ) भी अच्छी होती है।

दक्षिण में केरल बहुत ही घना बसा राज्य है। जनसंख्या का औसत समस्त राज्य के लिए ५४८ व्यक्ति प्रति किलोमीटर है किन्तु कई भागों का औसत ६०० तक पाया जाता है। जनसंख्या के घनी होने का मुख्य कारण ऊँचे तापमान और अच्छी वर्षा का होना है। शुष्क मौसम बहुत ही छोटा होता है। इस कारण यहाँ चावल की तीन फसलें पैदा की जाती हैं। जहाँ चावल पैदा नहीं होता वहाँ नारियल के कुंज पाये जाते हैं। तापमान और वर्षा की ऐसी दशाएँ ऊँचे घनत्व के लिए आदर्श हैं। पश्चिमी बंगाल के तटीय भागों में भी ऐसी दशाएँ मिलती हैं। हुगली से दूर पश्चिम की ओर बालू मिट्टी और लैटेराइट मिट्टी का मलेरिया ग्रस्त क्षेत्र आ जाता है। इस क्षेत्र का घनत्व अपेक्षतया कम है।

जिन भागों में खनिज और उद्योगों के कारण जनसंख्या का जमाव हुआ है उनमें दामोदर घाटी, कोलार की खानें, छोटा नागपुर के पठार के निकटवर्ती क्षेत्र और जमशेदपुर उल्लेखनीय हैं। पश्चिम की ओर थार के निकट सिंचाई योजनाओं के कारण जनसंख्या बढ़ गयी है। सबसे अधिक और बड़ा जमाव कलकत्ता में हुगली के किनारे हुआ है जहाँ प्रति वर्ग किलोमीटर पीछे ३०,२७६ व्यक्ति रहते हैं। बम्बई में १३,६४०; हैदराबाद में ६,४६४; मद्रास में १६,२६३, बंगलौर में ११,४६२, कानपुर में ४,४१३; पूना में ६,१६६ तथा अहमदाबाद में १७,०५३ व्यक्ति। दिल्ली में सफदरजंग और करोलबाग पटेलनगर में अत्यधिक जनसंख्या का जमाव पाया जाता है।

घनत्व के आंकड़ों से स्पष्ट होगा कि (१) उत्तरी भारत के मैदानी भागों के राज्यों में जनसंख्या का घनत्व अधिक है (२) इन भागों में यह घनत्व पूर्व से पश्चिम की ओर कम होता जाता है। (३) सीमाप्रान्तीय क्षेत्रों, पहाड़ी क्षेत्रों, मरुस्थलों और वन प्रदेशों में घनत्व कम है। (४) दिल्ली, केरल तथा पश्चिमी बंगाल में घनत्व अधिक पाया जाता है।

उत्तरी मैदान में घनत्व अधिक होने के कारण ये हैं: (१) यह मैदान सतलज, गंगा और अन्य नदियों द्वारा लायी गयी उपजाऊ मिट्टी का बना है। (२) यहाँ की औसत वर्षा पर्याप्त है। वर्षा के अभाव को सिंचाई की नहरों द्वारा पूरा किया जाता है। (३) जलवायु मानव विकास के लिए उपयुक्त है। (४) समतल धरातल होने के कारण यातायात के मार्गों की अधिकता पायी जाती है। (५) इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के उद्योगों का विकास हुआ है—सूती-ऊनी वस्त्र, जूट, काँच, चीनी, कागज, आदि उद्योग। (६) व्यापार के लिए पर्याप्त सुविधाएँ हैं।

जनसंख्या का घनत्व वर्षा की मात्रा के साथ घटता-बढ़ता है—भारत में जनसंख्या का घनत्व वर्षा के परिमाण के साथ घटता जाता है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में यह घनत्व अधिक होता है। पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ने पर वर्षा की कमी के साथ-साथ घनत्व भी कम होता जाता है। किन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं। यद्यपि पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के पूर्वी भागों में वर्षा की मात्रा कम है किन्तु सिंचाई के कारण घनत्व घटने की अपेक्षा बढ़ गया है। इसी प्रकार छोटा नागपुर के पठारी भाग में भी खनिज पदार्थों की उपलब्धता के कारण घनत्व में साधारणतः वृद्धि पायी जाती

चित्र—१६१
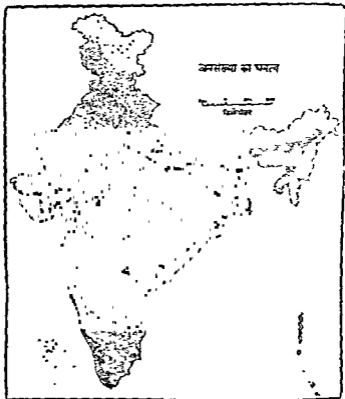
है किन्तु इसके विपरीत असम में अधिक वर्षा होते हुए भी घनत्व अपेक्षाकृत कम है। इसके कारण ये हैं : (१) यहाँ वनों की अधिकता है जिन्हें साफ करना कठिन है। (२) कृषि योग्य भूमि का अभाव पाया जाता है। केवल पहाड़ी ढालों पर ही सीढ़ी-

तुमा खेतों में अथवा नदी घाटियों में कृषि की जाती है। (३) नम और आर्द्र जल-वायु के कारण जलवायु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। (४) सीमाप्रान्तीय क्षेत्र होने के कारण जनता के लिए सुरक्षित नहीं है। (५) द्वितीय महायुद्ध काल में कोहिमा तथा इम्फाल के युद्धों के कारण भी यहाँ की जनसंख्या को हानि पहुँची।

दक्षिण के पठार का घनत्व कम है क्योंकि (१) इसका धरातल बड़ा ऊँचा-नीचा है जिसके कारण कृषि करना असुविधाजनक होता है। (२) यातायात के मार्गों का अभाव पाया जाता है। (३) वर्षा अधिकांश भागों में औसत से भी कम होती है। (४) असमान धरातल के कारण डेल्टा प्रदेशों को छोड़कर सिंचाई की सुविधाओं का अभाव है।

भारत के पूर्वी और पश्चिमी तट घने बसे हैं क्योंकि तटीय भाग पठारों से निकलने वाली नदियों द्वारा लायी गयी बारीक काँप मिट्टी से बने हैं। इन भागों में ग्रीष्म और शीतकालीन मानसूनों से पर्याप्त से अधिक वर्षा हो जाती है समुद्र के निकट होने के कारण जलवायु सम रहती है और ताप-परिसर अधिक ऊँचा नहीं बढ़ पाता। उपजाऊ भूमि और जल की प्राप्ति के अनुसार चावल का उत्पादन सबसे अधिक किया जाता है। चावल उत्पादक क्षेत्र सदैव गेहूँ उत्पादक देशों की तुलना में सघन घनत्व वाले होते है क्योंकि (१) अन्य उपजों की अपेक्षा चावल की उतनी ही मात्रा से अधिक मनुष्यों की उदरपूर्ति हो जाती है। (२) चावल में भोजन के अधिक पोषक तत्त्व होते हैं। (३) चावल की प्रति हैक्टेअर पैदावार भी अधिक होती है। चावल की फसल तैयार भी शीघ्र होती है (४) अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में चावल का उत्पादन अधिक सुगम होता है क्योंकि श्रमिक अधिक संख्या में मिल जाते हैं। इन सबके अतिरिक्त यातायात के लिए नहरों या अनूपों को एक-दूसरे से जोड़कर नावें चलायी जाती हैं। इन्हीं सब कारणों से तटीय भागों में चावल और नारियल के कुंजों के बीच अधिक जनसंख्या रहती है।

भारत के कम घनत्व वाले प्रदेशों के अन्तर्गत पहाड़ी क्षेत्र, कम वर्षा वाले अथवा पठारी क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं। हिमालय प्रदेश, असम, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मेघालय, मनीपुर कश्मीर, नागालैण्ड, आदि के पर्वतीय क्षेत्रों में समतल और उपजाऊ भूमियों का अभाव पाया जाता है। अधिकांश भाग वनों से ढके हैं। पहाड़ी मार्गों में परिवहन के मार्गों का बनाना भी कठिन होता है तथा कृषि भूमि के अभाव में लोग बिखरे हुए रहते हैं। जीविकोपार्जन के साधनों के अभाव में भेड़-बकरियाँ पालकर, लकड़ियाँ काटकर या शिकार करके ये अपना निर्वाह करते हैं। ये व्यवसाय स्वयं में अधिक जनसंख्या को आकर्षित नहीं करते।

राजस्थान के पश्चिमी भाग में थार का मरुस्थल है जहाँ गंग और राजस्थान नहर के निकटवर्ती भागों को छोड़कर जनसंख्या का घनत्व अत्यन्त न्यून पाया जाता है। अधिकांश भागों में रेतीले टीले और कटीली झाड़ियाँ मिलती हैं। वर्षा का सर्वथा अभाव रहता है अतएव कृषि उत्पादन कठिनता से किया जाता है।

रेतीले टीलों के कारण आवागमन के मार्गों का भी अभाव पाया जाता है। अस्तु, मुख्यतः लोग जहाँ जल मिल जाता है, वहीं छोटी-छोटी ढाणियों में रहते हैं। ऊँट, भेड़ें और पशुपालन में लगे रहने के कारण इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमना पड़ता है, फलतः जनसंख्या का जमाव नहीं हो पाता।

भारत के अत्यधिक घनत्व वाले भागों के अन्तर्गत तीन प्रमुख राज्य हैं : **दिल्ली, केरल और पश्चिमी बंगाल।**

दिल्ली में सबसे अधिक घनत्व मिलने के कारण ये हैं : (१) इस राज्य का अधिकांश भाग शहरी जनसंख्या का है जो अनेक नागरिक एवं सामाजिक सुविधाओं के कारण घना बसा है। (२) दिल्ली नगर भारत की राजधानी है जहाँ अनेक विभागों के कार्यालय एवं विभिन्न उद्योगों के स्थानीयकरण के कारण जनसंख्या का केन्द्रित होना स्वाभाविक ही है। परिवहन और व्यापार की पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध हैं। (३) भारत के प्रत्येक भाग से यह राज्य रेलमार्गों, सड़कों अथवा वायुमार्गों द्वारा जुड़ा है। (४) देश के विभाजन के स्वरूप लाखों शरणार्थी अन्यत्र न जाकर यहीं बस गये हैं।

केरल राज्य में भी घनत्व अधिक पाया जाता है। इसके कारण ये हैं : (१) यहाँ चावल का उत्पादन अधिक किया जाता है। (२) तटीय भागों में मिट्टी बड़ी उपजाऊ है तथा वर्षा भी खूब होती है। अतः रबड़, कहवा, नारियल, सुपारी, आदि का व्यापारिक उत्पादन किया जाता है। (३) शिक्षा का प्रचार अधिक है तथा रहन-सहन का मापदण्ड भी ऊँचा है। (४) स्वच्छता अधिक होने से रोग कम होते हैं, अतः मृत्यु दर भी कम है। मोनोजाइट, बॉक्साइट, थोरियम और मूल्यवान पदार्थों के मिलने के कारण अनेक प्रकार के उद्योग स्थापित हो गये हैं।

पश्चिमी बंगाल का यद्यपि उत्तरी और पूर्वी भाग तराई से सम्बन्धित होने के कारण अधिक घना नहीं बसा है किन्तु मध्य और दक्षिणी बंगाल अधिक घनत्व के क्षेत्र हैं क्योंकि : (१) इस भाग में कलकत्ता और उसके समीपवर्ती औद्योगिक क्षेत्र अधिक घने बसे हैं। हुगली नदी के किनारे-किनारे अनेक प्रकार के उद्योगों का स्थानीयकरण हुआ है। (२) नदियों एवं नहरों तथा रेलमार्गों की अधिकता के कारण आने-जाने की बड़ी सुविधा पायी जाती है। (३) इन भागों की मिट्टी अधिक उपजाऊ है जिसमें चावल, गन्ना, जूट, आदि अधिक पैदा किये जाते हैं। (४) इस क्षेत्र में व्यापार भी अधिक बढ़ा हुआ है।

जनसंख्या का विकास
(GROWTH OF POPULATION)

आगे की तालिका में भारत में जनसंख्या की वृद्धि सम्बन्धी आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :

दशाब्दी	जनसंख्या (करोड़ में)	दशाब्दी में कुल वृद्धि	दशाब्दी में प्रतिशत वृद्धि
१८९१	२३·५९	—	—
१९०१	२३·८३	+०·३६	+ ०·७
१९११	२५·२०	+१·३७	+ ५·७३
१९२१	२५·१२	—०·०७	— ०·३०
१९३१	२७·८८	+२ ७६	+११·००
१९४१	३१·८५	+३ ८७	+१४·२३
१९५१	३६·०९	+४·२४	+१३·३१
१९६१	४३·९०	+६ ९१	+२१ ६४
१९७१	५४·७९	+११ ८३	+२४·८०

१९६१ की जनगणना के अनुसार भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या (मनीपुर, उत्तरी-पूर्वी सीमाप्रान्तीय प्रदेश, नागालैण्ड, सिक्कम को छोड़कर) ४३६, ४२४, ४२९ थी। यदि इन राज्यों की अनुमानित जनसंख्या भी जोड़ दी जाये तो यह ४३·९ करोड़ थी। १९७१ में यह ५४·७ करोड़ थी।

जनसंख्या की वृद्धि और उसके कारण

भारत में १८७२ में पहली बार जनगणना की गयी जिसके अनुसार यहाँ की जनसंख्या २५ करोड़ थी। इसके बाद प्रति दशाब्दी में जनगणना होती रही है। सन् १८९१ से १९२१ तक के ३० वर्षों में केवल १ २ करोड़ की वृद्धि हुई, सन् १९२१ से १९५१ तक के ३० वर्षों में १०·०९ करोड़ की वृद्धि हुई और १९६१ में समाप्त होने वाले १० वर्षों में ७ ८ करोड़ की। सन् १९२१ तक भारत में अकाल, महामारी, प्लेग, इन्फ्लुएँजा, हैजा आदि बीमारियों के कारण जनसंख्या की अपार हानि हुई। सन् १९२१ से १९५१ तक की अवधि में बंगाल में अकाल को छोड़कर कोई देशव्यापी महामारी नहीं फैली। इसके अतिरिक्त यातायात के साधनों और सिंचाई के क्षेत्रफल में वृद्धि, स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं की सुविधाओं का विकास तथा औद्योगिक और कृषि उन्नति के फलस्वरूप जीविका के साधनों में वृद्धि हो गयी है। सन् १९५१ से १९७१ के बीच की अवधि में देश में नियोजित अर्थव्यवस्था का पालन हुआ है अतः देश में विकास होने के साथ-साथ जनसंख्या में भी वृद्धि हुई है। पिछले २० वर्षों में कुल मिलाकर १८·६ करोड़ की वृद्धि हुई है।

जनसंख्या में वृद्धि के कारण निम्न प्रकार हैं :

(१) भारत की जलवायु गर्म होने के कारण लड़के और लड़कियाँ शीघ्र वयस्क हो जाते हैं। अतः छोटी उम्र में ही सन्तानोत्पत्ति होने लगती है। भारतीय स्त्री अपने प्रजनन काल में (१५ से ४५ वर्ष की आयु तक) ६·७ बच्चों की माँ बन

जाती है जबकि जापानी स्त्री ५ बच्चों की, अमरीकी ३ बच्चों की और अंग्रेज २·६ बच्चों की माँ बनती है। यहाँ परिवार वृद्धि बड़ी तीव्र गति से होती है।

(२) भारत में जन्म और मृत्यु दर दोनों ही अधिक हैं। यह दरें प्रति १,००० व्यक्तियों के पीछे क्रमशः ४० और १८ (१९७०-७१) है। अतः प्रति १,००० मनुष्यों पीछे प्रतिवर्ष २२ व्यक्तियों की वृद्धि हो जाती है।

(३) भारत में विवाह केवल सार्वभौमिक है अर्थात् सभी व्यक्ति चाहे वे अपाहिज, रोगी अथवा भिखारी भी हों तो भी वे विवाह करते हैं। सन्तान उत्पन्न करना एक धार्मिक कृत्य माना जाता है और समाज में नि.सन्तान व्यक्तियों को अनादर की दृष्टि से देखा जाता है।

(४) देश की आर्थिक असतत दशा तथा दरिद्रता ने भी जनसंख्या की वृद्धि को प्रोत्साहन दिया है। एडम स्मिथ के अनुसार, "दीनता और निर्धनता सन्तानोत्पत्ति के वायुमण्डल के अनुकूल होती है।" यह कथन भारत के लिए पूर्ण रूप से लागू होता है।

(५) देशवासियों में शिक्षा का अभाव है। केवल २९ प्रतिशत व्यक्ति ही शिक्षित हैं। जीवन-स्तर बहुत ही नीचा है और दरिद्रता का यहाँ साम्राज्य है। इन कारणों से सन्तानोत्पत्ति में वृद्धि होती जाती है। अधिकांश व्यक्तियों का विश्वास है कि 'सन्तान प्रभु की देन है इसमें हमारा कोई दायित्व नहीं' फलतः बच्चों की संख्या बढ़ती जाती है। परिवार नियोजन कार्यक्रम मध्यम श्रेणी के लोगों में अभी तक सफल नहीं हो सका है।

(६) देश में अभी तक सस्ते और स्वास्थ्यवर्धक मनोरंजन के साधनों का अभाव पाया जाता रहा है अतः केवल सन्तानोत्पत्ति की भावना को ही अधिक बल मिलता है।

(७) १९०१-१९७१ की अवधि में स्त्री और पुरुष दोनों की ही जीवन अवधि में वृद्धि हुई है। १८९१-१९०१ में एक स्त्री और पुरुष की औसत आयु केवल २३·९६ और २३·६३ वर्ष की थी। १९५१-६० में यह औसत ४०·६० और ४१·६० वर्ष का था। १९६१-७० में यह क्रमशः ४५·६ और ४७ वर्ष हो गया। सन्तानोत्पत्ति काल में भी वृद्धि हुई है। अतः जनसंख्या की वृद्धि में तीव्रगति होना स्वाभाविक है।

(८) यद्यपि १९०१ के बाद महामारियों, बीमारियों, आदि पर रोकथाम होने के कारण मृत्यु दर में बड़ी तेजी से गिरावट आयी है किन्तु जन्म दर में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। १९०१ में जन्म दर ४६·२ प्रति एक हजार थी, यह १९३१ में ३९·९ हुई किन्तु मृत्यु दर घटकर ४२·६ से १९·१ तक हो गयी। स्पष्टतः जनसंख्या में वृद्धि की गति बढ़ गयी।

(९) संयुक्त परिवार प्रथा के कारण सामूहिक दायित्व की भावना, सन्तान-लालसा, मनोरंजन के साधनों का अभाव अधिक बाल मृत्यु, निम्न समाज में विधवा विवाह का प्रचलन, आदि अन्य कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि करने वाले तथ्य हैं।

१९११ और १९७१ की ६० वर्षीय अवधि मे भारत मे जनसंख्या की वृद्धि २५.० करोड़ से बढ़कर ५४.७ करोड़ हुई है, अर्थात् ६० वर्षों में १२०%। वृद्धि की अधिकतम दर असम मे और न्यूनतम जम्मू-कश्मीर मे रही है। इसका मुख्य कारण असम में बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आदि राज्यो से चाय उद्यानों मे अधिक श्रमिको का स्थायी रूप से बस जाना रहा है। जम्मू-कश्मीर मे विशेषत: सुरक्षा की भावना का अभाव होना है।

इस समय जनसंख्या २.५ प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। सन् २००० में अनुमानतः भारत मे १०० करोड़ जनसंख्या होगी। देश के आर्थिक साधनों के दिवोहन की दृष्टि से इस गति मे रुकावट डालना आवश्यक है अन्यथा सामाजिक विस्फोट होने की आशंका होगी।

जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के उपाय

जनसंख्या की तीव्र वृद्धि को रोकने के निम्न उपाय हैं .

(१) विवाह की आयु में वृद्धि करना—लड़के और लड़कियों के विवाह की न्यूनतम उम्र बढायी जाय। जितनी देर मे विवाह किया जाता है वैवाहिक जीवन मे उतने ही कम बच्चे उत्पन्न होते हैं। *अधिक उम्र मे विवाह होने से लडकियो को* शिक्षा प्राप्त करने और अन्य सांस्कृतिक कार्यों मे भाग लेने की ओर रुचि बढ़ेगी, इससे अपरोक्ष रूप मे सन्तानोत्पत्ति को प्रोत्साहन नही मिलेगा·

(२) उत्पादन में वृद्धि करने से मनुष्य की भौतिक रुचि बढ जाती है और उसका रहन-सहन स्तर ऊँचा हो जाता है और भविष्य के लिए योजनाएँ बनाने लगता है। अस्तु, कृषि और औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि करना आवश्यक है। कृषि की पुनर्व्यवस्था निम्न प्रकार से की जा सकती है -

(क) काम मे आने वाली भूमि की गहरी जुताई करना। यह कार्य उन्नत बीज, और कृषि के आधुनिकतम साधनो का प्रयोग करके किया जा सकता है।

(ख) कृषि क्षेत्र का विस्तार बढ़ाने के लिए नयी और पडत भूमि का उपयोग किया जाय तथा सिंचाई के साधनो का विस्तार किया जाय।

(ग) भू-स्वत्वों, कृषि ऋण तथा निरक्षरता के कारण उत्पन्न होने वाली आपत्तियों को तात्कालिक सुधारों द्वारा दूर किया जाय।

(घ) जिन भागों में अभी तक औद्योगिक उन्नति नहीं हुई है उनका औद्योगीकरण किया जाय। इस हेतु अधिकतर छोटे और घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिए क्योंकि छोटे उद्योग जब व्यवस्थित किये जाते हैं तो वे कृषि और बड़े पैमाने के उद्योग के बीच एक आवश्यक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं।

औद्योगिक विकास देश में जनसंख्या की वृद्धि को रोकता है क्योंकि औद्योगिक क्षेत्रों मे कई विषम परिस्थितियों के पैदा हो जाने से मानव की प्रजनन क्षमता पर अहितकर प्रभाव पडता है। भोजन प्राप्ति के लिए दिनभर व्यस्त रहने अथवा *सामाजिक कार्यों मे लिप्त रहने से प्रजनन-शक्ति का प्रयोग पूरे प्रकार नहीं हो पाता,*

फलतः सन्तानोत्पत्ति भी कम होने लगती है क्योंकि मनुष्य को अनेक प्रकार की मानसिक और शारीरिक चिन्ताएँ घेरे रहती हैं तथा यौन सम्बन्ध के अतिरिक्त भी मानसिक सन्तुष्टि के कई अन्य साधन उपलब्ध हो जाते हैं। अतः यौन मिलन की अवधि कम होती जाती है।

(३) सन्तति सुधार शास्त्र (Eugenics)—सामाजिक अर्थव्यवस्था, पारिवारिक सुख और राष्ट्रीय नियोजन के हित मे परिवार नियोजन और सन्तान की सीमा तो आवश्यक है ही, किन्तु इसके साथ ही साथ सन्तति सुधार कार्यक्रम मे भयकर प्रकृति के छूत या सक्रामक रोगो से ग्रस्त व्यक्तियों के विवाह और सन्तानोत्पत्ति पर पूर्ण प्रतिबन्ध भी होना चाहिए।

(४) स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार—देशवासियों की आर्थिक क्षमता को बनाये रखने के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सफाई पर ध्यान देना आवश्यक है। नर्सों, डाक्टरों, दाइयों एवं परिचारिकाओं की सख्या में वृद्धि की जाय। गाँवों में पीने के लिए स्वच्छ जल का उचित प्रबन्ध किया जाय, ग्रामीणों को स्वास्थ्यप्रद जीवन व्यतीत करने के साधन बताये जायें।

(५) सामाजिक सुरक्षा का होना भी आवश्यक है। बुढ़ापे, बेरोजगारी अथवा दुर्दशा मे सुरक्षा न होने पर ही साधारण व्यक्ति बड़े परिवार की इच्छा रखता है जिससे उसके बाद परिवार की देख-रेख उचित ढग से हो सके। वास्तव मे बच्चे दरिद्र लोगों की सम्पत्ति हैं और एक प्रकार का बीमा भी।

(६) उपर्युक्त सुझावों को कार्यान्वित करने में समय लग सकता है, अत इस बीच मे जनसख्या की वृद्धि को रोकने के लिए परिवार नियोजन के कार्यक्रम को विकसित करना होगा।

ऊपर बताये गये विभिन्न सुझावों द्वारा ही जनसख्या को तीव्र गति के बढ़ने से रोका जा सकता है। एक दम्पति के दो या तीन बच्चों से अधिक बच्चे नहीं होने चाहिए, क्योंकि छोटा परिवार सुखी परिवार होता है।

जनसंख्या का लिंग अनुपात
(SEX RATIO OF POPULATION)

सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत मे कुल २२ ६३ करोड़ पुरुष (५१.१ प्रतिशत) तथा २१.२६ करोड़ स्त्रियाँ (४८.५ प्रतिशत) थी। सन् १९७१ में यह संख्या २८ ६ करोड़ और २६ ४ करोड़ थी। इस सम्बन्ध मे एक विलक्षण बात यह है कि गत सत्तर वर्षों में स्त्रियों का अनुपात पुरुषों की तुलना मे निरन्तर कम होता गया है। यह तथ्य इन आँकड़ो से स्पष्ट है। १९०१ मे प्रति १,००० पुरुषों के पीछे ९७२ स्त्रियाँ थीं। उसके बाद से ही यह सख्या घटती जा रही है। १९११ में यह ९६४, १९२१ मे यह ९५५, १९३१ मे ९५० १९४१ में ९४५, १९५१ मे ९४६, १९६१ में ९४१ और १९७१ में ९३० थी।

पुरुषों के अनुपात मे स्त्रियों की सख्या कम होने के मुख्यतः तीन कारण हैं (i) भारत मे स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष शिशु अधिक उत्पन्न होते हैं। (ii) भारत मे

विशेषकर उत्तर भारत के प्रदेशों में जहाँ लड़कियों की संख्या विशेष कम है) लड़कियों की देखभाल प्रायः कम होती है, अतः बाल्यकाल अथवा प्रसूति अवस्था में उनकी मृत्यु अधिक होती है। (iii) भारत में बाल विवाह होते हैं और छोटी आयु में ही मातृत्व का भार वहन करने में अयोग्य होने के कारण बहुत-सी लड़कियों की प्रसूति-काल में ही मृत्यु हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रायः प्रसूतावस्था में उचित देखभाल न होने के कारण अनेक बालिकाएं रोगग्रस्त हो जाती हैं। इस प्रकार स्त्रियों की [illegible] है। यह एक बहुत ही विलक्षण स्थिति [illegible] ना में महिलाओं की औसत आयु भी [illegible]। इसका सम्भावित कारण यह है कि उन देशों में सामाजिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता के कारण स्त्रियों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है क्योंकि वे प्रारम्भ से ही परिवार नियोजन का ध्यान रखती हैं तथा उन्हें पारिवारिक चिन्ता में भारतीय महिलाओं की तुलना में कम घुलना पड़ता है।

विभिन्न राज्यों में स्त्री-पुरुष अनुपात बड़ा असम है। यह अध्याय के प्रारम्भ में दी गयी तालिका से स्पष्ट होगा।

[illegible]

कारण यह भी है कि अधिकांश पुरुष नौकरी के लिए बड़े-बड़े नगरों में (दूसरे राज्यों में) जाते हैं और वे अपनी स्त्रियों को घर पर छोड़ जाते हैं। पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, जम्मू-कश्मीर, आदि राज्यों में पुरुषों की संख्या प्राकृतिक कारणों से अधिक है।

व्यवसाय के अनुसार जनसंख्या का विभाजन
(OCCUPATIONAL DISTRIBUTION OF POPULATION)

सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार १५ से ६० वर्ष की आयु वाले व्यक्तियों का प्रतिशत कुल जनसंख्या का ४२.९८% था। इस आयु के व्यक्तियों को सामान्यतः कार्यशील जनसंख्या माना जाता है। विभिन्न व्यवसायों के अनुसार भारत की लगभग ७०% जनसंख्या कृषि में संलग्न है जबकि केवल १२% व्यक्ति उद्योगों में लगे हैं। भारत की कार्यशील जनसंख्या का व्यावसायिक विभाजन १९५१, १९६१ और १९७१ में इस प्रकार था।

उद्योगों के अनुसार जनसंख्या का वितरण

उद्यम	१९५१	१९६१	१९७१	१९५१	१९६१	१९७१
	(लाख में)			(कुल जनसंख्या का %)		
कृषक	६९८	९९५	७८२	५०·०	५२·८	४३·३
कृषि श्रमिक	२७५	३१५	४७५	१९.७	१६·७	२६·३
खदान शिल्प एवं घरेलू उद्योग	१६७	२५२	२२१	१२·०	१३·४	१२·४
निर्माण कार्य	१५	२१	२११	१·१	१·१	१·२
वाणिज्य एवं व्यापार	७१	७९	१००	५.२	४·०	५·६
परिवहन एवं संचार सेवाएँ	२१	३०	४४	१·५	१·६	२·४
अन्य	१४६	१९५	१५०	१०·५	१०·४	८·७४

इस सारणी से स्पष्ट है कि कार्यशील जनसंख्या का लगभग ७०% भाग कृषि पर निर्भर है। यह स्थिति बहुत ही असन्तोषजनक है क्योंकि कृषि पर अधिक निर्भरता के कारण देश की राष्ट्रीय आय बहुत कम है और जनता का जीवन-स्तर बहुत नीचा है। भारत में कृषि पर निर्भर रहने वालों की संख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है। सन् १८९१ में कुल जनसंख्या का ६१·१% कृषि पर निर्भर था। सन् १९११ और सन् १९३१ मे कृषि पर निर्भर रहने वाली जनसंख्या का भाग बढ़कर क्रमशः ७१% और ७३% हो गया। सन् १९६१ और सन् १९७१ में यह प्रतिशत क्रमशः ७० और ७१ था।

साक्षरता के अनुसार जनसंख्या का अनुपात

साक्षर से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो किसी भाषा को सामान्य रूप मे लिख-पढ़ सकते हैं। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता का प्रतिशत १६·६ था जो सन् १९६१ में २४·० और सन् १९७१ में २९·३ हो गया। इसमे भी विभिन्न राज्यों मे साक्षरता के स्तर सर्वथा भिन्न है। साक्षरता का स्तर केरल मे ४६·२% (स्त्री ३८·४ और पुरुष ५४ २) है, जो अन्य राज्यों मे सबसे ऊँचा है। राजस्थान मे यह १४ ७% (५ ७ और २२ ८%) है। देश मे औसत साक्षरता २९·३% है। स्त्रियों की १८ ४% और पुरुष का ३९·५ प्रतिशत।

साक्षरता का यह स्तर देखकर शिक्षित व्यक्तियों का अनुमान लगाना भी व्यर्थ है क्योंकि जापान, स्वीडेन, इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी तथा स्विट्ज़रलैण्ड जैसे देशों में लगभग ९० प्रतिशत व्यक्ति साक्षर या शिक्षित हैं. भारत की अनेक योजनाएँ केवल इसीलिए असफल हो जाती हैं कि जिनके लाभार्थ वे बनायी गयी हैं वे उनको पढ़कर समझ सकने की स्थिति में नहीं हैं।

आयु के अनुसार जनसंख्या का वितरण
(AGE DISTRIBUTION)

किसी भी देश मे प्राय ४ वर्ष की आयु तक शिशु, ५ से १४ वर्ष तक की आयु वालों को लड़के-लड़कियाँ, १५ से ३४ वर्ष की आयु वालों को नवयुवक, नवयुवतियाँ, ३५ से ५४ वर्ष तक की आयु वालों को अधेड़ व्यक्ति तथा इससे अधिक आयु वालों को वयोवृद्ध माना जाता है। तदनुसार १९७१ में भारत की स्थिति निम्नलिखित थी

(प्रतिशत में)

आयु समूह		संख्या करोड़
० से १४	४२ ०	२३ ०४
१५ से १९	८ ७	४ ७४
२० से २४	७ ६	४ ३२
२५ से २९	७ ४	४ ०८
३० से ३९	१२ ६	६ ९१
४० से ४९	९·३	५ १२
५० से ५९	६ १	३ ३३
६० से ऊपर	६ ०	३ २३
योग	१००·०	५४ ७९

जनसख्या का ग्रामीण और नगरीय वितरण
(RURAL AND URBAN DISTRIBUTION OF POPULATION)

भारत सही अर्थ में ग्रामीणों का देश है। १९६१ की जनगणना के अनुसार ८२·०२% जनसख्या गाँवो मे रहती थी। केवल १७·९८% जनसख्या नगरों में रहती थी। सन् १९२१ में ग्रामीण जनसख्या ८८·८% और नगरीय जनसख्या ११·२% थी। किन्तु उसके बाद की अवधि मे देश की औद्योगिक उन्नति होने से नगरीय जनसंख्या मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। सन् १९३१ मे यह १२%, १९४१ में १३·९% और १९५१ में १७·६ % थी। १९६१ मे ५,६६,८७८ गाँव तथा २,६९९ नगर और कस्बे थे। १९७१ मे इनकी संख्या क्रमश: ५,६६,८७८ और २,९२१ थी। अर्थात् नगरीय जनसख्या का प्रतिशत १९·९ था।

ग्रामीण जीवन भारत मे बडी विकसित अवस्था मे मिलता है। यहाँ के गाँव भारतीय सस्कृति के आधार रहे हैं। ग्रामवासियों का जीवन बडा ही सगठित होता है। प्राचीनकाल के गाँव तो प्राय: स्वावलम्बी ही होते थे जिनमे आपसी सहयोग होता था। भारतीय गाँवो का जन्म सहकारिता के आधार पर ही हुआ माना जाता है किन्तु पिछली शताब्दी से व्यक्तिवाद की भावना में वृद्धि, सयुक्त परिवार प्रणाली में विघटन, आधुनिक शिक्षा का प्रभाव, परिवहन के साधनों का विकास, नगरो मे उद्योग-धन्धों के विकसित हो जाने के फलस्वरूप ग्रामीण जनसख्या का नगरों की ओर उन्मुख होना तथा ग्रामीण कुटीर उद्योगो का विनाश, आदि ऐसे आर्थिक और सामाजिक कारण रहे है जिनके फलस्वरूप भारतीय गाँवो का प्राचीन वैभव नष्ट हो गया, यद्यपि आज भी देश की ८०% जनसख्या इन्ही गाँवों में रहती है। प्रो० स्पाटे के अनुसार, "भारत ग्रामीण अधिवास का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है।" (India is par excellence a country of villages)।

ग्रामीण जनसख्या (Rural Population)

गाँवों मे पारस्परिक सगठन और भ्रातृ प्रेम का उत्तम उदाहरण पश्चिमी भारत मे देखने को मिलता है। इन भागों मे घने बसाव के साथ विशाल ग्रामो की स्थापना इसलिए हुई कि पश्चिम की ओर से आने वाले आक्रमणो का सदा भय रहता था, इसलिए सुरक्षा की आवश्यकता होती थी। इसी कारण असम मे भी ग्राम सुसगठित मिलते हैं। यहाँ ग्राम अधिकतर पहाडो पर बने होते हैं क्योंकि यहाँ की निचली भूमि पर मलेरिया का प्रकोप रहता है तथा विषैले कीटाणु भी पाये जाते हैं। भारत के उत्तरी मैदान मे भी सुसगठित गाँव मिलते हैं। गाँव के मध्य मे बहुधा एक गढ होता है जिसके आस-पास मकान बने होते हैं।

इनके विपरीत गगा-जमुना के दोआब मे गाँव बिखरे हुए तथा पृथक पाये जाते हैं। स्पाटे के अनुसार, "गगा के ऊपरी और मध्य मैदान में इस प्रकार की बात प्राकृतिक कारणों के फलस्वरूप न होकर आपस में मिलकर रहने की भावना के फल-

स्वरूप है।" दक्षिणी भारत मे गाँवों का सगठन उत्तरी मैदान से भिन्न है। यहाँ ग्राम दूर-दूर हैं तथा वे बहुधा तालाबो के निकट पाये जाते हैं।

ग्रामीण जनसख्या का २६·५% भाग से कम जनसंख्या वाले गाँवों मे; ४८·८% ५०० से २,००० जनसख्या वाले गाँवो मे, १६·४% २,००० से ५,००० जनसंख्या वाले गाँवो मे और केवल ५·३% ५,००० से अधिक जनसंख्या वाले गाँवों में रहता है। ये गाँव अधिकतर उत्तरी भारत में गगा के मैदान और दक्षिण की नदी घाटियों तथा डेल्टा प्रदेशो मे मिलते हैं। बड़े गाँवों का आधिक्य उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिमी बगाल और तमिलनाडु मे है जहाँ कृषि का विकास अन्य राज्यों की अपेक्षा अच्छा हुआ है। छोटे गाँव मुख्यतः राजस्थान, असम, मध्य प्रदेश और उड़ीसा मे पाये जाते हैं जहाँ जलप्रवाह प्रतिकूल अथवा शुष्कता का साम्राज्य है या भूमि ऊँची-नीची अधिक है।

जनसख्या के अनुसार गाँवो का वितरण (सन् १९७१ अनुसार) इस प्रकार है :

	गाँव
१०,००० मनुष्यों से अधिक जनसख्या	७७६
५,००० से १०,०००	३,४२१
२,००० से ५,०००	२६,५६५
१,००० से २,०००	६५,३७७
५०० से १,०००	१,१९,०८६
५०० से कम जनसख्या	३,५१,६५०
योग	५,६६,८७८

ग्रामीण अधिवास (*Rural Settlements*)

ग्रामीण अधिवासो का स्वरूप विभिन्न प्रदेशों मे विभिन्न पाया जाता है। उदाहरण के लिए निचले गगा के मैदान मे बड़ी और घनी ग्रामीण बस्तियाँ मुख्यत नदियो के किनारे पायी जाती हैं, अन्यत्र ये छोटी और बिखरी हुई मिलती है, जहाँ चावल या अन्य फसलें पैदा करने की सुविधा होती है। वर्षा ऋतु म बाढ़ों तथा जल की अधिकता के कारण भूमि दलदली हो जाती है फलत बस्तियाँ बाढ़ के मैदानों व ऊपरी भागो मे बिखरी हुई मिलती हैं। प्रो० ब्लाशे के शब्दों मे, 'अधिक वर्षा और जल का अभाव बिखरी हुई बस्तियों को जन्म देता है।" इन भागों म सतह के नीचे जल की गहराई बहुत कम होती है और इसीलिए सिंचाई के लिए जल प्राप्त करने मे दूसरे के सहयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी से खेत उनकी झोपड़ियों के निकट ही पाये जाते हैं। इसी प्रकार की प्रकीर्ण बस्तियाँ भारत मे कोकन तथा असम के वन क्षेत्रों में अथवा तराई के मैदानों में खादिर भूमि म पायी जाती है। बगाल डेल्टा तथा कोंकण प्रदेश मे झोपड़ियाँ बहुत ही कम होती हैं—६ से १२ तक तथा वे भी साधारणत अस्थायी होती हैं जिनमे शुष्क मौसम मे ही रहा जा सकता

है। हिमालय के पहाड़ी भागों में भी प्रविकीर्ण प्रवृत्ति देखने को मिलती है। पश्चिमी राजस्थान में शुष्क जलवायु तथा जल के अभाव में गांव छोटे तथा कुछ झोंपड़ियों के समूह-मात्र होते हैं क्योंकि खेत बड़े विस्तृत और बिखरे होते हैं। धरातल के नीचे जल अधिक गहराई पर मिलने के कारण सिंचाई के लिए अधिक मनुष्यों की आवश्यकता पड़ती है। दक्षिण के पठार पर भी प्रविकीर्ण बस्तियाँ मिलती हैं।

घनी ग्रामीण बस्तियाँ भारत में मुख्यतः उपजाऊ भूमि, सम धरातल तथा अधिक जनसंख्या वाले भागों में, जहाँ घनी और स्थानीय रूप से कृषि की जाती है, मिलती हैं। इस प्रकार की सघन बस्तियाँ सतलज, जमुना और जमुना-गंगा के दोआबों, रोहिलखण्ड, मध्यवर्ती भारत के किनारों पर (खानदेश तथा रायचूर दोआब) जहाँ डाकुओं के आक्रमण का भय रहता है, पायी जाती हैं। यहाँ गाँव प्रायः एक दुर्ग के चारों ओर केन्द्रित पाये जाते हैं।

नगरीय जनसंख्या (Urban Population)

प्रमुख राज्यों में ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या का अनुपात १९६१ और १९७१ में इस प्रकार था :

राज्य	ग्रामीण जनसंख्या (%)		नागरिक जनसंख्या (%)	
	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१
आन्ध्र प्रदेश	८२'५६	८०'६५	१७'४४	१९'३५
असम	९२'६३	९१'६१	७ ३७	८ ३९
बिहार	९१'५७	८९ ९६	८ ४३	१० ०४
गुजरात	७४'२३	७१'८७	२५ ७७	२८'१३
हरियाणा	८२'७७	८२'२२	१७'२३	१७ ७८
हिमाचल प्रदेश	९३'६६	९२'९४	६ ३४	७'०६
जम्मू-कश्मीर	८२'७७	८१'७४	१६'६६	१८ २६
केरल	८४ ८९	८३'७२	१५'११	१६ २८
मध्य प्रदेश	८५'२९	८३ ७४	१४ २९	१६ २६
तमिलनाडु	७३'३१	६९'७२	२६'६९	३० २८
महाराष्ट्र	७१'७८	६८'८०	२८ २२	३१'२०
कर्नाटक	७७'७७	७५'६९	२२'२३	२४ ३१
उड़ीसा	९३'६८	९१'७३	६'३२	८ २७
पंजाब	७६'९४	७६'२०	२३'०६	२३'८०
राजस्थान	८३ ७२	८२'३९	१६'२८	१७ ६१
उत्तर प्रदेश	८७'१५	८६'००	१२'८५	१४'००
प० बंगाल	७५'५५	७५'४१	२४'४५	२४'५९
दिल्ली	११'२५	१०'२५	८८'७५	८९'७५
भारत	८२'०२	८०'१३	१७'९८	१९'८७

भारत में १४७ बड़े नगर है जिनकी जनसंख्या १ लाख से अधिक है। ऐसे नगर नीचे की तालिका में बताये गये हैं (१९६१ में ऐसे नगरों की संख्या केवल १०७ थी)।

	नगर १९७१	नगर १९६१	नगर १९५१	कुल जनसंख्या १९७१	कुल जनसंख्या १९६१	कुल जनसंख्या १९५१
Class I । १ लाख से अधिक जनसंख्या	१४७	१०७	७४	५७० लाख	५७० लाख	२३७ लाख
,, II · ५०,००० से ९९,९९९	१८५	१३९	१११	१३२ ,,	९६ ,,	७५ ,,
,, III २०,००० से ४९,९९९	५८३	५१८	३७५	१८६ ,,	१५९२ ,,	१११ ,,
,, IV · १०,००० से १९,९९९	८७४	८२०	६७०	१३१ ,,	११२३ ,,	१०५ ,,
,, V १०,००० से कम	८५२	१,११५	१,८२७	९६ ,,	७१८ ,,	२१ ,,
योग	२,६४१	२,६९९	३,०५७	१,०८८	७८९ ,,	६२३ ,,

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि भारत में नगरीकरण का प्रतिशत उड़ीसा में ८·२७% से लेकर महाराष्ट्र में ३१·२०% है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि प्रायः सभी राज्यों में ग्रामीण जनसंख्या का एक-सा अनुपात मिलता है, केवल पश्चिम स्थित महाराष्ट्र, गुजरात, पूर्व स्थित पश्चिमी बंगाल और दक्षिण स्थित तमिलनाडु

चित्र—११२
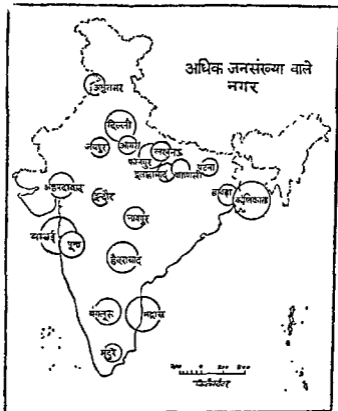
और कर्नाटक के गाँवों में अनुपात कुछ कम (८०% से कम) पाया जाता है और नगरों का अनुपात कुछ अधिक (२० प्रतिशत से ऊपर) मिलता है क्योंकि अन्य राज्यों की अपेक्षा यहाँ उद्योग-धन्धों का विकास अधिक हुआ है। दिल्ली में ग्रामीणों का अनुपात केवल १० प्रतिशत ही है। यह असमान वितरण इस बात का द्योतक है कि नगरों का विकास बहुत सुनियोजित ढंग से हो रहा है तथा नगरों में बहुत ही अधिक जनसंख्या का भार है।

प्रथम श्रेणी के नगर अधिकतर उत्तर प्रदेश में (२२) और उसके बाद महाराष्ट्र-तमिलनाडु में (१७-१७) हैं। इनके बाद अन्य राज्यों में आन्ध्र प्रदेश (१३), मध्य प्रदेश (११), राजस्थान (७), कर्नाटक (११) और गुजरात (७) में हैं। द्वितीय श्रेणी के नगर पश्चिमी बंगाल (१६), तमिलनाडु (२७), उत्तर प्रदेश (२०), महाराष्ट्र (२६), पंजाब (८), हरियाणा (६), आन्ध्र (१७), गुजरात (१७), कर्नाटक (१०) में मिलते हैं। तृतीय श्रेणी के अधिक नगर तमिलनाडु (३६), उत्तर प्रदेश (६७), आन्ध्र (६०), महाराष्ट्र (६४), पश्चिमी बंगाल (३८) में हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश एवं पंजाब-हरियाणा में नगरों की संख्या अपेक्षतः अधिक है। इन नगरों की उत्पत्ति एवं विकास ऐतिहासिक, धार्मिक और व्यावसायिक कारणों से हुई है। बम्बई, बड़ौदा, अहमदाबाद क्षेत्र, हुगली क्षेत्र, आन्ध्र प्रदेश-तमिलनाडु क्षेत्र, अम्बाला-अमृतसर-दिल्ली क्षेत्रों में नगरों का विकास विभिन्न उद्योगों के स्थापित होने के कारण हुआ है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि पिछले ७० वर्षों में नगरों की संख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ नगरीय जनसंख्या में भी वृद्धि हुई है। इन नगरों में जनसंख्या की वृद्धि १९६१-७१ में ३७.८% की दर से हुई है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जनसंख्या की यह वृद्धि प्राकृतिक वृद्धि (natural increase) नहीं कही जा सकती वरन् यह आवास-प्रवास (migration) के कारण ही अधिक हुई है।

पिछले २० वर्षों में नगरों की ओर गाँवों से लोग खिंचे आ रहे हैं क्योंकि वहाँ जीविकोपार्जन के अधिक साधन मिल जाते हैं, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार की अन्य सुविधाएँ हैं।

भारत में १० लाख से ऊपर जनसंख्या वाले महानगरों (metropolis) की संख्या केवल ९ है।

इनकी जनसंख्या इस प्रकार है :

वृहत्तर बम्बई	५९.७१ लाख	हैदराबाद	१७.९८ लाख
कलकत्ता	७०.३१ ,,	बंगलौर	१६.५४ ,,
दिल्ली	४०.३९ ,,	अहमदाबाद	१७.४१ ,,
मद्रास	३१.७० ,,	कानपुर	१२.७५
		पूना	११.३५ ,,

प्रवास और आवास
(EMIGRATION AND IMMIGRATION)

विदेशों को प्रवास

भारत से बहुत प्राचीन काल से मानव-प्रवास पड़ोसी देशों को होता रहा है। भारतवासी व्यापार हेतु एवं धर्म प्रचार के लिए अपने देश को छोड़कर मलेशिया थाईलैण्ड, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया प्रायद्वीप, श्रीलंका, फिलिपाइन्स आदि स्थानों में

जाकर बसे। किन्तु उन देशो से व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध उस समय टूट गये जब विजयनगर साम्राज्य का पतन हुआ और बगाल मे पल्लवो का ह्रास हुआ जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण हिन्दमहासागर समुद्री लुटेरो का घर बन गया जो मैडेगास्कर मे मलक्का तक फैले थे। इसी समय पूर्वी देशो मे विदेशियो के उपनिवेश स्थापित हुए इससे स्थिति में कुछ अन्तर हुआ। हिन्द चीन फ्रांसीसियों, आस्ट्रेलिया और बोर्नियो एव भारत ब्रिटिश, पूर्वी द्वीपसमूह डचो; अफ्रीका फ्रांसीसी, बेल्जियम, डच और अग्रेजो के अधिकार मे आ गये। किन्तु भारत मे व्यवस्थित रूप से कुलियों एव श्रमिको का स्थानान्तर १६वी शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश मे प्रारम्भ हुआ। १८३४ मे पहला जत्था मारिशस, १८३८ मे ब्रिटिश गायना, १८४४ मे ट्रीनीडाड, १८४५ मे जमैका, १८५१ मे आस्ट्रेलिया, १८५० मे सेंट लूसिया, १८५८-६५ मे ग्रेनाडा, १८६० मे नैटाल, १८७६ मे फीजी, १८८३ में न्यूजीलैण्ड, १८६१ मे फ्रास और १८१० मे ब्राजील को गया।

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि विश्व के विभिन्न भागो मे ४० लाख से भी कम भारतवासी हैं जो सम्पूर्ण भारतीय जनसख्या का लगभग १ प्रतिशत है। बर्मा, श्रीलका, मलाया, सिंगापुर, द० अफ्रीका, ट्रिनीडाड, टोबैको, केनिया, मारीशस, ब्रिटिश गायना और फीजी द्वीप मे प्रत्येक मे १ लाख से अधिक भारतवासी निवास करते हैं। डच गायना, तंजानिया, यूगाण्डा, जजीबार, जमैका और इण्डोनेशिया मे प्रत्येक में २५,००० से अधिक भारतवासी पाये जाते हैं। भारतवासियों का स्थानान्तरण देशान्तरो मे अधिक है और अक्षाशों मे कम। भारतीयों का विदेशी जमाव अधिकांशत: २०° उत्तर और दक्षिण के अक्षांशो तक ही (नैटाल को छोड़कर) सीमित है। कुछ भारतीय उत्तरी अमरीका और ब्रिटिश कोलम्बिया में भी जाकर बस गये हैं किन्तु अधिकाश जमाव उष्ण कटिबन्धीय गन्ने की खेती तक ही सीमित है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विदेशो मे रहने वाले भारतीयो का ७५% से अधिक राष्ट्रमण्डल के देशो मे ही केन्द्रित है।

इस समय विदेशो को अशिक्षित श्रमिको का स्थानान्तर सरकार द्वारा निषेध है। शिक्षित श्रमिको को भी यदि वे निश्चित शर्तों को पूरा करते हैं तभी जाने दिया जाता है। कुछ देशो में (कनाडा, सयुक्त राज्य अमरीका, फिलीपाइन्स, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, आदि) भारतीयो को निश्चित सख्या (Quota system) मे ही लिया जाता है। दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी और उत्तरी रोडेशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, श्रीलंका, न्यासालैण्ड, बर्मा, उत्तरी अमरीका तथा यूरोप के अनेक देशो को भारतीयो का स्थानान्तरण या तो निषेध है अथवा उन देशों की राष्ट्रीय नीति इसमें बाधक है। कुछ अन्य देशों मे भारतीयो को स्थायी रूप से निवास नहीं करने दिया जाता किन्तु यदि वे उन देशो द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों की शर्तों को पूरा करें तो कुछ समय के लिए उन्हें वहाँ ठहरने दिया जा सकता है। इस प्रकार के देश यूगाण्डा, केनिया, तंजानियाँ, नाइजीरिया, इथोपिया, रूआंडा, उरुण्डी, बेल्जियम, कांगो गणतन्त्र, अदन,

मारीशस, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका, जंजीबार, बहरीन, मस्कत, कुवैत, सऊदी अरब, मलयेशिया, जापान, इंगलैण्ड, पश्चिमी द्वीपसमूह, ब्रिटिश गायना और ब्रिटिश उत्तरी बोर्नियो हैं।

अधिकतर भारतवासी हिन्द महासागर अथवा अटलांटिक महासागर के तटवर्ती देशों में ही जाकर बसे हैं जहाँ सामुद्रिक मार्गों द्वारा पहुँचा जा सकता है। भारत के उत्तर में दुर्गम हिमालय तथा पूर्व की ओर शीघ्रगामी नदियों और घने वन प्रदेशों के कारण सीमावर्ती देशों को स्थानान्तरण प्रायः बिलकुल ही नहीं हुआ है।

जो भारतीय यहाँ हैं वे मुख्यतः श्रीलंका के चाय, रबड़, आदि के बागों में; फीजी में गन्ना तथा नारियल के उद्यानों में, मारीशस में गन्ना एवं चाय; बर्मा में चावल के खेतों में तथा ब्रिटिश गायना में खेत मजदूर और मलयेशिया में चाय, सोना, लोहा, अल्यूमीनियम की खानों, नारियल तथा कोको के उद्यानों में श्रमिकों के रूप में काम करते हैं।

अन्तरदेशीय प्रवास (*Internal Migration*)

अन्तरदेशीय स्थानान्तरण अथवा प्रवास साधारणतः अधिक आर्थिक घनत्व तथा कम आर्थिक घनत्व वाले क्षेत्रों के बीच होता है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी बंगाल से बहुत-से लोग ब्रह्मपुत्र की घाटी में अथवा उत्तर प्रदेश के लोग पंजाब के कृषि प्रधान क्षेत्रों में जाकर बस गये हैं। इससे इन राज्यों की जनसंख्या का घनत्व पहले की अपेक्षा अधिक हो गया है।

एडम स्मिथ नामक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री के अनुसार, "सभी प्रकार के सामानों में मनुष्यों का परिवहन अत्यन्त कठिन है।" यह कथन चाहे और किसी देश के लिए सत्य न हो किन्तु यह भारत के लिए विशेष रूप से लागू होता है। भारत की अनेक जनगणना रिपोर्टों से प्रतीत होता है कि बहुत ही कम व्यक्ति अपने जन्म-स्थान से अन्यत्र रहते हैं। मोटे तौर पर ९० प्रतिशत व्यक्ति अपने जन्मस्थान में ही निवास करते हैं। १९०१ में ९·८७% व्यक्तियों की गणना उनके जन्मस्थान से दूर हुई थी। १९११ में यह प्रतिशत गिरकर ८·७ प्रतिशत हो गया और १९२१ में पुनः बढ़कर ९·८ प्रतिशत हो गया। १९५१ में भी सम्पूर्ण जनसंख्या का केवल १५ प्रतिशत ही अपने जन्मस्थान से दूर रहता था। १९६१ में यह प्रतिशत ८ था। भारतीयों का गृह-प्रेम सामाजिक एवं आर्थिक कारणों का परिणाम है। भूमि से अविच्छिन्न रूप से सम्बन्धित कृषक जनसंख्या की गतिहीनता भी इसका कारण है जैसे जाति, भाषा, सामाजिक रीति-रिवाज तथा किसी भी प्रकार के परिवर्तन न पसन्द होने की प्रकृति ने और भी दृढ़ कर दिया है। हिन्दुओं को प्रभावित करने वाला प्रमुख सामाजिक कारण जाति व्यवस्था है जिसके कारण सामाजिक परिधि के बाहर एक मनुष्य का जीवन कठिन हो जाता है।

प्रवास की सबसे बड़ी आर्थिक बाधा तो यह है कि भारतीय मुख्यतः कृषि पर निर्भर हैं। भूमि के छोटे टुकड़े का स्वामित्व या उसमें रुचि होने पर अन्यत्र

जीविकोपार्जन की जोखिम के भय से लोग इस साधन को छोड़ना नहीं चाहते। मलेरिया, हुकवार्म, आदि बीमारियों का प्रभाव भी हानिप्रद होता है। इसके अतिरिक्त अधिकांश ग्रामीण साहूकार के पंजों में फंसे रहते हैं जो उनके गाँव छोड़ने में हर समय रोड़े अटकाते हैं।

जनसंख्या की सामान्य गतिहीनता होने के उपरान्त भी देश में गतिशीलता के कुछ निश्चित प्रवाह मिलते हैं। यहाँ कृषि प्रधान क्षेत्रों से औद्योगिक, खनिज और बागानी खेती के क्षेत्रों को जनसंख्या का अधिक प्रवास हुआ है। असम, पश्चिमी बंगाल, गुजरात महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश अथवा पंजाब में भारत के अन्य स्थानों से मनुष्य आकर बस गये हैं।

देश के विभिन्न राज्यों में यह प्रवास बहुत ही असमान है। उदाहरण के लिए, असम, पंजाब, पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक, गुजरात और महाराष्ट्र में प्रवास अधिक हुआ है जबकि तमिलनाडु, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में कम। तमिलनाडु में ६६·१%, उड़ीसा में ६८·५%, उत्तर प्रदेश में ६७·८% और बिहार में ६८·६% जनसंख्या वहीं की रहने वाली है जबकि असम में १४·८%, पश्चिमी बंगाल में १८·५ प्रतिशत, पंजाब में २२·४ प्रतिशत और दिल्ली में ५८·८ प्रतिशत जनसंख्या राज्य के बाहर की है। *मोटे तौर पर भारत के अधिकांश जिलों में ६५ प्रतिशत से अधिक* ग्रामीण जनसंख्या अपने जन्म के स्थान पर रहती है।

(१) असम राज्य की जनसंख्या दूर-दूर बसी है तथा खेती के लिए प्राप्त भूमि प्रचुर मात्रा में है। वहाँ के निवासी मजदूरी पर काम करना आवश्यक समझते हैं। अतः चाय के बागानों के लिए मजदूर अन्यत्र स्थानों से प्राप्त किये जाते हैं। ब्रह्मपुत्र की घाटी में खेती योग्य बेकार पड़ी हुई भूमि अन्य राज्यों के भूमिहीन आवासियों को आकर्षित करती है। ६० प्रतिशत जनसंख्या बंगाल से और शेष १५ प्रतिशत बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान और तमिलनाडु से आती है। ये प्रवासी यहाँ बागों में काम करने के लिए आते हैं। अधिकतर प्रवासी या तो भूमिहीन कृषक होते हैं अथवा ऐसे व्यक्ति जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही कमजोर होती है। असम में खेती योग्य भूमि बहुत है किन्तु कालान्तर एवं अन्य बीमारियों के प्रसार के कारण आवासी लोगों में वृद्धि नहीं होने पाती।

(२) पश्चिमी बंगाल के आवासियों में लगभग ६० प्रतिशत बिहार, उड़ीसा के और शेष उत्तर प्रदेश, असम और मध्य प्रदेश के हैं। आवास के मुख्य प्रवाह ये हैं। (१) कलकत्ता और उसके पड़ोसी औद्योगिक क्षेत्र में बिहार, उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों से, (२) वीरभूम, मालदा, दिनाजपुर और उत्तरी बंगाल के जिलों में संथाल परगना से, (३) दार्जिलिंग और जलपाईगुड़ी के चाय के बागानों में छोटा नागपुर तथा नेपाल से, और (४) त्रिपुरा में असम से।

बंगाल की भूमि की अपेक्षाकृत अधिक उर्वरता, उद्योगों का विकास और *बंगालियों की शारीरिक श्रम से विमुखता, आदि कारण इस आवास के लिए उत्तर-*

जाती है। राज्य के आन्तरिक प्रवास की विशेषता यह है कि बीच के कटिबन्ध से एक ओर जनसंख्या कलकत्ता के आस-पास के औद्योगिक क्षेत्रों में जाती है तथा दूसरी ओर उत्तरी बंगाल और असम की घाटी में।

(३) गुजरात-महाराष्ट्र—यहाँ आवास की विशेषता यह है कि बड़े-बड़े औद्योगिक एवं व्यापारिक नगरों (बम्बई, शोलापुर, पूना, थाना, नागपुर, बड़ौदा, सूरत, अहमदाबाद, आदि) में पंजाब, मध्य प्रदेश, राजस्थान और तमिलनाडु से आने वाले लोग बस गए हैं। यहाँ आवासियों के तीन प्रवाह पहुँचते हैं: (१) यह उत्तरी-भारत से आता है जिसका प्रतिनिधित्व पंजाब, राजस्थान, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र करते हैं (२) यह दक्षिण-पूर्व अर्थात् तमिलनाडु और आंध्र से आता है। उत्तर का प्रवाह बम्बई के मिलों की संख्या में वृद्धि करता है तथा दक्षिण का प्रवाह शोलापुर के मिलों में जाता है। बंगाल की अपेक्षा महाराष्ट्र औद्योगिक दृष्टि-कोण से आगे बढ़ा हुआ है। उसकी भूमि की उर्वरा शक्ति कहीं कम होने से जनसंख्या का घनत्व कम है और स्थानीय श्रम कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध है, अतः श्रम की माँग का अपेक्षाकृत बहुत थोड़ा अंश राज्य के बाहर से पूरा करना पड़ता है। (३) राज्य के अन्य भागों में (सतारा, रत्नागिरि, कोलाबा, कोंकन, आदि) औद्योगिक क्षेत्रों की जनसंख्या का प्रवाह आन्तरिक प्रवास की विशेषता है।

(४) इन राज्यों के अतिरिक्त राजस्थान, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के सीमा-वर्ती भागों की सिंचाई की सुविधाएँ तथा उपजाऊ भूमि की उपलब्धता के कारण अधिकतर कृषक-वर्ग विविध क्षेत्रों में जाकर बस गये हैं। ऊपरी गंगा की घाटी और यमुना-गंगा के दोआबों में भी प्रवास हुआ है। अनेक राज्यों में बिखरे हुए औद्योगिक केन्द्रों की ओर भी जनसंख्या आकर्षित हुई है विशेषकर मद्रास, हैदराबाद, नागपुर, जबलपुर, इन्दौर उज्जैन, ग्वालियर, कानपुर, लखनऊ, देहरादून, आदि केन्द्रों में जहाँ व्यापार, कलाकौशल और प्रशासकीय सेवाओं का अधिक विकास हुआ है।

आवास-प्रवास के क्षेत्रों को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है :

(१) कम आवासी प्रदेश (Regions of Lowest Immigration) ऐसे भाग हैं जहाँ (अ) कृषि जनसंख्या का भार कृषि भूमि पर पहले से ही अधिक है और कृषि अपने उच्चतम बिन्दु तक पहुँच चुकी है और जहाँ भविष्य में कृषि विकास की सम्भावनाएँ बहुत ही सीमित हैं, (ब) इन क्षेत्रों में नगरीकरण की प्रगति धीमी रही है यथा नगरों का आकार छोटा है, (स) जनसंख्या यद्यपि कम है किन्तु कृषि के लिए अधिक भूमि अनुपलब्ध है, (द) उद्योग व्यापार का विकास बहुत ही कम हुआ है और (य) अर्थव्यवस्था मुख्यतः निकृष्ट प्रकार की है। इन कारणों से अन्य क्षेत्रों की जनसंख्या इन प्रदेशों की ओर आकर्षित नहीं होती।

(२) अधिक आवासी प्रदेश (Regions of Highest Immigration) वे प्रदेश हैं जहाँ (अ) कृषि का विकास नयी भूमि पर होना आरम्भ हुआ है, अथवा जहाँ चाय या अन्य उत्पादनों के लिए श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है, (ब) जहाँ

व्यापार, यातायात तथा उद्योगों के विकास के फलस्वरूप नये नगरो और औद्योगिक केन्द्रों का जन्म हुआ है।

देश के कुछ राज्यों में जनसंख्या का भार इतना अधिक है कि उसे कम करने के लिए जनसंख्या का आयोजित स्थानान्तरण उन राज्यों को करना आवश्यक है जहाँ अभी भूमि पर जनसंख्या का भार बहुत कम है। उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, आदि राज्यों में जनसंख्या की तुलना में भूमि का अनुपात कम है। निचली गंगा की घाटी, ऊपरी गंगा का मैदान, दक्षिणी कनारा, मालाबार, कोंकन तट, दक्षिणी तमिलनाडु, उड़ीसा तथा आन्ध्र के तटीय भाग जनसंख्या से पूर्णत भरे हैं। इसके विपरीत सुन्दरबन, तराई, पश्चिमी राजस्थान, असम, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, सौराष्ट्र तथा कच्छ के विशाल क्षेत्र जनहीन हैं। इनमे से कुछ क्षेत्रों में जल का अभाव है तो दूसरे में वनों की अधिकता अथवा अस्वास्थ्यकर जलवायु का प्रकोप। किन्तु, यदि इन भागों में, भूमि को सुधारने और सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध करने, वनों को साफ कर कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाने, मिट्टी की उर्वरशक्ति को सुरक्षित रखने और सस्ती जल विद्युत शक्ति का प्रबन्ध करने का प्रयास किया जाय तो इन क्षेत्रों में अधिक भार वाले क्षेत्रों से मनुष्यों का स्थानान्तरण सुगमता से किया जा सकेगा।

भारत-पाकिस्तान के बीच आवास-प्रवास

१५ अगस्त, १९४७ में जो देश का विभाजन (क्रमशः भारत और पाकिस्तान के रूप में हुआ) उसके फलस्वरूप पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान से १९६३ तक ८८.८० लाख विस्थापित व्यक्ति भारत मे आये। इनमे से ४७.४० लाख पश्चिमी पाकिस्तान और शेष पूर्वी पाकिस्तान से आये। पश्चिम की ओर से आने वाले शरणार्थी मुख्यतः पंजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भागों में तथा सिन्ध से आने वाले गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान में बसाये गये जबकि पूर्व की ओर से आने वाले मुख्यतः पश्चिमी बंगाल, असम, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, अण्डमान-निकोबार में बसाये गये। १९६४ में फिर पूर्वी पाकिस्तान में भारी उपद्रव होने से विस्थापित लोग भारत मे आने लगे। अप्रैल १९७० तक ८.७ लाख व्यक्ति भारत मे आये। इन्हें असम, त्रिपुरा और पश्चिमी बंगाल में बसाया गया।

पुनर्वास योजनाएँ

विस्थापितों की पुनर्वास योजना मे प्रधानतः निम्नलिखित बातें सम्मिलित की गयीं :

(१) विस्थापित व्यक्तियों को मकान बनाने और खेती करने के लिए भूमि तथा कृषि-प्रसाधन खरीदने और अन्य व्यवसायों के लिए ऋण। (२) भूमि विकास और नयी भूमि को कृषि के योग्य बनाना और विकसित करना। (३) विस्थापितों के लिए सरकार द्वारा मकानों का बनाना। (४) विस्थापितों के लिए नगर और बस्तियाँ बनाना (५) रोजगार दफ्तर द्वारा रोजगार देना। (६) विस्थापितों को

व्यावसायिक औद्योगिक प्रशिक्षण देना। (७) मध्यम और लघु उद्योगों तथा दस्तकारियों का विकास करना। (८) प्रारम्भिक स्कूल, माध्यमिक स्कूल और कालेजों का निर्माण करना तथा विस्थापित विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति और निःशुल्क पढ़ाई की व्यवस्था करना। (९) चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ देना।

पश्चिमी क्षेत्र में पुनर्वास कार्य—अनुमान लगाया गया है कि पाकिस्तान से लगभग ५० लाख व्यक्ति भारत आये हैं। तात्कालिक समस्या उनके भोजन, कपड़े और मकान की अनुभव की गयी जिससे वे कठिनाइयों तथा बीमारियों से बच सकें। काफी मात्रा में उन्हें शरणार्थी कैम्पों में बसाया गया। सबसे बड़ा कैम्प कुरुक्षेत्र में था जो लगभग ९ वर्गमील में फैला हुआ था। किसी समय उसकी आबादी तीन लाख से ऊपर थी। कुल मिलाकर २०० सहायता केन्द्र थे जिनके द्वारा लगभग १२·५ लाख विस्थापितों को निःशुल्क भोजन, कपड़ा, शिक्षा और चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ दी गयीं।

भारत से जाने वाले मुस्लिम किसान पंजाब में लगभग १६ लाख हैक्टेअर भूमि छोड़ गये जिसमें केवल एक-तिहाई सिंचाई क्षेत्र के अन्तर्गत है। किन्तु पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले सिक्खों और हिन्दुओं को वहाँ २७ लाख हैक्टेअर भूमि छोड़नी पड़ी जिसका कम से कम दो-तिहाई भाग सिंचाई से सम्पन्न था। इसी तरह शहरी क्षेत्रों से आने वाले हिन्दू शरणार्थी भारत के शहरी क्षेत्रों से जाने वाले मुस्लिमों की तुलना में अधिक सम्पन्न थे। इन हिन्दू शरणार्थियों को वहाँ लगभग ५०० करोड़ रुपये की सम्पत्ति छोड़नी पड़ी जबकि यहाँ से जाने वाले मुस्लिम केवल १०० करोड़ रुपये की सम्पत्ति ही छोड़कर गये।

पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले विस्थापितों में ५० प्रतिशत ग्राम के निवासी और ५० प्रतिशत शहरों के थे। अतः इन विस्थापितों के पुनर्वास के लिए विभिन्न तरह के व्यापक कार्यक्रम हाथ में लिये गये, जैसे उन्हें खेतीबाड़ी में लगाना, भवन निर्माण, शहरी और ग्राम क्षेत्रों के लिए कर्ज, शिक्षा, व्यावसायिक और औद्योगिक प्रशिक्षण, निराश्रितों को आश्रय और रोजगार देने के लिए लघु उद्योगों की स्थापना।

ग्रामीण पुनर्वास पश्चिमी पाकिस्तान से आये हुए विस्थापितों के लिए निष्क्रान्त और कुछ सरकारी भूमि प्राप्त की गयी। बैल, चारा, बीज और पशुपालन के साधन खरीदने और मकान व कुएँ बनाने तथा मरम्मत करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण दिया गया।

शहरी पुनर्वास जो विस्थापित कृषि कार्य नहीं जानते थे उनके लिए भी ऋण की योजनाएं चालू की गयी ताकि वे शहरी क्षेत्रों में किसी भी उद्योग, व्यवसाय या पेशे में लग सकें। मध्यम श्रेणी की ८३ योजनाएँ तथा ४६ छोटी दस्तकारियाँ शुरू की गयी।

पश्चिमी पाकिस्तान के शरणार्थियों के लिए १६ पूर्ण विकसित नगर तथा ३६ बस्तियाँ स्थापित की गयीं। इसमें केन्द्रीय सरकार के विशेष प्रयत्नों द्वारा [illegible] नगर और कुबेरनगर (महाराष्ट्र), बैरागढ (मध्य प्रदेश), प्रतापनगर

(उदयपुर), फरीदाबाद, गोविन्दपुरी, राजपुरा, नीलोखेड़ी तथा हस्तिनापुर नामक नगर बसाये गये। इन नगरों तथा बस्तियों को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयत्न किया गया।

१९६५ के बाद (पाकिस्तान-भारत विवाद के फलस्वरूप) जम्मू-कश्मीर, पंजाब और राजस्थान में लगभग ३½ लाख व्यक्ति विस्थापित हो गये।

पूर्वी क्षेत्र में पुनर्वास कार्य—विभाजन के काफी पूर्व अक्टूबर १९४७ में ही पूर्वी पाकिस्तान से लोग भारत आने लगे थे जबकि नोआखाली और त्रिपुरा में साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हुए थे। विभाजन के बाद स्थिति और गम्भीर हुई। कभी-कभी थोड़ी कभी अधिक मात्रा में विस्थापित व्यक्ति कभी न समाप्त होने वाले प्रवाह की भाँति आते ही रहे। इसका एकमात्र कारण पाकिस्तान की आर्थिक और सामाजिक स्थितियाँ थीं। पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले विस्थापितों की संख्या ४१ लाख से कुछ ऊपर है जिनमें ७५ प्रतिशत पश्चिमी बंगाल में और शेष असम, मध्य प्रदेश और त्रिपुरा में बसाये गये।

इस क्षेत्र के विस्थापितों की कुछ विशेष समस्याएँ ये हैं. पहली तो यह है कि पश्चिमी क्षेत्र के ठीक विपरीत जहाँ विस्थापितों का आना केवल कुछ महीनों में ही समाप्त हो गया था पूर्वी पाकिस्तान के शरणार्थियों का आना अब तक समाप्त नहीं हुआ है। दूसरे, शरणार्थी केवल पूर्वी पाकिस्तान से ही आ रहे हैं। इधर से जा नहीं रहे हैं। कुछ मुस्लिम जो गये भी थे वे शीघ्र ही नेहरू-लियाकत समझौते के बाद पुनः लौट आये। तीसरी बात यह है कि जहाँ पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थी सारे भारतवर्ष में स्वयं बिखर गये, पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थी केवल बंगाल, त्रिपुरा और असम तक ही केन्द्रित रहे। अन्तिम बात यह है कि शरणार्थियों का प्रभाव कभी न समाप्त होने वाले और आकस्मिक प्रभाव के रूप में आता रहा है जिससे पुनर्वास का एक सुनिश्चित और सुदृढ़ कार्यक्रम चलना कठिन है। पूर्वी पाकिस्तान के शरणार्थियों के लिए पश्चिमी बंगाल में ६ नयी बस्तियाँ—बेहाला, बोन-हुगली, फुलिया, हबरा, बगायचो, प्यारपुर, बेलगाछी, हमीदपुर और खोसबाग तथा ६०० कॉलोनी बनायी गयी है।

शरणार्थियों का आना नियमित करने के लिए सन् १९५७ के अन्त तक भारत सरकार द्वारा एक प्राथमिकता की प्रणाली प्रारम्भ की गयी थी जिसके अन्तर्गत शरणार्थियों को 'देशान्तर-गमन प्रमाण-पत्र' दिया जाने लगा। १९६३-६४ में एक बार फिर पूर्वी बंगाल में साम्प्रदायिक दंगों की आग भड़क उठी जिसके फलस्वरूप ८·७८ लाख हिन्दू, बौद्ध, कबायली और ईसाई भारतीय क्षेत्रों में आये।

पूर्वी पाकिस्तान के विस्थापितों को बसाने के लिए गोदावरी नदी के उत्तर में उड़ीसा के कोरापुट और कालाहांडी जिले और मध्य प्रदेश के बस्तर जिले की लगभग ७७,८०० वर्ग किलोमीटर भूमि पर दण्डकारण्य योजना कार्यान्वित की गयी है। यहाँ अब तक वन प्रदेश फैले थे जिनमें आदिवासी ही रहते थे। इस भाग में

न केवल वर्षा अच्छी होती है वरन् खनिज पदार्थ भी मिलते हैं किन्तु जलवायु अस्वास्थ्यकर होने तथा यातायात की कठिनाई के कारण इस प्रदेश का विकास नहीं किया जा सका था। किन्तु अब स्वास्थ्य, कृषि, वन और यातायात विशेषज्ञों द्वारा इस योजना के विभिन्न अंगों का विकास किया जा रहा है। १९५८ में दण्डकारण्य विकास समिति की स्थापना की गयी। मार्च १९७० तक २·२६ लाख एकड़ भूमि को साफ किया जाकर उस पर १३,४७८ परिवारों को बसाया जा चुका है। उमरकोट और परलाकोट में मिश्रित फार्म सब्जियाँ और फल उत्पन्न करने के लिए डुमरीपत में एक फल उत्पादक फार्म स्थापित किया गया। सिंचाई के लिए दो बांध अमरकोट और परलाकोट में बन चुके हैं। दो और (मलकानगिरि और परलाकोट) में बनाये जा रहे हैं। कोंडागांव, उमरकोट, परलाकोट, मलकानगिरि और माना में मुर्गी-पालन फार्मों की स्थापना की गयी है। बांधों में मत्स्यपालन किया जा रहा है। कोंडागांव, जगदलपुर, अम्बागुडा, अमरकोट, मलकानगिरि और परलाकोट में औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना की गयी है जहाँ फर्नीचर, सूती वस्त्र, कृषि के औजार, आदि बनाये जाते हैं। अब तक यहाँ २६४ गाँव बसाये जा चुके हैं।

पूर्वी पाकिस्तान से १९६४ के बाद आने वाले विस्थापितों को चन्द्रपुर, बेतूल, सरगुजा, पन्ना और दसागाँव स्थानों में बसाया गया है। कुछ गैर कृषकों को बिहार, नेफा, उत्तर प्रदेश, असम और मनीपुर में भी बसाया गया है।

जनसंख्या की भाषाएँ और धर्म
(LANGUAGE AND RELIGION)

भाषाएँ (Languages)

जिस प्रकार भारत में भिन्न-भिन्न प्रकार की जातियाँ रहती हैं उसी तरह यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाएँ भी बोली जाती है। उत्तरी भारत में जहाँ आर्य लोगों का आधिपत्य था वहाँ आर्य भाषाएँ और दक्षिण में जो आर्य सभ्यता से बिल्कुल अप्रभावित था वहाँ द्राविड़ भाषा बोली जाती थी। आज भी प्रधानतः यही क्रम है।

भारत में ८२६ भाषाएँ बोली जाती है। इनमें से ७२० ऐसी हैं जो प्रत्येक १ लाख व्यक्तियों से भी कम द्वारा व्यवहृत की जाती हैं तथा ६३ अभारतीय भाषाएँ हैं। भारतीय संविधान में मान्य १४ भाषाएँ लगभग ९१% लोगों द्वारा बोली जाती हैं। ३.२% व्यक्ति २३ आदिवासियों की भाषाएँ बोलते हैं और लगभग ४ प्रतिशत अन्य भाषाएँ बोलते हैं।

भारत में, १९७१ की जनगणना के अनुसार, विभिन्न भाषाएँ बोलने वालों की संख्या इस प्रकार है।

मराठी	४२ २५ लाख	असमी	८९ ५८ लाख
उड़िया	१९·८५ ,,	बंगाली	४४७ ६२ ,,
पंजाबी	१६·४५ ,,	गुजराती	२५८ ७५ ,,
संस्कृत	केवल २,२१२	हिन्दी	१६२५ ८७ ,,
सिंधी	१६ ७६ लाख	कन्नड	२१७ ०८ ,,
तामिल	३७६ ९० ,,	कश्मीरी	२४ ३८ ,,
तेलुगू	४४७ ५२ ,,	मलयालम	२१९ ३८ ,,
उर्दू	२८६·०८ ,,		

मोटे तौर पर भारत की भाषाओं को चार खण्डों में बाँटा जा सकता है :

(१) आर्य भाषाएँ (Indo-Aryan) अधिकतर सम्पूर्ण भारत में बोली जाती हैं। ये सबकी सब प्राकृत से मिलती हैं। प्रमुख आधुनिक भाषाएँ ये हैं :

(१) हिन्दी विशेष कर उत्तर प्रदेश, पूर्वी राजस्थान, बिहार, हरियाणा, दिल्ली और मध्य प्रदेश में प्रचलित है, (२) पंजाबी भाषा पंजाब में, (३) बंगाली भाषा बंगाल, असम, त्रिपुरा और मनीपुर राज्य में, (४) उड़िया भाषा उड़ीसा में, (५) मराठी भाषा दक्षिण के उत्तरी-पश्चिमी भाग, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में, (६) गुजराती भाषा उत्तरी गुजरात, दक्षिणी पूर्वी राजस्थान में, (७) बिहारी भाषा बिहार में, (८) राजस्थानी भाषा राजस्थान में, (९) नेपाली भाषा नेपाल और तिब्बत के सीमावर्ती क्षेत्रों में, (१०) पहाड़ी भाषा उत्तर प्रदेश में नैनीताल, टेहरी-गढ़वाल, शिमला की पहाड़ियों, अल्मोड़ा, आदि पहाड़ी जिला, हिमाचल प्रदेश और पंजाब में, (११) उत्तरी पश्चिमी भारत तथा पाकिस्तान में सिन्धी, पश्तो तथा बलूची भाषाएँ भी बोली जाती हैं। कश्मीरी भाषा कश्मीर में बोली जाती है।

(२) द्रविड़ भाषाएँ (Dravidian) भारत की प्राचीन भाषाओं में गिनी जाती हैं। मुख्य द्रविड़ भाषा तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और मध्य भारतीय प्रदेश तथा दक्षिणी महाराष्ट्र में बोली जाती हैं। इसकी मुख्य शाखाएँ ये हैं : (१) तमिल (या द्रविड़) भाषा सबसे पुरानी, धनी और सुसंगठित भाषा है जो विशेषकर तमिलनाडु राज्य में बोली जाती है। (२) मलयालम (या केरल) भाषा तमिल भाषा की एक शाखा है। यह मालाबार तट पर बोली जाती है। (३) तेलुगू (या आन्ध्र) भाषा समुद्र तट पर तमिलनाडु से लेकर उड़ीसा के दक्षिणी तट तक बोली जाती है। (४) कनाड़ी (या कर्नाटक) भाषा, कर्नाटक, आन्ध्र तथा महाराष्ट्र में बोली जाती है।

पूर्वी भारत में भी तीन द्राविड़ भाषाओं का प्रचलन है। दक्षिणी बिहार में ओरान, राजमहल पहाड़ियों के दक्षिण में माल्टो और उड़ीसा में काण्ध या कुई भाषा। मध्यवर्ती भारत में गोंड भाषा मध्य प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश में बोली जाती है।

(३) आस्ट्रिक (Austric) (या आदिवासियों की) भाषाओं का अधिक विकास नहीं हुआ है। ये मुख्यतः भारत के मध्यवर्ती और पूर्वी भागों में आदिवासियों द्वारा ही प्रयुक्त की जाती हैं। इस प्रकार की भाषाओं के अन्तर्गत (१) नीकोबारी नीकोबार द्वीप में, (२) सथाली बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और असम के पश्चिमी भागों में, (३) मुंडारी, हो, खड़िया, भूमिज, गारो, आदि भाषाएँ बिहार और असम में; (४) कोरकू मध्य प्रदेश और बरार में, और (५) सवारा और गडावा उड़ीसा में बोली जाती हैं। ये सब भाषाएँ कोल भाषाएँ कहलाती हैं।

(४) तिब्बती-चीनी भाषाएँ (Tibeto-Chinese) उत्तरी-पूर्वी पहाड़ी भागों में मंगोलियन लोगों के वंशजों द्वारा बोली जाती हैं। ये भाषाएँ दक्षिणी हिमालय के ढालों से लगाकर भूटान, उत्तरी बंगाल और असम तक बोली जाती हैं। इनके बोलने वालों की संख्या बहुत ही कम है। नेपाल और दार्जिलिंग में तिब्बत ब्रह्म भाषा की

ही एक भाषा बोली जाती है। इसके अन्तर्गत नीवारी, आका, मीरी, मिश्मी, डफला, लेप्चा, मगारी, कनावरी, किरान्ती, मनीपुरी, आदि भाषाएँ मुख्य हैं। कश्मीर में बुरुशस्की भाषा बोली जाती है।

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के मतानुसार अखिल भारत में ७१ प्रतिशत व्यक्ति आर्य भाषा बोलते हैं; २० प्रतिशत द्रविड़ भाषा, १·३ प्रतिशत कोल भाषा और केवल ०·८५ प्रतिशत व्यक्ति चीनी भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

धर्म (Religion)

भारत में जातियों और भाषाओं की विभिन्नता के साथ-साथ विभिन्न धर्म भी मिलते हैं। प्रायः लोगों का जीवन बहुत कुछ धर्म द्वारा ही प्रभावित है। वही उनका लालन-पालन, शिक्षा, रीति-रिवाज, भोजन, व्यवस्था, निवासस्थान तथा सामाजिक वातावरण निर्धारित करता है। धर्म की दृष्टि से भारतीय जनसंख्या का वितरण (१९७१ में) इस प्रकार था :

हिन्दू	८२·७२%	सिक्ख	१·८९%
मुस्लिम	११·२१%	बौद्ध	०·७०%
ईसाई	२·६०%	जैन	०·४७%
अन्य	०·४१%		

(१) हिन्दू धर्म भारत का सबसे प्रमुख धर्म है। अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के अनुसार, हिन्दू वह है जो भारत में उत्पन्न किसी धर्म को मानता है तथा जो भारत में भारतीय माता-पिता की सन्तान है। इस महासभा के अनुसार सनातनी, आर्यसमाजी, जैन, सिक्ख, बौद्ध, ब्रह्म, आदि सभी हिन्दू आ सकते हैं। यह सत्य ही कहा गया है कि भाषा भारतीय लोगों को भौगोलिक समुदायों में बाँटती है, धर्म उन्हें समानान्तर पर्तों में बाँटता है। हिन्दू धर्म की तीन विशेषताएँ हैं :

(१) एक सर्वोच्च सत्ता तथा अनेक छोटे देवताओं में प्रत्येक हिन्दू धर्मावलम्बी पूर्ण आस्था रखता है। (२) इसकी प्रवृत्ति सहनशीलता की है तथा कोई भी हिन्दू देवी या देवता विशेष की आराधना कर सकता है, उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं। (३) यह कर्म, पुनर्जन्म और मृत्यु के बाद मोक्ष मिलने में विश्वास रखता है। गीता की यह सूक्ति "कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" (Action is the duty, Reward is not the concern) सभी भारतीयों में मान्यता पाती है।

हिन्दू धर्म की अपनी एक विशेष सामाजिक व्यवस्था होती है जिसके मुख्य तत्त्व जाति समुदाय, संयुक्त परिवार प्रणाली, बाल विवाह की प्रथा, सार्वभौमिक विवाह प्रथा, आदि हैं। १९७१ में हिन्दुओं की संख्या ४५.३३ करोड़ थी।

(२) मुस्लिम (Muslims) या इस्लाम धर्म का जन्म अरब देश में हुआ किन्तु यह भारत में १२वीं शताब्दी के लगभग उत्तर-पश्चिम की ओर से आने वाले आक्रमणकारियों द्वारा लाया गया। अतः इसका विस्तार उत्तरी-पश्चिमी भारत तक

ही सीमित रहा किन्तु शनैः-शनैः यह गंगा की घाटी में फैल गया तथा बंगाल में भी इसने अपनी जड़ें जमा लीं। प्रायद्वीप भारत में यह अधिक नहीं फैल सका और इसी लिए वहाँ १०-१५% से अधिक मुस्लिम नहीं हैं। मुस्लिम अधिकतर पश्चिमी भागों में ही पाये जाते हैं। सन् १९७१ में इनकी सख्या ६'१४ करोड़ थी।

(३) ईसाई (Christians)—सीरिया के ईसाई जो ईसा शताब्दी के प्रारम्भिक काल में ट्रावनकोर-कोचीन में आ बसे थे, अन्य मिशनरी ईसाइयों से भिन्न हैं। रोमन कैथोलिक, एंग्लिकन तथा बैपटिस्ट ईसाइयों की संख्या ही भारत में अधिक है। ईसाई धर्म का विस्तार भारत में पहाड़ी जातियों तथा हिन्दुओं की निम्न जातियों में अधिक हो पाया है। इस समय ईसाइयों का केन्द्रीयकरण विशेषत केरल, गोआ, डामन, ड्यू, पांडीचेरी, नागालैण्ड, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में ही है। सन् १९७१ में इनकी सख्या १'४२ करोड़ थी।

(४) सिक्ख (Sikhs) धर्म का जन्म १६वीं शताब्दी में वैष्णव धर्म से पृथक होकर ही हुआ। यह धर्म प्राचीन हिन्दू धर्म को एक शुद्ध धर्म के रूप में अपनाने का ही एक प्रयास था जिसने बहु-देवों, मूर्तिपूजा, जाति प्रथा, तीर्थ यात्रा और पुनर्जन्म का खण्डन किया। मुसलमानों की राजनीतिक क्रूरता तथा हिन्दुओं की सामाजिक क्रूरता के फलस्वरूप ही सिक्खों ने एक शान्तिमय पथ के स्थान पर एक सैनिक धर्म का अवलम्बन किया। इस धर्म के दो मुख्य सिद्धान्त हैं लम्बे बाल रखना तथा धूम्रपान न करना। इनके पास सदैव कच्छ, कृपाण, कंघी, कड़ा और केश रहते हैं जिनसे इन्हें अन्य धर्मावलम्बियों से सरलतापूर्वक पहचाना जा सकता है। ये मुख्यत लाहौर, कांगड़ा, पटियाला, आदि बिन्दुओं को मिलाने वाले १०,००० वर्ग मील त्रिभुजाकार प्रदेश में ही केन्द्रित थे किन्तु अब ये अधिकांशतः पंजाब में अमृतसर के चारों ओर ही फैले हैं। ये बड़े हृष्ट-पुष्ट होते हैं और इसलिए ये भारतीय सेना में बड़ी संख्या में मिलते हैं। १९७२ में इनकी सख्या १'०३ करोड़ थी।

(५) जैन (Jains) धर्म हिन्दू धर्म की ही एक शाखा मानी जाती है। इसका विकास छठी शताब्दी में श्री महावीर द्वारा किया गया। यद्यपि जैन धर्मावलम्बी हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को मानते हैं किन्तु ये जीवों के प्रति अहिंसा पर अधिक जोर देते हैं। ये अधिकांशतः व्यापारी और धनवान होते हैं तथा भारत में दूर-दूर तक फैले हैं। १९७१ में इनकी सख्या २६ लाख थी।

(६) बौद्ध (Buddhists) धर्म भी हिन्दू धर्म की ही शाखा है। इसे गौतम बुद्ध ने ६ठीं शताब्दी में चलाया था। इसका सबसे अधिक प्रचार गंगा की घाटी में ही हुआ। यह धर्म नीति पर अवलम्बित है। यद्यपि भारत से यह धर्म १०वीं शताब्दी के बाद से ही लोप हो गया किन्तु आज भी महाराष्ट्र, जम्मू-कश्मीर, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, असम तथा सिक्किम के पहाड़ी भागों में इसके अनुयायी मिलते हैं। १९७१ में इनकी सख्या ३८ लाख थी।

(७) पारसी (Zoroastrians) लोग भारत में ७वीं शताब्दी में फारस के मुस्लिम धर्म की क्रूरता से बचने के लिए आये और भारत के पश्चिमी तटीय भागों में बस गये। ये लोग सूर्य और अग्नि की पूजा करते हैं। ये अधिकांशतः व्यापारी और उद्योगी हैं। इनका सबसे अधिक केन्द्रीयकरण बम्बई नगर में है।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत के निवासियों का सम्बन्ध किसी न किसी धर्म से है। अधिकांश धर्मों का सम्बन्ध प्रमुख तीर्थ स्थानों से बताया जाता है। उदाहरणार्थ, काशी हिन्दू धर्म और संस्कृति से सम्बन्धित है। यहाँ अनेक हिन्दू मन्दिर हैं। हिन्दुओं के लिए गंगा सबसे पवित्र नदी है जिसके तट पर मृत्यु अथवा अन्त्येष्टि क्रिया से आत्मा को शान्ति प्राप्त होना माना जाता है। अलीगढ़, हैदराबाद और देवबन्द के विद्यालय मुस्लिम संस्कृति के केन्द्र हैं। सिक्खों के पंजाब (ननकाना साहब, पटना, अमृतसर); जैनियों के राजस्थान (कोलायत, देलवाड़ा, रणकपुर, ऋषभदेव); गुजरात (पालीताना, गिरनार), बिहार (सम्मेदशिखर, तथा पारसियों के बम्बई में सांस्कृतिक केन्द्र हैं। बुद्ध गया (बिहार), सारनाथ (उत्तर प्रदेश); साँची (मध्य प्रदेश) में बौद्धों के विहार हैं।

20

नगर और व्यापारिक केन्द्र
(CITIES AND TRADE CENTRES)

नगर तत्कालीन मानव समस्या की चरमसीमा का प्रतीक होता है। यहाँ साधारणतः अधिक जनसमूह एकत्रित रहता है। किसी क्षेत्र के नगर उसके भौतिक विकास तथा सांस्कृतिक प्रगति के सूचक होते हैं। नगरों के अभ्युत्थान के साथ ही साथ श्रम-विभाजन तथा उद्योगों का विशिष्टीकरण का विकास होता है और इनके फलस्वरूप धन-धान्य, कलाकौशल, विज्ञान, आदि प्रोत्साहन पाते हैं। वास्तव में नगरों की उत्पत्ति और उनका विकास मनुष्य के जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है। प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता प्रो० ब्लाशे के अनुसार, "नगर एक सामाजिक संगठन होता है जिसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह मानव सभ्यता की उस सीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है जिन तक कुछ क्षेत्र नहीं पहुँच पाये हैं और जो शायद कभी पहुँच भी न सकें।"

किसी भी नगर अथवा महानगर (Metropolis) की उत्पत्ति और विकास एक ऐतिहासिक घटना होती है और इसके पीछे भौतिक अथवा आर्थिक कारण होते हैं। नगरों का व्यापारिक विकास से गहरा सम्बन्ध होता है। आधुनिक सभ्यता व्यापारिक और औद्योगिक विकास पर निर्भर करती है। अतः आधुनिक काल के बड़े-बड़े नगर व्यापारिक और औद्योगिक ही हैं। फिच और ट्रिवार्था प्रभृति विद्वानों ने ठीक ही कहा है कि "आवागमन के मार्ग और खाद्य-सुविधा ने ही बड़े नगरों के अस्तित्व को सम्भव बनाया है।" ज्यों-ज्यों किसी क्षेत्र में व्यापार की वृद्धि होती है, बड़े नगरों का उत्थान होने लगता है।

प्रसिद्ध भूगोलशास्त्री डॉ० टेलर ने नगरों के विकास की तुलना मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं से की। इनके अनुसार नगरों के विकास में ७ अवस्थाएँ मिलती हैं : पूर्व शैशवावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, उत्तर प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था। उदाहरणार्थ, दिल्ली नगर का इतिहास ३,००० वर्ष पुराना है और ५० वर्ग मील क्षेत्रफल में लगभग ८ दिल्लियों का जन्म हुआ और ये अवनत होकर मृत्यु के घाट उतर गयीं। कन्नौज, फर्रुखाबाद, चित्तौड़, सिकन्दराबाद,

फतेहपुर, बीजापुर, आदि नगर एक प्रकार से मर चुके हैं जबकि गया, जलंधर, भावनगर, अलीगढ़, उदयपुर, सहारनपुर बढ़ रहे हैं। इलाहाबाद, मद्रास, नागपुर और पटना अपनी युवावस्था में पदार्पण कर चुके हैं और सूरत वृद्धावस्था में है। प्रो० गेड्स ने ठीक ही कहा है, "नगर बड़े क्षेत्र के एकमात्र स्थान ही नही, वरन् समय की घटनाओं के प्रतीक भी हैं।"

नगरों का विकास

भारत की सिन्धु-घाटी की सभ्यता ५,००० वर्ष पुरानी मानी जाती है जिसके ध्वंसावशेष आज भी मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और आहड़ (उदयपुर) के रूप में मिलते हैं। नगर नियोजन पर मनसारा के अनुसार आर्यावर्त गंगा और सिन्धु की घाटियों तक फैला था। इसमें व्यापार के लिए पत्तन, सुरक्षा के लिए दुर्ग और राजधानी, शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयीय नगर और उद्योग के लिए नगरों का विकास हुआ था। आर्य युग में ही सिन्धु-गंगा की घाटियों में अयोध्या, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर, मिथिला, कुरुक्षेत्र, द्वारका, मथुरा, हरद्वार, कन्नौज, आदि नगरों का विकास हुआ। बौद्ध युग में तक्षशिला, पाटलिपुत्र कौशाम्बी आदि नगरों का विकास हो चुका था। प्राचीन युग के प्रायः सभी नगर नदियों के किनारे स्थित थे जिनका मुख्य कार्य प्रशासन करने के अतिरिक्त धार्मिक और शिक्षा से भी सम्बन्धित था। प्राचीन नगरों की गणना में मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, तक्षशिला, प्रयाग, जयपुर, लोथल, उज्जैन, कालीबगा, सहस्रधारा, वाराणसी, नालन्दा, राजगिरि, महाबलीपुरम, मदुराई, श्रीरंगम, कौशाम्बी, वैशाली, मथुरा, दसपुर, कन्नौज, अयोध्या, पुष्कर आदि नगर थे। इनमें से अनेक नगर भारतीय कला, प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक थे। कुछ नगर शिक्षा के विशाल केन्द्र थे तो कुछ धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण थे। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि प्राचीन नगर आज की भांति इतने विशाल नहीं होते थे और न ही वहां यन्त्रचलित इतने बड़े यान हुआ करते थे। इनके सीमित भाग में उद्योग एवं वाणिज्य भी होता था किन्तु इन नगरों का वाणिज्यिक और औद्योगिक महत्त्व कम था। प्रायः नगर सुरक्षा की दृष्टि से चहारदीवारी से घिरे होते थे जिनके चारों ओर जल से भरी गहरी खाइयाँ होती थीं।

हिन्दू और मुस्लिम काल में भी नगरों का अच्छा विकास हुआ था। प्रायः नगर नदियों के किनारे स्थित थे और उनमें विभिन्न समुदायों के लिए सुव्यवस्थित मोहल्ले होते थे। सुरक्षा के लिए कुछ नगर ऊँचे टीलों पर भी बनाये जाते थे। इस युग के नगरों में जैसलमेर, चित्तौड़, माण्डू, तुगलकाबाद, दौलताबाद, आगरा, फतहपुर-सीकरी और शाहजहानाबाद प्रमुख थे।

मुगल-साम्राज्य के बाद नगरों का विकास अधिक तीव्र गति से नहीं हो पाया क्योंकि राजनीतिक स्थिति अस्थिर बनी हुई थी, किन्तु फिर भी १९वीं और २०वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने कई नये नगरों को जन्म दिया। नयी दिल्ली, राजधानी के रूप में; मेरठ, बंगलौर, मद्रास, नीमच, नसीराबाद आदि फौजी छावनियों (Cantonment)

के रूप में; मुगलसराय, खड़गपुर, अजमेर, आदि रेलमार्गों के मिलन केन्द्रों (Junctions) के रूप में तथा कलकत्ता, विशाखापट्टनम, बम्बई, मद्रास, आदि का पत्तनों (ports) के रूप में विकास उल्लेखनीय है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के आर्थिक स्रोतों के विदोहन एवं जनसख्या के सामाजिक और आर्थिक विकास की दृष्टि से नगरों और उनकी जनसख्या में बड़ी तीव्र वृद्धि हुई। १६५१ में, कुल नगरीय जनसख्या का ३८.१% १ लाख से अधिक जनसख्या वाले ४७ नगरों में पाया गया था। १६७१ में नगरों की सख्या बढ़कर १४७ हो गयी जिनमें देश की कुल नगरीय जनसख्या का ५२.४ प्रतिशत रहता था। जनगणना के आंकड़ों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि छोटे कस्बों की तुलना में बड़े नगरों की जनसख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है क्योंकि इन नगरों में अपने पृष्ठदेश की जनसंख्या को अधिकाधिक मात्रा में आकर्षित करने के लिए उद्योगों, शिक्षण सुविधाओं, स्वास्थ्य सेवाओं और मनोरंजन के साधनों की उपलब्धता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इन सबके कारण आधुनिक काल के नगरों का स्वरूप और उत्पत्ति के कारण भिन्न हैं। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप अनेक नये औद्योगिक नगरों की उत्पत्ति हुई है। औद्योगिक उन्नति के साथ देशी और विदेशी व्यापार का विकास स्वाभाविक है। अतः बहुत से सग्रह केन्द्र (Collecting Centres), वितरण केन्द्र (Distributing Centres) या क्रय-विक्रय केन्द्र और पत्तनों (Ports) का विकास हुआ है। औद्योगिक नगरों के विकास ने कई सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है, जैसे स्वास्थ्य लाभ तथा मन बहलाव के लिए नये केन्द्रों की स्थापना। फलतः सामुद्रिक तटीय क्षेत्रों में अथवा पहाड़ी स्थलों में प्राकृतिक सौन्दर्य का लाभ उठाने के लिए अनेक नगरों का विकास हुआ है। इन सबके अतिरिक्त शिक्षा और धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण केन्द्र भी पनपे हैं।

अस्तु, यह कहना असगत न होगा कि पिछले २० वर्षों में भारतीय नगरों की उत्पत्ति एवं विकास देश के विभिन्न भागों में औद्योगीकरण और परियोजनाओं के फलस्वरूप हुआ है।

इस प्रकार नये नगरों के अन्तर्गत मुख्यतः निम्न श्रेणी के नगर उल्लेखनीय हैं :

राजधानियाँ	: भुवनेश्वर, चण्डीगढ़, भोपाल, दिल्ली, जयपुर।
बन्दरगाह	: हल्दिया, पारादीप, काण्डला।
इस्पात के केन्द्र	: रूरकेला, भिलाई, दुर्गापुर, बोकारो, भद्रावती।
कच्चे तेल से सम्बन्धित केन्द्र	: गौहाटी, नूनमती, कोयली, बरौनी।
खाद उत्पादक केन्द्र	: नागल, गोरखपुर, सिन्द्री, हनुमानगढ़।
स्वास्थ्यवर्द्धक केन्द्र	: मसूरी, उटकमण्ड, राँची, महाबलेश्वर, दार्जिलिंग, शिमला, नैनीताल, गुलमर्ग, कोडेकनाल, आबू, डलहौजी, पचमढ़ी, गोपालपुर, पुरी, कटक, कुन्नूर।

अन्य प्रकार के नगर ये हैं :

खनिज केन्द्र : रानीगंज, धनबाद, बोकारो, कोलार, आसनसोल, झरिया, सांभर, डिगबोई, कोडरमा, हजारीबाग, गिरिडीह।

धार्मिक केन्द्र : गया, देवघर, देवबन्द, पटना, अमृतसर, हरद्वार, मथुरा, वृन्दावन, मदुराई, तिरुचिरापल्ली, रामेश्वरम, नासिक, पुष्कर, प्रयाग, गया, पुरी, नाथद्वारा, द्वारका, सोमनाथ, वाराणसी, तंजवूर, कन्याकुमारी।

सैनिक छावनियाँ : मऊ, मेरठ, पूना, ग्वालियर, देहरादून, अम्बाला, नसीराबाद, जबलपुर।

शिक्षा केन्द्र : अलीगढ़, अन्नामलयनगर, पिलानी, पटना, लखनऊ, जादवपुर, खड्गपुर, शान्ति निकेतन, पन्तनगर।

नगरों की स्थिति प्रभावित करने वाले तथ्य

नगरों की स्थिति पर सामान्यतः चार बातों का प्रभाव पड़ता है : (१) केन्द्रीयता, (२) सुरक्षा, (३) पीने के जल की प्रचुरता, और (४) समतल भूमि एवं परिवहन के साधन एवं मार्ग।

(१) केन्द्रीयता (Nodality) प्राप्त करने के लिए नगर ऐसे स्थानों पर बसाये जाते हैं जहाँ चारों ओर से मार्ग आकर मिलते हैं। ऐसी स्थिति प्रायः नदियों के किनारे अथवा उनके संगम पर पायी जाती है।

(२) सुरक्षा (Defence)—प्राचीनकाल में ही नगर अपने पृष्ठदेश के संरक्षण का कार्य करता है क्योंकि यहाँ न केवल सुरक्षा सम्बन्धी सभी सुविधाएँ पायी जाती हैं, वरन् उनमें राजनीतिक क्रियाएँ भी होती हैं। अधिकतर नगर नैसर्गिक दुर्गों के रूप में बसाये जाते हैं। अब सुरक्षा सम्बन्धी समस्या न होने से नगर किसी भी ऐसे क्षेत्र में बसाये जा सकते हैं जहाँ अन्य सुविधाएँ मिल सकें।

(३) पीने के जल की प्रचुरता (Availability of Potable Water)—जनसंख्या के लिए सबसे पहली आवश्यकता जल की है। अतः नगरों का विकास नदी घाटियों में अथवा उनके किनारे किया गया। अब तो सैकड़ों मील दूर से नलों द्वारा जल की प्राप्ति की जा सकती है।

(४) जिन क्षेत्रों में नगर बसाये जायें वहाँ उनके विस्तार के लिए पर्याप्त समतल भूमि और परिवहन के मार्गों की सुविधा होना आवश्यक है। आज का प्रत्येक नगर औद्योगिक अथवा व्यापारिक अथवा दोनों ही कार्य करने वाला होता है अतः इसके विकास के लिए यातायात के मार्गों का महत्त्व अधिक है।

प्रत्येक नगर अपनी पृष्ठ भूमि का केन्द्र होता है जो इसके नागरिक और प्रशासनिक कार्यों को करता है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि किसी भी नगर के विकास में कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं होता। अनेक कारण सम्मिलित रूप से और कभी-कभी व्यक्तिगत रूप से नगरों के विकास में सहायक होते हैं।

भारतीय नगर और उनकी विशेषताएँ

मारत में वे सब स्थान जिनकी जनसंख्या ५,००० या इससे अधिक होती है, जिनका घनत्व प्रति वर्गमील पीछे १,००० व्यक्तियों का होता है और जहाँ की तीन-चौथाई जनसंख्या गैर-कृषि कार्यों में मलग्न होती है, कस्बे (Towns) कहे जाते हैं। इसके विपरीत जिन स्थानों की जनसंख्या १ लाख से अधिक होती है, वे **नगर** (Cities) और १० लाख से अधिक जनसंख्या वाले स्थान को महानगर (Metropolis) कहते हैं। अब कई नगर अपने उप-नगरों सहित वृहत् नगरों (Megalopolis) का रूप लेते जा रहे हैं। इस प्रकार के नगरों की शृंखला बम्बई, मद्रास, बंगलौर, हैदराबाद, दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद और कलकत्ता के उप-क्षेत्रों में विकसित हो रही है।

किसी देश के आर्थिक विकास का मापदण्ड उसके बड़े नगरों की संख्या और विशालता है। इस दृष्टि से भारत में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की संख्या बहुत ही कम है। १९२१ में यह २३ थी। १९३१ में २६, १९४१ में ४७, १९५१ में ७३, १९६१ में १०७ और १९७१ में १४७ हो गयी।

नीचे की तालिका में विभिन्न राज्यों में बड़े नगरों की संख्या एवं सबसे बड़े नगर की जनसंख्या बतायी गयी है :

राज्य	कुल नगर	कुल नगरीय जनसंख्या (लाख में)	१ लाख से ऊपर जनसंख्या वाले नगर
आन्ध्र प्रदेश	२०७	८३.६	१३
असम	७५	१२.४	१
बिहार	१६१	५६.५	११
गुजरात	२१७	७५.१	७
हरियाणा	६५	१७.७	२
हिमाचल प्रदेश	३५	२.४	—
जम्मू-कश्मीर	४५	८.४	२
कर्नाटक	२३१	७१.१	११
केरल	८८	३४.७	५
मध्य प्रदेश	२४२	६३.७	११
महाराष्ट्र	२८९	१५७.०	१७
नागालैण्ड	३	०.५	—
उड़ीसा	८०	१८.१	४
पंजाब	१०८	३२.१	४
राजस्थान	१५७	४५.३	७
तमिलनाडु	४४३	१२४.५	१७
उत्तर प्रदेश	२९३	१२६.७	२२
प० बंगाल	१३७	१०९.३	५
चण्डीगढ़	१	२.३	१
दिल्ली	१	३६.३	१
भारत का योग	२,९२१	१,०८७.८	१४७

नगरों के प्रकार

हम भारत के नगरों को उनके कार्यों की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित करते हैं :

(१) औद्योगिक नगर,
(२) व्यापारिक नगर,
(३) परिवहन नगर।

१. औद्योगिक नगर (Industrial Cities)

इन नगरों में निकटवर्ती क्षेत्रों में पाये जाने वाले कच्चे माल से निर्मित सामान तैयार किया जाता है। जैसे कच्चे लोहे को गलाकर इस्पात बनाना, रुई से कपड़े, चूने के पत्थर से सीमेण्ट अथवा बालू मिट्टी से काँच आदि बनाना। इन नगरों के विकास के लिए (१) निकटवर्ती क्षेत्रों में कच्चे माल का मिलना, (२) शक्ति के साधनों की उपलब्धि, (३) परिवहन के साधनों की प्राप्ति, (४) जल पूर्ति, (५) कुशल और पर्याप्त श्रमिक, एवं (६) पूँजी का मिलना आवश्यक होता है।

औद्योगिक नगरों की स्थापना में खाद्य सामग्री की उपलब्धता का कोई विचार नहीं रखा जाता क्योंकि यह सामग्री दूर के स्थानों से प्राप्त की जा सकती है। औद्योगिक नगर सामान्यतः या तो (अ) कच्चे माल की निकटता के स्थान पर, जैसे शोलापुर, ब्यावर, डिंडीगल, जमशेदपुर, कटनी, भिलाई, टीटागढ़; अथवा (ब) कोयले या शक्ति उत्पादन के क्षेत्रों के निकट; जैसे, रानीगंज बर्नपुर, बोकारो, झरिया, आसनसोल, जोगेन्द्रनगर, कोलार, मैटूर और मदुराई, अथवा (स) निर्यात की सुविधाएँ मिलने के कारण, जैसे ओखा, विशाखापट्टनम, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, आदि विकसित होते हैं।

औद्योगिक नगरों के अन्य उदाहरण नागपुर, कानपुर, बंगलौर, मैसूर, अहमदाबाद, गाजियाबाद, लुधियाना, कोटा, अजमेर, बड़ौदा, सूरत, मुरादाबाद, फिरोजाबाद, अलीगढ़, कोयम्बटूर, आदि हैं।

२. वाणिज्यिक नगर या व्यापार केन्द्र (Commercial Cities or Trade *Centres*)

ये नगर कहीं भी स्थापित किये जा सकते हैं। ये विस्तार में अधिक बड़े नहीं होते। इन नगरों के विकास का मुख्य आधार परिवहन की सुविधा मिलना होता है। इन नगरों का मुख्य कार्य किसी क्षेत्र के उत्पादन को एकत्रित कर उसमें दूसरे क्षेत्रों की माँग की पूर्ति करना है। इन नगरों में कालान्तर में छोटे उद्योग भी स्थापित हो जाते हैं। आरम्भ में ये नगर छोटे होते हैं किन्तु धीरे-धीरे व्यापार बढ़ने पर इनकी जनसंख्या भी बढ़ती जाती है। नागपुर, हापुड़, मेरठ, श्रीगंगानगर, केकड़ी, ब्यावर, भीलवाड़ा, रायपुर, साहिबगंज इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

प्रो० हंटिंग्टन के अनुसार, "व्यापारिक नगर उस दानव की भाँति होता है जो अपनी सम्पत्ति के द्वार पर बैठा रहता है। एक ओर तो वह अपनी सारी उपज

डकार जाता है और दूसरी ओर वह अपनी क्षेत्रीय उपज को अन्यत्र पहुँचाता है और उसके बदले में क्षेत्रीय आवश्यकताओं की माँग को पूरा किया करता है।" इसके विपरीत इन्हीं के अनुसार, "औद्योगिक नगर की तुलना भी दानव से की जा सकती है जो अपने हाथों में मशीनें, कपड़ा, रासायनिक पदार्थ, अथवा अन्य सामान भारी मात्रा में तैयार करता है और इसकी बिक्री पर कच्चा माल तथा खाद्य सामग्री अपने पड़ौसी दूरस्थ क्षेत्रों से प्राप्त करता है।"

व्यापारिक नगरों का विकास इन क्षेत्रों में होता है। (१) ग्रामीण क्षेत्रों के बीच किसी सड़क के निकट या रेलमार्ग के समीप (२) दो विपरीत प्रकार के प्रदेशों के मिलन के क्षेत्र में, जैसे पर्वतों और मैदानों के मिलने की सीमा पर, जैसे, देहरादून, बरेली, पठानकोट, कोटद्वार, रामनगर, काठगोदाम, गेरी, बहराइच, रक्सौल, सिलीगुड़ी, हरद्वार, आदि, (३) मरुस्थलों की सीमा पर, जैसे जोधपुर, जैसलमेर, चुरू, बीकानेर; (४) *सड़कों या मार्गों के मिलन पर भटिंडा, इटारसी, कटनी, नागपुर,* गुन्तकल, आगरा, अथवा (५) बन्दरगाहों पर, जैसे विशाखापट्टनम, कोचीन, कोजीकोड, सूरत, आदि।

औद्योगिक और व्यापारिक नगरों में अन्तर

नगरों के विकास सम्बन्धी अध्ययन करते समय एक कठिनाई यह आती है कि किन नगरों को व्यापारिक कहा जाये और किन को औद्योगिक। बहुत-से ऐसे नगर *हैं जिन्हें स्वरूप से औद्योगिक नगर माना जा सकता है; जैसे जमशेदपुर, भद्रावती, अहमदाबाद, आदि; जबकि मेरठ, ब्यावर, दिल्ली, लखनऊ, हैदराबाद मुख्य रूप से व्यापारिक ही हैं किन्तु कलकत्ता, आगरा, कानपुर, बम्बई, आदि को दोनों ही श्रेणियों* में रखा जा सकता है। दोनों प्रकार के बीच में निम्न अन्तर परिलक्षित होगा

(१) उद्योग-धन्धों पर व्यापार निर्भर रहता है। इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति का आगमन व्यापारिक क्रान्ति से पहले हुआ। औद्योगिक केन्द्र स्वयं ही व्यापारिक केन्द्र हो जाते हैं परन्तु व्यापारिक केन्द्र कदाचित् ही बड़े-बड़े कल-कारखानों का नगर बन सकता है परन्तु *ऐसे स्थानों पर गौण उद्योग-धन्धे सरलता से उन्नति कर सकते* हैं। अतः औद्योगिक केन्द्रों पर कलाकौशल के कार्य (कच्चे माल के पक्के माल में परिवर्तन करने के काम) मुख्य होते हैं परन्तु व्यापारिक केन्द्र में कलाकौशल का अभाव होता है।

(२) औद्योगिक केन्द्र विशेषतः कुछ स्थानों पर ही उन्नति करते हैं। यह वह *स्थान होते हैं जहाँ पर कच्चा माल और शक्ति निकटवर्ती क्षेत्रों में ही नहीं मिलती* वरन् प्रचुर मात्रा में भी वर्तमान होती है, तथा सस्ती मजदूरी और उन उद्योगों से सम्बन्धित कुछ विशेष लाभ पाये जाते हैं। *व्यापारिक नगर उन स्थानों पर होते हैं* जहाँ पर यातायात और आवागमन के साधन और व्यापारिक वस्तुएँ अधिक मात्रा में मिलती हैं।

(३) औद्योगिक नगर अधिकतर व्यापारिक नगर से बड़ा होता है। प्रत्येक नगर अपनी स्थिति और विस्तार के अनुसार व्यापार करता है, परन्तु औद्योगिक नगर में कुछ बड़े कारखाने, हजारों मजदूरों, सैकड़ों विशेषज्ञ और क्लर्कों की आवश्यकता होती है तथा बहुत-से लोग माल (कच्चा और पक्का) एकत्रित करने में भी लगे रहते हैं। अतः यहाँ का क्षेत्रफल और जनसंख्या व्यापारिक नगर से अधिक होती है।

(४) औद्योगिक नगर की कुछ अपनी विशेष समस्याएँ होती हैं, वहाँ के उद्योग-धन्धों (जैसे, स्थिति, अनुसन्धान, कारखानों का निरीक्षण, तकनीकी शिक्षा, आदि), मजदूरों (जैसे, वेतन, भत्ता, घर, क्षमता, सामाजिक आमोद एवं मनोरंजन) और समाज सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाना पड़ता है। व्यापारिक नगर की समस्याएँ न तो इतनी विभिन्न होती हैं और न जटिल ही।

३. परिवहन नगर (Transport Cities)

ये वे नगर होते हैं जो परिवहन के मार्गों के मिलन पर विकसित होते हैं, यथा (अ) मार्ग में बाधा के समीप, अथवा (ब) दो या अधिक व्यापारिक मार्गों के मिलन पर।

(अ) मार्ग में बाधा के समीप जहाँ स्थलीय बाधाओं के कारण सामान को बड़े टुकड़ों से छोटे टुकड़ों में बाँटना आवश्यक हो जाता है जिससे उसका स्थानान्तरण सरलता से किया जा सके, जैसे (१) जहाँ रेलमार्ग समाप्त होकर आगे मोटरगाड़ियाँ जाती हों; जैसे काठगोदाम, पठानकोट, सिलीगुड़ी, (२) जहाँ समुद्री मार्ग समाप्त होकर अथवा आन्तरिक जलमार्ग समाप्त होकर रेलमार्ग आरम्भ होता है, जैसे भारत के बड़े बन्दरगाह जहाँ माल को गोदामों में रखना, छाँटना, उन्हें बाँधना, आदि किया जाता है।

(ब) दो या अधिक मार्गों के मिलने पर, जहाँ दो नदियाँ मिलती हैं, जैसे (१) गंगा-यमुना के मिलन पर इलाहाबाद, (२) नदियों के चौड़े मुहाने पर; जैसे कलकत्ता, सूरत, (३) नदियों के मोड़ों पर; जैसे विजयवाड़ा, कटक, राजमुन्द्री, (४) नदियों के पुलों के समीप, जैसे वाराणसी, पटना, आदि।

इस विवेचन से स्पष्ट होगा कि भारतीय नगरों के विकसित होने में कई कारण रहे हैं।

देश के प्रमुख नगर

आंध्र प्रदेश के प्रमुख नगर

आंध्र में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले १३ नगर हैं हैदराबाद, विजयवाड़ा, गन्तूर, विशाखापट्टनम, वारंगल, राजमुन्द्री, काकिनाड़ा, एल्लूरू, नैलोर, कर्नूल, निजामाबाद, मछलीपट्टनम और तेनाली।

हैदराबाद (१६,१२,२७६)—कृष्णा की सहायक मूसा नदी के तट पर स्थित है। यह तत्कालीन मुस्लिम निजाम की राजधानी थी। अब यह आंध्र प्रदेश का प्रमुख और शासन केन्द्र है। यह नगर दक्षिणी रेलमार्ग का प्रमुख जकशन है। यह राष्ट्रीय मार्गों द्वारा नागपुर, विजयवाड़ा, महबूबनगर और शोलापुर से मिला है। यहाँ का हवाई अड्डा बेगमपेट में है जहाँ से दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, नागपुर, मद्रास और बंगलौर को हवाई जहाज जाते हैं।

यह नगर अब दक्षिण भारत का एक प्रमुख औद्योगिक और व्यावसायिक नगर हो गया है। उस्मानिया विश्वविद्यालय के कारण इसका शैक्षणिक महत्त्व भी है। यहाँ मिट्टी और लकड़ी के खिलौने, फर्नीचर, हाथीदांत और सींग से सजावट की वस्तुएँ, चमड़े का सामान, कम्बल, बटन, कालीन, सिगरेट, सूती वस्त्र, दियासलाई, बनाने के कई उद्योग स्थापित हैं।

यह नगर ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यह चारों ओर परकोटे से घिरा है। इस नगर में अनेक दार्शनिक स्थल हैं। सलारजंग अजायबघर, निजाम सागर और हुसैन सागर बाँध, गोलकुण्डा के खण्डहर, चारमीनार, जामा मस्जिद, फलकनुमा महल, सार्वजनिक उद्यान, विधान सभा एवं उस्मानिया विश्वविद्यालय। हैदराबाद से पुल द्वारा मिली हुई ६ किलोमीटर दूर सिकन्दराबाद में दक्षिणी भारत की सबसे बड़ी फौजी छावनी है। यहाँ रुई का व्यापार अधिक होता है।

विजयवाड़ा (३,४३,६६४)—यह पूर्वी समुद्री तट पर पूर्वी और दक्षिणी रेल मार्गों का प्रमुख जकशन है। यह भी राष्ट्रीय मार्गों का केन्द्र है। यह एक औद्योगिक नगर है जहाँ शक्कर, कागज, वस्त्र, सिगरेट और सीमेंट के उद्योग स्थापित हैं।

वारंगल (२,०७,१३०)—यह हैदराबाद के उत्तर-पूर्व में पूर्वी रेल मार्ग का मुख्य जकशन है। यहाँ हवाई अड्डा है जहाँ से वायु मार्ग नागपुर और मद्रास जाते हैं। यह प्राचीनकाल में तेलुगु राजाओं की राजधानी रहा है। यहाँ का प्रमुख दार्शनीय स्थल सहस्रों स्तम्भ वाला मन्दिर है। यह एक औद्योगिक नगर भी है जहाँ रंगबिरंगी दरियाँ, सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्र और कालीन, दियासलाई, खिलौने, हाथीदाँत, सींग और सोने-चाँदी की विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनायी जाती हैं।

एलुरू (१,२७,०४७)—यह नगर विजयवाड़ा के उत्तर-पूर्व में दक्षिण रेल मार्ग का जकशन और आंध्र का प्रमुख औद्योगिक नगर है। यहाँ लकड़ी का सामान, कालीन, गलीचे और सींग तथा हाथीदाँत की वस्तुएँ तैयार की जाती हैं और कपड़े पर छपाई का कार्य होता है।

तमिलनाडु के प्रमुख नगर

तमिलनाडु में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले १७ नगर हैं : मद्रास, मदुराई, कोयम्बटूर, तिरुचिरापल्ली, सलेम, तूतीकोरिन, वेलूर, थजवूर, नगरकोइल, डिंडीगल, सिंगनालूर, तिरुपुर, कुम्भकोनम, कांचीपुरम, तिरुनलवेली, इरोड और कड्डालोर।

मद्रास (२४,७०,२८८)—यह पूर्वी तट पर भारत का चौथा प्रमुख नगर होने के साथ-साथ तीसरा प्रमुख बन्दरगाह है जहाँ का पोताश्रय कृत्रिम है। इस नगर की नींव १६३९ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा डाली गयी थी जबकि यहाँ फोर्ट विलियम किला और एक फैक्ट्री स्थापित की गयी। यह नगर कर्नाटक के उपजाऊ मैदान में केन्द्रीय स्थिति में है। दक्षिणी रेलमार्ग और सड़कों का मुख्य जंक्शन होने से यह बड़े-बड़े सभी नगरों से जुड़ा हुआ है। मद्रास से बंगलौर, कलकत्ता, कन्याकुमारी, हैदराबाद और दिल्ली को वायुमार्ग जाते हैं और सामुद्रिक मार्ग विशाखापट्नम, कोलम्बो, कलकत्ता, रंगून, पोर्ट ब्लेयर, आदि को। बकिंघम नहर द्वारा यह उत्तर के तम्बाकू उत्पादन क्षेत्रों से जुड़ा है। यह तमिलनाडु की राजधानी और दक्षिण भारत का प्रमुख शैक्षणिक केन्द्र है, जहाँ मद्रास विश्वविद्यालय है। यह एक औद्योगिक और व्यावसायिक नगर भी है। यहाँ जलविद्युत के सहारे सूती वस्त्र, सीमेण्ट, दियासलाई, चमड़ा, रेल के डिब्बे, सिगरेट, साइकिल, मशीनें, आदि उद्योग पनपे हैं। यद्यपि यह नगर कलकत्ता और बम्बई से भी पुराना है किन्तु इन नगरों की भाँति यहाँ न तो इतने अधिक उद्योगों का ही विकास हुआ है और न ही जनसंख्या अधिक घनी है। इसलिए इस नगर को कभी-कभी सुदर प्रसारित नगर (City of respectable distances) कहा जाता है। यह नगर समुद्र के किनारे १६ किलोमीटर तक और ६ किलोमीटर भीतर की ओर फैला है। यहाँ अनेक दर्शनीय स्थल हैं : मद्रास विश्वविद्यालय, कोर्ट, विधानसभा भवन, चिपाक महल, अजायबघर और चिड़ियाघर, तट के निकट मत्स्य पालन केन्द्र, कपिलेश्वर और पार्थसार्थी का मन्दिर।

मदुराई (५,४८,२८८)—यह वैगाई नदी पर बसा तमिलनाडु का एक प्रमुख औद्योगिक नगर है। यह दक्षिण रेल मार्ग और अनेक राष्ट्रीय मार्गों का जंक्शन है। यहाँ के हवाई अड्डे से वायु मार्ग बंगलौर, मद्रास और तिरुवनन्तपुरम जाते हैं। यह नगर प्राचीन काल में पाड्य राजाओं की राजधानी रहा है। यहाँ पुराना किला और मीनाक्षी का विशाल मन्दिर देखने योग्य है। यहाँ हाथकर्घे पर सूती और रेशमी साड़ियाँ और अन्य कपड़े अधिक बनाये जाते हैं। ताँबे और पीतल के बर्तन बनाना यहाँ का अन्य उद्योग है।

कोयम्बटूर (३,५३,४६६)—मध्य दक्षिणी रेल मार्ग और राष्ट्रीय मार्ग का जंक्शन है। यहाँ हवाई अड्डा भी है। इस नगर में कपास, शक्कर और सुपारी का व्यापार बड़ी मात्रा में होता है। यहाँ शक्कर, काँच, सूती वस्त्र, सीमेण्ट, आदि के कई कारखाने हैं। भारत का प्रसिद्ध कृषि महाविद्यालय यहाँ है।

तंजावूर (१,४०,४७०)—यह कावेरी डेल्टा के उपजाऊ मैदानों के मध्यवर्ती भाग में बसा है जो दक्षिणी भारत का उद्यान (The Garden of South India) कहलाता है। यह चोलवंश की राजधानी थी। यहाँ पर दो पुराने किले हैं। यहाँ का विशाल मन्दिर दक्षिण भारत का सबसे बड़ा मन्दिर समझा जाता है। यहाँ एक प्राचीन पुस्तकालय भी है जिसमें १८,००० संस्कृत की पाण्डुलिपियाँ हैं।

तिरुचिरापल्ली (३,०६,२४७)—यह कावेरी नदी के डेल्टा में बसा है और एक बड़ा नगर है। यह एक पहाड़ी के चारों ओर बसा हुआ है जो २७३ फीट ऊँची है और जिसके शिखर पर एक मन्दिर बना हुआ है। यह कई रेलों और सड़कों का जंक्शन है। यह एक पुराना नगर और शिक्षा केन्द्र तथा दक्षिणी भारत का बड़ा तीर्थस्थान है। इसे दक्षिण भारत की काशी कहते हैं। इसके उत्तर में लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर श्रीरंगम् का विशाल मन्दिर है जो एक हजार स्तम्भों वाले विशाल बरामदे के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर एक किला और फौजी छावनी भी है। यह नगर सिगार और सीमेण्ट बनाने के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ कपड़ा बुनने की कई मिलें भी हैं।

कर्नाटक के प्रमुख नगर

कर्नाटक में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले ११ नगर हैं मैसूर, बंगलौर, मंगलौर, बेलगाम और कोलार क्षेत्र।

मैसूर (३,५५,६३६)—यह नगर चामुंडा पहाड़ियों की तलहटी में दो समान्तर शैलों के बीच स्थित है। यह दक्षिणी रेल मार्ग का प्रमुख जंक्शन और भारत का प्रसिद्ध हवाई अड्डा है। *यह एक औद्योगिक और व्यावसायिक नगर है।* यहाँ चन्दन का तेल, रेशमी वस्त्र, चन्दन का साबुन और उसकी लकड़ी पर खुदाई और नक्काशी का काम, दरियाँ, कालीन, गलीचे, सुगन्धित अगरबत्तियाँ बनाने का कार्य अधिक किया जाता है। हाथकर्घा उद्योग, हाथ से कागज, टोकरियाँ-चटाइयाँ, धातु के बर्तन, खिलौने एवं सजावट की वस्तुएँ बनाने का कार्य भी अधिक होता है। *यह नगर नारियल, कहवा और इलायची के व्यापार का यह मुख्य केन्द्र है। यह कर्नाटक राज्य का* अत्यन्त रमणीक नगर है। यहाँ विश्वविद्यालय, कृष्णाराजसागर बाँध, उच्च न्यायालय, वृन्दावन बाग, चामुंडा पहाड़ी, सोमनाथ का मन्दिर, महाराजा के भव्य भवन और चिड़ियाघर विशेष रूप से देखने योग्य हैं। इतने अधिक आकर्षक दृश्यों के कारण ही मैसूर को सैलानियों का स्वर्ग कहा जाता है। दशहरा पर विशेष उत्सव देखने योग्य है।

बंगलौर (१६,४८,२३२)—यह समुद्र तल से १,००० मीटर की ऊँचाई पर २९ वर्ग मील क्षेत्र में बसा है। यह कर्नाटक का प्रथम बड़ा नगर और राजधानी है। यहाँ भारत की सबसे बड़ी विज्ञान की संस्था है जिसमें नये वैज्ञानिक अनुसन्धान किये जाते हैं। यहाँ सूती, रेशमी तथा ऊनी कपड़े बनाने के कई कारखाने हैं। वास्तव में यह दक्षिणी भारत का सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र है। यहाँ साबुन बनाने, विद्युत सामान, मशीनों के कल-पुर्जे, रेडियो, टेलीफोन, वायुयान बनाने, काँच का सामान, औषधियाँ, क्रीम, चमड़ा, चन्दन का तेल निकालने, बिजली का सामान बनाने तथा चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के कई छोटे-मोटे कारखाने हैं। इसी नगर में हिन्दुस्तान मशीन टूल्स फैक्ट्री (जिसमें कई प्रकार की मशीनें और घड़ियाँ बनायी जाती हैं), इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज, हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्ट्री और

भारत इलेक्ट्रोनिक्स के कारखाने हैं। अनुकूल स्थिति, सस्ती जल-विद्युत शक्ति, कुशल और तकनीकी श्रमिकों का पर्याप्त मात्रा में मिलना तथा वैज्ञानिक संस्था का होना इसके औद्योगिक महत्त्व के लिए उत्तरदायी कारण हैं। यह दक्षिणी रेल मार्ग का प्रमुख जंकशन और वायुमार्गों तथा राष्ट्रीय मार्गों का मिलन केन्द्र है। यहाँ फौजी छावनी भी है। महालाल बाग, टीपू सुल्तान का महल और विधानसभा भवन तथा कारखाने देखने योग्य हैं। यहाँ एक विश्वविद्यालय भी है।

बेलगाम (२,१३,८३०)—यह दक्षिण रेलमार्ग का प्रमुख केन्द्र है जो पश्चिम के उत्तर-पूर्व में स्थित है। यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक और औद्योगिक नगर है जहाँ ऊनी और सूती वस्त्र, कागज, काँच और पत्थर की वस्तुएँ बनायी जाती हैं। यहाँ सैनिक छावनी भी है। स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान होने के कारण यह निर्धनों का महाबलेश्वर कहलाता है।

मंगलौर (२,१४,०६३)—यह पश्चिमी तट पर एक बन्दरगाह है और दक्षिण रेलमार्ग का अन्तिम स्टेशन। यहाँ हवाई अड्डा भी है। लकदीव और अमीनीदीवी द्वीप के निवासी यहाँ आकर नारियल और जटा की वस्तुओं का व्यापार करते हैं। यहाँ मिट्टी की सुन्दर टायलें बनाने, काजू के छिलके उतारने और कहवा तैयार करने के अनेक कारखाने हैं।

हुबली (३,७६,५५५)—यह दक्षिणी रेलमार्ग का जंकशन है। यहाँ सूती वस्त्र, कागज, काँच, पत्थर और लकड़ी का सामान बनाने के कई उद्योग हैं।

केरल के प्रमुख नगर

केरल में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले ५ नगर हैं : त्रिवेन्द्रम, कोचीन, अलप्पी, अरनाकुलम और कोझीखोड़।

तिरुवनन्तपुरम (४,०६,७६१)—सुदूर दक्षिण पश्चिम में केरल राज्य की राजधानी और प्रसिद्ध व्यावसायिक केन्द्र है। यह समुद्रतल से १२ किलोमीटर भीतर की ओर स्थित है तथा रेलमार्ग और सड़कों तथा वायुमार्गों का मिलन केन्द्र है। यहाँ पैंसिल, हाथीदाँत की वस्तुएँ, सुपारी, सीमेंट और नारियल की जटा की विभिन्न वस्तुएँ बनाने के कई कारखाने हैं।

किला, पद्मनाभस्वामी का मन्दिर, चिड़ियाघर, अजायबघर, तथा विधानसभा भवन देखने योग्य स्थल हैं।

कोचीन (४,३८,०८५)—यह पश्चिमी तट पर पालघाट दर्रे के निकट केरल का एक प्राकृतिक बन्दरगाह है। बम्बई, मारमुगाओ और कोलम्बो के बीच इसकी स्थिति का भौगोलिक महत्त्व है। समुद्र तट के समान्तर भीतर की ओर जलमार्ग के फैलाव की सुविधा प्राप्त है। यह जलमार्गों द्वारा मद्रास, तिरुचिरापल्ली, मदुराई और मंगलौर से जुड़ा है। यहाँ के हवाई अड्डे से बंगलौर, कोजीकोड और तिरुवनन्तपुरम वायुमार्ग जाते हैं। यहाँ नारियल का तेल, जटा का सामान, सुपारी और

काजू, कहवा तैयार करने के कारखाने हैं। अब यहाँ एक पोत निर्माण का कारखाना और तेल शोधनशाला बनाई जा रही है।

अलप्पी (१,६०,०६४)—यह केरल का प्रमुख औद्योगिक नगर और बन्दरगाह है। नगर में आना-जाना नहरों द्वारा होता है। यहाँ नारियल की जटा की अनेक वस्तुएँ बनायी जाती हैं।

महाराष्ट्र के प्रमुख नगर

महाराष्ट्र में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगर १७ हैं: बम्बई, नागपुर, पूना, शोलापुर, नासिक, कोल्हापुर, अमरावती, सांगली, मालेगाँव, अहमदनगर, अकोला, उल्हासनगर, धुलिया, नादेड़, औरंगाबाद, जलगाँव और थाना।

बम्बई (५६,३८,५४५)—यह पश्चिमी तट पर भारत का प्रमुख प्राकृतिक बन्दरगाह होने के अतिरिक्त एक प्रमुख औद्योगिक एवं व्यावसायिक नगर भी है। यह नगर पश्चिमी, मध्य और दक्षिणी रेलमार्गों द्वारा देश के बड़े नगरों से मिला है। यह वायुमार्गों का प्रमुख केन्द्र है जहाँ से दिल्ली, भोपाल, मद्रास, कलकत्ता, हैदराबाद, बंगलौर, पंजिम, भुज और कोजीखोड को वायुमार्ग जाते हैं। सांताक्रूज में अन्तरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है। यहाँ से सामुद्रिक मार्ग करांची, अदन, जंजीबार, केपटाउन, कोलम्बो और कलकत्ता जाते हैं। भोरघाट और थालघाट दर्रों द्वारा यह अपने विस्तृत पृष्ठदेश से जुड़ा है। बम्बई महाराष्ट्र की राजधानी और उसका सबसे बड़ा नगर है, जो कई उपनगरों (बोरिविली, कान्दीविली, परेल, सांताक्रूज, महालक्ष्मी, अंधेरी, दादर, खार, मलाड, विलेपारले, सियोन, आदि से) जुड़कर एक महानगर बनता है। यह सालसिट नामक द्वीप पर स्थित है जहाँ जल की गहराई १२ मीटर तक है। बन्दरगाह प्राकृतिक होने से बड़े व्यापारिक एवं यात्री जहाजों के ठहरने की सुविधा है। यह भारत का प्रमुख औद्योगिक नगर है। यहाँ सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्र, रासायनिक पदार्थ, काँच, कागज, मोटरें, साइकिल, इन्जीनियरिंग का सामान, वनस्पति तेल, दवाई, सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तुएँ, स्टील के बर्तन प्रमुख उद्योग हैं। भारत की अधिकांश फिल्में यहीं बनती हैं। अतः यह भारत का हॉलीवुड भी कहलाता है। अपनी उत्तम भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक पोताश्रय, आन्तरिक यातायात की सुविधा, समृद्ध पृष्ठभूमि और सस्ती जल विद्युत की उपलब्धि के कारण यह बहुत ही विकसित औद्योगिक नगर बन गया है।

बम्बई बड़ा रमणीक एवं दर्शनीय स्थान है। ऊँचे विशाल भवन, गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ, परिवहन और संचार के पूर्ण विकसित साधन, सांस्कृतिक एवं मनोरंजन के बहुमुखी स्रोत इसकी सुन्दरता में वृद्धि करते हैं। यहाँ के प्रमुख दर्शनीय स्थलों में मालाबार हिल, मेरीन ड्राइव, चोपाटी, महालक्ष्मी, भुलेश्वर एवं मुम्बा देवी का मन्दिर, फ्लोरा फाउण्टेन, विधानसभा भवन, इण्डिया गेट, ताजमहल होटल, जहाँगीर आर्ट गैलरी-प्रिंस एल्बर्ट म्यूजियम, तारापोरवाला मत्स्य-संग्रह केन्द्र, रानीबाग, राष्ट्रीय उपवन, कान्हेरी की गुफाएँ, आरे दूध बस्ती, सांताक्रूज हवाई अड्डा, जुहू

तट, विश्वविद्यालय, टकसाल, अपोलो बन्दर, अंधेरी के फिल्म स्टूडियो, काल्वादेवी, हॉर्नबी रोड और फोर्ट बाजार, पवाई और तासा झीलें, आदि हैं। ट्राम्बे का भाभा अणुशक्ति अनुसन्धान केन्द्र, तेलशोधक कारखाना, अनेक सूती कपड़े की मिलें, इण्डिया कॉटन एक्सचेंज, महालक्ष्मी रेस कोर्स, आदि अन्य महत्त्वपूर्ण स्थान हैं।

पूना (८,५३,२२६)—यह नगर पश्चिमी घाट की आड़ में बसा है और समुद्र के धरातल से १,८४६ फीट की ऊँचाई पर है। भोरघाट होते हुए जो मार्ग बम्बई गया है उसके सम्बन्ध में इसकी महत्त्वपूर्ण स्थिति है। यह एक बड़ी फौजी छावनी है। भारत के ऋतु विज्ञान सम्बन्धी विभाग का यह मुख्य स्थान है। बम्बई और पूना के बीच १२० मील लम्बी रेल की पटरी पर गाड़ियाँ बिजली द्वारा चलायी जाती हैं। यहाँ सूती, रेशमी कपड़े और कागज की मिलें हैं। यहाँ तांबा-पीतल के बर्तन बनाने और सलमे-सितारे, सोने-चाँदी तथा हाथी दाँत का काम भी बढ़िया होता है। अल्कोहल, इन्जीनियरिंग सामान, शक्कर, कम्प्यूटर, आदि बनाने के भी कारखाने हैं। फिल्में भी यहाँ बनायी जाती हैं। इस नगर का शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व अधिक है। मराठी लोगों का तो यह गढ़ ही है। यहाँ की गोखले संस्था, डेकन कॉलेज और विश्वविद्यालय प्रमुख शिक्षण संस्थाएँ हैं। प्रमुख दर्शनीय स्थलों में शिवाजी पार्क, पर्वती मन्दिर, बंध, रेस-कोर्स, ऋतु-विज्ञान कार्यालय, खिड़की की मशीनें बनाने का कारखाना और पिम्परी का दवाइयाँ बनाने का कारखाना है। इस नगर का ऐतिहासिक महत्त्व भी है क्योंकि यह शिवाजी की राजधानी रहा है।

नागपुर (८,६६,१४४)—मराठों की पुरानी राजधानी है। यह भारत के मध्यवर्ती भाग के एक उपजाऊ मैदान में बसा है। महाराष्ट्र में यह व्यापार का मुख्य केन्द्र समझा जाता है। इसका कारण यह है कि भारत के आर-पार जाने वाले दो मार्ग (एक उत्तर से दक्षिण की ओर दूसरा पूर्व से पश्चिम की ओर) यहाँ आकर मिलते हैं। इसके व्यावसायिक महत्त्व का कारण यह है कि यहाँ पर बहुत-सी सूती कपड़े की मिल, कपास ओटने और दबाने की फैक्ट्रियाँ तथा मिट्टी के बर्तन और कांच तैयार करने के कारखाने भी हैं। पास ही में मैंगनीज की खानें हैं। नागपुर के सन्तरे बड़े प्रसिद्ध हैं।

इसके निकट ही काम्पटी में सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता है तथा भारत में सबसे अधिक बीड़ियाँ बनायी जाती हैं। यहाँ के दर्शनीय स्थल विश्वविद्यालय, अजायबघर और नगर के भीतरी भाग हैं।

शोलापुर (३.९८,१२२) पूना के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। यहाँ सूती कपड़ा, शक्कर और कागज बनाने की मिलें हैं। यहाँ सेना की छावनी भी है। यहाँ शिवाजी विश्वविद्यालय है। यह रेलों का प्रमुख जंक्शन भी है।

गुजरात के प्रमुख नगर

गुजरात में १ लाख की जनसंख्या वाले ६ नगर हैं: अहमदाबाद, सूरत, बड़ौदा, राजकोट, भावनगर, जामनगर।

अहमदाबाद (१५,८८,२७८)—यह साबरमती नदी के किनारे स्थित है। यह खम्भात की खाड़ी से ८० किलोमीटर दूर है। यह नगर गुजरात के उपजाऊ मैदान के मध्यवर्ती भाग में बसा है। यह पश्चिमी रेलमार्ग का प्रमुख जंकशन है तथा राष्ट्रीय मार्ग और वायुमार्गों का अड्डा है। यह कपास उत्पादक क्षेत्रों के मध्य में स्थित होने के कारण दीर्घकाल से ही सूती वस्त्र उद्योग का प्रमुख केन्द्र है। रेशमी वस्त्र, चमड़े की वस्तुएँ, सीमेण्ट, औजार, वनस्पति घी, दियासलाई, कागज, मिट्टी के बर्तन और धातु का सामान तैयार करने के अनेक कारखाने हैं। कपास और तिलहन के व्यापार का यह बड़ा केन्द्र है। यहाँ गुजरात विश्वविद्यालय, साबरमती आश्रम तथा काकरिया झील और झूलती मीनारें देखने योग्य हैं।

बड़ौदा (४,६७,४२२)—गुजरात राज्य का प्रमुख नगर और औद्योगिक केन्द्र है। यह पश्चिमी रेलमार्ग का मुख्य नगर है जो बम्बई और अहमदाबाद से रेल द्वारा जुड़ा है। यहाँ सूती, रेशमी कपड़ों, काँच, दवाइयों, मिट्टी और पीतल के बर्तन तथा रासायनिक पदार्थों के कारखाने हैं। यह कपास की बड़ी मण्डी है। यहाँ सियाजीराव विश्वविद्यालय है।

सूरत (४,७१,८१५)—यह ताप्ती नदी पर स्थित है और खम्भात की खाड़ी के पूर्व बड़ौदा और बम्बई के बीच पश्चिम रेल मार्ग का मुख्य जंकशन है। यह एक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक नगर है, जहाँ सूती कपड़े, चमड़े, कागज, मशीनों के पुर्जे, सोने और जरी के फीते तथा लेस और साड़ियाँ, टोपियाँ, तेल, आदि तैयार करने की अनेक इकाइयाँ पायी जाती हैं।

मध्य प्रदेश के नगर

मध्य प्रदेश में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले ११ नगर हैं : इन्दौर, जबलपुर, ग्वालियर, भोपाल, उज्जैन, रायपुर, दुर्ग (भिलाई नगर), सागर, बिलासपुर, रतलाम और बुढ़ानपुर।

ग्वालियर (४,०६,७५५)—यह पश्चिमी रेलमार्ग पर आगरा और झाँसी के बीच स्थित है। यहाँ हवाई अड्डा भी है जहाँ से वायुमार्ग दिल्ली, भोपाल, आदि को जाते हैं। यहाँ सूती कपड़े की मिलें, दाल, तेल, मिट्टी के बर्तन तथा चमड़े और तम्बाकू के कारखाने हैं। भारत प्रसिद्ध मथाराम का बिस्कुट का कारखाना भी यहीं है। यहाँ जीवाजीराव विश्वविद्यालय है। यहाँ किला और इसके भीतर गूजरी महल, सास-बहू का मन्दिर, सूरज ताल, आदि देखने योग्य स्थान हैं। किला लगभग १½ मील लम्बा और ७० फुट ऊँचा है। लश्कर ग्वालियर से २ मील दक्षिण की ओर मुख्य व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र है।

इन्दौर (५,७२,६२२)—यह पश्चिमी रेल मार्ग पर रतलाम और खण्डवा के बीच प्रमुख जंकशन है। यहाँ भी हवाई अड्डा है जहाँ से वायु मार्ग भोपाल तथा दिल्ली को जाते हैं। यह नगर कपास, सोना और चाँदी के व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। व्यापारिक दृष्टि से इसे बम्बई का बच्चा माना जाता है। यहाँ अनेक सुन्दर इमारतें

हैं जिनमें होल्कर के महलों के अतिरिक्त जैनियों की नशियाँ प्रमुख हैं। यहाँ इन्दौर विश्वविद्यालय है।

अवन्ति या उज्जैन (२,०९,११८)—यह प्राचीन भारत का एक धार्मिक स्थान तथा विक्रमादित्य की राजधानी रहा है। यह शिप्रा नदी के किनारे बसा है। यहाँ कपास का व्यापार अधिक होता है। यहीं विक्रम विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है। यहाँ महाकालेश्वर और गोपाल मन्दिर दर्शनीय हैं। यहाँ सूती कपड़े की कई मिलें हैं।

जबलपुर (४,४१,३६८)—नर्मदा की ऊपरी घाटी में सतपुड़ा से उत्तर की ओर समुद्र तल से १,३४० फुट की ऊँचाई पर बसा है। इस नगर का सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण मार्गों से है। ये मार्ग नागपुर के मैदान, नर्मदा की घाटी और गंगा के मैदान तक गये हैं। यहाँ से ४ किलोमीटर पश्चिम की ओर नर्मदा के भारत प्रसिद्ध जलप्रपात हैं। जबलपुर में शस्त्रों का कारखाना, सूती वस्त्र की मिलें, रुई के पेंच, काँच और सीमेण्ट बनाने के कारखाने हैं। यहाँ चीनी मिट्टी के बर्तन भी अच्छे बनते हैं। यह शिक्षा का केन्द्र तथा मध्य प्रदेश का प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र है।

राजस्थान के प्रमुख नगर

राजस्थान में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले ७ नगर हैं : जयपुर, अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, उदयपुर और अलवर।

जयपुर (६,१३,१४४)—यह राजस्थान की राजधानी और उसका सबसे बड़ा नगर है जो अपनी सड़कों की बनावट, मकानों की सुन्दरता एवं बाह्य रूप के कारण भारत का पेरिस और गुलाबी नगर (Rose Pink City) कहलाता है। यह पश्चिमी रेलमार्ग पर अजमेर और बांदीकुई स्टेशनों के बीच प्रमुख रेलमार्गों का जंक्शन है। यहाँ से रेलमार्ग फुलेरा, सवाई माधोपुर, बीकानेर, दिल्ली और आगरा को जाता है। यहाँ का हवाई अड्डा सांगानेर में है जहाँ से वायुमार्ग दिल्ली, आगरा और बम्बई जाते हैं। राष्ट्रीय मार्ग न० ८ यहीं होकर निकलता है। अतः यह परिवहन के मार्गों का मिलन केन्द्र है। यह नगर प्रमुख औद्योगिक, व्यावसायिक नगर और शिक्षा का केन्द्र है। यहाँ सूती वस्त्र, बाल-बियरिंग, हड्डी का चूरा, तेल-साबुन, लोहे के अनेक प्रकार की वस्तुएँ, जल और बिजली के मीटर बनाने के कई कारखाने हैं। कपड़ों पर सुन्दर रंगाई और छपाई, पत्थर की खुदाई, हीरे की कटाई और जड़ाई, सोना, चाँदी और मोती के आभूषण बनाना, बर्तन बनाना, मूर्तिकला, चित्रकला, बर्तनों पर नक्काशी और मीनाकारी करना, आदि उद्योग बड़े विख्यात हैं। यह शिक्षा का भी बड़ा केन्द्र है। विश्वविद्यालय के अतिरिक्त इन्जीनियरिंग, डाक्टरी और कानून के महाविद्यालय, चित्रकला महाविद्यालय, आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दर्शनीय स्थलों में हवा महल, रामनिवास बाग, अजायबघर, जन्तर-मन्तर, गोविन्दजी का मन्दिर, त्रिपोलिया, आमेर का किला, लक्ष्मण डूंगरी, गल्ता और राजस्थान विश्वविद्यालय हैं। जयपुर एक प्रमुख व्यापारिक मण्डी भी है जहाँ अनाज, जीरा और धनिये का व्यापार होता है।

अजमेर (२,६२,४८०)—यह पश्चिमी रेलमार्ग का महत्त्वपूर्ण जंक्शन है जहाँ से रेलमार्ग अहमदाबाद, खण्डवा और दिल्ली-आगरा को जाते हैं। यह सड़कों का भी केन्द्र है। राष्ट्रीय मार्ग नं० ८ यहीं से होकर उदयपुर-अहमदाबाद को जाता है। यह नगर औद्योगिक नगर है जहाँ रेलवे का बड़ा वर्कशॉप है। यहाँ के मुख्य कुटीर उद्योग गोटा-किनारी तैयार करना, साबुन, तेल, आदि बनाना, चटाइयाँ और टोकरियाँ, कागज और कुट्टी के खिलौने बनाना, मिट्टी के बर्तन और कुँजे बनाना है। अब यहाँ विभिन्न प्रकार के यन्त्र बनाने का एक विशाल कारखाना भी स्थापित किया गया है। इस नगर का सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व भी है। यहीं आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्वर्गवास हुआ था। यहीं मुस्लिम सम्प्रदाय के ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह और जैनियों की नसियाँ हैं। यहीं से १२ किमी० दूर हिन्दुओं का मुख्य तीर्थस्थान पुष्कर है। यह शिक्षा का भी बड़ा केन्द्र है। यहाँ अनेक महाविद्यालय, शिक्षण संस्थाएँ, पोलीटेकनिक, मेडीकल कालेज, आदि हैं। यहाँ ढाई दिन का झोंपड़ा, तारागढ़ का किला, अजायबघर, आनासागर झील, सुभाष बाग, जैनियों की नसियाँ, दरगाह, वैदिक संस्थान, दर्शनीय स्थल हैं।

जोधपुर (३,१८,८६४)—यह उत्तरी और पश्चिमी रेल मार्गों का जंक्शन है। यहाँ से रेल मार्ग जैसलमेर, फुलेरा, बीकानेर, मारवाड़ जंक्शन और काडला जाते हैं। वायुमार्ग द्वारा यह दिल्ली और जयपुर से जुड़ा है।

यह प्रसिद्ध व्यापारिक मण्डी है जहाँ अनाज, मूंग, मोठ, चना-बाजरा, आदि का व्यापार होता है। यहाँ के कुटीर उद्योगों में, कपड़े पर छपाई और बँधाई करना, गोटा किनारी बनाने, बादले, छतरियाँ, साबुन, मिट्टी के बर्तन, आदि बनाना मुख्य है। यहाँ रेलवे वर्कशाप भी है। यह शिक्षा का भी मुख्य केन्द्र है। यहीं जोधपुर विश्वविद्यालय, इन्जीनियरिंग एवं मेडीकल कालेज, राजस्थान का उच्च न्यायालय स्थित है। प्रसिद्ध दर्शनीय स्थलों में महाराजा के महल, किला, मण्डोर, बालसमन्द झील, छीतर महल, आदि हैं।

कोटा (२,१३,००४)—यह पूर्वी राजस्थान का प्रमुख औद्योगिक नगर है जो पश्चिमी रेल मार्ग पर दिल्ली से बम्बई जाने वाले मार्ग पर स्थित है। यह रेल मार्ग द्वारा सवाई माधोपुर, बीना और उज्जैन से जुड़ा है। यह राजस्थान का सबसे प्रमुख औद्योगिक नगर है। इसके पृष्ठदेश में कृषि एवं वन उपजों की अधिकता तथा चम्बल परियोजना की सस्ती विद्युत शक्ति मिल जाने के कारण इसमें अनेक उद्योगों की स्थापना हो चुकी है। सूती वस्त्र, नाइलन, रासायनिक पदार्थ, कागज, शक्कर, मशीनों के उपकरण, आदि प्रमुख हैं।

बीकानेर (१,८८,५१८)—यह पश्चिमी राजस्थान का प्रमुख ऐतिहासिक नगर है जो उत्तरी रेल मार्ग का जंक्शन है। यहाँ से रेल मार्ग जोधपुर, दिल्ली, हनुमानगढ़ जाते हैं। यहाँ ऊन का धागा बनाने के तीन मील हैं। कुटीर उद्योग के रूप में ऊनी कम्बल और लोइयाँ बनाना, सूती कपड़े बनाना, पापड़ तैयार करना

मुख्य है। यहाँ रेलवे का बड़ा दफ्तर, मेडीकल कालेज, पशु विज्ञान कालेज, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला, म्यूनिसिपल उद्यान, लक्ष्मीनारायजी का मन्दिर, आदि दर्शनीय हैं। इस नगर में सेठों की बड़ी-बड़ी हवेलियाँ विशेष रूप से आकर्षण की वस्तु हैं।

उदयपुर (१,६२,८३४)—यह अरावली पर्वतों के बीच में पिछोला झील के पूर्वी छोर पर द० राजस्थान में बसा है। *दिल्ली से अहमदाबाद जाने वाला राष्ट्रीय मार्ग यहीं से होकर निकलता है।* वायुमार्ग द्वारा यह दिल्ली और बम्बई से जुड़ा है। यह पश्चिमी रेलमार्ग का प्रमुख स्टेशन है जहाँ से रेलमार्ग चित्तौड़ एवं अहमदाबाद जाते हैं। यह औद्योगिक-व्यावसायिक नगर है, जहाँ लकड़ी के खिलौने, सजावट की वस्तुएँ, तेल, साबुन, दवाइयाँ, कपड़े पर छपाई और बंधाई, सोने-चाँदी के आभूषण, उत्तम कसीदाकारी की जूतियाँ, बर्तन, आदि बनाने का कार्य किया जाता है। सूती वस्त्र उद्योग, डिस्टीलरी, घीया पत्थर का पाउडर बनाने, कीटाणुनाशक औषधियाँ तैयार करने, चिकनी मिट्टी के बर्तन बनाने और सीमेन्ट तथा लोहे की छड़ें बनाने के उद्योग प्रमुख हैं। भारत का सबसे बड़ा जस्ता तैयार करने वाला कारखाना भी यहीं है। यह राजस्थान का ही नहीं भारत का भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक नगर है। यहाँ के दर्शनीय स्थलों में महाराणा के महल, पिछोला झील में स्थित जग मन्दिर और जग निवास महल, नेहरू उद्यान, मोती मगरी, नेहरू बाल उद्यान, गुलाब बाग, सज्जनगढ़, लक्ष्मी विलास, सहेलियों की बाड़ी, आदि हैं। अपनी प्राकृतिक स्थिति और झीलों के सौन्दर्य के कारण यह भारत का बहुत ही रमणीक स्थान है। यहाँ प्रतिवर्ष सहस्रों विदेशी नागरिक आते हैं। यह संस्थाओं का नगर है जहाँ उदयपुर विश्वविद्यालय, रवीन्द्रनाथ टैगोर मेडीकल कालेज, मालवीय आयुर्वेदिक कालेज, साहित्य एकाडमी, लोक कला मण्डल, रेलवे ट्रेनिंग संस्था, विद्याभवन, राजस्थान महिला विद्यालय, महिला मण्डल और राजस्थान विद्यापीठ से सम्बन्धित अनेक शिक्षण संस्थाएँ हैं।

पंजाब के प्रमुख नगर

पंजाब में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले ४ नगर हैं : अमृतसर, जलन्धर लुधियाना और चण्डीगढ़।

अमृतसर (४,३२,६६३)—यह रावी और व्यास नदियों के बीच उपजाऊ घाटी में बसा है। यह उत्तरी रेलमार्ग का प्रमुख जंक्शन है। हवाई अड्डे से काबुल दिल्ली और पठानकोट वायुमार्ग जाते हैं। राष्ट्रीय मार्ग भी यहाँ होकर निकलता है। यह गल्ले की सबसे बड़ा मण्डी है और दरी-गलीचे और शाल-दुशालों के लिए प्रसिद्ध है। राष्ट्रपति भवन, गवर्नरों की कोठियाँ तथा इंगलैण्ड और अमरीका के बड़े-बड़े भवनों को सजाने का श्रेय यहाँ के कालीनों को है। यहाँ के अन्य उल्लेखनीय उद्योग, ऊनी-सूती वस्त्रों का बनाना, रासायनिक पदार्थ, हाथी-दाँत की वस्तुएँ, जेवरात, होजियरी और चमड़े का काम है। आजकल सीमा प्रान्तीय नगर हो जाने

से इसका महत्व और भी बढ़ गया है। यहाँ सिक्खों का स्वर्ण मन्दिर, दरबार साहिब और जलियाँवाला बाग दर्शनीय हैं।

लुधियाना (४,०१,१२४)—यह नगर होजियरी (बनियान, मोजे के काम) के अतिरिक्त सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े के लिए प्रसिद्ध है। अधिकतर पलटन के सिपाही लुधियाना के साफों का प्रयोग करते हैं। यहाँ से लाहौर, दिल्ली और फीरोजपुर को पक्की सड़कें और रेल मार्ग गये हैं।

जलन्धर (२,६६,१०३)—यह पंजाब के उत्तरी-पश्चिमी भाग में उत्तरी रेल मार्ग का प्रमुख जंक्शन है। यहाँ से रेलमार्ग पठानकोट, फिरोजपुर और अमृतसर जाते हैं। यह एक प्रमुख औद्योगिक नगर भी है जहाँ सिलाई की मशीनें, हाथ करघे और उनके पुर्जे, खेल का सामान, मिट्टी के बर्तन, आदि बनाये जाते हैं।

चण्डीगढ़ (२,१८,८०७)—यह शिवालिक पर्वत की तलहटी में अम्बाला-कालका मार्ग पर अत्यन्त आधुनिक ढंग से निर्मित नगर है। यहाँ सचिवालय, विश्वविद्यालय तथा नयी बस्तियाँ देखने योग्य हैं। नगर में रासायनिक पदार्थ, सिलाई की मशीनें, मशीन यन्त्र, पुर्जे, आटा पीसने, आदि के कई कारखाने हैं।

हरियाणा, जम्मू-कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश के नगर

अम्बाला (१,०२,५१७)—यह उत्तरी रेल मार्ग का मुख्य जंक्शन और हरियाणा का प्रसिद्ध औद्योगिक नगर है। यहाँ वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में व्यवहृत काँच का सामान, दरियाँ, दाक्कर, सूती ऊनी कपड़े, शराब बनाने के कारखाने हैं। यह अनाज की प्रमुख मण्डी भी है।

श्रीनगर (४,०३,६१२)—यह कश्मीर की घाटी में झेलम नदी पर स्थित है और समुद्रतल से १,६०० मीटर ऊँचा है। यह जम्मू-कश्मीर की राजधानी है। यह अपनी प्राकृतिक शोभा और उत्तम जलवायु के लिए भारत में ही नहीं विश्व भर में विख्यात है। डल झील इसकी शोभा में चार चाँद लगा देती है। इसमें शिकारे (नावों में मकान बने होते हैं) पड़े रहते हैं जिनमें सैलानी ठहरते हैं। यहाँ तथा इसके आस-पास के दर्शनीय स्थान हैं—शालीमार बाग, निशात बाग, सिलवर आईलैण्ड, गोल्डन आइलैण्ड, हजरत बल, पहलगाँव, सोनमर्ग, गुलमर्ग, वेरीनाग, चश्माशाही, आदि। श्रीनगर से राष्ट्रीय मार्ग भी जाता है। इसका सम्बन्ध अन्य स्थानों के साथ सड़क द्वारा ही है। पंजाब अथवा जम्मू से यहाँ आने के लिए जवाहर-सुरंग द्वारा आना होता है जो बनिहाल दर्रे में बनायी गयी है। यहाँ एक हवाई अड्डा भी है जहाँ से लेह तथा जम्मू को वायु-मार्ग जाते हैं। यहाँ घरेलू उद्योग अधिक पनपे हैं, जैसे शाल-दुशाले, बालदार खाल के कोट, दस्ताने, टोपी आदि वस्तुएँ बनाने, लकड़ी पर नक्काशी का काम करने और रेशमी वस्त्र बुनने का उद्योग मुख्य है। श्रीनगर के आस-पास के क्षेत्र में मेवे तथा फल खूब पैदा होते हैं।

जम्मू (१,५५,२४६)—यह नगर जम्मू-कश्मीर राज्य की दक्षिणी सीमा के निकट चिनाब नदी की सहायक नदी रावी के तट पर पठानकोट-श्रीनगर रोड पर बसा

है। कश्मीर घाटी यहाँ से शुरू होती है। यहाँ रेशमी वस्त्र मुख्य रूप से तैयार किया जाता है। राष्ट्रीय मार्ग इस नगर से शुरू होता हुआ उत्तर में श्रीनगर तथा दक्षिण में पठानकोट की ओर चला जाता है। यहाँ एक हवाई अड्डा भी है। यहाँ से श्रीनगर, पठानकोट तथा दिल्ली को सीधे वायुमार्ग जाते हैं।

शिमला—यह भारतवर्ष का सबसे महत्त्वपूर्ण पर्वतीय स्थान होने के अतिरिक्त आजकल तीनों सरकारों की (केन्द्रीय सरकार, पंजाब सरकार और हिमाचल प्रदेश की सरकार) ग्रीष्म ऋतु की राजधानी है। यहाँ से तिब्बत और चीन से पुनर्निर्यात होता है। यातायात के साधनों द्वारा (सड़क और रेल) से शिमला पहुँचा जा सकता है। अपने सुन्दर और मनोहारी दृश्यों के कारण यह सैलानियों के बड़े आकर्षण का केन्द्र है।

उत्तर प्रदेश के मुख्य नगर

उत्तर प्रदेश में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले २२ नगर हैं: कानपुर, लखनऊ, आगरा, वाराणसी, इलाहाबाद, मेरठ, बरेली, मुरादाबाद, सहारनपुर, अलीगढ़, गोरखपुर, झाँसी, देहरादून, रामपुर, मथुरा, शाहजहाँपुर, फिरोजाबाद, गाजियाबाद, मुजफ्फरनगर, फर्रुखाबाद, फतेहगढ़, मिरजापुर-विन्ध्याचल।

इलाहाबाद (५,१३,९९७)—यह नगर विश्व के पुराने नगरों में से है। यह गंगा और यमुना नदी के संगम पर स्थित है। इसके आसपास का क्षेत्र उपजाऊ है और जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। प्राचीनकाल के विद्वान हिन्दुओं का यह प्रिय स्थान था और अब भी इसकी गणना धार्मिक नगरों में की जाती है। इसका प्राचीन नाम प्रयाग है। अकबर बादशाह ने इसका नाम इलाहाबाद रखा जिसका अर्थ है 'ईश्वर का निवास-स्थान।' इसकी प्राकृतिक स्थिति ऐसी है कि यह हमेशा महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र रहा है और राजनीतिक विषयों में यह केन्द्र रहा है। यह रेलमार्गों का भी एक बड़ा केन्द्र है। यहाँ पर प्रति वर्ष माघ महीने में संगम पर माघ-मेला और बारहवें वर्ष में कुम्भ मेला लगता है जिसमें लाखों हिन्दू गंगा में स्नान करने के लिए आते हैं। यह एक व्यापारिक केन्द्र भी है जहाँ निकटवर्ती भागों से तम्बाकू, अलसी, ज्वार, बाजरा इकट्ठे किये जाते हैं। यहाँ तेल निकालने, आटा पीसने और काँच बनाने के कारखाने भी हैं। यहाँ भारत का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय भी है।

लखनऊ (७,५०,५१२)—उद्यानों का यह नगर (*City of Gardens*) गोमती नदी के दाहिने किनारे पर है। यह नगर राज्य की राजधानी तथा इसके सबसे बड़े नगरों में है। इस नगर का निर्माण अवध के नवाबों ने किया था और इसलिए यहाँ मस्जिदें, मकबरे तथा महल, आदि बहुत हैं। चौथे नवाब के शासनकाल में यह नगर बड़ा सम्पन्न बना और यहाँ की अधिकतर शानदार इमारतें इसी नवाब के शासनकाल में बनायी गयीं। यहाँ पर एक विश्वविद्यालय और एक अच्छा अजायबघर भी है। धारा-सभाएँ भी यहाँ पर होती हैं। यहीं पर हाईकोर्ट भी है। यह एक

बड़ा रेलवे जंकशन है। यहाँ पर कागज की मिलें भी हैं। हाथी दाँत, लकड़ी पर नक्काशी, गोटा-किनारी, सोने-चाँदी का काम, मिट्टी के बर्तन, जरी और चिकन का काम और इत्र बनाने का काम यहाँ अधिक होता है।

कानपुर (१२,७३,०१६)—यह नगर गंगा नदी के दाहिने किनारे पर बसा है। यह उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा नगर है। इसका महत्त्व इसके विभिन्न बड़े-बड़े कारखानों के कारण है। कानपुर में जो रेल का पुल है, यहाँ पर सभी दिशाओं से छः रेलमार्ग आकर मिलते हैं। यह नगर गंगा और यमुना के दोआब के मध्यवर्ती भागों में है। यह भारत का मुख्य संग्रहण और वितरण केन्द्र है जहाँ निकटवर्ती क्षेत्रों से गुड़, गेहूँ, कपास, आदि इकट्ठा किया जाता है। यहाँ सूती कपड़े और चीनी की कई मिलें हैं। चमड़े के सामान बनाने की फैक्ट्रियाँ और रासायनिक पदार्थों के उत्पादन के भी कारखाने हैं। वनस्पति घी और 'निरोध' तथा हवाई जहाज के पुर्जे बनाने का कारखाना भी यहीं है। यहाँ साबुन, प्लास्टिक की वस्तुएँ, मोजे-बनियान, आदि बनाने के कई कारखाने हैं।

आगरा (५,६४,८५८)—यह यमुना नदी के दाहिने किनारे पर बसा है। इस नगर का निर्माण सन् १५६६ में अकबर ने किया और एक किला भी बनवाया। मुगल सम्राटों द्वारा बनायी गयी इमारतों (ताजमहल, मोती मस्जिद, जामा मस्जिद, सिकन्दरा, एतमाउद्दौला, आदि) के लिए यह नगर प्रसिद्ध है। वास्तव में यह एक ऐतिहासिक और व्यापारिक नगर है। रेलमार्गों से सम्बन्धित होने के कारण इसका महत्त्व बढ़ गया है। यहाँ तेल की मिलें, सूती मिलें, हड्डियों के सामान बनाने वाली मिलें तथा चमड़े के सामान बनाने की फैक्ट्रियाँ हैं। घरेलू उद्योगों में उल्लेखनीय कम्बल बनाना, कालीन और दरियाँ बुनना तथा काँसे के बर्तन बनाना है। यहाँ संगमरमर पर खुदाई का काम तथा सोने चाँदी की तारकशी का काम बहुत किया जाता है। यहाँ भारत का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय और दयालबाग राधास्वामी संस्था भी है।

वाराणसी (काशी) (५,८२,६१५)—यह नगर गंगा नदी के बायें किनारे पर बसा हुआ है और इलाहाबाद की भाँति यह भी बहुत प्राचीन नगर है और आर्यों की सभ्यता का केन्द्र है। गंगा को हिन्दू यहाँ अधिक महत्त्व देते हैं क्योंकि इसका प्रवाह उत्तर की ओर से है जिधर भगवान शिव का पवित्र आवास कैलाश है। हिन्दू यात्रियों के लिए यह धार्मिक केन्द्र है। यहाँ पर हिन्दू विश्वविद्यालय है। यह रेल-मार्गों का एक बड़ा केन्द्र है और रेशमी कपड़ों और जरी के काम तथा काँसे के बर्तनों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ लकड़ी के खिलौने, हाथी-दाँत का सामान, रेशम पर जरी का काम, लाख की चूड़ियाँ, जर्दा-तम्बाकू तथा इत्र अधिक बनाया जाता है। वाराणसी से लगभग ८ किलोमीटर की दूरी पर सारनाथ के ध्वंसावशेष हैं। यहाँ पर ईसा के पूर्व छठी शताब्दी में गौतम बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तन किया। उस स्थान पर एक स्तूप भी है।

बरेली (३,२६,१२७)—यह नगर रामगंगा के किनारे पर बसा है और मुगल सम्राटों के समय में फौजी नगर था। अब यहाँ पर एक फौजी छावनी है। लकड़ी के फर्नीचर बनाने के लिए यह प्रसिद्ध नगर है। इसके निकट दियासलाई, फर्नीचर, लकड़ी से तारपीन का तेल निकालने के कारखाने हैं। यहाँ सूती कपड़े की मिलें तथा गधा बिरोजा तैयार करने के कारखाने भी हैं।

मेरठ (३,६७,८२१)—यह कृषि प्रधान केन्द्र है और गंगा तथा यमुना दोआब के मध्यवर्ती भाग में बसा है। यहाँ राज्य की मुख्य फौजी छावनी है। यह रेलमार्गों का बड़ा केन्द्र है। कृषिगत वस्तुओं के व्यापार का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ गेहूँ, कपास, दाल, तिलहन और गुड़ का व्यापार होता है। यहाँ लोहे की वस्तुएँ (कैंची, चाकू, छुरियाँ, सरौते, आदि) अधिक बनायी जाती हैं। यह उत्तर प्रदेश की गुड़ की सबसे बड़ी मण्डी है। यहाँ शक्कर की कई मिलें हैं।

मुरादाबाद (२,७२,६५२)—यह नगर रामगंगा नदी के किनारे पर बसा है और कृषि वस्तुओं के व्यापार का केन्द्र है। कलई किये गये पीतल के बर्तनों के लिए यह प्रसिद्ध है। यहाँ कुछ कपड़े की मिलें भी हैं।

मिर्जापुर (१,०५,६२०)—गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पर उपजाऊ भूमि की एक पट्टी में बसा हुआ है। यह व्यापार का एक बड़ा केन्द्र है विशेषकर कपास और लाख का। यह अच्छे कालीनों, कम्बलों तथा रेशमी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ ताँबे, काँसे तथा अन्य धातु के बरतन भी बनाये जाते हैं।

अलीगढ़ (२,५४,००८)—विशेषकर मुस्लिम विश्वविद्यालय के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ ताले, कैंचियाँ, छुरियाँ, सरौतो, आदि बनाने की कई फैक्ट्रियाँ हैं। यहाँ एक बड़ा डेयरी फार्म भी है जहाँ मक्खन और पनीर बनाया जाता है। घोड़े पालने के लिए भी यह नगर प्रसिद्ध है।

गोरखपुर (२,३०,७०१)—राप्ती नदी के बायें किनारे पर स्थित मुख्य रेलवे स्टेशन है। यह लकड़ी और शक्कर के व्यापार की प्रमुख मण्डी है। यहाँ क्रेप और धारीदार तौलिये, सूत और ऊन मिले हुए घुस्से तथा शक्कर बहुत बनायी जाती है। यहाँ से भारत का प्रमुख धार्मिक मासिक पत्र कल्याण प्रकाशित होता है।

सहारनपुर (२,२५,६६८)—मेरठ से लगभग १२२ किलोमीटर उत्तर की ओर स्थित प्रसिद्ध रेलवे स्टेशन है। यहाँ से निकटवर्ती स्थानों को सड़कें गयी हैं। यहाँ दफ्ती और मोटा कागज, कपड़ा बुनने, चमड़े का सामान बनाने और लकड़ी पर नक्काशी करने का काम अधिक किया जाता है।

फर्रुखाबाद गंगा के बायें किनारे पर स्थित प्राचीन प्रसिद्ध नगर है। यह रेलों का जंक्शन है। यहाँ पीतल के बर्तनों के कारखाने, शोरा भण्डार और तेल की मिलें हैं। यहाँ ताँबे-पीतल के बर्तन, पर्दे, साड़ी-छींटों, आदि की छपाई अच्छी होती है। यह आलू, तम्बाकू और खरबूजों के लिए प्रसिद्ध है।

फिरोजाबाद—आगरा और इटावा के बीच प्रमुख रेल का स्टेशन है। यहाँ भारत में सबसे अधिक कांच की चूड़ियाँ, सजावट की कांच की वस्तुएं, वैज्ञानिक उपकरण, वस्त्र, आदि बनाये जाते हैं।

हरद्वार—गंगा के किनारे भारत का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यह 'दून घाटी' का प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र है क्योंकि यहाँ रेलमार्ग और स्थलमार्ग मिलते हैं। यहाँ चाय, आलू और पत्थर का व्यापार अधिक होता है। यहाँ गंगा के किनारे हर की पैड़ी नामक स्थान प्रसिद्ध है जहाँ कुम्भ के समय लाखों नर-नारी स्नानार्थ आते हैं।

मथुरा (१,२१,८१३)—यमुना नदी के बायें किनारे पर स्थित मुख्य रेलवे जंकशन है। यह हिन्दुओं का प्रमुख तीर्थ स्थान है। यहाँ पीतल की मूर्तियाँ, शृंगार की वस्तुएँ, हाथ का कागज, पत्थर की वस्तुएँ और पेड़े बहुत बनाये जाते हैं। श्री कृष्ण का जन्म स्थान और द्वारकाधीश का मन्दिर एवं विश्राम घाट प्रमुख दर्शनीय स्थल है।

गाजीपुर गंगा नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित है। यह रेलवे का जंकशन है। यहाँ गुलाबजल, शक्कर तथा अफीम बहुत बनायी जाती है।

हापुड़ मेरठ से लगभग २० मील दूर रेलवे जंकशन है। यह मेरठ जिले की प्रसिद्ध व्यापारिक मण्डी है। यहाँ तिलहन, गुड़, गल्ले और कपास का व्यापार अधिक होता है।

बिहार के प्रमुख नगर

बिहार में एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले ६ नगर हैं—पटना, जमशेदपुर, धनबाद, गया, मुंगेर, भागलपुर, राँची, मुजफ्फरनगर, बोकारो, इस्पात नगर, बिहार और दरभंगा।

पटना (४,७४,३४६)—यह बिहार की राजधानी है जो गंगा नदी के दाहिने तट पर स्थित है। प्राचीनकाल का पाटलिपुत्र यही है। यह गंगा के उपजाऊ मैदान में स्थित होने से रेलमार्गों और सड़कों का केन्द्र है। राष्ट्रीय मार्ग यहीं से होकर निकलता है तथा इसके हवाई अड्डे से काठमाडू, दिल्ली, कलकत्ता की वायुमार्ग जाते हैं। यह एक प्रमुख वितरण एवं संग्रहण केन्द्र है। यहाँ शक्कर, बिजली के बल्ब, साइकिलें, मक्खन, सिगरेट, आदि बनाने के कारखाने हैं। यहाँ का विश्वविद्यालय बड़ा प्रसिद्ध है।

जमशेदपुर (३,५५,७८३) भारत का प्रमुख लौह-इस्पात उद्योग केन्द्र है जो दक्षिणी-पूर्वी रेलमार्ग पर स्थित है। यहाँ लोहे व इस्पात की विभिन्न प्रकार की मशीनें, डिब्बे, इन्जन, रेल की पटरियाँ, तार, छड़ें, आदि बनायी जाती हैं।

गया (१,७६,८२६)—यह फल्गू नदी पर स्थित और पटना से ६२ किलोमीटर दक्षिण में है। यहाँ विष्णु पद का मन्दिर है जो हिन्दुओं का तीर्थस्थान है। बहुत से हिन्दू यहाँ श्राद्ध करने के लिए आते हैं। पितृपक्ष में यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। गया में ही महात्मा बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था अतएव बौद्धों के लिए भी इस नगर का महत्व है। मगध विश्वविद्यालय यहीं है। रेल से भले प्रकार

सम्बन्धित होने के कारण खेती से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का यह व्यापारिक केन्द्र है। यहां पर सूती वस्त्र और जूट की मिलें भी हैं। यह नगर पत्थर तथा पीतल के बर्तन, दरियां और कम्बल बनाने के लिए प्रसिद्ध है।

भागलपुर (१,७२,७००)—यह गंगा के दाहिने किनारे पर स्थित है और भागलपुर जिले का प्रमुख नगर है। यह प्रसिद्ध व्यापार केन्द्र है। यहां अनेक तेल, रेशमी वस्त्र और आटे की मिलें हैं। इसके पास ही चम्पा नगर है जो टसर और चपटा कपड़ों के लिए प्रसिद्ध है। यहां भी एक विश्वविद्यालय है।

मुंगेर (१,०२,४६२)—जहाँ पर खड़गनगर के पहाड़ समाप्त होते हैं वहीं गंगा के दाहिने किनारे पर स्थित है। इन पहाड़ियों के कारण गंगा का बहाव दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पूर्व को हो जाता है। यहां गंगा नदी पहाड़ी के उत्तर होकर मुड़ती है। यवन शासनकाल में यह अपनी स्थिति के कारण ही एक महत्त्वपूर्ण स्थान था। यहां पर तम्बाकू तैयार करने की फैक्ट्री है जिसकी गणना विश्व की सबसे बड़ी तम्बाकू कम्पनियों में की जाती है। नगर में पिस्तौल, बन्दूक और तलवारें बनाई जाती हैं। सन् १९३४ में एक भयानक भूकम्प हुआ था जिसके कारण शहर को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी।

मुजफ्फरपुर (१,१४,८५९)—यह बूढ़ी गण्डक के किनारे पर स्थित है और मुजफ्फरपुर जिले और तिरहुत का प्रमुख नगर है। इसके आस-पास की भूमि बहुत उपजाऊ है। यह रेलों का प्रमुख केन्द्र है। यह नगर आम और लीची के लिए प्रसिद्ध है।

रांची (१,४०,२५३)—बिहार के दक्षिणी भाग में पहाड़ी पर बसा है। जलवायु स्वास्थ्यवर्धक होने के कारण यह भ्रमणस्थल भी है। बिहार की ग्रीष्मकालीन राजधानी यहीं है। यहां एक विश्वविद्यालय भी है। यहीं आदिवासियों पर अनुसन्धान करने वाली संस्था भी है। रांची के निकट हटिया में भारी इंजीनियरिंग उद्योग स्थापित है जहाँ बड़ी-बड़ी मशीनें तैयार की जाती हैं।

पश्चिमी बंगाल के नगर

पश्चिमी बंगाल में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगर ये हैं: कलकत्ता, दुर्गापुर, खड़गपुर, आसनसोल और बर्दवान।

कलकत्ता (३१,४१,१८०)—यह हुगली नदी पर बंगाल की खाड़ी से १२४ किलोमीटर ऊपर की ओर बंगाल की राजधानी है। भारत का यह सबसे बड़ा प्रसिद्ध बन्दरगाह है। किसी समय यह महलों का नगर (City of Palaces) कहलाता था क्योंकि इसकी इमारतें बहुत सुन्दर बनी हुई हैं। कलकत्ता भारत की शिक्षण संस्थाओं में सर्वश्रेष्ठ है। इसकी उन्नति का मुख्य कारण इसका व्यापार है जो इसकी प्राकृतिक स्थिति के कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। पूर्वी किनारे पर यह एक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक बन्दरगाह है जिसके आस-पास का पृष्ठ-देश बहुत ही धनी तथा घना बसा हुआ है। पहले यातायात का साधन जल था किन्तु अब सड़कों और रेलों द्वारा अच्छी

तरह सम्बन्धित हो गया है। फलतः यह एक प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र बन गया है। कलकत्ता की समृद्धि का प्रमुख कारण जूट का उद्योग है। रानीगंज के कोयले की खानों की निकटता, नदियों द्वारा यातायात के सस्ते साधन और निकट पाये जाने वाले कच्चे मालों ने इसे जूट के कारखानों का प्रमुख नगर बनाने में बड़ी सहायता दी है। इस शहर में तथा इसके आसपास बहुत-सी कपड़े की मिलें, दवाइयों के कारखाने, कागज की मिलें, साबुन के कारखाने, कांच और इन्जीनियरिंग के कारखाने, बर्तन बनाने के कारखाने, चमड़े, कपड़े, ग्रामोफोन, दियासलाई बिस्कुट, आदि चीजों के कारखाने खुल गये हैं।

कलकत्ता भौगोलिक स्थिति का एक अच्छा उदाहरण है। इसकी उन्नति की प्रमुख सुविधाएँ अब नहीं हैं। आजकल के सामुद्रिक जहाज कलकत्ता तक नहीं पहुंच सकते। सामान्य आकार के जहाज पहुंचने के लिए भी इसके बन्दरगाह को गहरा और मिट्टी जमने से साफ रखना पड़ता है। लेकिन धन और इन्जीनियरिंग कुशलता से मनुष्य कलकत्ता की उन्नति की रक्षा इन प्राकृतिक रुकावटों के विरुद्ध भी सफलता-पूर्वक कर रहा है।

रानीगंज—यद्यपि यह बहुत छोटा नगर है लेकिन कोयले की खानों के कारण बहुत प्रसिद्ध है। सस्ता कोयला होने के कारण यहाँ बहुत से कारखाने खुल गये हैं। जैसे मिट्टी के बर्तन, ईंट, कागज, आदि के कारखाने। इनके लिए कच्चा माल आस-पास के जिलों में मिलता है।

हावड़ा (७,४०,६२२)—इसकी स्थिति हुगली नदी के दायें किनारे पर कलकत्ता के सामने है। इसे एक अति विशाल लोहे के पुल द्वारा कलकत्ता से जोड़ दिया गया है। यह पुल इतना चौड़ा है कि इस पर ट्राम, बसें, घोड़ागाड़ियाँ, मोटरें, ठेले तथा पैदल आने-जाने वालों के लिए अलग-अलग कई चौड़ी सड़कें बनी हैं। बड़े-बड़े जहाजों के आने-जाने के समय यह पुल बीच में तोड़कर आधा-आधा दोनों तरफ खड़ा कर दिया जाता है। यह पुल इन्जीनियरिंग का अद्भुत नमूना है। हावड़ा का स्टेशन पूर्वी रेलवे का अन्तिम स्टेशन तथा रेलों का बड़ा जकशन है। यहाँ से बम्बई, मद्रास, दिल्ली, आदि को रेल मार्ग जाते हैं। यह नगर तथा बन्दरगाह व्यापार और उद्योग का एक विख्यात केन्द्र है। हुगली नदी के किनारे बड़ी-बड़ी मिलें हैं जिनमें कपड़ा, जूट का सामान तथा अनेक प्रकार की वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। हुगली के किनारे पर ही टीटागढ़ में कागज की एक बहुत बड़ी मिल तथा जूट मिलें हैं।

दार्जिलिंग—यह प्रसिद्ध पहाड़ी नगर समुद्रतल से ७,४३२ फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। इस नगर तक माल तथा यात्रियों को पहुँचाने के लिए एक छोटी-रेलमार्ग बनाया गया है। यह नगर पश्चिमी बंगाल राज्य की ग्रीष्मकालीन राज-धानी है। यहाँ प्रकृति ने अपनी अद्भुत रूपराशि चारों ओर छिटका रखी है जिसे देखकर दर्शक चित्रलिखित से खड़े रह जाते हैं। यहाँ से हिमालय के हिमाच्छादित

उत्तग तंग शिखरों की जो शोभा दिखायी पड़ती है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ के मनोरम जलप्रपातों, बर्फीली चोटियों, हरियाली एवं रंग-बिरंगे पुष्पों से ढँके पहाड़ी ढलान तथा सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखने के लिए देशी तथा विदेशी सैलानियों का ग्रीष्म ऋतु में यह नगर चहल-पहल का केन्द्र बन जाता है। विश्व के सर्वोच्च पर्वत शिखर एवरेस्ट पर सबसे पहले चढ़ने वाले नेपाली तेनसिंह द्वारा सचालित पर्वतारोहण की शिक्षा देने वाली सरकारी संस्था की स्थापना ने इस नगर को और भी अधिक प्रसिद्ध कर दिया है। इसके समीप ही पहाड़ी ढलानों पर चाय के विशाल उद्यान लगे हुए हैं जिनकी चाय (Darjeeling Tea) दूर-दूर तक प्रसिद्ध है।

आसनसोल—यह नगर कोयले की खानों के समीप है। यहाँ एक बहुत बड़ा रेलवे वर्कशाप है।

मुर्शिदाबाद—यहाँ रेशम बुनने के अनेकों कारखाने हैं जिनमें रेशमी साड़ियाँ, दुपट्टे तैयार किये जाते हैं। यहाँ की छपी हुई रेशमी साड़ियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

उड़ीसा के प्रमुख नगर

उड़ीसा के १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले ४ नगर ये हैं: कटक, रूरकेला, बरहाम पुर और भुवनेश्वर।

कटक (१,९४,०३६)—यह नगर कलकत्ता से २५ मील की दूरी पर महानदी के डेल्टे के मुहाने पर बसा हुआ है। यहाँ पर दक्षिणी-पूर्वी रेलमार्ग का पुल महानदी पर बना हुआ है। यह नगर राज्य की राजधानी है और महानदी की नहरों का केन्द्र है। चूड़ियाँ, जूते, खिलौने और कंघे यहाँ की स्थानीय औद्योगिक वस्तुएँ हैं। कटक में सोने और चाँदी के बेलबूटों का काम अच्छा होता है। उड़ीसा तटीय नहर कटक को चन्दावली से मिलाती है। यह नहर मध्य प्रदेश से लकड़ी लाकर एकत्रित करती है जो यहाँ से कलकत्ता भेजी जाती है। महानदी योजना पूर्ण होने के पश्चात् कटक एक बड़ा औद्योगिक शहर बन गया है।

पुरी—यह एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थान है। यह राज्य की ग्रीष्म ऋतु की राजधानी है। छोटा बन्दरगाह होने के कारण जहाज नगर से ११ किलोमीटर की दूरी पर ठहर जाते हैं। यहाँ पर पीतल, चाँदी और स्वर्ण के गहने बनते हैं। भारत के अधिकांश अपढ़ पुरी को इसलिए जानते हैं कि वहाँ पर जगन्नाथजी का प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है, जिसके दर्शन करने प्रतिवर्ष लाखों मनुष्य आते हैं। पुरी स्वास्थ्य-वर्द्धक नगर है।

सम्भलपुर—यह नगर महानदी के उस स्थान पर बसा हुआ है जहाँ पर हीराकुड योजना का निर्माण हो रहा है। यह दक्षिणी-पूर्वी रेलमार्ग का स्टेशन है। यह सूती और रेशमी वस्त्र बनाने का केन्द्र है। सम्भलपुर में लकड़ी का व्यापार अधिक होता है। सबसे पहले यहाँ पर अंग्रेजों और फ्रांसीसी लोगों की कोठियाँ थीं।

भुवनेश्वर—यह उड़ीसा की राजधानी, उसका प्रसिद्ध हवाई अड्डा और धार्मिक स्थान है। यही भारत का महत्त्वपूर्ण लिंगराज का मन्दिर एवं अनेक जैन गुफाएँ हैं।

असम के प्रमुख नगर

असम में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले केवल दो नगर शिलांग और गौहाटी हैं।

शिलांग—यह असम और मेघालय की राजधानी है जो समुद्रतल से १,५०० मीटर की ऊँचाई पर खासी पहाड़ियों के ढालों पर स्थित है। यहाँ की जलवायु बड़ी स्वास्थ्यप्रद है। यहाँ के दृश्य बड़े आकर्षक हैं अतः सैलानी घूमने आते हैं। इस नगर के निकट ही कई सुन्दर जलप्रपात पाये जाते हैं।

गौहाटी—यह इस राज्य की सबसे बड़ी व्यापारिक मण्डी है जिसमें कपास, रेशम और इमारती लकड़ी का व्यापार होता है। ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर स्थित होने के कारण इसे असम का सिंहद्वार (Gateway of Assam) की उपाधि प्राप्त है। यह उत्तरी-पूर्वी सीमान्त रेल मार्ग का बड़ा जंकशन और हवाई अड्डा भी है। यह राज्य के सभी प्रमुख मार्गों का केन्द्र भी है। इसके समीप ही नीलाचल की पहाड़ी पर कामाख्या देवी का अति प्राचीन एवं प्रसिद्ध मन्दिर है।

दिल्ली (३२,७९,९५५)—अत्यन्त प्राचीन काल से ही दिल्ली अनेक हिन्दू और मुगल बादशाहों की राजधानी रही है। यह पाण्डवों, पृथ्वीराज एवं मुगल बादशाहों की राजधानी थी। इन्द्रप्रस्थ इसी का पुराना नाम है। यह एक ओर गंगा के मैदान और दूसरी ओर सिन्धु के मैदान के जल-विभाजक पर यमुना नदी के किनारे अरावली के उत्तरी छोर पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थिति में है। यह नगर लगभग ६ बार उजड़ कर बसा है। इसके प्राचीन भवन (लाल किला, हुमायूँ का मकबरा और जामा मस्जिद को छोड़कर) अब भी इसकी भग्नावस्था में स्मृति चिह्न स्वरूप शेष हैं। यह नगर भारत की राजधानी है और यमुना नदी के पश्चिमी किनारे पर बसा हुआ है। इसकी स्थिति सामरिक दृष्टिकोण से बड़ी अच्छी है। यह सड़कों और उत्तरी रेलवे का बड़ा भारी केन्द्र है और यहाँ से सड़कें और रेलें गाड़ी के पहिये के आरों के समान चारों दिशाओं को जाते हैं। अनेक रेलवे लाइनें दिल्ली को देश के विभिन्न भागों से मिलाती हैं और यहाँ से सीधी रेलगाड़ियाँ बीकानेर, कलकत्ता, देहरादून, अमृतसर, शिमला, फिरोजपुर, बम्बई, अहमदाबाद, मद्रास और सहारनपुर को दौड़ती हैं। यमुना नदी में दिल्ली तक नावें (साधारण और अग्निबोट) चलाई जा सकती हैं। इस नगर का विश्वविख्यात हवाई अड्डा पालम है, यहाँ से प्रतिदिन देश के प्रसिद्ध नगरों व विदेशों को हवाई जहाज छूटते रहते हैं। यह नगर उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग और पंजाब के सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रों और खाद्य पदार्थों के लिए समंधि गृह (Clearing House) का कार्य करता है।

दिल्ली भारत का एक महानगर है जिसके अन्तर्गत पुरानी और नई दिल्ली, शाहदरा, आदि कई उपनगर सम्मिलित हैं। यहीं अनेक देशों के कूटनीतिज्ञ रहते हैं। इसका सांस्कृतिक महत्त्व भी अधिक है। यहाँ लाल किला, जामा-मस्जिद, राष्ट्रपति भवन, संसद भवन, इण्डिया गेट, राजघाट, बिड़ला मन्दिर, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, कुतुबमीनार, पुराली प्रदर्शन गृह, चाँदनी चौक, कनाट प्लेस, आदि दर्शनीय स्थल हैं। दिल्ली एक औद्योगिक एवं व्यापारिक नगर भी है। यहाँ सूती वस्त्र, काँच, चीनी के बर्तन, वनस्पति घी, दवाइयाँ, रासायनिक पदार्थ, साइकिलें, मशीन के पुर्जे, स्कूटर, आदि बनाने के कई कारखाने हैं। कुटीर उद्योग के रूप में सोने-चाँदी के तारों से जरी का काम करना, हाथी-दाँत पर नक्काशी, हीरे-जवाहरात के जड़ाऊ आभूषण बनाने का काम किया जाता है।

दिल्ली भारत का प्रमुख शिक्षा केन्द्र है जहाँ दिल्ली और जवाहरलाल नेहरू दो विश्वविद्यालय, अनेक महाविद्यालय एवं आयुविज्ञान एवं तकनीकी संस्याएँ हैं।